ओ३म्

ऋग्वेद-संहिता

भाषा-भाष्य

(चतुर्थ खण्ड)

भाष्यकार
श्री पं. जयदेव शर्मा
विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ

प्रकाशक
आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर

आवरण सज्जा - मोक्ष

॥ ओ३म् ॥
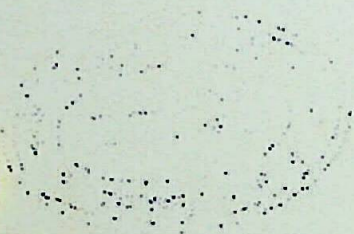
ऋग्वेद-संहिता

भाषा-भाष्य

(चतुर्थ खण्ड)

संशोधित एवं परिवर्धित

भाष्यकार—

श्री पण्डित जयदेव शर्मा,
विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ, विद्यामार्तण्ड

प्रकाशक—

आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर.

तृतीयावृत्ति	संवत् २०३७ वि० सन् १९८१ ई०	मूल्य ३०) रुपये

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद विषय-सूची

चतुर्थेऽष्टके । पञ्चमे मण्डले

(सप्तचत्वारिंशत्सूक्तादारभ्य)

अथ तृतीयोऽध्यायः (पृ० १-७१)

सू० [४७]—विश्वेदेवाः । माता के कर्त्तव्य । माता का नवयुवति कन्या को उपदेश । (२) पुत्र पुत्रियों को माता का उपदेश । (४) जीव की उत्पत्ति का रहस्य । (५) शरीर की उत्पत्ति का रहस्य । (६) सन्तान बनाने में माता के उत्तम संकल्पों की आवश्यकता । (७) वर वधू माता पिताओं को उपदेश । (पृ० १-४)

सू० [४८]—विश्वेदेवाः । राजसभा और सेना का योग्य नायक वरने का कर्त्तव्य । (२-५) नायक के कर्त्तव्य । (पृ० ४-७)

सू० [४९]—विश्वेदेवाः । (१-३) पितावत् शासकों के कर्त्तव्य । (४-५) अहिंसक दयाशील राजा के प्रति प्रजा का कर्त्तव्य । (पृ० ७-९)

सू० [५०]—विश्वेदेवाः । उत्तम मित्र और धनैश्वर्य प्राप्ति का उपदेश । (२) समवाय बनाने का उपदेश । (३) अतिथियों, स्त्रियों और शिष्टों का आदर करने का उपदेश । (४-५) रथाध्यक्ष, सेनाध्यक्षों से शान्ति सुख की आशा । (पृ० ९-११)

सू० [५१]—विश्वेदेवाः । राजा वा शासक का पुत्रवत् प्रजा के पालन का कर्त्तव्य । (२-३) धर्मात्माओं को प्रजापालन में योग देने

सू० [५७]—मरुत: । वीरों विद्वानों के कर्त्तव्य । श्रेष्ठ रथों का उपयोग । (२) उत्तम वीरों को उपदेश । 'पृश्नि मातरों' का रहस्य । (३-८) मेघमालाओं और वायुओं के दृष्टान्त से उनका वर्णन । उनके कर्त्तव्य । (पृ० ४४-४८)

सू० [५८]—मरुत: । (१-४) वीरों, विद्वानों का वर्णन, उनके कर्त्तव्य । (५) अरों के दृष्टान्त से उनको उपदेश । (६) वर्षते मेघों की तुल्यता से वर्णन । (७) वायुवत् कर्त्तव्य । (पृ० ४८-५२)

सू० [५९]—मरुत: । (१-७) वीरों, विद्वानों के कर्त्तव्य । शोभा और ऐश्वर्य के निमित्त बल धारण का उपदेश । वीरों को सुव्यवस्थित होकर युद्ध करने का उपदेश । (८) राजा, सेनाओं और स्त्रियों के कर्त्तव्य । (पृ० ५२-५७)

सू० [६०]—मरुतः। अग्निः । (१-३) वीरों, विद्वानों का वर्णन । प्रजा की उत्तम अभिलाषा । (४) विवाहित वरों के तुल्य सुदृढ़, सुन्दर होने का उपदेश । (५) भ्रातृवत् समान रूप से उनको रहने का उपदेश। (६) सन्तोष का उपदेश । (७) ऐश्वर्य दान का उपदेश । (८) राजा को विद्वान् होने का उपदेश । (पृ० ५७-६०)

सू० [६१]—मरुतः। (१-४) परस्पर कुशलप्रश्न व्यवहार का उपदेश । अध्यात्म में—प्राणों का वर्णन । (५-८) शशीयसी महिषी-स्त्री को वीर, जितेन्द्रिय पुरुष के वरण का उपदेश । (९-१०) दाम्पत्य के लिये प्रेमपूर्वक वरण का उपदेश । (११-१६) मरुतः । विद्वान् यशस्वी सफल गृहस्थ । (१७-१८) दाल्भ्य: । दूत का कार्य । विद्युत् यन्त्रों से दूर देश में व्याख्यानों को पहुँचाने और यानों द्वारा मेल-सर्विस का उपदेश । (पृ० ६०-६६)

सू० [६२]—मित्र और वरुण । (१-३) सूर्यवत् राजा-प्रजा वर्गों को सत्य व्यवहार का उपदेश । (४-५) श्रेष्ठ पुरुषों का न्यायासन पर

रथवत् आरोहण । (६-८) राजा अमात्य, स्त्री पुरुषों को भवन और स्तम्भवत् रहने का उपदेश । (पृ० ६६-७१)

अथ चतुर्थोऽध्यायः (पृ० ७१-१४३)

सू० [७१]—मित्र वरुण । ज्ञानी और सर्वप्रिय जनों का ज्ञान और लोकोपयोगी कर्मों के बढ़ाने का उपदेश । (पृ० ८७-८८)

सू० [७२]—मित्र वरुण । उक्त अध्यक्षों को माता पितावत् प्रजा पालन का उपदेश । (पृ० ८८-८९)

सू० [७३]—अश्विनौ । रथी सारथिवत् गृहस्थ स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । (२) उनके आदर का उपदेश । (३) उनको परस्पर बंधने और गृहस्थ चलाने का उपदेश । गृहस्थ का उच्च आदर्श । (५-७) उत्तम काम का उपदेश । (८) दोनों को व्यापार, यात्रादि का उपदेश । (९-१०) स्त्री पुरुष को उपदेश । (पृ० ८९-९३)

सू० [७४]—अश्विनौ । (१-३) गृहस्थ स्त्री पुरुषों को उपदेश । (४) राष्ट्र में उनकी उत्तम पदों पर नियुक्ति । (५) बूढ़ों को पृथक् कर समर्थ युवकों की नियुक्ति । (६-८) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । (९-१०) सभा सेनाध्यक्षों के कर्त्तव्य । (पृ० ९३-९६)

सू० [७५]—अश्विनौ । विद्वान् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । (पृ० ९६-१००)

सू० [७६]—अश्विनौ । रथी सारथिवत् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के परस्पर के कर्त्तव्य । (पृ० १००-१०२)

सू० [७७]—अश्विनौ । प्रधान पुरुषों के कर्त्तव्य । (१०२-१०४)

सू० [७८]—अश्विनौ । (१-४) सत्याचरण का उपदेश । दो हंसों और हरिणों के दृष्टान्त से उनके कर्त्तव्यों का वर्णन । (५) वनस्पति, आचार्य के कर्त्तव्य । (७-९) गर्भस्रावणी उपनिषत् ॥ गर्भविज्ञान, उत्तम प्रसवविज्ञान ॥ (पृ० १०४-१०७)

सू० [७९]—उषा । प्रभात वेला के दृष्टान्त से स्त्री के कर्त्तव्यों का वर्णन । (२) 'दिवः दुहिता' का रहस्य । (२) पति पत्नी दोनों के पक्षों में समान योजना । (८) उत्तम माता के कर्त्तव्य । दान का उपदेश । (पृ० १०८-११२)

सू० [८०]—उषा। उत्तम विदुषी गुणवती स्त्री का वर्णन। (२) जीवन मार्ग को सुखी बनाने वाली सहायक स्त्री। (३) उत्तम गृहिणी। (४) पतिव्रता का कर्त्तव्य। (५) वरवर्णिनी का आदर। (६) उसके कर्त्तव्य। (पृ० ११२-११५)

सू० [८१]—सविता। परमात्मा का वर्णन। (१) सर्वोपरि स्तुत्य। (२) जगद्-उत्पादक, जगत्पालक, सर्वसम्राट्, पापनाशक। (३) जगन्निर्माता, सर्वाग्रणी, सर्वनेता। (४) सबका आश्रय। सर्व-मित्र। (५) एक अद्वितीय, सर्वपोषक, विराट्। (पृ० ११५-११७)

सू० [८२]—सविता। परमेश्वर का वर्णन। (२) अविनाशी सामर्थ्यवान् प्रभु। (३) उससे ऐश्वर्य की याचना। (४) दुःस्वप्ननाशन की प्रार्थना। (५) भद्र-कल्याण की प्रार्थना। (६) निष्पाप होकर ऐश्वर्यधारण की प्रार्थना। (७) सर्वपाल सविता प्रभु का वरण। (८) सर्वोपास्य सर्वसाक्षी प्रभु। (९) सर्वगुरु प्रभु। (११७-१२०)

सू० [८३]—पर्जन्य। (१-३) मेघवत् राष्ट्रपालक का वर्णन। (४) बरसते मेघ के साथ युद्ध का विशिष्ट वर्णन। (५) सर्वपोषक राजा और मेघ। (६) धारावान् मेघ और सेनाध्यक्ष। (७) उत्तम न्याय व्यवस्था का आदर्श। (८) मेघवत् कोप वृद्धि और सद् व्यय का उपदेश। (९) मेघवत् उदार सर्वप्रिय राजा। (१०) मेघवत् पर-विजयी राजा के कर्त्तव्य। (पृ० १२०-१२६)

सू० [८४]—पृथिवी। माता का वर्णन। (२) उसका पति के प्रति कर्त्तव्य। (३) उसका भूमिवत् राजशक्ति के तुल्य वर्णन। (पृ० १२६-१२७)

सू० [८५]—वरुण। सर्वश्रेष्ठ प्रभु। (२) राजा के राष्ट्रोपयोगी कर्त्तव्य। (३) प्रजा का कष्टवारक सम्राट्, वरुण। (४) राजा के भूमि सेचन के कर्त्तव्य। (५-६) महान् असुर की माया का वर्णन। (७-८) पापमोचन की प्रार्थना। (पृ० १२७-१३०)

सू० [८६]—इन्द्र अग्नि । (१-२) विद्युत् अग्निवत् नायक, अध्यक्षों के कर्त्तव्य । (३-४) उनका स्वरूप राजा और विद्वान् । (५) दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । (पृ० १३१-१३३)

सू० [८७]—मरुद् गण । (१-४) मरुत्वान् प्रभु का वर्णन । उत्तमों का आदर, सत्संग और गुरु जनों से ज्ञान प्राप्ति का उपदेश । (५-९) अग्निवत्, वायुवत् वीर पुरुषों का वर्णन । उनके कर्त्तव्य । (पृ० १३३-१३७)

इति पञ्चमं मण्डलम्

अथ षष्ठं मण्डलम्

सू० [१]—अग्निः । (१-५) अग्निवत् तेजस्वी वीर विद्वान् के कर्त्तव्य । (६) उपासना का प्रकार । (७) नायक के कर्त्तव्य, प्रजा का चितरञ्जन । (८) 'विश्पति' राजा और ईश्वर । उसकी उपासना । (९) ईश्वर भक्त को सत्फल । (१०) अग्निहोत्र की सत्कार से तुलना । (११-१३) ईश्वर से ज्ञानों, ऐश्वर्यों की याचना । इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ (पृ० १३८-१४३)

अथ पञ्चमोऽध्यायः (पृ० १४३–२०७)

सू० [२]—अग्निः । (१-४) तेजस्वी पुरुष और पक्षान्तर में ईश्वर का वर्णन । (५-११) यज्ञ और उपासना । अग्नि और ईश्वर का औपम्य । (१२) संसार से तरने के लिये ज्ञान की याचना । (पृ० १४३-१४७)

सू० [३]—अग्निः । विद्वान्, राजा, प्रभु इनका समान रूप से वर्णन । (२) अग्निहोत्र वा यज्ञ का सत्फल । (३) सूर्यवत् ज्ञानवान् प्रभु । (४) विद्वान् राजा का परशु, आज्य, नियारिया और अग्निवत् कर्त्तव्य । (५) उसको असंग होकर धनुर्धर वा श्येन पक्षीवत् कर्त्तव्य—

पालक होने का उपदेश । (६-७) सूर्यवत् सैन्यपति राजा का कर्त्तव्य । (पृ० १४८-१५१)

तमोनिवारक सूर्यवत् राजा तथा गुरु का कार्य। (७) 'शत हिमाः' सौ बरस जीने की प्रार्थना। (पृ० १७०-१७३)

सू० [११]—अग्निः। प्रमुख नायक के कर्त्तव्य। (२) देह की गृहस्थ से तुलना। (३) स्वयंवरण का प्रचार। (४) अग्नि तुल्य वर का रूप। (५-६) गृहस्थ यज्ञ। (पृ० १७३-१७६)

सू० [१२]—अग्निः। राजा और विद्वान् गृहपति का वर्णन। (२) उसको यज्ञ का उपदेश। (३) घोड़ों पर चाबुक के समान राजा या नायक की स्थिति। (४) नायक के अग्नि, अश्व, पिता के समान कर्त्तव्य। उसे वनस्पति भोजी 'द्रवन्न' होने का उपदेश। (५) द्रवत् विद्युत् का वर्णन, उसके सदृश प्रजानुरंजक राजा के कर्त्तव्य। (६) 'शत हिमाः' सौ बरस जीने की प्रार्थना। (पृ० १७६-१७९)

सू० [१३]—अग्निः। (१३) वृक्ष से शाखावत् सूर्य से वृष्टियों के समान राजा से राज-सभाओं का विकास। (२) अग्नि से प्रकाश और जाठराग्नि से प्राणों के तुल्य राजा से न्याय की उत्पत्ति। (३-६) सूर्य से जल, मेघ, अन्नवत् राजा से राज्यों की वृद्धि। १७९-१८२)

सू० [१४]—अग्निः। (१-३) विद्वान् अग्नि का स्वरूप। वह यथार्थ ज्ञान प्रकाश करने से 'अग्नि' है। (४) क्षत्राग्नि तेजस्वी नायक का शत्रुभयकारी बल है। (५) ज्ञानबल से निन्दकों पर विजय लाभ। (६) प्रभु से पापों और शत्रुओं को पार करने की याचना। (पृ० १८३-१८५)

सू० [१५]—अग्निः। 'उषर्बुध' प्रातः जागने का रहस्य। जीवन के प्रथम भाग में ब्रह्मचर्य पालन का उपदेश। (२) 'वनस्पति' रूप आचार्याग्नि के कर्त्तव्य। (३) 'वीतहव्य' का रहस्य। (४-७) अग्निपरिचार्यवत् प्रभु परिचर्या का वर्णन। (८) अमृत, विश्वपति विभु की उपासना। (९) तिमंजिले भवन के समान त्रिविध तापवारक प्रभु। (१०-१२) ज्ञानी प्रभु की गुरुवद् उपासना। (१३) 'जातवेदा' अग्नि

का लक्षण, उसके 'होता', 'गृहपति' आदि अन्वर्थ नाम। (१४) परमेश्वर, राजा का यज्ञकर्त्ता और अग्नि के तुल्य वर्णन। (१५-१६) विद्वान् और राजा के कर्त्तव्यों का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव। (१७-२०) मथ कर उत्पादित विद्युत् या अग्नि के तुल्य परस्पर विवादसंघर्ष द्वारा विद्वान् नायक की उत्पत्ति। (पृ० १८५-१९३)

सू० [१६]—अग्निः। (१-३) ज्ञानमय जगदीश्वर की स्तुति। विद्वान् की जनता में स्थिति। (४) उसकी 'द्विता', सगुण निर्गुण, उपासना के प्रकार। (५) पात्रप्रद विवेकी प्रभु। (६) 'दूत' प्रभु। (७) 'हव्यवाट्', स्तुत्य, अनुकरणीय प्रभु। (९) मनु, वह्नि, अग्नि, सर्वाश्रय, ज्ञानी प्रभु। (१०) ज्ञान की पुकार। (११) ज्ञानाग्नि का यज्ञाग्निवत् प्रज्वालन। (१२) प्रकाशवत् ज्ञानवितरण। (१३) 'पुष्कर' मेघस्थ अग्निवत् शिरोमणि विद्वान् की स्थिति। (१४) अथर्वा 'दध्यङ्' ऋषि के अग्नि मथन का रहस्योद्भेद। (१५) 'पाथ्य' 'वृषा', मेघवत्, प्राण का वर्णन। (१६) उपदेष्टा की चन्द्रवत् वृद्धि। (१७) उत्तम बल प्राप्ति का उपदेश। (१८) समर्थ राजा का लक्षण। (१९) 'दिवोदास' का रहस्य। (२०) 'अवास' अनवृक्त अग्नि राजा। (२१) राजा को राज्य विस्तार का उपदेश। (२२) अग्रणी के गुण स्तवन, उपदेश। (२३) विद्युत्वत् विद्वान् अध्यक्ष, उसकी दीर्घायु। (२४) राजा का कर्त्तव्य गृहस्थों का बसाना। (२५) राजा विद्वान् और प्रभु का सम्यग् दर्शन सर्वलोक-हितार्थ है। उसका कर्त्तव्य पापों से प्रजा की रक्षा। (२६) आत्मसमर्पक की ब्रह्म प्राप्ति। (२७) प्रभु, स्वामी के सच्चे सैनिक। (२८) प्रजाभक्षकों का नाश, राजा का कर्त्तव्य। (२९) 'रक्ष' दुष्टों का उत्पीडन। (३०) पापों और पापियों से प्रजा का पालन। (३१) दुष्टों का मूलोच्छेदन। (३२) हमारे विरोधी दुष्ट पुरुष को वचन द्वारा दण्डित करना या वा छेदन करने का दण्ड। (३३ ३४) प्रभु से ऐश्वर्य की याचना। (३५) माता के गर्भ में बालकवत् राज्य

गर्भ में राजा की स्थिति। (३६) धन, ज्ञानप्रद जातवेदा का स्वरूप। (३७) सम्यग् दृष्टि वाले ज्ञानी के पास से ज्ञानोपार्जन। (३८) धूप में वृक्ष की छायावत् प्रभु शरण प्राप्ति। (३९) बलवान् राजा का शत्रु पुर भेदन। (४०) प्रजा का राजा के प्रति मातृतुल्य स्नेह। (४१-४६) योग्य की योग्य पद आदर प्राप्ति। (४७) राजा के अधीन जनों के गुण। (४८) अग्रासन योग्य जन के कर्त्तव्य। ऐश्वर्य प्राप्ति, दुष्ट नाश। (पृ० १९३-२०७) इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः (पृ० २०७—२६२)

सू० [१७]—इन्द्रः। 'वज्रहस्त'। राजा को शत्रु दमन के साथ राष्ट्र में कृषि की वृद्धि का उपदेश। (२-३) 'गोत्रभिद्'। राजा के सद्-गुण व उसके कर्त्तव्य। (४) उसका अभिषेक। (५) उषावत् सूर्य के तुल्य राजा प्रजा का अभ्युदय। (६-८) प्रजा की वृद्धि के नाना द्वार खोलने का उपदेश। (९) राजा के दो भय, उनसे विनीत प्रजा। (१०) राजा के बल के ५ गुण, भयकारी, सर्वनाश में समर्थ, तीक्ष्ण, सुखद, सर्वाश्रय योग्य। (११ १२) सूर्यवत् राजा के दो कार्य १. अग्नि-वत् शत्रुपाक, २. मेघवत् सरोवरपूरक। (१३) ऐसे राजा का वरण। ज्ञान। (१४-१५) ऐश्वर्य आदि की प्रार्थना। (पृ० २०७-२१३)

सू० [१८]—इन्द्रः। (१-५) एक ईश्वर की स्तुति। उसका वेदोपदेश। (६) राजा के अनेक उत्तम कर्त्तव्य। (७) सर्वोपरि राजा के गुण। (८) प्रजा के सुखार्थ प्रजा के भक्षकों का दमन। (९) महा-रथी होने का उपदेश। उसको कर्त्तव्य का उपदेश। (१०) बिजली-वत् शत्रुओं का नाश। (११) दुष्टों को धनापहार का दण्ड। (१२) अद्वितीय बलशाली प्रभु और राजा का वर्णन। (१३-१५) राजा को उपदेश। शासन, दान, उन्नयन, शक्तिवर्धन। (पृ० २१३-२१९)

सू० [१९]—इन्द्रः। (१-३) शरीर में प्राणवत् राजा की स्थिति। उसके कर्त्तव्य। (४) सदाचारी प्रजा होने के उद्देश्य से राजा की

सू० [२४]—इन्द्रः । राजा के कर्त्तव्य । (२) उसकी शक्तियों की शाखावत् वृद्धि । (३-४) गौओं और बछड़ों के तुल्य और प्रभु राजा की शक्तियों, सेनाओं और प्रजाओं की स्थिति । (५) राजा का सर्वप्रिय रूप । (६) नदीवत् प्रजाओं के स्वभाव । (७) उस प्रभु की महती शक्ति । (८) मेघवत् शस्त्रवर्षी बल । (९) पितावत् राजा के कर्त्तव्य । (पृ० २४३-२४७)

सू० [२५]—इन्द्रः । 'वृत्रहत्या'; रक्षक स्वामी के कर्त्तव्य । (२) प्रजा की संकटों में रक्षा । (३) पीड़ाकारियों का नाश । (४) उत्तम न्यायकारी का पद इन्द्र । (५) इन्द्र के समान कोई शूर या योद्धा नहीं । (६) न्यायानुसार विभाजक इन्द्र पद । (७) त्राता दुष्ट-संहारक । (पृ० २४७-२५१)

सू० [२६]—इन्द्रः । (१-८) प्रजा सेवकादिभक्त राजा । उसका दुष्टदमन का कर्त्तव्य । (पृ० २५१-२५४)

सू० [२७]—इन्द्रः । राज्यैश्वर्य की रक्षा और दुष्ट दमन के उपायों का उपदेश । (२) न्याय का उपदेश । (३) इन्द्र का अज्ञेय ऐश्वर्य । (४) रसका सर्वभयकारी बल । (५) राजा का भयानक शासन । 'हरियूपीया' का रहस्य । (६) राजा की ३००० सेना और सैन्यों के कर्त्तव्य । (७) राजा की शत्रु-उच्छेदक नीति । (८) 'दक्षिणा' नाम की राजसभा के २० सदस्यों का विधान । (पृ० २५४-२५८)

सू० [२८]—गावः । (१-८) 'गोसूक्त' । गौओं के दृष्टान्त से वेदवाणियों का वर्णन । (२) राजा का प्रजाजन को खजाने के समान रक्षा करने का कर्त्तव्य । (३) अचौर्य धन । (४) ज्ञानी इन्द्र की अहिंसक गौएं, वाणियें हैं । (५) इन्द्र, राजा, गृहपति, विद्वान् से भूमि, गौ, वाणी दान करने की याचना । (६-८) गौओं और वाणियों के उत्तम गुणों की तुलना । (पृ० २५८-२६१) इति षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः (पृ० २६२-३२९)

सू० [४४]—इन्द्रः । अभिषेक योग्य सोम स्वधापति । उसके कर्त्तव्य । (४-९) इन्द्र पद के योग्य पुरुष के लक्षण और आवश्यक गुण । उसके कर्त्तव्य । (१०-१३) सर्वोपरि बन्धु प्रभु । (१४-१६) सूर्य मेघवत् राजा का शत्रु नाश और प्रजापालन का कार्य । (१७-२०) शत्रु दमन का उपदेश । (२१) संगठनकारी राजा । (२२) शस्त्रबल का स्तम्भन धारण । (२३) उत्तम सेनाओं का बनाना । (२४) सूर्यवत् उभय लोक का शासन । (पृ० २९३-३०३)

सू० [४५]—इन्द्रः । (१-९) सखा ईश्वर स्वामी । उत्तम राजा की स्तुति, उसके कर्त्तव्य । (१०-१६) 'वाजपति' गुरु का राजावत् वर्णन । उसके कर्त्तव्य । प्रजा के वचन श्रवण, शत्रु के बल का विजय, राष्ट्र की उन्नति करे । (१७) शिवः सखा । (२०) एक, अद्वितीय । (२१-२४) तीनों वर्णों के राजा के प्रति कर्त्तव्य । (२५-२८) प्रजाओं को वत्सों के प्रति गोवत्, राजा के प्रति वात्सल्य भाव । (२९-३०) संशयच्छेता विद्वान् का आदर । (३१-३३) बृबुः तक्षा । उच्च तटवत् ज्ञानी व शिल्पी की स्थिति । (पृ० ३०३-३१२)

सू० [४६]—इन्द्रः । (१-१२) प्रभु 'सत्पति' का आह्वान । उसके कर्त्तव्य, प्रजा रक्षण । (१३) श्येनों के समान वीरों का पलायन । (पृ० ३१२-३१७)

सू० [४७]—सोमः । (१-५) स्वादु, मधुमान्, रसवान् 'सोम' । उसका अप्रतिम बल । (२) शत्रु के ९९ प्रकार के बलों के नाशक । (३) सोम से उत्तम वाणी तथा मति की प्राप्ति । (४-५) अमृत सोम-तत्त्व । (६-३१) इन्द्र । इन्द्र का सोमपान । (७-१०) दीर्घ जीवन, बुद्धि, वाणी की प्रार्थना । (११) 'त्रातारमिन्द्रम्०', इन्द्र के लक्षण । (१२-१४) सर्वस्तुत्य प्रभु । (१५-१६) राजा का उन्नति पद की ओर बढ़ने का प्रकार । (१८) 'रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव' राजा और जीवात्मा का वर्णन । (१९) इन्द्र का उच्चासन । (२०) मार्ग रहित क्षेत्र में मार्ग

अथ अष्टमोऽध्यायः (पृ० ३३०-३८९)

इति चतुर्थोऽष्टकः

पञ्चमोऽष्टकः

सू० [६६]—मरुतः। (१-२) विद्वानों मरुतों के कर्त्तव्य। (३) उत्तम सन्तानोत्पादक का उपदेश। (५-६) बलवान् पुरुषों के कर्त्तव्य रक्षा आदि। (७) वायुओं द्वारा विना अश्वादि के रथ के समान जीवन का निष्पाप मार्ग। (८) वीरों से रक्षित नायक का अनुपम बल। (९-११) वीरों विद्वानों के कर्त्तव्य। (पृ० ४०५-४१०)

सू० [६७]—मित्र वरुण। स्नेही दुःखवारक प्रधान पुरुषों के कर्त्तव्य। (२-११) मित्र-वरुण वरवधू के कर्त्तव्य। उनको गृहस्थ जीवन सम्बन्धी अनेक उपदेश। (पृ० ४१०-४१४)

सू० [६८]—इन्द्र वरुण। (१-४) युगल प्रमुख पुरुषों के कर्त्तव्य। (५) इन्द्र वरुण की व्याख्या। (६-११) इन्द्र वरुण, स्त्री पुरुषों का वर्णन। (पृ० ४१४-४१९)

सू० [६९]—इन्द्र विष्णु। (१-६) सूर्य विद्युत्वत् राजा प्रजा वर्गों के परस्पर कर्त्तव्य। (७) ऐश्वर्य की वृद्धि और उत्पत्ति का उपदेश। उक्त सबको अन्न ऐश्वर्य से पेट भरने का उपदेश। (८) अपरिमित ज्ञान, बल ऐश्वर्य प्रकट करने की प्रेरणा। (पृ० ४१९-४२२)

सू० [७०]—द्यावा पृथिवी। भूमि सूर्य के दृष्टान्त से राजा प्रजा, माता पिता, वर वधू वा स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (२) वे सूर्य भूमि वा जल-अन्न सम्पन्न, शुद्धाचार, दानी, उत्तम सन्तति के माता पिता हों। (३) दोनों में आदर्श पुरुष का वर्णन। (४-६) दोनों का आदर्श पारस्परिक कर्त्तव्य। (पृ० ४२२-४२५)

सू० [७१]—सविता। 'हिरण्यबाहू', उत्तम निपुण राजा के कर्त्तव्य। (२) वह प्रजा के प्राणों की रक्षा करे। (३) 'हिरण्यजिह्वः', मधुरभाषी तथा (४) 'हिरण्यपाणिः', धन को वश में रखने वाला। (५) सुप्रसन्न रहे। (६) प्रजा को ऐश्वर्य प्रदान करे। (पृ० ४२५-४२७)

सू० [७२]—इन्द्र सोम। सूर्य चन्द्रवत् स्त्री पुरुषों, गुरु शिष्यों के कर्त्तव्य। (२) युवा-युवति को बसावें। माता भूमि का आदर करें। (३) आचार्य-शिष्य और विद्युत्-पवनवत् परस्पर सहायक। (४) परिपक्व वीर्य से सन्तान उत्पन्न करें। (५) धनादि उपार्जन करें। (पृ० ४२८-४३०)

सू० [७३]—बृहस्पति। परमेश्वर पिता और राष्ट्रपालक राजा। (२) वीर राजा। (३) बड़े राष्ट्र का स्वामी। (पृ०४३०-४३१)

सू० [७४]—सोम रुद्र। (१-२) चन्द्र और वैद्य वा औषधि और वैद्यवत् शत्रु-रोगनाशक राजा सेनापति के कर्त्तव्यों का वर्णन। (३) जल और अग्नि के तुल्य वैद्यों को आरोग्यरक्षार्थ औषध संग्रह का उपदेश। (४) वरुण के 'पाश' अर्थात् प्रबल रोग से हमें छुड़ावे। (पृ० ४३१-४३२)

सू० [७५]-'संग्राम सूक्त'। युद्धोपकरण, कवच, धनुष, धनुष की डोरी, धनुष कोटि, तरकस, सारथी, रासें, अश्व, रथ, रक्षक, बाण, कशा, हाथ का रक्षक चर्म आदि २ पदार्थों के वर्णन तथा उनके महत्त्व। (१) 'वर्म', कवच की महिमा—शरीर पर घाव न लगे। (२) 'धनुष' के बल से समस्त दिशाओं को विजय करें। (३) प्रिय स्त्रीवत् 'ज्या' धनुष डोरी का वर्णन। संग्राम पार करने की सहायक डोरी। (४) माता पिता के समान 'आर्त्नी', धनुष कोटियों और पार्श्ववर्त्ती सेनाओं का वर्णन। (५) बहुपुत्र पितावत् 'इषुधिः' तरकस का वर्णन। संग्राम विजय में उसके साथ पीठ पीछे लगे वीर की तुलना। (६) 'रश्मयः' रासों का महत्त्व, अध्यात्म में आत्मा रथी का वर्णन। (७) 'अश्व' घोड़े और घुड़सवार वीरों का वर्णन। (८) युद्ध 'रथ'। (९) सेनाध्यक्ष 'पितरों' या रक्षकों का वर्णन। (१०) विद्वान् ब्राह्मण पितरों का वर्णन। बाणों का वर्णन। पक्षान्तर में भूमि और भूमिपालों का महत्त्वपूर्ण वर्णन। (११-१२) बाणवत् सरल पुरुष का वर्णन।

(१३) अश्व चालक 'कशा' का वर्णन। (१४) 'हस्तघ्न' हस्तत्राण और वीर पुरुष का वर्णन। (१५) विष से बुझे बाण तथा सुन्दर स्त्री का वर्णन। (१६) छोड़े हुए बाणवत् सेना का वर्णन। (१७-१९) युद्ध में आशीर्वाद। (पृ० ४३३-४४०)

इति षष्ठं मण्डलम्

अथ सप्तमं मण्डलम्

सू० [१]—अग्निः। अरणी मथन द्वारा प्रकट होने वाले अग्निवत् परस्पर विचार विवाद द्वारा प्रधान नायक का निर्णय। (२) ऐसे दूरदर्शी पुरुष को चुनने के प्रयोजनों का कर्त्तव्य। (३-१४) नायक के गुण। उसके कर्त्तव्य, वह परुषभाषी को दण्ड दे। सेना, दण्ड को तीक्ष्ण करे। (१५) उत्तम रक्षक अग्नि, नायक। (१६) उसकी यज्ञाग्नि से तुलना। (१७-१८) उससे अग्निहोत्रवत् व्यवहार। (१९-२७) नायक से प्रार्थना व प्रजा के आवश्यक निवेदन। (पृ० ४४१-४५०)

अथ द्वितीयोऽध्यायः (पृ० ४५०–५१०)

सू० [२]—आप्रम्। (१-३) यज्ञाग्निवत् शासक नायक का वर्णन। (४) अग्निहोत्र का वर्णन। (५-७) विद्वानों के वीरों के तुल्य कर्त्तव्य। (८) तीन देवी—भारती, इडा, सरस्वती। (९) 'देवकामः' प्रजा काम गृहस्थी को उपदेश। (१०-११) सूर्य वनस्पतिवत् राजा के कर्त्तव्य। पाचकवत् नायक के कर्त्तव्य। शमिता अग्नि का स्वरूप। (पृ० ४५०-४५५)

सू० [३]—अग्निः। 'घृतान्न पावक' अग्निवत् प्रमुख पुरुष के कर्त्तव्य। (२) प्रयाणशील राजा की 'अश्व' या अग्नि और सैन्य की प्रबल वात से तुलना। (३) अग्नि की लपटों के तुल्य राजा के अन्य वीरों का वर्णन। (४) जठराग्निवद् राजा का राष्ट्र शासन का कर्त्तव्य।

(५-९) अग्निवत् अश्ववत् सेनानायक का वर्णन। (१०) 'स्वस्ति' कल्याण के लिये प्रजा से विनय। (पृ० ४५५-४५९)

सू० [४]—अग्निवत् राजा शासक की परिचर्या और उसके कर्त्तव्य। (२-४) 'तरुण अग्नि' माता से उत्पन्न बालकवत् उसका स्वरूप। (५) 'देवकृत योनि' का रहस्य। (६) ज्ञानी को मोक्ष प्राप्ति। (७-८) पराये धन और पुत्र का निषेध। (९-१०) राजा से उत्तम आशंसा। (पृ० ४५९-४६३)

सू० [५]—वैश्वानरः। (१-९) यज्ञाग्निवत् शासक की परिचर्या। वैश्वानर प्रभु का वर्णन। उससे प्रार्थनाएं। (पृ० ४६३-४६७)

सू० [६]—वैश्वानरः। (१-२) बलवान् पुरुष की सूर्य-विद्युत्वत् प्रशंसा। (३) अयज्ञशीलों को तिरस्कार करने का उपदेश। (४-७) नायक के अन्य कर्त्तव्य। (पृ० ४६७-४६९)

सू० [७]—अग्निः। (१-३) विद्वान् और राजा के कर्त्तव्य। (४) गार्हपत्य अग्निवत् उसकी स्थापना। (५) वृतवर अग्नि। (६) ज्ञानी के सत्य ज्ञान का सद् उपयोग। (७) उत्तम वसु वसिष्ठ जन। (पृ० ४७०-४७३)

सू० [८]—अग्निः। (१-७) उदयशील सूर्यवत् आहवनीय अग्नि। अग्निवत् राजा का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। (पृ० ४७३-४७५)

सू० [९]—अग्निः। उदयशील सूर्यवत् नानाप्रद गुरु अग्नि। 'जारः' का स्पष्टीकरण। (२) उसका 'पणीनां' व्यापारियों को पवित्र करने का कर्त्तव्य। (३) 'विवस्वान्' सूर्यवत् सभापति का कर्त्तव्य। (४) किरणों से सूर्यवत् वेदवाणियों से पावन प्रभु का ज्ञान। (५) विद्वान् का दूतप्रद। (६) विद्वान् का विद्योपदेश कर्त्तव्य। (पृ० ४७५-४७८)

सू० [१०]—अग्निः। (१-४) सूर्यवत् विद्वान् के कर्त्तव्य। ईश्वर का ज्ञान प्रसार। (५) 'क्षपावान्' चन्द्रवत् राजा का सर्व प्रिय होना। (पृ० ४७८-४८०)

सू० [११]—अग्निः । जीवों का सुखप्रद स्वामी राजा । (२-३) शत्रुनाशक दूतवत् शासक । (३) 'हव्यवाड्' अग्नि । (पृ० ४८०-४८२)

सू० [१२]—अग्निः । विद्युत् अग्नि का वर्णन । (२) उसके तुल्य प्रभु स्वामी के कर्त्तव्य । (३) वही वरुण, मित्र है । (पृ० ४८२-४८३)

सू० [१३]—वैश्वानरः । सर्वहितैषी वैश्वानर प्रभु की स्तुति । (२) उससे मुक्ति की याचना । (३) ज्ञान की याचना । (पृ० ४८३-४८५)

सू० [१४]—अग्निः । ज्ञानी की अर्चना । (पृ० ४८५-४८६)

सू० [१५]—अग्निः । (१-५) यज्ञवत् विद्वान् की परिचर्या । उससे उत्तम २ प्रार्थनाएं । (पृ० ४८६-४९०)

सू० [१६]—अग्निः । तेजस्वी बलवान् का आदर सत्कार का उपदेश । (२) सुब्रह्मा, वेदज्ञ का आदर । (३-४) उसका तेजस्वी सूर्य और अग्निवत् स्वरूप । (५) 'गृहपति' 'होता' 'पोता' अग्नि । (६-१०) उससे नाना प्रार्थनाएं । (११) 'द्रविणोदा' ऐश्वर्यप्रद प्रभु । (१२) दानशील को बल वीर्य देता है । (पृ० ४९०-४९४)

सू० [१७]—अग्निः । विद्वान् शासक के कर्त्तव्य । (पृ० ४९४-४९६)

सू० [१८]—इन्द्रः । (१-३) राजा और विद्वान् का वर्णन, उसके कर्त्तव्य । (४) उत्तम राजा के कर्त्तव्य । राजा 'गोपति' (५) निन्दित लोगों को दण्ड दे । (६) अग्रिक द्रव्य की व्यवस्था का उत्तम फल । श्रमिकों की मत्स्यों से उपमा । (७) 'आर्य' उत्तम राजपुरुषों का आकार प्रकार । (८) दुर्बुद्धि और कुकर्मी के लक्षण । (९) वशी राजा के सत्कृत । (१०) गोपाल और गौओं के तुल्य प्रभु और जीव-गण । (११) राज समिति के २१ सदस्य । (१२-१३) शत्रु साधन । (१४) ६०६६ की सेना । (१५-१९) इन्द्र पदस्थ राजा के कर्त्तव्य । (२०) शम्बर का वध । (२१) पराशर 'वसिष्ठ' राजा ।

दान स्तुति । (२२-२५) सुदास पंजवन की दान स्तुति । 'सुदास', 'दिवोदास' आदि का रहस्य । (पृ० ४९६-५०६)

सू० [१९]—इन्द्रः । 'तिग्मशृंग' तीक्ष्णशृंग वृषभ के समान इन्द्रपदस्थ उत्तम शासक का वर्णन । (२-४) राजा के अन्यान्य कर्त्तव्य । कुत्स, शुष्ण, कुयव, वीतहव्य, सुदास, पौरुकुत्सि, वृत्र, चुमुरि, धुनि आदि का स्पष्टीकरण । (५) इन्द्र का ९९ पुरी भेदन और नमुचिवध का रहस्य । (६-११) इन्द्र से प्रार्थना । (पृ० ५०६-५१०)

इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः (पृ० ५११-५६८)

सू० [२०]—इन्द्रः । (१-४) उत्तम रक्षक के कर्त्तव्य । (५) 'सेनानी' इन्द्र । (६) इन्द्र से प्रार्थना का फल । (७) बड़ों का छोटों को शिक्षा देने का उपदेश । (८-१०) करप्रद प्रजा की रक्षा का कर्त्तव्य । (पृ० ५११-५१४)

सू० [२१]—इन्द्रः । भूमि से अन्न उत्पन्न करने का उपदेश करने का राजा का कर्त्तव्य । (२-८) वह शत्रु और दुष्टों के कार्यों को गुप्त रूप से पता लगाकर दण्डित करे । दुष्ट जन यज्ञादि में विघ्न न करें । (९) रक्षक उत्तम सखा । (१०) प्रजा को अभय प्राप्त हो । (पृ० ५१५-५१८)

सू० [२२]—इन्द्रः । इन्द्र का सोमपान, राष्ट्रपालन । (२) वृत्र-हनन, शत्रुनाश । (३) अन्नोत्पत्ति, ब्रह्मज्ञान, धन प्राप्ति । (४) मेघ के जलपानवत् ज्ञानार्जन । (५) राजा की वाणियों की अवहेलना न कर उसकी कीर्ति कहना । (६-८) स्तुत्य राजा । (९) पूर्व और नूतन 'ऋषि', विद्वान् जन, वेदार्थ का प्रकाश करें । (पृ० ५१८-५२१)

सू० [२३]—इन्द्रः । (१-६) 'वसिष्ठ', विद्वान् और राजा का वर्णन । उनके कर्त्तव्य । (पृ० ५२१-५२३)

सू० [२४]—इन्द्रः । (१-४) उत्तम गृहपतिवत् राष्ट्रपति का वर्णन । उसके कर्त्तव्य । (५) अभिषेक का प्रयोजन । सूर्यवत् शासक पद । (६) उसका कर्त्तव्य प्रजा को समृद्ध करना । (पृ० ५२४-५२६)

सू० [२५]—इन्द्रः । देशरक्षार्थ सेनाओं का युद्ध, शस्त्रसञ्चालन और शस्त्र का उद्यम । (२) दुर्ग में बैठकर शत्रुओं का नाश करने का उपदेश । (३) हिंसक दुष्ट का नाश और विजेता को प्रशंसा प्राप्त हो । (४) राजा का प्रजा को आश्रय । (५) राजा का समवाय बनाना । (६) सब शस्त्रादि बल शासन की वृद्धि के लिये हों । (५२६-५२८)

सू० [२६]—इन्द्रः । (१-२) 'असुत सोम इन्द्र को हर्ष नहीं देता', उसकी व्याख्या । सोम प्रजाजन, ऐश्वर्य, ओषधि रस आदि, इन्द्र राजा, आत्मा, गुरु आदि । (३) अभिषिक्त शास्ता के कर्त्तव्य । (४) इन्द्र का सर्वोपरि पद । उसके न्यायशासन कर्त्तव्य । (५) कृषि-वृद्ध्यर्थं मेघवत् प्रजावृद्ध्यर्थं राजा की स्तुति । (पृ० ५२८-५३०)

सू० [२७]—इन्द्रः । राजा की आवश्यकता । प्रभु का स्मरण और प्रार्थना । (२) वह हमारे लिये धन और ज्ञान के द्वार खोले । (३) राजा के अधिकार । (४) राजा का धन, बल दोनों पर नियन्त्रण ही प्रजा को सुख दे सकता है । (५) प्रजा का सेवक राजा । (पृ० ५३०-५३२)

सू० [२८]—इन्द्रः । उत्तम विद्वान् और राजा के कर्त्तव्य । वे प्रजा की बात सुनें । (२) राजा का घोर वज्र और वह स्वयं असह्य हो । (३) शासकों का शासन करे, कर न देने वालों को दण्ड दे । (४) न्याय का उत्तम दाता हो । (५) वही उत्तम रक्षक 'इन्द्र' पद योग्य है । (पृ० ५३२-५३४)

सू० [२९]—इन्द्रः । उत्तम ऐश्वर्य का दाता राजा । (२) चतुर्वेदज्ञ शासक पद के योग्य है । (३) विद्या का अलंकार, विद्वान्

से विनय। (४) गुरुस्वीकरण। (५) वही गुरु 'इन्द्र' पद योग्य है। (पृ० ५३४-५३६)

सू० [३०]—'इन्द्रः'। ऐश्वर्य का स्वामी और बलशाली। (२) सेनापति होने योग्य पुरुष। (१-५) ज्ञान, बल आदि के लिये प्रार्थना। (पृ० ५३६-५३८)

सू० [३१]—इन्द्रः। (१-३) ब्रह्मचारी, मुमुक्षु, ऐश्वर्यपालक राजा सब 'सोमपाल' हैं उनका गुण वर्णन करो। (४) 'वसु', इन्द्र से विनय। (५) वह दुष्ट के निमित्त प्रजा को पीड़ित न करे। (६) प्रजा के कवचवत् राजा। (७) सूर्याधीन आकाश पृथिवीवत् स्त्री पुरुषों को सम्बद्ध रखने वाला राजा। 'स्वधावरी रोदसी' की व्याख्या। (८-११) राजा सदा सबका आदरणीय हो। (१२) सेनाओं और प्राणियों के कर्त्तव्य। (पृ० ५३८-५४१)

सू० [३२]—इन्द्रः। राजा विषयविलास में रत न होकर प्रजा के सुखों में सुखी रहे। (२) विद्वानों का मधुमक्खी के समान मधुव्रत। (३) पुत्रवत् पिता तुल्य प्रभु का स्मरण। (४) राष्ट्र धारणार्थ शासक को राजा नियुक्त करे। (५) वह राजा की प्रजा के कष्टों को सुने। (६) राजा के गम्भीर शासनों के पालक की वृद्धि। (७) राजा के विविध धन का भोग प्रजा को प्राप्त हो। (८) इन्द्रार्थ सोमसवन अर्थात् राष्ट्रपति पद पर वीर्यवान् पुरुष का अभिषेक। उसका समारम्भ। (९-१२) वीर्यवान् पुरुषों को उपदेश। (१३-१६) उत्तम मन्त्र, रक्षा का उपदेश। प्रभुभक्त को ही धर्मबन्धन तराते हैं। (१७-२१) धन का स्वामी विद्वानों का पालन करे। (२२-२४) ईश्वर के प्रति वात्सल्य प्रेम। (२५) शत्रुओं को दूर करने की प्रार्थना। (२६) पालक गुरु से ज्ञानप्रकाश की याचना। (२७) कर्म बन्धनों को नदियों के समान पार करे। (पृ० ५४१-५५०)

सू० [३३]—वसिष्ठ व वसिष्ठ पुत्रों का संवाद। (१-९) मार्गदर्शी विद्वानों से उत्तम २ प्रार्थनाएं। उनका संप्रेरक दण्डवत् कर्त्तव्य।

सू० [३८]—सविता। (१-६) उत्तम वसु, सेव्य और स्तुत्य प्रभु। परमेश्वर से नाना रक्षा की प्रार्थना। वाजिनः। (७-८) विद्वानों, रक्षकों से प्रार्थनाएं। (पृ० ५७५-५७८)

सू० [३९-४०]—विश्वेदेवाः। (१-७) उत्तम मार्गगामी तेजस्वी की अग्नि से तुलना। उसके कर्त्तव्य। (पृ० ५७८-५८३)

सू० [४१]—विश्वेदेवाः। 'प्रातः सूक्त'। (१-७) प्रातः प्रभु की प्रार्थना, स्तुति। (६) 'दधिक्रावा' की व्याख्या। (पृ० ५८३-५८६)

सू० [४२]—विश्वेदेवाः। (१-३) उत्तम विद्वानों के कर्त्तव्य। (४) अतिथि यज्ञ। (५) कल्याण की प्रार्थना। (पृ० ५८६-५८८)

सू [४३]—विश्वेदेवाः। वृक्ष की शाखावत् वेदज्ञ विद्वानों के ज्ञान प्रसार के कार्य। (२) अग्निहोत्र की ज्वालाओं के समान सहयोग का उपदेश। (३) माता को प्राप्त पुत्रोंवत् शासकों की उन्नत पद प्राप्ति। (४) उनकी सत्य वाक् प्रतिज्ञाएं। (५) उनका वेतनबद्ध धनक्रीत सा होना। (पृ० ५८९-५९०)

सू० [४४]—विश्वेदेवाः। (१-३) विद्वानों के कर्त्तव्य। उनके गुण वर्णन। (४) दधिक्रावा का स्वरूप। रथी सारथी। (५) सन्मार्ग नेता उसका अश्ववत् वर्णन। (पृ० ५९०-५९३)

सू० [४५]—सविता। (१-४) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष। उससे भोग्य और रक्षा की प्रार्थना। (पृ० ५९३-५९४)

सू० [४६]—रुद्रः। (१-४) सेनापति का वर्णन। उसके 'इषुः' और 'धनुः'। उसका बलवत् पराक्रम और प्रजा के प्रति दयाभाव। (पृ० ५९४-५९६)

सू० [४७]—आपः। (१-२) आप्त विद्वान् जनों के कर्त्तव्य। (३-४) 'देव पाथ' की व्याख्या। (पृ० ५९६-५९८)

सू० [४८]—ऋभवः। (१-४) ऋभु, विभु और वाजस्। यान, रथ, युद्धशस्त्र यन्त्र आदि निर्माण। (पृ० ५९८-५९९)

सू० [४९]—आपः। दिव्य, खनित्रिम, स्वयञ्ज तथा समुद्रार्थ। (१-२) आपः द्वारा सैनापत्य अभिषेक। (३) सत्यानृत विवेकी वरुण का आश्रय। (४) वरुण, सोम, वैश्वानर अग्नि को धारण करने वाले जल मेरी रक्षा करें। (पृ० ५९९-६०१)

सू० [५०]—मित्र वरुण। (१-३) विष चिकित्सा। नाना विषों की गुप्त प्रकृति और उनका प्रतिकार। नद्यः। (४) प्रवत, निवत, उद्वत, उदन्वती, अनुदक नदियें। (पृ० ६०१-६०३)

सू० [५१-५२]—आदित्याः। अदिति। ईश्वर के उपासकों के ज्ञान का सत्संग। उनके कर्त्तव्य। (पृ० ६०३-६०५)

सू० [५३]—द्यावापृथिवी। भूमि सूर्यवत् विद्वान् माता पिताओं का कर्त्तव्य। (पृ० ६०५-६०६)

सू० [५४-५५]—वास्तोष्पतिः। राष्ट्रपति, गृहपति, परमेश्वर। उनके कर्त्तव्य। उसका तारकवत् वर्णन, उससे प्रार्थना। (पृ० ६०६-६१०)

सू० [५६-५८]—मरुतः। (१-२५) रुद्र सेनापति के वीरजन। उनके कर्त्तव्य। (पृ० ६१०-६२३)

सू० [५९]—मरुतः। (१-११) वीरों के कर्त्तव्य। (२-५) उनसे प्रार्थना। (६-८) मधुवत् करसंग्रह, भिक्षासंग्रह, न्यायोपार्जित धन ग्रहण का उपदेश। (९-१०) 'सान्तपन अग्नि' विद्वान् ब्राह्मण का वर्णन। रुद्रः। (१२) 'मृत्युंजय मंत्र'। त्र्यम्बक का रहस्य। (पृ० ६२३-६२७)

सू० [६०]—सूर्य। (१) न्याय शास्ता के प्रति प्रार्थना। मित्र वरुण। (२-१२) सर्वश्रेष्ठ मित्र वरुण आदि का वर्णन। (पृ० ६२७-६३२)

इति पञ्चमेऽष्टके चतुर्थोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद-संहिता

अथ चतुर्थेऽष्टके तृतीयोऽध्यायः

(पञ्चमे मण्डले चतुर्थेऽनुवाके)

[४७]

अतिरथ आत्रेय ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ३, ७ त्रिष्टुप् । भुरिक् त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् । ५ भुरिक् पंक्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्रयुञ्जती दिव एति ब्रुवाणा मही माता दुहितुर्बोधयन्ती ।
आविवासन्ती युवतिर्मनीषा पितृभ्य आ सदने जोहुवाना ॥ १ ॥

भा०—माता के कर्त्तव्य । (मही माता) पूज्य माता (प्र युञ्जती) उत्तम प्रयोग और उत्तम मार्ग में प्रेरित करती हुई (दिवः) कामना-योग्य पति के लिये (दुहितुः) दूर में विवाह योग्य कन्या को (ब्रुवाणा) उपदेश देती हुई (दिवः) उषा के समान उसे (बोधयन्ती) अज्ञान निद्रा से जगाती हुई (एति) प्राप्त हो । वह (युवतिः) यौवन को प्राप्त होकर (आ-विवासन्ती) नाना गुणों का प्रकाश करती हुई (मनीषा) अपनी बुद्धि से (पितृभ्यः) श्वशुर आदि पालक पुरुषों के (सदने) गृह में भी (आ जोहुवाना) सादर बुलाई जाकर ही (एति) प्राप्त हो । वहां भी वह मान बनाये रक्खे ।

अजिरासस्तदप ईयमाना आतस्थिवांसो अमृतस्य नाभिम् ।
अनन्तास उरवो विश्वतः सीं परि द्यावापृथिवी यन्ति पन्थाः ॥ २ ॥

भा०—(अङ्गिरासः) कभी नाश न होने वाले (तद् अपः ईयमानः) उस परमेश्वर के उपदिष्ट कर्मों का आचरण करते हुए और (अमृतस्य) मोक्षस्वरूप प्रभु वा सन्तति के (नाभिम्) बांधने वाले प्रेम पर (आ-तस्थिवांसः) स्थित (अनन्तासः) अनन्त (उरवः) और बड़े २ (पन्थाः) मार्ग (द्यावा-पृथिवी) सूर्य और पृथिवी के तुल्य स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध में (विश्वतः परियन्ति) सब तरफ जा रहे हैं। हे पुत्रि वा पुत्र! तू उनको जान।

उ॒क्षा स॑मु॒द्रो अ॑रु॒षः सु॑प॒र्णः पूर्व॑स्य॒ योनिं॑ पि॒तुरा वि॑वेश।
मध्ये॑ दि॒वो निहि॑तः॒ पृश्नि॒रश्मा॒ वि च॑क्रमे॒ रज॑सस्पा॒त्यन्तौ॑ ॥३॥

भा०—हे पुत्रि! मनुष्य (उक्षा) वीर्य सेचन एवं गृहस्थ धारण करने में समर्थ हो। वह (समुद्रः) समुद्र के समान गंभीर, स्त्री को प्रमोद, रति-सुख आदि देने में समर्थ, (अरुषः) तेजस्वी और स्त्री पर रोष न करने हारा हो। वह (सुपर्णः) उत्तम पालक, (पूर्वस्य पितुः) पूर्व पिता के (योनिम्) गृह को (आविवेश) प्रविष्ट हो पुरुष अपने पिता के गृह का स्वामी हुआ करता है। (दिवः मध्ये निहितः पृश्निः) जैसे आकाश के बीच में सूर्य (अश्मा) व्यापक होकर (वि चक्रमे) विविध कार्य करता और (रजसः अन्तौ पाति) समस्त संसार के छोरों का पालन करता है वैसे ही पुरुष भी (दिवः मध्ये) पृथिवी के बीच, व्यवहार में वा कामना योग्य स्त्री के हृदय में (निहितः) स्थिर होकर (पृश्निः) मेघवत् रस-वर्षण, वीर्य-निषेक में समर्थ और (अश्मा) शिला के समान दृढ़ एवं भोक्ता वा मेघवत् दानशील होकर (वि चक्रमे) आगे कदम बढ़ावे और (रजसः अन्तौ) रजोभाव की दोनों सीमाओं की (पाति) रक्षा करे।

च॒त्वार॑ ईं बिभ्रति क्षेम॒यन्तो॒ दश॒ गर्भं॑ च॒रसे॑ धापयन्ते।
त्रि॒धात॑वः पर॒मा अ॑स्य॒ गावो॑ दि॒वश्च॑रन्ति॒ परि॑ स॒द्यो अन्ता॑न् ॥४

भा०—जीव की उत्पत्ति का रहस्य। जैसे (चत्वारः) पृथिवी, जल, वायु और अग्नि चारों तत्व (क्षेमयन्तः) कुशल करते हुए (ईं गर्भं) इस अन्तरिक्षगत मेघ को (बिभ्रति) पुष्ट करते और (दश) दशों दिशाएं (चरसे) उसको विचरण के लिये (धापयन्ते) धारण करती हैं और (अस्य) इस सूर्य के (परमा) उत्कृष्ट (त्रि-धातवः) तीनों लोकों का धारण करने वाले (गावः) किरण (सद्यः) शीघ्र ही (दिवः अन्तान् परि चरन्ति) पृथ्वी वा आकाश के दूर २ की सीमाओं तक फैलते हैं वैसे ही (ईम् गर्भम्) इस गर्भ-गत जीव की (क्षेमयन्तः) कुशल चाहते हुए, चारों वर्ण वा आश्रम (बिभ्रति) पुष्ट करते हैं और (चरसे) कर्म-फल-भोग के लिये (दश धापयन्ते) दशों प्राण उसे पुष्ट करते हैं (अस्य) इस जीवात्मा की (परया) सर्वोत्कृष्ट (गावः) इन्द्रियें (त्रि-धातवः) उस आत्मा को गर्भ, जीवन और मरणोत्तर, तीनों कालों में धारण करती हैं। वे (सद्यः) सब दिनों (दिवः अन्तान्) प्रकाशमय मोक्ष या कामना-योग्य भोगक्षेत्र की सीमाओं तक (परिचरन्ति) आत्मा की सेवा करती, उसे सुख-दुःख का ज्ञान कराती हैं।

इ॒दं वपु॒र्निव॑चनं जनास॒श्चर॑न्ति॒ यन्न॒द्य॑स्त॒स्थुराप॑: ।
द्वे यदीं॑ बिभृ॒तो मा॒तुर॒न्ये इ॒हेह॑ जा॒ते य॒म्या॒३ सब॑न्धू ॥ ५ ॥

भा०—शरीरोत्पत्ति-रहस्य। हे (जनासः) मनुष्यो! (इदं) यह (वपुः) बीज द्वारा वपन-योग्य शरीर (निवचनम्) निश्चय से प्रवचन और श्रवण करने योग्य है। (यत्) जिसमें (आपः) जलमय रुधिर की नाड़ियां (नद्यः) नदियों के तुल्य (चरन्ति) गति कर रही हैं। (यत्) जो (द्वे) दो (ईम्) इस शरीर को (मातुः) माता के गर्भ में (बिभृतः) धारण करते हैं वे (अन्ये) भिन्न-भिन्न प्रकृतियां हैं और वे (इह इह जाते) इस पुरुष वा स्त्री-शरीरों में उत्पन्न होते और (यम्या) एक दूसरे को बांधने वाले वा (स-बन्धू) एक दूसरे के साथ बंधने

वाले हैं। मातृ-गर्भ में वीर्य-कीट और डिम्बकोश दोनों मिलकर शरीर बनाते हैं।

वि त॑न्वते धियो॑ अस्मा अपां॑सि वस्त्रा॑ पुत्राय॑ मातरो॑ वयन्ति।
उपप्रक्षे वृष॑णो मोद॑माना दिवस्पथा वध्वो॑ यन्त्यच्छ॑ ॥ ६ ॥

भा०—जैसे (मातरः) माताएं (पुत्राय) अपने पुत्र को पहनाने के लिये (वस्त्रा वयन्ति) वस्त्र बुनती हैं वैसे ही वे (अस्मै) इस पुत्र के लिये (धियः) संकल्प-विकल्प तथा (अपांसि) नाना उत्तम कर्म (वि तन्वते) किया करे। माताओं के उत्तम संकल्प ही सन्तान की रक्षा, पालन और उनको सद्गुणों से शोभित करते हैं। (वध्वः) उत्तम वधुएं (अस्मै) इस पुत्र के लाभ के लिये ही (वृषणः उप प्रक्षे) वीर्यवान् पुरुषों के समीप आलिंगन करने के लिये (दिवः पथा) पुत्र-कामना के आनन्दप्रद मार्ग से (मोदमानाः) प्रसन्नता अनुभव करती हुई (अच्छ यन्ति) उन्हें प्राप्त होती हैं।

तद॑स्तु मित्रावरुणा तद॑ग्ने शं योर॒स्मभ्य॑मिदम॑स्तु शस्तम्।
अशीमहि गाधमुत प्र॑तिष्ठां नमो॑ दिवे बृ॑हते साद॑नाय ॥७॥१॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) एक दूसरे को स्नेह और वरण करने वाले मित्र वर-वधू! माता-पिता जनो! (अग्ने) विद्वन्! (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (इदम्) यह ऐसा उपदेश (शस्तम्) बराबर किया करो, (तत्) वह (शं योः अस्तु) शान्तिकारक और दुःखनाशक हो (उत) और हम लोग (गाधम् अशीमहि) मनचाहा ऐश्वर्य भोगें (उत) और (प्रतिष्ठाम् अशीमहि) वंश की स्थिरता और कीर्त्ति प्राप्त करें। (दिवे) ज्ञान और तेज प्राप्त करने के लिये (बृहते) बड़े भारी (सादने) उद्देश्य पूर्ति के लिये (नमः अशीमहि) विनय, बल, तेज प्राप्त करें। इति प्रथमो वर्गः॥

[४८]

प्रतिभानुरात्रेय ऋषिः॥ विश्वेदेवा देवताः॥ छन्दः—१, ३ स्वराट् त्रिष्टुप्। २ ४, ५ निचृज्जगती॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम् ।
आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आ अपो वृणाना वितनोति मायिनी ॥ १

भा०—(वयं) हम लोग (कत् उ) कब (प्रियाय) प्रिय, (धाम्ने) तेज को प्राप्त करने, (महे) बड़े (स्व-क्षत्राय) अपने बल और (स्व-यशसे) यश से युक्त राज्य वा राजा की वृद्धि के लिये (मनामहे) ज्ञान प्राप्त करें। (यत् अभ्रे आ वृणाना मायिनी अपः आ वितनोति) जैसे शक्तिशालिनी विद्युत् मेघ में व्याप कर जलों को उत्पन्न करती है, वैसे ही (मायिनी) शत्रुनाशक शक्ति से युक्त राजसभा वा सेना (आमेन्यस्य) चारों ओर से माप लेने योग्य (रजसः) लोक-समूह या राष्ट्र के बीच (अभ्रे) मेघ-तुल्य उदार नायक के अधीन (आ वृणाना) शासकों का वरण करती हुई (अपः) राज्य-कार्य को (वि तनोति) विविध रूप से करे।

ता अत्नत वयुनं वीरवक्षणं समान्या वृतया विश्वमा रजः ।
अपो अपाचीरपरा अपेजते प्र पूर्वाभिस्तिरते देवयुर्जनः ॥ २ ॥

भा०—(देवयुः जनः) व्यवहारज्ञ और विजयशील पुरुषों को कामना करने वाला, उनका स्वामी जिन (पूर्वाभिः) पूर्व विद्यमान प्रजाओं से (प्रतिरते) स्वयं बढ़ता है, (अपाचीः) दूर विद्यमान (अपराः) अन्य शत्रु-सेनाओं को (अपो, अप एजते) वह दूर से दूर भगा देता है और जिनसे वह (वीरवक्षणम्) वीर पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य (वयुनं) कर्म वा विज्ञान को (समान्या वृतया) समान रूप से मान-योग्य एवं जीवनसंगिनी स्त्री के तुल्य प्रजा द्वारा चुनी गयी राजसभा द्वारा (विश्वं रजः) समस्त लोक समूह को (आतिरते) अधीन कर उसकी वृद्धि करता है (ताः) उन शक्तिशालिनी प्रजाओं, सेनाओं या समृद्धियों को (अत्नत) प्राप्त करो।

आ ग्रावभिरहन्येभिरक्तुभिर्वरिष्ठं वज्रमा जिघर्ति मायिनि ।
शतं वा यस्य प्रचरन्त्स्वे दमे संवर्तयन्तो वि च वर्तयन्नहा ॥३॥

भा०—जैसे सूर्य की किरणें सहस्रों (अहा संवर्तयन्तः प्रचरन् वि वर्तयन्) होकर भी दिन को प्रकट करते और विविध रूप दर्शाते हैं वैसे ही (यस्य) जिस राष्ट्रपति के (स्वे दमे) अपने गृह-तुल्य शत्रुदमन-कारी शासन में (शतं वा प्र-चरन्) सैकड़ों पुरुष गमनागमन करते हैं और (अहा) स्थिर कार्यों को (संवर्तयन्तः) अच्छी प्रकार करते हुए (वि वर्तयन् च) विविध आजीविकादि व्यवहार करते हैं वह राजा (मायिनी) कुटिल मायावी पुरुष के निमित्त (अहन्येभिः अक्तुभिः) दिन और रात दोनों कालों में पृथक् २ रूप से नियुक्त (ग्रावभिः) दृढ़ शक्तियों से अपने (वरिष्ठं) शत्रु-वारण में समर्थ (वज्रम्) शस्त्र-बल को (आ जिघर्त्ति) प्रदीप्त रक्खे।

तामस्य रीतिं परशोरिव प्रत्यनीकमख्यं भुजे अस्य वर्पसः।
सचा यदि पितुमन्तमिव क्षयं रत्नं दधाति भरहूतये विशे ॥४॥

भा०—(अस्य वर्पसः) इस, नाना प्राणियों से युक्त, सुन्दर राष्ट्र के (भुजे) भोग और पालन करने के लिये मैं (अस्य) इस राजा के (अनीकं) सैन्य-बल को, (परशोः रीतिम् इव प्रति अख्यम्) कुल्हाड़े की धार के समान ही देखता हूँ। (यदि) क्योंकि वह (विशे) प्रजा-पालन के लिये उस सैन्य को (सचा) सदा अपने साथ (पितुमन्तं रत्नं क्षयम् इव) अन्न से समृद्ध सुन्दर गृह अन्नादि समृद्धि सम्पन्न रत्न सम्पदा के समान (दधाति) धारण करता है और (भर-हूतये) संग्राम में शत्रु को ललकारने के लिये उस सैन्य को (पितुमन्तं) पालक जनों से युक्त (क्षयं) शत्रु-नाशक सैन्य को (रत्नं इव) रत्नादिवत् (सचा) सदा अपने साथ समवाय बनाकर (दधाति) रखता और उसको पालता है।

स जिह्वया चतुरनीक ऋञ्जते चारु वसानो वरुणो यतन्नरिम्।
न तस्य विद्म पुरुषत्वता वयं यतो भगः सविता दाति वार्यम् ॥५॥२

भा०—(सः वरुणः) वह प्रजा के दुःख-वारण में समर्थ और प्रजा द्वारा वरण किया हुआ राजा (चारु वसानः) सुन्दर वस्त्र धारण करता हुआ, (अरिं यतन्) शत्रु को वश करता हुआ (जिह्वया) अपनी वाणी या आज्ञा से ही (चतुरनीकः सन्) चतुर्मुख एवं चारों प्रकार के सैन्यों से युक्त होकर (ऋञ्जते) कार्य करता है। हम (तस्य) उसके (पुरुषत्वता न विद्म) पुरुषार्थ को नहीं जान सकते (यतः) जिससे वह (भगः) सबसे अधिक ऐश्वर्यवान्, (सविता) सबका प्रेरक और उत्पादक पिता के तुल्य होकर (वार्यम् दाति) ऐश्वर्य-दान वा शत्रु-नाश करता है। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[४९]

प्रतिप्रभ आत्रेय (५ तृणपाणिः) ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ४ भुरिक् त्रिष्टुप्। ३ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ स्वराट् पंक्तिः।

पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

देवं वो अद्य सवितारमेषे भगं च रत्नं विभजन्तमायोः।
आ वां नरा पुरुभुजा ववृत्यां दिवेदिवे चिदश्विना सखीयन् ॥१॥

भा०—(अद्य) आज हे विद्वान् पुरुषो! (वः) आप लोगों के बीच (देवं) तेजस्वी, (सवितारं) सर्वप्रेरक, पितावत् पूज्य (भगं) ऐश्वर्ययुक्त और (आयोः) मनुष्यमात्र को (रत्नं विभजन्तं) उत्तम ऐश्वर्य न्यायानुसार बांटते हुए को (आ ईषे) आदरपूर्वक प्राप्त होऊं और मैं (सखीयन्) मित्र तुल्य आचरण करता हुआ (दिवे दिवे) दिनों-दिन (अश्विना चित्) दिन वा रात्रि या सूर्य चन्द्र के तुल्य (पुरुभुजा) बहुतों के पालन (नरा) नेता स्वरूप (वाम्) आप दोनों राजा रानी, पति पत्नी वा राजा सचिव को (आ ववृत्याम्) उत्तम व्यवहार में नियुक्त करूं।

प्रति प्रयाणमसुरस्य विद्वान्त्सूक्तैर्देवं सवितारं दुवस्य।
उप ब्रुवीत नमसा विजानञ्ज्येष्ठं च रत्नं विभजन्तमायोः ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू (असुरस्य) सबके जीवनदाता मेघ के (प्रयाणं प्रति) आगमन को प्रत्यक्ष रूप से (विद्वान्) जानता हुआ (सूक्तैः) उत्तम वचनों से (सवितारं) जैसे उसके उत्पादक (देवं) तेजस्वी सूर्य की महिमा का वर्णन करता है वैसे ही (असुरस्य) शत्रु को उखाड़ने वाले सैन्य बल के (प्रयाणं प्रति विद्वान्) प्रयाण को प्रत्यक्ष रूप से जान कर तू उसके (सवितारं) प्रेरक (देवं) विजिगीषु राजा वा सेनापति का (सूक्तैः) उत्तम वचनों से (दुवस्य) सत्कार कर। (आयोः ज्येष्ठं रत्नं विभजन्तम् नमसा विजानन् उपब्रवीत) जैसे मनुष्य मात्र को सर्वोत्तम सुख या तेज प्रदान करने वाले सूर्य से अन्न आदि पाकर मनुष्य सूर्य के गुण वर्णन करता है वैसे ही मनुष्य के न्यायानुकूल उत्तमोत्तम रत्न, धनादि का विभाग करते हुए राजा को भी मनुष्य-विशेष जान कर उसके प्रति आवेदनादि करे।

अदत्रया दयते वार्याणि पूषा भगो अदितिर्वस्त उस्रः।
इन्द्रो विष्णुर्वरुणो मित्रो अग्निरहानि भद्रा जनयन्त दस्माः ॥३॥

भा०—(पूषा) सबका पोषक (भगः) ऐश्वर्यवान् (अदितिः) अखण्ड शासनकर्त्ता पुरुष सूर्य के तुल्य तेजस्वी होकर, (अदत्रया वार्याणि) खाने योग्य अन्नों और धनों को (दयते) दान करे और रक्षा करे। वह (उस्रः) किरणों के तुल्य सहायकों को (वस्ते) अपने अधीन सुरक्षित रक्खे। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (विष्णुः) व्यापक सामर्थ्य वाला, (वरुणः) उत्तम वरणीय और (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष, (दस्माः) ये सब दुखों के नाशक होकर (भद्रा अहानि) सुखकारी दिनों को (जनयन्त) उत्पन्न करें।

तन्नो अनर्वा सविता वरूथं तत्सिन्धव इषयन्तो अनु ग्मन्।
उप यद्वोचे अध्वरस्य होता रायः स्याम पतयो वाजरत्नाः ॥४॥

भा०—(सविता) सूर्य (अनर्वा) अहिंसक रूप होकर (नः वरूथं)

हमारे गृह को प्राप्त हो, इसी प्रकार अहिंसक पुरुष हमारे राष्ट्र को प्राप्त हो, (सिन्धवः) नदियें, जल-धाराओं के तुल्य वेग से बहती हुई (तत् अनुग्मन्) उसके पीछे आवें। तेजस्वी सेनापति के पीछे २ (वृषयन्तः) बाणादि साधते हुए (सिन्धवः) वेगवान् सैन्य प्रवाह चलें। (यत्) जैसा कि (अध्वरस्य) अहिंसनीय, राज्य-कार्य का (होता) धारक राजा (उपवोचे) आज्ञा करे वैसे ही हम प्रजा गण (वाज-रत्नाः) अन्नों, रत्नों और (रायः पतयः) धन के पति (स्याम) हों।

प्र ये वसुभ्य ईवदा नमो दुर्ये मित्रे वरुणे सूक्तवाचः।
अवैत्वभ्वं कृणुता वरीयो दिवस्पृथिव्योरवसा मदेम ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—(ये) जो (सूक्तवाचः) उत्तम वाणी वाले लोग (मित्रे वरुणे) स्नेही, श्रेष्ठ पुरुष के अधीन (वसुभ्यः) बसने वाले पुरुषों को (ईवत् नमः अदुः) ज्ञान और रक्षा सहित अन्न, वीर्य और विनय की शिक्षा देते हैं वे विद्वान् पुरुष ही (दिवः पृथिव्योः) सूर्य और पृथिवी के (वरीयः) उत्तम २ (अभ्वं) धन और तेज को (कृणुतः) उत्पन्न करें, वह (अवैतु) हमें प्राप्त हो, (अवसा) रक्षा और ज्ञान से हम (मदेम) सदा आनन्दित हों। इति तृतीयो वर्गः ॥

[५०]

स्वस्त्यात्रेय ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१ स्वराडुष्णिक्। २ निचृदुष्णिक्। ३ भुरिगुष्णिक्। ४, ५ निचृदनुष्टुप्। पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम्।
विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन्! वीर पुरुषो! (विश्वः मर्त्तः) सब मनुष्य (नेतुः देवस्य) नायक, विजिगीषु, दानशील, राजा की (सख्यम्) मित्रता (वुरीत) चाहें। (विश्वः) सभी (राये) धन की (इषुध्यति) इच्छा करें, (पुष्यसे) पुष्ट होने के लिये सभी लोग (द्युम्नं) धन को (वृणीत) प्राप्त करो।

ते ते॑ देव नेत॒र्ये चे॒माँ अ॑नु॒शसे॑।
ते रा॒या ते ह्या॒३ पृचे॒ सचे॑महि सच॒थ्यैः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (देव) विद्वन् ! राजन् ! (नेतः) नायक ! (ते ते) वे तेरे अधीन हों (ये च) जो (इमान्) इन तेजों को धारण करते हुए (अनुशसे) तेरे अनुगामी होकर शासन के लिये नियुक्त हों। (हि) क्योंकि (ते) वे लोग (राया) धन द्वारा वेतनादि से तेरे साथ सम्बद्ध हों और (ते हि) वे (आपृचे) परस्पर बद्ध रहने के लिये भी समवाय बनावें। वैसे ही हम प्रजा वर्ग भी (सचथ्यैः) समवायों के नेताओं से मिलकर (सचेमहि) साथ-साथ रहें।

अतो॑ न॒ आ नॄनति॑थी॒नतः॒ पत्नी॒र्दश॑स्यत।
आ॒रे विश्वं॑ प॒थेष्ठां द्वि॒षो यु॑योतु॒ यूयु॑विः ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (अतः) इस कारण, हे राजन् ! (नः) हमारे (नॄन्) नेता पुरुषों, (अतिथीन्) मान्य अतिथियों और (नः पत्नीः) हमारी स्त्रियों और सेनाओं का, (दशस्यत) उत्तम सत्कार करो और (आरे) समीप (पथेष्ठां) सन्मार्ग में स्थित (विश्वं) सबका आदर करो और (यू युविः) शत्रुओं को दूर करने हारा पुरुष (द्विषः) शत्रुओं को (युयोतु) दूर करे।

यत्र॒ वह्नि॑र॒भिहि॑तो दु॒द्रव॒द् द्रोण्यः॑ प॒शुः।
नृ॒मणा॑ वी॒रप॒स्त्योऽर्णा॒ धीरे॑व॒ सनि॑ता ॥ ४ ॥

भा०—(यत्र) जिस राष्ट्र में, (द्रोण्यः पशुः) शीघ्रगामी जन्तुओं में श्रेष्ठ पशु के तुल्य वेग से आगे बढ़ने वाला, एवं (द्रोण्यः) राष्ट्र में उत्तम (पशुः) व्यवहारों का द्रष्टा और अन्यों को उत्तम मार्ग दिखाने वाला (वह्निः) कार्य भार उठाने में समर्थ नेता, (अभि-हितः) अभिषिक्त होकर (दुद्रवत्) मार्ग पर चलता और राष्ट्र का संचालन करता है वहां वह स्वयं (नृमणाः) मनुष्यों के मन के अनुकूल और (वीर-

पस्त्यः) वीर पुरुषों का, गृह वा प्रजाओं का पालक हो, वह (धीरा इव) बुद्धिमती माता के तुल्य (अर्णा सनिता) धनों और अन्नों का दाता हो।

एष ते देव नेता रथस्पतिः शं रयिः।
शं राये शं स्वस्तयं इषः स्तुतो मनामहे देवस्तुतो मनामहे ॥५॥४॥

भा०—हे (देव) दानशील पुरुष ! राजन् ! (ते) तेरा (एषः) यह (रथस्पतिः) रथों का स्वामी, नेता (शं) शान्तिकारक और तेरा (रयिः) ऐश्वर्य का स्वामी भी (शं) शान्ति सुख देने और (राये) ऐश्वर्य-वृद्धि के लिये हो, (स्वस्तये) वह सब राष्ट्र के सुख और कल्याण के लिये हों। हम लोग (इषः-स्तुतः) सेनाओं, और इच्छाओं द्वारा प्रशंसित और (देव-स्तुतः) विद्वानों में स्तुति-योग्य तेरे से (मनामहे) यही प्रार्थना करते हैं। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[५१]

स्वस्त्यात्रेय ऋषिः ॥ विश्वे देवा देवताः ॥ छन्दः—१ गायत्री। २, ३, ४ निचृद्गायत्री। ५, ८, ९, १० निचृदुष्णिक्। ६ उष्णिक्। ७ विराडुष्णिक्। ११ निचृत्त्रिष्टुप्। १२ त्रिष्टुप्। १३ पंक्तिः। १४, १५ अनुष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने सुतस्यं पीतये विश्वैरूमेभिरा गहि।
देवेभिर्हव्यदातये ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! राजन् ! तू (विश्वेभिः) समस्त (ऊमैः) रक्षा-साधनों, रक्षकों-सहित (सुतस्य पीतये) ओषधि-रस के समान राष्ट्र से प्राप्त ऐश्वर्य, एवं पद के उपयोग और उत्पन्न किये निज पुत्रवत् प्रजावर्ग के पालन के लिये और (हव्य-दातये) देने योग्य अन्न, धन आदि देने के लिये (देवेभिः) उत्तम विद्वान् पुरुषों सहित (आ गहि) प्राप्त हो।

ऋतधीतय आ गत सत्यधर्माणो अध्वरम् ।

अग्नेः पिबत जिह्वया ॥ २ ॥

भा०—हे (सत्यधर्माणः) सत्य को धर्म जानकर धारण और पालन करने वाले जनो ! आप लोग (ऋत-धीतये) ऐश्वर्य, सत्य और न्याय के पालन के लिये (अध्वरम्) हिंसा से रहित, प्रजा-पालन-कार्य में (आ गत) आओ और योग दो, और (अग्नेः जिह्वया) अग्रणी, नायक की वाणी से (पिबत) राष्ट्र का पालन करो ।

विप्रेभिर्विप्र सन्त्य प्रातर्यावभिरा गहि ।

देवेभिः सोमपीतये ॥ ३ ॥

भा०—हे (विप्र) विद्याओं और ऐश्वर्यों से पूर्ण और अन्यों को पूर्ण करने हारे ! हे (सन्त्य) दान और व्यवहार में कुशल ! तू (सोम-पीतये) ऐश्वर्य के पालन और उपभोग के लिये (प्रातः-यावभिः विप्रेभिः) सबसे पूर्व उद्देश्य पर पहुँचने वाले, धनादि-पूरक, मतिमान् पुरुषों सहित (आ गहि) हमें प्राप्त हो ।

अयं सोमश्चमू सुतोऽमत्रे परि षिच्यते ।

प्रिय इन्द्राय वायवे ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्राय) ऐश्वर्य-वृद्धि और (वायवे) वायु-तुल्य शत्रु को उखाड़ने में समर्थ पद के लिये (प्रियः) उत्सुक, (अयं सोमः) यह अभिषेक-योग्य पुरुष (चमू-सुतः) सेनाओं पर अभिषिक्त और उनका पुत्रवत् पालक है । उसका (अमत्रे) दुःख से त्राता रक्षक पद पर (परि षिच्यते) अभिषेक करना उचित है ।

वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये ।

पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानवन् ! बलवन् ! तू (वीतये) प्रजा की रक्षा और तृप्ति के लिये और (हव्य-दातये) दान-योग्य उत्तम पदार्थ देने

के लिये भी (आ याहि) आ, (प्रयः) जल और दुग्धादि पुष्टिकारक पदार्थ और (सुतस्य अन्धसः अभि पिब) उत्तम रीति से बनाये अन्न का उपभोग कर । इति पञ्चमो वर्गः ॥

इन्द्रश्च वायवेषां सुतानां पीतिमर्हथः ।
ताञ्जुषेथामरेपसावभि प्रयः ॥ ६ ॥

भा०—हे (वायो) विद्वन् ! और (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष ! आप दोनों (सुतानां) उत्तम रीति से बने पदार्थों और अभिषिक्त पदाधिकारियों का (पीतिम्) उपभोग और पालन (अर्हथः) करने योग्य हैं । आप दोनों (अरेपसौ) निष्पाप होकर (प्रयः अभि) उत्तम अन्न प्राप्त कर (तान् जुषेथां) उन ऐश्वर्य युक्त पदार्थों का सेवन करो ।

सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः ।
निम्नं न यन्ति सिन्धवोऽभि प्रयः ॥ ७ ॥

भा०—(सुताः) पुत्रवत् पालित और अभिषेक द्वारा संस्कृत, (दध्याशिरः) पद-धारण करने के विशेष सामर्थ्य, पराक्रम से युक्त, (सोमासः) सौम्य शासक जन (इन्द्राय वायवे) ऐश्वर्यवान्, बलवान् नायक के (प्रयः अभि) प्रिय कार्य को लक्ष्य करके (निम्नं सिन्धवः न) बहते जल जैसे नीचे को जाते हैं वैसे ही वेग से (यन्ति) जावें ।

सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः ।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥ ८ ॥

सजूर्मित्रावरुणाभ्यां सजूः सोमेन विष्णुना ।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥ ९ ॥

सजूरादित्यैर्वसुभिः सजूरिन्द्रेण वायुना ।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्युत्वत् तीव्र सामर्थ्य वाले शब्द और प्रकाश के समान ज्ञान-तेज के प्रकाशक विद्वन् ! राजन् ! तू (विश्वेभिः देवेभिः)

समस्त विद्वान् पुरुषों से (सजूः) समानभाव से प्रीतियुक्त होकर और (अश्विभ्याम्) अश्वों वा अपने इन्द्रियों के स्वामी, जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषों से (सजूः) समान प्रीतियुक्त होकर, (आ याहि) आ और (अत्रि-वत्) त्रिविध तापों से रहित पुरुष के समान होकर (सुते) पुत्रतुल्य प्रजा वा शिष्यगण के निमित्त (रण) ज्ञान का उपदेश कर ॥ ८ ॥ (मित्रावरुणाभ्यां सजूः) स्नेहवान् मित्र और उत्तम पुरुषों के साथ (सोमेन) ऐश्वर्य-युक्त (विष्णुना) सामर्थ्यवान् नायक से मिलकर, हे विद्वन् ! तू (आयाहि) हमें प्राप्त हो (अत्रिवत् सुते रण) यहां विद्यमान प्रत्यक्ष गुरु के तुल्य हमें उपदेश कर ॥ ९ ॥ (आदित्यैः वसुभिः सजूः) सूर्यवत् तेजस्वी ४८ और २५ वर्ष तक गुरु के अधीन रहकर ब्रह्मचर्य-पालन करने वाले विद्वानों के साथ और (इन्द्रेण वायुना) ऐश्वर्यवान्, पुरुषों के साथ प्रीति-युक्त होकर (आयाहि) हमें प्राप्त हो (अत्रिवत् सुते रण) उत्तम ऐश्वर्य भोक्ता के तुल्य प्रभुवत् हमको ऐश्वर्य के लिये उपदेश कर ॥ १० ॥

स्वस्ति नो मिमीताम॒श्विना॒ भगः॑ स्व॒स्ति दे॒व्यदि॑तिरन॒र्वणः॑ ।
स्व॒स्ति पू॒षा असु॑रो दधातु नः स्व॒स्ति द्यावा॑पृथि॒वी सु॑चे॒तुना॑ ॥ ११ ॥

भा०—(अश्विना) अध्यापक और उपदेशक, दिन और रात, सूर्य और चन्द्र, प्राण और अपान वे दो दो, (नः स्वस्ति मिमीताम्) हमें सुख दें। (भगः स्वस्ति) ऐश्वर्य का स्वामी और सेवन-योग्य वायु हमें सुख दे। (देवी अदितिः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष और अखण्ड शासक राजा (अनर्वणः) अप्रतिम होकर (स्वस्ति) हमारा कल्याण करें। (पूषा असुरः) पुष्टिकारक प्राण, जीवनदाता अन्न और मेघ (नः स्वस्ति दधातु) हमारा कल्याण करें। (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी, पिता और माता दोनों (सुचेतुना) उत्तम चेतना और ज्ञान से हमारा (स्व-स्ति) कल्याण करें ।

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥१२

भा०—हम लोग (स्वस्तये) कल्याण-वृद्धि के लिये (वायुम्) वायु के समान बलवान्, ज्ञान के इच्छुक, (सोमं) अभिषेक-योग्य राजा, शिष्य और ज्ञानवान् पुरुष के (उप ब्रवामहै) समीप जाकर प्रार्थना और स्तुति करें। (यः भुवनस्य पतिः) जो विश्व का पालक है वह हमारा (स्वस्ति) कल्याण करे। (सर्वगणं बृहस्पतिं) सब गणों के स्वामी बृहस्पति बड़े भारी राष्ट्र और वेदवाणी के पालक विद्वान् की (स्वस्तये) हम कल्याण के लिये स्तुति करें। (आदित्यासः) आदित्य के समान तेजस्वी, ४८ वर्ष के ब्रह्मचारी तथा १२ मास (नः) हमारे (स्वस्तये भवन्तु) कल्याण के लिये हों।

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥ १३ ॥

भा०—(विश्वेदेवाः) समस्त तेजस्वी पदार्थ, सूर्य-किरण, विद्वान् और हमारे इन्द्रिय-गण (अद्य) वर्त्तमान में (नः स्वस्तये भवन्तु) हमारे कल्याण के लिये हों। (वैश्वानरः) सब मनुष्यों का हितकारी, नेता, (वसुः) सबमें बसने वा सबको बसाने वाला (अग्निः) अग्नि, ज्ञानी, तेजस्वी पुरुष और परमात्मा (नः स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये हो। (ऋभवः) तेज से प्रकाशमान, एवं शिल्पी जन (देवाः) व्यवहार-कुशल, (नः स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये हों। (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाला, ज्ञान का उपदेशक (स्वस्ति) सुखपूर्वक (नः अंहसः पातु) हमें पाप से बचावे।

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥ १४ ॥

भा०—हे (पथ्ये, रेवति) जीवन-मार्ग में सुखकारिणि! हे धने-

स्वयंवति ! तू (मित्रावरुणौ) प्राण-अपान-तुल्य (स्वस्ति) कल्याण (कृधि) कर। (इन्द्रः च अग्निः च) विद्युत् और अग्निवत् ऐश्वर्यवान्, ज्ञानवान् पुरुष दोनों (स्वस्ति) कल्याण करें। हे (अदिते) अखण्डित चरित्रयुक्त तू (नः स्वस्ति कृधि) हमारा कल्याण कर।

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥ १५ ॥ ७ ॥

भा०—हम लोग (पन्थाम्) सुमार्ग पर (स्वस्ति) सुखपूर्वक (अनु-चरेम) एक दूसरे के पीछे चलें और (सूर्या-चन्द्रमसौ-इव) सूर्य, चन्द्र के समान उत्तम आचरण का अनुष्ठान करें। (पुनः) वार २ हम लोग (ददता) ज्ञान और ऐश्वर्य के दाता और (अघ्नता) व्यर्थ ताड़न और कठोर दण्ड न देने वाले (जानता) ज्ञानवान् से (संगमेमहि) सत्संग करें। इति सप्तमो वर्गः ॥

[५२]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः॥ मरुतो देवताः॥ छन्दः—१, ४, ५, १५ विराडनुष्टुप्। २, ७, १० निचृदनुष्टुप्। ६ पंक्तिः। ३, ९, ११ विराडुष्णिक्। ८, १२, १३ अनुष्टुप्। १४, १७ बृहती। १६ निचृद्-बृहती॥ सप्तदशर्चं सूक्तम्॥

प्र श्यावाश्व धृष्णुयार्चा मरुद्भिर्ऋक्वभिः।
ये अद्रोघमनुष्वधं श्रवो मदन्ति यज्ञियाः ॥ १ ॥

भा०—हे (श्यावाश्व) श्यामकर्ण, शिक्षा-सज्जित अश्वों के स्वा-मिन्! (ये) जो (अद्रोघम्) द्रोह-रहित, (अनु-स्वधम्) अपनी २ धारणा-शक्ति या वेतनादि के अनुसार रहकर (यज्ञियाः) मिलकर रहने और कर, वेतनादि के दान के योग्य होकर (श्रवः) अन्न, और ख्याति लाभ कर (मदन्ति) प्रसन्न होते हैं उन (ऋक्वभिः मरुद्भिः) सत्कार-कर्ता और सत्कार-योग्य, वायुवत् बलवान् और व्यवहार-कुशल पुरुषों से (धृष्णुया) दृढ़ता पूर्वक (प्र अर्च) खूब तेजस्वी बन।

ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति धृष्णुया ।

ते यामन्ना धृषद्विनस्त्मना पान्ति शश्वतः ॥ २ ॥

भा०—(ते हि) और वे (धृष्णुया) शत्रु-घर्षणकारी पुरुष (स्थिर-स्य) स्थायी (शवसः) बल के (सखायः) मित्र होकर (सन्ति) रहते हैं । (ते) वे (यामन्) प्रयाण काल में ही (धृषद्विनः) शत्रु-घर्षणकारी बल से युक्त होकर (शश्वतः) बहुत से प्रजा गण की (त्मना) बल से (आ पान्ति) रक्षा करते हैं ।

ते स्पन्द्रासो नोक्षणोऽति ष्कन्दन्ति शर्वरीः ।

मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे ॥ ३ ॥

भा०—(ते) वे वीर पुरुष (स्पन्द्रासः) शनैः २ आगे बढ़ने हारे (उक्षणः) सेचन-समर्थ, मेघों और सूर्य-किरणों के तुल्य (शर्वरीः) रात्रिवत् अपने पक्ष का नाश करने वाली शत्रु सेनाओं को (अति स्कन्दन्ति) अति क्रमण कर जाते हैं । (अध) और हम (मरुताम्) वीर पुरुषों की (दिवि) विजयेच्छा में (महः क्षमा च) सामर्थ्य और सहनशीलता को (मन्महे) स्वीकार करें ।

मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।

विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (ये) जो (विश्वे) समस्त जन (रिषः) हिंसा से (मानुषा युगा पान्ति) मनुष्यों के जोड़ों अर्थात् स्त्री-पुरुषों की रक्षा करते हैं । (वः) उन आप के बीच (मरुत्सु) वायुवत् तीव्रगामी, शत्रु-नाशक वीर, विद्वान् पुरुषों के आश्रय पर ही (वः) आप लोगों के (धृष्णुया) शत्रु को पराजय करने वाला और दृढ़ (स्तोमं) बल, ज्ञान, (यज्ञं च) परस्पर संगति और मित्रता (दधीमहि) धारण करें ।

अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामिशवसः ।

प्र यज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्यः ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—(ये) जो (नरः) नायक पुरुष (अर्हन्तः) योग्य पदों के योग्य, (सु-दानवः) उत्तम दानशील और शत्रु के विदारक (असामि-शवसः) पूर्ण बलशाली हैं, उन (यज्ञियेभ्यः) यज्ञ, दान, सत्संग के योग्य (मरुद्भ्यः) विद्वानों और वीरों के ज्ञान-प्रकाश तथा व्यवहार के (यज्ञं) देन-लेन और सत्संग को (प्र अर्च) अच्छी प्रकार करो। इति इत्यष्टमो वर्गः ॥

आ रुक्मैरा युधा नर॑ ऋष्वा ऋष्टीर॑सृक्षत ।

अन्वे॑नाँ अह॑ विद्युतो॑ मरुतो॒ जज्झ॑तीरिव भानुरर्त त्मना॑ दिवः ॥ ६ ॥

भा०—(एनान् मरुतः अनु जज्झतीरिव विद्युतः) जैसे तीव्र वायु के पीछे २ शब्द करने वाली और गर्जना वाली जल-धाराएं और बिजुलियां उत्पन्न होती हैं वैसे ही (एनान् मरुतः) इन वेगवान् सैनिकों के पीछे २ (विद्युतः) विशेष दीप्तियुक्त और (जज्झतीः) गर्जना वाली तोपें और शक्तिमान् विद्युदस्त्र चलें। (ऋष्वाः नरः) बड़े २ नायक गण (रुक्मैः) कान्तियुक्त अस्त्रों और (युधा) शत्रुनाशक बल से युक्त, (ऋष्टीः) अपनी २ सेनाओं को (आ-असृक्षत) आगे २ ले चलें। इस प्रकार विजिगीषु राजा (भानुः) सूर्यवत् तेजस्वी होकर (दिवः) किरण-तुल्य कामना-योग्य विजयों को (त्मना अर्त) स्वं सामर्थ्य से प्राप्त करे।

ये वा॑वृधन्त॒ पार्थि॑वा॒ य उ॒राव॒न्तरि॑क्ष॒ आ ।

वृ॒जने॑ वा न॒दीनां॑ स॒धस्थे॑ वा म॒हो दि॒वः ॥ ७ ॥

भा०—(ये) जो (पार्थिवाः) पृथिवी-हितकारी वायु-तुल्य बलवान् राजा पृथिवी पर हैं (ये उरौ अन्तरिक्षे) और जो विशाल अन्तरिक्षवत् राष्ट्र के भीतर (आ वावृधन्त) सब प्रकार से वृद्धि प्राप्त करते हैं वे ही (नदीनां वृजने) प्रजाओं के कार्य व्यवहार में और (महः दिवः सधस्थे) बड़े तेजस्वी सर्वोच्च पद पर भी (वावृधन्त) वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

शर्धो मारुतमुच्छंस सत्यशवसमृभ्वसम् ।
उत स्म ते शुभे नरः प्र स्पन्द्रा युजत त्मना ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू (सत्य-शवसम्) सत्य, ज्ञान और बल से युक्त (ऋभ्वसम्) सत्य या तेज से प्रकाशित और सामर्थ्यवान् पुरुषों को प्राप्त (मारुतं शर्धः) वायु के तुल्य वीर पुरुषों के बल को (उत् शंस) उत्तम रीति से बतला, उसके गुणों का वर्णन कर । (ते) वे (नरः) नायक पुरुष (शुभे) राष्ट्र-शोभा के लिये (स्पन्द्राः) शनैः २ आगे बढ़ने हारे होकर (त्मना) स्व सामर्थ्य से (प्र युजत स्म) उत्तम २ कार्य करते हैं ।

उत स्म ते परुष्ण्यामूर्णा वसत शुन्ध्यवः ।
उत पव्या रथानामद्रिं भिन्दन्त्योजसा ॥ ९ ॥

भा०—(उत स्म) और (ते) वे वीर पुरुष (परुष्ण्याम्) पालक साधनों से युक्त, गहन राष्ट्र-रक्षा में (ऊर्णाः) अच्छी प्रकार कवचों से आच्छादित या युद्ध की विषम गति में भी (शुन्ध्यवः) शुद्ध आचारवान् होकर (वसत) रहें । (उत) और (रथानां पव्या) रथों की चक्र-धारा के तुल्य महारथियों की वज्र-शक्ति से वे (ओजसा) पराक्रम द्वारा (अद्रिं भिन्दन्ति) मेघ को सूर्य के तुल्य अचल शत्रु को भी भेद दें ।

आपथयो विपथयोऽन्तस्पथा अनुपथाः ।
एतेभिर्मह्यं नामभिर्यज्ञं विष्टार ओहते ॥ १० ॥ ९ ॥

भा०—(विस्तारः) विस्तृत देश तथा उसमें रहने वाले प्रजावर्ग (मह्यं) (एतेभिः नामभिः) इन २ नामों या रूपों से (यज्ञम् ओहते) सुप्रबन्ध को धारण करें । वे (आपथयः) सब ओर जाने वाले मार्गों से युक्त, (वि-पथयः) विशेष मार्ग वाले (अन्तः-पथाः) भीतर, भूगर्भ के बीच २ में से जाने योग्य मार्ग वाले और (अनु-पथाः) बड़े २ मार्गों में आ मिलने वाले गौण मार्गों के भी स्वामी हों । इति नवमो वर्गः ॥

अधा नरो न्योहतेऽधा नियुत ओहते ।
अधा पारावता इति चित्रा रूपाणि दर्श्या ॥ ११ ॥

भा०—(अध) और (नियुतः नरः) नाना पदों पर नियुक्त वा लक्षों की संख्या में नायक गण (नि ओहते) नियत पद को धारण करते हैं । वे (अध) भी (पारावताः) दूर २ देशों तक जाकर (चित्रा) अद्भुत, (दर्श्या) दर्शनीय, (रूपाणि) रूपों वा पदार्थों को (ओहते) धारण करते हैं ।

छन्दस्तुभः कुभन्यव उत्समा कीरिणो नृतुः ।
ते मे के चिन्न तायव ऊमा आसन्दृशि त्विषे ॥ १२ ॥

भा०—(ये) जो मेरे राष्ट्र में जैसे (कुभन्यवः) जल के इच्छुक जन (उत्सम् आ नृतुः) कूप को प्राप्त करते हैं वैसे ही (छन्दस्तुभः) वेद मन्त्रों के उपदेष्टा (कीरिणः) स्तुतिकर्त्ता जन भी (उत्सम् आ) उत्तम पद के भोक्ता राजा व प्रभु को प्राप्त करें । (ते) वे (चित्) कोई भी हों तो भी वे (तायवः न) चोरों के समान न होकर (दृशि त्विषे च) यथार्थ दर्शन करने और तेज की वृद्धि के लिये (ऊमाः) उत्तम रक्षक हों ।

ये ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः ।
तमृषे मारुतं गणं नमस्या रमया गिरा ॥ १३ ॥

भा०—(ये) जो (ऋष्वाः) उदार-हृदय, (ऋष्टि-विद्युतः) शस्त्रों से विशेष रूप से चमकने वाले, विशेष ज्ञानी, (कवयः) क्रान्तदर्शी, (वेधसः) नाना पदार्थों को शिल्प द्वारा बनाने में कुशल हैं, हे (ऋषे) वेदार्थ को जानने के उत्सुक शिष्य ! एवं साक्षात् ज्ञाता पुरुष ! (तं मारुतं गणं) उन वायुस्वरूप, बलशाली, ज्ञानी जनों को (गिरा) उत्तम न्याययुक्त वचन से (नमस्य) आदर कर और (रमय) आनन्दित कर ।

अच्छ॑ ऋषे॒ मारु॑तं ग॒णं दा॒ना मि॒त्रं न यो॒षणा॑।
दि॒वो वा॑ धृष्णव॒ ओज॑सा स्तु॒ता धी॒भिरि॑षण्यत ॥ १४ ॥

भा०—(योषणा मित्रं न) जैसे स्त्री स्नेह करने वाले पति के अभिमुख होती है वैसे ही हे (ऋषे) विद्वन्! तू (दाना) सत्कारपूर्वक अन्न वस्त्र आदि नाना दान-योग्य पदार्थों सहित (मारुतं गणं) उत्तम विद्वान् वा वीर जनों के समूह को भी (अच्छ) आदर से प्राप्त कर। हे (धृष्णवः) बल, बुद्धि से प्रतिस्पर्धी का धर्षण करने हारे (वा) और (दिवः) विजय के उत्सुक एवं धनादि की कामना-वाले पुरुषो! आप लोग (धीभिः) उत्तम स्तुतियों, ज्ञानों और कर्मों द्वारा (स्तुताः) प्रशंसित, उपदिष्ट वा शिक्षित होकर (ओजसा) पराक्रम द्वारा (दाना इषण्यत) दान दिये गये धनों को प्राप्त करो।

नू म॑न्वा॒न ए॑षां दे॒वाँ अच्छा॒ न व॒क्षणा॑।
दा॒ना स॑चेत सू॒रिभि॒र्याम॑श्रुतेभिर॒ञ्जिभिः॑ ॥ १५ ॥

भा०—(वक्षणा न) नदी जैसे (दाना सचते) जलों को प्राप्त करती हैं और (वक्षणा न दाना) विवाह-योग्य वधू नाना धनों वा (देवान्) वरों को प्राप्त करती हैं वैसे ही (एषां) राष्ट्र में बसे प्रजाजनों के बीच (मन्वानः) मननशील पुरुष ही (देवान्) श्रेष्ठ, व्यवहारप्रिय पुरुषों को (अच्छा) अभिमुख होकर प्राप्त करें। (याम-श्रुतेभिः) प्रति प्रहर श्रवण करने वाले (अञ्जिभिः) गुणों के प्रकाशक तेजस्वी (सूरिभिः) विद्वानों सहित (दाना सचेत) दान-योग्य ऐश्वर्यों को प्राप्त और प्रदान भी करे।

प्र ये मे॑ बन्ध्वे॒षे गां वोच॑न्त सू॒रयः॒ पृश्निं॑ वोचन्त मा॒तर॑म्।
अधा॑ पि॒तर॑मि॒ष्मिणं॑ रु॒द्रं वो॑चन्त॒ शिक्व॑सः ॥ १६ ॥

भा०—(ये सूरयः) जो विद्वान् पुरुष (मे) मुझे (बन्ध्वेषे) बन्धुवत् चाहते हुए (गां वोचन्त) वाणी का उपदेश करते हैं वे (पृश्निम्) पालक विद्वान् आचार्य और भूमि को (मातरम् वोचन्त) माता बत-

लाते हैं (अध) और वे (शिक्वसः) शक्तिशाली पुरुष (इषिमणम्) बलवान् और ज्ञानवान् (रुद्रम्) शत्रुओं को रुलाने वाले राजा और ज्ञानोपदेश करने वाले गुरु को (पितरं वोचन्त) 'पिता' नाम से कहते हैं।

सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः।
यमुनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्व्यं मृजे १७।१०

भा०—(मे) मेरे (सप्त सप्त) सात-सात (शाकिनः) शक्तिशाली नायक गण (एकम्-एका) एक-एक से मिलकर (शता) सैकड़ों ऐश्वर्य (मे ददुः) मुझे प्रदान करें। (यमुनायाम् अधि) नियन्त्रण करने वाली सेना वा राष्ट्र-नीति पर अधिकार करके मैं (श्रुतम्) प्रसिद्ध (गव्यं राधः) श्रवण-योग्य, वाङ्मय ज्ञान-सम्पदा के तुल्य भूमि से उत्पन्न ऐश्वर्य को (उत् मृजे) उत्तम रीति से प्राप्त करूं और (अश्व्यं राधः नि मृजे) अश्व अर्थात् राष्ट्रसम्बन्धी सैन्य बल को निष्कण्टक करूं। इति दशमो वर्गः॥

[५२]

श्यावाश्व आत्रेयः ऋषिः॥ मरुतो देवताः॥ छन्दः—१ भुरिग्गायत्री। ८, १२ गायत्री। २ निचृद्बृहती। ९ स्वराड्बृहती। १४ बृहती। ३ अनुष्टुप्। ४, ५ उष्णिक्। १०, १५ विराडुष्णिक्। ११ निचृदुष्णिक्। ६, १६ पंक्तिः। ७, १३ निचृत्पंक्तिः। षोडशर्चं सूक्तम्॥

को वेद जानमेषां को वा पुरा सुम्नेष्वास मरुताम्।
यद्युयुज्रे किलास्यः॥ १॥

भा०—(कः) कौन (एषां मरुताम्) इन वायुओं, प्राणों और मनुष्यों के (जानम्) उत्पत्ति के रहस्य को (वेद) जानता है (वा) और (कः) कौन इनके (सुम्नेषु) समस्त सुखों के बीच भोक्ता रूप से (आस) स्थिर रूप से विद्यमान रहता है? [उत्तर] (पुरा यत्) जो इन सबसे पूर्व, इन सबके बीच (किलास्यः) निश्चित रूप से स्थिर वाणी वाला

होकर इन को (युयुज्रे) कार्य में नियुक्त करता, वही इनके (जानं वेद) उत्पत्ति के रहस्य को जानता है।

ऐतान्रथेषु तस्थुषः कः शुश्राव कथा ययुः।

कस्मै सस्रुः सुदासे अन्वापय इळाभिर्वृष्टयः सह ॥ २ ॥

भा०—(रथेषु तस्थुषः) रथों पर विराजमान (एतान्) इन वीर समर्थ पुरुषों को (कः शुश्राव) कौन अपनी आज्ञा सुनाता है? और वे (कथा) कैसे (ययुः) प्रयाण करें? (कस्मै अनु सस्रुः) वे किसके अभ्युदय के लिये आगे बढ़ें? [उत्तर] (आपयः) बन्धु-तुल्य प्राप्त होकर (सुदासे) उत्तम भृत्यों के स्वामी के अधीन रहकर (इडाभिः सह) अन्नों सहित (वृष्टयः इव) जल वृष्टियों के तुल्य रथों पर युद्ध में स्वामी के लिये शर-वर्षण, शत्रूच्छेदन करते हुए आगे बढ़ें।

ते म आहुर्य आययुरुप द्युभिर्विभिर्मदे।

नरो मर्या अरेपस इमान्पश्यन्निति ष्टुहि ॥ ३ ॥

भा०—(ये) जो (नरः) उत्तम नायक, (मर्याः) मरणधर्मा, (अरेपसः) निष्पाप, निष्काम होकर (द्युभिः) तेजों और (विभिः) कान्तिमय रथों वा अश्वों से (उप आययुः) हमारे समीप आवें (ते) वे (मे) मुझे (आहुः) उपदेश करें। (इमान् पश्यन्) उन पुरुषों को देखकर, हे मनुष्य! तू (इति) ऐसे ही (स्तुहि) स्तुति-वचन और प्रार्थना किया कर।

ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु।

श्राया रथेषु धन्वसु ॥ ४ ॥

भा०—(ये) जो पुरुष (अञ्जिषु) अपने द्योतक विशेष चिह्नों, पोशाकों वा उत्तम गुणों में (स्वः भानवः) अपनी कान्ति से युक्त हैं (ये वाशीषु स्व-भानवः) जो अपनी वाणियों और शस्त्र-प्रयोगों में अपने बल और कौशल से चमकने वाले हैं और जो (स्रक्षु) मालाओं (रुक्मेषु)

स्वर्ण-आभूषणों में, और (खादिषु) उत्तम भोजनों के प्राप्त होने पर वा शास्त्रों में भी (स्व-भानवः) अपने तेज से तेजस्वी हैं, और जो (रथेषु) रथों, महारथियों और (धन्वसु) धनुर्धारियों में भी (आयाः) सिंह-नाद सुनाने वाले वा गुणों द्वारा प्रसिद्ध सबके आधारभूत हैं (ते मे आहुः) वे मुझे उत्तम उपदेश करें।

युष्माकं स्मा रथाँ अनु मुदे दधे मरुतो जीरदानवः।
वृष्टी द्यावो यतीरिव ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—(यतीः द्यावः अनु वृष्टीः इव) जैसे चलती हुई बिजुलियां या सूर्य-प्रकाशों के पश्चात् जल-वृष्टियों को जीवगण अपने हर्ष-प्रमोद के लिये प्राप्त करते हैं वैसे ही हे (मरुतः) वायुवत् वीर पुरुषो! हे (जीर-दानवः) प्राणियों को जीवन प्रदान करने वाले रक्षक पुरुषो! मैं (युष्माकं रथान् अनु) आप लोगों के रथों को अपने अनुकूल (मुदे) सबके सुख के लिये (अनु दधे) धारण करूं।

आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः।
वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः ॥ ६ ॥

भा०—जैसे (सु-दानवः) उत्तम रीति से जल देने में कुशल वायु गण (दिवः कोशम् अचुच्यवुः) अन्तरिक्ष से जल-गर्भित मेघ को बरसाते हैं, (पर्जन्यं वि सृजन्ति) मेघ को रचते या विविध मार्गों से ले जाते हैं और (धन्वना वृष्टयः अनु यन्ति) तब जल-सहित, अन्तरिक्ष मार्ग से जल-वृष्टियां आती हैं वैसे ही (यं) जिस (कोशम्) सुवर्णादि-कोश को (सु-दानवः) उत्तम दानशील (नरः) पुरुष (दिवः) अपने व्यापार, युद्धादि विजय से (अचुच्यवुः) सब ओर से प्राप्त करते हैं और (पर्जन्यं) मेघवत् धनार्जन करने वाले पुरुष को (वि सृजन्ति) विविध प्रकार से देते, (यं अनु) जिसके पश्चात् वर्षातुल्य शूरवीर होकर (धन्वना यन्ति) धनुष, शस्त्रास्त्र लेकर चलते हैं, वह पुरुष उनका नायक होने योग्य है।

तृतृदानाः सिन्धवः क्षोदसा रजः प्र संस्रुर्धेनवो यथा ।
स्युन्ना अश्वा इवाध्वनो विमोचने वि यद्वर्तन्त एन्यः ॥ ७ ॥

भा०—(यथा क्षोदसा रजः ततृदानाः सिन्धवः रजः प्रसस्रुः) जैसे जल के करारों की मट्टी तोड़ते हुए जल-प्रवाह वहते हैं और (यथा धेनवः क्षोदसा रजः ततृतानाः प्रसस्रुः) जैसे गौएं भूमि प्रदेश में धूलि उड़ाती हुई आगे बढ़ती हैं और जैसे (विमोचने) स्वच्छन्द छोड़ देने पर (अश्वा इव) घोड़े मार्गों में (स्यन्नाः) वेगवान् होकर धूल उड़ाते हुए आगे बढ़ते हैं और जैसे (एन्यः) नदियां धूल या मट्टी काटती हुई (वि वर्त्तन्ते) विविध मार्गों से जाती हैं वैसे ही वायुगण (क्षोदसा रजः ततृदानाः प्र सस्रुः) जल-सहित अन्तरिक्ष चीरते हुए वेग से चलते और (विवर्त्तन्ते) विविध रूप से बहते हैं, वैसे ही व्यापारी और वीर जन भी (क्षोदसा) जल-मार्ग से (रजः ततृदानाः) भूलोक को पार करते हुए (प्र सस्रुः) दूर देशों में जाते और (विवर्त्तन्ते) विविध व्यापारादि करें और वीर पुरुष (क्षोदसा रजः ततृदानाः) वेग से शत्रु-जन को काटते हुए आगे बढ़ें और (वि-मोचने) भाग छूटने पर (विवर्त्तन्ते) विविध मार्गों पर गमन करें ।

आ यात मरुतो दिव आन्तरिक्षादमादुत ।
माव स्थात परावतः ॥ ८ ॥

भा०—हे (मरुतः) प्रजाजनो ! हे व्यापारी जनो ! हे वीर पुरुषो ! आप लोग वायुवत् (दिवः) भूमि और (आन्तरिक्षात्) आकाश से (उत) और (अमात्) गृह और (परावतः) दूर २ के देशों से भी (आ यात) आया जाया करो । (मा अवस्थात) किसी स्थान पर रुककर मत पड़े रहो ।

मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्मा वः सिन्धुर्नि रीरमत् ।
मा वः परि ष्ठात्सरयुः पुरीषिण्यस्मे इत्सुम्नमस्तु वः ॥ ९ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! व्यापारियो ! वीर पुरुषो ! (अनितभा) जिस भूमि या नदी आदि जलमयी खाई में सूर्य की कान्ति न जाती हो, (कुभा) वा कान्ति न्यून, कष्टदायी रूप से पड़े ऐसी (रसा) भूमि वा नदी (वः) आप को (मा नीरीरमत्) कभी निरन्तर विहार के योग्य न हो। इसी प्रकार (क्रुमुः सिन्धुः) ऊंची तरङ्गें फेंकने वाला महानद वा सागर भी (मा निरीरमत) निरन्तर निवास के लिये न हो। (पुरीषिणी सरयुः) जल वाली नदी या नहर (मा वः परिस्थात्) आप के आगे बाधक रूप से न आये। (अस्मे इत् वः) हम और आप सब को सदा (सुम्नम् अस्तु) सुख प्राप्त हो।

तं वः शर्धं रथानां त्वेषं गणं मारुतं नव्यंसीनाम्।
अनु प्र यन्ति वृष्टयः ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! (वः) आप में से (मारुतं गणं) मनुष्यों के समूह और वायुवत् शत्रुओं का मूलोच्छेद करने वाले पुरुषों, और उनके (नव्यसीनां रथानां) नये से नये रथों का (गणं) गण और (वः शर्धं) आप लोगों के बल को धारण करने वाले सैन्य बल के (अनु) पीछे (वृष्टयः अनु प्रयन्ति) वायु गण के साथ २ आने वाली वृष्टियों के समान अच्छी प्रकार आया-जाया करे।

शर्धंशर्धं व एषां व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिः।
अनु क्रामेम धीतिभिः ॥ ११ ॥

भा०—(वः एषां) इन आप लोगों के (शर्धं शर्धं) बल २ को (व्रातं व्रातं) समूह २ को और (गणं गणं) गण २ को हम लोग (सुशस्तिभिः) उत्तम नाम, प्रशंसा-वचनों और (धीतिभिः) उत्तमोत्तम कर्मों से (अनु क्रमेम) अनुक्रमण करें, अर्थात् आपके कार्यों और संघों का हम अनुकरण करें।

कस्मा अद्य सुजाताय रातहव्याय प्र ययुः।
एना यामेन मरुतः ॥ १२ ॥

भा०—(मरुतः) उत्तम मनुष्य (अद्य) आज (सुजाताय) उत्तम विद्या आदि से सम्पन्न (रातहव्याय) दातव्य गुरु-दक्षिणा देने वाले, दानशील (कस्मै) किस उत्तम पुरुष के दर्शन के लिये (एना यामेन) इस मार्ग से, (प्र ययुः) जाते हैं ? [उत्तर] उस (कस्मै) सुखरूप (सुजाताय) सर्वपूज्य सब ज्ञानादि के दाता परमेश्वर की उपासना के लिये (मरुतः) विद्वान् गण और अध्यात्म में प्राण गण (एना यामेन) इस पूर्वोपदिष्ट याम अर्थात् नियत विधि से (प्र ययुः) आगे उन्नति मार्ग पर बढ़ें।

येन॑ तो॒काय॒ तन॑याय धा॒न्यं१॒॑ बीजं॒ वह॑ध्वे॒ अक्षि॑तम् ।
अ॒स्मभ्यं॒ तद्ध॑त्तन॒ यद्व॒ ईम॑हे॒ राधो॑ वि॒श्वायु॒ सौभ॑गम् ॥१३॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! (येन) जैसे आप लोग (तोकाय) उत्तम पुत्र और (तनयाय) अगली संतति, पौत्र आदि की प्राप्ति और पोषण के लिये (धान्यं) आधान योग्य, अन्नवत् (अक्षितम्) अक्षय, (बीजं) बीज को (वहध्वे) धारण करते हो (तत्) उसको (अस्मभ्यम्) हम प्रजाजनों के कल्याण के लिये (धत्तन) धारण करो। जिस (राधः) ऐश्वर्य की हम (वः) आप लोगों से (ईमहे) याचना करते हैं वह (विश्वायु) जीवन पर्यन्त (सौभगम्) उत्तम सेवन-योग्य हो।

अती॑याम नि॒दस्ति॒रः स्व॒स्तिभि॑र्हि॒त्वाव॒द्यमरा॑तीः ।
वृ॒ष्ट्वी शं योराप॑ उ॒स्रि भे॑ष॒जं स्याम॑ मरुतः स॒ह ॥ १४ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! हम लोग (निदः) निन्दा करने वाले पुरुषों को (अति इयाम) अतिक्रमण करें। (स्वस्तिभिः) कल्याणकारी उपायों से (अवद्यम्) निन्दनीय कार्य को (हित्वा) छोड़ कर (अरातीः) शत्रुओं को (तिरः अति इयाम) तिरस्कार कर आगे बढ़ें, (आपः वृष्ट्वी) जलों को वर्षा कर (शं) शान्तिकारक, (योः) दुःखवारक (उस्रि भेषजम्) गौ से उत्पन्न दुग्ध-सहित अन्न, औषध प्राप्त करें और (सह स्याम) लोगों के साथ सुख से बने रहें।

सुदेवः समहासति सुवीरो नरो मरुतः स मर्त्यः ।
यं त्रायध्वे स्याम ते ॥ १५ ॥

भा०—हे (समह) पूजा-योग्य जन ! हे (नरः) नायक (मरुतः) वीर पुरुषो ! (यं त्रायध्वे) आप लोग जिसकी रक्षा करते हो (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (सु-देवः) उत्तम विद्वान्, दानशील, व्यवहारकुशल (असति) हो । (ते) वैसे ही वे, हम भी, विद्वान्, दानी, तेजस्वी (स्याम) हों ।

स्तुहि भोजान्त्स्तुवतो अस्य यामनि रणन्गावो न यवसे ।
यतः पूर्वाँ इव सखीँरनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिनः ॥१६॥१२॥

भा०—हे विद्वान् शासक ! तू (स्तुवतः) उत्तम स्तुति करने और उपदेश करने वाले (भोजान्) प्रजा के पालक पुरुषों की (स्तुहि) स्तुति कर, वे प्रजाजन (अस्य यामनि) इसके उत्तम शासन में (यवसे गावः न) अन्नादि उपभोग के लिये गौओं के समान सुशील होकर (रणन्) आनन्द से जीवन व्यतीत करते हैं । (यतः) जिस कारण से (पूर्वान् इव सखीन्) पूर्वकाल के मित्रों के समान प्रेम से वर्त्ताव करने वालों को ही (अनु ह्वये) आदर से बुलाया जाता है ! वैसे ही हे राजन् ! विद्वन् ! तू (कामिनः) उत्तम विद्या, धन आदि की इच्छा-वाले पुरुषों को भी (गृणीहि) अपने पास बुला और उनको सत् उपदेश कर ।

[५४]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः— १, ३, ७, १२ जगती । २ विराड्जगती । ६ भुरिग्जगती । ११, १५ निचृज्जगती । ४, ८, १० भुरिक् त्रिष्टुप् । ५, ९, १३, १४ त्रिष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते ।
घर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप (मारुताय) वायु के समान प्रबल पुरुषों के (स्व-भानवे) स्वयं देदीप्यमान (पर्वत-च्युते) मेघ या पर्वत के समान प्रबल शत्रु को छिन्न-भिन्न करने वा उखाड़ देने में समर्थ, (शर्धाय) बल प्राप्त करने के लिये (इमां) इस (वाचं) वेदवाणी का (मारुताय) मनुष्यों के समूह को (अनज) उपदेश करो। (दिवः घर्म-स्तुभे) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के तेज की उपासना करने वाले, (पृष्ट-यज्वने) अपने पीछे आने वाले शिष्यों को भी ज्ञान का दान करने वाले (द्युम्न-श्रवसे) यश, धन और श्रवणीय ज्ञान से सम्पन्न पुरुष को (महि नृम्णम्) मनुष्यों से पुनः अभ्यास करने योग्य बड़े भारी ज्ञान और मनुष्यों के मनोभिलषित धन राशि का (अर्चत) दान करो।

प्र वो॑ मरुतस्तवि॒षा उ॑द॒न्यवो॑ वयो॒वृधो॑ अश्व॒युज॒ः परि॑ज्रयः ।
सं वि॒द्युता॒ दध॑ति॒ वाश॑ति त्रि॒तः स्वर॒न्त्यापो॒ऽवना॒ परि॑ज्रयः ॥२॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् लोगो ! (वः) आप में से जो (उद-न्यवः) वायु-तुल्य, जलवत् ज्ञान को ग्रहण करने के इच्छुक, (तविषाः) बलवान्, (वयोवृधः) बल, आयु की वृद्धि करने वाले, (अश्व-युजः) अश्वों को रथ में लगाने वाले, योगाभ्यास द्वारा आत्मा को परमात्मा में लगाने वाले, (परि-ज्रयः) सब ओर जाने में समर्थ हों और जो (विद्युता) बिजुली से, (सं दधति) यन्त्रों को संधान करते, अथवा ज्ञान-दीप्ति से युक्त विद्वान् पुरुष के साथ (सं दधति) प्रेम से मिलकर ज्ञान धारण करते हैं, जो (त्रितः) तीनों से (वाशति) ज्ञानोपदेश ग्रहण करते, मन्त्रों का पाठ करते, (स्वरन्ति) और स्वर-सहित गान करते हैं वे (आपः) आप्त पुरुष (अवना) भूमि पर (परिज्रयः) जल-धाराओं के तुल्य सर्वत्र गमन और शान्ति प्रदान करें।

वि॒द्युन्म॑हसो॒ नरो॒ अश्म॑दिद्यवो॒ वात॑त्विषो म॒रुत॑ः पर्वत॒च्युत॑ः ।
अ॒ब्द॒या चि॒न्मुहु॒रा ह्रा॑दु॒नीवृ॑तः स्त॒नय॑दमा र॒भसा॒ उदो॑जसः ॥३॥

भा०—जैसे (मरुतः विद्युन्-महसः) वायुगण बिजुली की कान्ति से चमकने वाले, (अश्म-दिद्यवः) मेघ को प्रकाशित करने वाले, (वात-त्विषः) प्रबल वायु से चमकने वाले, (पर्वत-च्युतः) मेघों को डुलाने वाले होते हैं और वे (अब्दया मुहः ह्रादुनीवृतः) जल देने वाली मेघ-माला से युक्त, गर्जती बिजुली को उत्पन्न करने वाले और (स्तनयद् अमाः) गर्जते मेघ के साथ रहते हैं वैसे ही (नरः) उत्तम विद्वान् पुरुष (विद्युत्-महसः) विशेष कान्ति से चमकने वाले हों, वे (अश्म-दिद्यवः) व्यापक प्रभु में चमकने वाले और 'अश्म' अर्थात् शत्रुनाशक आयुधों से चमकने वाले, (वात-त्विपः) सूर्य कान्ति को प्राप्त, (पर्वतच्युतः) पर्वतवत् अचल शत्रु को भी रणच्युत करने वाले हों। वे (अब्दया) आप्त जनों की दानशील क्रिया से युक्त, (ह्रादुनीवृतः) आह्लादकारिणी वाणी से वर्त्तने वाले और (स्तनयद्-अमाः) गृहों को वाद्यादि के शब्दों से गुंजाते हुए, (रभसाः) वेग से आक्रमण करने वाले, (उद्-ओजसः) उत्तम बलशाली होवें।

व्य१क्तून्रुद्रा व्यहानि शिक्वसो व्य१न्तरिक्षं वि रजांसि धूतयः।
वि यदज्राँ अजथ नाव ईं यथा वि दुर्गाणि मरुतो नाह रिष्यथ ॥४॥

भा०—हे (मरुतः) वायुतुल्य बलवान् पुरुषो! जैसे वायुगण (शिक्वसः धूतयः भवन्ति) शक्तिशाली और वृक्षादि को कंपाने वाले होते हैं, वे सब रातों, सब दिनों (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष में (रजांसि) लोकों वा धूलियों को और (अज्रान्) मेघों को (वि-अजथ) विविध प्रकार से उड़ाते हैं, वैसे ही आप लोग (अक्तून् अहानि वि अजथ) सब दिनों, सब रातों में विविध रूप से जाते हों और आप लोग (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने हारे (शिक्वसः) शक्तिशाली और (धूतयः) शत्रुओं को कंपाते हुए (अन्तरिक्षं) मध्य में विद्यमान देश को और (रजांसि वि) प्रजाजनों को और (अज्रान् वि अजथ) बड़े २ योद्धाओं को विविध

उपायों से उखाड़ फेंक दिया करें और (यथा नावः ईं) जैसे नौकाओं को वायुगण चलाते हैं वैसे ही आप लोग (दुर्गाणि वि अजथ) दुःख से गमन-योग्य विषमताओं को दूर करो और (अह) तिस पर भी (न रिष्यथ) स्वयं नष्ट नहीं होवो।

तद्वीर्यं वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम्।
एता न यामे अगृभीतशोचिषोऽनश्वदां यन्न्ययातना गिरिम् ॥५॥१४॥

भा०—हे (मरुतः) वीर प्रजा-जनो! हे मनुष्यो! (वः) आप लोगों का (तद्) वह अलौकिक (वीर्यं) पराक्रम (महित्वनम्) बड़ा भारी है। जैसे (सूर्यः न) सूर्य भी (योजनम्) सब तक पहुँचने वाले (दीर्घं ततान) प्रकाश को दूर २ तक फैलाता है और जैसे (एताः) वेग से जाने वाले अश्व (यामे) मार्ग में (योजनं) योजन भर दूरी निकल जाते हैं वैसे ही आप लोग भी (योजनम्) अपने २ प्रयोजन तथा उद्योग धन्धों के साथ अपना लगाव बनाते रहें और (अगृभीत-शोचिषः) अग्नि-ज्वाला के समान असह्य तेज वाले होकर (यामे) राज्यादि के नियन्त्रण में अपना (योजनं) लगाव बनाये रक्खो और (अनश्वदां गिरिम्) किरणों को बाहर न जाने देने वाले मेघ को जैसे सूर्य छिन्न-भिन्न करता है वैसे ही (अनश्वदाम् गिरिम्) अश्व सैन्य को मार्ग न देने वाले पर्वत के समान दृढ़ शत्रु को आक्रमण करते हुए (नि अयातन) सर्वथा पीड़ित करो।

अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः।
अध स्मा नो अरमतिं सजोषसश्चक्षुरिव यन्तमनु नेषथा सुगम् ॥६॥

भा०—हे (मरुतः) वायु-तुल्य शत्रुओं के कंपा देने वाले वीर, एवं विद्वान् जनो! (यत्) जैसे जब (शर्धः) सूर्य का तेज (अभ्राजि) खूब तपता है तब वायुगण का बल भी (अर्णसं मोषथ) जल को हर लेता है वैसे ही जब राजा या सेनापति का (शर्धः) शरादि शस्त्रों का धारक शत्रुहिंसक बल (अभ्राजि) शत्रु को परितप्त करता और चमकता है तब

तह बल, सैन्य (अर्णसं मोषथ) धनैश्वर्य से युक्त शत्रु का ऐश्वर्य हर लेता है। (कपना इव वृक्षम्) जैसे कंपा देने वाले शत्रु के झोंके वृक्ष को गिरा देते हैं वा जैसे कृमिगण वृक्ष को भीतर २ खोखला कर देते हैं वैसे ही हे वीरो! आप (वेधसः) मतिमान् लोग भी (कपनाः) शत्रु को कंपाते हुए (वृक्षं) काट गिराने योग्य शत्रु को (मोषथा) उसका सर्वस्व हर कर खोखला कर दो और आप लोग परस्पर (सजोषसः) समान प्रीति से युक्त होकर (चक्षुः इव) मार्गदर्शक आंख के तुल्य (सुगं यन्तम्) सुखप्रद मार्ग पर जाने वाले (अरमतिम्) ज्ञानवान् पुरुष को (अनु) अनुकूल रूप से (नेषथ) सत् मार्ग पर ले जाओ।

न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति।
नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ ॥ ७ ॥

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो! विद्वान् जनो! (यं वा) जिस (ऋषिं) ज्ञानी विद्वान् वा (राजानम्) तेजस्वी पुरुष को (सु-सूदथ) तुम लोग आदरपूर्वक प्राप्त होते हो, (सः) वह (न जीयते) पराजित नहीं होता, (न हन्यते) मारा नहीं जाता, (न स्रेधति) न नाश को प्राप्त होता है, (न व्यथते) न पीड़ित होता है, (न रिष्यति) न दुःख पाता है। (अस्य रायः) उसके धनादि ऐश्वर्य (न उप दस्यन्ति) नष्ट नहीं होते और (न ऊतयः उप दस्यन्ति) न उसके रक्षा-साधन ही नष्ट होते हैं।

नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरोऽर्यमणो न मरुतः कबन्धिनः।
पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अस्वरन्व्युन्दन्ति पृथिवीं मध्वो अन्धसा ॥ ८ ॥

भा०—जैसे जब (इनासः अस्वरन्) सूर्य-किरण अतितापयुक्त होते हैं (कबन्धिनः मरुतः उत्सं पिन्वन्ति) जल से भरे वायुगण, मेघ आदि जलाशय को जल से पूर्ण करते हैं और (पृथिवीं मध्वः अन्धसा वि उन्दन्ति) पृथिवी को मधुर जल और अन्न से तर करते हैं। वैसे ही हे

(मरुतः) प्रजा के मनुष्यो ! वीर पुरुषो ! आप लोग (नियुत्वन्तः) अधीन नियुक्त पुरुषों तथा लक्षों सहायक पुरुषों के स्वामी होकर (ग्रामजितः) जन-समूहों, देशों को जीतने वाले होवें । (अर्यमणः) सूर्यवत् तेजस्वी एवं शत्रुओं को नियन्त्रण करने में समर्थ, न्यायकारी (नरः) नायक और (रुक्मिणः) हृष्टपुष्ट देह वाले होकर (यत् इनासः अस्वरन्) जब स्वामीगण अपना स्वर ऊंचा करें, आज्ञा दें तब (उत्सं पिन्वन्ति) उत्तम पद के धारक नायक को पुष्ट करें, और (पृथिवीं) भूमि को (मध्वः अन्धसः) अन्न जल के उत्तम अंश से (वि उन्दन्ति) सुरुपन्न करें, उत्तम कृषि आदि से ऐश्वर्य-वृद्धि करें ।

प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भ्यः प्रवत्वती द्यौर्भवति प्रयद्भ्यः ।
प्रवत्वतीः पथ्या अन्तरिक्ष्याः प्रवत्वन्तः पर्वता जीरदानवः ॥११॥

भा०—(प्र-यद्भ्यः) प्रयत्नशील (मरुद्भ्यः) बलशाली पुरुषों के लाभ के लिये (इयं पृथिवी) यह पृथिवी (प्र-वत्वती) उत्तम फलों से युक्त है । उनके लिये ही (द्यौः प्रवत्वती) यह विशाल आकाश वा सूर्य भी सुखदायक होकर झुकता है । (अन्तरिक्ष्याः पथ्याः) मध्य आकाश के मार्ग भी उनके लिये (प्रवत्वती) फलदायक और उनके समक्ष निम्न हो जाते हैं, उनके लिये (पर्वताः) पर्वत भी (प्रवत्वन्तः) अपने सिर झुका लेने वाले एवं (जीरदानवः) जीवनोपयोगी अन्न आदि देने वाले हो जाते हैं ।

यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः सूर्य उदिते मदथा दिवो नरः । न वोऽश्वाः श्रथयन्ताह सिस्रतः सद्यो अस्याध्वनः पारमश्नुथ १०।१५

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! हे व्यापारियो ! (यत्) जब आप लोग (स-भरसः) समान रूप से पालन-पोषण करते हुए, (स्वः-नरः) सबके सुख वा पराक्रम में आगे जाने वाले और (दिवः नरः) ज्ञान-प्रकाश के नायक वा धनादि की कामना वाले होकर (सूर्ये उदिते)

सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के उदय होने पर (मदथ) प्रसन्न होते हो, उस समय भी (अह) निश्चय से (वः अश्वाः) आप लोगों के घोड़े (हिरवतः) चलते २ भी (न श्रथयन्त) शिथिल न हों और आप लोग (अस्य अध्वनः) इस बड़े भारी मार्ग के (पारम् अश्नुथ) पार पहुँचें।

अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे शुभः।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः॥ ११॥

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो! आप लोगों के (अंसेषु) कन्धों पर (ऋष्टयः) शस्त्रास्त्र सजें, (पत्सु) पैरों में (खादयः) नाना भोग्य पदार्थ हों, (वक्षःसु) छातियों पर (रुक्माः) सुवर्णाभूषण हों। वे (रथे शुभः) रथों पर सुशोभित हों, (अग्नि-भ्राजसः) अग्नि तुल्य कान्ति और प्रताप से युक्त होकर (गभस्त्योः) उनके बाहुओं में (विद्युतः) विशेष चमकीले शस्त्रास्त्र हों और (शीर्षसु) सिरों पर (वि-तताः) विविध प्रकार से मढ़ी वा बुनी हुई (हिरण्ययीः) सुवर्ण वा लोह निर्मित (शिप्राः) पगड़ियां हों।

तं नाकमर्यो अगृभीतशोचिषं रुशत्पिप्पलं मरुतो वि धूनुथ।
समच्यन्त वृजनाऽतित्विषन्त यत्स्वरन्ति घोषं विततमृतायवः॥ १२॥

भा०—जैसे (मरुतः पिप्पलं वि धुन्वन्ति) वायु गण मेघस्थ जल को कंपाते हैं, (अगृभीत-शोचिषं नाकं वि-धुन्वन्ति) जिसके तेज को कोई पकड़ न सके ऐसे विद्युन्मय मेघ को भी कंपा देते हैं तब (वृजना सम् अच्यन्त) जल एकत्र हो जाते हैं और (वृजना अतित्विषन्त) आकाश के भाग खूब चमक उठते हैं, (ऋतायवः घोषं स्वरन्ति) जल-युक्त मेघ गर्जन करते हैं वैसे ही हे (मरुतः) वीर, व्यापारी एवं विद्वान् पुरुषो! आप लोग (अर्यः) राजा के तुल्य ही (तं) उस (अगृभीत शोचिषं) असह्य तेज को धारण करने वाले (नाकम्) सुखमय, (रुशत्) चमचमाते, (पिप्पलं) ऐश्वर्यवान् शत्रु को भी (वि धूनुथ) विशेष रूप

कंपावें। (ऋतायवः) अन्न और धन के इच्छुक लोग (सम् अच्यन्त) अच्छी प्रकार सत्संग करें, (वृजना) अपने गमनयोग्य मार्गों को (अतित्विषन्त) खूब प्रकाशित करें और (ऋतायवः) सत्य, धन के इच्छुक पुरुष भी (यत् विततं) विस्तृत (घोषं स्वरन्ति) जिसके उपदेश-वचन को प्राप्त करते हैं उसको प्रसन्न वा प्राप्त करो।

युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो रायः स्याम रथ्योऽवयस्वतः।
न यो युच्छति तिष्योऽयथा दिवोऽस्मे रारन्त मरुतः सहस्रिणम् ॥ १३ ॥

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् देश-देशान्तर को जाने वाले वैश्य जनो! हे (विचेतसः) विविध ज्ञान वाले पुरुषो! हे (रथ्यः) महारथियो! हम लोग (युष्मा दत्तस्य) आप लोगों के दिये (वयस्वतः) अन्न और बल से युक्त (रायः) धनैश्वर्य के स्वामी (स्याम) हों। हे (मरुतः) वायु तुल्य बलवान् प्रजाजनो! (अस्मे) हमारे बीच (यः) जो पुरुष (तिष्यः यथा) सूर्य के समान (न युच्छति) प्रमाद नहीं करता, उस (सहस्रियं) सहस्रों वीरों, धनों और सेनाओं के स्वामी पुरुष को तुम लोग सदा (दिवः) कामना करते हुए (रारन्त) प्रसन्न करते रहो।

यूयं रयिं मरुतः स्पार्हवीरं यूयमृषिमवथ सामविप्रम्।
यूयमर्वन्तं भरताय वाजं यूयं धत्थ राजानं श्रुष्टिमन्तम् ॥ १४ ॥

भा०—हे (मरुतः) व्यवहारज्ञ एवं वीर पुरुषो! आप लोग (स्पार्हवीरं) वीर-पुरुषों से अभिलाषा करने योग्य (रयिम्) ऐश्वर्य को और (साम-विप्रम्) सामों के ज्ञाता विद्वान् एवं 'साम' उपाय द्वारा राष्ट्र को ऐश्वर्यों से पूर्ण करने में समर्थ, (ऋषिम्) मन्त्रार्थवेत्ता पुरुष को (अवथ) सुरक्षित रक्खो, उसको प्रसन्न करो और (भरताय) राष्ट्र के प्रजाजनों को भरण-पोषण करने के लिये (अर्वन्तं) शत्रु-नाशक पुरुष

एवं (वाजं) ज्ञान, बल, अन्न ऐश्वर्य को भी (यूयं धत्थ) आप लोग धारण करो और (श्रुष्टिमन्तम्) शीघ्रता से कार्य-सम्पादनकर्त्ता अन्न, सम्पत्ति के स्वामी (राजानं) तेजस्वी पुरुष को (धत्थ) पुष्ट करो।

तद्वो॑ यामि॒ द्रवि॑णं सद्यऊतयो॒ येना॒ स्व१॒र्ण त॒तना॑म॒ नॄँर॒भि ।
इ॒दं सु मे॑ मरुतो हर्यता॒ वचो॒ यस्य॒ तरे॑म॒ तर॑सा श॒तं हिमाः॑ ॥१५।१६

भा०—हे (सद्य-ऊतयः) शीघ्र रक्षा, गमन प्राप्ति करने में कुशल, (मरुतः) पुरुषार्थी लोगो! मैं (वः) तुम्हारा (तत्) उस प्रकार का (द्रविणं) धनैश्वर्य (यामि) चाहता हूँ (येन) जिससे हम (नॄन् अभि) सब मनुष्यों के लिये (स्वः न) सूर्य तुल्य जल, वा प्रकाशवत् (ततनाम) फैला दें, (यस्य तरसा) जिसके बल पर हम (शतं हिमाः) सौ वर्ष जीवन (तरेम) पार करें। हे विद्वान् पुरुषो! आप (मे) मेरे (इदं वचः) इस वचन को (सु हर्यत) अच्छी प्रकार ग्रहण करो। इति षोडशो वर्गः ॥

[५५]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ५ जगती । २, ४, ७, ८ निचृज्जगती । ३ विराड् जगती । स्वराट् त्रिष्टुप् । ६, १० निचृत्त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

प्रय॑ज्यवो म॒रुतो॒ भ्राज॑दृष्टयो बृ॒हद्वयो॑ दधिरे रु॒क्मव॑क्षसः ।
ई॒यन्ते॒ अश्वैः॑ सु॒यमे॑भिरा॒शुभिः॒ शुभं॑ या॒तामनु॒ रथा॑ अवृत्सत ॥१॥

भा०—(प्र-यज्यवः) उत्तम ज्ञान के प्रदाता, उत्तम सत्संग, मैत्री, मान, उत्तम पदार्थ की याचना के योग्य, (भ्राजद्-ऋष्टयः) चमचमाते शस्त्रों, एवं प्रकाशयुक्त मति वाले, (रुक्म-वक्षसः) सुवर्ण-आभूषणों को छाती पर धारण करने वाले, विद्वान्, वीर पुरुष (बृहत् वयः दधिरे) बड़ा बल, ज्ञान और आयु धारण करें। (सु-यमेभिः अश्वैः) उत्तम रीति से काबू किये अश्वों के समान, उत्तम नियमों के पालन द्वारा वश

किये गये (आशुभिः अश्वैः) शीघ्रगामी, अप्रमादी इन्द्रियों और पुरुषों द्वारा भली प्रकार उद्देश्य को (ईयन्ते) प्राप्त होते हैं। (शुभं याताम्) धर्मानुकूल मार्ग पर चलने वालों के (अनु) पीछे (रथाः) रथ व आनन्द-प्राप्ति के साधन भी (अवृत्सत) स्वयं प्राप्त हो जाते हैं।

स्वयं दधिध्वे तविषीं यथा विद बृहन्महान्त उर्विया वि राजथ।
उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजसा शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥२॥

भा०—(यथा) जैसे (बृहत्) बड़े भारी राष्ट्र को (विद) प्राप्त कर सको और जैसे बड़े ज्ञान को प्राप्त कर सको वैसे आप लोग (स्वयं) स्वयं (तविषीं) बड़ी सेना व शक्ति को (दधिध्वे) धारण करो और आप लोग (महान्तः) बड़े सामर्थ्यवान् होकर (उर्विया) बहुत अधिक (विराजथ) सुशोभित होवो। (ओजसा) पराक्रम से आप लोग (अन्तरिक्षं) वायु-समान आकाश वा राष्ट्र के समस्त भीतरी भाग को (वि ममिरे) विविध प्रकार से मापो, उसको वश करो और (अन्तरिक्षं वि ममिरे) अन्तरिक्ष भाग को विमान द्वारा प्राप्त होओ, इस प्रकार (शुभं याताम्) शुभ, मार्ग पर जाने वालों के (रथाः) रथ, विमान वा देहादि साधन भी (अनु अवृत्सत) अनुकूल रहें और बढ़ें।

साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः।
विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥३॥

भा०—(साकं जाताः) एक साथ उत्पन्न (सुभ्वः) उत्तम सामर्थ्यवान्, उत्तम भूमियों के स्वामी, (साकम् उक्षिताः) एक साथ अभिषेक को प्राप्त हुए, (नरः) सेना-नायक जन (श्रिये चित्) लक्ष्मी की वृद्धि के लिये (प्रतरं) अच्छी प्रकार (आ ववृधुः) सब ओर बढ़ें। वे (सूर्यस्य इव रश्मयः) सूर्य-किरणों के तुल्य (विरोकिणः) विविध रुचि, कान्ति एवं विविध प्रवृत्तियों वाले (प्रतरं वावृधुः) खूब बढ़ें, उन्नति करें। (शुभं याताम् रथाः अनु अवृत्सत) सन्मार्ग पर जाने वालों के रथ और

रमण-योग्य आत्मा, निरन्तर अनुकूल होकर रहते और वृद्धि को प्राप्त करते हैं।

आभूषेण्यं वो मरुतो महित्वनं दिदृक्षेण्यं सूर्यस्येव चक्षणम्।
उतो अस्मा अमृतत्वे दधातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥४॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो! (वः) आप लोगों का (महित्वनं) महान् सामर्थ्य (आ भूषेण्यम्) आभूषण के तुल्य शोभाजनक हो और (वः चक्षणं) आप लोगों का वचन और ज्ञान भी (दिदृक्षेण्यम्) दर्शनीय और सत्य ज्ञान का दर्शाने वाला, (सूर्यस्य इव चक्षणं) सूर्य-प्रकाश के तुल्य सत्य हो। (उतो) और आप लोग प्राणों के तुल्य प्रिय होकर (अस्मान्) हमें (अमृतत्वे) नाशरहित, दीर्घायु युक्त जीवन एवं मोक्ष सुख में (दधातन) स्थापित करो। (शुभं याताम्) सन्मार्ग पर जाने वाले आप लोगों के (रथाः) रथ के तुल्य, रस-रूप आनन्दमय आत्मा (अनु अवृत्सत) निरन्तर सुखपूर्वक रहें।

उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः।
न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ५।१७

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् वीर पुरुषो! जैसे (मरुतः पुरीषिणः समुद्रतः वृष्टिं उत् ईरयन्ति) वायुगण जल-सम्पन्न होकर समुद्र से वृष्टि को उठा लाते और वर्षाते हैं वैसे ही आप भी (पुरीषिणः) ऐश्वर्य-सम्पन्न होकर (समुद्रतः) समुद्र से (वृष्टिम्) ऐश्वर्य की वृष्टि को (उत् ईरयथ) उठाकर लाओ। समुद्र से व्यापार द्वारा रत्न, मुक्ता आदि प्राप्त करो और (वर्षयथ) प्रजाजनों पर बरसा दो। (वः) आप लोगों की (दस्राः) दुःखों का नाश करने वाली (धेनवः) गौएं वा वाणियें (न उपदस्यन्ति) नष्ट न होवें। (शुभं याताम्) धर्म-पथ पर चलने वाले आप लोगों के रथ (अनु अवृत्सत) प्रति-दिन आगे बढ़ें।

यदश्वान्धूर्षु पृषतीरयुग्ध्वं हिरण्ययान्प्रत्यत्काँ अमुग्ध्वम्।
विश्वा इत्स्पृधो मरुतो व्यस्यथ शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥६॥

भा०—(यत्) जब आप लोग हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! (धूर्षु) रथों के धारक धुरों में (अश्वान्) शीघ्रगामी अश्वों एवं (पृषतीः) शस्त्र-वर्षणशील सेनाओं को (अयुग्ध्वम्) योजना करो और (हिरण्ययान् अत्कान्) सुवर्ण वा लोहे आदि धातु के कवचों को (प्रति अमुग्ध्वम्) धारण करो तब तुम (विश्वाः इत् स्पृधः) समस्त स्पर्धाशील शत्रुओं को (वि अस्यथ) विशेष रूप से उखाड़ डालो और (शुभं याताम् रथाः अनु अवृत्सत) सन्मार्ग पर जाने वालों के रथ निरन्तर उन्नति की ओर बढ़ें।

न पर्वता न नद्यो वरन्त वो यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत् ।
उत द्यावापृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥७

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् वीर पुरुषो ! आप लोग (यत्र) जहां (अचिध्वं) सत्कार प्राप्त करो (तत्) उस स्थान तक (गच्छथ इत् उ) अवश्य जाओ। (वः) आप लोगों को (पर्वताः न वरन्त) पहाड़ भी न रोकें और (न नद्यः वरन्त) न नदियें रोकें। (उत) और आप लोग (द्यावा पृथिवी) आकाश और भूमि दोनों जगह (परि याथन) भ्रमण करो। (शुभं याताम्) उत्तम रीति से जाने वाले आप लोगों के (रथाः अनु अवृत्सत) रथ आदि अनुकूल रूप से चलें।

यत्पूर्व्यं मरुतो यच्च नूतनं यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते ।
विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥८

भा०—हे (वसवः) राष्ट्र में रहने एवं गृहस्थ में जाने हारे विद्वानो ! एवं राष्ट्र में बसने हारे वीर पुरुषो ! हे (मरुतः) बलवान् पुरुषो ! (यत् पूर्व्यम्) जो पूर्व के विद्वानों और पुरुषों से अभ्यस्त ज्ञान और संचित धन है, (यत् च नूतनं) जो नया प्राप्त ज्ञान वा धन है और (यत् उद्यते) जिसका उपदेश किया जाता है,(यत् शस्यते) जो अन्य विद्वानों द्वारा शास्त्र-रूप में अनुशासन किया जाता है, हे (न-वेदसः)

न जानने और न प्राप्त करने हारे धनहीन और ज्ञानहीन पुरुषो ! आप लोग (तस्य विश्वस्य) उस सब ज्ञान वा धन के स्वामी (भवथ) होवो। (शुभं यातताम्) शुभ उद्देश्य को लक्ष्य करके जाने वाले पुरुषों के पीछे २ आप लोगों के (रथाः) शरीर और आत्मा (अनु अवृत्सत) अनुगमन करें।

मृळत नो मरुतो मा वधिष्टनास्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्तन।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥९॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् लोगो! हे वीर पुरुषो! आप लोग (नः) हमें (मृळत) सुखी करो। (मा वधिष्टन) हमारा वध मत करो। (अस्मभ्यं) हमारे लिये (बहुलं शर्म) बहुत सुख, गृह आदि (वि यन्तन) विविध प्रकारों से दिया करो। (स्तोत्रस्य सख्यस्य) प्रशंसनीय मैत्री-भाव का (अधि गातन) उपदेश करो। (शुभं यातताम् अनु) शुभ मार्ग पर जाने वालों के (अनु) पीछे २ (रथाः) उत्तम रथों के समान (अवृत्सत) सदा चलो।

यूयमस्मान्नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०।१८

भा०—हे (मरुतः) विद्वान्, वीर पुरुषो! (यूयम्) आप लोग (अस्मान् वस्यः अच्छ नयत) हमें उत्तम धन प्राप्त कराओ, और (गृणानाः) उत्तम उपदेश करते हुए आप लोग हमें (अंहतिभ्यः) पापों से (निः नयत) बचा कर ले चलो। (यजत्राः) दान देने और मान, सत्संग आदि करने योग्य पूज्य पुरुषो! (नः) हमारे (हव्यदातिम्) आदर पूर्वक देने योग्य अन्न वस्त्र आदि के दान को (जुषध्वम्) सेवन करो और हम (रयीणां पतयः स्याम) ऐश्वर्यों के स्वामी बनें। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[५६]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, २, ५, निचृद्-बृहती । ४ विराड्बृहती । ८, ९ बृहती । ३ विराट् पंक्तिः । ६, ७ निचृत्पंक्तिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने शर्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः ।

विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चिद्रोचनादधि ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! (दिवः चित् रोचनात्) कान्तिमान् सूर्य से अधिक, वा (मरुतां गणम्) वायुओं के समान (रोचनात्) सबको रुचिकर, सबको प्रसन्न करने वाले, (दिवः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष से (अधि) अधिकृत, उसके अधीन (शर्धन्तम्) बलवान्, सैन्यवत् शूरवीर, (अंजिभिः) अपने २ वर्गों को अभिव्यक्त करने वाले (रुक्मेभिः) रुचिकर स्वर्णमय पदकों से (पिष्टं) सुशोभित (मरुताम् गणम्) विद्वानों, सैनिकों एवं वैश्यों के गण तथा (विशः गणम्) प्रजा के समूह को (अद्य) आज, विशेष २ अवसर पर (अव ह्वये) विनयपूर्वक बुलाता हूँ।

यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः ।

ये ते नेदिष्ठं हवनान्यागमन्तान्वर्ध भीमसन्दृशः ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) नायक पुरुष ! तू (हृदा) अन्तःकरण से (यथा चित् मन्यसे) जैसे भी उत्तम जाने (तत् इत्) वे ही (आशसः) उत्तम स्तुति योग्य वा (मे आशसः) मेरे अधीन शासन करने और मुझे चाहने वाले हैं वे (मे जग्मुः) मुझे प्राप्त हों और हे नायक ! (ये) जो (ते नेदिष्ठं) तेरे अति समीप (हवनानि) देने योग्य कर आदि और लेने योग्य वेतनादि (आ गमन्) प्राप्त कराते और लेते हैं (तान्) उन (भीम-सन्दृशः) भयंकर रूप से दीखने वाले प्रचण्ड पुरुषों को भी (वर्ध) बढ़ा ।

मी॒ळ्हुष्म॑तीव पृथि॒वी परा॑हता॒ मद॑न्त्येत्य॒स्मदा ।

ऋ॒क्षो न वो॑ मरुतः॒ शिमी॑वाँ॒ अमो॑ दु॒ध्रो गौरि॑व भीम॒युः ॥३॥

भा०—(मीढुष्मती पराहता, मदन्ती) वर्षा करने वाले मेघ से युक्त मेघमाला जैसे वायु से प्रेरित होकर सबको हर्ष देती हुई आती है वैसे ही (मीढुष्मती) शस्त्रास्त्रों और ऐश्वर्यों की वर्षा करने में समर्थ, प्रजापोषक स्वामी की (पृथिवी) पृथिवी-वासिनी प्रजा (परा-हता) शत्रु-सेना से ताड़ित होकर भी (मदन्ती) हर्षयुक्त होती हुई (अस्मद्) हम शासक जनों को (आ एति) प्राप्त होती है। हे (मरुतः) विद्वानो, वीर पुरुषो! (वः) आप लोग, (अमः) शरण-योग्य, गृह के समान आश्रय दाता पुरुष (ऋक्षः न) सूर्यवत् तेजस्वी, सदा अर्चनीय, वेदाज्ञाओं का पालक, वा रीछ के समान भयंकर, बलशाली, (शिमीवान्) कर्मण्य, (दुध्रः) शत्रु से अजेय, (गौः इव) महा वृषभ के समान (भीमयुः) भयप्रद होकर प्रयाण करने हारा वा (गौः न भीमयुः) गमनशील अश्व के समान प्रचण्ड वेग से जाने हारा हो, उसे प्राप्त करें।

नि ये रि॒णन्त्योज॑सा॒ वृथा॒ गावो॒ न दु॒र्धुरः॑ ।

अश्मा॑नं चित्स्व॒र्यं१॒॑ पर्व॑तं गि॒रिं प्र च्या॑वयन्ति॒ याम॑भिः ॥ ४ ॥

भा०—(ये) जो वीर पुरुष (गावः न) अश्वों या बैलों के समान (दुर्धुरः) कठिनता से वश आने वाले, (ओजसा) पराक्रम से (वृथा) अनायास ही (नि रिणन्ति) शत्रुओं का नाश करते हैं। वे (यामभिः) अपने प्रयाणों द्वारा (स्वर्यं अश्मानं) गर्जते मेघ के समान और (पर्वतं) पर्वत के समान अचल (गिरिम्) अपने राष्ट्र को निगलने वाले या गर्जते शत्रु को भी (प्र च्यावयन्ति) अस्थिर कर देते हैं।

उत्ति॑ष्ठ नू॒नमे॑षां॒ स्तोमैः॒ समु॑क्षितानाम् ।

म॒रुतां॑ पुरु॒तम॒मपू॑र्व्यं॒ गवां॒ सर्ग॑मिव ह्वये ॥ ५ ॥ १९ ॥

भा०—हे राजन्! सेनापते! तू (एषाम्) इन (समुक्षितानाम्)

अच्छी प्रकार से अभिषिक्त, (मरुतां) बलवान् पुरुषों के (स्तोमैः) बल-वीर्यों द्वारा (नूनम्) निश्चय से (उत् तिष्ठ) उच्च पद पर विराज। मैं तुझको (गवां सर्गम् इव) गौओं के बीच सृष्टि-उत्पादक वृषभ के तुल्य वा (गवां सर्गम्) समस्त वाणियों, आज्ञाओं के दाता, एवं समस्त भूमिवासी प्रजाओं के बीच, शासक और (पुरुतमम्) सब प्रजाओं में श्रेष्ठ, (अपूर्व्यम्) सर्वोत्कृष्ट पद के योग्य (ह्वये) कहता हूँ। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

युङ्ग्ध्वं ह्यरुषी रथे युङ्ग्ध्वं रथेषु रोहितः।
युङ्ग्ध्वं हरी अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे॥ ६

भा०—हे विद्वान्, वीर, शिल्पी जनो! आप लोग (रथे) रथ में (अरुषीः) लाल वर्ण की घोड़ियों के समान (रथे) रमण-योग्य गृहस्थ आदि उत्तम कार्यों में (अरुषीः) दीप्तियुक्त, रोषरहित प्रजाओं को (युङ्ग्ध्वम्) नियुक्त करो। (रथेषु रोहितः) रथों में लाल घोड़ों के तुल्य उत्तम २ कार्य में (रोहितः) तेजस्वी पुरुषों को (युङ्ग्ध्वम्) नियुक्त करो। (वोढवे धुरि) काम का भार उठाकर चलने वाले पुरुष के मुख्य पद पर (धुरि हरी) रथ के धुरा में दो अश्वों के समान दो उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों को (युङ्ग्ध्वम्) नियुक्त करो, उनमें एक मुख्य और एक सचिव हो। इसी प्रकार (वोढवे धुरि वहिष्ठा) वहन या कार्य सञ्चालन करने वाले के स्थान पर दोनों योग्य पुरुष (वहिष्ठा) कार्य को आगे बढ़ाने में समर्थ होने चाहियें।

उत स्य वाज्यरुषस्तुविष्वणिरिह स्म धायि दर्शतः।
मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत्प्र तं रथेषु चोदत॥ ७॥

भा०—(उत) और (अरुषः) तेजस्वी, रोष-रहित, (तुवि-स्वनिः) उच्च ध्वनि करने में समर्थ, (दर्शतः) दर्शनीय रूप वाला (स्यः वाजी) वह शक्ति तथा ऐश्वर्य का स्वामी राजा बलवान् अश्व के समान समर्थ पुरुष (इह धायि स्म) इस कार्य में स्थापित किया जाय। हे (मरुतः)

विद्वान् पुरुषो ! हे वैश्य जनो ! (वः) जो आप लोगों के (यामेषु) आने-जाने के मार्गों और प्रजा के नियन्त्रण के कार्यों में कोई नियुक्त पुरुष एवं रथ में जुता अश्वादि भी (चिरं मा करत्) देर न करे। (रथेषु) रथों में लगे अश्व के समान आप लोग (तं) उसको (रथेषु) रमण-योग्य, एवं शीघ्र करने योग्य कार्यों में (प्र चोदत) अच्छी प्रकार प्रेरित करो।

रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे।
आ यस्मिन्तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी ॥ ८ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (मारुतं) वायु के वेग से चलने वाले (श्रवस्युम् रथं) यशोजनक, वा श्रवण-योग्य विशेष ध्वनि से युक्त (रथम्) रथ को (आ हुवामहे) उत्तरोत्तर उन्नत रूप में बनाना चाहें। (यस्मिन्) जिसमें (सुरणानि) आनन्द-विनोद एवं उत्तम युद्ध-क्रीड़ा आदि (बिभ्रती) करते हुए (रोदसी) दुष्ट को रुलाने वाले पालक सूर्य पृथिवीवत् राज प्रजा वर्ग (सचा) एक साथ (मरुत्सु) मनुष्यों के बीच (तस्थौ) विराजें।

तं वः शर्धं रथेशुभं त्वेषं पनस्युमा हुवे।
यस्मिन्त्सुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मीळ्हुषी ॥९।२०॥

भा०—हे प्रजाजनो ! वीर पुरुषो ! (वः) आप लोगों के (रथे शुभं) रथ में शोभा पाने वाले, (त्वेषम्) दीप्ति-युक्त (पनस्युं) स्तुत्य, (शर्धम्) सैन्य को मैं (आहुवे) आदर-पूर्वक बुलाता हूँ। (यस्मिन्) जिसमें (सुजाता) उत्तम कार्यों से प्रसिद्ध (मीढुषी) शत्रु पर शर आदि बरसाने वाली सेना (मरुत्सु मीढुषी) वायुओं पर आश्रित बरसती घटा के तुल्य, (सुभगा) सौभाग्यवती स्त्री के तुल्य (महीयते) आदर प्राप्त करती है। इति विंशो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

[५७]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ४, ५ जगती।

२, ६ विराड्जगती । निचृज्जगती । ७ विराट् त्रिष्टुप् । ८ निचृत् त्रिष्टुप् । अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।
इयं वो अस्मत्प्रति हर्यते मतिस्तृष्णाजे न दिव उत्सा उदन्यवे ॥१

भा०—हे वीर पुरुषो ! आप लोग (रुद्रासः) दुष्टों को रुलाने वाले, और (इन्द्रवन्तः) शत्रुहन्ता नायक को अपना स्वामी बनाकर, (सजोषसः) समान अधिकारों और ऐश्वर्यों का भोग करते हुए (हिरण्यरथाः) सुवर्ण, लौह आदि धातुओं के बने रथों पर स्थित होकर (सुविताय=सु-इताय) सुख से जाने, वा उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (आ गन्तन) आया-जाया करो । (इमं) यह (मतिः) ज्ञानमयी बुद्धि (अस्मत्) हमसे और (दिवः) हमारी शुभ कामनाएं (वः) आप लोगों को (प्रति हर्यते) निरन्तर ऐसे प्राप्त हों जैसे (उदन्यवे तृष्णजे) जल के इच्छुक पुरुष के लिये (उत्साः) कूप की जलधाराएं प्राप्त हों ।

वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः ।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम् ॥२

भा०—हे (मरुतः) विद्वानो, शिल्पी जनो, वीर पुरुषो ! आप लोग (वाशीमन्तः) उत्तम वाणियों, शिल्प-साधनों से युक्त, (ऋषिमन्तः) ज्ञान और युद्धोपयोगी शक्तियों से युक्त, (मनीषिणः) मन को यथेष्ट विषय में प्रेरने वाले, (सु-धन्वानः) उत्तम धनुर्धर, (इषु-मन्तः) बाणों से सम्पन्न, (नि-षङ्गिणः) तर्कस और खाण्डे वाले, (सु-अश्वाः) उत्तम अश्वारोही, (सु-रथाः) उत्तम रथारोही, (सु-आयुधाः) उत्तम हथियारों से सजे और (पृश्निमातरः) आदित्य के समान तेजस्वी, वेद, गुरु वा राजा, अन्तरिक्ष के समान आश्रयदाता और भूमि के समान अन्नप्रद स्वामी को माता के समान मानने वाले होवो । आप लोग (शुभं) शोभाजनक, उत्तम मार्ग को लक्ष्य करके (याथन) प्रयाण करो ।

धूनुथ द्यां पर्वतान्दाशुषे वसु नि वो वना जिहते यामनो भिया ।
कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातरः शुभे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥३॥

भा०—हे (पृश्निमातरः) पृथिवी, माता वा ज्ञानी वा वीर पुरुष को मातृ-समान जानने वाले वीर पुरुषो ! आप लोग (यद्) जब (उग्राः) बलवान् होकर (पृषतीः) छिन्न-विच्छिन्न, जल बरसाने वाली मेघ घटाओं के समान अश्वों और सेनाओं को (शुभे) जल-प्रदान के तुल्य उत्तम कर्म, शरवर्षण के निमित्त (अयुग्ध्वम्) युद्धादि कार्यों में लगाते हो तब (द्याम्) कामना-योग्य तेजस्वी पुरुष को (धूनुथ) प्राप्त होते हो, (द्यां) अन्तरिक्ष और विजीगीषु शत्रु को और (पर्वतान्) पर्वतवत् दृढ़ शत्रु-जनों को भी (धूनुथ) कंपा देते हो । हे (यामनः) यान करने हारो ! (वः) आप लोगों के (भिया) भय से (वना) वायुओं से वृक्षों के समान (वना) शत्रु के वनवत् सैन्य-समूह (नि जिहते) पराजित होकर कांपते हैं । आप लोग (पृथिवी) भूमण्डल को (कोपयथ) विक्षुब्ध करने में समर्थ होते रहें ।

वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमा इव सुसदृशः सुपेशसः ।
पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ॥४॥

भा०—(वात-त्विषः) वायु वा प्राण के समान विद्युत वा उत्तम तीक्ष्ण कान्ति के धारक, (वर्ष-निर्णिजः) वर्षों तक शुद्ध आचरण से अपने को शुद्ध करने हारे जलों द्वारा पदाभिषिक्त (यमाः इव) संयम-पालक तपस्वियों के समान, (सु-सदृशः) उत्तम रीति से सबको समान देखने वाले, (सु-पेशसः) उत्तम रूपवान्, (पिशङ्गाश्वाः) पीले घोड़ों वाले, (अरुणाश्वाः) और लाल घोड़ों वाले, (प्र-त्वक्षसः) अच्छी प्रकार शत्रुओं के छेदन-भेदन में समर्थ और (महिना) महान् सामर्थ्य से (द्यौः इव) सूर्य वा नायक के तुल्य (उरवः) बड़े पराक्रमी हों ।

पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः सुदानवस्त्वेषसंदृशो अनवभ्रराधसः ।
सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृतं नाम भेजिरे॥५॥२१॥

भा०—पूर्वमन्त्र में कहे वीर पुरुष (पुरु-द्रप्साः) वायुओं के तुल्य अपने में जलवत् बहुत प्रकार के बलों को धारण करने वाले, (अञ्जि-मन्तः) नाना अभिव्यञ्जक चिह्नों के धारक (सु-दानवः) उत्तम जलवत् धनैश्वर्यों के दान करने, शत्रु-खण्डन और प्रजा-पालन करने वाले, (त्वेषः सन्दृशः) कान्ति से समान रूप से दर्शनीय, (अनवभ्र-राधसः) धनैश्वर्यों को नाश न होने देने वाले, (जनुषा) जन्म से ही (सुजातासः) माता, गुरु जनों और विद्या से जन्म प्राप्त कर उत्पन्न वा प्रसिद्ध, (रुक्म-वक्षसः) छाती पर सुवर्ण-आभूषण धारण करते हुए, (दिवः-अर्काः) सूर्य-किरणों के तुल्य, तेजस्वी होकर (अमृतं नाम) अमृत, अविनाशी मार्गों को (वि भेजिरे) धारण करें। इत्येकविंशो वर्गः ॥

ऋष्टयो॑ वो मरुतो॒ अंस॑यो॒रधि॒ सह॒ ओजो॑ बा॒ह्वोर्वो॒ बलं॑ हि॒तम्।
नृ॒म्णा शी॒र्षस्वायु॑धा॒ रथे॑षु॒ वो॒ विश्वा॑ वः॒ श्रीरधि॑ त॒नूषु॑ पिपिशे ॥६॥

भा०—हे (मरुतः) वायु-समान वीर पुरुषो! (वः अंसयोः अधि) आप के कंधों पर (ऋष्टयः) शत्रुनाशक हथियार हों और (वः बाह्वोः) आप की बाहुओं में (सहः) शत्रु को हराने में समर्थ (ओजः बलम्) पराक्रम और बल (हितम्) विद्यमान हों और (शीर्षसु) आप के शिरों पर (नृम्णा) मनुष्यों को अच्छा लगने वाले मुकुट, पगड़ी आदि हों और (वः रथेषु) आप के रथों पर (आयुधानि) शस्त्र-अस्त्र हों और (वः तनूषु अधि) आप के शरीरों पर (विश्वा श्रीः पिपिशे) समस्त प्रकार की लक्ष्मी सुशोभित हो।

गोम॒दश्वा॑व॒द्रथ॑वत्सु॒वीरं॑ च॒न्द्रव॒द्राधो॑ मरुतो ददा नः।
प्रश॑स्तिं नः कृणुत रुद्रियासो भक्षी॒य वोऽव॑सो॒ दैव्य॑स्य ॥ ७ ॥

भा०—हे (मरुतः) वीरो, विद्वानो! आप लोग (गोमत्) गौओं, (अश्वावत्) अश्वों और (रथवत्) रथों से सम्पन्न और (चन्द्रवत्) सुवर्णादि से युक्त (सुवीरं) उत्तम वीरों से सेवित, (राधः) ऐश्वर्य (नः दद)

हमें प्राप्त कराओ। हे (रुद्रियासः) दुष्टों के रुलाने वाले 'रुद्र' सेनापति के हितैषी जनो! (नः प्रशस्तिं कृणुत) आप हमारा शासन उत्तम रीति से करो। हम (वः) आप लोगों के (दैव्यस्य) तेजस्वी राजा द्वारा अनुशासित (अवसः) रक्षा आदि प्रबन्ध का (भक्षीय) अच्छी प्रकार भोग करें।

हृये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः॥८॥२२॥

भा०—(हये नरः) हे नेता पुरुषो! हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् वीरो! विद्वानो! आप (तुवि-मघासः) बहुत ऐश्वर्यों के स्वामी, (अमृताः) दीर्घायु, (ऋतज्ञाः) सत्य के ज्ञाता, (सत्यश्रुतः) सत्य ज्ञान को श्रवण करने वाले, (कवयः) मेधावी, (युवानः) जवान, (बृहद्-गिरयः) बड़े उपदेष्टा और (बृहत्) बड़े भारी ज्ञान और ऐश्वर्य को (उक्षमाणाः) वहन करने वाले होकर (नः मृडत) हमें सुखी करो। इति द्वाविंशो वर्गः॥

[५८]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः॥ मरुतो देवताः॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप्। २, ५ त्रिष्टुप्। ७ भुरिक् पंक्तिः॥ अष्टर्चं सूक्तम्॥

तमु नूनं तविषीमन्तमेषां स्तुषे गणं मारुतं नव्यसीनाम्।
य आश्वश्वा अमवद्वहन्त उतेशिरे अमृतस्य स्वराजः॥ १॥

भा०—(नव्यसीनां) सदा नवीन, प्रजाओं में विद्यमान (एषां) इन मनुष्यों के (तविषीमन्तं) बल से युक्त (मारुतं गणं) शत्रुओं के नाशक गण के विषय में (स्तुषे) मैं उपदेश करता हूँ। (ये) जो (आशु-अश्वाः) वेगवान् अश्वों, अश्वारोहियों के स्वामी हों और जो (स्व-राजः) स्वयं देदीप्यमान होकर (अमवत्) बलवीर्य के तुल्य (अमृतस्य) दीर्घ आयु को (वहन्त) धारण करते हुए (ईशिरे) ऐश्वर्य प्राप्त करते और शासन करते हैं।

त्वेषं गणं तवसं खादिहस्तं धुनिव्रतं मायिनं दातिवारम् ।
मयोभुवो ये अमिता महित्वा वन्दस्व विप्र तुविराधसो नॄन् ॥२॥

भा०—हे (विप्र) राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने हारे राजन् ! विद्वन् ! तू (त्वेषं) दीप्तिमान्, (तवसं) बलवान्, (खादिहस्तं) हाथों में कटक आदि आभूषण तथा वज्र आदि लिये, सशस्त्र, (धुनि-व्रतं) शत्रुओं को कंपाने वाले, अथवा जल-प्रवाह के समान जाने वाले, (मायिनम्) उत्तम बुद्धियों से युक्त, (दातिवारम्) दान को श्रद्धा से स्वीकार करने वाले, (गणं) गण्य, मान्य पुरुषों को (वन्दस्व) अभिवादन कर, उनकी प्रशंसा कर और (ये) जो लोग राष्ट्र में (मयोभुवः) सुख शान्ति उत्पन्न करने हारे (महित्वा) महान् सामर्थ्य से (अमिताः) अनन्त पराक्रम और ज्ञान से सम्पन्न हों उनको और जो (तुवि-राधसः नॄन्) बहुत आराधना करने वाले पुरुष हों उनको भी (वन्दस्व) नमस्कार कर ।

आ वो यन्तूदवाहासो अद्य वृष्टिं ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।
अयं यो अग्निर्मरुतः समिद्ध एतं जुषध्वं कवयो युवानः ॥३॥

भा०—हे प्रजाजनो ! (ये) जो (विश्वे मरुतः) सब मनुष्य वायु गण के तुल्य (वृष्टिं) वर्षावत् ऐश्वर्य का वर्षण (जुनन्ति) करते हैं वे (उद-वाहासः) जलों को नाना स्थानों पर पहुँचाने वाले जल-विद्यावित्, नहर, कूप आदि के शिल्पीजन (वः) तुम लोगों को (आ यन्तु) प्राप्त हों । हे (मरुतः) विज्ञानी पुरुषो ! (यः अयं) यह जो (सम्-इद्धः) खूब तेजस्वी (अग्निः) अग्नि-तुल्य, ज्ञानप्रकाशक और प्रताप-युक्त वीर और विद्वान् पुरुष है, आप (कवयः) बुद्धिमान् (युवानः) युवा पुरुषो ! (एतं-जुषध्वम्) उसका सेवन करो ।

यूयं राजानमिर्यं जनाय विभ्वतष्टं जनयथा यजत्राः ।
युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतो युष्मत्सदश्वो मरुतः सुवीरः ॥ ४ ॥

भा०—हे (यजत्राः) यज्ञशील, परस्पर संगठित रहने वाले प्रजाजनो! (यूयम्) आप (इयं) शत्रुओं को कंपाने और भृत्यों को सन्मार्ग में चलाने वाले, (विभ्वतष्टं) मेधावी पुरुषों द्वारा ताड़ना, शिक्षा द्वारा तैयार किये गये पुरुष को (जनाय) प्रजाजन के हित के लिये (राजानम्) तेजस्वी (जन-यथाः) बनाओ। हे (मरुतः) मनुष्यो! (बाहु-जूतः) बाहुबलशाली, (मुष्टि-हा) मुक्कों से ही शत्रु को मार देने वाला, या (मुष्टिहा) मुट्ठी के समान संघ बना कर शत्रु को दण्डित करने वाला पुरुष (युष्मत् एति) तुम लोगों में से ही प्रकट होता है और (सद्-अश्वः) उत्तम अश्वों का स्वामी, जितेन्द्रिय (सु-वीरः) उत्तम वीर्यवान् सैन्य पुरुष भी (युष्मत्-एति) तुम में से ही उत्पन्न होता है।

अरा इवेदचरमा अहेव प्रप्र जायन्ते अकवा महोभिः।
पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः ॥५॥

भा०—जैसे (मरुतः अचरमाः) वायु गण अनन्त, (अकवाः) अकुत्सित, विमल जल वाले, (पृश्नेः पुत्राः) सूर्य के पुत्र और पृथिवी के पुरुषों के पालक, (स्वया मत्या) अपनी शक्ति से (संमिमिक्षुः) खूब वर्षा करते हैं वैसे ही हे (मरुतः) वीर मनुष्यो! आप लोग (अराः इव) चक्र में लगे अरों के समान (अचरमाः) एक दूसरे के ऐसे पीछे रहो कि कोई अन्तिम, अरक्षित न हो अर्थात् चक्रव्यूह बना कर रहो और (महोभिः) महान् सामर्थ्यों से (अहा इव) दिनों के समान प्रकाशित होकर (अकवाः) कुत्सित वचन न कहते हुए, अनल्प सामर्थ्यवान् होकर (प्र प्र जायन्ते) एक दूसरे के पीछे आते जाया करो। ऐसे आप लोग (पृश्नेः) सूर्य के समान तेजस्वी राजा, अन्नदात्री भूमि, निष्पक्षपात गुरु और पिता के (पुत्राः) पुत्र होकर (उपमासः) सभी एक दूसरे के तुल्य एवं अन्यों के आगे उपमा या उत्तम दृष्टान्त होने योग्य, (रभिष्ठाः) अधिक बल से कार्य प्रारम्भ करने वाले, बलवान् होकर

(स्वया मत्या) अपनी बुद्धि और शक्ति से (सं मिमिक्षुः) परस्पर मिल कर शत्रु पर शरवर्षण, राष्ट्र में राज्याभिषेक और प्रजा में क्षेत्रादि-सेचन और परस्पर वृद्धि करो।

यत्प्रायासिष्ट पृषतीभिरश्वैर्वीळुपविभिर्मरुतो रथेभिः
क्षोदन्त आपो रिणते वनान्यवोस्रियो वृषभः क्रन्दतु द्यौः ॥ ६ ॥

भा०—(मरुतः पृषतीभिः) वायु गण जैसे जल-सेचनकारी मेघ-घटाओं से और (वीडु-पविभिः) बलवान् वज्रघातों से प्रहार करते हैं, तब (आपः क्षोदन्ते) जल बून्द २ में फट २ कर आते हैं और (वनानि रिणते) वनों को आघात करते हैं। (उस्रियः वृषभः) किरणों का स्वामी वर्षणशील (द्यौः) सूर्य और (उस्रियः) पृथिवी का हितैषी मेघ-रूप से गर्जता है। वैसे ही हे (मरुतः) वीर पुरुषो! (यत्) जब आप लोग (पृषतीभिः) शत्रु पर शरवर्षण करने वाली सैन्य-घटाओं और मद-सेचन करने वाली गज-घटाओं तथा (अश्वैः) वेगवान् अश्वों से और (वीडु-पविभिः) दृढ़ चक्र-धार वाले (रथेभिः) रथों से (प्रायासिष्ट) प्रयाण करते, तब (आपः) आप्त, प्रजा-गण (क्षोदन्ते) धनैश्वर्यादि से बरसते हैं और (वनानि रिणते) सैन्य जन और ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं और (उस्रियः) भूमि का हितैषी (द्यौः) सूर्य-समान वीर-पुरुष (अव क्रन्दतु) गर्जना करे।

प्रथिष्ट यामन्पृथिवी चिदेषां भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः।
वातान्ह्यश्वान्धुर्या युयुज्रे वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः ॥ ७ ॥

भा०—(एषां यामन् पृथिवी प्रथिष्ट) वायुओं के चलने के निमित्त जैसे पृथिवी विस्तृत क्षेत्र है वैसे ही (एषां यामन्) इन वीर पुरुषों के शासन और प्रयाण-काल में (पृथिवी) यह भूमि (प्रथिष्ट) अति विस्तृत हो। (भर्त्ता यथा स्वं शवः गर्भं दधाति) पति जैसे अपने वीर्य को गर्भ-रूप से धारण कराता है वैसे ही वायु-गण भी (स्वं शवः)

अपने जल-रूप (गर्भं) अंश को अन्तरिक्ष में धारण कराते हैं: वीर पुरुष भी (भर्त्ता इव) पालक राजा के समान ही (गर्भम्) ग्रहण-योग्य (स्वम् इत् शवः) धन और बल को (धुः) धारण करें। जैसे (धुर्याः) धारक वायु-गण (वातान् युयुज्रे) वायु के झकोरे लगते हैं वैसे ही (धुर्याः) सैन्यों और राष्ट्र के धारण में समर्थ, कुशल पुरुष (वातान् अश्वान्) वायुवत् तीव्र अश्वों को (युयुज्रे) रथ में जोड़ें और (रुद्रियासः) दुष्टों को रुलाने वाले ये वीरजन (वर्षं) वर्षा-तुल्य ही (स्वेदं चक्रिरे) प्रस्वेद को उत्पन्न करें अर्थात् श्रमपूर्वक धनोपार्जन और विजय करें।

हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥८॥२३॥

भा०—(हये) हे (मरुतः नरः) वायुवत् बलवान्, नायक पुरुषो! आप (तुवि-मघासः) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामी (अमृताः) दीर्घायु और (ऋत-ज्ञाः) सत्य के ज्ञाता होकर (नः मृडत) हमें सुखी करो। आप (सत्य-श्रुतः) सत्य का श्रवण करने वाले, (कवयः) क्रान्तदर्शी, (युवानः) सदा जवान, (बृहद्-गिरयः) गुणों में बड़े, मेघ के तुल्य सुखों की धारा बहाने वाले और (उक्षमाणाः) क्षेत्र में जल, वीर्यादि सेचन करते हुए (बृहत्) बहुत-सा धन-धान्य, ऐश्वर्य प्राप्त करो। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[५९]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः॥ मरुतो देवताः॥ छन्दः—१, ४ विराड्-जगती। २, ३, ६ निचृज्जगती। ५ जगती। ७ स्वराट् त्रिष्टुप्। ८ निचृत्त्रिष्टुप्॥

प्र वः स्पळक्रन्त्सुवितायं दावनेऽर्चा दिवे प्र पृथिव्या ऋतं भरे।
उक्षन्ते अश्वान्तरुषन्त आ रजोऽनु स्वं भानुं श्रथयन्ते अर्णवैः ॥१

भा०—हे राजन्! जो वीर एवं प्रजा के लोग (सुविताय) उत्तम

मार्ग में सुख से जाने और सुखमय जीवन बिताने के लिये और (दावने दिवे) दानशील तेजस्वी पुरुष, राजा के लिये (पृथिव्यै) और पृथिवी वा उसके वासी जनों और अज्ञानी आश्रित जनों के (भरे) भरण-पोषण वा संग्रामादि के लिये (ऋतम् प्र अक्रन्) जल, अन्न उत्पन्न करते और सत्य न्याय की व्यवस्था वा प्रयाण करते हैं, हे राजन् ! तू (स्पट्) सर्व-द्रष्टा होकर उनका (प्र अर्च) आदर-सत्कार किया कर। इसी प्रकार जो वीर, प्रजा जन (अश्वान् उक्षन्ते) अश्व-सैन्यों को सञ्चालित करते हैं, उनका भरण-पोषण आदि का भार अपने ऊपर लेते हैं और जो (रजः) समस्त लोक को (तरुषन्त) व्यापते, दुनियां भर में जाते आते रहते हैं और जो (अर्णवैः) जल भरे समुद्रों वा नदियों द्वारा (अनु) निरन्तर (स्वं भानुं) अपने तेज वा धनैश्वर्य को (श्रथयन्ते) सञ्चित करते हैं उन व्यापारी और यान-कुशल लोगों का तू (प्र अर्च) आदर कर। ये वायुगण (दिवे पृथिव्यै ऋतम् अक्रन्) आकाश से जल और पृथिवी पर अन्न उत्पन्न करते हैं (अश्वान्) मेघों वा सूर्य किरणों को धारते, (रजः) अन्तरिक्ष में वेग से जाते, तथा (भानुं) सूर्य-प्रकाश को (श्रथयन्ते) शिथिल, सह्य कर देते हैं।

अमा॑देषां भि॒यसा॒ भूमि॑रेजति॒ नौर्न पू॒र्णा क्ष॑रति॒ व्यथि॒र्यती॑।
दू॒रे॒दृशो॒ ये चि॒तय॑न्त॒ एम॑भिर॒न्तर्म॒हे वि॒दथे॑ येतिरे॒ नरः॑ ॥ २ ॥

भा०—(एषां) इन बलवान् पुरुषों के (भियसा) भय से (भूमिः) भूमि (नौः न) नाव के समान (एजति) कांपती है और (अमात् यती) घर से निकलती हुई (व्यथिः) दुःखों से पीड़ित हुई स्त्री के तुल्य यह (पूर्णा) जल से पूर्ण भूमि भी (क्षरति) अश्रुवत् जल वर्षण करती है। (ये) जो विद्वान् पुरुष (दूरेदृशः) दूरवीक्षणादि यन्त्रों से दूर देखने में समर्थ एवं बुद्धिपूर्वक भविष्य को देख लेने वाले हैं वे (एमभिः) ज्ञानों से, मार्गों से और अपने आचरणादि से (चितयन्त) अन्यों को सचेत

करें और (नरः) वे नायक जन (अन्तः महे विदथे) भीतरी, ज्ञान और यज्ञ संग्रामादि में भी (येतिरे) यत्नशील हों ।

गवामिव श्रियसे शृङ्गमुत्तमं सूर्यो न चक्षू रजसो विसर्जने ।
अत्या इव सुभ्वश्चारवः स्थन मर्या इव श्रियसे चेतथा नरः ॥३॥

भा०—हे (नरः) नायको ! हे विद्वन् पुरुषो ! (गवाम्-इव शृङ्गम् उत्तमम्) जैसे गौवों का सींग सबसे ऊंचा तथा (श्रियसे) उसके शरीर की शोभा के लिये भी होता है वैसे ही आप का (उत्तमम्) सबसे उत्तम (शृङ्गम्) शत्रु-मारक शस्त्रास्त्र बल भी (श्रियसे) प्रजा को आश्रय देने और लक्ष्मी की वृद्धि के लिये हो । (रजसः विसर्जने सूर्यः चक्षुः) प्रकाश और जल देने के लिये जैसे सूर्य सर्वप्रकाशक है, वैसे ही हे विद्वान् पुरुषो ! (रजसः विसर्जने) राजस भावों को त्याग और अन्य लोगों को विविध मार्गों में चलाने के लिये आप का (चक्षुः) तत्वदर्शी दर्शन ही सूर्यवत् प्रकाशक हो और आप (अत्याः इव) वेगवान् अश्वों के तुल्य (सुभ्वः) सामर्थ्यवान्, उत्तम भूमियों के स्वामी और (चारवः) श्रेष्ठ मार्ग में चलने वाले (स्थन) होवो और आप लोग (श्रियसे) ऐश्वर्य-वृद्धि के लिये (मर्याः इव) सामान्य मनुष्यों के समान होवो, (चेतथ) सदा सावधान रहो ।

को वो महान्ति महतामुदश्नवत्कस्काव्या मरुतः को ह पौंस्या ।
यूयं ह भूमिं किरणं न रेजथ प्र यद्भरध्वे सुवितायं दावने ॥४॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (महतां वः) बड़े सामर्थ्यवान् आप लोगों के (महान्ति) बड़े २ सामर्थ्यों को (कः) कौन (उद् अश्नवत्) पा सकता है ? आप के (काव्या) विद्वानों द्वारा कहे कार्यों तथा बनाये शस्त्रों का भी पार (कः) कौन पा सकता है, (पौंस्या) और आप लोगों के पराक्रमों का भी (कः ह) कौन मुकाबला कर सकता है ? (यूयं ह) आप (भूमिं) भूमि को (किरणं न) सूर्य-किरण के तुल्य (प्र

रेजथ) विचलित कर सकते हो, (यत्) जो आप लोग (सुविताय) ऐश्वर्यवान् दाता, स्वामी की वृद्धि के लिये (प्र भरध्वे) उत्तम रीति से प्रजा का भरण-पोषण, तथा शत्रु पर प्रहार करते हो।

अश्वा॑ इ॒वेद॑रु॒षासः॒ सब॑न्धवः॒ शूरा॑ इव प्र॒युधः॒ प्रोत यु॑युधुः।
मर्या॑ इव सु॒वृधो॑ वावृधु॒र्नरः॒ सूर्य॑स्य॒ चक्षुः॒ प्र मि॑नन्ति वृ॒ष्टिभिः॑ ॥५॥

भा०—वे वीर और विद्वान् पुरुष (अश्वाः इव) वेगवान् घोड़ों के समान (अरुषासः) लाल पोषाकों वाले, वा तेजस्वी, (स-बन्धवः) परस्पर बन्धुवत्, एक ही नायक के अधीन, (शूराः इव) योद्धाओं के समान (प्र-युधः) प्रहार करने में समर्थ होकर (युयुधुः) युद्ध करें। वे (नरः) नायक पुरुष (मर्याः इव) मनुष्यों के समान (सुवृधः) प्रजा-वृद्धि करते हुए स्वयं भी (वृवृधुः) बढ़ें। (वृष्टिभिः) वर्षाओं से जैसे वायुगण (सूर्यस्य चक्षुः प्रमिनन्ति) सूर्यादि के प्रकाशक तेज को नष्ट करते हैं वैसे ही वे भी (वृष्टिभिः) शस्त्रास्त्र वर्षाओं द्वारा संग्राम में (सूर्यस्य) सूर्य तुल्य तेजस्वी शत्रु की (चक्षुः) आंखों को (प्र मिनन्ति) अच्छी प्रकार नष्ट करें।

ते अ॑ज्ये॒ष्ठा अक॑निष्ठास उ॒द्भिदोऽम॑ध्यमासो॒ मह॑सा॒ वि वा॑वृधुः।
सु॒जा॒तासो॑ ज॒नुषा॒ पृश्नि॑मातरो दि॒वो मर्या॒ आ नो॒ अच्छा॑ जिगातन ॥६॥

भा०—(ते) वे (अज्येष्ठाः) अपने से बड़े पुरुष से पृथक्, (अक-निष्ठासः) बहुत छोटे व्यक्तियों से पृथक् और (अमध्यमासः) मध्यम, समान व्यक्तियों से पृथक्, निर्मम (उद्भिदः) पृथ्वी को फोड़ कर उत्पन्न हुए वृक्षों के तुल्य, सदा ऊंचे लक्ष्य को भेदने वाले, उत्तम मनुष्य (महसा) महान् सामर्थ्य से (वि ववृधुः) विशेष वृद्धि को प्राप्त करते हैं। वे (सु-जातासः) उत्तम ऐश्वर्य आदि गुणों में प्रसिद्ध (जनुषा) जन्म से, स्वभावतः (पृश्नि-मातरः) सूर्य से उत्पन्न किरणों के समान पोषक, भूमि-माता के पुत्र, एवं आचार्य के पुत्र-तुल्य वीर जन (दिवः)

नाना कामनाओं को करने वाले (मर्ताः) मनुष्य (नः) हमें (अच्छ जिगातन) उत्तम रीति से प्राप्त हों।

वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसान्तान्दिवो बृहतः सानुनस्परि।
अश्वास एषामुभये यथा विदुः प्र पर्वतस्य नभनूँरचुच्यवुः ॥७॥

भा०—जो बलवान् वीर सैनिक गण (वयः) सूर्य-किरणों के समान (श्रेणीः) श्रेणियां या पंक्तियें बनाकर (पप्तुः) प्रयाण करते और (ओजसा) पराक्रम से (बृहतः दिवः) बड़े २ व्यवहारों वा बड़ी कामनाओं को और (सानुनः परि) शिखर-वत् भोग-योग्य उत्तम पद के ऊपर भी प्राप्त होते हैं। जैसे वायु गण (पर्वतस्य नभनून् अचुच्यवुः) मेघ की गर्जती जल-धारों और वज्रों को चलाते वा गिराते हैं वैसे ही (एषाम्) इनके (उभये) दोनों प्रकार के (अश्वासः) अश्वारोही जन (यथा विदुः) जैसा भी जानते और ऐश्वर्यादि प्राप्त करते हैं तदनुसार, (पर्वतस्य) अपने पालक राजा वा सेनापति के (नभनून्) आज्ञा वचनों को (प्र अचुच्युवुः) अच्छी प्रकार पालन करते हैं। पूर्वार्ध में कहे अश्वों को दो प्रकार हैं, एक, जो पंक्तिबद्ध होकर चलें, दूसरे, जो मुख्य पद पर स्थित हों। नभन्वः इति नदी नाम।

मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः सं दानुचित्रा उषसो यतन्ताम्।
आचुच्यवुर्दिव्यं कोशमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ॥८॥२४॥

भा०—(द्यौः) सूर्य-समान तेजस्वी पुरुष (वीतये) ज्ञान से प्रकाशित करने और पालन के लिये (नः मिमातु) हमें प्राप्त हो और (अदितिः) पृथिवी जैसे (वीतये) खाने के लिये अन्न पैदा करती है वैसे ही अखण्ड शासक राजा वा माता और पिता (नः वीतये) हमारे भोजनादि के लिये उपाय करें। (उषसः) प्रभात के समान कान्तिमयी स्त्रियें, (दानुचित्राः) नाना देने योग्य आभूषणों से मनोहर होकर (सं यतन्ताम्) पुरुषों के साथ उद्योग करें। हे (ऋषे) द्रष्टः! सर्वाध्यक्ष!

(घृते) ये (गृणानाः मरुतः) स्तुति-योग्य वीर और विद्वान् पुरुष, (रुद्रस्य) दुष्टों के रुलाने वाले सेनापति तथा सर्वोपदेष्टा आचार्य के (दिव्यं कोशम्) दिव्य खङ्ग तथा दिव्य ज्ञानमय कोश को (अचुच्युवुः) प्रयोग में लावें। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[६०]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो वाग्निश्च देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। २ भुरिक् त्रिष्टुप्। ६ विराट् त्रिष्टुप्। ७, ८ जगती ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

ईळे॑ अ॒ग्निं स्वव॑सं॒ नमो॑भिरि॒ह प्र॑स॒त्तो वि च॑यत्कृ॒तं नः॑।
रथै॑रिव॒ प्र भ॑रे वाज॒यद्भिः॑ प्रदक्षि॒णिन्म॒रुतां॒ स्तोम॑मृध्याम् ॥ १ ॥

भा०—मैं प्रजाजन (सु-अवसं) उत्तम रक्षक (अग्निम्) अग्रणी पुरुष को (नमोभिः) आदर सत्कारों से (ईडे) अधिकारी बनाता हूँ, जो (प्र-सत्तः) उत्कृष्ट पद पर विराज कर (नः) हमारे (कृतं) किये कामों का (वि चयत्) अच्छी प्रकार विवेक करे और (वाजयद्भिः रथैः) संग्राम करने वाले रथों से जैसे (मरुतां स्तोमम् भरे) शत्रुहन्ता वीर पुरुषों का गण संग्राम में समृद्ध होता है, वैसे ही मैं प्रजाजन (भरे) पालन-पोषण के लिए (वाजयद्भिः रथैः) अन्न, ऐश्वर्यादि-हेतु जाने वाले यानों से (प्र-दक्षिणित्) पृथिवी का चक्कर लगाता हुआ (मरुतां स्तोमम्) मनुष्यों के समूह को (प्र ऋध्याम्) समृद्ध करूं।

आ ये त॒स्थुः पृष॑तीषु श्रु॒तासु॑ सु॒खेषु॑ रु॒द्रा म॒रुतो॒ रथे॑षु।
वना॑ चिदुग्रा जिहते॒ नि वो॑ भि॒या पृ॑थि॒वी चि॑द्रेजते॒ पर्व॑तश्चित् ॥ २ ॥

भा०—(ये) जो (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने और सबके उपदेष्टा वीर, विद्वान् जब (सुखेषु रथेषु) सुखजनक रथों में और (श्रुतासु पृषतीषु) चित्र-विचित्र अश्वों, अन्तःकरण में ज्ञान-रस वर्षाने वाली, श्रुत विद्याओं में (आतस्थुः) विराजते हैं उन (वः) आप के (भिया) भय से

(वना चित्) सूर्य-किरणों के तुल्य तीक्ष्ण, (उग्राः) तीव्र वायु-तुल्य शत्रु-गण भी (नि जिहते) नम्र हो जाते हैं। (पृथिवी चित् रेजते) पृथिवी, उसमें निवासिनी प्रजा भी कांपती है, (पर्वतः चित् रेजते) पर्वत या मेघतुल्य ऊंचा राजा, शत्रु भी कांप जाता है।

पर्वतश्चिन्महि वृद्धो बिभाय दिवश्चित्सानु रेजत स्वने वः।
यत्क्रीळथ मरुत ऋष्टिमन्त आप इव सध्र्यञ्चो धवध्वे ॥ ३ ॥

भा०—हे वीर, विद्वान् पुरुषो! (वः स्वने) आपका गर्जन और उपदेश होने पर (पर्वतः चित्) पर्वत-तुल्य (वृद्धः) शक्ति में बढ़ा हुआ शत्रु भी (महि बिभाय) बहुत डरता है। (दिवः चित् सानु) आकाश के उच्च भाग के तुल्य तेजस्वी पुरुष का भी शिर आदि कांप जाता है। हे (मरुतः) वीरो! विद्वान् पुरुषो! (यत्) जब आप (ऋष्टि-मन्तः) शस्त्रों और ज्ञानों से सम्पन्न होकर (क्रीडथ) विहार करते हो तब जैसे वायु-वेगों से जलधाराएं मेघ से एक साथ नीचे उतरती हैं वैसे ही आप भी (आपः) जल-धाराओं के तुल्य आप्त, (सध्र्यञ्चः) साथ जाते हुए (धवध्वे) शत्रु को कंपाओ, आगे बढ़ो।

वरा इवेद्रैवतासो हिरण्यैरभि स्वधाभिस्तन्वः पिपिश्रे।
श्रिये श्रेयांसस्तवसो रथेषु सत्रा महांसि चक्रिरे तनूषु ॥ ४ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो! (वरा इव रैवतासः) जैसे वर धन-सम्पन्न होकर (तन्वः) शरीरों को (हिरण्यैः) सुवर्णाभूषणों व (स्वधाभिः) अन्नों से (पिपिश्रे) सजाते और अंगों को पुष्ट करते हैं वैसे ही आप (रैवतासः) धन-धान्य से सम्पन्न होकर (हिरण्यैः स्वधाभिः) उत्तम गुणों, सुवर्णादि आभूषणों और देह-धारक शक्ति से (तन्वः पिपिश्रे) शरीर के अंगों को सुन्दर और दृढ़ करो, आप लोग (श्रेयांसः) श्रेष्ठ और (तवसः) बली होकर, (रथेषु) रथों पर चढ़े और (तनूषु) देहों में सुशोभित रहकर (श्रिये) धन-समृद्धि और शोभा-वृद्धि के लिये (महांसि सत्रा) बड़े युद्ध और यज्ञ आदि (चक्रिरे) करें।

अ॒ज्येष्ठासो॒ अक॑निष्ठास ए॒ते सं भ्रात॑रो वावृधुः सौभ॑गाय।
युवा॑ पि॒ता स्वपा॑ रु॒द्र ए॑षां सु॒दुघा॒ पृश्निः॑ सु॒दिना॑ म॒रुद्भ्यः॑ ॥५॥

भा०—(एते) ये विद्वान् और वीरगण,(अज्येष्ठासः) न एक दूसरे से बड़े और (अकनिष्ठासः) न एक दूसरे से छोटे, समान मान, पदाधिकार से युक्त होकर (भ्रातरः) भाई-तुल्य परस्पर पुष्ट करते हुए (सौभगाय) उत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति हेतु (वावृधुः) खूब बढ़ें। (एषां) इनका (पिता) पालक (रुद्रः) दुष्टोंको रुलाने वाला, एवं उत्तम उपदेष्टा, (युवा) बलशाली, (सु-अपाः) उत्तम कर्मों का कर्ता है। (मरुद्भ्यः) इन बली और कर्मण्य प्रजावर्गों के लिये (पृश्निः) सूर्य और पृथिवी (सु-दुघा) सुखद पदार्थ देने वाली, जलवर्षी और अन्नदात्री हों, (सुदिना) सूर्य उत्तम दिनकारक हो।

यदु॑त्त॒मे म॑रुतो मध्य॒मे वा॒ यद्वा॑व॒मे सु॑भगासो दि॒वि ष्ठ।
अतो॑ नो रुद्रा उ॒त वा॒ न्व१॒॑स्याग्ने॑ वि॒त्ताद्ध॒विषो॒ यद्यजा॑म ॥ ६ ॥

भा०—हे (मरुतः) वीर,ज्ञानी पुरुषो! आप (यत् उत्तमे यत् मध्यमे यत् वा अवमे) जो उत्तम, मध्यम और निकृष्ट (दिवि) व्यवहार वा कर्मों में या स्थानों पर (स्थ) रहते हो, वहां आप (सु-भगासः) ऐश्वर्यवान् रहो। (हे रुद्राः उत वा हे अग्ने) हे दुष्टों को रुलाने वालो! और हे अग्नि तुल्य तेजस्विन्! हम (यत् यजाम) जो कुछ दें, आप (अस्य हविषः) इस देने योग्य अन्न आदि को (नु) सदा (नः वित्तात्) हमारा आदर-पूर्वक स्वीकार करें।

अ॒ग्निश्च॒ यन्म॑रुतो विश्ववेदसो दि॒वो वह॑ध्व॒ उत्त॑रा॒दधि॒ ष्णुभिः॑।
ते म॑न्दसा॒ना धुन॑यो रिशादसो वा॒मं ध॑त्त॒ यज॑मानाय सुन्व॒ते ॥७

भा०—हे (मरुतः) बलवान् पुरुषो! आप (विश्व-वेदसः) सब धनों के स्वामी (अग्निः) तेजस्वी आप (दिवः) ज्ञान, तेज को चाहते हुए (उत्तरात्) उत्कृष्ट (दिवः) ज्ञानयुक्त पुरुष से (स्नुभिः) अन्य इच्छा-

वान् पुरुषों सहित वा ज्ञानोपदेशों द्वारा (यत् अधि वहध्वे) जो ज्ञान प्राप्त करते हों, (ते) वे आप (मन्दसानाः) प्रसन्न (धुनयः) शत्रुओं को कंपाते हुए, (रिशादसः) हिंसक प्राणियों का नाश करते हुए (यजमानाय) गुणों की याचना और सत्संग करने वाले तथा (सुन्वते) अन्न ऐश्वर्यादि दाता पुरुष की वृद्धि हेतु (वामं) उत्तम ऐश्वर्य (धत्त) दो।

अग्ने॑ म॒रुद्भिः॑ शुभ॒यद्भि॒र्ऋक्व॑भिः॒ सोमं॑ पिब मन्दसा॒नो ग॑ण॒श्रिभिः॑ ।
पा॒व॒केभि॑र्विश्वमि॒न्वेभि॑रा॒युभि॒र्वैश्वा॑नर प्र॒दिवा॑ के॒तुना॑ स॒जूः ।।८।२५

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे (वैश्वानर) समस्त नरों के हितैषिन् ! हे विद्वान् ! तू (शुभयद्भिः) शुभ मार्ग से जाने वाले, (ऋक्वभिः) वेदज्ञ, (गणश्रिभिः) गण-शोभा धारक पुरुषों से (मन्दसानः) आनन्दित होता हुआ (सोमं पिब) ऐश्वर्य-भोग कर और (पावकेभिः) पवित्रकर्त्ता अग्नि-तुल्य कण्टकशोधक, (विश्वमिन्वेभिः) विश्व को प्रसन्न करने वाले, विद्वान् (आयुभिः) पुरुषों-सहित, तू (प्रदिवा केतुना) अति तेजस्वी ध्वजा, वा व्यवहार-युक्त पुरातन सर्वज्ञापक वेद से (सजूः) समान रूप से शोभित होकर (सोमं पिब) सौम्य शिष्यगण एवं राजगण का पालन कर। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[६१]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ १-४, ११-१६ मरुतः। ५-८ शशीयसी तरन्तमहिषी। ९ पुरुमीळ्हो वैददश्विः। १० तरन्तो वैददश्विः। १७-१९ रथवीतिर्दाल्भ्यो देवताः ॥ छन्दः—१-४, ६-८, १०-१९ गायत्री। ५ अनुष्टुप्। ९ सतोबृहती ॥ एकोनविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

के ष्ठा॑ नरः॒ श्रेष्ठ॑तमा॒ य एक॑एक आ॒यय॑ ।
प॒र॒मस्याः॑ परा॒वतः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (नरः) विद्वान् पुरुषो ! आप (के स्थ) कौन हैं ? (ये) जो (श्रेष्ठतमाः) अति श्रेष्ठ हैं, वे (एकः एकः) आप एक-एक करके

(परमस्याः) बहुत ही (परावतः) दूर की सीमा से (आयय) आया करते हैं ? दूर से आने वाले का आतिथ्य करना चाहिये।

क्व॑ वोऽश्वाः॒ क्वा॒३भीश॑वः कु॒थं शे॑क कु॒था य॑य।

पृ॒ष्ठे सदो॑ न॒सोर्यमः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! (वः) आप के (अश्वाः क्व) अश्व कहां हैं ? (अभीशवः क्व) बाग-डोरें कहां हैं ? (कथं शेक) कैसे आप शीघ्र जाने में समर्थ होते हैं ? (कथा यय) किस प्रकार जाते हो ? (पृष्ठे सदः) पीठ पर कैसे बैठने का साज है ! (नसोर्यमः) नासिकाओं में नाथ के समान पशु आदि को नियन्त्रण करने वाला सारथी कहां है ?

ज॒घने॒ चोद॑ एषां॒ वि स॒क्थानि॒ नरो॑ यमुः।

पु॒त्रकृ॒थे न जन॑यः ॥ ३ ॥

भा०—जैसे अश्वों के (जघने चोदः) चूतड़ भाग पर कशा प्रहार होता है वैसे ही (एषां) इन मनुष्यों और वीर पुरुषों के (जघने) निरन्तर गमन और हनन कार्य में भी (चोदः) प्रेरक पुरुष नियुक्त हो। वे लोग इस समय (सक्थानि वि यमुः) अपने घुटने से टखने तक की टांगों को विशेष प्रकार से बांधें और (पुत्र-कृथे न) जैसे पुत्र उत्पन्न करने के लिये (नरः) पुरुष (जनयः) स्त्रियों को (वि यमुः) विशेष नियमपूर्वक प्रतिज्ञाबद्ध होकर विवाहित करते हैं वैसे ही ये मनुष्य भी (पुत्र-कृथे) पुत्रादि के लिये, (सक्थानि वि यमुः) प्राप्ति-योग्य साधनों को प्राप्त करने के लिये विशेष नियमों से बद्ध हों।

परा॑ वीरास एतन॒ मर्या॑सो॒ भद्र॑जानयः।

अ॒ग्नि॒त॒पो यथास॑थ ॥ ४ ॥

भा०—हे (वीरासः) वीर पुरुषो ! हे (मर्यासः) शत्रु मारक सैनिक जनो ! जैसे (भद्र-जानयः) सुखकारी स्त्री को प्राप्त करने वाले पुरुष दूर देश तक जाते और विवाह करते हैं वैसे ही आप (भद्र-जानयः) सुख-

कारी पदार्थों के उत्पादक होकर (परा एतन) दूर देशों तक जाओ और (यथा) जैसे लोग (अग्नि-तपः) पूर्ववय में अग्नि अर्थात् आचार्य के अधीन तप करके रहते हैं वैसे ही आप लोग भी अग्रणी पुरुष के अधीन शत्रु सन्तापक (असथ) बनो।

सनत्साश्व्यं पशुमुत गव्यं शतावयम्।
श्यावाश्वस्तुताय या दोर्वीरायोपबर्बृहत् ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—(या) जो स्त्री (श्यावाश्व-स्तुताय) श्यामकर्ण अश्वों द्वारा प्रशंसित अथवा जितेन्द्रिय होने से (वीराय) वीर पुरुष को (दोः) अपनी भुजा (उप बर्बृहत्) सिरहाने के समान देती है, वह स्त्री वीर से विवाह करके (अश्व्यं) अश्वों (गव्यं) गौओं से युक्त (पशुम्) पशु-सम्पदा और (शतावयम्) सैकड़ों भेड़ों के धन को (सनत्) भोग करती है। इति षड्विंशो वर्गः ॥

उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी।
अदेवत्रादराधसः ॥ ६ ॥

भा०—(त्वा) वह स्त्री जो (वस्यसी) धन-सम्पन्न है, वह (पुंसः शशीयसी भवति) पुरुष को संकटों से पार करने हारी है। वह स्त्री (अदेवत्रात्) जो मनुष्य विद्वान् पुरुषों की रक्षा नहीं करता और जो (अराधसः) आराधना नहीं करता वा धन-हीन है उससे पृथक् रहे।

वि या जानाति जसुरिं वि तृष्यन्तं वि कामिनम्।
देवत्रा कृणुते मनः ॥ ७ ॥

भा०—(या) जो स्त्री (जसुरिं) पीड़क, (तृष्यन्तं) तृष्णातुर और (कामिनं) कामी पुरुष को (वि, वि जानाति) विपरीत भाव से जान लेती है वह अपने (मनः) मन को (देवत्रा कृणुते) तेजस्वी पुरुषों में लगा दे और वह विषयासक्त पुरुष को न वर कर उत्तम पुरुषों में पति चुने।

उत घा नेमो अस्तुतः पुमाँ इति ब्रुवे पणिः ।
स वैरदेय इत्समः ॥ ८ ॥

भा०—(उत घ) और जो (पुमान्) पुरुष (नेमः) स्त्री का अर्धाङ्ग होकर भी (अस्तुतः) गुणहीन है और दूसरा जो (पणिः) विद्यादि गुणों से युक्त है, वह भी (वैरदेये) परस्पर वैर वा वीरता के कार्य में (समः इत्) समान हैं (इति ब्रुवे) मैं ऐसा कहता हूँ ।

उत मेऽरपद्युवतिर्ममन्दुषी प्रति श्यावाय वर्तनिम् ।
वि रोहिता पुरुमीळ्हाय येमतुर्विप्राय दीर्घयशसे ॥ ९ ॥

भा०—(युवतिः) जवान स्त्री (ममन्दुषी) प्रसन्न चित्त होकर (रोहिता) लाल वर्ण के उत्तम वस्त्र पहनती हुई, अनुरागवती होकर (पुरुमीढाय) बहुत से पुत्रों का निषेक करने में समर्थ, (श्यावाय) स्वयं भी रक्तवर्ण, अश्व-समान दृढ़, वर्ण (विप्राय) विद्वान् (दीर्घयशसे) महा यशस्वी (मे) मेरे लिये (वर्त्तनिम्) अपने व्यवहार को (अरपत्) अलाप द्वारा कहे, तब दोनों स्त्री-पुरुष (रोहिता) परस्परानुरक्त होकर (वि येमतुः) विशेष रूप से विवाह में बंध जाते हैं ।

यो मे धेनूनां शतं वैददश्विर्यथा ददत् ।
तरन्त इव मंहना ॥ १० ॥ २७ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (मंहना) भारी नाव द्वारा (तरन्तः इव) समुद्र के पार उतारने वाले नाविक के तुल्य अपने सामर्थ्य से संसार-सागर से पार उतारने हारा होकर (वैददश्विः) इन्द्रियों को वश करता है, वह ही (मे) मुझे (धेनूनां शतं) मानो सैकड़ों गौवें तथा उत्तम वाणियां देता है ।

य ईं वहन्त आशुभिः पिबन्तो मदिरं मधु ।
अत्र श्रवांसि दधिरे ॥ ११ ॥

भा०—(ये) जो (अत्र) इस लोक में (श्रवांसि) श्रवण-योग्य ज्ञानों

और कीर्तियों को (दधिरे) धारते हैं और (मदिरं) हर्षजनक (मधु) अन्न और ज्ञान का (पिबन्तः) पान करते हैं वे (आशुभिः) शीघ्रगामी अश्वों से रथ के समान वेगगामी दृढ़ अंगों द्वारा (ईं) इस गृहस्थ रूप रथ को (वहन्ते) धारण करते हैं।

येषां श्रियाधि रोदसी विभ्राजन्ते रथेष्वा।

दिवि रुक्म इवोपरि॥ १२॥

भा०—(दिवि उपरि रुक्मः इव) आकाश में, ऊपर जैसे तेजस्वी सूर्य चमकता है और उसकी (श्रिया रोदसी) कान्ति से आकाश और पृथिवी प्रकाशित होते हैं वैसे ही (येषां श्रिया) जिनकी कान्ति से (रोदसी) ये स्त्री पुरुष (अधि) शोभा पाते हैं, वे ही (रथेषु) रथों और रमण-योग्य कार्यों में भी (वि भ्राजन्ते) विशेष चमकते हैं।

युवा स मारुतो गणस्त्वेषरथो अनेद्यः।

शुभंयावाप्रतिष्कुतः॥ १३॥

भा०—जैसे वायु-गण (त्वेष-रथः) प्रदीप्त सूर्य के द्वारा वेगगामी होता है तथा (अप्रतिष्कुतः) किसी से उसकी शक्ति बाधित नहीं होती और वह (शुभं यावा) जल-वृष्टि कराता है वैसे ही (युवा मारुतः गणः) युवावस्था में मनुष्य-गण (सः) वह भी (त्वेषरथः) चमकीले रथ में चढ़कर (अनेद्यः) अनिन्दनीय, सज्जन हो। (शुभं-यावा) शोभायुक्त होकर धर्म-मार्ग पर चलें। एवं (अप्रति-ष्कुतः) अन्यों से स्पर्द्धा में पराजित न हों।

को वेद नूनमेषां यत्रा मदन्ति धूतयः।

ऋतजाता अरेपसः॥ १४॥

भा०—वायु-गण के तुल्य जो (धूतयः) वृक्ष-तुल्य शत्रुओं को कंपाने वाले (ऋत-जाताः) सत्य, ऐश्वर्य और ज्ञान के लिये प्रसिद्ध और (अरेपसः) निष्पाप पुरुष (यत्र) जिस विशेष कार्य में (मदन्ति)

प्रसन्न रहैं उसको (नूनम्) निश्चय-पूर्वक (किः वेद) कौन जान सकता है ?

यूयं मर्तं विपन्यवः प्रणेतारं इत्था धिया ।

श्रोतारो यामहूतिषु ॥ १५ ॥ २८ ॥

भा०—हे (वि-पन्यवः) विशेष मेधावी पुरुषो ! (यूयं) आप (मर्तम्) मनुष्य को (प्र-णेतारः) सु-मार्गों में चलाने हारे (याम-हूतिषु) नियन्त्रणकारी सेनापति की आज्ञाओं को (श्रोतारः) सुनने हारे हैं। आप (इत्था धिया) ऐसी ही उत्तम बुद्धि से विचार कर ठीक २ कार्य करें। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

ते नो वसूनि काम्या पुरुश्चन्द्रा रिशादसः ।

आ यज्ञियासो ववृत्तन ॥ १६ ॥

भा०—हे (यज्ञियासः) दानशील, सत्संग-योग्य, (रिशादसः) हिंसकों के नाशक, (पुरु-चन्द्राः) बहुत-सी धन सम्पदा के स्वामियो ! (ते) वे आप लोग (नः) हमारे लिये (काम्या वसूनि) कामना-योग्य ऐश्वर्यों को (आ ववृत्तन) पुनः-पुनः प्राप्त करो ।

एतं मे स्तोममूर्म्ये दार्भ्याय परा वह ।

गिरो देवि रथीरिव ॥ १७ ॥

भा०—हे (ऊर्म्ये) रात्रि-तुल्य सुखदायिनि ! हे (देवि) तेजस्विनि ! (रथीः इव) रथी जैसे (स्तोमं वहति गिरश्च परा वहति) नाना पदार्थों को और दूसरों के वचनों या संदेशों को भी देशान्तर तक ले जाता है वैसे ही तू भी (दार्भ्याय) 'दर्भ' अर्थात् शत्रु-विदारण में कुशल नायक के लिये (मे एतं स्तोमं) मेरे इस स्तुति-वचन और (गिरः) उत्तम वाणियों को (परा वह) दूर तक प्राप्त करा ।

उत मे वोचतादिति सुतसोमे रथवीतौ ।

न कामो अप वेति मे ॥ १८ ॥

५ च.

भा०—(सुत-सोमे) जिसने ऐश्वर्य और ज्ञान प्राप्त किया और (रथवीतौ) रथ के द्वारा गृहों पर प्राप्त हों ऐसे आदरणीय पुरुष के प्रति प्रार्थना करें कि, हे विद्वन्! (मे इति वोचतात्) मुझ श्रोता को ऐसा सत्योपदेश कीजिये कि (मे कामः) मेरी श्रवणेच्छा (न अप वेति) कभी दूर नहीं हो।

एष क्षे॑ति रथ॑वीतिर्म॒घवा॒ गोम॑ती॒रनु॑ ।
पर्व॑ते॒ष्वप॑श्रितः ॥ १९ ॥ २९ ॥

भा०—(एषः) यह (रथवीतिः) रथों से प्राप्त होने वाला (मघवा) धन-सम्पन्न पुरुष (गोमतीः अनु) भूमियों और वाणियों से युक्त सम्पत्तियों को प्राप्त कर (अनुक्षेति) धर्मानुकूल होकर रहे और (पर्वतेषु) पर्वतों के तुल्य ऊंचे, आकाश-व्यापी भवनों और यानों में (अप-श्रितः) स्थिर एवं दूर देशों तक जाने हारा हो। एकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[६२]

श्रुतविदात्रेय ऋषिः॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप्। ३,४,५,६ निचृत् त्रिष्टुप्। ७, ८, ९ विराट् त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

ऋ॒तेन॑ ऋ॒तमपि॑हितं ध्रु॒वं वां॒ सूर्य॑स्य॒ यत्र॑ विमु॒चन्त्यश्वा॑न् ।
दश॑ श॒ता स॒ह त॑स्थु॒स्तदेकं॑ दे॒वाना॒ं श्रेष्ठं॒ वपु॑षामपश्यम् ॥१॥

भा०—जैसे (ऋतम्) सत्य-रूप सूर्य का मण्डल (ऋतेन अपिहितं) सत्यमय तेज से ढका है, (यत्र) सूर्य के आश्रित हो ग्रह, उपग्रह आदि (सूर्यस्य) सूर्य के ही (दश शता अश्वान् विमुचन्ति) हजारों किरणों को विविध रूप से धारण करते और प्रतिक्षिप्त करते हैं, जिस सूर्य के आश्रय से ही वे (सह तस्थुः) एक साथ स्थित हैं (तत्) वह (एकं) एक (देवानां) तेजो-युक्त, (वपुषां श्रेष्ठं) पिण्डों में श्रेष्ठ, (ध्रुवं) स्थिर, सूर्य है, वैसे ही हे स्त्री-पुरुषो! राजा-प्रजावर्गो! (वां) आप दोनों का (ध्रुवं) स्थिर (ऋतम्) सत्य व्यवहार भी (ऋतेन) सत्य ज्ञान से (अपि-

हितम्) ढका हो। (यत्र) जिस नायक के आश्रय पर (सूर्यस्य) सूर्य के तुल्य तेजस्वी राजा के (दश शता अश्वान् वि मुचन्ति) हजारों घुड़सवार दौड़ रहे हैं और (सह तस्थुः) एक साथ विद्यमान रहते हैं (तत् एकं) उस एक को (वपुषां देवानां) देहधारी मनुष्यों में (श्रेष्ठं) श्रेष्ठ रूप से (अपश्यम्) देखता हूँ। वही (ऋतम् ध्रुव) स्थिर सत्य न्यायरूप है।

तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहंभिर्दुदुह्रे।
विश्वाः पिन्वथः स्वसंरस्य धेना अनुं वामेकः पविरा वंवर्त्त ॥२॥

भा०—जैसे दिन और रात्रि, मित्र और वरुण इन दोनों का (तत् महित्वम्) यही सामर्थ्य है कि (ईर्मा) सूर्य (अहभिः तस्थुषीः दुदुह्रे) तेजों द्वारा समस्त स्थावरों, शरीरों को रस देता है, दिन-रात्रि दोनों (विश्वाः स्वसरस्य धेनाः पिन्वथ) सूर्य की सब रश्मियों को प्राप्त करते हैं, उन दोनों का (एकः पविः अनु आ ववर्त्त) एक ही प्रकार का क्रम प्रतिदिन चक्र-धारा के समान पुनः २ आता है। वैसे ही हे (मित्रा-वरुणा) 'मित्र' एक दूसरे के स्नेही, रक्षक, हे 'वरुण' एक दूसरे को वरण करने हारे स्त्री-पुरुषो! शिष्य-अध्यापको! (वां) आप दोनों का (तत्) वह (सु-महित्वम्) यही सर्वश्रेष्ठ सामर्थ्य है कि (ईर्मा) बाहुवत् बलवान् पुरुष ही (तस्थुषीः) स्थिर प्रजाओं को (अहभिः) अविनाशी बलों से (दुदुह्रे) ऐश्वर्य-पूर्ण करने में समर्थ होता है और आप दोनों (स्वसरस्य) स्व सामर्थ्य से आगे बढ़ते नायक की (विश्वाः धेनाः पिन्वथः) समस्त वाणियों को प्रेमपूर्वक प्राप्त करें और (वाम्) तुम दोनों का (एकः पविः) एक ही पवित्र मार्ग, (अनु आववर्त) प्रति दिन रहे।

अधारयतं पृथिवीमुत द्यां मित्रराजाना वरुणा महोभिः।
वर्धयतमोषधीः पिन्वतं गा अवं वृष्टिं सृजतं जीरदानू ॥ ३ ॥

भा०—हे (मित्र-राजाना) मित्र बने हुए दो राजाओं, वा राजा-

रानी के समान विराजने वालो! एवं (वरुणा) एक दूसरे को वरण करने वालो! (पृथिवीम् उत द्यां) भूमि और सूर्य को जैसे अग्नि और जल धारण करते हैं वैसे ही आप दोनों (पृथिवीम्) प्रजोत्पादक भूमि, स्त्री (उत द्याम्) और कामनायुक्त तेजस्वी पुरुष को (महोभिः) बड़े शुभ विचारों से (अधारयतम्) धारण करो। आप दोनों (ओषधीः) अन्न आदि ओषधियों को धारण करने वाले तेजस्वी, पुरुषों और विद्वानों को (वर्धयतम्) बढ़ावें, (गाः पिन्वतम्) भूमियों को सेचें, गौओं को पुष्ट करें और दोनों (जीर-दानू) जगत् के जीवन दाता होकर (वृष्टिं अव सृजतम्) मेघ के तुल्य सुखों की वर्षा करें।

आ वामश्वांसः सुयुजो वहन्तु यतरंश्मय उपं यन्त्वर्वाक् ।
घृतस्यं निर्णिगनुं वर्तते वामुप सिन्धंवः प्रदिवि क्षरन्ति ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री-पुरुषो! (वाम्) आप दोनों को (सु-युजः) उत्तम रीति से जुते हुए (अश्वासः) घोड़े, उनके समान (सु-युजः अश्वासः) उत्तम रीति से नियुक्त विद्या आदि शुभ गुणों में व्याप्त जन (आ वहन्तु) सर्वत्र ले जावें और (यतरश्मयः) वे कसी लगामों को वश करने वाले सारथि लोग और उनके समान अपने अधीनस्थों को संयम करने वाले पुरुष भी (अर्वाक् उपयन्तु) आप दोनों के समीप प्राप्त हों (वां) आप दोनों को (घृतस्य) घी के बने शोधक उबटन के समान तेज वा ज्ञान का (निर्णिग्) शुद्ध रूप (अनु वर्तते) प्राप्त हो और (प्र-दिवि) ज्ञानप्रकाश के निमित्त (सिन्धवः) ज्ञान-समुद्र जन (वाम् उप क्षरन्ति) मेघों के समान आपको सेचें, आप के प्रति ज्ञान-जलों से वर्षा करें।

अनुं श्रुताममतिं वर्धदुर्वीं बर्हिरिव यजुंषा रक्षंमाणा ।
नमंस्वन्ता धृतदक्षाधि गर्ते मित्रासांथे वरुणेळांस्वन्तः ॥५॥३०॥

भा०—हे (मित्र-वरुण) परस्पर स्नेही और वरण करने हारे श्रेष्ठ

पुरुषो ! आप (श्रुताम् अनु) सुनी गई ज्ञानपद्धति के अनुरूप (अमतिम् वर्धत्) अपने उत्तम रूप को बढ़ाते हुए, (यजुषा बर्हिः इव) यजुर्वेद से यज्ञ के समान (यजुषा) परस्पर संगति से (बर्हिः इव) बसे लोकों के तुल्य (उर्वी रक्षमाणा) विशाल पृथिवी की रक्षा करते हुए (नमस्वन्ता) परस्पर आदर करने वाले और (धृत-दक्षा) बलवान् होकर (गर्त अधि) रथ और सभा के न्यायासन पर (इडासु अन्तः) वाणियों और भूमियों के बीच (आसाथे) विराजें। इति त्रिंशो वर्गः॥

अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेळास्वन्तः।
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं बिभृथः सह द्वौ ॥६॥

भा०—हे (वरुणा) श्रेष्ठ और दुःखों के वारक सभा के स्वामियो, राजा, अमात्यो ! स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों (अक्रवि-हस्ता) अहिंसक, दानशील हाथ वाले होकर (सुकृते) पुण्यकार्य के लिये (परस्पा) परस्पर रक्षा करते हुए (इडासु अन्तः) वाणियों और आदर की क्रियाओं के बीच (यं त्रासाथे) जिसकी रक्षा करते वा जिसे भय दिलाते हो, हे (राजाना) राजपद पर विराजने वालो ! उस शत्रु तथा (क्षत्रम्) सैन्य को (अहृणीयमाना) क्रोधरहित होकर (सह द्वौ) दोनों साथ मिलकर (सहस्र-स्थूणं) सहस्रों स्तम्भों से युक्त विशाल भवन के तुल्य महान् राष्ट्र को भी (बिभृथः) पुष्ट करो।

हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्य१श्वाजनीव।
भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विले वा सनेम मध्वो अधिगर्त्यस्य ॥ ७ ॥

भा०—(अस्य) इस राष्ट्र वा क्षात्रबल का रूप (हिरण्यनिर्णिग्) सुवर्ण-समान कान्तिमान् एवं राष्ट्र-हितकारी, रमणीय हो। (अस्य) इस क्षात्रबल को (अयः) प्राप्त करने वाला पुरुष ही (स्थूणा) स्तम्भ के समान है। (अश्वाजनी इव) घोड़े को हांकने वाले चाबुक के समान वह प्रधान नायक ही (दिवि) विजय के लिये (अश्वा जनी) अश्वों से

बने सैन्य और राष्ट्र की सञ्चालक सेना के तुल्य (विभ्राजते) विविध रूपों में चमकता है। जैसे (भद्रे क्षेत्रे) कल्याणकारी क्षेत्र में अथवा (तिल्विले) स्नेहयुक्त चिकनी मिट्टी वाली भूमि में (निमिता) बनी शाला सुखप्रद होती है वैसे ही (भद्रे क्षेत्रे) सुखप्रद क्षेत्र और स्नेहपूर्ण वाणी से युक्त व्यवहार के आश्रय पर (निमिता) वश की हुई सेना भी हो। इस प्रकार हम लोग (अधिगर्त्यस्य मध्वः) घर में रक्खे अन्न के समान अश्व रक्षादि सैन्य से प्राप्त ऐश्वर्य का (सनेम) भोग करें।

हिर॑ण्यरूपमुषसो॒ व्यु॑ष्टावयः॑स्थूणामुदि॑ता॒ सूर्य॑स्य।
आ रो॑हथो वरुण मित्र॒ गर्त॒मत॑श्चक्षाथे॒ अदि॑तिं॒ दितिं॑ च॥ ८॥

भा०—हे (वरुण मित्र) शरीर में प्राण-उदान के समान, राष्ट्र में शत्रु-वारण करने और प्रजा से स्नेह करने वाले, आप दोनों राजा-अमात्य! (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के उदय होने पर और (उषसः) उषा के (व्युष्टौ) अच्छी प्रकार निकलने पर जैसे स्त्री-पुरुष (अयः-स्थूणा) लोहे के बने कील या स्तम्भ से युक्त (हिरण्य-रूपम्) रमणीय एवं स्वर्णमय (गर्त्तम्) गृह-तुल्य रथ पर (आरोहथः) चढ़ते और (दितिम् अदितिम् च चक्षाथे) 'अदिति' माता, पिता, पुत्र आदि और 'दिति' देने और रक्षा करने योग्य भृत्यादि सबको देखते हैं। वैसे ही आप दोनों भी (सूर्यस्य उदिता) तेजस्वी राजा के उदय होने पर और (उषसः व्युष्टौ) शत्रु को दग्ध करने में समर्थ वशकारिणी सेना के प्रकट होने पर, तुम दोनों, सभा, सेना के अध्यक्ष जनो! (हिरण्य-रूपं) सुवर्णादि से रूपवान् (अयः-स्थूणं) सुवर्ण-धन के प्रबल स्तम्भ पर आश्रित तथा रमणीय, लौहखण्डादि पर अवलम्बित (गर्त्तम्) सभास्थल तथा युद्ध-रथ पर (आरोहथः) आरोहण करो और वहां सभापति तथा सेना-नायक के पद पर विराजो और (अतः) तदनन्तर (अदितिम्) अखण्ड-नीय सत्य तथा (दितिम्) खण्डनीय असत्य को, (अदिति) अखण्डनीय, मित्र और (दितिम्) खण्डनीय शत्रु को (चक्षाथे) देखो।

यद्वंहिष्ठं नातिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा ।
तेन नो मित्रावरुणाविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम ।६।२१।३

भा०—हे (गोपा) राष्ट्र-रक्षक, (मित्रा-वरुणा) स्नेहयुक्त, प्रजा को मरने से बचाने वाले, शत्रुवारक सभापति, सेनापति, राजा, अमात्य जनो ! (यत्) जो बहुत बड़ा, (अच्छिद्रं) मर्मादिरहित, (शर्म) शरण-दायक दुर्ग आदि स्थान हो (अतिविधे न) जिसे अतिक्रमण करके शत्रु प्रजा को पीड़ित न कर सके, हे (सुदानू) उत्तम दानशील, शत्रुनाशक जनो ! (तेन) वैसे दुर्ग आदि उपाय से (नः अविष्टम्) हमारी रक्षा करो । हम लोग (जिगीवांसः) विजय करते हुए (सिषासन्तः) ऐश्वर्यों को बांटते हुए (स्याम) सुख से रहें । इति एकविंशो वर्गः । इति तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

[६३]

अर्चनाना आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ७ निचृज्जगती । ३, ५, ६ जगती ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो रथं सत्यधर्माणा परमे व्योमनि ।
यमत्र मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमत्पिन्वते दिवः ॥ १ ॥

भा०—(ऋतस्य) सत्य व्यवहार, ज्ञान और तेज के (गोपौ) रक्षक, (सत्य-धर्माणा) सत्य धर्म के पालक (परमे व्योमनि) सर्वोत्कृष्ट रक्षक, आकाशवत् व्यापक, सर्वोच्च पद पर स्थित होकर (रथम् अधि तिष्ठथः) रथवत् राष्ट्र-शासन करने के लिये अध्यक्ष पद पर विराजें । हे (मित्रावरुणा) शरीर में प्राण-उदानवत् एवं गृह में पति-पत्नीवत् एक दूसरे के स्नेह और एक दूसरे को स्व-स्वामिभाव से वरण

करने वाले ! (युवं) आप दोनों (अत्र) इस राष्ट्र में (सम् अवथः) जिस प्रजाजन की रक्षा करते हो (तस्मै) उसको (दिवः) अन्तरिक्ष से (मधुमत् वृष्टिः) जलमय वृष्टि के तुल्य (दिवः) तेजस्वी क्षात्रवर्ग, ज्ञानमय ब्राह्मणवर्ग और व्यवहारवित् वैश्य वर्ग से (मधुमत् वृष्टिः) ज्ञान, बल और अन्नमय वर्षा (पिन्वते) प्रजा की वृद्धि करे ।

सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दृशा ।
वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापृथिवी वि चरन्ति तन्यवः ॥२

भा०—हे (मित्रा वरुणा) वायु, सूर्य के तुल्य राजन् ! अमात्य ! आप दोनों (अस्य भुवनस्य) इस जगत् को (सम्राजौ) अच्छी प्रकार प्रकाशित करने वाले (विदथे) ज्ञान, व्यवहार और धनैश्वर्य के लाभ में (स्वर्दृशा) उत्तम प्रकाश को देखने वाले होकर (राजथः) विराजते हो । हम लोग (वां) आप दोनों से (वृष्टिम्) वृष्टि, (राधः) ऐश्वर्य और (अमृतत्वं च) दीर्घ-जीवन को (ईमहे) मांगते हैं, आप दोनों के (तन्यवः) किरणों के तुल्य शक्तिमान् लोग (द्यावा पृथिवी वि चरन्ति) आकाश और पृथिवी में विचरते हैं ।

सम्राजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी ।
चित्रेभिरभ्रैरुप तिष्ठथो रवं द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया ॥३॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) प्रजाओं के स्नेही और उनके द्वारा वरण-योग्य पुरुषो ! आप वायु, सूर्य के समान (सम्राजा) चमकने वाले, (उग्रा) बलवान्, (वृषभा) जलों के समान प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाले, (दिवः पृथिव्याः पती) आकाशवत् विस्तृत पृथिवी के पालक (वि-चर्षणी) प्रजा के व्यवहारों को देखने वाले होकर (चित्रेभिः) अद्भुत (अभ्रैः) मेघ-तुल्य प्रजाओं के रक्षक नायकों सहित (उप तिष्ठथः) विराजते हो और (रवं द्यां) गर्जन और बिजुली के प्रकाश-तुल्य तेज प्रकट करते हो और (असुरस्य मायया) मेघ-तुल्य

बलवान् क्षात्र सैन्य की शक्ति और बुद्धि से (वर्षयथः) प्रजा पर सुखों की वृष्टि करते हो।

माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रिता सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम्। तमभ्रेण वृष्ट्या गूहथो दिवि पर्जन्य द्रप्सा मधुमन्त ईरते ॥ ४ ॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) देह में प्राण और उदानवत्, राष्ट्र में राजा और सचिव! जैसे (दिवि सूर्यः ज्योतिः) आकाश में सूर्य और विद्युत् और (चित्रम् आयुधम्) विचित्र, धनुपाकार होता है और (अभ्रेण वृष्ट्या तं गूहथः) मेघ और वृष्टि द्वारा उसको आच्छादित करते हैं और (मधुमन्तः द्रप्साः ईरते) जलमय रस बहते हैं वैसे ही हे (मित्रा-वरुणा) राजा और अमात्य। (वां) आप दोनों की (दिवि) विद्वानों की राजपरिषत् और संग्राम में विजय-कार्य में (माया श्रिता) बुद्धि स्थिर रहे। आप का (सूर्यः) सूर्यवत् तेजस्वी (ज्योतिः) प्रताप तथा (चित्रम्) आश्चर्ययुक्त (आयुधम्) शस्त्रबल (दिवि चरति) पृथिवी पर विचरे। (तम्) उस प्रताप को आप (अभ्रेण वृष्ट्या) मेघवत् प्रजा पोषक रूप से सुखों के वर्षण द्वारा (गूहथः) संवृत रक्खो। हे (पर्जन्य) मेघवत् उदार जन! राजन्! तेरे (मधुमन्तः) अन्नादि-समृद्धि-सम्पन्न, (द्रप्साः) अन्यों को मोह में डालने वाले आप्त जन, जल-स्रोतों के समान (दिवि ईरते) पृथिवी पर विचरें।

रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु। रजांसि चित्रा विचरन्ति तन्यवो दिवः सम्राजा पयसा न उक्षतम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) सूर्य, पवन के समान मित्र, जीवनदाता, दुःखवारक पुरुषो! (मरुतः) विद्वान् लोग (शुभे) कल्याणार्थ (सुखं) सुखप्रद (रथं) रथ को (शूरः न) वीर के तुल्य (युञ्जते) जोड़ते और (गविष्टिषु) किरणों के प्राप्त होने पर जैसे (चित्रा रजांसि) अद्भुत लोक

और (तन्यवः) विद्युतें (वि चरन्ति) विविध दिशा में चलती हैं, वैसे ही राष्ट्र में (गविष्टिषु) भूमियों की प्राप्ति के लिये (चित्रा रजांसि) विविध और अद्भुत वीर और (तन्यवः) गर्जनशील विद्युत् अस्त्र (वि चरन्ति) चलते हैं। हे (सम्राजा) सेना व सभा के जनो ! (नः दिवः) ऐश्वर्यादि की कामना वाले हमको (पयसा) पोषक अन्नादि से (उक्षतम्) पुष्ट करो।

वाचं सु मित्रावरुणाविरावतीं पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम्।
अभ्रा वसत मरुतः सु मायया द्यां वर्षयतमरुणामरेपसम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) स्नेहयुक्त और एक दूसरे को वरण करने हारे गुरु, शिष्यजनो ! (पर्जन्यः यथा त्विषीमतीं इरावतीं चित्रां वाचं वदति) मेघ जैसे विद्युत् और जल से युक्त अद्भुत गर्जना करता है वैसे ही लोकोपकारार्थ (पर्जन्यः) पिता के तुल्य ज्ञान से तृप्त करने वाला आचार्य, (चित्राम्) आश्चर्यजनक, (त्विषीमतीम्) विद्या-प्रकाश से युक्त, (इरावतीम्) जलवत् स्नेहयुक्त (वाचं वदति) वाणी का उपदेश करे। हे (मरुतः) वायु के समान आलस्य-रहित शिष्यजनो ! आप (मायया) बुद्धि से (अभ्रा) मेघ-तुल्य ज्ञानजल से पूर्ण होकर (सु वसत) सुख-पूर्वक रहो। (अरुणाम्) तेजस्विनी, (अरेपसम्) पापादि-रहित, (द्याम्) ज्ञान-ज्योति का (वर्षयतम्) आप दोनों एक दूसरे के प्रति सेचन करो।

धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया।
ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजथः सूर्यमा धत्थो दिवि चित्र्यं रथम् ७।१

भा०—हे (विपश्चिता मित्रा वरुणा) विद्वान् सर्वस्नेही एवं सर्वश्रेष्ठ न्यायाधीश, सेनापति-जनो ! आप (असुरस्य मायया) प्राणों के दाता मेघ वा सूर्य तुल्य जीवनप्रद पुरुष की कार्यकर्त्री शक्ति और बुद्धि से और (धर्मणा) धारक बल से (व्रता) उत्तम कर्मों को (रक्षेथे) पालो। (ऋतेन) सत्य, धनैश्वर्य और तेज से (विश्वं भुवनं) समस्त लोक को प्रदीप्त करो। (दिवि सूर्यम्) आकाश में सूर्य के तुल्य, भूमि में तेजस्वी

(चित्र्यं) अद्भुत शक्तियों से युक्त (रथं) रथ आदि साधन को (आ धत्थः) धारण करो । इति प्रथमो वर्गः ॥

[६४]

अर्चनाना ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २ विराडनुष्टुप् । ६ निचृदनुष्टुप् । ३, ५ भुरिगुष्णिक् । ४ उष्णिक् । ७ निचृत् पंक्तिः । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

वरुणं वो रिशादसमृचा मित्रं हवामहे ।
परि व्रजेव बाह्वोर्जगन्वांसा स्वर्णरम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (वः) आप लोगों में (वरुणं) शत्रुओं के वारक, (मित्रं) सर्वस्नेही और (व्रजा-इव) ज्ञानपूर्वक विचरने वाले संन्यासी के समान (बाह्वोः) बाहु-बल से (परिजगन्वांसा) सर्वत्र गमन करने वाले सभा व सेना के अध्यक्षो ! तथा (स्वःनरम्) सैन्यबल के सुखदाता नायक को भी (ऋचा हवामहे) आदरपूर्वक बुलावें ।

ता बाहवा सुचेतुना प्र यन्तमस्मा अर्चते ।
शेवं हि जार्यं वां विश्वासु क्षासु जोगुवे ॥ २ ॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) प्रजा-स्नेही एवं श्रेष्ठ, ब्राह्मण एवं क्षत्रिय पुरुषो ! (ता) वे आप दोनों (अस्मै) इस (अर्चते) स्तुतिकर्ता प्रजाजन को (बाहवा) बाहुबल और (सुचेतुना) उत्तम ज्ञान से (जार्यं) स्तुति-योग्य, (शेवं) सुख (प्र यन्तम्) प्रदान करो । मैं विद्वान् (वां) आप के (जार्यं) स्तुत्य कार्य की (विश्वासु क्षासु) समस्त भूमियों में (जोगुवे) प्रशंसा करूं ।

यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा ।
अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इस (प्रियस्य) प्रिय (अहिंसानस्य) अहिंसक (मित्रस्य) स्नेही पुरुष के (शर्मणि) शरण में, (यत् गतिम्) जिस ज्ञान

वा सद्गति का सज्जन लोग (सश्चिरे) लाभ करते हैं, (नूनम्) निश्चय से मैं भी उस (गतिं) ज्ञान और सद्गति को (अश्याम्) प्राप्त करूं और मैं (मित्रस्य पथा) उस मित्र के सन्मार्ग से (यायाम्) चलूं ।

युवाभ्यां मित्रावरुणोपमं धेयामृचा ।
यद्ध क्षये मघोनां स्तोतॄणां च स्पूर्धसे ॥ ४ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) मित्र, वरुण ! हे सर्वस्नेही ! हे सर्व-श्रेष्ठ जनो ! (मघोनां) धन-सम्पन्न और (स्तोतॄणां च) ज्ञान-सम्पन्न लोगों के (क्षये) गृह में (यत् ह स्पूर्धसे) जो स्पर्धा-योग्य धन और ज्ञान (उपमं) सर्वोपमायोग्य हो, उसे मैं (युवाभ्याम्) आप दोनों की सहायता से, (धेयाम्) धारण करूं ।

आ नो मित्र सुदीतिभिर्वरुणश्च सधस्थ आ ।
स्वे क्षये मघोनां सखीनां च वृधसे ॥ ५ ॥

भा०—हे (मित्र) स्नेही पुरुष ! हे (वरुणः च) श्रेष्ठ जन ! आप, (सधस्थे) समान निवास-स्थान में रहकर (मघोनां) ऐश्वर्यवान्, (सखीनां) मित्र-रूप हम को (वृधसे) बढ़ाने के लिये (नः) हमारे (स्वे क्षये) अपने गृह में आकर (सुदीतिभिः) उत्तम दीप्तियुक्त सम्पत्तियों सहित हमें (आ) प्राप्त होवो ।

युवं नो येषु वरुण क्षत्रं बृहच्च बिभृथः ।
उरु णो वाजसातये कृतं राये स्वस्तये ॥ ६ ॥

भा०—हे (मित्र) स्नेहयुक्त ! हे (वरुण) दुःखों के वारक ! (युवां) आप (नः) हमारे (क्षत्रं) बल और (बृहत्) महान् राष्ट्र को (बिभृथः) धारण करते हो । (राये) ऐश्वर्य-वृद्धि, तथा (स्वस्तये) कल्याण के लिये और (वाजसातये) ज्ञान और संग्रामकारी बल की प्राप्ति के लिये (उरु कृतम्) बहुत प्रयत्न करो ।

उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद्गवि ।
सुतं सोमं न हस्तिभिरा पड्भिर्धावतं नरा बिभ्रतावर्चनानसम् ॥ ७॥२

भा०—हे (मित्रावरुणौ) स्नेहयुक्त और श्रेष्ठ जनो ! आप (रुशद्-गवि) प्रदीप्त किरणों से युक्त (देव-क्षत्रे) प्रकाश के धनी सूर्य के आश्रय से जैसे उषा प्रकट होती है वैसे ही (रुशद्-गवि) दीप्तियुक्त अरुण अश्वों, पके धान की कान्ति से युक्त भूमियों के स्वामी एवं (देव-क्षत्रे) योद्धागण के बल से युक्त सेनापति के अधीन सेना के (उच्छ-न्त्यां) प्रकट हो जाने पर, हे (नरा) सभा व सेना के नायक पुरुषो ! तुम दोनों भी (अर्चनानसं) श्रेष्ठ नासिका से युक्त प्राणवान्, (सुतं सोमं) अभिषिक्त ज्ञापक पुरुष को (बिभ्रतौ) परिपुष्ट करते हुए (हस्तिभिः न) कार्यकुशल पुरुषों के तुल्य (पड्भिः) शीघ्रगामी पदा-तियों वा रथों से (धावतं) आगे बढ़ो। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[६५]

रातहव्य आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१,४ अनुष्टुप् । २ निचृदनुष्टुप् । ३ स्वराडुष्णिक् । भुरिगुष्णिक् । ६ विराट् पंक्तिः ॥ षड्ऋचं सूक्तम् ॥

यश्चिकेत स सुक्रतुर्देवत्रा स ब्रवीतु नः ।
वरुणो यस्य दर्शतो मित्रो वा वनते गिरः ॥ १ ॥

भा०—(यः चिकेत) जो ज्ञानवान् है, (सः) वह (सुक्रतुः) उत्तम कर्म करने हारा हो। (सः) वह (नः) हम (देवत्रा) विद्याभिलाषी जनों को (ब्रवीतु) उपदेश करे। (यस्य) जिसका (मित्रः) स्नेहवान् शिष्य हो वह (वरुणः) वरण-योग्य (दर्शतः) दर्शनीय विद्वान् (वा) भी हमें (गिरः वनते) ज्ञान-वाणियें प्रदान करे।

ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।
ता सत्पती ऋतावृध ऋतावाना जनेजने ॥ २ ॥

भा०—(ता हि) वे दोनों ही (श्रेष्ठ-वर्चसा) उत्तम तेज से सम्पन्न (राजाना) राजाओं के समान तेजस्वी, (दीर्घ-श्रुत्तमा) दीर्घकाल तक गुरूपदेश श्रवण करने हारे विद्वान् हों। (ता) वे दोनों (सत्-पती)

सद्व्रतों और सत्पदार्थों के पालक, (ऋता-वृधा) ज्ञानवर्धक और (जने-जने) जन-जन में (ऋतावाना) सत्योपदेश देने और सत्य-ज्ञान के धारक हों।

ता वा॑मि॒यानो॒ऽव॑से॒ पूर्वा॒ उप॑ ब्रुवे॒ सचा॑।
स्व॒श्वासः॒ सु चे॒तुना॒ वाजाँ॑ अ॒भि प्र दा॒वने॑ ॥ ३ ॥

भा०—(स्वश्वासः दावने वाजान् अभि) जैसे उत्तम अश्वारोही गण वृत्तिदाता स्वामी के लिये संग्रामों को लक्ष्य करके आगे बढ़ते हैं वैसे ही (सु-चेतुना) उत्तम ज्ञानसहित (स्वश्वासः) उत्तम इन्द्रियों वाले, लोग (दावने) ज्ञानदाता गुरु की यशोवृद्धि के लिये (वाजान् अभि) ज्ञानों को लक्ष्य करके आगे बढ़ें। जैसे राष्ट्रवासी जन, सैन्य और नायक दोनों (अवसे उपब्रूते) रक्षा की प्रार्थना करते हैं वैसे ही (इयानः) प्राप्त होने वाला नव शिष्य मैं (ता वाम्) उन दोनों (पूर्वा) पूर्व स्थित आप्त मान्य जनों को (अवसे) ज्ञान और रक्षा के लिए (सचा) एक साथ, (उप ब्रुवे) प्रार्थना करता हूँ।

मि॒त्रो अं॒हो॒श्चि॒दादु॒रु क्षया॑य गा॒तुं व॑नते।
मि॒त्रस्य॒ हि प्र॒तूर्व॑तः सुम॒तिरस्ति॑ विध॒तः ॥ ४ ॥

भा०—(मित्रः) स्नेहवान् मित्र वही है जो (अंहोः चित् क्षयाय) पाप के नाश हेतु (गातुं) वाणी का (उरु) खूब (वनते) दान करता है। (मित्रस्य) सबके स्नेही (प्रतूर्वतः) शीघ्र कार्य-कुशल और (विधतः) धर्म-मर्यादा संस्थापक पुरुष की (हि) निश्चय से (सु-मतिः अस्ति) शुभ मति हो।

व॒यं मि॒त्रस्याव॑सि स्याम॑ स॒प्रथ॑स्तमे।
अ॒ने॒ह॒स॒स्त्वोत॑यः स॒त्रा वरु॑णशेषसः ॥ ५ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (मित्रस्य) स्नेही एवं अज्ञान से बचाने वाले गुरु के (सप्रथस्तमे) विस्तार-युक्त (अवसि) ज्ञान और रक्षा में

(सत्रा) सदा, (अनेहसः) पाप-रहित (वरुण-शेषसः) दुःखवारक पुरुष के पुत्र के तुल्य, श्रेष्ठ पुत्रों वाले (त्वा ऊतयः) तुझ द्वारा रक्षा और ज्ञान प्राप्त करने हारे (स्याम) हों।

युवं मित्रेमं जनं यतथः सं च नयथः। मा मघोनः परि ख्यतं मो अस्माकमृषीणां गोपीथे न उरुष्यतम् ॥ ६ ॥ ३ ॥

भा०—हे (मित्रा) स्नेही स्त्री-पुरुषो! वा अध्यापक, उपदेशक जनो! आप (युवं) दोनों (इमं जनं) इस शिष्य को (यतथः) यत्नपूर्वक प्रेरणा दो और (सं नयथः च) उत्तम मार्ग में ले जाओ! (अस्माकं) हमारे बीच (मघोनः) दान-योग्य पुरुषों को (ऋषीणां गो-पीथेन) वेदार्थ-विज्ञ, ऋषि पुरुषों की वाणियों के पान करने के कार्य से (मा परि ख्यतम्) वञ्चित न करो।

[६६]

रातहव्य आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ५, ६ विराडनुष्टुप्। २ निचृदनुष्टुप्। ३, ४ स्वराडनुष्टुप्। षडृचं सूक्तम् ॥

आ चिकितान सुक्रतू देवौ मर्त रिशादसा।
वरुणाय ऋतपेशसे दधीत प्रयसे महे ॥ १ ॥

भा०—हे (चिकितान) विद्वान् पुरुष! हे (मर्त) मनुष्य! तू (सु-क्रतू) श्रेष्ठ कर्म करने वाले, (रिशादसा) दुष्टनाशक (देवौ) दो ज्ञान-प्रकाशक पुरुषों को (वरुणाय) श्रेष्ठ, (ऋतपेशसे) सत्य-ज्ञान के धनी (प्रयसे) प्रयत्नवान् (महे) बड़े पुरुष के उपकारार्थ (आ दधीत) आदरपूर्वक स्थापित कर।

ता हि क्षत्रमविह्रुतं सम्यगसुर्यमाशाते।
अध व्रतेव मानुषं स्वर्ण धायि दर्शतम् ॥ २ ॥

भा०—(ता हि) वे दोनों ही (अविह्रुतं) कुटिलता-रहित (असुर्यं) जन्तुओं के हितकारक (क्षत्रम्) बल को (सम्यक्) अच्छी प्रकार

(आशाते) वश करने में समर्थ हैं (अध) और उस द्वारा ही (व्रता इव) कर्त्तव्य के तुल्य (दर्शतम्) दर्शनीय आदर्श (मानुषं) मनुष्यों का (स्वः न) सुखकारी राष्ट्र (धारि) धारण किया जाता है ।

ता वा॒मेषे॒ रथा॑नामु॒र्वीं गव्यू॑तिमे॒षाम् ।
रा॒तह॑व्यस्य सुष्टु॒तिं द॒धृक्स्तोमै॑र्मनामहे ॥ ३ ॥

भा०—(एषाम् रथानाम्) इन रथों के (उर्वीं गव्यूतिम्) बड़े मार्ग को (एषे) चलने के लिये (ता वाम्) उन आप दोनों को ही अग्नि-जलवत् मुख्य प्रवर्त्तक (मनामहे) स्वीकार करते हैं और (रात-हव्यस्य) अन्न आदि के दाता स्वामी की (सुस्तुतिं दधृक्) उत्तम स्तुति के भी धारक आप दोनों को ही (स्तोमैः मनामहे) स्तुत्य वचनों द्वारा स्वीकार करते हैं ।

अधा॒ हि काव्या॑ यु॒वं दक्ष॑स्य पू॒र्भिर॑द्भुता ।
नि के॒तुना॒ जना॑नां चि॒केथे॑ पूतदक्षसा ॥ ४ ॥

भा०—(अध हि) और (पूत-दक्षसा) पवित्र बल के धारक (युवं) आप दोनों (दक्षस्य) बल के (पूर्भिः) पूरक शिष्यों सहित (अद्भुता) अद्भुत (काव्या) क्रान्तदर्शी पुरुषों द्वारा जानने योग्य ज्ञानों का (जनानां) मनुष्य-हितार्थ (केतुना) ज्ञापक शास्त्र द्वारा (नि चिकेथे) निरन्तर अभ्यास करो ।

तदृ॒तं पृ॑थिवि बृ॒हच्छ्र॑व ए॒ष ऋषी॑णाम् ।
ज्र॒य॒सा॒नावरं॑ पृ॒थ्वति॑ क्षरन्ति॒ याम॑भिः ॥ ५ ॥

भा०—हे (पृथिवि) पृथिवी तुल्य ज्ञान-विस्तार करने हारी विदुषी स्त्री ! (श्रवः) अन्न के समान जीवन दाता (ऋषीणाम्) मन्त्रार्थ-द्रष्टा ऋषियों का (तत्) वह (ऋतं) सत्यमय (बृहत्) बड़ा (श्रवः) श्रवण-योग्य ज्ञान है जिसको मेघों के तुल्य विद्वान् (यामभिः) आठों प्रहर (पृथु) विस्तृत रूप में (अति) खूब (क्षरन्ति) बरसाते हैं । हे (ज्रय-

ज्ञानो) ज्ञानमार्ग से जाने वाले स्त्री-पुरुषो ! आप उसको (अरं) अच्छी तरह प्राप्त करो।

आ यद्वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः ।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥ ६ ॥ ४ ॥

भा०—हे (मित्र) स्नेही स्त्री-पुरुषो ! हे (ईय-चक्षसा) ज्ञान-योग्य दर्शन करने वाले पुरुषो ! (यत्) जो (वाम्) आप लोगों के बन्धु हैं वे, और (वयं च) हम भी (सूरयः) सब विद्वान् मिलकर (व्यचिष्ठे) विस्तृत (बहुपाय्ये) बहुत से वीरों द्वारा रक्षा योग्य (स्वराज्ये) स्व-राज्य के लिए (आ यतेमहि) खूब यत्नवान् रहें। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[६७]

यजत आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४ निचृदनुष्टुप् । ३, ५ विराडनुष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

बळित्था देव निष्कृतमादित्या यजतं बृहत् ।
वरुण मित्रार्यमन्वर्षिष्ठं क्षत्रमाशाथे ॥ १ ॥

भा०—हे (देव) तेजस्वी, हे (आदित्य) भूमि के पुत्रवत् हितकारी, हे (वरुण, मित्र, अर्यमन्) दुष्टवारक ! स्नेहयुक्त ! प्रजा के नियन्त्रण-कर्त्ता पुरुषो ! आप (बृहत्) बड़े भारी (क्षत्रं) बल को (यजतं) प्राप्त करो और (वर्षिष्ठं) शत्रु पर अस्त्र-वर्षी तथा राज्य-प्रबन्ध में समर्थ (क्षत्रं) बल-सम्पत्ति को (आशाथे) प्राप्त करो।

आ यद्योनिं हिरण्ययं वरुण मित्र सदथः ।
धर्तारा चर्षणीनां यन्तं सुम्नं रिशादसा ॥ २ ॥

भा०—हे (वरुण मित्र), शत्रुवारक ! हे स्नेहयुक्त जनो ! आप दोनों (यत) जब (हिरण्ययं) हितकारी और रमणीय सुवर्णादि के बने, तेजोयुक्त गृह तथा पदासन पर (आ सदथः) सब प्रकार से विराजते हो तब आप (चर्षणीनां धर्त्तारा) किरणों के धारक सूर्य के तुल्य

(चर्षणीनां धर्त्तारा) विद्वान् मनुष्य के धारक और (रिशादसा) दुष्टों के नाश में समर्थ होकर (चर्षणीनां सुम्नं यन्तम्) मनुष्यों को सुख दो।

विश्वे हि विश्ववेदसो वरुणो मित्रो अर्यमा।
व्रता पदेव सश्चिरे पान्ति मर्त्यं रिषः॥ ३॥

भा०—(वरुणः) वरण-योग्य धनों, वेतनादि का विभागकर्त्ता श्रेष्ठ राजा, (मित्रः) सर्व-स्नेही और (अर्यमा) न्यायाधीश, (विश्वे) समस्त (विश्व-वेदसः) सम्पूर्ण धनों, ज्ञानों के ज्ञाता विद्वान् पुरुष (व्रता) कर्त्तव्यों को (पदा इव) अवश्य रखने योग्य पदों या ज्ञान-साधनों के तुल्य (सश्चिरे) करते हैं। वे (मर्त्यं) मनुष्यमात्र को (रिषः) दुष्ट पुरुष से (पान्ति) बचाते हैं।

ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतावानो जनेजने।
सुनीथासः सुदानवोऽहोश्चिदुरुचक्रयः॥ ४॥

भा०—(ते हि) और वे, निश्चय से (सत्याः) सत्यशील, (ऋत-स्पृशः) तेजस्वी, (ऋतावानः) ऐश्वर्यवान् (सु-नीथाः) उत्तम वेद-वाणी वक्ता (सु-दानवः) उत्तम दानशील पुरुष (जने जने) सब पुरुषों के प्रति (अंहोः चित्) पाप-मुक्त होकर (उरु-चक्रयः) बड़े २ कार्य करने वाले हों।

को नु वां मित्रास्तुतो वरुणो वा तनूनाम्।
तत्सु वामेषते मतिरत्रिभ्य एषते मतिः॥ ५॥ ५॥

भा०—हे (मित्र) स्नेहयुक्त! हे (वरुण) दुःखनाशक जनो! (वाम्) तुम दोनों को (तनूनां) देहधारियों में से (कः) कौन (अस्तुतः) अप्रशंसित, मूर्ख (एषते) प्राप्त हो सकता है। जो (मतिः) मननशील पुरुष (अत्रिभ्यः) तीनों प्रकार के दुःखों से रहित विद्वानों से (एषते) ज्ञान प्राप्त करता है वही (वाम् एषते) तुम दोनों के पद को पाता है।

इति पञ्चमो वर्गः॥

[६८]

यजत आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २ गायत्री । ३, ४ निचृद्गायत्री । ५ विराड् गायत्री । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्र वो॑ मि॒त्राय॑ गायत॒ वरु॑णाय वि॒पा गि॒रा ।
महि॑क्षत्रावृ॒तं बृ॒हत् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप (वः) अपने (मित्राय) स्नेही और (वरुणाय) दुःखों के वारक, (महि क्षत्रौ) बड़े बलशाली, (विपा) विविध प्रकारों से पालनकर्त्ता (बृहत् ऋतं) बड़े भारी सत्य और ऐश्वर्य के दाता या उनके रक्षक दोनों को (गिरा) वाणी द्वारा (प्र गायत) उत्तम स्तुति करो ।

स॒म्राजा॒ या घृ॒तयो॑नी मि॒त्रश्चो॒भा वरु॑णश्च ।
दे॒वा दे॒वेषु॑ प्रश॒स्ता ॥ २ ॥

भा०—जैसे (घृत-योनी) जल आदि से उत्पन्न वैद्युत और भौम अग्नि दोनों (सम्राजा) सम्यक् चमकते हैं और (देवेषु प्रशस्ता) प्रकाशमान पदार्थों में उत्तम हैं वैसे ही (या) जो दोनों (घृत-योनी) दीप्ति के आश्रय पर स्थित (सम्राजा) सम्यक् दीप्त, (मित्रा वरुणः च) सर्वप्रिय और सर्वश्रेष्ठ सभा व सेना के (उभा) दोनों अध्यक्ष हैं, वे (देवा) दानशील पुरुष (देवेषु) विद्वानों और विजिगीषु पुरुषों में (प्रश-स्ता) प्रशंसित हों ।

ता नः॑ शक्तं॒ पार्थि॑वस्य म॒हो रा॒यो दि॒व्यस्य॑ ।
महि॑ वां क्ष॒त्रं दे॒वेषु॑ ॥ ३ ॥

भा०—(ता) वे आप दोनों, सभा व सेना के अध्यक्षो ! (नः) हमारे (महः) बड़े (पार्थिवस्य) पृथिवी और (दिव्यस्य) न्याय, वार्त्ता आदि व्यापारों से प्राप्त (रायः) धन के ऊपर (शक्तम्) शक्तिमान् बनो । (वां) आप का (देवेषु) व्यवहारकुशल पुरुषों में (महि क्षत्रं) बड़ा बल है ।

ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते ।
अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥ ४ ॥

भा०—आप दोनों (अद्रुहा) परस्पर अद्रोही (देवा) एक दूसरे को चाहते हुए (ऋतम् ऋतेन सपन्ता) ऐश्वर्य को सत्य-व्यवहार से प्राप्त करते हुए (इषिरम् दक्षम्) इच्छानुकूल सबके शासक बल और ज्ञान को (आशाते) प्राप्त करो और (वर्धेते) बढ़ो ।

वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः ।
बृहन्तं गर्तमाशाते ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—जैसे वायु और विद्युत् (वृष्टि-द्यावा) जल-वृष्टि और दीप्ति से युक्त और (रीत्यापा) जल-प्रवाह कराने वाले तथा (दानुमत्याः इषः पती) भूमि-पालक होकर (बृहन्तं गर्त्तम् आशाते) बड़े सूर्य वा मेघ को व्यापते हैं वैसे ही 'मित्र' और 'वरुण' न्यायाधीश और सेनापति, दोनों (वृष्टि-द्यावा) जल-वृष्टि-तुल्य तेजस्वी (रीत्यापा) ज्ञान, तथा ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले होकर (दानु-मत्याः) देने योग्य ऐश्वर्यों की स्वामिनी, राज्यशक्ति या पृथिवी के (इषः पती) अन्नादि के स्वामी होकर (बृहन्तं गर्त्तम्) बड़े सभापति के पद को (आशाते) प्राप्त करते हैं । इति षष्ठो वर्गः ॥

[६९]

उरुचक्रिरात्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २ निचृत्-त्रिष्टुप् । ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

त्री रोचना वरुण त्रीँरुत द्यून्त्रीणि मित्र धारयथो रजांसि ।
वावृधानावमतिं क्षत्रियस्यानु व्रतं रक्षमाणावजुर्यम् ॥ १ ॥

भा०—हे (वरुण) दुष्ट-वारक ! हे (मित्र) स्नेहिन् ! आप दोनों (त्री रोचना) अग्नि, सूर्य, विद्युत् तीनों के तुल्य सर्वप्रकाशक, तीनों वेदों के ज्ञानों को (उत) और (त्रीन्) तीन (द्यून्) प्रकाशों के समान

तीनों प्रकारों के व्यवहारों को और (त्रीणि रजांसि) तीनों वर्णों के लोगों को (धारयथः) धारण करते हो। आप दोनों (क्षत्रियस्य) क्षत्रिय के (अमतिम्) रूप को (वावृधानौ) बढ़ाते हुए और (अजुर्यम्) कभी नाश न होने वाले (व्रतं) व्रत की (अनु रक्षमाणौ) सबके अनुकूल रक्षा करते हुए सत्रों को धारण करते हो।

इरा॑वतीर्वरुण धे॒नवो॑ वां॒ मधु॑मद्वां॒ सिन्ध॑वो मित्र दुह्रे ।
त्रय॑स्तस्थुर्वृष॒भास॑स्तिसृ॒णां धि॒षणा॑नां रेतो॒धा वि द्यु॒मन्तः॑ ॥२॥

भा०—जैसे (इरावतीः धेनवः) दुधारु गौवें (मधुमद् दुह्रे) रस-युक्त दूध देती हैं और जैसे (इरावतीः सिन्धवः मधुमत् दुह्रे) जल-पूर्ण नदियें अन्न-युक्त जल-राशि वा जल-युक्त अन्न देती हैं वैसे ही, हे (मित्र-वरुण) सर्वप्रिय सभापते! हे दुष्ट-वारक, सेनापते! (वाम्) आप दोनों की (धेनवः) वाणियां (इरावतीः) रस-युक्त और अधीन पुरुषों की प्रेरक होकर (मधुमत्) ज्ञान और बल-युक्त ऐश्वर्यों को उत्पन्न करें और (वां सिन्धवः) आप लोगों की प्रेरणा शक्ति वाली और प्रजा को प्रबन्ध में बांधने वाली आज्ञाएं और सेनाएं (मधुमत् दुह्रे) मधुर फल एवं संबल राष्ट्र को प्रदान करती हैं। जैसे (तिसृणाम् धिषणनाम्) सूर्य, आकाश और पृथिवी तीन लोकों में (त्रयः वृषभासः रेतो-धाः द्युमन्तः वि तस्थुः) तीन बलवान् वर्षणशील, जल, वीर्य को धारण करने वाले तेजस्वी सूर्य, विद्युत् और अग्नि तीनों विशेष रूप से विराजते हैं वैसे ही (तिसृणां) तीन (धिषणानाम्) अध्यक्ष होकर आज्ञा देने वाली राष्ट्र-धारक, तीन सभाओं के ऊपर (त्रयः) तीन (वृषभाः) बलवान्, उत्तम प्रबन्धकर्त्ता, (रेतोधाः) बल-वीर्य के धारक, (द्युमन्तः) तेजस्वी, प्रधान पुरुष (वि तस्थुः) विशेष रूप से स्थित हों।

प्रा॒तर्दे॒वीमदि॑तिं जोहवीमि म॒ध्यंदि॑न॒ उदि॑ता॒ सूर्य॑स्य ।
रा॒ये मि॑त्रावरुणा स॒र्वता॒तेळे॑ तो॒काय॒ तन॑याय॒ शं योः ॥ ३ ॥

भा०—मैं (प्रातः) प्रभात काल अर्थात् प्रथम चतुर्थांश जीवनकाल २५ वर्ष की आयु तक (देवीम् अदितिम्) सूर्य-समान ज्ञान-प्रकाश और भूमि-समान अन्न देने वाली माता, आचार्य एवं सावित्री वेदवाणी को (जोहवीमि) निश्चयपूर्वक ग्रहण करूं। उसको मैं (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के उदयकाल में और (मध्यन्दिने) मध्याह्नकाल में भी प्राप्त करूं। मैं (राये) दान-योग्य ज्ञान एवं धनैश्वर्य की वृद्धि के लिये (मित्रा वरुणा) स्नेही और वरण-योग्य आचार्य, उपदेष्टा और दुष्टवारक सेनापति को माता-पिता के सदृश जानकर (सर्वताता) सबके हितार्थ तथा (तोकाय तनयाय शंयोः) पुत्र-पौत्र के तुल्य पालनीय, सैन्यगण और सामान्य प्रजागण के कल्याण के लिये हम उनको (ईडे) चाहें, उनकी स्तुति करें।

या धर्तारा रजसो रोचनस्योतादित्या दिव्या पार्थिवस्य ।
न वां देवा अमृता आ मिनन्ति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि ।४।७

भा०—हे (मित्रा वरुणा) स्नेहवान् एवं वरण-योग्य जनो ! (या) जो आप दोनों (रोचनस्य) ज्ञान-प्रकाश से युक्त, प्रिय एवं (पार्थिवस्य) पृथिवी पर रहने वाले समस्त (रजसः) लोकों के (धर्तारा) धारक, (दिव्या) व्यवहार आदि में प्रौढ़, (आदित्या) ज्ञान और कर आदि लेने-देने में चतुर हो उन (वां) आप दोनों के (अमृता) अविनाशी (ध्रुवाणि व्रतानि) स्थिर कर्मों को (देवाः) ज्ञानाभिलाषी शिष्य और प्रजाजन (न आमिनन्त) कभी खण्डित नहीं करते । इति सप्तमो वर्गः ॥

[७०]

उरुचक्रिरात्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ गायत्री छन्दः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण ।
मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥ १ ॥

भा०—हे (मित्र वरुण) स्नेहवान् ! हे श्रेष्ठ पुरुषो ! (नूनं) निश्चय

ही (वां अवः) आप दोनों का ज्ञान और रक्षण-सामर्थ्य (पुरुतरणा अस्ति चित् हि) बहुत प्रकार का महान् और उत्तम है। मैं (वां) आप के (सु-मतिम्) उत्तम ज्ञान को (वंसि) प्राप्त करूं।

ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धायसे।
वयं ते रुद्रा स्याम ॥ २ ॥

भा०—(ते वयम्) वे हम (अद्रुह्वाणा) द्रोह न करने वाले, (रुद्रा) दुष्टों को रुलाने वाले और दुःखी द्वारा शरण योग्य (ता वां) उन आप दोनों के (इषम्) शासन को अपने (धायसे) पोषण-हेतु अन्नवत् (अश्याम) उपभोग करें।

पातं नो रुद्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा।
तुर्याम दस्यून्तनूभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (रुद्रा) दुष्टों के रोदक और पीड़ितों के शरणदाता मित्र और वरुण! सभा, सेना के अध्यक्षो! आप (नः) हम प्रजाओं को (पायुभिः) रक्षा-साधनों से (उत) तथा (सुत्रात्रा) उत्तम दण्ड-विधान से (पातं) पालने, (त्रायेथाम्) संकटों से बचाओ। हम (तनूभिः) शरीरों तथा बड़े सैन्यादि से (दस्यून् तुर्याम) दुष्टों का नाश करें।

मा कस्याद्भुतक्रतू यक्षं भुजेमा तनूभिः।
मा शेषसा मा तनसा ॥ ४ ॥ ८ ॥

भा०—हे (अद्भुत-क्रतू) आश्चर्यजनक कर्म से सम्पन्न, स्नेही और वरणीय पुरुषो! हम (कस्य) किसी का भी (यक्षं) दिया धन (तनूभिः) स्व शरीरों से (मा भुजेम) भोग न करें और (शेषसा मा) अपने पुत्र से प्राप्त धन का भी भोग न करें, (मा तनसा) पौत्र का दिया धन भी भोग न करें। इत्यष्टमो वर्गः।

[७१]

बाहुवृक्त आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ गायत्री छन्दः। तृचं सूक्तम् ॥

आ नों गन्तं रिशादसा वरुंणा मित्रं बुर्हणां ।
उपे॒मं चारु॑मध्व॒रम् ॥ १ ॥

भा०—वे (वरुण मित्र) शत्रु वारक और प्रजा प्रेमी जनो ! आप (रिशादसा) दुष्टों के नाशक और (बर्हणा) प्रजाओं की ऐश्वर्य आदि से वृद्धि करने वाले हो, आप (नः) हमारे (इमं) इस (चारुम्) उत्तम (अध्वरम्) प्रजा-पालक, यज्ञ और राष्ट्र को (आ उप गन्तम्) आदर-पूर्वक प्राप्त होवो ।

विश्वंस्य हि प्रचेतसा वरुंणा मित्र राजंथः ।
ईशा॒ना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥

भा०—हे (वरुण मित्र) ज्ञानों और गुणों के प्रदाता, हे स्नेहवान्, (प्र-चेतसा) प्रकृष्ट ज्ञान-सम्पन्न पुरुषो ! हे (ईशाना) सामर्थ्यवान् जनो ! आप (विश्वस्य) समस्त राष्ट्र के (हि) निश्चय से (राजथः) राजा के तुल्य स्थित हो । आप (धियः) समस्त कर्मों और ज्ञानों को (पिप्यतम्) बढ़ाओ ।

उपं नः सुतमा गंतं वरुंणा मित्रं दाशुषः ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥ ९ ॥

भा०—हे (वरुण मित्र) श्रेष्ठ और स्नेहवान् जनो ! आप (दाशुषः) ऐश्वर्य के दाता (अस्य सोमस्य पीतये) इस ऐश्वर्यमय राष्ट्र के पालन के लिये (नः) हमारे (सुतम्) बनाये इस यज्ञ, राष्ट्र आदि (उप आ गतम्) प्राप्त होवो । इति नवमो वर्गः ॥

[७२]

बाहुवृक्त आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ उष्णिक् छन्दः ॥
तृचं सूक्तम् ॥

आ मित्रे वरुंणे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत् ।
नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ १ ॥

भा०—(वयं) हम लोग (मित्रे वरुणे) स्नेहयुक्त और श्रेष्ठ पुरुष के अधीन रहकर (गीर्भिः) वेदवाणियों द्वारा (अत्रिवत्) तीनों दुःखों से रहित (जुहुमः) यज्ञ आदि कार्यों में ऐश्वर्य का भोग करें। हे स्नेहयुक्त एवं श्रेष्ठ जनो! आप दोनों (सोम-पीतये) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र और राजा के पुत्रवत् पालन के लिये (बर्हिषि) वृद्धिशील प्रजा के ऊपर अध्यक्ष रूप से (नि सदतम्) स्थिर होकर विराजो।

व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना।
नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ २ ॥

भा०—हे स्नेहयुक्त तथा श्रेष्ठ जनो! आप दोनों (धर्मणा व्रतेन) धर्मानुकूल व्रताचरण से (ध्रुव-क्षेमा) स्थिर रक्षण, कल्याण-युक्त तथा (यातयत्-जना) मनुष्यों को सन्मार्ग पर यत्नशील बनाते हुए (सोम-पीतये) अन्न, जल आदि ऐश्वर्य के भोग के लिये (बर्हिषि) वृद्धिशील प्रजाजनों के ऊपर अध्यक्ष-रूप से (नि सदतम्) नियमपूर्वक विराजो।

मित्रश्च नो वरुणश्च जुषेतां यज्ञमिष्टये।
नि बर्हिषि सदतां सोमपीतये ॥ ३ ॥ १० ॥ ५ ॥

भा०—(मित्रः च) स्नेहवान् एवं (वरुणः च) वरण-योग्य उक्त दोनों प्रकार के वर्ग (इष्टये) अभीष्ट सुख-प्राप्ति के लिये (नः) हमारे (यज्ञम्) श्रेष्ठ कर्म, संगति, प्रार्थना आदि को (जुषेताम्) प्रेम-पूर्वक स्वीकार करें और (सोम-पीतये) अन्न, ओषधिरस आदि के सेवनार्थ (बर्हिषि) उत्तम आसन पर (नि सदतां) विराजें। इति दशमो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

[७३]

पौर आत्रेय ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ५, ७ निचृदनुष्टुप्। ३, ६, ८, ९ अनुष्टुप्। १० विराडनुष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

यदद्य स्थः परावति यदर्वावत्यश्विना।
यद्वा पुरू पुरुभुजा यदन्तरिक्ष आ गतम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारथी के तुल्य एक ही गृहस्थ रथ पर विराजने वाले पुरुषो! (यत्) जो आप दोनों (परावति स्थः) कभी दूसरे देश में रहो, (यत् अर्वावति स्थः) और जो कभी निकट देश में रहते हो (यत् वा) वा (पुरुभुजा) बहुत जनों के पालक एवं ऐश्वर्य-भोक्ता होकर (पुरू स्थः) बहुत से प्रदेशों में रहे हो (यत् अन्तरिक्षः स्थ) और जो कभी आप दोनों अन्तरिक्ष में विमानादि द्वारा विचरे हों, वे २ आप लोग दूर निकट विचरने वाले स्त्री-पुरुषो! (अद्य आयातम्) आज हमें प्राप्त होवो।

इह त्या पुरुभूतमा पुरू दंसांसि बिभ्रता।
वरस्या याम्यध्रिगू हुवे तुविष्टमा भुजे ॥ २ ॥

भा०—(पुरु-भू-तमा) बहुत से प्रजाजनों में सामर्थ्यवान् पुत्रादि को उत्पन्न करने वाले और (पुरू दंसासि) नाना कर्मों को (बिभ्रता) धारण करने वाले (वरस्या) श्रेष्ठ, (त्या) उन आप दोनों को मैं (इह) इस अवसर में (यामि) प्राप्त होता हूँ और (अध्रिगू) भूमि पर अधिकारवान्, मार्ग में दूर देशों तक जाने वाले (तुविः-तमा) अति बलवान् आप दोनों को मैं (हुवे) बुलाता हूँ।

ईर्मान्यद्वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः।
पर्यन्या नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः ॥ ३ ॥

भा०—आप दोनों (ईर्मा) संसार-मार्ग पर जाने वाले स्त्री पुरुष (रथस्य चक्रम्) रथ-चक्र के तुल्य (वपुषे) एक शरीर के सहारे के लिये (अन्यत् वपुः) इससे भिन्न दूसरे शरीर को जानकर परस्पर को (येमथुः) नियन्त्रित करते और विवाह-बन्धन में बांधते हो। वैसे ही भिन्न २ प्रकार के (नाहुषायुगा) बन्धन में बंधने वाले मनुष्यों के जोड़ों को (परिदीयथः) चलाते और (मह्ना) अपने बड़े सामर्थ्य से (रजांसि) लोकों को (परि क्षीयथः) बसाते, सञ्चालित करते हो।

तदू षु वांमेना कृतं विश्वा यद्वामनुष्टवें ।
नाना जातावरेपसा समस्मे बन्धुमेयंथुः ॥ ४ ॥

भा०—हे स्त्री-पुरुषो ! (यत्) जो काम (वाम्) आप के (अनुस्तवे) अनुकूल, स्तुति-योग्य है, मैं आपको उपदेश करता हूँ (तत् विश्वा) वे काम आप (एना) इस विधि से (कृतम्) करो और (अरेपसा) निष्पाप होकर (नानाजातौ) भिन्न २ वंश में उत्पन्न स्त्री-पुरुष (अस्मे) हमारी वृद्धि के लिये (बन्धुम्) बन्धन को (सम् आ ईयथुः) अच्छी प्रकार प्राप्त करें ।

आ यद्वां सूर्या रथं तिष्ठद्रघुष्यदं सदा ।
परि वामरुषा वयो घृणा वरन्त आतपः ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—(यत्) जब (वा) आप वर-वधू दोनों में से (सूर्या) उषा के समान कान्तिमती, सन्तानोत्पादन में समर्थ स्त्री (रघु-स्यदं) वेग से जाने वाले (रथम्) रथवत् रमण-योग्य गृहस्थ आश्रम को (अतिष्ठत्) धारण करती है, तब हे वर-वधू ! (वाम् परि) आप के ऊपर (अरुषाः) दीप्ति-युक्त (घृणाः) जल-सेचन करने वाले (आतपः) खूब तपने वाले सूर्य किरण जैसे (आवरन्त) पड़ते हैं वैसे ही गृहस्थ में आप दोनों के ऊपर (अरुपाः) रोष-रहित, (घृणाः) दया-प्रवाह बहाने वाले, (आतपः) तपस्वी जन (आ वरन्त) तुमको आवृत करें, तुम्हारी रक्षा करें । इत्येकादशो वर्गः ॥

युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा ।
घर्मं यद्वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति ॥ ६ ॥

भा०—हे (नरा) स्त्री-पुरुषो ! हे (नासत्या) असत्य आचरण न करने वालो ! (यत्) जो (वाम्) आप दोनों के (घर्मं) तेजोयुक्त (अरेपसं) पापरहित कर्म को (आस्ना) मुख-द्वारा (भुरण्यति) उपदेश करता है, वह (अत्रिः) तीनों दुःखों से रहित पुरुष (सुम्नेन चेतसा) उत्तम मननशील, चित्त से ही (युवोः चिकेतति) आप को उपदेश दे ।

उग्रो वां ककुहो यथिः शृण्वे यामेषु सन्तनिः ।
यद्वां दंसोभिरश्विनात्रिर्नराववर्तति ॥ ७ ॥

भा०—हे स्त्री-पुरुषो ! हे (अश्विना) शीघ्रगामी अश्ववत् इन्द्रियों के स्वामी पुरुषो ! (यत् अत्रिः) जो भोक्ता पुरुष (दंसोभिः) नाना कार्यों से (आ ववर्त्तति) आजीविका प्राप्त करता है वह (उग्रः) बलवान् पुरुष (वां) आप दोनों में से (ककुहः) श्रेष्ठ, (सन्तनिः) वंश का विस्तारक और (यामेषु) सब मार्गों पर (यथिः) जाने में स्वतन्त्र (शृण्वे) सुना जाय ।

मध्वं ऊ षु मधूयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी ।
यत्समुद्राति पर्षथः पक्काः पृक्षो भरन्त वाम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (मधूयुवा) मधुर पदार्थों को मिलाने वाले, हे (रुद्रा) दुष्टरोदक स्त्री-पुरुषो ! (यत्) जब (रुद्रा) गर्जन-पूर्वक द्रवण होने वाली (पिप्युषी) अन्नादि को बढ़ाने वाली जल-वृष्टि (मध्वः सिषक्ति) अन्नों को सींचती हैं, इधर आप दोनों (समुद्रा) अन्तरिक्षों और समुद्रों को भी (अति पर्षथः) पार कर लिया करो और (पक्काः पृक्षः) पके अन्न (वाम् भरन्त) तुम दोनों का पोषण करें ।

सत्यमिद्वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा ।
ता यामन्यामहूतमा यामन्ना मृळयत्तमा ॥ ९ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारथिवत् इन्द्रिय दमनकर्ता स्त्री-पुरुषो ! (सत्यम् इत् वा) निश्चय से (वां) आप दोनों को जो लोग (मयः-भुवा आहुः) सुख-उत्पादक बतलाते हैं सो (सत्यम् इत् उ) ठीक ही है । (ता) वे आप दोनों (यामन्) परस्पर विवाह आदि बन्धन-पूर्वक एक दूसरे को कर्त्तव्य में बांधने के लिये (याम-हूतमा) संयम-शील पुरुषों को गुरु-रूप से स्वीकार करने वालों में श्रेष्ठ होकर विवाह करो और (यामनि) उस संयम-युक्त विवाह-बन्धन में दोनों (आ व-तमृडयमा) एक दूसरे को सुखी करो ।

इ॒मा ब्रह्मा॑णि॒ वर्ध॑ना॒श्विभ्यां॑ सन्तु॒ शन्त॑मा ।
या तक्षा॑म॒ रथाँ॑ इ॒वावो॑चाम बृ॒हन्नमः॑ ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—(या) जिन (ब्रह्माणि) धनों, अन्नों को हम (रथान्‌ इव) रथों और रम्य पदार्थों के तुल्य (तक्षाम) उत्पन्न करते हैं (इमा) वे (अश्विभ्यां) रथी-सारथिवत्‌ राजा-रानी, पति-पत्नी आदि को (वर्धना) बढ़ाने वाले होकर (शन्तमा) अत्यन्त शान्तिदायक (सन्तु) हों। हम आप दोनों को (बृहत्‌ नमः) बड़ा नमस्कार-वचन (अवोचाम) कहें। इति द्वादशो वर्गः ॥

[७४]

आत्रेय ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, १० विराडनुष्टुप्‌ । ३ अनुष्टुप्‌ । ४, ५, ६, ९ निचृदनुष्टुप्‌ । ७ विराडुष्णिक्‌ । ८ निचृदुष्णिक्‌ ॥ एकादशर्चं सूक्तम्‌ ॥

कूष्ठो॑ देवावश्विना॒द्या दि॒वो म॑नावसू ।
तच्छ्र॑वथो वृषण्वसू॒ अत्रि॑र्वा॒मा वि॑वासति ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! आप (देवौ) दानशील, परस्पर कामना-युक्त होकर (कू-स्थः) भूमि पर विराजते हो। आप (दिवः) उत्तम व्यवहार और कामना के (मनावसू) मनन और ज्ञान को धन-रूप से रखने वाले, ज्ञान के धनी हो। हे (वृषण्वसू) हे वीर्यसेचक पुरुष, एवं पुरुष को अपने आश्रय बसाने वाली स्त्री! तुम दोनों (तत्‌) उस ज्ञानोपदेश का (श्रवथः) श्रवण करो जिसको (अत्रिः) त्रिविध दुःखों से पारंगत चतुर्थाश्रमी विद्वान्‌ (वाम्‌) आप दोनों को (आ विवासति) उपदेश करें।

कुह॒ त्या कुह॒ नु श्रु॒ता दि॒वि दे॒वा नास॑त्या ।
कस्मि॒न्ना य॑तथो॒ जने॒ को वां॑ न॒दीनां॒ सचा॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (नासत्या) असत्याचरण न करने वाले स्त्री-पुरुषो !

(त्या कुह आयतथः) वे आप कहां यत्नवान् होकर रहते हो ? (कुह) किस आश्रम में (नु) भला आप (दिवि) ज्ञान-शाखा में (श्रुतौ) विद्योपदेश सुने हो ? हे (देवः) कामना-युक्त स्त्री-पुरुषो ! आप (कस्मिन् जने) किस जन-समूह में (आ यतथः) विद्या-प्रचार करते हो । (वां) आप दोनों की (नदीनाम्) वाणियों का (कः) कौन (सचा) सहयोगी है ?

कं यांथः कं ह गच्छथः कमच्छा युञ्जाथे रथम् ।
कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुश्मसीष्टये ॥ ३ ॥

भा०—आप दोनों (कं याथः) किसको लक्ष्यकर जाते हो । (कं ह गच्छथः) किसके पास जाते हो । (कम् अच्छ) किसके प्रति (रथम् युञ्जाथे) जाने के लिये यान जोड़ते हो । वा किस (रथम्) लक्ष्य से योगाभ्यास करते हो । (कस्य) किस के (ब्रह्माणि) वेद-वचनों, अन्नों का (रण्यथः) उपभोग करते हो । (वयम्) हम (वाम्) आप दोनों को (इष्टये) यज्ञ एवं स्व-अभिलाषा के लिये (उश्मसि) चाहते हैं ।

पौरं चिद्ध्युदप्रुतं पौर पौराय जिन्वथः ।
यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥ ४ ॥

भा०—हे (पौर) पुर-वासी स्त्री-पुरुषो ! आप लोग (पौराय) पुर-वासी जनों के हितार्थ (उदप्रुतं) जल से अभिषिक्त, पौरम् ('रघु') अर्थात् नगर-वासी जनों के हितैषी, (ईम्) इस (सिंहम् इव) सिंह तुल्य तेजस्वी पुरुष को (गृभीत-तातये) हाथ में लिये, राष्ट्र कल्याण हेतु और (द्रुहः) शत्रु से द्रोह अर्थात् लड़ाई के (पदे) कार्य पर (जिन्वथः) अभिषिक्त करो ।

प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिमत्कं न मुञ्चथः ।
युवा यदीं कृथः पुनरा काममृण्वे वध्वः ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—हे उत्तम पुरुषो ! आप (जुजुरुषः) जरावस्था को प्राप्त (च्यवानात्) क्षीण पुरुष से (वव्रिम्) वरण-योग्य पद वा अधिकार

को (अत्कं न) कवच-समान (प्र मुञ्चथः) छुड़ा दो और (पुनः) फिर उस पर (युवा) जवान पुरुष जैसे (वध्वः कामम्) वधू की कामना वा सुन्दर रूप को (ऋण्वे) प्राप्त करता है वैसे ही (यदि युवा) जवान पुरुष (वध्वः) 'वधू' अर्थात् कार्य-भार-वहन की शक्ति के (कामं) कान्ति-युक्त पद को (ऋण्वे) प्राप्त करे, तो उसी को आप दोनों (पुनः वव्रिम् कृथः) पुनः उस वरण-योग्य पद पर नियुक्त करें। इति त्रयोदशो वर्गः॥

अस्ति हि वामिह स्तोता स्मसि वां सन्दृशि श्रिये।
नू श्रुतं म आ गतमवोभिर्वाजिनीवसू ॥ ६ ॥

भा०—हे सभा वा सेना के अध्यक्षो! (वाम्) आप को (स्तोता) उपदेश करने वाला भी (इह) इस राष्ट्र में (अस्ति हि) हो और हम (वां) आप की (श्रिये) सम्पत्ति-वृद्धि व आश्रय-प्राप्ति के लिये, आपके (संदृशि) उत्तम-दर्शन, वा शासन में (स्मसि) रहें। आप (मे नु श्रुतम्) हमारे वचन सुनिये। हे (वाजिनी-वसू) संग्रामकारिणी सेना, अन्नादि ऐश्वर्य और ज्ञानवान् पुरुषों से युक्त राजसभा के बीच विराजने वाले अध्यक्ष जनो! आप (अवोभिः) रक्षा-साधनों सहित (आ गतम्) आइये।

को वामद्य पुरूणामा वव्ने मर्त्यानाम्।
को विप्रो विप्रवाहसा को यज्ञैर्वाजिनीवसू ॥ ७ ॥

भा०—हे (विप्र-वाहसा) विविध ऐश्वर्यों और विद्याओं से स्वयं को पूर्ण करने वाले! एवं (वाजिनी-वसू) बल और ज्ञान से युक्त सेना और वाणी को बसाने वाले राजा और गुरु-जनो! (अद्य) आज (पुरूणाम् मर्त्यानाम्) मरणशील अनेक मनुष्यों में से (कः वाम् वव्ने) कौन आप की सेवा करता है, (कः विप्रः) कौन विद्वान् (यज्ञैः) दानों और सत्संग आदि से (वां वव्ने) आप दोनों से प्रार्थनादि करता है? इसे विचारो।

आ वां रथो रथानां येष्ठो यात्वश्विना।
पुरू चिदस्मयुस्तिर आङ्गूषो मर्त्येष्वा ॥ ८ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्या-पारंगत स्त्री-पुरुषो ! (रथानां येष्ठः) रथों में चलने में सर्वोत्तम (वां रथः) आप दोनों का रथ (आ यातु) आवे। (मर्त्येषु) मनुष्यों में (पुरु चित् तिरः) बहुत से ऐश्वर्यों का ज्ञापक आप का (अस्मयुः) हमें प्राप्त होने वाला (आङ्गूषः) उपदेश (आ यातु) प्राप्त हो।

शमू षु वां मधूयुवास्माकमस्तु चर्कृतिः।
अर्वाचीना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम् ॥ ९ ॥

भा०—(मधु-युवा) मधुर अन्नादि पदार्थों को प्राप्त करने योग्य, स्त्री-पुरुषो ! (अस्माकं) हमारी (चर्कृतिः) सत्कार क्रिया (वाम् शम् उ सु अस्तु) आप दोनों को शान्तिदायक हो। आप (विचेतसा) विशेष ज्ञानी होकर (श्येना इव) बाजों के समान (विभिः) आकाशगामी रथों से (अर्वाचीना) हमारे सन्मुख (दीयतम्) आवो-जावो।

अश्विना यद्ध कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम्।
वस्वीरू षु वां भुजः पृञ्चन्ति सु वां पृचः ॥ १० ॥ १४ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! रथी- सारथिवत् सभा-सेनाध्यक्षो ! आप (यत् कर्हि चित्) जिस किसी प्रकार (इमं) इस (हवम्) ग्रहण-योग्य वेद-वचन को (शुश्रूयातम्) सुनते रहो। (वां) आप दोनों को (वस्वीः) गुरु के अधीन वसी शिष्य-मण्डलियों के तुल्य राष्ट्रवासी प्रजाएं (भुजः) राष्ट्र का भोग करने वाली होकर (सु पृञ्चन्ति) आप से भली प्रकार मिलती हैं। वे (वां) आप के साथ (उ सु) उत्तम रीति से (पृचः) सम्पर्क रक्खें। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[७५]

अवस्युरात्रेय ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३ पंक्तिः। २, ४, ६,७,८ निचृत्पंक्तिः। ५ स्वराट्पंक्तिः ॥ ९ विराड्पंक्तिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

अति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेन प्रति भूषति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! (ऋषिः=ऋ' गति सिनाति यः) क्रिया और ज्ञान को बांधने में समर्थ पुरुष, (वृषणं) बलवान्, और सुप्रबन्ध युक्त, (वसु-वाहनम्) धन को, उस पर बैठने वालों को उठाकर दूर ले जाने में समर्थ (प्रियतमं रथं) अति प्रिय रथ, एवं रमण-योग्य ज्ञान-वचन को (स्तोमेन) ज्ञानरहस्य के साथ (वाम् अति भूषति) आप को देता और अलंकृत करता है, हे (माध्वी) मधुर भाषी स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों (मम हवं श्रुतम्) मेरा वचन सुनो ।

अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ २

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! (अहं) मैं (सना) सदा से प्राप्त (विश्वा) समस्त (तिरः) श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करता हूँ । आप दोनों (दस्रा) दुःखों के नाश में समर्थ (हिरण्य-वर्तनी) हित और रमणीय मार्ग पर चलते हुए, (सु-सुम्ना) उत्तम सुख से युक्त (सिन्धु-वाहसा) नदी द्वारा नौका ले जाने वाले केवट के समान सिन्धुवत् प्रवाह से ज्ञानदाता गुरु को प्राप्त होकर (माध्वी) मधुर ज्ञान को सेवन करते हुए (मम) मेरे (हवम्) ग्रहण-योग्य ज्ञान को (श्रुतम्) सुनो ।

आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ३

भा०—हे (अश्विना) इन्द्रियों के स्वामी स्त्री-पुरुषो ! (युवम्) आप (रत्नानि) सुन्दर गुण-रत्नों को (बिभ्रतौ) धारण करते हुए (नः आ गच्छतम्) हमें प्राप्त होवो । (रुद्रा) दुष्टों को रुलाने वाले, (हिरण्य-

वर्तनी) हित-रमणीय मार्ग से जाने वाले, (वाजिनी-वसू) ज्ञानयुक्त वाणी के लिए गुरु के अधीन बसे आप दोनों (जुषाणा) प्रेमपूर्वक सेवन करते हुए (माध्वी) मधुवत् ज्ञान-संग्रही होकर (मम हवं) मेरे ज्ञानोपदेश को (श्रुतम्) सुनो।

सुष्टुभो वां वृषण्वसू रथे वाणीच्याहिता।
उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥४॥

भा०—हे (वृषण्वसू) मेघवत् ज्ञान-वर्षक गुरु के अधीन बसे स्त्री-पुरुषो! (सु-स्तुभः) उत्तम उपदेष्टा की (वाणीची) वाणी (वां रथे) आप के रमणीय आत्मा में (आ-हिता) अच्छी प्रकार धारण की जावे। (उत) और (ककुहः) महान् (मृगः) आचरणशोधक गुरु (वापुषः) शरीरदाता पिता के तुल्य (वां) आप का (पृक्षः) सम्पर्क जोड़ने वाले अन्नवत् ज्ञान का (कृणोति) उपदेश देता है। आप (माध्वी) अन्नवत् ज्ञान-संग्रही होकर (मम हवं श्रुतम्) मेरा वचन सुनो।

बोधिन्मनसा रथ्येषिरा हवनश्रुता। विभिश्च्यवानमश्विना नि याथो अद्वयाविनं माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ५ ॥ १५ ॥

भा०—(रथ्या अश्विनौ इषिरा विभिः च्यवानम् यातः) जैसे रथी-सारथि दोनों अश्वों को प्रेरणा करते हुए वेगगामी अश्वों से जाते हैं, वैसे ही उत्साह-युक्त, हे स्त्री-पुरुषो! आप दोनों (बोधिन्मनसा) ज्ञान-युक्त चित्त वाले, (हवन-श्रुता) ग्राह्य उपदेश के श्रोता, (रथ्या) देह और आत्मा से युक्त, (इषिरा) इच्छावान् होकर (च्यवानम्) ज्ञानवृद्ध (अद्वयाविनम्) दो भाव अर्थात् बाहर कुछ और भीतर कुछ इससे रहित, गुरु को (विभिः) कान्ति और गति-युक्त अवयवों सहित (नि याथः) नम्रतापूर्वक प्राप्त होवो। (माध्वी) मधुसंग्रही भ्रमरों के समान ज्ञान-संग्रह करते हुए (मम हवं श्रुतम्) मेरा वचन सुनो। इति पञ्चदशो वर्गः॥

आ वां नरा मनोयुजोऽश्वासः प्रुषितप्सवः।
वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥६

भा०—हे (नरा) स्त्री-पुरुषो ! (अश्वासः प्रुषितप्सवः वयः सुम्नेभिः वां वहन्ति) जैसे अन्नादि भोक्ता, नाना रूप एवं तैल, कोयला आदि को दग्ध करने वाले, वेगवान् अश्व, रथ यन्त्रादि वेगवान् होकर सुखों-सहित तुम दोनों को दूर पहुँचा देते हैं वैसे ही (मनः-युजः) मन-रूप रासों से जुते (अश्वासः) ये इन्द्रिय गण (वयः) स्वयं दीप्ति-युक्त होकर (वां) आप दोनों को (पीतये) सुख भोगने के निमित्त (सुम्नेभिः) सुखों-सहित (वहन्तु) धारण करें अथवा, (माध्वी) मधुवत् ज्ञान-संग्रही आप दोनों (मम हवं श्रुतम्) मेरा उपदेश सुनो।

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम्।
तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥७॥

भा०—(अश्विनौ) हे जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो! आप दोनों (इह) इस लोक में (आ गच्छतम्) आदर-पूर्वक आइये। हे (नासत्या) असत्याचरण न करने वाले! आप दोनों (मा वि वेनतम्) विरुद्ध कामना न करो। आप दोनों (अर्यमा) स्वामी होकर (तिरः चित् वर्त्तिः) प्राप्त आजीविका के मार्ग को वा गृह को (अदाभ्या) अहिंसित होकर (परि यातम्) जाओ। (मम हवम्) मेरे उपदेश को (माध्वी श्रुतम्) मधुवत् ज्ञान-संग्रही होकर सुनो।

अस्मिन्यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती।
अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥८

भा०—हे (शुभस्पती अश्विना) कल्याणकारी व्यवहार के पालक स्त्री-पुरुषो ! (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञ में (अदाभ्या) कभी पीड़ित न होकर (युवं) तुम दोनों (जरितारं) उपदेष्टा (अवस्युं) रक्षक (गृणन्तं) उपदेश देते हुए विद्वान् के (उप) पास (भूषथः) प्राप्त होवो। (माध्वी मम हवम् श्रुतं) मधुवत् ज्ञान-संग्रही होकर मेरे वचन सुनो।

अभूदुषा रुशत्पशुराग्निरधाय्यृत्वियः ।
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम् ६।१६

भा०—(उषा रुशत्-पशुः अभूत्) जैसे जगत् का रूप दिखाने वाले किरणों से युक्त होती है और (अग्निः अधायि) विद्वानों द्वारा अग्नि आधान किया जाता है वैसे ही जब (उषा) कामना वाली स्त्री, (रुशत्-पशुः) दीप्ति युक्त, उत्तम पशुसम्पदा से युक्त होती है और (अग्निः) तेजस्वी पुरुष (रुशत्-पशुः) तेजस्वी अंगों वाला हो, तब वह (ऋत्वियः) ऋतु-काल में गमन करता (अधायि) गर्भ-रूप से स्थित हो। हे (वृषण्वसू) वीर्य-सेचन-समर्थ पुरुष एवं उसके अधीन स्त्री! (वां) तुम दोनों का (रथः) सुख-पूर्वक रमण योग्य गृहस्थ-रथ (अमर्त्यः) कभी न नाश होने योग्य रूप से (अयोजि) रथवत् ही जुता रहे। हे (दस्रौ) दर्शनीय, हे दुःख-नाशक! आप दोनों (माध्वी मम हवं श्रुतम्) मधुवत् ज्ञान-संग्रही होकर मेरे उपदेश को सुनो। इति षोडशो वर्गः ॥

[७६]

अत्रिर्ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २ स्वराट् पंक्तिः । ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥ १ ॥

भा०—जैसे (अग्निः उषसाम् अनीकम्) अग्निमय सूर्य उषाओं के मुखवत् प्रकाशित होता है और (विप्राणाम्) विद्वान् पुरुषों की (देवयाः) ईश्वर को लक्ष्य करने वाली (वाचः) वाणियां (उत् अस्थुः) उत्पन्न होती हैं वैसे ही हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, रथी-सारथिवत् स्त्री-पुरुषो! (उषासम्) शत्रु-दल को दग्ध करने वाली सेनाओं के (अनीकम्) समूह को प्राप्त कर उनका प्रमुख (अग्निः) अग्नि-तुल्य तेजस्वी नायक (आ भाति) प्रकाशित होता है। उस समय (विप्राणां) विद्वानों

की (देवयाः वाचः) तेजस्वी वाणियां (उद् अस्थुः) उठती हैं। अतः हे स्त्री-पुरुषो! (नूनं) निश्चय से (रथ्या) रथ पर स्थित रथियों के समान आप दोनों (अर्वाञ्चा) अश्व-बल से जाने वाले होकर (इह) इसी राष्ट्र में (पीपिवांसम्) अच्छी प्रकार बढ़ने वाले (घर्मम्) सुखों को सेचन करने में समर्थ, विद्वान् पुरुष, प्रभु वा राजा को (अच्छ यातम्) प्राप्त होवो।

न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा॥ २॥

भा०—(अश्विना) उत्तम पदार्थों के भोक्ता जनो! इन्द्रियों के स्वामियो! आप दोनों (संस्कृतं) उत्तम रीति से किये कार्य को (न प्र-मिमीतः) नहीं विनाश करते। (नूनम्) निश्चय से आप (इह) इस लोक में (अन्ति) एक दूसरे के पास (गमिष्ठा) प्राप्त होकर (उपस्तुता) प्रशंसित होते हो। (दिवा) दिन के समय (अभि-पित्वे) प्राप्त होने पर (अवसा) रक्षा और प्रीति के साथ (आ-गमिष्ठा) परस्पर पास आने वाले होवो और (दाशुषे) दानशील विद्वान् के उपकार के लिये (अवर्तिं प्रति) आजीविका से रहित पुरुष के प्रति (शम्भविष्ठा) कल्याणकारी बनो।

उता यातं सङ्गवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य।
दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान॥ ३॥

भा०—(उत) और हे (अश्विना) रथी-सारथिवत् गृहस्थ स्त्री-पुरुषो! आप दोनों (संगवे) गौवों के दोहन-काल में एकत्र आ जाने के सायं समय में और (अह्नः प्रातः) दिन के प्रातः समय में वा (मध्य-न्दिने) दिन के मध्य काल में वा (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के ऊपर आ जाने पर अर्थात् (दिवा-नक्तम्) दिन और रात्रि सब समय (शं-तमेन) अत्यन्त शान्तिदायक (अवसा) रक्षासाधन-सहित (आ यातम्) आया-

जाया करो। (इदानीम्) अभी भी (पीतिः) अन्नादि का उपभोग वा रक्षासाधन (न ततान) नहीं हुआ है।

इदं हि वां प्रदिवि स्थानमोक इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम्।
आ नो दिवो बृहतः पर्वतादाद्भ्यो यातमिषमूर्जं वहन्ता ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो! (वां) आप दोनों का (हि) निश्चय से (प्र-दिवि) उत्तम प्रकाश में रहने का (स्थानम्) स्थान और इसमें ही (ओकः) निवास हो, (इमे गृहाः) ये गृहस्थाश्रम के धारक पुरुष और स्त्रियें प्रकाश वाले भूभाग में रहें। (इदं दुरोणम्) यह गृह (प्रदिवि) ऊंची भूमि और उत्तम प्रकाश में हो। आप दोनों (बृहतः दिवः) बड़े भारी आकाश से (इषम्) वृष्टि को, (बृहतः दिवः इषम्) बड़े सूर्य के प्रेरक बल को, (बृहतः पर्वतात्) बड़े मेघ से (इषम्) वृष्टि को और (अद्भ्यः इषम् ऊर्जं) जलों से अन्न को (वहन्ता) प्राप्त करते हुए (नः आयातम्) हमें प्राप्त होवो।

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥५।१७॥

भा०—हम लोग (अश्विनोः) विद्याओं के ज्ञाता स्त्री-पुरुषों के (नूतनेन) नवीन (मयोभुवा) सुखप्रद (अवसा) ज्ञान वा प्रेम से और (सु-प्र-णीति) उत्तम, प्रेम व्यवहार और नीति से (सं गमेम) संगति करें। वे दोनों (नः) हमें (रयिम्) ऐश्वर्य, (उत वीरान्) वीर पुत्रों, (विश्वानि) सब प्रकार के (अमृता) दीर्घ जीवनों और (सौभगानि) ऐश्वर्यों को (आ वहतम्) प्राप्त करावें। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[७७]

अत्रिऋर्षिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्वं पुरा गृध्रादररुषः पिबातः।
प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते प्र शंसन्ति कवयः पूर्वभाजः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! जो सभा-सेना के अध्यक्ष जन (अररुषः)

अदानशील, क्रोधी और (गृध्रात्) लोभी पुरुष से राष्ट्र की (पिबातः) रक्षा करते हैं वे आप उन (प्रातर्यावाणा) प्रातः-काल, कार्य के प्रारम्भ में उपस्थित होने वाले (प्रथमा) प्रधान दो पुरुषों को (यजध्वम्) प्राप्त होवो। (अश्विना) उत्तम अश्वों के स्वामी दोनों (प्रातः यज्ञं) प्रातः-काल नित्यकर्म रूप यज्ञ के समान ही सबसे पूर्व प्रजापालन रूप यज्ञ को (हि) ही (दधाते) धारण करते हैं। यज्ञशील स्त्री-पुरुषों के तुल्य ही उन दोनों की (पूर्वभाजः) पूर्व पुरुषाओं से उपार्जित ज्ञान को प्राप्त करने वाले (कवयः) विद्वान् (प्र शंसन्ति) प्रशंसा करते हैं। वैसे ही जो स्त्री-पुरुष (अरुरुपः गृध्रात्) क्रोधी और लोभी पुरुष से पृथक् रहकर (पुरा) जीवन के पूर्व काल में (पिबातः) ज्ञान का पान और व्रत-पालन करते हैं उन (प्रातर्यावाणा) जीवन की प्रभात वेला में गुरु के समीप जाने वाले स्त्री-पुरुषों का आदर करो।

प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम्।
उतान्यो अस्मद्यजते वि चावः पूर्वः पूर्वो यजमानो वनीयान् ॥२॥

भा०—हे प्रजा-जनो! (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषों का (प्रातः) दिन के पूर्व काल में (सायम्) और सायं समय में भी (यजध्वम्) सत्संग करो और उनको (हिनोत) तृप्त करो। (देवयाः) विद्वान् पुरुषों के आदर-योग्य पदार्थ (अजुष्टम् न अस्ति) प्रीति से सेवने के अयोग्य (न) नहीं होता। (उत) और जो (अस्मत्) हमसे (अन्यः) दूसरा कोई भी (यजते) उत्तम ज्ञान-दान करता है और (वि अवः च) विशेष रूप से हमें प्रेम-पूर्वक अन्नादि देता है, वह भी (पूर्वः पूर्वः) हमसे पूर्व २ अर्थात् वयस् और विद्या में वृद्ध पुरुष भी (यजमानः) यज्ञादि करने वाला (वनीयान्) अति आदर-योग्य है।

हिरण्यत्वङ् मधुवर्णो घृतस्नुः पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वाम्।
मनोजवा अश्विना वातरंहा येनातियाथो दुरितानि विश्वा ॥३॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री-पुरुषो ! (हिरण्य-त्वक्) सुवर्ण के आवरण से युक्त, (मधुवर्णः) मधुतुल्य चिकने रंग वाले (घृतस्नुः) तेल आदि से शुद्ध, (पृक्षः वृहत्) अन्न आदि को ले जाने वाला, महान् (रथः) रथ (वां वर्त्तते) आप के प्रयोग में आवे। उसमें (मनोजवाः) मन के संकल्प से वेग से जाने वाले, (वातरंहाः) वायु-वेग से युक्त अश्व, यन्त्रादि हों। (येन) जिस रथ से आप दोनों (विश्वा) समस्त (दुरितानि) दुर्गम स्थानों को (अति याथः) पार करने से समर्थ होवो।

यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां विवेष चनिष्ठं पित्वो ररते विभागे।
स तोकमस्य पीपरच्छमीभिरनूर्ध्वभासः सद्मित्तुतुर्यात् ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष, (नासत्याभ्याम्) असत्य व्यवहार न रखने वाले स्त्री-पुरुषों के लिये (भूयिष्ठं) बहुत अधिक और (चनिष्ठं) उत्तमोत्तम अन्न (विवेष) देता है और (वि-भागे) विविध प्रकार से विभक्त करने के लिए (पित्वः) अन्न का (ररते) दान करता है (सः) वह (शमीभिः) शान्तिजनक कर्मों से (अस्य) इस राष्ट्र के (तोकम्) पुत्र-तुल्य प्रजा को (पीपरत्) पालता है और (अनूर्ध्वभासः) ऊपर उठने वाली दीप्तियों व अग्नि-आदि से रहित, अथवा अल्पदीप्ति अग्निवत् स्वल्प शक्ति वाले दीन जन वा राष्ट्र के (सद्म्) प्राप्त दुःख को (इत्) ही (तुतुर्यात्) नष्ट किया करे।

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥ ५।१८

भा०—व्याख्या देखो इसी मण्डल के सूक्त ७६ का ५ वां मन्त्र। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[७८]

सप्तव ध्रिरात्रेय ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते । ७, ९ गर्भस्राविणी उपनिषत् ॥ छन्दः—१, २, ३ उष्णिक् । ४ निचृत्-त्रिष्टुप् । ५, ६ अनुष्टुप् । ७, ८, ९ निचृदनुष्टुप् ॥

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) रथी-सारथिवत् स्त्री-पुरुषो! आप (इह) इस गृहस्थाश्रम में (आगच्छतम्) आया करो। हे (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले! आप (मा वि वेनतम्) एक दूसरे के विपरीत इच्छा मत करो। प्रत्युत (सुतान् उप) ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये (हंसौ इव) हंस-हंसिनी के समान (आ पततम्) आया करो।

अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम् ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) दो अश्वारोहियों के समान एक साथ चलने वाले स्त्री-पुरुषो! जैसे (यवसम्) यव आदि धान्य को लक्ष्य करके (हरिणौ इव गौरौ इव) दो हरिण और दो गौर मृग जाते हैं और जैसे जलों की ओर (हंसौ इव) दो हंस जाते हैं वैसे ही (सुतान् उप आ पततम्) पुत्रों, एवं ओषधिरसों को लक्ष्य कर आप भी जाया-आया करो।

अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां यज्ञमिष्टये ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) रथी सारथिवत् जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो! हे (वाजिनीवसू) बल आदि से युक्त कर्म में निष्ठ आप दोनों (इष्टये) मैत्रीभाव की वृद्धि के लिये (यज्ञम्) सत्संग आदि का (जुषेथाम्) सेवन करो। (सुतान् उप हंसौ इव आ पततम्) उत्पन्न पुत्रों और ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये दो हंसों के समान सहयोगी होकर एक साथ कार्य करो।

अत्रिर्यद्वामवरोहन्नृबीसमजोहवीन्नाधमानेव योषा ।
श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनागच्छतमश्विना शन्तमेन ॥४॥१६॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! (यत्) जो (अत्रिः) तीनों प्रकार के दुःखों से रहित (नाधमाना इव योषा) कामना करती हुई, स्त्री के समान अति विनीत होकर (ऋबीसम् अवरोहन्) विनम्र होकर (वाम् अजोहवीत्) आप दोनों को बुलावे, तब आप दोनों (श्येनस्य चित्) बाज के से (जवसा) वेग से (नूतनेन) नूतन (शं-तमेन) अति शान्तिदायक रूप से (आ गच्छतम्) प्राप्त होइये। एकोनविंशो वर्गः ॥

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव ।
श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (वनस्पते) सेवन-योग्य जलों, शिष्यों के स्वामी, मेघ वा सूर्यवत् ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! (सूष्यन्त्याः इव) प्रसव करने वाली स्त्री का (योनिः) योनि जैसे प्रसव-काल में विवृत होकर बालक को जन्म देता है, हे आचार्य ! आप भी ऐसे ही (वि जिहीष्व) विवृत होवो और शिष्य-रूप पुत्र को विद्या-गर्भ में रखकर गुरुगृह से जन्म देते हो। हे (अश्विना) जितेन्द्रिय विद्वान् उपदेशक जनो ! (मे) मुझे (हवं) ज्ञानोपदेश (श्रुतं) श्रवण कराओ और (सप्तवध्रिम्) सातों ज्ञान-मार्गों में बंधे हुए अर्थात् आंख, नाक, मुख, कान इन सातों द्वारों को वश करने वाले मुझको (वि मुञ्चतम्) बन्धन-मुक्त करो।

भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये ।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥ ६ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्या में व्याप्त चित्त वालो अध्यापक, आचार्य जनो ! (भीताय) संकटों से भयभीत हुए, (नाधमानाय) शरण की याचना करते हुए, (सप्त-वध्रये) सातों इन्द्रियों को बधिया बैल के समान शान्त रखने वाले, (ऋषये) ज्ञान के लिये उत्सुक विद्यार्थी के उपकारार्थ (युवं) आप दोनों (मायाभिः) बुद्धियों तथा वाणियों से

(वृक्षम्) उच्छेद करने योग्य अज्ञान को (सम् च) अच्छी प्रकार से और (वि च) विविध प्रकार से (अचथः) दूर करो।

यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः।
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः॥ ७॥

भा०—७-९ गर्भस्राविणी उपनिषत्। (यथा) जैसे (वातः) वायु (सर्वतः) सब ओर से (पुष्करिणीं) पोखरिणी वा कमलिनी को (समिङ्गयति) अच्छी प्रकार कंपाता है वैसे ही शरीर का अपान वायु गर्भस्थ बालक को (पुष्करिणीं) पुष्ट करने वाली, जल-भरी थैली वा आंवल को कम्पित करता है। (एव) इसी प्रकार से (गर्भः) गर्भगत बालक (एजतु) कांपे, स्पन्दन करे और ऐसे ही (दशमास्यः) वह दश मास में पूर्ण होकर (निः एतु) बाहर निकल आवे।

यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा॥ ८॥

भा०—(यथा वातः) जैसे वायु (एजति) वेग से चलता है, (यथा वनं) और जैसे 'वन' वायु से कांपता है वा जैसे (समुद्रः एजति) समुद्र कांपता है, (एव) वैसे ही हे (दशमास्य) दश मास में परिपक्व होने वाले गर्भ! तू (जरायुणा सह) जेर के साथ (अव इहि) नीचे आजा।

दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि॥ ९॥ २०॥

भा०—(कुमारः) बालक (मातरि अधि) माता के भीतर (दश मासान् शशयानः) दस मास तक प्रसुप्त रूप से रहता हुआ (जीवः) जीवित रूप में (अक्षतः) किसी प्रकार की चोट, अंग-भंग को प्राप्त न होकर (जीवः) जीवित ही (जीवन्त्याः अधि) जीती हुई माता से (निर् आ एतु) बाहर आ जावे। इति विंशो वर्गः॥

[७९]

सत्यश्रवा आत्रेय ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१ स्वराड्ब्राह्मी गायत्री ॥ २, ३, ७ भुरिग्बृहती । १० स्वराड् बृहती । ४, ५, ८ पंक्तिः ॥ ६, ९ निचृत् पंक्तिः ॥

म॒हे नो॑ अ॒द्य बो॑धयो॒षो॑ रा॒ये दि॒वित्म॑ती ।
यथा॑ चिन्नो॒ अबो॑धयः स॒त्यश्र॑वसि वा॒य्ये सुजा॑ते॒ अश्व॑सूनृते ॥१॥

भा०—हे (उषः) प्रभात-समान कान्तिमती, पति और पुत्रों की कामना वाली ! विदुषी स्त्री ! (अद्य) आज, तू (दिवित्मती) दीप्तियुक्त, ज्ञान और उत्तम पदार्थों की कामना से युक्त होकर (नः) हमें (महे राये) बड़े ऐश्वर्य और माहत्व उद्देश्य के लिये (बोधयः) जगाया कर। हे (अश्वसूनृते) पुरुष के प्रति उत्तम वाणी बोलने हारी । हे (सुजाते) उत्तम गुणों में प्रसिद्ध ! हे (वाय्ये) तन्तु-सन्तान रूप से सन्ततियों को उत्पन्न करने हारी ! तू (सत्य-श्रवसि) सात्विक अन्न, सत्य श्रवण योग्य ज्ञान और कीर्ति के निमित्त (यथाचित्) जैसे भी हो, (नः अबोधयः) हमें सचेत कर ।

या सु॒नी॒थे शौ॑चद्र॒थे व्यौच्छो॑ दुहितर्दिवः ।
सा व्यु॑च्छ॒ सही॑यसि स॒त्यश्र॑वसि वा॒य्ये सुजा॑ते॒ अश्व॑सूनृते ॥२॥

भा०—हे (दिवः दुहितः) सूर्य से उत्पन्न उषा के तुल्य एवं (दिवः दुहितः) कामनावान् पति की कामना को पूर्ण करने वाली ! पति की हितकारिणी ! (या) जो तू (शौचद्रथे) कान्ति-युक्त रथ वाले सूर्य व तेजस्वी आत्मा वाले, शुद्ध, (सुनीथे) उत्तम वाणी-युक्त और न्यायाचरण वाले पुरुष के अधीन (वि औच्छः) स्व गुणों को विविध प्रकार से प्रकट करे । हे (सहीयसि) अति सहनशीले ! हे (सत्यश्रवसि) सात्विक अन्न, सत्य, ज्ञान और यश से युक्त ! हे (वाय्ये) तन्तु-रूप से सन्तान उत्पन्न करने हारी ! हे (सु-जाते) उत्तम गुणों-सहित

उत्पन्न ! हे (अश्व-सूनृते) अश्ववत् बलवान् गृहस्थ रथ के सञ्चालक पति के प्रति उत्तम वाणी बोलने वाली ! हे (सुनीथे) नीति-व्यवहार तथा उत्तम मार्ग पर चलने हारी ! हे (शौचद्रथे) उत्तम रथ पर चढ़ने हारी वधू ! तू अपने अनुकूल (सुनीथे) उत्तम व्यवहार और मार्ग पर चलने हारे (शौचद्रथे) कान्तियुक्त देह वाले, उत्तम रथ पर स्थित, रमणीय (सहीयसि) अति सहनशील, (सत्यश्रवसि) सत्यप्रतिज्ञ, (वाय्ये) सन्तानोत्पादन-समर्थ (सुजाते) उत्तम गुणों से प्रसिद्ध, (अश्वसूनृते) विद्या पारंगत, पुरुष के अधीन रहकर और उसी के लिए (वि उच्छ) विविध प्रकार से अपने गुणों और कामनाओं को प्रकट कर ।

(इस मन्त्र में 'सुनीथे, शौचद्रथे, सहीयसि, सत्यश्रवसि, वाय्ये, अश्वसूनृते' ये सब विशेषण पद विभक्ति-श्लेष द्वारा दीपकालंकार से संबोधन रूप से स्त्री के प्रति तथा और आश्रय निमित्त रूप से पति के प्रति लगते हैं ।)

सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥३॥

भा०—हे (दिवः दुहितः) तेजस्वी पति की कामनाओं को पूर्ण करने हारी कन्ये ! (भरद्-वसुः) सम्पदा को गृह में लाने हारी होकर (नः) हमारे आगे (सा) वह तू (वि उच्छ) उषावत् गुणों का प्रकाश कर । (यः उ) जो (सहीयसि) सत्यश्रवसि, वाय्ये, सुजाते, अश्वसूनृते (वि औच्छः) हे सहनशीले, सत्यप्रतिज्ञे, उत्तम सन्तानोत्पादक ! हे सुपुत्रि ! हे शुभवाणि ! तू बलवान्, सत्य-प्रतिज्ञ, उत्तम सन्ततिजनक, शुभगुणवान् और विद्वान् पुरुष के अधीन रहकर (वि औच्छः) विशेष रूप से गुणों को प्रकट कर ।

अभि ये त्वा विभावरि स्तोमैर्गृणन्ति वह्नयः ।
मघैर्मघोनि सुश्रियो दामन्वन्तः सुरातयः सुजाते अश्वसूनृते ॥४॥

भा०—हे (विभावरि) विशेष-कान्ति-युक्त ! (सुजाते) उत्तम कन्ये ! हे (अश्वसूनृते) उत्तम वाणी बोलने हारी ! (ये) जो (वह्नयः) अग्निवत् तेजस्वी, समर्थ पुरुष (स्तोमैः) प्रशंसनीय वचनों से (त्वा अभि) तुझे लक्ष्य कर (गृणन्ति) बात करते हैं। हे (मघोनि) धनों की स्वामिनि ! वे भी तुझे प्राप्त कर (मघैः) ऐश्वर्यों से (सुश्रियः) लक्ष्मीयुक्त और (दामन्वन्तः) दानशील तथा (सुरातयः) उत्तम मित्र, पुत्र और अभिलषित द्रव्य आदि शुभ दान की इच्छा से युक्त हों।

यच्चिद्धि ते गणा इमे छदयन्ति मघत्तये।
परि चिद्वष्टयो दधुर्ददतो राधो अह्रयं सुजाते अश्वसूनृते ॥५॥२१॥

भा०—हे (सुजाते) सुपुत्रि ! हे (अश्व-सूनृते) विद्वान् के तुल्य उत्तम वाणी बोलने हारी विदुषी ! (यत् चित् हि) जो भी (ते गणाः) तेरे सेवक-जन (वष्टयः) धनाभिलाषी हैं (इमे) वे भी (अह्रयं राधः) संकोच-रहित प्राप्त करने योग्य उत्तम धन (ददतः) देने वाले पुरुषों को (मघत्तये) धन देने के लिये ही (परि च्छदयन्ति चित्) आच्छादित करें, और उनकी (परिदधुः) सेवा करें। इत्येकविंशो वर्गः ॥

ऐषु धा वीरवद्यश उषो मघोनि सूरिषु।
ये नो राधांस्यह्रया मघवानो अरासत सुजाते अश्वसूनृते ॥६॥

भा०—हे (सुजाते) शुभ गुण-युक्त पुत्रि ! (अश्वसूनृते) विद्वान् पुरुषों के प्रति उत्तम वाणी बोलने हारी ! (उषः) प्रभात के समान कान्तिमति ! हे (मघोनि) ऐश्वर्य से युक्त ! (ये) जो (मघवानः) सम्पन्न होकर (नः) हमें (अह्रया) बिना संकोच प्राप्त करने योग्य (राधांसि) धनों को (अरासत) देते हैं (एषु) उन (सूरिषु) विद्वान् पुरुषों में रह कर तू (वीरवत्) पुत्रादि-युक्त (यशः) कीर्त्ति, धन आदि को (आधाः) धारण कर।

तेभ्यो द्युम्नं बृहद्यश उषो मघोन्या वह।
ये नो राधांस्यश्व्या गव्या भजन्त सूरयः सुजाते अश्वसूनृते ॥७॥

भा०—हे (सुजाते) शुभ गुणों से प्रसिद्ध ! हे (अश्वसूनृते) विद्वानों के प्रति शुभ वाणी बोलने हारी विदुषि ! ये (सूरयः) जो विद्वान् पुरुष (नः) हमारे (अश्व्या) अश्वों से युक्त और (गव्याः) गौओं से युक्त (राधांसि) धनों को (भजन्त) सेवन करते हैं । हे (मघोनि) लक्ष्मी वाली ! (उषः) हे कान्तियुक्त ! तू (तेभ्यः) उनको (बृहत्) बड़ा (द्युम्नं) धन और (यशः आ वह) यश प्राप्त करा ।

उत नो गोमतीरिष आ वहा दुहितर्दिवः ।
साकं सूर्यस्य रश्मिभिः शुक्रैः शोचद्भिरर्चिभिः सुजाते अश्वसूनृते ॥८॥

भा०—हे (सुजाते) गुणों से युक्त ! (अश्व-सूनृते) पुरुषों के प्रति उत्तम वचन बोलने हारी ! हे (दिवः दुहितः) कामनावान् पति की कामनाओं को पूर्ण करने हारी तू (सूर्यस्य) सूर्य की (शुक्रैः) शुद्ध (शोचद्भिः) कान्ति वाली, (अर्चिभिः) शोभाओं और (रश्मिभिः) किरणों के साथ (शुक्रैः, शोचद्भिः, अर्चिभिः) शुद्ध कान्ति-युक्त अग्नि-ज्वालाओं से और पवित्र करने वाले सत्कारोचित जलों से (नः) हमारी (गोमतीः इषः) दुग्ध आदि से युक्त, वाणी सम्पन्न उत्तम अभिलाषाओं को (आ वह) प्राप्त कर और करा ।

व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिरं तनुथा अपः ।
नेत्त्वा स्तेनं यथा रिपुं तपाति सूरो अर्चिषा सुजाते अश्वसूनृते ॥९॥

भा०—हे (सुजाते) गुणवती पुत्रि ! (अश्व-सूनृते) विद्वानों का वाणी से सत्कार करने हारी ! हे (दिवः दुहितः) गृहस्थ व्यवहार के लिये दूर देश में विवाहित होकर हितकारिणी ! तू (वि उच्छ) गुणों को प्रकट कर और (अपः) गृह के कार्यों को (चिरं मा तनुथाः) देर लगाकर मत किया कर । (स्तेनं रिपुं) चोर शत्रु को (यथा) जैसे (सूरः तपाति) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष सन्ताप देता है वैसे ही (त्वा इत्) तुझे भी (सूरः) तेजस्वी पुरुष (अर्चिषा) क्रोध आदि से (न तपाति) न पीड़ित करे ।

एतावद्वेदुषस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि । या स्तोतृभ्यो विभावर्युच्छन्ती न प्रमीयसे सुजाते अश्वसूनृते ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (वि-भावरि) विशेष कान्ति से प्रकाशित ! (सु-जाते) शुभ गुणों से युक्त ! (अश्व-सूनृते) बलवान् पुरुषों के प्रति उत्तम वाणी बोलने वाली ! हे (उषः) प्रभात के समान कान्तिमती ! तू क्या (एतावद् वा इत् दातुम् अर्हसि) केवल इतना ही देने योग्य है ? (वा) अथवा (भूयः दातुम् अर्हसि) अधिक भी देने में समर्थ है ? इसका विचार रख । (या) जो तू (उच्छन्ती) सद्गुणों का प्रकाश करती हुई (स्तोतृभ्यः) विद्वान् उपदेष्टाओं के लिये (न प्र-मीयसे) कभी मृत्यु वा विषाद को प्राप्त न हो । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[८०]

सत्यश्रवा आत्रेय ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ६ निचृत्-त्रिष्टुप् । । २ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ४, ५ भुरिक् पंक्तिः ॥

द्युतद्यामानं बृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम् ।
देवीमुषसं स्वरावहन्तीं प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते ॥ १ ॥

भा०—जैसे (विप्रासः द्युत-द्यामानं अरुणप्सुं स्वः आवहन्तीं देवीम् उषसं मतिभिः जरन्ते) विद्वान् पुरुष आकाश को चमकाने वाली, रंग लिये, प्रकाश को लाने वाली, तेजोयुक्त उषा, प्रभात वेला को प्राप्त कर (प्रति) प्रतिदिन स्तुतियों से ईश्वर की स्तुति करते हैं वैसे ही (द्युत-द्यामानम्) कामनावान्, पति को अथवा पृथिवी को गुणों से चमकाने वाली, (ऋतेन) सत्य, तेज और धनैश्वर्य से (बृहतीम्) सबको बढ़ाने वाली, (ऋतावरीम्) धनादि से सम्पन्न, (अरुणप्सुम्) तेजोयुक्त (विभातीम्) विशेष गुणों से सबके मन को अच्छी लगने हारी, (देवीम्) विदुषी, (स्वः आवहन्तीम्) सुखों को प्राप्त कराने वाली, (उषसं) कान्तियुक्त, एवं सम्बन्धियों को हृदय से चाहने वाली, स्त्री के प्रति

(विप्रासः) विद्वान् लोग सदा ही (मतिभिः) स्तुतियों से (जरन्ते) उसकी प्रशंसा करते हैं ।

एषा जनं दर्शता बोधयन्ती सुगान्पथः कृण्वती यात्यग्रे ।
बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वोषा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे अह्नाम् ॥ २ ॥

भा०—(एषा उषा) यह प्रभात वेला जैसे (दर्शता) देखने योग्य होकर, (जनं बोधयन्ती) जन्तु मात्र को जगाती हुई (पथः सुगान् कृण्वती) मार्गों को सुगम करती हुई (अग्रे) आगे २ बढ़ती जाती है वैसे ही (एषा) यह (उषा) कान्तिमती, पति-कामना वाली स्त्री भी (दर्शता) दर्शनीय रूप, गुणों से युक्त होकर (जनं बोधयन्ती) मनुष्यों को सन्मार्ग और धर्म-कर्मों का बोध कराती हुई, वृत पति के (पथः) जीवन के मार्गों को (सुगान्) सुख-पूर्वक गमन-योग्य (कृण्वती) बनाती हुई (अग्रे याति) आगे २ चलती है । और जैसे उषा (बृहद्रथा) बड़े रमणीय प्रकाश से युक्त, (बृहती) स्वयं बड़ी विस्तृत, (विश्व-मिन्वा) विश्व भर में व्याप्त होकर (अह्नाम् अग्रे) दिनों के पूर्व भाग में (ज्योतिर्यच्छति) सबको प्रकाश देती है वैसे ही वह स्त्री भी (बृहद्-रथा) बड़े रथ पर चढ़कर पतिलोक को जाने वाली, (बृहती) कुल को बढ़ाने वाली होकर (अह्नाम् अग्रे) दिनों के पूर्व भाग में मध्याह्न के पूर्व ही (ज्योतिः यच्छति) उत्तम अन्न दे ।

एषा गोभिररुणेभिर्युजानास्रेधन्ती रयिमप्रायु चक्रे ।
पथो रदन्ती सुविताय देवी पुरुष्टुता विश्ववारा वि भाति ॥ ३ ॥

भा०—जैसे उषा (अरुणेभिः गोभिः) लाल किरणों से (युजाना) संयोग करती हुई (रयिम् अप्रायु चक्रे) प्रकाश को स्थायी कर देती है और (सुविताय) सुख से जाने के लिये (पथः रदन्ती) मार्गों को चमकाती हुई (विश्ववारा विभाति) सबसे वरण-योग्य होकर चमकती है वैसे ही (एषा देवी) यह स्त्री भी (अरुणेभिः गोभिः) अपनी अनुराग-

युक्त वाणियों से (युजाना) सबका समाधान करती हुई, (रयिम्) ऐश्वर्य को (अप्रायु) नष्ट न होने वाला (चक्रे) बनावे। वह (सुवितायः) सुखी जीवन बिताने के लिये (पथः) उत्तम मार्गों को (रदन्ती) बनाती हुई (पुरु-स्तुता) बहुतों से प्रशंसित, (विश्व-वारा) सबसे वरण-योग्य, संकटों की वारक होकर (वि भाति) विशेष रूप से सबको अच्छी लगे।

एषा व्येनी भवति द्विबर्हा आविष्कृण्वाना तन्वं पुरस्तात्।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ४ ॥

भा०—उषा जैसे (वि एनी भवति) विशेष रूप से श्वेत प्रकाश वाली होती है और वह (द्वि-बर्हा) रात्रि-दिन दोनों से बढ़ने वाली, (पुरस्तात् तन्वं आविः कृण्वानः) आगे विस्तृत प्रकाश को प्रकट करती हुई (ऋतस्य पन्थाम् अनु एति) सूर्य-मार्ग का अनुगमन करती है और (न दिशः मिनाति) मानो दिशाओं को मापती-सी है वैसे ही (एषा) यह स्त्री भी (वि-एनी) विशेष रूप से गुणों में शुभ्र (भवति) हो। (द्वि-बर्हाः) दोनों कुलों को बढ़ाने वाली हो। वह (पुरस्तात्) पति के आगे (तन्वम्) अपनी देह को (आविः-कृण्वाना) प्रकट करती हुई, (ऋतस्य) सत्याचरण एवं वेदोपदिष्ट (पन्थाम्) मार्ग का (अनु एति) अनुगमन करे। वह (साधु) भली प्रकार (दिशः प्र जानती इव) दिशाओं, कर्त्तव्यों को जानती हुई (ऋतस्य पन्थाम् न मिनाति) कर्म-मार्ग का नाश न करे।

एषा शुभ्रा न तन्वो विदानोर्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात्।
अप द्वेषो बाधमाना तमांस्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात् ॥ ५ ॥

भा०—जैसे प्रभात वेला (शुभ्रा) कान्ति में शुभ्र वर्ण की (नः दृशये ऊर्ध्वा अस्थात्) हमें दिखाने के लिये ऊंचे विराजती है और (दिवः दुहिता) सूर्य की पुत्रीवत् तेज को दूर तक फैलाने वाली (तमांसि अप बाधमाना) अन्धकारों को दूर करती हुई (ज्योतिषा आगात्) ज्योतिः से

सूर्य के साथ आती है वैसे ही (एषा) यह (दिवः दुहिता) व्यवहारज्ञ पिता की पुत्री एवं पति आदि की कामनाओं को पूर्ण करने वाली और दूर देश में विवाहने योग्य, (उषा) कमनीय कन्या, (शुभ्रा) शोभित होकर (तन्वः विदाना) अंगों को साधती हुई (स्नाती) स्नान कर शुद्ध हुई (नः दृशये) हमारी दृष्टि को प्रसन्न करने के लिये (ऊर्ध्वा इव अस्थात्) उत्तम पद पर बनी रहे। वह (द्वेषः) द्वेष-भावों तथा (तमांसि) शोकादि को (अप बाधमाना) दूर करती हुई, (ज्योतिषा) गुणों के प्रकाश-सहित (आ अगात्) आवे।

एषा प्रतीची दुहिता दिवो नॄन्योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः।
व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः ॥६॥२३॥

भा०—(दिवः दुहिता) सूर्य-पुत्री के तुल्य उषा (प्रतीची) अभिमुख आती हुई, (भद्रा) सुखप्रद, (अप्स निरणीते) रूप को प्रकट करती है, (वार्याणि वि ऊर्ण्वती) उत्तम प्रकाशों को धारे हुए, (पूर्वथा) पूर्व दिशा में (पुनः) बार २ (ज्योतिः अकः) प्रकाश करती है। वैसे ही (एषा) यह (दुहिता) दूर देश में विवाहित कन्या, (नॄन् प्रति योषा इव) मनुष्यों के प्रति युवती के समान ही (अप्सः) उत्तम रूप को (नि रिणीते) प्रकट करे। वह (दाशुषे) हृदयादि देने वाले पति के लिये (वार्याणि) उत्तम पहनने योग्य वस्त्रों को (वि ऊर्ण्वती) विशेष रूप से धारण करती हुई (युवतिः) नव युवति (पूर्वथा) प्रथम (पुनः ज्योतिः अकः) बार २ प्रकाश करे। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[८१]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ सविता देवता ॥ छन्दः—१, ५ जगती। २ विराड् जगती। ४ निचृज्जगती। ३ स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥१॥

भा०—परमात्मा का वर्णन। (विप्राः) विद्वान् लोग (बृहतः) सबसे बड़े (विपश्चितः) अनन्त-विद्या-सागर (विप्रस्य) विशेष रूप से जगत् में पूर्ण, परमेश्वर में (मनः युञ्जते) मन को लगाते हैं और वे (धियः) अपने ज्ञान, कर्मों का भी उसी से (युञ्जते) जोड़ते हैं। वह (एकः इत्) अकेला ही (वयुनावित्) समस्त ज्ञानों, लोकों को जानने वाला, (होत्राः विदधे) समस्त वाणियों को धारण करता है। (देवस्य) उस सर्वप्रकाशक (सवितुः) सर्वैश्वर्यवान् परमेश्वर की (मही) बड़ी (परिस्तुतिः) महिमा है।

विश्वा॑ रू॒पाणि॒ प्रति॑ मुञ्चते क॒विः प्रासा॑वीद्भ॒द्रं द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे।
वि नाक॑मख्यत्सवि॒ता वरे॑ण्योऽनु॑ प्र॒याण॑मु॒षसो॒ वि रा॑जति ॥२॥

भा०—(कविः) ज्ञानवान् परमेश्वर (विश्वा रूपाणि) समस्त रूपवान् पदार्थों को (प्रतिमुञ्चते) प्रतिक्षण धारण करता है। वह ही (द्विपदे) दोपाये और (चतुष्पदे) चौपाये अर्थात् समस्त जीवों के हितार्थ (भद्रं) कल्याणमय जगत् को (प्र असावीत्) उत्पन्न करता है। वह ही (सविता) जगदुत्पादक पिता (नाकम् वि अख्यत्) दुःख-रहित सुख को प्रकट करता है, वह (वरेण्यः) सबसे श्रेष्ठ (उषसः प्र-याणम् अनु) उषाकाल के गमन के पश्चात् उगने वाले सूर्य के समान उत्तरोत्तर (विराजति) हृदय में प्रकाशित होता है।

यस्य॑ प्र॒याण॒मन्व॒न्य इद्य॒युर्दे॒वा दे॒वस्य॑ महि॒मान॒मोज॑सा।
यः पार्थि॑वानि विम॒मे स एत॑शो॒ रजां॑सि दे॒वः स॑वि॒ता म॑हित्व॒ना ३

भा०—(यस्य) जिस (देवस्य) तेजस्वी, सब सुखों के दाता परमेश्वर के (प्र-याणम्) उत्तम प्राज्ञत्य और सबके संचालक (महिमानम्) पराक्रम का (अन्ये देवाः) अन्य विद्वान् एवं दिव्य पदार्थ (ओजसा) पराक्रम से (अनु ययुः) अनुगमन करते हैं (यः) जो (एतशः) सर्वव्यापक (देवः) सर्वप्रकाशक, (सविता) सर्वोत्पादक परमेश्वर (महि-

त्वना) सामर्थ्य से (पार्थिवानि) पृथिवी के पदार्थों और (रजांसि) आकाश के समस्त लोकों को (वि-ममे) जानता और बनाता है। (सः एतशः) वही सर्वव्यापक, उपासना योग्य है।

उत यासि सवितस्त्रीणि रोचनोत सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि।
उत रात्रीमुभयतः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मभिः ॥४॥

भा०—(उत) और हे (सवितः) जगत् के उत्पादक! तू (त्रीणि रोचना) तीनों, प्रकाशमान् सूर्य, विद्युत, अग्नि इनमें (यासि) व्याप्त है, तू (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिभिः) किरणों के साथ भी (सम् उच्यसि) विद्यमान है। (उत) और तू ही सूर्यवत् (रात्री) महाप्रलय रात्रि को (उभयतः परीयसे) दोनों ओर से व्यापता है, (उत) और तू ही, हे (देव) सर्वप्रकाशक! (धर्मभिः) जगत् के धारक बलों, और नियमों से राजा के तुल्य (मित्रः भवसि) सबका स्नेही है।

उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इदुत पूषा भवसि देव यामभिः। उतेदं विश्वं भुवनं वि राजसि श्यावाश्वस्ते सवितः स्तोममानशे ॥५॥२४

भा०—हे (देव) सर्व-प्रकाशक! (त्वम् एकः इत्) तू अद्वितीय ही (प्र-सवस्य) इस संसार को उत्पन्न करने के लिये (ईशिषे) समर्थ है। (उत) और (त्वम् एकः इत् यामभिः पूषा भवसि) तू अकेला ही, नियमों द्वारा सबका पोषक है। (उत) और (इदं) इस समस्त (भुवनम्) लोक को (विराजसि) प्रकाशित करता है। हे (सवितः) सबके उत्पादक प्रभो! (श्याव-अश्वः) ज्ञानवान् आत्मा वाला, (ते) तेरे (स्तोमम् आनशे) स्तुति-योग्य सामर्थ्य को प्राप्त करता है। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[८२]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः॥ सविता देवता॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप्। २, ४, ९ निचृद्गायत्री। ३, ५, ६, ७ गायत्री। ८ विराड्गायत्री॥ नवर्चं सूक्तम्॥

तत्स॑वि॒तुर्वृ॑णीमहे व॒यं दे॒वस्य॒ भोज॑नम् ।
श्रेष्ठं॑ सर्व॒धात॑मं॒ तुरं॒ भग॑स्य धीमहि ॥ १ ॥

भा०—(वयम्) हम (सवितुः) सर्वोत्पादक (देवस्य) सर्व-प्रकाशक परमेश्वर के (तत्) उस (भोजनम्) भोग्य ऐश्वर्य को (वृणीमहे) प्राप्त करें और (भगस्य) सकल ऐश्वर्य-युक्त उस प्रभु के (श्रेष्ठं) सर्वश्रेष्ठ, (सर्वधातमम्) सर्वाधिक धारक (तुरं) अविद्यादि-दोषनाशक बल को (धीमहि) धारण करें ।

अस्य॒ हि स्वय॑शस्तरं सवि॒तुः कच्च॒न प्रि॒यम् ।
न मि॒नन्ति॑ स्व॒राज्य॑म् ॥ २ ॥

भा०—(अस्य सवितुः) इस सर्वजनक प्रभु के (स्वयशः-तरम्) अपने ही सर्वोत्कृष्ट यश वाले (प्रियम्) प्रिय (स्वराज्यं) राज्य के समान तेज को (कत् चन) कोई भी, (न मिनन्ति) नष्ट नहीं कर सकते हैं ।

स हि रत्ना॑नि दा॒शुषे॑ सु॒वाति॑ सवि॒ता भगः॑ ।
तं भा॒गं चि॒त्रमी॑महे ॥ ३ ॥

भा०—जो (सविता) सर्वोत्पादक (भगः सन्) सर्वैश्वर्यवान् प्रभु है वह (दाशुषे) दानशील पुरुष के हितार्थ (रत्नानि) रमण-योग्य ऐश्वर्यों को (सुवाति) देता है (तं) उस (भागं) सेवा-योग्य, भग अर्थात् ऐश्वर्यों के स्वामी (चित्रम्) आश्चर्यकारी को लक्ष्य करके हम (ईमहे) याचना करते हैं ।

अ॒द्या नो॑ देव सवितः प्र॒जाव॑त्सावी॒ः सौभ॑गम् ।
परा॑ दुः॒ष्वप्न्यं॑ सुव ॥ ४ ॥

भा०—(अद्य) आज, हे (देव) ज्योतिर्मय ! (नः) हमें (सौभगम्) समृद्धि, (प्रजावत्) प्रजा के समान (सावीः) दे, हे (सवितः) सर्वोत्पादक ! (नः) हमारे (दुः-स्वप्न्यं) बुरे स्वप्न आने के कारण को (परा सुव) दूर कर ।

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव ।

यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—हे (सवितः) सर्वोत्पादक ! हे (देव) सुखों के दातः ! (विश्वानि दुरितानि) सब दुःखों को (परा सुव) दूर करो और (यद् भद्रं) जो कल्याणकारक हो (तत् नः आ सुवः) वह हमें दो । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

अना॑गसो अदि॑तये दे॒वस्य॑ सवि॒तुः स॒वे ।

विश्वा॑ वा॒मानि॑ धीमहि ॥ ६ ॥

भा०—हम लोग (देवस्य) दानशील, (सवितुः) सर्वोत्पादक प्रभु के (सवे) शासन में रहकर (अदितये) माता, पिता, पुत्र, बन्धु आदि तथा भूमि आदि के हितार्थ (अनागसः) पापाचरण से रहित होकर (विश्वा वामानि) सब प्राप्त करने और दान करने योग्य ऐश्वर्यों को (धीमहि) धारण करें ।

आ वि॒श्वदे॑वं सत्प॑तिं सू॒क्तैर॒द्या वृ॑णीमहे ।

स॒त्यस॑वं सवि॒तार॑म् ॥ ७ ॥

भा०—हम लोग (विश्वदेवं) विश्व-प्रकाशक, (सत्पतिं) सत्पदार्थों के पालक (सत्यसवं) सत्यैश्वर्य-युक्त, (सवितारम्) सर्वोत्पादक परमेश्वर की (आ वृणीमहे) सब प्रकार से भक्ति करें ।

य इ॒मे उ॒भे अह॑नी पु॒र एत्यप्र॑युच्छन् ।

स्वा॒धीर्दे॒वः स॑वि॒ता ॥ ८ ॥

भा०—जैसे (सविता उभे अहनी अप्रयुच्छन् पुरः एति) सूर्य दिन रात्रि दोनों के पूर्व प्रमाद-रहित होकर आता है वैसे ही (सविता) सर्वोत्पादक परमेश्वर (देवः) सर्वप्रकाशक (सु-आधीः) सुखपूर्वक, उत्तम रीति से जगत् को प्रकृति में आधान करने वाला प्रभु (इमे) इन (अहनी) कभी नाश न होने वाले जीव और प्रकृति (उभे) दोनों

अनादि पदार्थों के (पुरः) पूर्व ही (अप्रयुच्छन्) प्रमाद-रहित सर्व-साक्षी होकर (एति) व्याप्त रहता है।

य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन ।
प्र च सुवाति सविता ॥ ६ ॥ २६ ॥

भा०—(यः) जो (इमा) इन (विश्वा) समस्त (जातानि) उत्पन्न हुए जीवों को (श्लोकेन) वेदवाणी द्वारा (आ श्रावयति) ज्ञानोपदेश देता है और (प्र सुवाति) उत्तम रीति से उनको जन्म देता है वही (सविता) उत्पादक कहाने योग्य है। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[८३]

अत्रिर्ऋषिः ॥ पर्जन्यो देवता ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप् । २ स्वराट् त्रिष्टुप् । ३ भुरिक् त्रिष्टुप् । ४ निचृज्जगती । ५, ६ त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् । ८, १० भुरिक् पंक्तिः । ९ निचृदनुष्टुप् । दशर्चं सूक्तम् ॥

अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास ।
कनिक्रदद्वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (आभिः) इन (गीर्भिः) वाणियों से (तवसं) बलवान् (पर्जन्यं) मेघ के तुल्य प्रजाओं को सुखों से तृप्त करने वाले पुरुष के (स्तुहि) गुणों का वर्णन कर और (अच्छ वद) उसका उपदेश कर जो मेघ के समान संसार को (नमसा) अन्न से और शासन-दण्ड से (विवास) बसाता है, जो (वृषभः) बैल के समान बलवान्, वर्षण-शील मेघ के तुल्य (कनिक्रदत्) गर्जता और (जीरदानुः) जलवत् जीवन-साधन देता हुआ (ओषधीषु) वृक्षों और लताओं के तुल्य, शत्रुसंतापक बल की धारक सेनाओं में (रेतः) जलवत् बल (दधाति) धारण कराता है और (गर्भम् दधाति) उनके बल पर गृहीत राष्ट्र का पालन करता है।

वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्वं बिभाय भुवनं महावधात् ।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः ॥२॥

भा०—जैसे (पर्जन्यः स्तनयन् दुष्कृतः हन्ति) मेघ गर्जता हुआ दुर्भिक्ष का नाश करता है और जो (भुवनं हन्ति) जल को आघात कर बरसाता है, (वृष्ण्यवतः ईषते) बरसाने वाले मेघ खण्डों को प्रेरता है वैसे ही (यत्) जो (पर्जन्यः) शत्रुओं का पराजय और प्रजाओं को समृद्धि से तृप्त करने वाला, मेघ-तुल्य उदार राजा, विद्वान् (स्तनयन्) उपदेश करता हुआ (दुः-कृतः) प्रजाओं को दुःख देने वाले दुष्टों का भी (हन्ति) नाश करता है वह (वृक्षान्) काट कर उखाड़ देने योग्य, शत्रुओं को (वि हन्ति) विविध उपायों से नाश करे, (उत) और (रक्षसः वि हन्ति) विघ्नकारी पुरुषों और भावों का विघात करे। उनका भी नाश करे जिनके (महावधात्) हिंसाकारी बल से (विश्वं भुवनं बिभाय) समस्त संसार डरता है, (उत) और वह (अनागाः) अपराध आदि से रहित होकर (वृष्ण्यावतः) शस्त्रवर्षी शत्रुओं को भी (ईषते) नाश करता है।

रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्नाविर्दूतान्कृणुते वर्ष्याँ३ अह ।
दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं१ नभः ॥३॥

भा०—जैसे (पर्जन्यः नभः वर्ष्यं कुरुते) मेघ अन्तरिक्ष को वृष्टि वाला बना देता है, (वर्ष्यान् दूतान् आविः कृणुते) वर्षा के दूत सदृश शीतल वायुओं को प्रकट करता है, (सिंहस्य स्तनथाः उत् ईरते) सिंह-वत् गर्जनाएं होती हैं वैसे ही (यत्) जब (पर्जन्यः) शत्रु-पराजयकारी राजा (वर्ष्यम्) बलवान् शस्त्रवर्षी वीरों से बने सैन्य को (नभः) सुप्रबद्ध (कृणुते) करता है और (रथी इव) जैसे कोचवान् (कशया) चाबुक से (अश्वान् अभिक्षिपति) घोड़ों को हांकता है और मेघ जैसे (कशया अश्वान् अभिक्षिपन्) दीप्ति-युक्त विद्युल्लता से मेघ एवं वेग युक्त वायुओं को ताड़ता है वैसे ही (रथी) वह महारथी, (कशया) अपनी वाणी से (अश्वान्) वेग से जाने वाले अश्व-सैन्यों को (अभिक्षिपन्) सब ओर

शीघ्र भेजता हुआ और (वर्ष्यान्) वर्षों में वृद्ध, अनुभवी (दूतान्) शत्रु-संतापक पुरुषों को अपना दूत (आविः कृणुते) बनाता है। उसी समय (सिंहस्य) सिंह-समान पराक्रमी वीरजनों के (स्तनथाः) गर्जन शब्द (दूरात्) दूर से (उत् ईरते) सुनाई देते हैं।

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥४॥

भा०—(यत्) जब (पर्जन्यः) मेघ (रेतसा पृथिवीं अवति) जल से भूमि को तृप्त कर देता है, तब (वाताः प्र वान्ति) वायुगण खूब बहते हैं, (विद्युतः पतयन्ति) बिजलियें गिरती हैं, (ओषधीः उत जिहते) वनस्पतियां उत्पन्न होती हैं, (स्वः पिन्वते) अन्तरिक्ष से जल झरता है (विश्वस्मै भुवनाय) समस्त संसार के लिये (इरा जायते) अन्न उत्पन्न होता है। ऐसे ही (पर्जन्यः) शत्रुविजयी राजा जब (रेतसा) अपने पराक्रम तथा नहरों से (पृथिवीम् अवति) राष्ट्र की रक्षा करता और उसे सींचता है, तब (वाताः प्र वान्ति) वायु के समान बलवान् सेना-पतिगण वेग से जाते हैं, (विद्युतः) विशेष दीप्ति-युक्त अस्त्रादि (पत-यन्ति) चलते हैं और (वाता प्र वान्ति) वायु-वेग से जाने वाले रथ एवं व्यापारी वेग से जाते-आते हैं और (विद्युतः) विशेष दीप्तियुक्त समृद्धियें (पतयन्ति) राष्ट्र के ऐश्वर्य को बढ़ाती हैं, (ओषधीः उत् जिहते) तेज धारण करने वाली सेनाएं ओषधिवत् ही उठ खड़ी होती हैं। (स्वः पिन्वते) राष्ट्र सुखों को प्रकट करता है (विश्वस्मै भुवनाय) समस्त प्रजा के लिये (इरा जायते) अन्न उत्पन्न होता है।

यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति।
यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपाः स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥५॥२७

भा०—जैसे मेघ के वृष्टि-कर्म होने पर (पृथिवी नंनमीति) पृथिवी के रजोरेणु नीचे आ जाते हैं (शफवत् जर्भुरीति) खुरों वाले गौ आदि

पशु पुष्ट होते हैं, (विश्वरूपाः ओषधीः) सब प्रकार की वनस्पतिएं पुष्ट होती हैं और (महि शर्म यच्छति) मेघ प्रजाओं को भारी सुख देता है वैसे ही हे (पर्जन्य) शत्रु-विजयकारिन् ! (यस्य) जिस तेरे (व्रते) प्रजापालन-रूप कर्म के अधीन (पृथिवी) भूमण्डल (नन्नमीति) विनय से झुकता है और (यस्य व्रते) जिसके प्रजापालन करने पर (शफवत्) खुरों वाले पशु भी (जर्भुरीति) खूब पोषित होते हैं और (विश्वरूपाः ओषधीः) उत्तम रूप-सम्पन्न, तेज को धारण करने वाली स्त्रियें भी (जर्भुरीति) उचित रीति से पोषित होती हैं। (सः) वह तू हे राजन् ! (नः) हम प्रजाजनों को (महि शर्म) बड़ा सुख (यच्छ) दे। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः।
अर्वाङ्ेतेन स्तनयित्नुनेह्यपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः ॥ ६ ॥

भा०—जैसे (मरुतः दिवः वृष्टिं रान्ति) वायुगण अन्तरिक्ष से वृष्टियें प्रदान करते हैं और (वृष्णः धाराः प्र पिन्वत) बरसने वाले मेघ की जल-धाराओं को बरसाते हैं वैसे ही हे (मरुतः) वायुवत् बल-वान् पुरुषो ! आप लोग (नः) हमारे लिये (दिवः) व्यापार से (वृष्टिं) ऐश्वर्य की समृद्धि, (ररीध्वम्) प्रदान करो और (वृष्णः) राष्ट्र-प्रबन्ध में कुशल (अश्वस्य) अश्ववत् हृष्ट-पुष्ट, राष्ट्र के भोक्ता राजा की (धाराः) आज्ञा-वाणियों को और अश्व-सैन्य की 'धारा' नाम विशेष चालों को (प्र-पिन्वत) खूब परिपुष्ट करो (स्तनयित्नुना असुरः निषिञ्चन् अर्वाङ् एति) जैसे मेघ वर्षता हुआ गर्जनशील विद्युत् के साथ आता है वैसे ही (नः पिता) हमारा पितावत् पालक राजा (अपः) राज्यकर्म को और प्रजा को (नि सिञ्चन्) सर्व प्रकार से पुष्ट करता हुआ (स्तनयित्नुना) उपदेशक विद्वान् वा गर्जनशील योद्धा के साथ (अर्वाङ् एति) हमें प्राप्त हो।

अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन।
दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चं समा भवन्तूद्वतो निपादाः ॥ ७ ॥

भा०—मेघ (यथा क्रन्दति, गर्भम् आधत्ते, उदन्वता रथेन परिदीयति, विषितं न्यञ्चं दृतिं सु कर्षति, उद्वतः निपादाः समा भवन्ति तथा) जैसे गर्जता है, विद्युत् चमकाता है, जल को भीतर रखता है, जलमय रम्य रूप से आकाश में व्यापता है, नीचे हुए मशक के समान अपने 'दृति' अर्थात् जल-पूर्ण भाग को बन्धन-रहित कर खोल देता है और ऊंचे-नीचे खड्डों वाले सब प्रदेश जलमय होकर एक समान हो जाते हैं, वैसे ही हे राजन् ! प्रजापालक ! तू (अभि क्रन्द) स्वयं घोषणाएं दे, (स्तनय) स्तन जैसे संतति-पालनार्थ दूध से पुष्ट होता है वैसे ही मेघ प्रजापोषणार्थ जल से भर कर पुष्ट हो जाता है, वैसे ही हे राजन् ! तू भी प्रजापालनार्थ (स्तनय) स्तनवत् पोषक अन्न आदि देने में समर्थ हो । तू (गर्भम् आधाः) गृहीत राष्ट्र का पालन कर, उसे गर्भ अर्थात् वश में सुरक्षित रख । (उदन्वता रथेन परिदीयाः) बलशाली रथ-सैन्य से राष्ट्र की सब ओर से रक्षा कर, (न्यञ्चं) विनय से झुकने वाले (वि-षितं) बन्धनादि-मुक्त (दृतिं) शत्रु-बल-विदारण में समर्थ सैन्य बल को (सुकर्ष) अच्छी प्रकार सञ्चालित कर और (दृतिं) भयप्रद शत्रु-बल को (सुकर्ष) निर्बल कर, जिससे (उद्वतः) उत्कृष्ट बल वाले और (नि-पादाः) निम्न स्थान पर स्थित सभी प्रजाजन (समाः भवन्तु) न्याय दृष्टि से समान हों ।

महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात्।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः ॥ ८ ॥

भा०—जैसे मेघ (महान्तं कोशम् उत् अञ्चति) बड़ी जल-राशि को अपने भीतर उठाता है, (वि सिञ्चति) उसे बरसाता है, (कुल्याः विषिताः स्यन्दन्ति) बहुतसी धाराएं निर्बन्ध होकर बहती हैं और मेघ

(द्यावा-पृथिवी) आकाश और भूमि दोनों को (घृतेन व्युनत्ति) जल से आर्द्र कर देता है (अघ्न्याभ्यः सुप्रपाणं भवति) गौ आदि के पीने के लिये बहुत जल हो जाता है वैसे ही हे राजन्! तू भी (महान्तं कोशम्) बड़े भारी कोश, खजाने को (उद् अच) उन्नत कर और बलवान् (कोशं) शस्त्र-बल तथा धन को उत्पन्न कर, (नि सिञ्च) उस कोश को प्रजागण पर और शस्त्र-बल को शत्रु पर बरसा दे, जिससे (पुरस्तात्) आगे (वि-सिताः) कटी (कुल्याः) राष्ट्र में जल की और रण में रक्त की नहरें (स्यन्दन्ताम्) बह जावें और (द्यावा-पृथिवी) सूर्य भूमिवत् राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों को (घृतेन) स्नेह से (वि-उन्धि) आर्द्र कर, दोनों प्रेम से एक दूसरे पर अनुरक्त रहें। (अघ्न्याभ्यः) गौओं के समान अहिंसनीय प्रजाओं के लिये (सुप्रपाणं) उत्तम सुखजनक व्यवस्था (भवतु) हो।

यत्पर्जन्य कनिक्रदत्स्तनयन्हंसि दुष्कृतः।
प्रतीदं विश्वं मोदते यत्किं च पृथिव्यामधि ॥ ९ ॥

भा०—हे (पर्जन्य) शत्रु-विजेता और प्रजा को तृप्त करने हारे! (यत्) जब तू मेघ के समान (कनिक्रदत्) गर्जता और (स्तनयन्) विद्युत् के समान गर्जता हुआ (दुष्कृतः हन्ति) दुष्टाचारियों का नाश करता है तब (इदं विश्वं) यह विश्व (यत् किं च) जो कुछ भी (पृथिव्याम् अधि) पृथिवी पर सृष्टि है वह (प्रति मोदते) प्रसन्न होता है।

अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाकर्धन्वान्यत्येतवा उ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कमुत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम् १०।२८

भा०—जैसे (वर्षम् अवर्षीः) मेघ बरसता है (धन्वानि वर्षम् अकः) मरुस्थलों और अन्तरिक्ष प्रदेशों को अतिक्रमण करता हुआ वृष्टि को धारण करता है, (ओषधीः भोजनाय अजीजनः) ओषधियों को सब जन्तुओं के भोजनार्थ उत्पन्न करता है (प्रजाभ्यः मनीषां विदः) प्रजाओं

से प्रशंसा प्राप्त करता है वैसे ही हे राजन् ! तू भी (अति एतवा उ) शत्रु को अतिक्रमण करने और उससे बढ़ जाने के लिये (धन्वानि) धनुषों को (गृभाय) ग्रहण कर और (वर्षम् अकः) शरवृष्टि कर। (अवर्षीः) प्रजाओं पर सुखों की वृष्टि कर और (भोजनाय) प्रजाओं के भोग के लिये (ओषधीः) अन्न आदि वनस्पतियां (अजीजनः) उत्पन्न कर (उत कम्) और (प्रजाभ्यः) प्रजाओं की भी (मनीषाम्) सम्मति को (अविदः) प्राप्त कर। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[८४]

अत्रिर्ऋषिः ॥ पृथिवी देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृदनुष्टुप्। ३ विराडनुष्टुप् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

बळित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि।
प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि ॥ १ ॥

भा०—जैसे पृथिवी (पर्वतानां मह्ना) पर्वतों और मेघों के सामर्थ्य से (खिद्रं बिभर्त्ति, भूमि च जिनोति) दीन प्रजा को पालती और भूमि को जल-धाराओं से सींचती है वैसे ही हे (पृथिवी) पृथिवी-समान विशाल हृदय वाली ! हे (प्रवत्वति) उत्तम गुणों वाली ! हे (महिनि) पूज्ये ! (या) जो तू (पर्वतानां मह्ना) पर्वतों के तुल्य उदार और सामर्थ्यवान् पुरुषों का (बिभर्षि) पालन कर और अपनी (भूमिं) सस्योत्पादक भूमि और सन्तत्युत्पादक अंग को भी (प्र जिनोषि) उत्तम रीति से पुष्ट कर।

स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति ष्टोभन्त्यक्तुभिः।
प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ॥ २ ॥

भा०—हे (विचारिणि) विचारवती स्त्रि ! वा राजसभे ! (स्तोमासः) विद्वान् पुरुष (अक्तुभिः) सब दिनों (त्वा प्रति स्तोभन्ति) तेरी प्रशंसा करें। (या) जो तू पृथिवी के समान, हे (अर्जुनि) उषा-तुल्य

कमनीये ! एवं प्रकाशवत् अर्थ सञ्चय करने हारी तू (ह्रेषन्तं वाजं न) हिनहिनाते अश्व के समान गर्जते (पेरुं) मेघ को पृथिवी के समान, सुप्रसन्न अपने पूरक पति को (अस्यसि) सन्मार्ग से प्रेरित करती है।

दृळहा चिद्या वनस्पतीन्क्ष्मया दर्धर्ष्योजसा।
यत्ते अभ्रस्य विद्युतो दिवो वर्षन्ति वृष्टयः ॥ ३ ॥ २९ ॥

भा०—जैसे पृथिवी (दृढ़ा चित्) दृढ़ होकर (क्ष्मया) सामर्थ्य से (ओजसा) और बल से (वनस्पतीन् दर्धर्त्ति) बड़े २ वृक्षों को धारे रहती है वैसे ही हे स्त्री ! वा राजशक्ति ! (या) जो तू (दृढा) दृढ़ रह कर (वनस्पतीन्) ऐश्वर्यों के पालक महावृक्षवत् आश्रयदाता पुरुषों को (ओजसा) तेज से और (क्ष्मया) क्षमाशीलता से (दर्धर्षि) धारण कर रही है और (यत्) जो (ते) तेरे (अभ्रस्य) मेघवत् सुखप्रद धन की (विद्युतः) विशेष कान्ति वाली (वृष्टयः) सुखों की वृष्टियें (दिवः) आकाश से वर्षाओं के समान तेरी कामना और सद्व्यवहार से (वर्षन्ति) बरसती हैं इससे तू अतिपूज्य है। इति एकोनविंशो वर्गः ॥

[८५]

अत्रिर्ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः—१, २ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ४, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ स्वराट् पंक्तिः। ७ ब्राह्म्युष्णिक् ॥
अष्टर्चं सूक्तम् ॥

प्र सम्राजे बृहदर्चा गभीरं ब्रह्म प्रियं वरुणाय श्रुताय।
वि यो जघान शमितेव चर्मोपस्तिरे पृथिवीं सूर्याय ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो सेनापति (सूर्याय) सूर्य-तुल्य राष्ट्रपति-पद की प्राप्ति के लिये (शमिता इव) विघ्न-शमन करने वाले के समान (वि जघान) विघ्नों का नाश करता है और (चर्म) बिछाने योग्य मृग-छाला-तुल्य (पृथिवीम्) पृथिवी को (शमिता इव) शमसाधक योगाभ्यासी के समान ही (उपस्तिरे) विस्तृत कर अपना आश्रय बनाता है। उस

(सम्राजे) सम्राट् (वरुणाय) उपद्रवों के निवारक गुरु द्वारा श्रवण-योग्य शास्त्र-निष्णात पुरुष के लिये (बृहद् अर्चं) बहुत सत्कार कर और (गभीरं) गम्भीर अर्थ वाले, (प्रियं) मनोहर (ब्रह्म) ज्ञान का उसे उपदेश कर ।

वनेषु व्य१न्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पय उस्रियासु ।
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्व१ग्निं दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ ॥२॥

भा०—वह (वरुणः) वरण-योग्य राजा (वनेषु) सूर्यवत् भोग्य पदार्थों वा वनों में (अन्तरिक्षं) जल को (वि ततान) विविध उपायों से प्रसारित करे । (अर्वत्सु वाजम्) अश्वों में वेग और अश्व-सैन्यों के आधार पर संग्राम की (अदधात्) तैयारी करे । (उस्रियासु पयः) गौओं में दूध, भूमियों में जल को (अदधात्) पुष्ट करे और जो (हृत्सु) हृदयों में (क्रतुं) ज्ञान को (अदधात्) स्थापित करे, (अप्सु अग्निम्) जलों में अग्निवत् प्रजाओं में तेजस्वी नेता को (अदधात्) नियत करे । वह (दिवि सूर्यम् अदधात्) आकाश में सूर्य के तुल्य पृथिवी में तेजस्वी पुरुष को स्थापित करे और (अद्रौ सोमम् अदधात्) पर्वत पर ओषधिवत् शस्त्र-बल पर ऐश्वर्य को धारण करे ।

नीचीनबारं वरुणः कवन्धं प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम् ।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम ॥३॥

भा०—(वरुणः) कष्टों का वारक राजा (कवन्धं) जल को (नीचीनवारं) नीचे के स्थानों में, नाना धाराओं में विभक्त होकर (प्र ससर्ज) बहने वाला करे । वह (रोदसी) आकाश और भूमि, शासक और शास्य के बीच (अन्तरिक्षम्) अन्तःकरण में बसने वाला, स्नेह (प्र ससर्ज) उत्पन्न करे । (तेन) उससे (विश्वस्य भुवनस्य राजा) समस्त 'भुवन' का राजा (वृष्टिः भूम यवं न) बहुत से यव के खेतों को वृष्टि-तुल्य सुखदायक होकर (भूम) बहुत से प्रजाजनों को (वि-उनत्ति) विविध उपायों से स्नेहार्द्र करे ।

उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां यदा दुग्धं वरुणो वष्ट्यादित्।
समभ्रेण वसत पर्वतासस्तविषीयन्तः श्रथयन्त वीराः ॥४॥

भा०—(यदा) जब (वरुणः) कष्टों का वारक राजा (दुग्धं) गौ से दूध के समान, पृथिवी से अन्न (वष्टि) प्राप्त करना चाहे (आत्-इत्) तब वह (पृथिवीम्) भूमि को (उत) और (द्याम्) आकाश को (अभ्रेण) जल साधन या मेघ से (उनत्ति) गीला करे। हे (वीराः) वीर पुरुषो! आप (तविषीयन्तः) सेनाएं बनाते हुए (पर्वतासः) पर्वत-समान अचल और मेघ-समान शरवर्षी होकर (वसत) रहो और दुष्टों को (श्रथयन्त) शिथिल करते रहो।

इमामू ष्वासुरस्य श्रुतस्य महीं मायां वरुणस्य प्र वोचम्।
मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥५॥३०॥

भा०—मैं (असुरस्य) मेघ के व्रत को पालन करने वाले (श्रुतस्य) बहुश्रुत (वरुणस्य) प्रजा-दुखों के वारक पुरुष की (इमाम् महीं मायां) इस बड़ी बुद्धि का (सु-प्रवोचम्) उत्तम रीति से उपदेश करूं। (यः) जो राजा (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (तस्थिवान्) स्थित वायु के तुल्य स्वयं बलवान् और न्यायासन पर विराज कर (सूर्येण) सूर्य-तुल्य तेजस्वी रूप से (मानेन इव पृथिवी) मापने के दण्ड से जैसे भूमि को मापा जाता है वैसे ही जो (मानेन) सर्वमान्य न्यायदण्ड से (पृथिवीं ममे) भूमि का शासन करता है।

इमामू नु कवितमस्य मायां महीं देवस्य नकिरा दधर्ष।
एकं यदुद्ना न पृणन्त्येनीरासिञ्चन्तीरवनयः समुद्रम् ॥६॥

भा०—(कवि-तमस्य) क्रान्तदर्शी विद्वानों में श्रेष्ठ (देवस्य) तेजस्वी राजा और प्रभु की (इमाम् उ नु महीं मायाम्) इस बड़ी बुद्धि और निर्माण-चातुरी का (नकिः आ दधर्ष) कोई तिरस्कार नहीं कर सकता, (यत् एनीः अवनयः) जैसे सदा बहती नदियें (आ सिञ्चन्तीः)

९ च.

सब ओर से जल सींचती हुई (समुद्रं उदुना न पृणन्ति) समुद्र को जल से नहीं भर पातीं, वैसे ही (एनीः) सब ओर से प्राप्त, (अवनयः) ये भूमिवासिनी प्रजाएं (एकं समुद्रं) एक समुद्र के तुल्य अथाह बलशाली राजा को (आ सिञ्चन्तीः) अभिषेक करती हुई भी (न पृणन्ति) ऐश्वर्य-पूर्ण नहीं कर पातीं।

अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा सखायं वा सदमिद् भ्रातरं वा।
वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा यत्सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत् ॥७॥

भा०—हे (वरुण) राजन्! प्रभो! हम (अर्यम्यं) शत्रुओं वा दुष्टों को बंधन में बांधने वाले, पुलीस वा न्यायाधीश, (मित्र्यं) स्नेही ब्राह्मणगण, (सखायं वा) मित्रवर्ग, (सदम्) साथ बैठने वाले (भ्रातरं वा) भाई के प्रति (वा) अथवा (वेशं) सबके प्रवेश योग्य सभास्थान वा राष्ट्र में अन्य देशों के आने-जाने वाले वैश्य वर्ग या पड़ोसी और (अरणं वा) जो अपने से रण नहीं करते, उनके प्रति (यत् सीम् आगः चकृम) जो कभी अपराध करें, हे राजन्! तू (तत्) उसको (नित्यं शिश्रथः) सदा शिथिल करता रह।

कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म।
सर्वा ता वि ष्य शिथिरेव देवाधा ते स्याम वरुण प्रियासः ॥८॥३१॥

भा०—(दीवि न कितवासः) द्यूत-कार्य में जूआखोर जैसे छल-कपट से एक दूसरे पर दोष लगाते हैं वैसे ही जो (कितवासः) तेरा क्या है, इस प्रकार डरा-धमका कर अन्यों का माल झपट लेने वाले छली लोग (यत् रिरिपुः) जो हम पर चोरी का दोषारोप करें (यद् वा घ सत्यम्) और जो सचमुच हमारा कसूर हो, (उत) और (यत् न विद्म) जिस अपराध को हम नहीं जानते और कर बैठते हैं (ता सर्वा) उन सब को, हे (देव) दण्ड देने हारे! हे (वरुण) दुष्टवारक! तू (शिथिरा इव) ढीला-सा (वि स्य) करके हमसे छुड़ा। (अध) और (ते) तेरे हम (प्रियासः स्याम) प्रिय हों। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[८६]

अत्रिर्ऋषिः ।। इन्द्राग्नी देवते ।। छन्दः १, ४, ५ स्वराडुष्णिक् । २, ३ विराडनुष्टुप् । ६ विराट् पूर्वानुष्टुप् । षड्चं सूक्तम् ।।

इन्द्रा॑ग्नी॒ यमव॑थ उ॒भा वाजे॑षु॒ मर्त्य॑म् ।
दृ॒ळ्हा चि॒त्स प्र भे॑दति द्यु॒म्ना वाणी॑रिव त्रि॒तः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, ऐश्वर्यवन् ! हे अग्ने, पाप दग्ध करने वाले नायक ! आप दोनों (वाजेषु) संग्रामों में विद्युत् और अग्नि के तुल्य ज्ञानों और ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के समय (यम् मर्त्यम् अवथ) जिस मनुष्य की रक्षा करते हो (सः) वह (दृढा चित्) दृढ़ शत्रु-सैन्यों को वीर पुरुष के समान, दृढ़, जटिल अवसरों को (प्र भेदति) ऐसे भेद कर पार हो जाता है, जैसे (त्रितः) तीनों वेद-विद्याओं में पारंगत पुरुष (द्युम्नाः वाणीः प्र भेदति) ज्ञानप्रकाशक वेदवाणियों के मर्मों को भेदकर, अज्ञान-सागर से पार उतर जाता है ।

या पृत॑नासु दु॒ष्टरा॒ या वाजे॑षु श्र॒वाय्या॑ ।
या पञ्च॑ च॒र्षणी॑र॒भी॑न्द्रा॒ग्नी ता ह॑वामहे ॥ २ ॥

भा०—(या) जो (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि (पृतनासु दुस्तरा) सेनाओं में सेनापति और नायक के तुल्य मनुष्यों में रहते हुए, शक्ति और ज्ञान में लांघे नहीं जा सकते, (या) और जो दोनों (श्रवाय्या) प्रशंसनीय हैं (या च) और जो दोनों (पञ्च) पांचों प्रकार की (चर्षणीः अभि) ज्ञानेन्द्रियों के ऊपर मन और आत्मा के तुल्य पांचों प्रकार की प्रजाओं के ऊपर राजा हैं (ता इन्द्राग्नी) उन दोनों ऐश्वर्य-युक्त पुरुषों को हम (हवामहे) स्वीकार करते हैं ।

तयो॒रिद॒मव॒च्छव॑स्ति॒ग्मा दि॒द्युन्म॒घोनोः॑ ।
प्रति॒ द्रुणा॒ गभ॑स्त्यो॒र्गवां॑ वृत्र॒घ्न एष॑ते ॥ ३ ॥

भा०—इन्द्र-अग्नि का स्वरूप दर्शाते हैं । (तयोः) उन दोनों का

(शवः) बल और ज्ञान (अमवत्) गृह-समान शरणदाता और उन दोनों (मघोनोः) धन और ज्ञान के स्वामियों की (तिग्मा दिद्युत्) तीक्ष्ण शस्त्र और ज्ञान-वाणी होती है, (गभस्त्योः) बाहुओं के तुल्य राष्ट्र वा शिष्यों को ग्रहण करने हारे राजा, आचार्य दोनों का (शवः) शक्ति, वाणी-रूप बल (द्रुणा) रथ तथा वेग से (गवां वृत्रघ्ने) वाणियों और भूमियों के बाधक शत्रु और अज्ञान के नाशक (प्रति आ ईषते) बाधक कारणों का नाश करता है।

ता वामेषे रथानामिन्द्राग्नी हवामहे।
पती तुरस्य राधसो विद्वांसा गिर्वणस्तमा ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्राग्नी) हे (इन्द्र) शत्रुविदारक राजन्! और हे अग्ने! विद्या-प्रकाशक विद्वान् पुरुष! हम लोग (वाम्) आप के (रथानाम्) रथों और रमणीय ज्ञान-रस की (एषे) प्राप्ति के लिये दोनों को (हवामहे) बुलाते हैं। आप (तुरस्य) शत्रुनाशक, अज्ञानविघातक सैन्य और ज्ञान के (पती) पालक हैं और (विद्वांसा) ब्रह्मवेत्ता और राष्ट्र-लाभ करने वाले, (गिर्वणस्तमा) उत्तम वाणियों का सेवन करने वाले हो।

ता वृधन्तावनु द्यून्मर्ताय देवावदभा।
अर्हन्ता चित्पुरो दधेऽशेव देवावर्वते ॥ ५ ॥

भा०—आप (अनु द्यून्) सब दिनों (वृधन्तौ) बढ़ते हुए (देवौ) दानशील तथा तेजस्वी, (अदभा) अहिंसनीय हैं, (अर्हन्ता) स्वयं पूज्य (ता) उन आप दोनों (देवौ) ज्ञान और धनादि के दाताओं को (मर्ताय) मनुष्यों के हित के लिये मैं (अंशा इव) एक ही पदार्थ के दो भागों के समान (पुरः दधे) अपने समक्ष रखता हूँ।

एवेन्द्राग्निभ्यामहावि हव्यं शूष्यं घृतं न पूतमद्रिभिः।
ता सूरिषु श्रवो बृहद्रयिं गृणत्सु दिधृतमिषं गृणत्सु दिधृतम् ६।३२

भा०—(इन्द्राग्निभ्याम्) उन दोनों, शत्रुविदारक इन्द्र और अग्नि-

वत् तेजस्वी, क्षत्र और ब्रह्म दोनों से (एव) ही (अद्रिभिः पूतं घृतं न) मेघों से प्राप्त जल तथा (अद्रिभिः पूतं घृतं न) प्रस्तर-खण्डों से कुटे-छने द्रवित हुए ओषधि रस के समान (हव्यं) खाने योग्य (शूष्यं) बल-कारक अन्नवत् ज्ञान और बल प्राप्त होते हैं। (ता) वे दोनों (गृणत्सु सूरिषु) उपदेष्टा विद्वानों में (बृहत् श्रवः) बड़ा भारी श्रवण-योग्य ज्ञान और अन्न (बृहत् रयिम्) बड़ा भारी धन (दिधृतम्) धारण करें और वे (गृणत्सु इषं दिधृतम्) उपदेष्टा जनों के निमित्त (इषं) प्रबल इच्छा, शासन-बल, अन्न और सैन्य को भी (दिधृतम्) धारण करें। इति द्वात्रिंशो वर्गः॥

[८७]

एवयामरुदात्रेय ऋषिः॥ मरुतो देवताः॥ छन्दः—१ अति जगती। २, ८ स्वराड् जगती। ३, ६, ७ भुरिग् जगती। ४ निचृज्जगती। ५, ९ विराड् जगती॥ नवर्चं सूक्तम्॥

प्र वो॑ म॒हे म॒तयो॑ यन्तु॒ विष्ण॑वे म॒रुत्व॑ते गिरि॒जा ए॑व॒याम॑रुत्।
प्र शर्धा॑य॒ प्रय॑ज्यवे सु॒खा॒दये॑ त॒वसे॑ भ॒न्ददि॑ष्टये॒ धुनि॑व्रताय॒ शव॑से॥ १॥

भा०—जो (गिरिजाः) वाणी में प्रसिद्ध और (एवया-मरुत्) गमन-योग्य मार्गों पर जाने वाला और वायु-समान बलवान् ज्ञानी पुरुष है, उस (महे) महान् (मरुत्वते) मनुष्यों के स्वामी, (विष्णवे) विविध विद्याओं के प्रवाह बहाने वाले, सामर्थ्यवान् प्रभु, पुरुष के आदर के लिये, उसको प्राप्त करने के लिये (वः मतयः) आप लोगों की बुद्धियां आगे बढ़ें, और वे (शर्धाय) बल प्राप्त करने के लिये, (प्र-यज्यवे) दान-शील, सत्संग-योग्य (सु-खादये) उत्तम रीति से ऐश्वर्य के भोक्ता, (तवसे) सर्वशक्तिमान् (भन्दद्दिष्टये) कल्याणकारी (धुनि-व्रताय) दुष्टों को कंपा देने वाले कर्म करने में समर्थ हैं उसके आदरार्थ आप लोगों

की बुद्धियां, वा आप में से बुद्धिमान् जन (शवसे) ज्ञान, बलादि की प्राप्ति के लिये (प्र यन्तु) आगे बढ़ें।

प्र ये जाता महिना ये च नु स्वयं प्र विद्मना ब्रुवत एवयामरुत्।
क्रत्वा तद्वो मरुतो नाधृषे शवो दाना मह्ना तदेषामधृष्टासो नाद्रयः ॥ २ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो! (ये) जो आप (महिना विद्मना जाताः) बड़े ज्ञान-सामर्थ्य से प्रसिद्ध हैं और (ये च नु स्वयं विद्मना क्रत्वा प्र ब्रुवते) जो स्वयं ज्ञान और कर्म द्वारा अन्यों को उपदेश करते हैं (तत् वः) उन आप के (शवः) बल का, (एवयामरुत्) मार्गों, वा यान-साधनों से जाने वाला मैं सामान्य मनुष्य कभी (न आधृषे) तिरस्कार न करूं। हे सामान्य जनो! आप भी (एषाम्) इनके (मह्ना दाना) बड़े विद्यादि-दान से (शवः) ज्ञान प्राप्त करके (अधृष्टासः) ढीठ न रहकर, (न अद्रयः) मेघ-तुल्य विनम्र होकर अन्यों को धन, ज्ञान आदि देने वाले हों।

प्र ये दिवो बृहतः शृण्विरे गिरा सुशुक्वानः सुभ्व एवयामरुत्।
न येषामिरी सधस्थ ईष्ट आँ अग्नयो न स्वविद्युतः प्र स्पन्द्रासो धुनीनाम् ॥ ३ ॥

भा०—जो विद्वान् पुरुष, (बृहतः दिवः) बड़े तेजस्वी सूर्यवत ज्ञान-प्रकाशक गुरु से (शृण्विरे) ज्ञान सुनते हैं, (गिरा) वाणी से ही (सुशुक्वानः) उत्तम रीति से शुद्ध होकर (सु-भ्वः) उत्तम सामर्थ्यवान्, ज्ञान-बीजों के लिये उत्तम भूमिवत् हैं और (येषां सधस्थे) जिनके साथ रहने में (इरी) उनका सञ्चालक और (एव-यामरुत्) शिष्य जनों को ज्ञान-मार्ग से ले जाने वाला गुरु भी (न ईष्टे) कभी इनको भय उत्पन्न नहीं करता, वे आप लोग (अग्नयः न) अग्निवत् तेजस्वी, (स्व-विद्युतः) स्वयं दीप्तियुक्त और (धुनीनाम्) उत्तम वाग्मियों के, (स्पन्द्रासः प्र) प्रेरक, ज्ञान-रस को बहाने वाले होवो।

स चक्रमे महतो निरुरुक्रमः समानस्मात्सदस एवयामरुत् ।
यदायुक्त त्मना स्वादधि ष्णुभिर्विष्पर्धसो विमहसो जिगाति शेवृधो नृभिः ॥ ४ ॥

भा०—सेनापति का वर्णन । (सः उरुक्रमः) वह महान् पराक्रमी (एवयामरुत्) गमन-साधन रथों से जाने वाले, बलवान् पुरुषों का सेनापति (समानस्मात् सदसः) समान, अपने महागृह से (निश्चक्रमे) निकलता है । वह (शेवृधः) सुखवर्धक (विष्पर्धसः) विशेष स्पर्धा-युक्त (विमहसः) महान् सामर्थ्य वाले पुरुषों को अश्वों के समान (त्मना) स्व बल से (यदा) जब (अधिअयुक्त) अध्यक्ष रूप से नियुक्त करता है तब वह (स्नुभिः) उन अभिषिक्त (नृभिः) नायकों से (जिगाति) विजय प्राप्त करता है ।

स्वनो न वोऽमवान्रेजयद्वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत् ।
येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः स्वायुधास इष्मिणः ॥ ५ ॥ ३२ ॥

भा०—वह (अमवान्) बलवान्, (एवयामरुत्) वेगगामी वीर सैनिकों का स्वामी, (वृषा) मेघवत् शरवर्षी, प्रबन्धकर्त्ता, (त्वेषः) तेजस्वी, (ययिः) प्रयाणशील, (तविषः) बलवान् होकर (स्वनः) उपदेष्टा के समान हो (रेजयत्) वह आप लोगों को सञ्चालित करे । (येन) जिसके साथ आप (स्व-रोचिषः) स्वयं कान्तिमान् (स्थाः रश्मानः) स्थिर किरणों के समान, (हिरण्ययाः) स्वर्णवत् कान्तियुक्त, (सु-आयुधासः) उत्तम शस्त्रबल धारण करते हुए, (इष्मिणः) धनुष बाणवान् होकर (असहन्त) विजय करें, (ऋञ्जत) और अपना कार्य सम्पन्न करें । इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

अपारो वो महिमा वृद्धशवसस्त्वेषं शवोऽवत्वेवयामरुत् ।
स्थातारो हि प्रसितौ सन्दृशि स्थन ते न उरुष्यता निदः शुशुक्वांसो नाग्नयः ॥ ६ ॥

भा०—हे (वृद्ध-शवसः) बड़े हुए बलशाली ! वीर पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (महिमा) महान् सामर्थ्य (अपारः) अपार है, (वः) आप लोगों के (त्वेषं) तीक्ष्ण तेज और (शवः) बल की (एवयामरुत्) रथादि से प्रयाण करने वाले वीरों का स्वामी सदा (अवतु) रक्षा करे। आप लोग (अग्नयः न) ज्ञानवान् पुरुषों के समान (शुशुक्वांसः) सदा कान्तिमान् होकर स्वामी के (प्रसितौ) उत्तम बन्धन और नियन्त्रण तथा उसके (संदृशि) सम्यक् प्रकार के निरीक्षण में (स्थातारः स्थन) स्थिर होकर रहो और (ते) वे आप (नः) हमारी (निदः) निकृष्ट नीति से भेदन करने वाले शत्रु से (उरुष्यत) रक्षा करो।

ते रुद्रासः सुमखा अग्नयो यथा तुविद्युम्ना अवन्त्वेवयामरुत् । दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म पार्थिवं येषामज्मेष्वा महः शर्धांस्यद्भुतैनसाम् ॥ ७ ॥

भा०—(येषाम्) जिन (अद्भुत-एनसाम्) अपराधरहित जनों के (महः शर्धांसि) बड़े शत्रु-हिंसक बल, सैन्य आदि हैं और जिनके (अज्मेषु) संग्रामों के समय (दीर्घं) दीर्घ, (पृथु) विस्तृत, (पार्थिवम्) पृथिवी पर बना हुआ (सद्म पप्रथे) घर विस्तृत है (ते) वे (रुद्रासः) दुष्टों को रुलाने हारे, वीर, विद्वान् जन (यथा) जैसे (सुमखाः) उत्तम यज्ञशील (अग्नयः) अग्नियों के तुल्य (तुवि द्युम्नाः) बहुत प्रकाशवान् होकर (एवयामरुत्) रथादि-साधनों से जाने वाले वीर पुरुषों तथा ज्ञान मार्गों से जाने वाले विद्वान् पुरुषों की (अवन्तु) रक्षा करें।

अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन श्रोता हवं जरितुरेवयामरुत् । विष्णोर्महः समन्यवो युयोतन स्मद्रथ्यो३न दंसनाप द्वेषांसि सनुतः ॥ ८ ॥

भा०—हे (मरुतः) वेग से जाने वाले वीरो ! प्रजाजनो, विद्वान् पुरुषो ! आप (अद्वेषः) द्वेष-रहित होकर (नः गातुम्) हमारी वाणी

को (श्रोत) सुनो। हमारी (गातुम् एतन) भूमि को प्राप्त करो। (एव-यामरुत्) पूर्वोक्त प्रकार से रथगामी वीरों वाले (जरितुः) उपदेष्टा पुरुष के (हवं) आह्वान को (श्रोत) सुनो। हे (समन्यवः) समान ज्ञान और क्रोधवान् पुरुषो! आप लोग (रथ्यः न) योद्धाओं के समान (स-मन्यवः) क्रोध और ज्ञान से प्रचण्ड होकर (विष्णोः) व्यापक शक्तिमान् राजा के (महः) बड़े-बड़े (दंसना) कर्मों को करो और (सनुतः) सदा (द्वेषांसि अप युयोतन) द्वेष भावों को दूर करो।

गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत्।
ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतसः स्यात
दुर्धर्तवो निदः ॥ ९ ॥ ३४ ॥ ६ ॥

भा०—हे (यज्ञियाः) सत्कार और सत्संग-योग्य विद्वान् पुरुषो! आप लोग (नः) हमारे (यज्ञं गन्त) सत्संग एवं देवपूजन आदि कर्म के समय प्राप्त होवो। (एवयामरुत्) उत्तम रथों से जाने वाले पुरुषों के स्वामी के (सुशमि) उत्तम कर्म बतलाने वाले, (अरक्षः) विघ्न-रहित (हवम्) आज्ञा-वचन को (श्रोत) सुनो। (यूयं) आप लोग (तस्य प्रचेतसः) उस उत्कृष्ट चित्त और ज्ञान से युक्त पुरुष के (व्यो-मनि) रक्षा-सम्पन्न राज्य में (ज्येष्ठासः) बड़े भाइयों के समान और (पर्वतासः न) मेघ या पर्वत-तुल्य अचल सहिष्णु होकर (दुर्धर्तवः) दुःखदायी कष्टों को भी सहारते हुए (स्यात) स्थिर रहो। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः। इति षष्ठोऽनुवाकः॥

॥ इति पञ्चमं मण्डलम् समाप्तम् ॥

अथ षष्ठं मण्डलम्

[१]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ७, १३ भुरिक् पंक्तिः । २ स्वराट् पंक्तिः ॥ ५ पंक्तिः । ३, ४, ६, ११, १२ निचृत्-त्रिष्टुप् । ८, १० त्रिष्टुप् । ९ विराट् त्रिष्टुप् । त्रयोदशर्चं मनोतासूक्तम् ॥

त्वं ह्य॑ग्ने प्रथमो मनोतास्या धियो अभ॑वो दस्म होता ।
त्वं सीं॑ वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्व॑स्मै सह॑से सह॑ध्यै ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि-समान तेजस्विन् ! हे प्रभो ! (त्वं हि) क्योंकि तू (प्रथमः) सबसे श्रेष्ठ, प्रसिद्ध, (मनोता) ज्ञान और अन्यों के मनों को अपने में बांधने वाला समर्थ है, इसलिये हे (दस्म) दुःखों के नाशक ! (अस्याः धियः) इस ज्ञान और कर्म का तू (होता) उप-देष्टा (अभवः) हो । (त्वं) तू (सीम्) सब प्रकार से, हे (वृषन्) बल-वन् ! मेघवत् ज्ञान-दान करने हारे ! (सहः) सहनशील, बल को और उसको (विश्वस्मै) सब प्रकार के (सहसे) पराक्रम करने और (सहध्यै) शत्रु को पराजित करने के लिये अपने बल को (दुस्तरीतु) अजेय (अकृणोः) बना ।

अधा होता न्य॑सीदो यजी॑यानिळस्पद इषयन्नीड्यः सन् ।
तं त्वा नरः॑ प्रथमं दे॑वयन्तो महो राये चितय॑न्तो अनु॑ग्मन् ॥२॥

भा०—(अध) और, हे विद्वन् ! हे वीर नायक ! हे प्रभो ! तू (यजीयान्) सबसे उत्तम पूज्य, सत्संगी और (होता) सबके श्रद्धा आदि से कहे वचनों और दिये उपहारों को स्वीकार करने हारा होकर (इडः पदे) भूमि के उत्तम पद पर (नि असीदः) विराजमान है । तू (ईड्यः) सबसे स्तुति-योग्य होकर (इषयन्) सबको चाहता हुआ,

सबको इष्ट प्रदान कर। (त्वा देवयन्तः नरः) तुझ सर्वप्रकाशक की कामना करते हुए नायक लोग (चितयन्तः) तेरा ज्ञान-लाभ करते हुए (महो राये) भारी ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (त्वा अनु ग्मन्) तेरा अनुगमन करते हैं।

वृतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यैस्त्वे रयिं जागृवांसो अनु ग्मन्।
रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम्॥ ३॥

भा०—हे विद्वन्! नायक! प्रभो! (त्वे) तेरे अधीन, तुझमें रमते हुए, (जागृवांसः) सदा जागते हुए जन (रयिं) दानशील तुझ को ही सर्वस्व जान, तेरा (अनुग्मन्) अनुगमन करते हैं। वे (बहुभिः) बहुत से (वसव्यैः) शिष्यवत् बसने वाले, प्रजावत् पुरुषों-सहित (वृता इव यन्तं) सदा सत्-पथ से जाते हुए का (अनुग्मन्) अनुगमन करते हैं। वे (विश्वहा) सदा ही (रुशन्तम्) चमकते हुए (अग्निम्) अग्नि-समान दीप्त, (दर्शतं) सबको ज्ञान-प्रकाश दर्शाने वाले (बृहन्तं) महान् (वपावन्तं) बीज पेर कर उत्तम सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति वाले, एवं शत्रुवत् विघ्नों की भेदक शक्ति से सम्पन्न, (दीदिवांसं) तेजस्वी पुरुष का (अनुग्मन्) अनुगमन करते हैं।

पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम्।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त सन्दृष्टौ॥ ४॥

भा०—(देवस्य) समस्त सुखों के दाता और समस्त ज्ञानों और लोकों के प्रकाशक परमेश्वर के (पदं) ज्ञान करने और (श्रवः) श्रवण-योग्य स्वरूप को (नमसा) नमस्कार, विनय-पूर्वक (व्यन्तः) प्राप्त करते हुए (श्रवस्यवः) श्रवण-योग्य ज्ञान के अभिलाषी जन उस (अमृक्तम्) पवित्र स्वरूप को (आपन्) प्राप्त करते हैं। वे परमेश्वर के (यज्ञियानि नामानि) उपासना-योग्य नामों को (दधिरे) धरते, उसका नाना नामों से स्मरण करते हैं, वे (भद्रायां) कल्याण करने वाली

(सं-दृष्टौ) सम्यक् दृष्टि में विराजते हुए (रणयन्त) आनन्द लाभ करते हैं।

त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम्।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् ॥५॥३५॥

भा०—हे राजन्! परमेश्वर! (पृथिव्याम्) पृथिवी के ऊपर (क्षितयः) बसने वाले जीव और प्रजागण (त्वा वर्धन्ति) तुझे बढ़ाते हैं। (रायः त्वा) समस्त ऐश्वर्य तुझे ही बढ़ाते हैं। (जनानां उभयासः) मनुष्यों में ज्ञानी और अज्ञानी दोनों तुझे ही बढ़ाते हैं। तू ही (सदम् इत्) सदा ही वा गृह के समान (मनुष्याणां त्राता) मनुष्यों का रक्षक और (तरणे) संसार सागर को पार करने के लिए (चेत्यः) उत्तम दान देने हारा, (भूः) है, तू ही, (पिता माता) पिता माता के तुल्य पालक है। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः॥

सपर्येण्यः स प्रियो विक्ष्वग्निर्होता मन्द्रो नि षसादा यजीयान्।
तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसमुप ज्ञुबाधो नमसा सदेम ॥ ६ ॥

भा०—(सः) वह (अग्निः) विद्वान्, नेता, आचार्य और परमेश्वर (सपर्येण्यः) सदा पूजा, सत्कार, उपासना योग्य है। वह (विक्षु) प्रजाओं में (होता) ज्ञान और सुखों का दाता और (यजीयान्) मैत्री-भाव आदि में सबसे श्रेष्ठ होकर (नि ससाद) विराजता है। वह (मन्द्रः) आनन्दप्रद है। हे (अग्ने) विद्वन्! (तं) उस (दीदिवांसं) देदीप्यमान अग्निवत् स्वयं-प्रकाश (त्वां) आप को (दमे) घर में वा इन्द्रियों के दमन करने वा प्रजाशासन के निमित्त (ज्ञु-बाधः) घुटने मोड़कर (नमसा) नमस्कार करते हुए (उप सदेम) तेरे समीप बैठें।

तं त्वा वयं सुध्यो३ नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः।
त्वं विशो अनयो दीद्यानो दिवो अग्ने बृहता रोचनेन ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! नेतः! (वयं) हम लोग (सुम्नायवः)

सुख चाहते हुए और (देवयन्तः) तुझे चाहते हुए (सुध्यः) उत्तम बुद्धि वाले होकर (त्वा ईमहे) तुझे प्राप्त करते, तुझ से (दिवः ईमहे) अनेक याचनायें करते हैं। (त्वं) तू (बृहता रोचनेन) बड़े प्रकाश से सूर्य के समान (दीद्यानः) चमकता हुआ (विशः) प्रजाओं की (दिवः) प्रकाशों के समान कामनाओं को (अनयः) प्राप्त कराता है।

विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम्।
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम् ॥ ८ ॥

भा०—हम लोग (शश्वतीनां) सदा विद्यमान, स्थायी जीवों वा (विशां विश्पतिं) समस्त प्रजाओं के पालक और (चर्षणीनां) विद्वान् मनुष्यों के बीच (वृषभं) सुखों की वर्षा करने वाले, मेघवत् उदार, बलवान् (नितोशनं) दुःखों के नाशने वाले (प्रेति-इषणिम्) प्राप्त पदार्थों के देने और चाहने-वाले, (इषयन्तं) और अन्यों को लक्ष्य तक पहुँचा देने वाले, (पावकं) पावन, (राजन्तम्) राजा के समान तेजस्वी, (रयीणां) ऐश्वर्यों, बलों और भोग्य सुखों के (यजतं) दाता (अग्निं) नायक, विद्वान्, प्रभु को (ईमहे) प्राप्त हों, उसी की प्रार्थना करें।

सो अग्न ईजे शशमे च मर्तो यस्त आनट् समिधा हव्यदातिम्।
य आहुतिं परि वेदा नमोभिर्विश्वेत्स वामा दधते त्वोतः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् प्रभो! (यः) जो पुरुष (ते) तेरी (समिधा) समिधा-सहित अग्नि-तुल्य देदीप्यमान, तेरे गुणों को प्रकाशित करने वाली स्तुति से (हव्य-दातिम्) अन्नादि दान क्रिया के तुल्य उत्तम वचन प्रदान (आनट्) करता है (सः) वह (ईजे) यज्ञ करता है, (सः शशये) वह तेरी प्रार्थना करता है, शान्ति लाभ करता है और (यः) जो (नमोभिः) नमस्कारों सहित तेरे निमित्त (आहुतिं परि वेद) सब प्रकार के दान देता वा सत्कारों सहित तेरे नाम की पुकार करता है (सः इत्) वही (त्वाऽउतः) तेरे से सुरक्षित रहकर (विश्वा वामा) समस्त ऐश्वर्य (दधते) धारण करता है।

अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः ।
वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैरा ते भद्रायां सुमतौ यतेम ॥१०॥

भा०—(नमोभिः, समिधा हव्यैः) जैसे अन्नों, समिधाओं और हवन-योग्य पदार्थों से अग्निहोत्र-क्रिया की जाती है वैसे ही, हे (अग्ने) अग्नि-तुल्य ! तेजस्विन् ! विद्वन् ! प्रभो हम लोग (अस्मै) इस (महे) महान् (ते) तेरी (नमोभिः) अन्नों, नमस्कारों और सत्कारों से (समिधा) अच्छी प्रकार से चमकने वाली विद्या (उत) और (हव्यैः) अन्नों, वचनों से (महि विधेम) बड़ा सत्कार करें और (वेदी) ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाली इस भूमि में, हे (सहसः सूनो) शत्रुपराभवकारी सैन्यबल के सञ्चालक राजन् ! विद्वन् ! हम लोग (ते) तेरी (गीर्भिः) वाणियों और (उक्थैः) उपदेशों द्वारा प्रेरित होकर (ते) तेरी प्रदान की (भद्रायां सुमतौ) उत्तम शुभमति के अधीन रहकर (आ यतेम) प्रयत्न करते रहें ।

आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्य१स्तरुत्रः ।
बृहद्भिर्वाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि ॥११॥

भा०—(यः) जो प्रभु (रोदसी) आकाशस्थ पिण्डों और पृथिवी को (भासा) स्व प्रकाश से (आ वि ततन्थ) सब ओर विविध प्रकारों से व्यापता और बनाता है, जो (श्रवोभिः) गुरुजनों द्वारा श्रवण-योग्य वेदवचनों से (श्रवस्यः) सुनने योग्य है, जो (बृहद्भिः वाजैः) बड़े ज्ञानों, ऐश्वर्यों से (तरुत्रः) संसार-संकटों से पार उतारने वाला है, वह (स्थविरेभिः) ज्ञान और अनुभव-वृद्ध पुरुषों और (रेवद्भिः) ऐश्वर्यवान् पुरुषों द्वारा, हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! (अस्मे) हमारे लिये (वि तरं) विशेष रूप से (वि भाहि) प्रकाशित हो ।

नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्वः ।
पूर्वीरिषो बृहतीरारे अघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥१२॥

भा०—हे (वसो) जगत् को बसाने हारे प्रभो! नगरादि बसाने हारे राजन्! (अस्मे तोकाय तनयाय) हमारे पुत्र पौत्र की रक्षार्थं (नृवत् सदम्) मनुष्यों से युक्त घर, नायकों से युक्त राजसभा को (धेहि) दे, (अस्मे) हमें (भूरि पश्वः धेहि) बहुत से पशु और (अस्मे) हमें (पूर्वीः इषः) समृद्ध अन्न, (बृहतीः इषः) बड़ी कामनाएं और बड़ी सेनाएं जो (आरे-अघाः) पापियों को दूर भगा दें, प्राप्त हों। (अस्मे) हमारे (भद्रा) सुखदायक, (सौश्रवसानि) ज्ञान और ऐश्वर्य (सन्तु) हों।

पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन्वसुता ते अश्याम्।
पुरूणि हि त्वे पुरुवार सन्त्यग्ने वसु विधते राजनि त्वे।१३।३६।४॥

भा०—हे (राजन्) राजन्! प्रभो! हे (अग्ने) तेजस्विन्! (ते) तेरे (वसूनि पुरूणि) ऐश्वर्य बहुत हैं। इसी लिए (ते वसुता) तेरा राष्ट्र को बसाने वाला सामर्थ्य (पुरुधा) बहुत प्रजाजनों के धारण में समर्थ है। इसलिये मैं प्रजाजन (ते) तेरे ऐश्वर्यों का (अश्याम्) भोग करूं। हे (पुरुवार) बहुतों से वरणीय! (त्वे हि) तेरे अधीन ही (पुरूणि) बहुत से (वसूनि) ऐश्वर्य (सन्ति) हैं! (त्वे राजनि) तुझ राजा के अधीन रहकर, हे (अग्ने) नायक! (विधते) विविध शिल्प रचने, वा विधान का पालन करने, पुरुष के लिये ही (ते वसु) तेरा ऐश्वर्य हो! इति षट्त्रिंशो वर्गः॥ इति चतुर्थोऽध्यायः॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

[२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ६ भुरिगुष्णिक्। २ स्वराडुष्णिक्। ७ निचृदुष्णिक्। ८ उष्णिक्। ३, ४ अनुष्टुप्। ५, ६, १० निचृदनुष्टुप्। ११ भुरिगतिजगती॥
एकादशर्चं सूक्तम्॥

त्वं हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्वी पुरुष! जैसे (क्षैतवत् यशः पत्यते) पृथिवी अन्न को खूब बढ़ाती है वैसे ही तू भी (यशः पत्यसे) अन्न और यश का स्वामी हो। तू (मित्रः न) मरण से बचाने वाले जल वा सूर्य के तुल्य (यशः पत्यसे) अन्न और तेज का स्वामी हो। हे (विचर्षणे) विशेष रूप से ज्ञान के द्रष्टः! (त्वं) तू ही (श्रवः) अन्न और ज्ञान को (पुष्टिं न) सम्पदा के समान ही (पुष्यसि) पुष्ट किया कर।

त्वां हि ष्मा चर्षणयो यज्ञेभिर्गीर्भिरीळते ।
त्वां वाजी यात्यवृको रजस्तूर्विश्वचर्षणिः ॥ २ ॥

भा०—हे राजन्! परमेश्वर! (चर्षणयः) सब मनुष्य (यज्ञेभिः) यज्ञों से और (गीर्भिः) वाणियों से, (त्वां हि ईडते स्म) तेरी ही स्तुति करते हैं। (अवृकः) कुटिलता आदि से रहित (वाजी) बल, ज्ञान और ऐश्वर्य वाले प्रजाजन (त्वां) तुझे (याति) प्राप्त होते हैं और (रजस्तूः) लोकों का प्रेरक और (विश्वचर्षणिः) विश्व-द्रष्टा है।

सजोषस्त्वा दिवो नरो यज्ञस्य केतुमिन्धते ।
यद्ध स्य मानुषो जनः सुम्नायुर्जुह्वे अध्वरे ॥ ३ ॥

भा०—विद्वन्! राजन्! प्रभो! (दिवः नरः) नाना कामना वाले जन और ज्ञान-प्रकाश, विजिगीषा आदि के नायक जन (सजोषः) प्रीति से युक्त होकर (यज्ञस्य केतुम्) यज्ञ के ध्वजा-रूप अग्नि के तुल्य, परस्पर संगति और सत्कार के ज्ञापक (त्वा) तुझको ही (इन्धते) बढ़ाते हैं। (यत् ह) क्योंकि (स्यः मानुषः जनः) वह मनुष्यगण, (सुम्नायुः) सुख चाहता हुआ (अध्वरे) हिंसा आदि से रहित यज्ञ आदि कर्म में, (जुह्व) तेरे प्रति अपना समर्पण करता और (त्वा जुह्वे) तुझे स्वीकार करता है।

ऋध्यद्यस्ते सुदानवे धिया मर्तः शशमते ।
ऊती ष बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥ ४ ॥

भा०—(यः मर्तः) जो मनुष्य (सुदानवे) उत्तम दानशील (ते) तेरे लिए स्वयं (ऋधत्) समृद्ध हो और (धिया) ज्ञान और कर्म से (ते शशमते) तेरी स्तुति करता है, हे प्रभो ! (सः) वह (ऊती) तेरी रक्षा और तेरे दिये सामर्थ्य से (बृहतः दिवः) बड़ी कामनाओं, बड़े लोकों और (द्विषः) शत्रुओं को भी (अंहः न) पाप-तुल्य (तरति) पार कर जाता है ।

समिधा यस्त आहुतिं निशितिं मर्त्यो नशत् ।
वयावन्तं स पुष्यति क्षयमग्ने शतायुषम् ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रभो ! राजन् ! हे आत्मन् ! जैसे (समिधा) काष्ठ-सहित (आहुतिं) आहुति अग्नि में दी जाती है और वह बढ़ता है वैसे ही (यः मर्त्यः) जो मनुष्य (ते) तेरे लिये (समिधा) प्रदीप्त होने वाले जल-वायु के साथ २ (आहुतिम्) आदर-पूर्वक खाने योग्य अन्न आदि और (आहुतिं) आदर पूर्वक स्तुति आदि (निशितं) खूब प्रभाव-जनक रूप से (नशत्) दिलाता है (सः) वह (वयावन्तं क्षयम्) शाखी वृक्ष के तुल्य कर-चरणादि-युक्त इस देह को, (शतायुषम्) सौ वर्ष तक (पुष्यति) पुष्ट कर लेता है । इति प्रथमो वर्गः ॥

त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि षञ्छुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ६ ॥

भा०—(धूमः दिवि) जैसे अग्नि-धूम और (त्वेषः) प्रकाश (ऋण्वति) फैलता है वैसे ही हे (पावक) अग्नि तुल्य राष्ट्र, देह और चित्तों को पवित्र करने हारे राजन् ! आत्मन् ! परमात्मन् ! (ते) तेरा (शुक्रः) शुद्ध, (त्वेषः) तेज और (धूमः) शत्रुओं, रोगों और पापों को दूर करने वाला सामर्थ्य (दिवि) भूमि, राजसभा और मनोकामना में

(ऋण्वति) व्यापता है, (त्वं) तू स्वयं (शुक्रः) कान्तिमान् (आततः) व्यापक, (सूरः न) सूर्य के समान (द्युता) कान्ति से और (कृपा) सामर्थ्य से (रोचसे हि) प्रकाशित होता है।

अधा हि विक्ष्वीड्योऽसि प्रियो नो अतिथिः।
रण्वः पुरीव जूर्यः सूनुर्न त्रययाय्यः॥ ७॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! प्रभो! (अध हि) तू निश्चय से (विक्षु) प्रजाओं में (ईड्यः) स्तुति-योग्य और (अतिथिः) अतिथि तुल्य पूज्य और (नः प्रियः) हमारा प्यारा (असि) है। तू (पुरि इव जूर्यः) नगरी वासी वृद्ध पुरुष के तुल्य वा (रण्वः) रण-कुशल राजा के तुल्य वा (सूनुः न) गृह में स्थित पुत्र के तुल्य (रण्वः) सुखप्रद, (जूर्यः) हितोपदेष्टा, (सूनुः) सबका प्रेरक और (त्रययाय्यः) तीनों लोकों में व्यापक है।

क्रत्वा हि द्रोणे अज्यसेऽग्ने वाजी न कृत्व्यः।
परिज्मेव स्वधा गयोऽत्यो न ह्वार्यः शिशुः॥ ८॥

भा०—जैसे अग्नि (क्रत्वा द्रोणे अज्यते) संघर्षण-क्रिया से अरणी-काष्ठ वा कुण्डपात्र में प्रकट होती वैसे ही हे विद्वन्! राजन्! आत्मन्! परमेश्वर! तू भी (क्रत्वा) ज्ञान और कर्म से (द्रोणे) जाने योग्य सन्मार्ग, राष्ट्र, देह और विश्व में (अज्यसे) प्रकाशित होता है। तू, (वाजी न) अश्व तुल्य (कृत्व्यः) समस्त कर्मों का कर्ता है। तू (परिज्मा इव) वायु-तुल्य (स्वधा) जीवनदाता, ऐश्वर्य-धारक, तू (गयः) प्राण-वत्, (अत्यः न) वेगवान् अश्ववत्, सर्वातिशायी और (शिशुः) बालक-तुल्य, पवित्र आचरण वाला एवं (ह्वार्यः) कुटिल पुरुषों का नाशक है।

त्वं त्या चिदच्युताग्ने पशुर्न यवसे।
धामा ह यत्ते अजर वना वृश्चन्ति शिक्वसः॥ ९॥

भा०—हे (अग्ने) राजन्! विद्वन्! परमेश्वर! (यवसे पशुः न)

घास के लिए पशु तुल्य भूखा-सा होकर (अच्युता त्या चित्) कभी च्युत न होने वाले उन समस्त लोकों को अग्निवत् प्रलयकाल में ग्रस लेता है और जैसे (शिक्वसः) दीप्तियुक्त अग्नि की (धामा वना वृश्चन्ति) ज्वालाएं वनों को जला देती हैं वैसे ही (अजर) अविनाशी ! (शिक्वसः) शक्तिशाली (ते) तेरे (यत् धामा) जो तेज और धारण-सामर्थ्य हैं वे (वना) भोगने योग्य लोकों का (वृश्चन्ति) नाश कर देते हैं ।

वेषि ह्यध्वरीयतामग्ने होता दमे विशाम् ।
समृधो विश्पते कृणु जुषस्व हव्यमङ्गिरः ॥ १० ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! प्रभो ! तू (अध्वरीयताम् विशाम्) यज्ञ कर्त्ता प्रजाओं के (दमे) गृह में (होता) होता के तुल्य दाता होकर (वेषि) प्रकाशित हो । हे (विश्पते) प्रजा-पालक ! तू उनको (समृधः कृणु) समृद्ध कर और, हे (अङ्गिरः) तेजस्विन् ! तू (हव्यम्) आहुति-वत् ग्रहण-योग्य स्तुत्य वचन को (जुषस्व) स्वीकार कर ।

अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्ति सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम
ता तरेम तवावसा तरेम ॥ ११ ॥ २ ॥

भा०—हे (मित्रमहः) मित्रों के आदर कर्त्तः ! सूर्यवत् तेजस्विन् ! हे (देव) दानशील ! हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (देवान् नः) हम अर्थियों को (रोदस्योः) माता-पिता के तुल्य जनों का (सुमतिं) शुभ ज्ञान (वोचः) उपदेश कर । तू (सुक्षितिम्) उत्तम निवास-स्थान को (स्वस्ति) सुखपूर्वक (वीहि) प्राप्त कर । तू (दिवः नॄन् वीहि) कामनायुक्त पुरुषों को प्राप्त कर । (द्विषः, अंहांसि) शत्रुओं, पापों और (दुरिता) बुरे कर्मों को हम (तरेम) पार करें । (तव अवसा) तेरे रक्षण से हम (ता) उनको (तरेम) तर जावें और (तरेम) सदा तरें । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ।। अग्निर्देवता ।। छन्दः—१, ३, ४ त्रिष्टुप् ।
२, ५, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ भुरिक् पंक्तिः ।। अष्टर्चं सूक्तम् ।।

अग्ने॒ स क्षे॑षदृत॒पा ऋ॑ते॒जा उ॒रु ज्योति॑र्नशते देव॒युष्टे॑ ।
यं त्वं मि॒त्रेण॒ वरु॑णः स॒जोषा॒ देव॒ पासि॒ त्यज॑सा॒ मर्त॒मंहः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! राजन् ! प्रभो ! (सः) वह (ऋतपाः) सत्य-पालक, (ऋते-जाः) सत्य-ज्ञान में जन्म लेने वाला, (देवयुः) गुणों और विद्वानों की कामना वाला पुरुष (क्षेषत्) दीर्घ जीवन पाता और (ते ज्योतिः नशते) तेरे ज्ञान-प्रकाश को प्राप्त करता है । हे (देव) राजन् ! प्रभो ! (यं) जिस (मर्त्तम्) मनुष्य को (सजोषाः) प्रेम-युक्त (वरुणः) दुःख-वारक, (त्वं) तू (मित्रेण) मित्र सहित (त्यजसा) दान से (पासि) पालन करता और (अंहः) पाप नाश करता है वही ज्योति-लाभ करता है ।

ईजे॑ य॒ज्ञेभिः॑ शश॒मे शमी॑भिर्ऋ॒धद्वा॑राया॒ग्नये॑ ददाश ।
ए॒वा च॒न तं य॒शसा॒मजु॑ष्टि॒र्नांहो॒ मर्तं॑ नशते॒ न प्र॒दृप्तिः॑ ॥ २ ॥

भा०—जो पुरुष (यज्ञेभिः) दान, सत्संगों से (ईजे) यज्ञ करता है, (शमीभिः शशमे) उत्तम कर्मों से स्वयं को शान्त करता है और जो (ऋधद्वाराय) धनों, व्यवहारों से युक्त (अग्नये) अग्नि में आहुति के तुल्य ज्ञानवान् के हितार्थ (ददाश) दान करता है (एव चन) इस प्रकार निश्चय से (तं) उसको (यशसाम् अजुष्टिः) यशों, अन्नों का अभाव (न नशते) प्राप्त नहीं होता, (तं मर्त्तं) उस मनुष्य को (अंहः न नशते) पाप नहीं छूता और उसको (प्रदृप्तिः न नशते) भारी दर्प नहीं होता ।

सूरो॒ न यस्य॑ दृश॒तिर॑रे॒पा भी॒मा यदेति॑ शुच॒तस्त॒ आ धीः ।
हेष॑स्वतः शु॒रुधो॒ नाय॒म॒क्तोः कुत्रा॑ चिद्र॒ण्वो व॑स॒तिर्व॑ने॒जाः ॥३॥

भा०—(यस्य) जिसका (दशतिः) सत्य-ज्ञान या दृष्टि (सूरः न) सूर्य तुल्य सत्य अर्थ की प्रकाशक (अरेपाः) पापों से रहित (भीमा) दुर्जनों को भयप्रद है और (यत् शुचतः) अग्नि तुल्य चमकते हुए जिसको (धीः) बुद्धि और कर्म (आ एति) प्राप्त होता है, (अक्तोः) पदार्थों को स्पष्ट करने वाले और (क्षुपः न) अन्धकार-नाशक सूर्य-समान ही उस (द्वेषस्वतः) गंभीर वाणी बोलने हारे (ते) तुझ उपदेष्टा का (कुत्रचित्) कहीं भी हो, वहां ही (रण्वः) रमण-योग्य (वनेजाः) किरणों में सूर्यवत् सेवन योग्य ऐश्वर्य, वा शान्तिदायक वन में उत्पन्न (वसतिः) निवास होता है ।

तिग्मं चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा ।
विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ॥ ४ ॥

भा०—(अस्य) इस विद्वान् वा राजा का (एम) ज्ञान और मार्ग (तिग्मं चित्) सूर्य-प्रकाश के तुल्य तीक्ष्ण हो और (वर्पः महि) आकार महान् और (भसत्) चमकीला हो । वह स्वयं (अश्वः न) अश्व तुल्य (आसा) मुख से (यमसानः) संयम का सेवन करने वाला, वाचंयम तथा मिताहारी हो । वह (परशुः न) फरसे के समान अज्ञान-नाश में (जिह्वां) तीक्ष्ण वाणी का (वि-जेहमानः) विविध प्रयोग करता हुआ (द्रविः न) ताप से धातु को गला कर शोधने वाले स्वर्ण-कार तुल्य (द्रावयति) मलों, अज्ञान वा शत्रु को दूर कर देता है वह ही अग्नि तुल्य (दारु) काष्ठवत् छेदन-भेदन करने वाले शत्रु सैन्य वा हृदयविदारक शोकादि को (धक्षत्) भस्म करता है ।

स इदस्तैव प्रति धादसिष्यञ्छिशीत तेजोऽयसो न धाराम् ।
चित्रध्रजतिररतिर्यो अक्तोर्वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—(असिष्यन् अस्ता इव) जैसे बाण फेंकने वाला धनुर्धर बाण को शत्रु पर फेंकता है (सः इव) वह विद्वान् (असिष्यन्) बन्धन

में बंधता हुआ, सखद वीर के तुल्य (प्रति धात्) उसको सामर्थ्य-पूर्वक सहे, प्रतिकार करे। जैसे शिल्पी (अयसः न धारां शिशीते) लोहे की धार को तेज करता है वैसे ही विद्वान् भी वाणी को तीक्ष्ण करे। (यः) जो (अरतिः) आगे जाने वाला, वा कहीं आसक्त न हो, वह (चित्र-ध्रजतिः) अद्भुत वेगवान् होकर (अक्तोः) रात्रि में (द्रुसद्वा वेः न) वृक्ष-स्थित पक्षी के तुल्य (रघु-पत्म-जंहाः) तुच्छ पदार्थ के प्रति गिरने के व्यसन को छोड़ देता है। इति तृतीयो वर्गः ॥

स ईं रेभो न प्रति वस्त उस्राः शोचिषा रारपीति मित्रमहाः।
नक्तं य ईमरुषो यो दिवा नॄनमर्त्यो अरुषो यो दिवा नॄन् ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (अरुषः) रोष रहित होकर (दिवानक्तं) रात-दिन (ईम्) इस जगत् को सन्मार्ग पर चलाता, जो (अमर्त्यः) असा-धारण मनुष्य होकर (नॄन्) मनुष्यों का शासन करता, जो (अरुषः) मर्म-स्थानों पर वश करके, (दिवा) ज्ञान-प्रकाश से (नॄन्) मनुष्यों को सन्मार्ग दिखाता है (सः) वह ही (रेभः न) सूर्यवत् ज्ञानोपदेष्टा, अन्यों का सत्कारक होकर (उस्राः प्रति वस्ते) किरणों के तुल्य, ऊपर को निकलने वाली वाणियों को धारण करता है, वह (मित्रमहाः) स्नेही जनों का आदरकर्ता (शोचिषा) अग्नि-तुल्य दीप्ति-युक्त वाणी से (रार-पीति) उपदेश देता है।

दिवो न यस्य विधतो नवीनोद्वृषा रुक्ष ओषधीषु नूनोत्।
घृणा न यो ध्रजसा पत्मना यन्ना रोदसी वसुना दं सुपत्नी ॥७॥

भा०—(दिवः न) सूर्य के तुल्य (विधतः) कर्म या उपदेश देते हुए (यस्य) जिसके (नवीनोत्) उत्तम उपदेश ध्वनित होता है और जो स्वयं (वृषा) वर्षणशील मेघ तुल्य (रुक्षः) उन्नत पद पर आरूढ़ होकर (ओषधीषु) वनस्पति-तुल्य प्रजाओं और सेनाओं पर (नूनोत्) शासन करता है, (यः) जो (घृणा) दीप्ति और (ध्रजसा) वेग-युक्त

होकर (पत्मना) उत्तम मार्ग से (यन्) जाता हुआ (वसुना) ऐश्वर्य से (सु-पत्नी) सुख से राष्ट्र-पालन करने वाले, (रोदसी) सेनापति और सैन्य दोनों को, पुत्रादि-पालक पति-पत्नी के समान (दम्) दमन करता है।

धायोभिर्वा यो युज्येभिरर्कैर्विद्युन्न दविद्योत्स्वेभिः शुष्मैः।
शर्धो वा यो मरुतां ततक्ष ऋभुर्न त्वेषो रभसानो अद्यौत् ॥८॥४॥

भा०—(यः) जो (विद्युत् न) बिजली के तुल्य (अर्कैः) अर्चना-योग्य, (युज्येभिः) कार्यों में नियुक्त करने योग्य, (धायोभिः) कार्य-भारों को उत्तम रीति से धारक, अधीनस्थ पुरुषों से, किरणों के तुल्य और (स्वेभिः) अपने (शुष्मैः) शत्रुशोषक सैन्यों से (दविद्योत्) चमकता है, (यः) जो (मरुताम्) वायुवत् वीर पुरुषों के (शर्धः) सैन्य, बल को (ततक्ष) तैय्यार करता है, वह (ऋभुः न) बहुत तेज चमकीले सूर्य के तुल्य (त्वेषः) कान्ति-युक्त (रभसानः) वेगवान् होकर (अद्यौत्) चमकता है। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[४]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। २, ५, ६, ७ भुरिक् पंक्तिः। ३; ४ निचृत् पंक्तिः। ८ पंक्तिः।
अष्टर्चं सूक्तम् ॥

यथा होतर्मनुषो देवताता यज्ञेभिः सूनो सहसो यजासि।
एवा नो अद्य समना समानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ॥१॥

भा०—(यथा) जैसे (मनुषः) विद्वान् (यज्ञेभिः) यज्ञों से (देव-ताता) विद्वानों द्वारा करने योग्य यज्ञ के समय (यजाति) यज्ञ, दान आदि करता है, हे (होतः) दानदातः! हे (सहसः सूनो) शत्रु-परा-भवकारी सैन्य के सञ्चालक! हे (अग्ने) विद्वन्! प्रभो! तू (एव) वैसे ही (अद्य) आज (देवान्) धनैश्वर्यादि-कामना-वाले (उशतः) तुझे

चाहते हुए (समानान्) पदाधिकार में तुल्य बलवीर्य वाले (नः) हम लोगों को (समना) संग्राम, यज्ञादि के समय (यक्षि) ऐश्वर्यादि देता और संगत कर सुप्रबद्ध करता है, तू नायक होने योग्य है।

स नो॑ वि॒भावा॑ च॒क्षणि॒र्न वस्तो॑र॒ग्निर्व॒न्दारु॒ वेद्य॒श्चनो॑ धात्।
वि॒श्वायु॒र्यो अ॒मृतो॒ मर्त्ये॑षूष॒र्भुद्भूदति॑थिर्जा॒तवे॑दाः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (विश्वायुः) सबका जीवन दाता (अमृतः) मृत्यु-रहित, (मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच (अतिथिः) अतिथि-समान पूज्य, (जात-वेदाः) समस्त ज्ञानों और ऐश्वर्यों का उत्पादक (भूत्) है (सः) वह (विभावा) विशेष कान्ति-युक्त, (चक्षणिः) सबका द्रष्टा, (अग्निः) अग्नि-तुल्य स्वयंप्रकाश (वेद्यः) ज्ञान से जानने-योग्य प्रभु, विद्वान् (वस्तोः) बसने के लिये सब दिन (नः) हमें (वन्दारु) स्तुति-योग्य (चनः) अन्न और ज्ञान (धात्) देवे।

द्या॒वो न यस्य॑ प॒नय॒न्त्यभ्वं॒ भासां॑सि वस्ते॒ सूर्यो॒ न शु॒क्रः।
वि य इ॒नोत्य॒जरः॑ पाव॒कोऽश्न॑स्य चिच्छिश्नथत्पू॒र्व्याणि॑ ॥ ३ ॥

भा०—(यस्य) जिस प्रभु के (अभ्वं) सामर्थ्य को (द्यावः न) वे चमकीले सूर्य आदि किरणों के तुल्य (पनयन्ति) स्तुति करते हैं, जो (सूर्यः न) सूर्य तुल्य (शुक्रः) तेजःस्वरूप होकर (भासांसि) ज्योतियों को (वस्ते) धारण करता है। (यः) जो (अजरः) जरा-मरण-रहित (पावकः) सबको पवित्रकर्त्ता तेजस्वी होकर (वि इनोति) विविध प्रकार से व्यापता है, वह अग्नि जैसे (अश्नस्य पूर्व्याणि शिश्नथत्) भोजन के दृढ़ रूपों को शिथिल कर देता है वैसे ही प्रभु (अश्नस्य) जीव के भोग्य कर्म-फलादि के (पूर्व्याणि) पूर्व किये कर्म-बन्धनों को (शिश्नथत्) शिथिल करता है।

व॒ज्रा हि सू॒नो अस्य॑द्म॒सद्वा॑ च॒क्रे अ॒ग्निर्ज॒नुषाज्मान्न॑म्।
स त्वं न॑ ऊर्जसन॒ ऊर्जं॑ धा॒ राजे॑व जेरवृ॒के क्षे॑ष्य॒न्तः ॥ ४ ॥

भा०—हे (सूनो) जगदुत्पादक! तू (वन्द्या) वन्दना-योग्य, (असि) है। तू (अद्मसद्वा) भोग-योग्य कर्म-फलों पर अधिष्ठातृ-रूप से भोजनों में अग्नि-तुल्य स्वादप्रद होकर स्थित है। तू (अग्निः) प्रकाशक होकर जीवों के लिये (जनुषा) जन्म द्वारा (अज्म) प्राप्ति योग्य (अन्नं) अन्नवत् भोग्य फल को (चक्रे) बनाता है। (सः) वह (त्वं) तू (ऊर्जसनः) अन्नों, बलों का दाता (नः) हमें (ऊर्जं) अन्न (धाः) दे। तू (राजा इव) राजा के तुल्य (जेः) विजय कर, (अवृके अन्तः) भेड़िये के तुल्य क्रूर पुरुषों से रहित राष्ट्र में बसने वाले राजा के तुल्य (अवृके अन्तः) कुटिलतादि-रहित अन्तःकरण में (क्षेपि) बसता है।

नितिक्ति यो वारणमन्नमत्ति वायुर्न राष्ट्र्यत्येत्यक्तून्।
तुर्याम यस्त आदिशामरातीरत्यो न हुतः पततः परिहुत् ॥५॥५॥

भा०—(यः) जो राजा (वारणम्) शत्रुवारण में समर्थ सैन्य-बल को (नितिक्ति) तीक्ष्ण बनाये रखता है और (अन्नम्) ऐश्वर्य का अन्न के तुल्य (अत्ति) भोग करता है। जो (राष्ट्री) राष्ट्र का स्वामी (वायुः न) वायु तुल्य बलवान् होकर (अक्तून्) सब दिनों वा रात्रियों को सूर्य के तुल्य तेजस्वी पुरुषों को (अति एति) अतिक्रमण करता है। हे नायक, प्रभो! (यः) जो तू वेगवान् अश्व के समान (ह्रुतः) वक्र या विनम्र होकर (परिह्रुत्) वक्र-गति से जाता है उस (आदिशाम्) चौदिशों (पततः ते) जाते हुए तेरे (अरातीः) शत्रुओं को हम (तुर्याम) नष्ट करें। इति पञ्चमो वर्गः॥

आ सूर्यो न भानुमद्भिरर्कैरग्ने ततन्थ रोदसी वि भासा।
चित्रो नयत्परि तमांस्यक्तः शोचिषा पत्मन्नौशिजो न दीयन् ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! जैसे (सूर्यः भानुमद्भिः अर्कैः अक्तः) सूर्य प्रकाशयुक्त किरणों से प्रदीप्त होकर (भासा रोदसी वि ततन्थ) दीप्ति से आकाश और पृथिवी को व्यापता है और (पत्मन् दीयन्

शोचिषा तमांसि परि नयत्) आकाश-मार्ग से जाता हुआ प्रकाश से अन्धकारों को दूर करता है वैसे ही राजा (भानुमद्भिः अर्कैः) सूर्य प्रकाश से पके अन्नों और तेजस्वी पुरुषों सहित (भासा) अपने तेज से (रोदसी) शास्य, शासक दोनों को (आ ततन्थ वि ततन्थ) व्याप ले। और (औशिजः न) कान्तिमान् सूर्य तुल्य कामनावान् प्रजा-हितकारी होकर (पत्मन् दीयन्) सन्मार्ग से चलता हुआ (चित्रः) अद्भुत, (अक्तः) तेजस्वी होकर (शोचिषा) विद्या-प्रकाश से (तमांसि) अज्ञान आदि अन्धकारों को (परि नयत्) दूर करे।

त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥७॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे प्रभो! (अर्कशोकैः) अर्चना-योग्य, प्रकाशों से (मन्द्रतमम्) अति आनन्दजनक, प्रशंसनीय, (त्वां हि) तुझको ही हम (ववृमहे) वरते हैं। तू (नः) हमारे वचनों का (महि श्रोषि) खूब श्रवण कर। (इन्द्रं न) विद्युत्-तुल्य (शवसा) बल-सम्पन्न (देवता) तेजस्वी, वा दानशील, (शवसा वायुम्) बल से वायुवत् शत्रु को उखाड़ने वाले तुझको (नृतमाः) श्रेष्ठ पुरुष (राधस) आराधना द्वारा (पृणन्ति) प्रसन्न करते हैं।

नू नो अग्नेऽवृकेभिः स्वस्ति वेषि रायः पथिभिः पर्ष्यंहः।
ता सूरिभ्यो गृणते रासि सुम्नं मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥८॥६॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! राजन्! प्रभो! तू (नु) शीघ्र (नः) हमें (अवृकेभिः पथिभिः) चोरों से रहित मार्गों से (रायः) धनैश्वर्यों तक (स्वस्ति) कुशलतापूर्वक (वेषि) पहुँचा और (अंहः पर्षि) पाप से पार कर। तू (सूरिभ्यः) विद्वान् पुरुषों और (गृणते) स्तुति करने वाले को (ता सुम्नं) नाना सुख (रासि) देता है। उन्हें प्राप्त करके हम (सुवीराः) वीर पुत्रों से सम्पन्न होकर (शतहिमाः) सौ वर्षों तक (मदेम) प्रसन्न हों। इति षष्ठो वर्गः॥

[५]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४ त्रिष्टुप् ।
२, ५, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ भुरिक्पंक्तिः सप्तर्चं सूक्तम् ॥

हुवे वः सूनुं सहसो युवानमद्रोघवाचं मतिभिर्यविष्ठम् ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अध्रुक् ॥१॥

भा०—हे प्रजाजनो ! (यः) जो (प्रचेताः) उत्तम ज्ञान वाला, (पुरु-वारः) बहुत से प्रजाजनों से वरण-योग्य, (अध्रुक्) द्रोह न करने हारा होकर (विश्व-वाराणि) समस्त लोकों से स्वीकार-योग्य (द्रविणानि) धनों और ज्ञानों को (इन्वति) देता है ऐसे (अद्रोघवाचम्) द्रोह-रहित, प्रेम-युक्त वाणी के वक्ता (मतिभिः यविष्ठम्) प्रज्ञाओं से युक्त बलवान् पुरुष को (वः) आप के लिये, वा आप में से ही (सहसः सूनुम्) बल के सञ्चालक (हुवे) होने की प्रार्थना करता हूँ ।

त्वे वसूनि पुर्वणीक होतर्दोषा वस्तोरेरिरे यज्ञियासः ।
क्षामेव विश्वा भुवनानि यस्मिन्त्सं सौभगानि दधिरे पावके ॥२॥

भा०—(क्षामा इव) जैसे भूमि राजा के अधीन (विश्वा भुवनानि सौभगानि धत्ते) समस्त लोकों और ऐश्वर्यों को धारण करती है वैसे ही (यस्मिन्) जिस के अधीन रह कर (यज्ञियासः) परस्पर सत्संग से रहने वाले प्रजाजन (विश्वा भुवनानि) समस्त प्राणियों और (सौभगानि) ऐश्वर्यों को (दधिरे) धारण करते हैं, हे (होतः) दाता राजन् ! हे (पुर्वणीक) बहुत सैन्यों के स्वामिन् ! वे लोग (दोषा वस्तोः) दिन-रात (वसूनि) ऐश्वर्यों को (त्वे) तुझे ही (एरिरे) दे देते हैं ।

त्वं विक्षु प्रदिवः साद आसु क्रत्वा रथीरभवो वार्याणाम् ।
अत इनोषि विधते चिकित्वो व्यानुषग्जातवेदो वसूनि ॥ ३ ॥

भा०—हे (जातवेदः) ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! (त्वं) तू (आसु विक्षु) इन प्रजाओं में (क्रत्वा) अपने ज्ञान और कर्म से (प्रदिवः) उत्तम

कामनाओं को (सीद) प्राप्त कर, और (वार्याणाम्) वरण-योग्य धनों का (रथीः) प्राप्त करने वाला (वार्याणाम्) पदाधिकारों के निमित्त चुनने योग्य नायकों के बीच, तू ही (रथीः अभवः) महारथी के तुल्य सेनापति हो। हे (चिकित्वः) विद्वन्! तू! (विधते) सेवक भृत्यजनों को (वसूनि) ऐश्वर्य (आनुषक्) निरन्तर (वि इनोषि) विविध रूपों से दिया कर। (अतः) इसी से तू राजा बन।

यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुष्यात्।
तमजरेभिर्वृषभिस्तव स्वैस्तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान्॥ ४॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! (यः) जो (सनुत्यः) निश्चित छुप कर (नः अभिदासत्) हमारा नाश करे और (अन्तरः) भीतर आकर (वनुष्यात्) मारे, (तम्) उसको (अजरेभिः) बलवान् (तव स्वैः) तू अपने पुरुषों और (अजरेभिः) वृद्धावस्था-रहित (वृषभिः) बली पुरुषों द्वारा (तपसा) सन्तापक तप से (तप) तपा। हे (मित्रमहः) मित्रों से पूज्य! तू (तपसा) तपः सामर्थ्य से स्वयं भी (तपस्वान्) तपस्वी होकर (तप) तप कर।

यस्ते यज्ञेन समिधाय उक्थैरर्केभिः सूनो सहसो ददाशत्।
स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा वि भाति॥ ५॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बलोत्पादक स्वामिन्! (यः) जो पुरुष (यज्ञेन) यज्ञ आदि से और (उक्थैः अर्केभिः) वेदमन्त्रों और स्तुत्य पदों से (सम्-इधाय) अच्छी प्रकार प्रदीप्त हुए (ते) तेरी वृद्धि हेतु (ददाशत्) अग्नि में आहुति-तुल्य अपना अंश, कर आदि देता है, हे (अमृत) अमरणधर्मा राजन्! (सः) वह (प्रचेताः) ज्ञानवान् पुरुष (राया) धन, (द्युम्नेन) यश (शवसा) बल और ज्ञान से (वि-भाति) विशेष चमकता है।

स तत्कृधीषितस्तूयमग्ने स्पृधो बाधस्व सहसा सहस्वान्।
यच्छस्यसे द्युभिरक्तो वचोभिस्तज्जुषस्व जरितुर्घोषि मन्म॥ ६॥

भा०—हे (अग्ने) नायक ! तू (वतूयम्) शीघ्र (सहसा) शत्रु-जय-कारी सामर्थ्य से (सहस्वान्) बली होकर (स्पृधः) संग्राम की स्पर्धा-कारिणी शत्रु-सेनाओं को बलपूर्वक (बाधस्व) पीड़ित कर और (इषितः) सेना-सम्पन्न होकर (सः) वह तू (तत्) वह कार्य (कृधि) कर (यत्) जिससे तू (द्युभिः अक्तः) किरणों से दीप्त सूर्य के तुल्य (द्युभिः अक्तः) तेजस्वी पुरुषों से स्नेहवान् होकर (वचोभिः शस्यसे) वचनों द्वारा प्रशंसा पा सके । तू (जरितुः) उपदेष्टा पुरुष के (मन्म) मनन-योग्य (बोधि) वेद-वाणी के अनुकूल उपदेश को (जुषस्व) सेवन किया कर ।

अ॒श्याम॒ तं काम॑मग्ने॒ तवो॒ती अ॒श्याम॑ र॒यिं र॑यिवः सु॒वीर॑म् ।
अ॒श्याम॒ वाज॑म॒भि वा॒जय॑न्तो॒ऽश्याम॑ द्यु॒म्नम॑जराज॒रं ते ॥७॥७॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हम लोग (तव ऊती) तेरी रक्षा में रहते हुए (तं कामम्) उस २ काम्य पदार्थ का (अश्याम) भोग करें । हे (रयिवः) ऐश्वर्य-स्वामिन् ! हम (सु-वीरम्) उत्तम वीर पुत्रों से युक्त (रयिम् अश्याम) ऐश्वर्य को भोगें । हम (वाजयन्तः) बल और धन को चाहते हुए (ते वाजम्) तेरे अन्न और बल का (अश्याम) भोग करें, (ते अजराजरं) तेरे अविनाशी, (द्युम्नम्) ऐश्वर्य को (अश्याम) भोगें ।

इति सप्तमो वर्गः ॥

[६]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ४, ५ निचृत् त्रिष्टुप् । ६, ७ त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र नव्य॑सा॒ सह॑सः सू॒नुमच्छा॑ य॒ज्ञेन॑ गा॒तुमव॑ इ॒च्छमा॑नः ।
वृ॒श्चद्व॑नं कृ॒ष्णया॑मं॒ रुश॑न्तं वी॒ती होता॑रं दि॒व्यं जि॑गाति ॥ १ ॥

भा०—(नव्यसा) नवीन (यज्ञेन) आपसी सम्बन्ध द्वारा (गातुम्) सन्मार्ग, उत्तम भूमि, (अवः) रक्षा और ज्ञान (इच्छन्) चाहता हुआ जन (सहसः सूनुम्) बल-सम्पादक (वृश्चद्-वनम्) वनों को नष्ट करने

में समर्थ अग्नि के तुल्य अज्ञान वा शत्रु-नाशक, (कृष्ण-यामम्) आक-र्षण करने वाले, नियम-व्यवस्था से सम्पन्न (रुशन्तं) तेजस्वी, (होतारं) ऐश्वर्य दाता, (दिव्यं) कामना योग्य पुरुष के पास (वीती) इच्छापूर्वक (अच्छ जिगाति) जावे ।

स श्वितानस्तन्यतू रोचनस्था अजरेभिर्नानदद्भिर्यविष्ठः ।
यः पावकः पुरुतमः पुरूणि पृथून्यग्निरनुयाति भर्वन् ॥ २ ॥

भा०—(पावकः अग्निः पृथूनि भर्वन् अनुयाति) जैसे अग्नि बड़े २ काष्ठों को जलाता हुआ उनकी ही ओर जाता है वैसे ही (यः) जो (पावकः) अग्नि तुल्य तेजस्वी, सबका पवित्रकर्ता, (पुरुतमः) सबों में श्रेष्ठ, सबको तृप्त करने हारा, (भर्वन्) शत्रुओं को दग्ध और प्रजा का पालन करता हुआ (अग्निः) अग्रणी पुरुष (पृथूनि पुरूणि) बहुत से सैन्यों के (अनुयाति) साथ चलता है । (सः) वह (श्वितानः) विद्युत् समान श्वेत वर्ण, (तन्यतुः) गर्जनाशील, (रोचनस्थाः) प्रिय पद पर स्थित, (अजरेभिः) जरारहित, (नानदद्भिः) गर्जनाशील नायकों के साथ (यविष्ठः) बलवान् होकर (पृथूनि पुरूणि भर्वन् अनुयाति) बड़े २ शत्रु-सैन्यों को जलाता हुआ अनुगमन करता है ।

वि ते विष्वग्वातजूतासो अग्ने भामासः शुचे शुचयश्चरन्ति ।
तुविम्रक्षासो दिव्या नवग्वा वना वनन्ति धृषता रुजन्तः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् विद्वन् ! हे शत्रुओं के दाहक नायक ! (वात-जूतासः शुचयः भामासः) वायु-प्रेरित, अग्नि के कान्तियुक्त ज्वालासमूह जैसे सब ओर निकलते हैं वैसे ही (ते) तेरे (शुचयः) ईमानदार, (भामासः) क्रोध-युक्त, (वात-जूतासः) वायुवत् वेग से प्रेरित वीर लोग (शुचे) शुद्ध व्यवहार प्राप्त करने के लिये (विश्वक्) सब ओर (विचरन्ति) विचरते हैं । वे (तुवि-म्रक्षासः) बहुतों से मिलते हुए, (दिव्याः) तेजस्वी, (नवग्वाः) नयी से नयी चाल चलते हुए,

(घृषता) शत्रु-जयकारी बल से (वना रुजन्तः) शत्रु-सैन्य के दलों को, फरसे से वनों के तुल्य काटते हुए (वना वर्नन्ति) ऐश्वर्य भोगते हैं।

ये ते॑ शु॒क्रासः॒ शुच॑यः शुचिष्म॒ः क्षां वप॑न्ति॒ विषि॑तासो॒ अश्वाः॑ ।
अध॑ भ्र॒मस्त॑ उर्वि॒या वि भा॑ति या॒तय॑मानो॒ अधि॒ सानु॒ पृश्नेः॑ ॥४॥

भा०—हे नायक! हे (शुचिष्मः) शुद्ध तेजस्विन्! (ये) जो (ते) तेरे (विषितासः) विशेष प्रबन्ध में बंधे (अश्वाः) अश्वों के तुल्य आशु-गामी अश्व सैन्य और भूमि-भोक्ता जमीदार लोग (क्षां वपन्ति) भूमि का छेदन-भेदन करते, उस पर खेती बोते वा काटते हैं वे (शुक्रासः) शीघ्र कार्यकारी (शुचयः) सदाचारी, ईमानदार हों। (अध) और (ते उर्विया भ्रमः) तेरा विशाल भ्रमणकारी सामर्थ्य (पृश्नेः सानु अधि) भूमि के उच्च, ऐश्वर्ययुक्त भाग, पर्वत-शिखर पर मेघवत् विराजकर (यातयमानः) दुष्टों को दण्ड देता हुआ (विभाति) चमके।

अध॑ जि॒ह्वा पा॑पतीति॒ प्र वृष्णो॑ गोषु॒युधो॒ नाशनिः॑ सृजा॒ना ।
शूर॑स्येव॒ प्रसि॑तिः क्षा॒तिर॒ग्नेर्दु॒र्वर्तु॒र्भीमो॒ द॑यते॒ वना॑नि ॥ ५ ॥

भा०—(सृजाना अशनिः) उत्पन्न होती विद्युत् की जिह्वा (वृष्णः) बरसते और (गो-सु-युधः जिह्वा) भूमि पर प्रहार करते मेघ से निकलती जीभ के तुल्य (पापतीति) वेग से जाती है वैसे ही (गो-सु-युधः) भूमि के लिये लड़ने हारे (वृष्णः) बलवान् पुरुष की (जिह्वा) वाणी (पापतीति) बराबर आगे जाती है। वह (शूरस्य) वीर पुरुष की (प्रसितिः) प्रबन्ध शक्ति और (क्षातिः) शत्रु-नाशक शक्ति, दोनों ही (दुर्वर्तुः) वारण नहीं की जा सकतीं। (भीमः) इस प्रकार वह भयानक राजा (वनानि दयते) ऐश्वर्यों, राष्ट्रों या सैन्य-दलों को पालता और शत्रु-समूहों को नष्ट करता है।

आ भा॒नुना॒ पार्थि॑वानि॒ ज्रयां॑सि म॒हस्तो॒दस्य॑ धृष॒ता त॑तन्थ ।
स बा॑ध॒स्वाप॑ भ॒या सहो॑भिः॒ स्पृधो॑ वनु॒ष्यन्व॒नुषो॒ नि जू॑र्व ॥६॥

भा०—सूर्य जैसे (भानुना) तेज से (पार्थिवानि ज्रयांसि आ ततन्थ) पृथिवी के पदार्थों को सब ओर प्रकाशित करता है वैसे ही उत्तम विद्वान् भी (महः) बड़े (तोकाय) शत्रु को व्यापने वाले सैन्य के (धृषता) पराजयकारी (भानुना) तेज से (पार्थिवान्) पृथिवी के (ज्रयांसि) प्राप्तव्य राष्ट्रों, ऐश्वर्यों को (आततन्थ) सब ओर फैलावे। (सः) वह तू (सहोभिः) अपने सैन्यों से (भया) भयप्रद कारणों को (अप बाधस्व) दूर कर, स्वयं (वनुष्यन्) राष्ट्र का भोग करता हुआ (वनुषः) हिंसक (स्पृधः) संग्रामकारी शत्रुओं को (नि जूर्व) अच्छी प्रकार नष्ट कर।

स चित्र चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रंक्षत्र चित्रतमं वयोधाम्।
चन्द्रं र॒यिं पुरुवीरं बृहन्तं चन्द्रं चन्द्राभिर्गृणते युवस्व ॥७॥८॥

भा०—हे (चित्र) आश्चर्य-कर्त्ता विद्वन्, राजन्! (सः) वह तू, हे (चित्र-क्षत्र) आश्चर्यकारी बल और राज्य के स्वामिन्! तू (अस्मे) हमें (चित्रम्) अद्भुत (चित्र-तमम्) सर्वाधिक संग्रह-योग्य (वयो-धाम्) जीवन के पालक, बलप्रद, (चन्द्रं) आह्लादकारी (पुरु-वीरं) बहुत से वीर पुत्रों से युक्त (रयिं) ऐश्वर्य और (बृहन्तं) बड़े (चन्द्रं) आह्लादकारी सुवर्णादि को (चन्द्राभिः) आह्लादकारिणी वाणियों सहित (गृणते युवस्व) उपदेष्टा पुरुष को दे। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[७]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। २ निचृत्त्रिष्टुप्। ७ स्वराट् त्रिष्टुप्। निचृत्पंक्तिः। ४ स्वराट् पंक्तिः। ५ पंक्तिः। ६ जगती ॥

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ १ ॥

भा०—(देवाः) विद्वान् लोग (दिवः) आकाश के (मूर्धानं) शिर-

वत् मुख्य केन्द्र, सूर्य तुल्य सर्वोपरि विराजमान, (पृथिव्या अरतिम्) पृथिवी के स्वामी, (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों के हितकारी, (ऋते जातम्) ऐश्वर्यादि में प्रसिद्ध पुरुष को (अग्निम्) नेता रूप से (आ जनयन्त) बनावें और वे (कविं) क्रान्तदर्शी विद्वान्, (सम्राजम्) तेज से चमकने वाले, (जनानां) मनुष्यों के बीच (अतिथिम्) आदर-योग्य पुरुष को (आसन्) मुखवत् मुख्य पद पर प्रमुख (पात्रम्) पालक (आ जनयन्त) बनायें।

नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त।
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः॥ २॥

भा०—(देवाः) विद्वान् लोग (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों के हितकारी (यज्ञानां नाभिं) सब प्रकार के मेलजोल के नाभिवत् मुख्य केन्द्र, (रयीणां सदनम्) ऐश्वर्यों के आश्रय, (महाम्) बड़े लोगों से (आहावम्) स्पर्धा वाले पुरुष को प्राप्त कर उसके समक्ष (अभि सं नवन्त) आदर से झुकते हैं। (अध्वराणां रथ्यम्) यज्ञों वा संग्रामों में महारथी और (यज्ञस्य) यज्ञ संगति आदि के (केतुम्) ज्ञापक, ध्वजा-तुल्य सर्वसाक्षी पुरुष को (देवाः) विद्वान् लोग (आ जनयन्त) प्रसिद्ध करें।

त्वद्विप्रो जायते वाज्यग्ने त्वद्वीरासो अभिमातिषाहः।
वैश्वानर त्वमस्मासु धेहि वसूनि राजन्स्पृहयाय्याणि॥ ३॥

भा०—हे (अग्ने) नायक! हे विद्वन्! हे (राजन्) राजन्! (त्वत्) तुझ से (विप्रः) विद्वान् पुरुष (वाजी) अन्नैश्वर्यवान् (जायते) होता है। (त्वत्) तुझ से अधिकार प्राप्त करके (वीरासः) वीर पुरुष (अभिमातिषाहः) अभिमानी शत्रुओं को पराजित करने हारे उत्पन्न होते हैं। हे (वैश्वानर) समस्त नायकों के नायक! (त्वं) तू ही (अस्मासु) हममें (स्पृहयाय्याणि) चाहने योग्य (वसूनि) ऐश्वर्य (धेहि) धारण करा।

त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते।
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन्वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः॥ ४॥

भा०—(देवाः) दानशील प्रियजन जैसे (जायमानं शिशुं न) उत्पन्न हुए नवबालक को (अभि सं नवन्ते) लक्ष्यकर आशीर्वादादि के लिए उसके प्रति झुकते हैं वैसे ही, हे (वैश्वानर) समस्त मनुष्यों के नायक! हे (अमृत) नाश को प्राप्त न होने वाले! (यत्) जब तू (पित्रोः) माता-पिताओं के अधीन उत्तम गुणों से (अदोदेः) प्रकाशित हो (देवाः) विद्वान् लोग (जायमानं) उदय होते हुए, (शिशुं त्वां) प्रशंसनीय तुझको (अभि सं नवन्ते) आदर पूर्वक झुकते हैं। वे (तव क्रतुभिः) तेरे कर्मों और ज्ञानों से (अमृतत्वम् आयन्) अविनाशी सत्ता को प्राप्त हों।

वैश्वानर तव तानि व्रतानि महान्यग्ने नकिरा दधर्ष।
यज्जायमानः पित्रोरुपस्थेऽविन्दः केतुं वयुनेष्वह्नाम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (वैश्वानर) सब मनुष्यों में गुणों से नायक होने योग्य! (अग्ने) विद्वन्! (यत्) जो तू (पित्रोः) माता-पिता के पास (जायमानः) जन्म लेता हुआ, अरणियों में अग्नि तुल्य (अह्नाम्) सब दिनों करने योग्य (वयुनेषु) कर्मों और ज्ञानों में (केतुम् अविन्दः) उत्तम बुद्धि को पाता है (तव) तेरे (महानि व्रतानि) बड़े व्रताचरणों को (नकिः आदधर्ष) कोई भी नाश न कर सके।

वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा सानूनि दिवो अमृतस्य केतुना। तस्येदु विश्वा भुवनाधि मूर्धनि वया इव रुरुहुः सप्त विस्रुहः ॥ ६ ॥

भा०—(वैश्वानरस्य दिवः केतुना या सानूनि विमितानि) सब मनुष्यों के हितकारी सूर्य-प्रकाश से जैसे उच्च २ स्थल विशेष प्रकाशित होते हैं वैसे ही (वैश्वानरस्य) समस्त जीवों के हितकारी प्रभु के (दिवः) तेजःस्वरूप, (अमृतस्य) मोक्ष-रूप अमृत के (चक्षसा) सर्वप्रकाशक (केतुना) ज्ञान से (सानूनि) ऐश्वर्य-युक्त पदार्थ (वि-मितानि) विशेष

रूप से बने हैं। (तस्य इत् मूर्धनि) उसके ही आश्रय (विश्वा भुवना) समस्त लोक (वयाः इव) उसकी शाखाओं के समान (अधि रुरुहुः) स्थित हैं और उसी के शिर पर उसी के आश्रय (सप्त विस्रुहः) सात प्रवाहों के तुल्य सात विकृतियां (अधि रुरुहुः) स्थित हैं। प्रकृति की सात विकृतियां–महत्तत्त्व, अहंकार तथा पांच तन्मात्रायें।

वि यो रजांस्यमिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो वि दिवो रोचना कविः।
परि यो विश्वा भुवनानि पप्रथेऽदब्धो गोपा अमृतस्य रक्षिता ॥७।९

भा०—(यः) जो (वैश्वानरः) समस्त प्राणियों में व्यापक, प्रभु (सु क्रतुः) उत्तम ज्ञानवान् होकर (रजांसि) लोकों को (वि अमिमीत) विविध प्रकार से बनाता है और जो (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (दिवः रोचना वि अमिमीत) आकाश या प्रकाश-युक्त सूर्यादि को बनाता है (यः) जो (विश्वा भुवनानि परि पप्रथे) समस्त लोकों को सब ओर फैलाये है, वह (अदब्धः) नाश न होने वाला (गोपाः) समस्त जन्तुओं का पालक और (अमृतस्य) जीव प्रकृति आदि का (रक्षिता) रक्षक है। इति नवमो वर्गः॥

[८]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ वैश्वानरो देवता॥ छन्दः—१, ४ जगती। ६ विराड् जगती। २, ३, ५ भुरिक् त्रिष्टुप्। ७ त्रिष्टुप्। सप्तर्चं सूक्तम्॥

पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः प्र नु वोचं विदथा जातवेदसः।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसी शुचिः सोम इव पवते चारुरग्नये ॥१॥

भा०—(पृक्षस्य) स्नेहवान्, विद्यादान आदि से सम्पर्क कर्ता, (वृष्णः) मेघ के तुल्य ज्ञानोपदेश दाता, बलवान्, (अरुषस्य) रोष रहित (जात-वेदसः) उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता, धनों के स्वामी पुरुष के (विदथा) ज्ञानों, प्राप्ति-साधनों, (सहः) सहनशीलता और बल को (नु) अवश्य हम (प्र वोचम्) स्तुति करें। (वैश्वानराय अग्नये) सबके

नायक अग्रणी पुरुष की (नव्यसी मतिः) स्तुत्य बुद्धि (शुचिः) शुद्ध रूप से (चारुः) सुन्दर होकर (सोम इव पवते) ओषधि-रस के तुल्य प्रकट होती है।

स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत।
व्यन्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत् ॥२॥

भा०—(सः) वह (अग्निः) विद्वान्, शिष्य (परमे) सर्वोत्कृष्ट (व्योमनि) विशेष रक्षक, आकाशवत् विशाल, गुरु के अधीन, आकाश में सूर्य-तुल्य (जायमानः) जन्म लेता हुआ (व्रत-पाः) व्रत-पालक होकर (व्रतानि) व्रतों का (अरक्षत) पालन करे। वह (सुक्रतुः) उत्तम प्रज्ञावान्, कर्मकुशल पुरुष (वैश्वानरः) सबका हितैषी होकर (अन्तरिक्षम्) रसवत् भीतर स्थित ज्ञान को (वि अमिमीत) विशेषतः) जाने और (महिना) बड़े सामर्थ्य से (नाकम्) सुख को (अस्पृशत्) प्राप्त करे।

व्यस्तभ्नाद्रोदसी मित्रो अद्भुतोऽन्तर्वावदकृणोज्ज्योतिषा तमः।
वि चर्मणीव धिषणे अवर्तयद्वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्ण्यम् ॥३॥

भा०—जैसे सूर्य (रोदसी वि-अस्तभ्नात्) आकाश और पृथिवी को थामता है, (ज्योतिषा तमः अन्तर्वावत् अकृणोत्) प्रकाश से अन्धकार को लुप्त करता है, (चर्मणी इव धिषणे वि अवर्त्तयत्) दो चमड़ों के तुल्य सबके धारक अन्तरिक्ष, पृथिवी दोनों को विशेष व्यापारवान् करता है (विश्वम् वृष्ण्यम् अधत्त) वर्षण-योग्य जल को धारण करता है वैसे ही (वैश्वानरः) शिष्यगण को सन्मार्ग पर ले जाने हारा विद्वान् (मित्रः) सबका स्नेही होकर (रोदसी) सूर्य-पृथिवीवत् नर-नारी दोनों को (वि अस्तभ्नात्) विशेष नियमों में स्थिर करे। वह (अद्भुतः) आश्चर्यकारक, (ज्योतिषा) ज्ञान-ज्योति से (तमः) अज्ञान-रूप अन्धकार को (अन्तः-वावत्) लुप्त (अकृणोत्) करे। वह (धिषणे) व्रतों के

धारक स्त्री-पुरुषों को (चर्मणी इव) सूत्रों के दो चर्मों के समान मिला कर (विभवर्त्तयत्) विशेष कार्यों में प्रवृत्त करे। वह (वैश्वानरः) सबका नायक होकर (विश्वम् वृष्ण्यम्) सब बलों को (अधत्त) धारण करे।

अ॒पामु॒पस्थे॑ महि॒षा अ॑गृभ्णत॒ विशो॒ राजा॑न॒मुप॑ तस्थुर्ऋ॒ग्मिय॑म्।
आ दू॒तो अ॒ग्निम॑भरद्वि॒वस्व॑तो वैश्वान॒रं मा॑त॒रिश्वा॑ परा॒वतः॑ ॥४॥

भा०—जैसे विद्वान् लोग (अपाम् उपस्थे अग्निम् अगृभ्णत) जलों और मेघों में से विद्युत् और अग्नि को ग्रहण करते हैं और (मातरिश्वा दूतः परावतः विवस्वतः अग्निम् वैश्वानरम् अभरत्) ज्ञान वा अग्नि-विद्या-वेत्ता पुरुष दूर-स्थित सूर्य से भी वैश्वानर अग्नि को यन्त्र द्वारा संग्रह करता है वैसे ही (अपाम् उपस्थे) आप्त जनों में (विशः) वैश्य-जन वा प्रजाएं (महिषाः) बड़ा ऐश्वर्य देती हुई (ऋग्मियम्) स्तुति-योग्य (राजानम्) राजा को (उप तस्थुः) प्राप्त हों, (मातरिश्वा) भूमि पर वेग से जाने में समर्थ (दूतः) सन्तापक विद्वान् पुरुष (परावतः) दूर देश के भी (विवस्वतः) विविध ऐश्वर्यों और प्रजाओं से समृद्ध देश से (अग्निम्) तेजस्वी (वैश्वानरं) सबके नायक पुरुष को (आ अभरत्) प्राप्त करे।

यु॒गेयु॑गे विद॒थ्यं॑ गृ॒णद्भ्यो॑ऽग्ने र॒यिं य॒शसं॑ धेहि॒ नव्य॑सीम्।
प॒व्येव॑ राजन्न॒घशं॑समजर नी॒चा नि वृ॑श्च व॒निनं॒ न तेज॑सा ॥५॥

भा०—हे (अग्ने) नायक! (युगे-युगे) प्रति-वर्ष, (गृणद्भ्यः) उपदेष्टा विद्वानों को (विदथ्यं) यज्ञ आदि से उत्पन्न (रयिं) ऐश्वर्य, (यशसं) अन्न, यश एवं (नव्यसीं) अति स्तुत्य सत्कार को (धेहि) दिया और किया कर। हे (राजन्) राजन्! हे (अजर) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने हारे! जैसे (पव्या इव वनिनं) कुठार से वन-वृक्षों को काटा जाता है और जैसे (तेजसा वनिनं न) तेज से जल-युक्त मेघ को छिन्न-

भिन्न किया जाता है वैसे ही (पव्या) चक्र-धारा से और (तेजसा) तीक्ष्ण तेज से (अघ-शंसं) पाप की बात कहने वा हत्यादि करने वाले चोर डाकू, (वनिनं) वन में छुपे हिंसक पुरुष को (नीचा निवृश्च) नीचे गिराकर काट दे।

अस्माकमग्ने मघवत्सु धारयानामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम्।
वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः॥६॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (अस्माकम्) हम में जो (मघवत्सु) ऐश्वर्य-सम्पन्न पुरुष हैं उनमें (अनामि) कभी न झुकने वाले (क्षत्रम्) धनैश्वर्य और (अजरम्) जरावस्था-रहित, शत्रु को उखाड़ फेंकने वाला (सुवीर्यम्) उत्तम बल-वीर्य (धारय) धारण करा। हे (अग्ने) तेजस्विन्! (वैश्वानर) सबके नायक! (वयं) हम (तव ऊतिभिः) अपनी रक्षक सेनाओं से (शतिनं सहस्रिणं वाजम्) सैकड़ों और सहस्रों से युक्त ऐश्वर्य को (जयेम) विजय करें।

अदब्धेभिस्तव गोपाभिरिष्टेऽस्माकं पाहि त्रिषधस्थ सूरीन्।
रक्षा च नो ददुषां शर्धो अग्ने वैश्वानर प्र च तारीः स्तवानः ७।१०

भा०—हे (त्रि-सधस्थ) तीनों सभा-स्थानों के स्वामिन्! तू (इष्टे) इष्ट कार्य में लगे (अस्माकम्) हमारे (सूरीन्) विद्वानों की (अदब्धेभिः गोपाभिः) न नाश होने वाले रक्षकों द्वारा (पाहि) रक्षा कर। (नः) हमारे (ददुषां) करादिदाता प्रजाजनों के (शर्धः) बल की (रक्ष) रक्षा कर। हे (अग्ने) नायक! हे (वैश्वानर) सब मनुष्यों के नायक! तू (स्तवानः) प्रशंसित होकर (प्र तारीः च) सबको दुःखों से पार कर। इति दशमो वर्गः॥

[९]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ वैश्वानरो देवता॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्। ५ निचृत्त्रिष्टुप्। ६ त्रिष्टुप्। २ भुरिक् पंक्तिः। ३, ४ पंक्तिः। ७ भुरिग्जगती॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः ।
वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि ॥१॥

भा०—(कृष्णं च अहः) काला दिन अर्थात् रात्रि और (अर्जुनं च अहः) श्वेत, प्रकाशित दिन, दोनों (वेद्याभिः) स्वयं जानने योग्य घटनाओं सहित (रजसी) सबका मनोरञ्जन करते हुए (वि वर्तेते) बार २ आते हैं और (वैश्वानरः अग्निः) सबका सञ्चालक सूर्य (राजानम्) राजा के तुल्य दीप्त होकर (ज्योतिषा तमांसि अव अतिरत्) तेज से अन्धकारों को दूर करता है वैसे ही (रजसी) एक दूसरे के मनों को अनुरञ्जन करने वाले राजा, प्रजा वा स्त्री-पुरुष (वेद्याभिः) जानने योग्य कर्मों या यज्ञवेदि पर प्रतिज्ञा रूप से करने योग्य क्रियाओं द्वारा, दिन-रात्रि के तुल्य व्यवहार करें और (वैश्वानरः) सबका नायक राष्ट्र में राजा एवं आत्मा में परमेश्वर तेज से समस्त अज्ञानादि को दूर करे ।

नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः ।
कस्य स्वित्पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा ॥ २ ॥

भा०—(अहं) मैं (न तन्तुं वि जानामि) न तन्तु, वा तनना ही जानता हूँ और (न ओतुम्) न बुनना अथवा बरनी ही जानता हूँ और (नः) न उसको जानता हूँ (यं) जिसको (समरे) समर में गमन करने योग्य परम लक्ष्य के निमित्त (अजमानाः) जाते हुए (वयन्ति) बुनते हैं। इस विषय में (कस्य स्वित् पुत्रः) किसी का विशेष ज्ञानी पुत्र (अवरेण पित्रा) उरे के, अल्प ज्ञानी पिता के द्वारा (परः) और ज्ञानवान् होकर इस रहस्य के विषय में (वक्त्वानि वदाति) योग्य वचनों का उपदेश कर सकता है। कोई ही विलक्षण पुत्र होता है जो पिता वा गुरु से शिक्षा पाकर उनसे भी अधिक ज्ञानवान् होकर ब्रह्मत्व आदि यथार्थ रूप से बतला सके, नहीं तो हम जीवों में इतना अज्ञान है कि

हम अरनी-बरनी और वस्त्रादि कुछ भी नहीं जानने वाले अनाड़ी के समान साधन, उपासना और साध्य कुछ नहीं जानते और पैदा हो जाते हैं। याज्ञिकों के मत से—यज्ञ रूप वस्त्र है, गायत्री आदि छन्द 'तन्तु' हैं, अध्वर्यु के कर्म 'ओतु' हैं, देवयजन स्थान 'समर' है, उनमें उन सबका उपदेश कोई ही होता है। ब्रह्मवादियों के मत से—यह जगत् प्रपञ्च दुर्विज्ञेय है, इसमें आकाशादि सूक्ष्म पञ्चभूत 'तन्तु' हैं और स्थूल पञ्चभूत 'ओतु' है, संसारी जीव इस संसार 'समर' में निरन्तर जाते हुए क्या करते हैं यह पता नहीं लगता। इस रहस्य को कोई ज्ञानी ही बता सकता है।

स इत्तन्तुं स वि जा॑नात्योतुं स वक्त्वा॑न्यृतुथा व॑दाति।
य ईं॒ चिके॑तद॒मृत॑स्य गो॒पा अ॒वश्च॑रन्प॒रो अ॒न्येन॒ पश्य॑न्॥ ३॥

भा०—(सः इत्) वह ही (तन्तुं) 'तन्तु' को जानता है और (सः ओतुं विजानाति) वही 'ओतु' अर्थात् बरनी को भी जानता है, (सः) वह ही (ऋतुथा) समय २ पर और प्रति ज्ञानयोग्य काल में (वक्त्वानि) उपदेश-योग्य वचनों का (वदाति) उपदेश करता है। (यः गोपाः) जो रक्षक, (परः) सबसे उत्कृष्ट होकर (अन्येन) दूसरे के द्वारा (अमृतस्य पश्यन्) आत्मा का साक्षात् करता, उसको देखता हुआ भी (अवः चरन्) इस लोक में व्यापता हुआ (ईं चिकेतत्) वह इस रहस्य को जान लेता है।

अ॒यं होता॑ प्रथ॒मः पश्य॑ते॒ममि॒दं ज्योति॑र॒मृतं॒ मर्त्ये॑षु।
अ॒यं स ज॑ज्ञे ध्रु॒व आ निष॒त्तोऽम॑र्त्यस्त॒न्वा॒३ वर्ध॑मानः॥ ४॥

भा०—जीव का वर्णन—हे विद्वान् पुरुषो! (अयं हि) यह ही (प्रथमः होता) सबसे उत्तम है (इमं पश्यत) इसका साक्षात् करो। (मर्त्येषु) मरने वाले देहों में (इदं अमृतं ज्योतिः) यही अमर 'ज्योति' है। (अयं) यह (सः) वह (अमर्त्यः) कभी न मरने वाला, (तन्वा

वर्धमानः) शरीर से बढ़ता हुआ (ध्रुवः) सदा स्थिर, नित्य (आ नि-सत्तः) शरीर या गर्भ में स्थित होकर (जज्ञे) जन्म लेता है।

ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः।
विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु ॥५॥

भा०—इस देह में (दृशये) दर्शन करने के लिये (ध्रुवं) स्थिर (ज्योतिः) सुख-दुःखादि का प्रकाशक स्वयं-प्रकाश आत्मा (नि-हितं) स्थित है जो (कम्) सुखमय कर्त्तारूप है और (पतयत्सु) गति करने वाले, अपने स्थान पर अपनी वृत्तियों के स्वामी के समान अध्यक्षों के तुल्य विषयों की ओर दौड़ते हुए इन्द्रियों के बीच या उनके ऊपर, घोड़ों के सारथि के समान (अन्तः) देह के ही भीतर (जविष्ठं) अति वेग से युक्त (मनः) ज्ञान-साधन 'मन' स्थित है। (विश्वेदेवाः) विषयों की कामना वाले सब इन्द्रिय, (समनसः) मन-सहित मिलकर (सकेताः) ज्ञान-युक्त होकर (एकम् क्रतुम् अभि) एक ही कर्त्ता आत्मा की ओर (वि यन्ति) विशेष रूप से जाते हैं।

वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत्।
वि मे मनश्चरति दूर आधीः किं स्विद्वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये ॥६॥

भा०—(मे कर्णा वि पतयतः) मेरे कान विविध दिशाओं को जाते हैं और (चक्षुः वि पतयन्ति) आंखें भी विविध प्रकार से जातीं वा स्वामीवत् स्वतन्त्र होकर विविध कार्य करती हैं और (यत्) जो (ज्योतिः) सबका प्रकाशक, स्वयं-प्रकाश-स्वरूप (इदं) यह अनुभववेद्य (हृदये आहितम्) हृदय में रक्खा है, यह इस शरीर में (वि पतयति) विशेष रूप से स्वामी होकर शासन करता है और (मे मनः) मेरा मन भी (दूरे आधीः) दूर देश के पदार्थों का ध्यान करता हुआ (वि चरति) विचरता है, तो फिर इस रहस्य के विषय में मैं (किं स्विद् वक्ष्यामि) वाणी द्वारा क्या कहूँ, (किम् उ नु मनिष्ये) और क्योंकर मनन कर सकूं?

विश्वे॑ दे॒वा अ॑नमस्यन्भिया॒नास्त्वाम॑ग्ने॒ तम॑सि तस्थि॒वांस॑म् ।
वै॒श्वा॒न॒रो॑ऽवतू॒तये॒ नोऽम॑र्त्योऽवतू॒तये॑ नः ॥ ७ ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्, (भियानाः) भय से व्याकुल (विश्वे देवाः) समस्त विषयाभिलाषी इन्द्रियगण (तमसि) अन्धकार में (तस्थिवांसम्) स्थित दीपक तुल्य चमकने वाले (त्वाम्) तुझको (अनमस्यन्) नमस्कार करते हैं, तेरी ओर झुकते हैं। (वैश्वानरः) समस्त प्राणों में स्थित, सब मनुष्यों में विद्यमान वह (अमर्त्यः) अविनाशी आत्मा ही (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (नः) हमें सदा (अवतु) प्राप्त हो ॥ इत्येकादशो वर्गः ॥

[१०]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । ४ आर्षी पंक्तिः । २, ३, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् । ७ प्राजापत्या बृहती ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

पु॒रो वो॑ म॒न्द्रं दि॒व्यं सु॑वृ॒क्तिं प्र॑य॒ति य॒ज्ञे अ॒ग्निम॑ध्व॒रे द॑धिध्वम् ।
पु॒र उ॒क्थेभि॒ः स हि नो॑ वि॒भावा॑ स्वध्व॒रा क॑रति जा॒तवे॑दाः ॥१॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप (यज्ञे प्रयति) प्रयत्न-साध्य दान आदि सत्कर्म करने के समय और (अध्वरे) हिंसादि-रहित प्रजापालन आदि कर्म में (वः) अपने और अपने में से (मन्द्रं) स्तुति-योग्य, (दिव्यं) तेजस्वी, (अग्निम्) ज्ञानी पुरुष को (पुरः) अपने आगे साक्षी रूप से (दधिध्वम्) स्थापित करो। (सः हि) वह निश्चय से (विभावा) विशेष कान्तियुक्त पदार्थों का प्रकाशक, (जात-वेदाः) उत्पन्न पदार्थों का ज्ञाता, ऐश्वर्यों का स्वामी है। वह (उक्थेभिः) उत्तम वचनों से (नः) हमारे (पुरः) समक्ष साक्षी होकर (सु-अध्वरा) उत्तम अहिंसनीय, प्रजापालनादि कार्यों को (करति) करे।

तमु द्युमः पुर्वणीक होतरग्ने अग्निभिर्मनुष इधानः।
स्तोमं यमस्मै ममतेव शूषं घृतं न शुचि मतयः पवन्ते ॥ २ ॥

भा०—हे (द्युमः) तेजस्विन्! हे 'द्यु' अर्थात् पृथिवी और सद्-व्यवहार के स्वामिन्! हे (पुर्वणीक) बहुत-सी सेनाओं के स्वामिन्! हे (होतः) अधीनों को वेतनादि दातः! हे (अग्ने) स्वयंप्रकाश! तू (अग्निभिः) अग्निवत् तेजस्वी, भृत्यों, विद्वानों द्वारा (इधानः) प्रकाशों से अग्नि के तुल्य चमकता हुआ, (तम् उ स्तोमं) उस स्तुति-वचन को सुन, (यम्) जिस (शूषं) सुखकारी वचन को (मतयः) बुद्धिमान् पुरुष इस प्रकार (पवन्ते) स्वच्छ रूप से प्रकट करते हैं जैसे (ममता इव शूषं शुचि घृतं न) माता बलकारी, शुद्ध तेजस्कर दुग्ध, घृतादि को देती है।

पीपाय स श्रवसा मर्त्येषु यो अग्नये ददाश विप्र उक्थैः
चित्राभिस्तमूतिभिश्चित्रशोचिर्व्रजस्य साता गोमतो दधाति ॥३॥

भा०—(यः विप्रः) जो विद्वान् पुरुष (अग्नये) अग्रणी और नायक को (उक्थैः) आदर-योग्य वचनों से अग्नि में आहुति के तुल्य (ददाश) देने योग्य पदार्थ देता है (सः) वह (मर्त्येषु) मनुष्यों में (पीपाय) वृद्धि पाता है। (चित्र-शोचिः) अद्भुत कान्ति वाला पुरुष (तम्) उस विद्वान् को (चित्राभिः ऊतिभिः) अद्भुत रक्षा-साधनों से (पीपाय) बढ़ाता है और (गो-मतः व्रजस्य) गौओं वाले अर्थात् गो-समूह के (साता) सेवनीय ऐश्वर्य के ऊपर (दधाति) उसको पुष्ट करता है।

आ यः पप्रौ जायमान उर्वी दूरेदृशा भासा कृष्णाध्वा।
अध बहु चित्तम ऊर्म्यायास्तिरः शोचिषा ददृशे पावकः ॥ ४ ॥

भा०—अग्नि वा सूर्य (दूरे-दृशा भासा उर्वी आ पप्रौ) दूर से दीखने वाली कान्ति से आकाश-पृथिवी को पूर्ण कर देता है (अध ऊर्म्यायाः बहु चित् तमः शोचिषा तिरः ददृशे) और जैसे वह रात्रि के

बहुत से अन्धकार को कान्ति से दूर करता है वैसे ही (कृष्णअध्वा) संसार-मार्ग पर सुख से जाने हारा (यः) जो पुरुष (जायमानः) उदित होते सूर्य के समान प्रकट होकर अपने (दूरेदृशा भासा) दूरदर्शी ज्ञान-प्रकाश से, (उर्वी) माता-पिता और बड़े स्त्री-पुरुषों को (आ पप्रौ) पूर्ण करता है, वह (पावकः) पवित्रकर्ता तेजस्वी (ऊर्म्यायाः) ज्ञान-सम्पादन में लग्न जनता के (बहु चित् तमः) बहुत से अज्ञान-अन्धकार को (शोचिषा) ज्ञान-दीप्ति से (तिरः ददृशे) दूर करके सत्य का दर्शन कराता है।

नू नश्चित्रं पुरुवाजाभिरूती अग्ने रयिं मघवद्भ्यश्च धेहि।
ये राधसा श्रवसा चात्यन्यान्त्सुवीर्येभिश्चाभि सन्ति जनान् ॥ ५ ॥

भा०—(ये) जो लोग (राधसा) ईश्वराराधन और कार्य साधन से, (श्रवसा) यश और ज्ञान से, (सु-वीर्येभिः च) उत्तम वीर्यवान् पुरुषों से (जनान्) साधारण जनों से (अभि सन्ति) बढ़ जाते हैं, हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू उन (मघवद्भ्यः) दान-योग्य ज्ञान और ऐश्वर्यों के स्वामियों से (च) भी (चित्रं रयिम्) आश्चर्यजनक ऐश्वर्य (पुरु-वाजाभिः ऊती) बहुत अन्न और बलशाली भूमियों और रक्षाकारी उपायों से (नः) हमें (धेहि) दे।

इमं यज्ञं चनो धा अग्न उशन्यं त आसानो जुहुते हविष्मान्।
भरद्वाजेषु दधिषे सुवृक्तिमवीर्वाजस्य गध्यस्य सातौ ॥ ६ ॥

भा०—जैसे (हविष्मान् उशन् आसानः जुहुते, अग्निः यज्ञं चनः दधाति) अन्न का स्वामी सुख-कामना-युक्त होकर अग्नि में हवि होमता और वह अग्नि अन्नादि हवि को स्वीकार करता है वैसे ही हे (अग्ने) तेजस्विन्! (हविष्मान्) अन्नादि देने योग्य कर आदि से युक्त प्रजाजन (आसानः) सुख राष्ट्र में रहता हुआ और (उशन्) तुझे चाहता हुआ (यं ते जुहुते) जिस पदार्थ को तेरी वृद्धि के लिये देता है तू (इमं यज्ञं)

इस दिये दान, सत्कार और (चनः) अन्नादि को (उशन् धाः) कामना-वान् होकर धारण कर ! तू (भरद्-वाजेषु) ऐश्वर्यों और बलों के धारक प्रबल पुरुषों के आश्रय ही (सुवृक्तिम्) राष्ट्र में शत्रु-सेना का सुख से वर्जन करने वाली शक्ति-सेना को (दधिषे) धारण कर । (गध्यस्य) सभी के चाहने-योग्य ऐश्वर्य की (सातौ) संग्राम के बल पर प्राप्त करने के लिये (अवीः) रक्षा कर ।

वि द्वेषांसीनुहि वर्धयेळां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ७ ॥ १२॥

भा०—हे राजन् ! तू (द्वेषांसि) द्वेष-भावों तथा शत्रुजनों को (वि इनुहि) दूर कर, (इडां) हमारी अभिलाषा-योग्य, भूमि और वाणि को (वर्धय) बढ़ा, हम सब (सुवीराः) उत्तम वीर पुत्रादि से युक्त होकर (शत-हिमाः) सौ-सौ हेमन्तों, सौ-सौ वरसों तक (मदेम) प्रसन्न रहें । इति द्वादशो वर्गः ॥

[११]

भरद्वाजो वार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५ निचृत्-त्रिष्टुप् । ४, ६ विराट् त्रिष्टुप् । २ निचृत्पंक्ति । षडृचं सूक्तम् ॥

यजस्व होतरिषितो यजीयानग्ने बाधो मरुतां न प्रयुक्ति ।
आ नो मित्रावरुणा नासत्या द्यावा होत्राय पृथिवी ववृत्याः ॥१॥

भा०—हे (होतः) दातः ! तू (यजीयान्) महान् दानी और (इषितः) हमारी इच्छाओं का विषय है । (इषितः सन्) हम लोगों से प्रार्थित होकर, हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तू (मरुताम्) मनुष्यों को (बाधः) बुरे मार्ग से रोकने और (प्रयुक्ति) उत्तम कर्म में लगाने वाला ज्ञान और कर्म (यजस्व) प्रदान कर और (नः होत्राय) हमें देने और अपने अधीन लेने के लिये ही (मित्रावरुणा) स्नेहवान्, प्रजा को मृत्यु से बचाने वाले श्रेष्ठ, दुष्टों के वारक और (नासत्या) असत्याचरण न करने वाले, (द्यावा पृथिवी) सूर्य और भूमि के तुल्य सबको ज्ञान-

प्रकाश और आश्रय देने वाले स्त्री-पुरुषों को (आववृत्याः) सब प्रकार के कार्यों में नियुक्त कर।

त्वं होता मन्द्रतमो नो अध्रुगन्तर्देवो विदथा मर्त्येषु।
पावकया जुह्वा३ वह्निरासाग्ने यजस्व तन्वं१ तव स्वाम्॥ २॥

भा०—देह की गृहस्थ से तुलना। जैसे (देवः) आत्मा अग्निवत् (मर्त्येषु अन्तः अध्रुक्) मरणशील देहों में देहों का द्रोह न करता हुआ, (मन्द्रतमः) आनन्द-जनक (वह्निः) शरीर धारण में समर्थ होकर (पावकया जुह्वा) पवित्रकारक अन्न-ग्रहण करने वाली शक्ति से (स्वां तन्वं यजते) स्व शरीर में यज्ञ करता है, वैसे ही हे (अग्ने) अग्नि-समान तेजस्विन्! (त्वं) तू (होता) अन्नादि का दाता, (मन्द्र-तमः) अति स्तुत्य, प्रसन्न रहता हुआ, (अध्रुक्) किसी से द्रोह न करता हुआ, (देवः) दानशील, ज्ञान-प्रकाशक होकर (मर्त्येषु विदथा अन्तः) मनुष्यों में, यज्ञ में (वह्निः) गृहस्थ-भार को वहन करने में समर्थ होकर, (पावकया जुह्वा) पवित्र करने वाली, आहुति अर्थात् वीर्याधान-योग्य, पत्नी के साथ, (तव स्वां तन्वं यजस्व) अपने देह को संगत कर, पति-पत्नी भाव से एक होकर रह और (आसा) मुख अर्थात् वाणी द्वारा भी यजस्व) उसको अपने साथ मिला।

धन्या चिद्धि त्वे धिषणा वष्टि प्र देवाञ्जन्म गृणते यजध्यै।
वेपिष्ठो अङ्गिरसां यद्ध विप्रो मधु च्छन्दो भनति रेभ इष्टौ॥३॥

भा०—स्वयं-वरण का प्रकार—(यद् ह) जब (विप्रः) विद्याओं में पूर्ण, (रेभः) विद्वान् उत्तम वचन कहने वाला पुरुष (इष्टौ) यज्ञ के निमित्त (मधु) मधु-समान, मधुर (छन्दः) अपनी स्वतन्त्र इच्छा को (वदति) कहता है और (अंगिरसां मध्ये वेपिष्ठः) अंगारों के बीच कम्पनशील अग्नि के तुल्य विद्वानों के बीच सबसे उत्तम वेद-मन्त्र का उच्चारण करता है, हे विवाह करने हारे पुरुष! (यजध्यै) संगति—

लाभ के लिये (देवान्) कन्या के दाता, उसके पिता, भाई, माता आदि के प्रति अपना (जन्म गृणते) जन्म-काल तथा गोत्र आदि का उच्चारण करते हुए (त्वे) तुझे (धिषणा) गृहस्थ धारण में समर्थ और स्वयं पोषण-योग्य (धन्या) धनैश्वर्य की योग्य पात्री, सौभाग्यवती स्त्री (चित् हि) भी (प्र वष्टि) अच्छी प्रकार कामना करे।

अदिद्युतत्स्वपाको विभावाग्ने यजस्व रोदसी उरूची।
आयुं न यं नमसा रातहव्या अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्च जनाः ॥४॥

भा०—अग्नि तुल्य वर का स्वरूप—जैसे अग्नि (वि-भावा) विशेष कान्ति-युक्त होता है, उसको (पञ्च-जनाः रात-हव्या अञ्जन्ति) पांचों जन, काष्ठ आदि देकर प्रकाशित करते हैं वैसे ही (यं) जिस वरणीय (सु-प्रयसम्) उत्तम प्रयत्नशील को (पञ्च जनाः) पांचों जन (रात-हव्याः) आदर-पूर्वक स्वीकार योग्य पदार्थ देकर (आयुं न) अभ्यागत वा अपने प्रिय जीवन-प्राण के तुल्य (नमसा) आदर-पूर्वक नमस्कार द्वारा (अञ्जन्ति) सुशोभित करते, चाहते हैं, वह (अपाकः) अन्यों को सन्तापकारी न होता हुआ (सु अदिद्युतत्) अग्नि-तुल्य अच्छी प्रकार प्रकाशित हो। हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (वि-भावा) विशेष कान्तियुक्त होकर (उरूची) बहुत आदरयुक्त (रोदसी) रुचि से पास आने वाली पत्नी के साथ (यजस्व) संगति कर।

वृञ्जे ह यन्नमसा बर्हिरग्नावयामि स्रुग्घृतवती सुवृक्तिः।
अम्यक्षि सद्म सदने पृथिव्या अश्रायि यज्ञः सूर्ये न चक्षुः ॥ ५ ॥

भा०—गृहाश्रम की यज्ञ से तुलना। जैसे (नमसा बर्हिः वृञ्जे) कुशादि काटकर यज्ञ में अन्न के साथ वेदी पर लाया और बिछाया जाता है और (सु-वृक्तिः घृतवती स्रुक् अयामि) उत्तम रीति से त्या-गने योग्य घी से भरी स्रुक्, बहती धार वा स्रुक् नाम पात्र अग्नि में थामा जाता है तब (यज्ञः अश्रायि) यज्ञ-वेदि में स्थिर होता है, वैसे

ही (यत्) जब (अग्नौ) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष के निमित्त (नमसा) उत्तम अन्न और सत्कार द्वारा (बर्हिः) उसी को आदर बढ़ाने वाला आसन (वृञ्जे ह) दिया जाता है, तब (सु-वृक्तिः) उत्तम गति वाली, उत्तम रीति से पति-वरण करने वाली, (घृतवती) घृत-तुल्य स्नेह से युक्त वधू (अयामि) विवाह द्वारा बंधती है, विवाही जाती है। वह (सद्म) अपने आश्रय रूप पति को भी (अश्यक्षि) प्राप्त होती है और उसी समय (यज्ञः) पत्नी के साथ संगति करने वाला पुरुष भी (पृथिव्याः सदने स्वामी इव) पृथिवी के गृह में स्वामी के समान (पृथिव्याः) पृथिवी-तुल्य स्त्री को (सदने) प्राप्त कराने वाले गृहाश्रम में (सूर्ये चक्षुः न) सूर्य-प्रकाश से युक्त चक्षु के तुल्य (अश्रायि) स्थित होता है।

दुशस्या नः पुर्वणीक होतर्देवेभिरग्ने अग्निभिरिधानः।
रायः सूनो सहसो वावसाना अति स्रसेम वृजनं नांहः ॥६॥१३॥

भा०—हे (पुर्वणीक) बहुत-सी कान्तियों से युक्त मुख वाले! हे (होतः) वधू को वस्त्रादि देने और कन्या को स्वीकारने हारे! हे (अग्ने) अग्नि-तुल्य कान्तिमान्! तू (अग्निभिः) अग्नि-समान उज्ज्वल (देवेभिः) किरणों से सूर्य-समान गुणों से (इधानः) प्रकाशित होता हुआ (नः) हमें (रायः) दान-योग्य ऐश्वर्य (दशस्य) दे। हे (सहसः सूनो) बलवान् पुरुष के पुत्र! (वावसानाः) अपने को अच्छी प्रकार वस्त्रादि से ढकते, या बचाते हुए हम (वृजनं न) वर्जन-योग्य शत्रु वा गन्तव्य मार्ग के समान ही (अंहः) पाप को भी (अति स्रसेम) पार करें। इति त्रयोदशो वर्गः॥

[१२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। २ निचृत्त्रिष्टुप्। ३ भुरिक् पंक्तिः। ५ स्वराट् पंक्तिः॥ षडृचं सूक्तम्॥

मध्ये होता दुरोणे बर्हिषो राळग्निस्तोदस्य रोदसी यजध्यै।
अयं स सूनुः सहस ऋतावा दूरात्सूर्यो न शोचिषा ततान ॥१॥

भा०—जैसे (यजध्यै बर्हिषः मध्ये बलस्य सूनुः राड् अग्निः दुरोणे सूर्यः न ततान) यज्ञ के निमित्त बिछे कुशामय आस्तरणों में बल से उत्पन्न, चमकने वाला अग्नि गृह में सूर्य-समान प्रकाश फैलाता है वैसे ही (अग्निः) नायक एवं विद्वान् (रोदसी यजध्यै) स्त्री पुरुषों को संगत करने के लिये स्वयं (होता) दानशील होकर (तोदस्य) शत्रुजनों को और पीड़ादायी (बर्हिषः मध्ये) वृद्धिशील, बिछे, कुशामय आस्तरणादि के बीच में (दुरोणे) अन्य प्रतिस्पर्धियों से अप्राप्य आसन वा दुर्ग में स्थित होकर (सः) वह (राट्) सम्राट् (सहसः सूनुः) शत्रु पर भय-कारी सैन्य का सञ्चालक और (ऋतावा) न्याय-पालक होकर (दूरात्) दूर से (सूर्यः न) सूर्य-तुल्य (शोचिषा ततान) अपनी कान्ति से राज्य को फैलावे।

आ यस्मिन्त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद्राजन्त्सर्वतातेव नु द्यौः।
त्रिषधस्थस्ततरुषो न जंहो हव्या मघानि मानुषा यजध्यै ॥ २ ॥

भा०—हे (यजत्र) दानशील विद्वन्! (राजन्) राजन्! (सर्वताता) सर्व-हितकारी (द्यौः) सूर्य तुल्य विद्वान् और सुखदात्री भूमि (अपाके) अपरिपक्व बुद्धि वाले (त्वे यस्मिन्) जिस तुझे (हव्या मघानि) उत्तम ग्रहण-योग्य (मानुषा) मनुष्योपकारक ऐश्वर्य (आ यक्षत्) देती और बलवान् बनाती है, वह तू (त्रि-सधस्थः) तीन सभाओं में स्थित होकर (तत रुषः) संकटों से तारने वाले सूर्य के समान (जंहः) वेग से जाता हुआ (मानुषा मघानि हव्या यजध्यै यक्षत्) मनुष्यों के हितकर ऐश्वर्यों और अन्नों को देने के लिये यज्ञ कर।

तेजिष्ठा यस्यारतिर्वनेराट् तोदो अध्वन्न वृधसानो अद्यौत्।
अद्रोघो न द्रविता चेतति त्मन्नमर्त्योऽवर्त्र ओषधीषु ॥ ३ ॥

भा०—जैसे अग्नि का (अरतिः तेजिष्ठा) वन में लगना ही अति तीक्ष्ण है और जैसे अग्नि (अध्वन् न तोदः) हण्टर के समान मार्ग में

बढ़ता है वैसे ही (यस्य) जिसका (अरतिः) आगमन ही (तेजिष्ठा) तेज वा प्रभाव से युक्त और जो (राट्) सम्राट् होकर (तोदः) पशुओं पर चाबुक के तुल्य (अध्वन्) मार्ग में (वृषसानः) चलने वाले प्रजाजनों को आगे बढ़ाने वाला (अद्यौत्) चमकता है, वह (अद्रोघः) प्रजा-द्रोही न होकर, (त्मन्) स्वतः (द्रविता न) वेगगामी रथ तुल्य वेगवान् होकर (ओषधीषु) ओषधियों में अग्निवत्, प्रजाओं में (अवर्त्नः) किसी से निवारण न किया जाकर (चेतति) सबको चेताता है ।

साास्माकेभिरेतरी न शूषैरग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
द्र्वन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वोस्रः पितेव जारयायि यज्ञैः ॥ ४ ॥

भा०—(एतरि दमे न) प्रवेश-योग्य गृह में जैसे (अग्निः स्तवे) सर्व-प्रथम अग्नि रख यज्ञ किया जाता है वैसे ही (जात-वेदाः) ज्ञानवान्, (अग्निः) अग्रणी पुरुष भी (अस्माकेभिः) हमारे (शूषैः) बल और सुखकारी वचनों से (स्तवे) स्तुति-योग्य (दमे) दमन वा शासन-कार्य में प्रशंसनीय हो। (द्र्वन्नः क्रत्वा यज्ञैः जारयायि) काष्ठों को अन्न-तुल्य खाने वाला अग्नि जैसे यज्ञ और यज्ञांगों से स्तुति किया जाता है और (अर्वा न क्रत्वा) और जैसे वेगवती क्रिया के कारण अश्व प्रशंसनीय होता है और जैसे (पिता इव) पिता के तुल्य उत्तम सन्तानों के कारण प्रशंसनीय होता है वैसे ही राजा वा गृहपति (द्रु-अन्नः) वनस्पतियों के फल-पत्रादि और अन्न का भोग करता हुआ (क्रत्वा) क्रिया और बुद्धि के द्वारा (उस्रः वन्वन्) भूमियों और वाणियों का सेवन करता हुआ (पिता इव) पिता के तुल्य ही (यज्ञैः) सत्संगों, दानों आदि से (जारयायि) स्तुति किया जाता है ।

अध स्मास्य पनयन्ति भासो वृथा यत्तक्षदनुयाति पृथ्वीम् ।
सद्यो यः स्यन्द्रो विषितो धवीयानृणो न तायुरति धन्वा राट् ॥५॥

भा०—यह अग्नि वा विद्युत् (यत् भासः तक्षत्) जिन दीप्तियों

को पैदा करता है और जो यह (पृथ्वीम् अनुयाति) विद्युत् भूमि की ओर वेग से जाता है, लोग (अस्य भासः पनयन्ति) इसकी दीप्तियों की प्रशंसा करते हैं और विद्युत् (स्यन्द्रः) जलवत् (विषितः) बन्धन-मुक्त होकर बहने वाला, (धवीयान्) शरीर को स्पर्श करते ही कंपा देने वाला, (तायुः न ऋणः) चोर के समान चुपचाप निकल भागने वाला, (धन्वा अति राट्) अन्तरिक्ष में खूब चमकता है। वैसे ही राजा (यत् भासः वृथा तक्षत्) जब तेजों को अनायास उत्पन्न कर लेता है और (पृथ्वीम् अनुयाति) पृथ्वी-वासिनी प्रजा का अनुगमन करता है, (अध) तब लोग (अस्य) इसके (भासः) तेजों, गुणों की (पनयन्ति) प्रशंसा करते हैं। (यः) जो राजा (स्यन्द्रः) वेग से रथादि से जाने में कुशल, (वि-सितः) स्वतः बन्धन-मुक्त (धवीयान्) शत्रुओं को कंपा देने वाला होकर भी (तायुः न) चोर-समान अलक्षित भाव से पृथ्वी का भोग करने वाला होकर (धन्वा) धनुष के बल से (अति राट्) अधिक तेजस्वी बन कर चमकता है।

स त्वं नो अर्वन्निदाया विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिधानः।
वेषि रायो वि यासि दुच्छुना मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥६॥१४॥

भा०—हे (अर्वन्) शत्रुओं के नाशक! हे अश्व तुल्य राष्ट्र-रथ के सञ्चालक! (अग्ने) अग्नि-तुल्य तेजस्विन्! (अग्निभिः) ज्वालाओं से अग्नि-समान (इधानः) दीप्त होकर, (त्वं) तू (निदायाः) निन्दा से (नः) हम लोगों को (वेषि) दूर रख। (नः रायः वेषि) हमारे उत्तम धनों की कामना कर। तू (दुच्छुनाः) दुःखदायी परसेनाओं को (वि यासि) विशेष रूप से चढ़ाई कर, जिससे हम (सुवीराः) उत्तम वीर सन्तानों-सहित (शतहिमाः मदेम) सौ वर्ष की आयु वाले होकर आनन्द से जीवें। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[१३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ अग्निर्देवताः॥ छन्दः—१ पंक्तिः।

२ स्वराट्पंक्तिः । ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् ॥
षडृचं सूक्तम् ॥

त्वद्विश्वा॑ सुभग॒ सौभ॑गा॒न्यग्ने॒ वि य॑न्ति व॒निनो॒ न व॒याः ।
श्रु॒ष्टी र॒यिर्वाजो॑ वृत्र॒तूर्ये॑ दि॒वो वृ॒ष्टिरीड्यो॑ री॒तिर॒पाम् ॥ १ ॥

भा०—जैसे अग्नि वा विद्युत् से (विश्वा सौभगानि) समस्त ऐश्वर्य (वनिनः न वयाः) वृक्ष से शाखाओं के तुल्य उत्पन्न होते हैं वैसे ही हे (सुभग) ऐश्वर्यवन् ! हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! (विश्वा सौभगानि) समस्त सौभाग्य (वनिनः वयाः न) वृक्ष से शाखाओं के समान (वनिनः त्वद्) ऐश्वर्यवान् तुझसे (वि यन्ति) विविध प्रकार से निकलते हैं । जैसे (श्रुष्टिः रयिः वृत्रतूर्ये दिवः वृष्टिः अपां रीतिः अग्नेः वनिनः न) अन्न, देह, मेघ, विद्युत्, वृष्टि और जलों की धारा आदि सब ही तेजस्वी सूर्य और विद्युत् से ही उत्पन्न होते हैं ऐसे ही हे राजन् ! (श्रुष्टिः) अन्न-समृद्धि, (रयिः) ऐश्वर्य, (वृत्रतूर्ये) शत्रु-नाश के निमित्त (वाजः) बल आदि (वृष्टिः) शस्त्रवर्षण, सुखों की वृष्टि और (अपां रीतिः) आप्त पुरुषों का आगमन, राष्ट्र में जल धाराओं का बहना आदि सब (दिवः त्वत्) सर्व-कामना-योग्य तुझ से ही उत्पन्न होता है ।

त्वं भगो॑ न आ हि रत्न॑मि॒षे परि॑ज्मेव क्षयसि द॒स्मव॑र्चाः ।
अग्ने॑ मि॒त्रो न बृ॑ह॒त ऋ॒तस्या॑सि क्ष॒त्ता वा॒मस्य॑ दे॒व भूरेः॑ ॥ २ ॥

भा०—जैसे अग्नि (रत्नम् इषे) प्रकाश को फेंकता है, (परिज्मा इव दस्मवर्चाः क्षयति) वायु या प्राण के समान क्षीण-तेज होकर, वा अन्न को देह में पचाता हुआ जाठराग्नि रूप से निवास करता है (ऋतस्य मित्रः) और जल को मित्रवत् स्नेह से चाहता है, (भूरेः क्षत्ता) बहुत से सुख का दाता है वैसे ही हे (अग्ने) तेजस्विन् ! राजन् ! (त्वं) तू (भगः) स्वयं ऐश्वर्यवान् होकर (नः) हमारे लिये (रत्नम्) ऐश्वर्य को (आ इषे हि) सब ओर से देता है । तू (दस्मवर्चाः) शत्रु-नाशकारी तेज

से युक्त होकर, (परि-ज्मा इव) सर्वत्रगामी वायुवत् भूमि पर शासक होकर (क्षयसि) शत्रु-नाश करता है, तू (मित्रः न) मरण से बचाने वाला सूर्यवत् (बृहतः ऋतस्य) बड़े भारी न्याय, ज्ञान-प्रकाश का (क्षत्ता असि) देने वाला हो और, हे (देव) विद्वन् ! दातः ! तू (भूरेः वामस्य) बहुत से सुन्दर ऐश्वर्यों का भी (क्षत्ता असि) दाता हो ।

स सत्पतिः शवसा हन्ति वृत्रमग्ने विप्रो वि पणेर्भर्ति वाजम् ।
यं त्वं प्रचेत ऋतजात राया सजोषा नप्त्रापां हिनोषि ॥ ३ ॥

भा०—जैसे सूर्य-रूप अग्नि (सत्पतिः) जलों का स्वामी होकर (शवसा वाजम् वि भर्ति) जल से अन्न-पोषण करता है, (ऋतजातः) वह अन्नों को उत्पन्न करके (अपां नप्त्रा) जलों को आकाश से न गिरने देने वाले जलवाहक मेघ द्वारा ही बढ़ाता है वैसे ही हे (अग्ने प्रचेतः) उत्तम ज्ञानवन् ! हे धन-संग्रहीता राजन् ! तू (ऋत-जातः) ज्ञान, ऐश्वर्य में प्रसिद्ध होकर (राया) ऐश्वर्य से, (अपां नप्त्रा) आप्तजनों, प्रजाओं के सुप्रबन्ध करने वाले, वा जल-धाराओं को बांधने वाले शिल्पीजन से (सजोषाः) प्रेमपूर्वक मिलकर (यं हिनोषि) जिसको बढ़ा देता है वह तू (सत्पतिः) सज्जनों का पालक, (शवसा) बल से (वृत्रम् हन्ति) विघ्नकारी और बढ़ते शत्रु को नाश कर और (विप्रः) विद्वान् मेधावी जैसे (पणेः वाजम् शवसा वि भर्ति) स्तुत्य, पाठशील शिष्य के ज्ञान को अपने ज्ञान से बढ़ाता है वैसे ही तू भी (विप्रः) राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से भरने हारा (पणेः) वैश्य जन के (वाजम्) ऐश्वर्य को (वि भर्ति) विविध प्रकारों से पूर्ण करता है ।

यस्ते सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर्यज्ञैर्मर्तो निशितिं वेद्यानट् ।
विश्वं स देव प्रति वारमग्ने धत्ते धान्यं१ पत्यते वसव्यैः ॥ ४ ॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बलवान् के पुत्र ! हे बलशाली सैन्य के सञ्चालक ! (यः) जो (ते) तेरी (गीर्भिः) वाणियों (उक्थैः) वचनों,

(यज्ञैः) सत्संगों, सत्कारों से (वेद्या) वेदिवत् पृथिवी से (निशितिम्) अग्नि तुल्य तेरी तीक्ष्णता को (आनट्) प्राप्त करता वा कराता है हे (देव) तेजस्विन् ! हे (अग्ने) नायक ! (सः) वह (विश्वं वारम् प्रति धत्ते) समस्त वरण-योग्य धन को धारण करता और सब निवारणीय शत्रु सैन्य का मुकाबला करता है और वह (वसव्यैः) ऐश्वर्यों से (पत्यते) बलधारी स्वामी हो जाता है।

ता नृभ्य आ सौश्रवसा सुवीराग्ने सूनो सहसः पुष्यसे धाः।
कृणोषि यच्छवसा भूरिं पश्वो वयो वृकायारये जसुरये ॥ ५ ॥

भा०—(यत्) जो तू (शवसा) बल से (वृकाय) भेड़िये के समान (जसुरये) प्रजा-नाशक (अरये) शत्रु नाश के लिये (भूरि) बहुत (पश्वः वयः) अश्व आदि पशु का द्रष्टा, अध्यक्ष का बल (कृणोषि) सम्पादन करता है। वह तू, हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे (सहसः सूनो) शत्रुपराजयकारी, वीर पुरुष के पुत्र ! तू (नृभ्यः) उत्तम नेता पुरुषों के हितार्थ (ता) वे (सौश्रवसा) उत्तम अन्न, कीर्त्ति आदि से युक्त (सुवीरा) उत्तम पुत्र, भृत्यादि-सम्पन्न ऐश्वर्य (पुष्यसे) राष्ट्र की पुष्टि के लिये (धाः) धारण कर।

वद्मा सूनो सहसो नो विहाया अग्ने तोकं तनयं वाजि नो दाः।
विश्वाभिर्गीर्भिरभि पूर्त्तिमश्यां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥६॥१५॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे (सहसः सूनो) सैन्य-बल के सञ्चालक ! तू (विहायाः) महान् होकर (नः) हमारा (वद्मा) उपदेष्टा हो और (नः) हमें (वाजि) अन्न, ऐश्वर्यादि-सम्पन्न धन तथा (तोकं) वंशवर्धक और दुःख-नाशक पुत्र तथा (तनयम्) पौत्र (दाः) दे। मैं (विश्वाभिः गीर्भिः) समस्त वाणियों से (पूर्त्तिम् अभि अश्याम्) पूर्णता को प्राप्त करूं। हम सब (सुवीराः) उत्तम वीर होकर (शतहिमाः) सौ वर्षों तक (मदेम) आनन्द करें। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[१४]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ भुरिगुष्णिक् । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ अनुष्टुप् । ५ विराडनुष्टुप् । ६ भुरिगतिजगती ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

अग्ना यो मर्त्यो दुवो धियं जुजोष धीतिभिः ।
भसन्नु ष प्र पूर्व्य इषं वुरीतावसे ॥ १ ॥

भा०—(यः मर्त्यः) जो मनुष्य (धीतिभिः) उत्तम कर्मों, कर्मकर्ता अंगों और धारणाओं से (अग्नौ) ज्ञानी, नेता पुरुष के अधीन रहकर (दुवः) उपासना, सेवा, (धियं जुजोष) उत्तम कर्माचरण और ज्ञान का अभ्यास करता है (सः नु) वह शीघ्र ही (पूर्व्यः) पूर्व विद्यमान गुरुजनों का हितैषी, उनकी विद्या से सुभूषित होकर (प्र भसत्) खूब चमकता है और वह (अवसे) जीवन-रक्षार्थ (इषं) अन्न और बल (वुरीत) प्राप्त करता है ।

अग्निरिद्धि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः ।
अग्निं होतारमीळते यज्ञेषु मनुषो विशः ॥ २ ॥

भा०—विद्वान् अग्नि (अग्निः इत् हि) वह अग्नि है जो (प्र-चेताः) उत्तम ज्ञान से युक्त, अन्यों को ज्ञानवान् करता है । (अग्निः) वह 'अग्नि' कहाने योग्य है जो (ऋषिः) यथार्थ ज्ञान का द्रष्टा और (वेधस्तमः) सबसे अधिक बुद्धिमान्, विधान-निर्माण करने में कुशल है ।

नाना ह्यग्नेऽवसे स्पर्धन्ते रायो अर्यः ।
तूर्वन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अव्रतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! (नाना) बहुत से (आयवः) लोग (व्रतैः) उत्तम कर्मों से (अव्रतम्) व्रतादि-रहित (दस्युम्) दुष्ट पुरुष को (सीक्षन्तः) पराजित करते और (तूर्वन्तः) उसका नाश करते हुए

(अर्यः रायः अवसे) शत्रु-धन की प्राप्ति व स्वामी के धन की रक्षार्थ (स्पर्धन्ते) स्पर्धा करते हैं।

अ॒ग्निर॒प्सामृ॑ती॒षहं॑ वी॒रं द॑दाति॒ सत्प॑तिम्।

यस्य॒ त्रस॑न्ति॒ शव॑सः स॒ञ्चक्षि॒ शत्र॑वो भि॒या ॥ ४ ॥

भा०—(अग्निः) आग्नेय अस्त्रादि द्वारा सज्जित नायक हमें, (अप्साम्) प्रजाओं तथा उत्तम कर्मों को (वीरं) विशेष उत्साहित करने वाला, (ऋतीषहं) शत्रुओं का पराजयकारी, ऐसा (सत्पतिम्) सज्जन-पालक पुरुष (ददाति) देता है (यस्य शवसः) जिसके बल से (शत्रवः त्रसन्ति) शत्रु डरते हैं और (सञ्चक्षि) अच्छी प्रकार देखते रहने पर, उसके (भिया) भय से कांपते हैं।

अ॒ग्निर्हि वि॒द्मना॑ नि॒दो दे॒वो मर्त॑मुरु॒ष्यति॑।

स॒हावा॒ यस्यावृ॑तो र॒यिर्वाजे॒ष्ववृ॑तः ॥ ५ ॥

भा०—(अग्निः हि) ज्ञानवान् पुरुष ही (देवः) तेजस्वी होकर (विद्मना) ज्ञान-बल से (निदः) निन्दकों का (सहावा) पराजय करता हुआ (मर्त्तम्) मनुष्य की (उरुष्यति) रक्षा करता है। (अवृतः) बिना कुछ चेष्टा किये भी (यस्य) जिसका (रयिः) ऐश्वर्य और बल (वाजेषु अवृतः) संग्राम के अवसरों पर छुपा नहीं रहता।

अच्छा॑ नो मित्रमहो देव दे॒वानग्ने॒ वोचः॑ सुम॒तिं रोद॑स्योः।

वी॒हि स्व॒स्तिं सु॑क्षि॒तिं दि॒वो नॄन्द्वि॒षो अंहां॑सि दुरि॒ता त॑रेम॒ ता त॑रेम॒ तवाव॑सा तरेम ॥ ६ ॥ १६ ॥

भा०—हे (मित्रमहः अग्ने) मित्रों के पूजने योग्य नायक! हे (देव) दानशील! तू (नः देवम् अच्छ रोदस्योः सुमतिं वोचः) तुझे चाहने वाले, हमें और सूर्य-पृथिवी के तुल्य उपकारबद्ध स्त्री-पुरुषों वा राजा-प्रजावर्गों के योग्य शुभ ज्ञान का उपदेश दे। (स्वस्ति) कल्याणकारी (सुक्षितिं) उत्तम निवास, भूमि को (वीहि) प्राप्त कर। (दिवः नॄन्)

कामना-योग्य पुरुषों को चाह। (द्विषः अंहांसि, दुरिता तरेम) हम शत्रुओं, पापों और दुष्टाचरणों को लांघें, (ता तरेम) उनसे पार हो जावें, (तव अवसा) तेरे ज्ञान, और कामना से हम (तरेम) तरें। इति षोडशो वर्गः॥

[१५]

भरद्वाजो वार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, २, ५ निचृज्जगती। ३ निचृदतिजगती। ७ जगती। ८ विराड् जगती। ४, १४ भुरिक् त्रिष्टुप। ६, १०; ११, १६, १९ त्रिष्टुप्। १३ विराट् त्रिष्टुप। ६, निचृदतिशक्वरी। १२ पंक्तिः। १५ ब्राह्मी बृहती। १७ विराडनुष्टुप। १८ स्वराडनुष्टुप। अष्टादशर्चं सूक्तम्॥

इमम् षु वो अतिथिमुषर्बुधं विश्वासां विशां पतिमृञ्जसे गिरा।
वेतीद्दिवो जनुषा कच्चिदा शुचिर्ज्योक्चिदत्ति गर्भो यदच्युतम् १

भा०—हे विद्वान्! तू (वः) अपने में से जो (दिवः) ज्ञान के कारण (जनुषा) स्वभाव से (शुचिः) पवित्र है, जो (स्वयं गर्भः) विद्यादि-ग्रहण में स्वयं समर्थ होकर (अच्युतम्) नित्य वेद-ज्ञान को (आ अत्ति) सब प्रकार से भोगता है और (वेति इव) विद्या से चमकता है (इमम्) इस (अतिथिम्) अतिथि-तुल्य पूज्य, (उषः-बुधम्) प्रातःकाल जागने वाले, तेजस्वी, जीवन के प्रभात बाल्य, कौमार दशा में ज्ञान से प्रबुद्ध करने वाले (विश्वासां विशाम्) आश्रम में प्रविष्ट शिष्यों को (पतिम्) पालन करने वाले गुरु की (गिरा ऋञ्जते) विनीत वाणी से सेवा कर।

मित्रं न यं सुधितं भृगवो दधुर्वनस्पतावीड्यमूर्ध्वशोचिषम्।
स त्वं सुप्रीतो वीतहव्ये अद्भुत प्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे॥२॥

भा०—(ऊर्ध्व-शोचिषम्) अग्नि-तुल्य ऊपर उठती कान्ति वाले, (ईड्यं) पूज्य, विद्याभिलाषी पुरुष को (वनस्पतौ) विद्यार्थी जनों के पालक

आचार्य के अधीन रहते हुए (भृगवः) वेदवाणियों के धारक (यम्) जिसको (सुधितं दधुः) सुरक्षित रखते हैं (सः त्वं) वह आप, हे (अद्भुत) महाशय ! (वीतहव्ये) दान करने और आदर से ग्रहण-योग्य ज्ञान-दाता गुरु के अधीन ही (सुप्रीतः) अति प्रसन्न होकर (प्रशस्तिभिः) प्रशंसाओं से (दिवे-दिवे) दिनों दिन (महयसे) महिमा को प्राप्त हों ।

स त्वं दक्षस्यावृको वृधो भूरर्यः परस्यान्तरस्य तरुषः ।
रायः सूनो सहसो मर्त्येष्वा छर्दिर्यच्छ वीतहव्याय सप्रथो भरद्वाजाय सप्रथः ॥ ३ ॥

भा०—(सहसः सूनो) सहनशील पुरुष के पुत्रवत् (सः त्वं) वह तू (दक्षस्य) बल और कर्म-सामर्थ्य को (वृधः) बढ़ाने हारा और (अन्तरस्य) भीतर के (परस्य तरुषः) हिंसाकारी काम आदि शत्रु का भी (अर्यः) स्वामी (भूः) हो । तू (मर्त्येषु) मनुष्यों में (वीत-हव्याय) देय-भाग को स्वतः देने वाली प्रजा के हितार्थ (सप्रथः) विस्तृत (छर्दिः यच्छ) गृह, शरण दे । ऐसे ही (भरद्वाजाय) ज्ञान, ऐश्वर्य के धरने और ला कर संग्रह करने वाले पुरुष को भी (सप्रथः छर्दिः यच्छ) विस्तृत शरण दे ।

द्युतानं वो अतिथिं स्वर्णरमग्निं होतारं मनुषः स्वध्वरम् ।
विप्रं न द्युक्षवचसं सुवृक्तिभिर्हव्यवाहमरतिं देवमृञ्जसे ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वानो ! (वः) आप लोगों में (द्युतानं) चमकने वाले (अतिथिं) व्यापक और अतिथिवत् पूज्य, (स्वः-नरम्) सुखमय मार्ग में ले जाने हारे (मनुषः होतारं) मनुष्य को सब कुछ देने हारे (सु-अध्वरम्) यज्ञ-पालक, नाश न होने वाले, (द्युक्ष-वचसं) उज्ज्वल वाणी के वक्ता (विप्रं) विद्वान् के तुल्य (सु-वृक्तिभिः) उत्तम प्रशंसाओं द्वारा (हव्यवाहम्) अन्नादि के धारक, (अरतिं) अतिज्ञानी, (देवं) प्रकाश-रूप गुरु और प्रभु की (ऋञ्जसे) सेवा किया कर ।

पा॒व॒कया॒ यश्चि॒तय॑न्त्या कृ॒पा क्षाम॑न्रुरु॒च उ॒षसो॒ न भा॒नुना॑ ।
तूर्व॒न्न याम॒न्नेत॑शस्य॒ नू रण॒ आ यो घृ॒णे न त॑तृषा॒णो अ॒जरः॑ ॥५।१७

भा०—(यः) जो (पावकया) पवित्रकारी अग्नि के तुल्य, (चित-यन्त्या) ज्ञानदात्री, (कृपा) शक्ति से (भानुना उषसः न) कान्ति से उषाकालों के समान, (क्षामन्) भूमि पर (आ रुरुचे) प्रकाशित होता है और (यः) जो (घृणे रणे) खूब चमकते रण में (यामन्) मार्ग में (तूर्वन्) शत्रु-नाश करता हुआ (एतशस्य) अश्व-स्वामी (नू) के समान और (ततृषाणः न) प्यासे के समान (अजरः) जरारहित होकर (आ रुरुचे) चमकता है। उस प्रभु की तू स्तुति कर। इति सप्तदशो वर्गः ॥

अ॒ग्निम॑ग्निं वः स॒मिधा॑ दुवस्यत प्रि॒यम्प्रि॑यं वो॒ अति॑थिं गृणी॒षणि॑ ।
उप॑ वो गी॒र्भिर॒मृतं॑ विवासत दे॒वो दे॒वेषु॒ वन॑ते॒ हि वार्यं॑ । दे॒वो दे॒वेषु॒ वन॑ते॒ हि नो॒ दुवः॑ ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! (वः) आप अपने में (अग्निम् अग्निम्) अग्नि तुल्य स्वप्रकाश, तेजस्वी प्रभु को, अग्नि को समिधा से जैसे, वैसे (दुवस्यत) उपासना करो। (वः) अपने (गृणीषणि) स्तुति-कार्य में एकमात्र लक्ष्य (अतिथिम्) पूज्य (प्रियं प्रियम्) अति प्रिय प्रभु की सेवा करो। (वः) आप अपने में (अमृतम्) अविनाशी रूप से स्थित आत्मा को (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (उप विवासत) उपासना करो। (देवः) तेजोमय परमेश्वर (देवेषु) कामनावान् भक्तों में ही (वार्यं वनते) ऐश्वर्य देता और (नः दुवः वनते हि) वही हमारी सेवा और स्तुति स्वीकार करता है।

समि॑द्धम॒ग्निं स॒मिधा॑ गि॒रा गृ॑णे॒ शुचिं॑ पाव॒कं पु॒रो अ॑ध्व॒रे ध्रु॒वम् ।
वि॒प्रं होता॑रं पुरु॒वार॑म॒द्रुहं॑ क॒विं सु॒म्नैरी॑महे जा॒तवे॑दसम् ॥ ७ ॥

भा०—(अध्वरे यथा समिधा समिद्धं अग्निं पुरः गृणे) यज्ञ में जैसे समिधा से चमकते हुए अग्नि को पुनः-स्थापित करके परमेश्वर की

स्तुति की जाती है वैसे ही (समिधा) अच्छी प्रकार प्रकाशित (गिरा) वाणी से (समिद्धम्) प्रदीप्त (अग्निम्) ज्ञानवान् (ध्रुवं) स्थिर, (पावकं) पवित्रकारी, (शुचिं) शुद्ध प्रभु वा विद्वान् को (अध्वरे) हिंसा रहित, ज्ञानमय यज्ञ में (पुरः) समक्ष रख उसकी (गृणे) स्तुति करूं और (जात-वेदसम्) ज्ञानों के स्वामी, (विप्रम्) विद्याओं से पूर्ण करने वाले (पुरुवारम्) बहुतों से वरण करने और बहुत से कष्टों का वारणकर्त्ता (अद्रुहं) द्रोहरहित, (होतारं) ज्ञानैश्वर्य-दाता (कविं) क्रान्तदर्शी, विद्वान्, प्रभु को (सुक्तैः) उत्तम मनन योग्य वचनों से हम (ईमहे) प्रार्थना करें।

त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥८॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! (दूतं) दुःखों के दूरकर्त्ता शत्रु-संतापक, (अमृतम्) अविनाशी, (हव्यवाहं) ग्रहण-योग्य, स्तुतिवचन, अन्नादि के स्वीकारकर्त्ता (पायुम्) पवित्रकारक, (ईड्यम्) स्तुति-योग्य, (जागृविम्) जागृत, (विभुं) विशेष-सामर्थ्य युक्त, (विश्पतिम्) प्रजा-पालक (त्वां) तुझ प्रभु को (देवासः च मर्त्तासः च) विद्वान् और साधारण मनुष्य भी (युगे-युगे) प्रतिदिन, प्रति-युग, (दधिरे) ध्यान में धरते तथा (नमसा) नमस्कार से (नि षेदिरे) उपासना करते हैं।

विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ।
यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥९॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि-तुल्य तेजस्विन् प्रभो ! तू (उभयान् अनु) विद्वान् और अविद्वान् दोनों को हितकारी, उनके (व्रता अनु) कर्मानुसार (विभूषन्) व्यवस्था करता हुआ (देवानां) दिव्य पदार्थों और विद्वानों के बीच उपासित होकर (रजसी) आकाश और भूमि दोनों को (सम् ईयसे) व्याप्त है। (यत्) जिस (ते धीतिम्) तेरे ध्यान और (सुमतिम्) ज्ञान को (आ वृणीमहे) हम आदरपूर्वक

वरते हैं। हे प्रभो! (अध) और तू (नः) हमारे लिये (त्रि-वरूथाः) तीन मंजिलों के घर के समान (त्रि-वरूथः) मन, वाणी, काय तीनों से वरण-योग्य होकर (नः शिवः भव) हमारे लिये कल्याणकारी हो।

तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चमविद्वांसो विदुष्टरं सपेम।
स यक्षद् विश्वा वयुनानि विद्वान् प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत् १०।१८

भा०—(तम्) उस (सुप्रतीकं) सुख-रूप में ज्ञात (सुदृशं) उत्तम द्रष्टा, (स्वञ्चम्) सुख से प्राप्य, (विदुष्टरं) महान् ज्ञानी प्रभु को हम (अविद्वांसः) अविद्वान् जन (सपेम) प्राप्त हों, (सः विद्वान्) वह ज्ञानवान्, (अग्निः) अग्नि तुल्य प्रभु (विश्वा वयुनानि) समस्त ज्ञानों को देता है। वह ही (अमृतेषु) अविनाशी हम जीवों के लिए (हव्यम्) ग्रहण-योग्य ज्ञान का (प्र वोचत्) उत्तम उपदेश करता है। इत्यष्टादशो वर्गः॥

तमग्ने पास्युत तं पिपर्षि यस्त आनट् कवये शूर धीतिम्।
यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित्पृणक्षि शवसोत राया॥११

भा०—हे प्रभो! हे (अग्ने) ज्ञानवन्! (यः) जो (ते कवये) तुझ क्रान्तदर्शी पुरुष के (धीतिं) धारण-योग्य ज्ञान को (आनट्) प्राप्त करता है, हे (शूर) वीर, (तं पासि) तू उसकी रक्षा करता है, (उत) और (तं) उसको (पिपर्षि) पालता है, हे प्रभो! विद्वन्! जो पुरुष तेरे लिए (यज्ञस्य निशितिं वा) आदर की तीव्रता और (उद्-इतिं वा) उत्तम मार्ग की ओर बढ़ना, पूज्य के प्रति अभ्युत्थान आदि सत्कार (आनट्) करता है, तू (तम् इत्) उसको (शवसा उत राया) बल और धन से (पृणक्षि) पालता है।

त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात्।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री॥१२॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्, अग्नि तुल्य दुष्टों को जलाने हारे!

प्रभो ! विद्वन् ! राजन् ! (त्वम्) तू (वनुष्यतः) प्रार्थना करते हुए (नः) हमें (अवद्यात्) पापाचरण से (नि पाहि) बचा । हे (सहसावन्) बलशालिन् ! (त्वम् उ) तू ही (नः) हमें (वनुष्यतः) हिंसक पुरुष से बचा । (ध्वस्मन्वत्) दुष्टों का ध्वंस करने वाला (पाथः) मार्ग और पालन-सामर्थ्य (त्वा अभ्येतु) तुझे प्राप्त हो और (त्वां) तुझे (स्पृह-याय्यः) चाहने योग्य, (सहस्री) सहस्रों सुखों का दाता (रयिः) ऐश्वर्य (सम् अभ्येतु) प्राप्त हो ।

अ॒ग्निर्होता॑ गृ॒हप॑ति॒ः स राजा॒ विश्वा॑ वेद॒ जनि॑मा जा॒तवे॑दाः ।
दे॒वाना॑मु॒त यो मर्त्या॑नां॒ यजि॑ष्ठ॒ः स प्र य॑जतामृ॒तावा॑ ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो (देवानाम्) प्रकाशक सूर्य आदि लोकों और ज्ञानैश्वर्यों के दाता विद्वानों, ऐश्वर्यवानों, (मर्त्यानां) मनुष्यों, प्राणियों की (विश्वा) समस्त (जनिमा) उत्पत्ति के रहस्यों को (वेद) जानता है (सः) वही (जात-वेदाः) उत्पन्न पदार्थों का ज्ञाता होने से 'जातवेदाः' है । (सः) वह (यजताम् यजिष्ठः) दानशीलों में बड़ा दानशील, (ऋतावा) सत्य और धनैश्वर्य का स्वामी (अग्निः) अग्रणी, सबसे पूर्व विद्यमान, अन्यों को प्रकाशित करने से 'अग्नि' है । (सः होता) वही दाता और सबको अपने में आहुति करने वाला होने से 'होता' है और वही (गृहपतिः) गृह-स्वामी के तुल्य पालक होने से 'गृहपति' है (सः राजा) और वही राष्ट्र में राजा के तुल्य ब्रह्माण्ड का राजा है ।

अग्ने॒ यद॒द्य वि॒शो अ॑ध्वरस्य होतः॒ पाव॑कशोचे॒ वेष्ट्वं हि यज्वा॑ ।
ऋ॒ता य॑जासि महि॒ना वि यद्भूर्ह॒व्या व॑ह यविष्ठ॒ या ते॑ अ॒द्य ॥१४॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि तुल्य स्वयंप्रकाश ! एवं अन्यों के प्रकाशक ! हे (पावक-शोचे) पवित्र प्रकाश से युक्त ! हे (होतः) यज्ञ-होता के समान अपने ज्ञान आदि के दातः ! (यज्वा) दानशील होकर (अध्वरस्य विशः) यज्ञवत् न नाश करने योग्य प्रजा को (त्वं हि वेः) तू

हृदय से चाह, उसकी रक्षा कर। (यत्) जो तू (महिना) स्व सामर्थ्य से (वि भूः) विशेष शक्तिशाली है, तू (ऋता) ऐश्वर्यों को (यजासि) प्राप्त करता है और तभी, हे (यविष्ठ) अति बलवन्! (या ते हव्या) जो तेरे भोग्य पदार्थ हैं उनको तू (अद्य) आज के समान सदा (आ वह) प्राप्त कर और अन्यों को करा।

अभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यो नि त्वा दधीत रोदसी यजध्यै।
अवा नो मघवन्वाजसातावग्ने विश्वानि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥ १५ ॥ १६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! यज्ञकर्त्ता पुरुष जैसे (सुधितानि प्रयांसि अभि ख्यः) तृप्तिकारक अन्नों को सावधानी से देखता और विद्वान् जैसे (सुधितानि प्रयांसि अभि ख्यः) सुख से धारण-योग्य ज्ञानों का उपदेश देता है वैसे ही तू भी, हे प्रभो! राजन्! (सुधितानि) सुख से, उत्तम प्रकार से धारण योग्य (प्रयांसि) उत्तम प्रयत्नों और प्रयासशील सैन्यों को (अभि ख्यः) सब प्रकार से स्वयं देखा कर। जैसे प्रजाजन (रोदसी इव अजध्यै त्वा दधीत) सूर्य-पृथिवी-तुल्य स्त्री-पुरुषों को सुसंगत करने के लिये अग्नि का साक्षी रूप से आधान करते हैं वैसे ही शासक-शास्य और राजप्रजावर्ग दोनों को सुसंगत करने के लिये (त्वा दधीत) तुझ राजा, प्रभु को साक्षी रूप से (नि दधीत) स्थापित करें। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमें (वाजसातौ) बल और धन के लाभ-काल में, उनकी प्राप्ति के लिए एवं संग्राम के समय भी (अव) रक्षा कर। हे (अग्ने) दुःखों के नाशक! (तव अवसा) तेरे ज्ञान, रक्षा-सामर्थ्यादि से हम (विश्वानि दुरितानि) सब दुष्टाचरणों से (तरेम) पार हों और (ता तरेम) उन अनेक विघ्नों को पार करें, (तरेम) अवश्य पार करें।

अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम्।
कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ॥ १६ ॥

भा०—हे (सु-अनीक) उत्तम मुख वाले, मधुर-भाषिन् ! विद्वन् ! हे उत्तम सैन्य के स्वामिन् ! हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (प्रथमः) सबसे श्रेष्ठ है। तू (विश्वेभिः देवेभिः) समस्त विद्वानों के साथ (ऊर्णम्रदन्तं योनिम्) ऊन के आसन, वस्त्रादि-सम्पन्न, तथा प्रजा को उत्तम रीति से आच्छादन करने वाले (कुलायिनं) गृहोपयोगी द्रव्यों से समृद्ध, (घृतवन्तं) घृत आदि पदार्थों से पूर्ण गृह वा राष्ट्र को (सीद) प्राप्त कर और (यजमानाय) कर आदि देने वाले प्रजाजन के (यज्ञं) संगतियुक्त राजसभा आदि के कार्य को (साधु नय) भली प्रकार चला।

इममु त्यमथर्ववदग्निं मन्थन्ति वेधसः।
यमङ्कूयन्तमानयन्नमूरं श्याव्याभ्यः॥ १७॥

भा०—जैसे (वेधसः अथर्ववद्) विद्वान् पुरुष ईश्वरोपासक के समान (अग्निं मन्थन्ति) आग या विद्युत् को रगड़कर पैदा करते हैं और (श्याव्याभ्यः आ नयन्) रात्रि के अन्धकारों को दूर करने हेतु सब पदार्थों के प्रकाशक दीपक-रूप अग्नि को लाते हैं वैसे ही (इमम् उ त्यम्) इस (अथर्ववत्) अहिंसक, प्रजापति के तुल्य (अग्निं) प्रधान पुरुष को (मन्थन्ति) प्रजावर्ग में से खूब गुण-दोष-विवेचन और वादानुवाद के बाद मथ कर सारवत् प्राप्त करते हैं और (यम्) जिस (अमूरं) मोहरहित, सदोत्साही को (अंकूयन्तं) अपने द्योतक आदर्श ध्वजा के तुल्य श्रेष्ठ पुरुष को (श्याव्याभ्यः) अज्ञानी प्रजाओं, समृद्ध सेनाओं के हितार्थ (आनयन्) प्राप्त करें।

जनिष्वा देववीतये सर्वताता स्वस्तये।
आ देवान् वक्ष्यमृताँ ऋतावृधो यज्ञं देवेषु पिस्पृशः॥१८॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! प्रभो ! तू (स्वस्तये) कल्याणार्थ (सर्वताता) सबके हितार्थ, सर्वत्र (देव-वीतये) गुणों का प्रकाश करने और पदार्थों की प्राप्ति के लिये (जनिष्व) उत्पन्न हो। तू (ऋत-वृधः)

सत्यज्ञान, ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले (अमृतान्) दीर्घायु (देवान्) मनुष्यों को (आ वक्षि) सब स्थानों से प्राप्त कर, धारण कर। (देवेषु) उन विद्वानों और व्यवहारकुशल पुरुषों के आश्रय पर (यज्ञं पिस्पृशः) राज्य-पालन-रूप यज्ञ को धारण कर, दान आदि कार्य कर।

वयमु त्वा गृहपते जनानामग्ने अकर्म्म समिधा बृहन्तम्।
अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नस्तेजसा सं शिशाधि ॥ १९ ॥ २० ॥ १ ॥

भा०—(समिधा बृहन्तम्) जैसे लोग अग्नि को समिधा से बढ़ाते हैं वैसे ही हे (गृहपते) गृह के स्वामिन्! हे (अग्ने) तेजस्विन्! (वयम् उ) हम अवश्य (त्वा) तुझको (जनानाम्) मनुष्यों के हितार्थ (सम्-इधा) समर्थ तेज और ज्ञान से (बृहन्तम् अकर्म्म) वृद्धिशील बनावें जिससे (नः) हमारे (गार्हपत्यानि) गृह-कार्य (अस्थूरि) निर्विघ्न (सन्तु) हों और तू (तिग्मेन तेजसा) तीक्ष्ण प्रकाश से (नः) हमें (सं शिशाधि) अच्छी प्रकार शासन कर। इति विंशो वर्गः। इति षष्ठे मण्डले प्रथमोऽनुवाकः॥

[१६]

४८ भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ६, ७ आर्ची उष्णिक्। २, ३, ४, ५, ८, ९, ११, १३, १४, १५, १७, १८, २१, २४, २५, २८, ३२, ४० निचृद्गायत्री। १०, १९, २०, २२, २३, २९, ३१, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४१ गायत्री। २६, ३० विराड्गायत्री। १२, १६, ३३, ४२, ४४ साम्नीत्रिष्टुप्। ४३, ४५ निचृत्त्रिष्टुप्। २७ आर्चीपंक्तिः। ४६ भुरिक् पंक्तिः। ४७, ४८ निचृदनुष्टुप्॥ अष्टाचत्वारिंशदृचं सूक्तम्॥

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः।
देवेभिर्मानुषे जने ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रभो ! विद्वन् ! (विश्वेषां) समस्त (यज्ञानां) दान-योग्य पदार्थों का (होता) दाता, पूजनीय, दानी होकर (विश्वेषां हितः) सबका हितकारी, सब में प्रधान-रूप से स्थित है, तू (देवेभिः) विद्वानों द्वारा (मानुषे जने) मनुष्य-मात्र में पूज्य है ।

स नो॑ मन्द्राभि॑रध्व॒रे जि॒ह्वाभि॑र्यजा म॒हः ।

आ दे॒वान्व॑क्षि॒ यक्षि॑ च ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन् ! (सः) वह तू (मन्द्राभिः) स्तुति-योग्य, (जिह्वाभिः) वाणियों से (अध्वरे) यज्ञ में (महः यज) बड़ों की पूजा कर, (देवान्) विद्वान् पुरुषों के प्रति (आ वक्षि) आदर वचन बोल और (आ यक्षि च) आदर से दान दे ।

वेत्था॒ हि वे॑धो॒ अध्व॑नः प॒थश्च॑ दे॒वाञ्ज॑सा ।

अग्ने॑ य॒ज्ञेषु॑ सुक्रतो ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे (वेधः) विधातः ! हे (देव) दान-शील ! हे (सुक्रतो) शुभ कर्म और प्रज्ञा वाले ! तू (अञ्जसा) तेज से (अध्वनः) मार्गों, (पथः) पगदण्डियों को भी (वेत्थ हि) निश्चय से जानता है । हमें सन्मार्ग से लेजा ।

त्वामी॑ळे॒ अध॑ द्वि॒ता भ॑र॒तो वा॒जिभि॑ः शु॒नम् ।

ई॒जे य॒ज्ञेषु॑ य॒ज्ञिय॑म् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशक ! (भरतः) मनुष्य (शुनम्) सुखप्रद (त्वाम्) तुझको (द्विता) सगुण, निर्गुण दोनों तरह (वाजिभिः) ज्ञान-युक्त उपायों से (ईळे) पूजे और (यज्ञेषु) यज्ञों में (यज्ञियम्) पूज्य तुझ को (ईजे) प्राप्त हो ।

त्वमि॒मा वार्या॑ पु॒रु दिवो॑दासाय सुन्व॒ते ।

भ॒रद्वा॑जाय दा॒शुषे॑ ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्वी स्वामिन् ! (त्वम्) तू (इमा वार्या)

इन धनों को (पुरु) बहुत मात्रा में (सुन्वते) ऐश्वर्य प्राप्ति में यत्नवान् (दिवः दासाय) तेजस्वी, आचार्य-सेवक के तुल्य (भरद्वाजाय) अन्न धारक (दाशुषे) दानी भक्त को देता है। इत्येकविंशो वर्गः ॥

त्वं दूतो अमर्त्य आ वहा दैव्यं जनम्।

शृण्वन्विप्रस्य सुष्टुतिम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (अमर्त्य) अविनाशी! तू (विप्रस्य) विद्वान् की (सुस्तुतिम्) स्तुति को (शृण्वन्) सुनता हुआ (दूतः) शत्रुसंतापक (दैव्यं) दिव्य पदार्थों के ज्ञाता (जनं) मनुष्य को (आ वह) आदर से धारण कर।

त्वामग्ने स्वाध्यो३ मर्तासो देववीतये।

यज्ञेषु देवमीळते ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! (देव-वीतये) शुभ गुणों की प्राप्ति हेतु (यज्ञेषु) सत्संगों में (स्वाध्यः) उत्तम रीति से ध्यान करने वाले (मर्तासः) मनुष्य (त्वां देवं ईडते) तुझ देव की स्तुति करते हैं।

तव प्र यक्षि सन्दृशमुत क्रतुं सुदानवः।

विश्वे जुषन्त कामिनः ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वन्! हे प्रभो! (सु-दानवः) उत्तम ज्ञान, धन आदि देने-लेने हारे (विश्वे) समस्त (कामिनः) कामनावान् लोग (तव संदृशम्) तेरे सत्य ज्ञान (उत) और (क्रतुम्) कर्म को भी (जुषन्त) सेवन करते हैं। तू उनको (प्र यक्षि) ज्ञान और कर्म का उपदेश देता है।

त्वं होता मनुर्हितो वह्निरासा विदुष्टरः।

अग्ने यक्षि दिवो विशः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे प्रभो! (त्वं) तू (होता) सुखदाता (मनुः) मननशील, (वह्निः) कार्य-भार को उठाने हारा है।

स्तरः) अधिक विद्वान् होने से (आसा) सुख से उपदेश द्वारा (विशः) सुखेच्छुक प्रजाओं को (यक्षि) ज्ञानोपदेश दे ।

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।

नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (गृणानः) उपदेश देता हुआ (वीतये) प्रजाजनों को ज्ञान से प्रकाशित करने और (हव्यदातये) ज्ञानैश्वर्य देने के लिये (आ याहि) प्राप्त हो और (होता) दानशील तू (बर्हिषि) आदर-युक्त आसन, प्रजाजन वा राज्य सभा में (नि सत्सि) नियत होकर विराज । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि ।

बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥ ११ ॥

भा०—हे (अंगिरः) अंगारों में अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! (समिद्भिः घृतेन) काष्ठों और घृत से अग्नि के तुल्य हम (तं त्वा) उस तुझको (समिद्भिः) प्रकाश-युक्त वचनों और (घृतेन) आदरार्थ देने योग्य अन्न आदि से (वर्धयामसि) बढ़ावें । हे (यविष्ठ्य) अति युवन् ! तू (बृहत्) महान् होकर (समिद्भिः घृतेन) तेजोमय ज्ञान से (शोच) प्रकाशित हो ।

स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि ।

बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (देव) विद्वन् ! हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (सः) वह तू (नः) हमें (पृथु) विस्तृत (श्रवाय्यं) श्रवण-योग्य (बृहत्) बड़ा (सुवीर्यं) उत्तम वीर्य, ज्ञान और तप (अच्छ विवाससि) अच्छी प्रकार दे ।

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत ।

मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ १३ ॥

भा०—जैसे (अथर्वा) वायु (विश्वस्य मूर्ध्नः) समस्त संसार के मूर्धा अर्थात् सर्वोपरि स्थित (पुष्करात्) सबके पोषक, अन्तरिक्ष, मेघ

से (अग्निम् निर् अमन्थत) विद्युत् रूप अग्नि को मथकर प्रकट करता है वैसे ही (वाघतः) विद्वान् लोग भी, हे (अग्ने) भौतिक अग्ने! (त्वाम्) तुझको (विश्वस्य मूर्ध्नः) संसार के शिरोरूप से स्थित (पुष्करात्) सबके पोषक सूर्य या मेघ से (निर् अमन्थत) मथ कर प्राप्त करें और (अथर्वा) अहिंसक, विद्वान्, हे (अग्ने) अग्रणी नायक! सर्व-पोषक कृषक जन प्रजाजन में से ही (त्वाम् निर् अमन्थत) तुझ नायक को सारवान् जानकर वाद-विवाद के अनन्तर प्राप्त करें।

तमु॑ त्वा द॒ध्यङ्ङृषि॑: पु॒त्र ई॑धे॒ अथ॑र्वणः ।

वृ॒त्र॒हणं॑ पुरन्द॒रम् ॥ १४ ॥

भा०—हे (अग्ने) नायक! हे आत्मन्! (अथर्वणः) प्रजा का नाश न होने देने वाले पुरुष का (पुत्रः) प्रतिनिधि पुरुष, जो बहुतसों की रक्षा में समर्थ है। वह (दध्यङ्) राष्ट्र धारण में समर्थ और (ऋषिः) सत्यासत्य का विवेचक हो, वह (तम् त्वाम्) उस तुझ (वृत्रहणं) बढ़ते शत्रु के नाशक और (पुरं-दरम्) शत्रुपुरों के ध्वंसक को (ईधे) प्रकाशित करे।

तमु॑ त्वा पा॒थ्यो वृषा॒ समी॑धे दस्यु॒हन्त॑मम् ।

ध॒न॒ञ्ज॒यं रणे॑रणे ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—जैसे (पाथ्यः वृषाः समीधे) जलयुक्त, बरसता मेघ विद्युत् को चमकाता है वैसे ही हे नायक! (पाथ्यः) धर्म-पथ पर आरूढ़ (वृषा) बलवान् पुरुष (रणे-रणे) प्रत्येक रण में, (धनं-जयम्) ऐश्वर्यों के विजेता, (दस्युहन्तम्) प्रजाहन्ता डाकुओं के नाशक (तम् त्वाम् उ) उस तुझको (समीधे) तेजस्वी बनावे। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

एह्यू॒ षु ब्रवा॑णि॒ तेऽग्न॑ इ॒त्थेत॑रा॒ गिर॑: ।

ए॒भिर्व॑र्धास॒ इन्दु॑भिः ॥ १६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (आ इहि उ) आ, (ते) तुझे मैं

(इत्था) वेदवाणियों और (इतराः गिरः) अन्यान्य वाणियों का भी (सु ब्रवाणि) उपदेश दूँ। तू (एभिः) इन (इन्दुभिः) ऐश्वर्यों से (वर्धासि) बढ़।

यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम्।

तत्रा सदः कृणवसे ॥ १७ ॥

भा०—हे विद्वन्! (ते मनः) तेरा मन (यत्र क्व च) जहां कहीं चाहे वहां तू (उत्तरम्) उत्कृष्ट (दक्षं दधते) बल धारण कर और (तत्र) वहां (सदः कृण्वसे) अपना आश्रय, राजभवन, बना।

नहि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां वसो।

अथा दुवो वनवसे ॥ १८ ॥

भा०—हे (वसो) राष्ट्र में बसने बसाने हारे! प्रजाजन एवं राजन्! (ते) तेरे लिये (नेमानां) तेरे आगे झुकने वाले, स्वल्प-बल प्रजाजनों को (पूर्त्तम्) पूर्ण करने वाला बल (नहि अक्षि-पद् भुवत्) आंख से परे जाने वाला न हो। (अथ) और तू (दुवः वनवसे) शत्रु-पराजयारी सेनाओं को प्राप्त कर।

आग्निरंगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः।

दिवोदासस्य सत्पतिः ॥ १९ ॥

भा०—जैसे (अग्निः) अग्नि देह में जाठर रूप से, लोक में सौर तेज रूप से (भारतः) सबका भरण-पोषण करता है, (वृत्रहा) वह जीवन के अन्धकारों का नाशक है, (दिवः दासस्य सत्पतिः) प्रकाश दाता पदार्थों का पालक होता है वैसे ही (भारतः) 'भरत' अर्थात् मनुष्यों का हितकारी, (वृत्रहा) शत्रु-नाशक (पुरु-चेतनः) बहुतों को ज्ञानदाता, (अग्निः) तेजस्वी पुरुष (आ अगामि) प्राप्त हो। वह (दिवः दासस्य) कामना-योग्य पदार्थ के दाता गुरु और सेवकादि का (सत्पतिः) उत्तम पालक हो।

स हि विश्वाति पार्थिवा रयिं दाशन्महित्वना ।

वन्वन्नवातो अस्तृतः ॥ २० ॥ २४ ॥

भा०—(सः हि) वह निश्चय से (विश्वानि पार्थिवा) पृथिवी के समस्त ऐश्वर्यों को (अति) अतिक्रमण करने वाले (रयिम्) ऐश्वर्य को (महित्वना) अपने सामर्थ्य से (दाशत्) दे और (अवातः) कभी शत्रुरूप प्रतिकूल वायु से न झुककर, (अस्तृतः) कभी मारा न जाकर, सुख से उस ऐश्वर्य का (वन्वन्) भोग करे। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

स प्रत्नवन्नवीयसाग्ने द्युम्नेन संयता ।

बृहत्ततन्थ भानुना ॥ २१ ॥

भा०—(प्रत्नवत्) पहले के नायकों के तुल्य हे (अग्ने) विद्वन्! राजन्! (सः) वह तू (नवीयसे) नये-नये, (द्युम्नेन) धन और यश से (भानुना) तेज से सूर्य-समान (संयता) सुप्रबन्धक सैन्य बल से (बृहत्) बड़े राष्ट्र को (ततन्थ) विस्तृत कर।

प्र वः सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।

अर्च गाय च वेधसे ॥ २२ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्र-जनो! जो (वः) आप में से (वेधसे) विद्वान् के लिये (स्तोमं गाय) उपदेश देता और (यज्ञं अर्च च) दान-योग्य पदार्थ आदर से देता है, उसी (अग्नये) विद्वान् और (वः) आप लोगों में से (वेधसे) कार्य-कुशल पुरुष के आदरार्थ आप (स्तोमं यज्ञं अर्च च गाय च) स्तुति-युक्त वचन कहो और सत्कार करो।

स हि यो मानुषा युगा सीदद्धोता कविक्रतुः ।

दूतश्च हव्यवाहनः ॥ २३ ॥

भा०—(यः) जो (होता) उचित पदार्थ का लेने-देने और अन्यों का सत्कारक, (कवि-क्रतुः) पुरुष उत्तम कर्म और बुद्धि का धारक, (दूतः) दूत और (हव्य-वाहनः) विद्युत्वत् हव्य, अन्नों का धारक है,

वह विद्वान् ही (मानुषा युगा) मनुष्यों के जोड़े स्त्री-पुरुषों के ऊपर अध्यक्ष होकर (सीदत्) विराजे ।

ता राजाना शुचिव्रतादित्यान्मारुतं गणम् ।

वसो यक्षीह रोदसी ॥ २४ ॥

भा०—हे (वसो) सबके बसाने हारे ! तू (शुचि-व्रता राजाना) शुद्ध आचरण वाले राजा के तुल्य तेजस्वी (रोदसी) सूर्य-पृथ्वी के तुल्य पति-पत्नी को और (आदित्यान्) सूर्य की किरणों वा बारह मासों के समान सबको सुख दाता (आदित्यान्=अदितेः पुत्रान्) भूमि-पालक जनों और (मारुतं जनम्) वायुवत् बली वीरों के समूह तथा सामान्य जनों को भी (इह) इस राष्ट्र में (यक्षि) बसा ।

वस्वी ते अग्ने सन्दृष्टिरिषयते मर्त्याय ।

ऊर्जो नपादमृतस्य ॥ २५ ॥ २५ ॥

भा०—जैसे सूर्य वा अग्नि का (संदृष्टिः) उत्तम दर्शन वा प्रकाशित होना मनुष्यमात्र को बसाता है, (इषयते) अन्न देता है, वैसे ही हे (अग्ने) हे तेजस्वी पुरुष ! हे (ऊर्जः नपात्) अन्न और बल को न गिरने देने हारे ! (अमृतस्य) अविनाशी (ते) तेरा (सम् दृष्टिः) सम्यक् दर्शन ही (वस्वी) सबको बसाने वाला होकर (मर्त्याय इषयते) मनुष्य-मात्र को अन्नवत् पुष्ट करता है । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठोऽद्य त्वा वन्वन्त्सुरेक्णाः ।
मर्त आनाश सुवृक्तिम् ॥ २६ ॥

भा०—हे प्रभो ! जो पुरुष (अद्य) आज, तेरे प्रति (क्रत्वा) ज्ञान और कर्म से अपने को (दाः) देता, तुझ पर न्योछावर करता है, वह (त्वा वन्वन्) तेरा भजन करता हुआ (श्रेष्ठः) श्रेष्ठ और (सुरेक्णाः) उत्तम धनवान् (अस्तु) हो । वही (मर्तः) मनुष्य (सुवृक्तिम् त्वाम्) सुखपूर्वक दुःखहर्ता तुझको (आनाश) पाता है ।

ते ते अग्ने त्वोता इषयन्तो विश्वमायुः ।

तरन्तो अर्यो अरातीर्वन्वन्तो अर्यो अरातीः ॥ २७ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (अरातीः अर्यः इव) अदाता कृपणों को जैसे धनस्वामी अपने वैभव से लांघ जाता है वैसे ही जो (अरातीः अर्यः) करादि न देने वाले शत्रुओं को (तरन्तः) पार करते हुए और (वन्वन्तः) उनका नाश करते हुए, (त्वा उताः) तुझसे सुरक्षित रहते हैं (ते, ते) वे वे तेरे अधीन जन (इषयन्तः) अन्न को चाहते हुए (विश्वम् आयुः) पूर्ण जीवन पाते हैं ।

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्य१त्रिणम् ।

अग्निर्नो वनते रयिम् ॥ २८ ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि-तुल्य तेजस्वी पुरुष (तिग्मेन शोचिषा) अपने तीक्ष्ण तेज से, (विश्वम् अत्रिणं) समस्त प्रजाभक्षक जन को (नि यासत्) नाश करे, वह (अग्निः) तेजस्वी (नः) हमारा (रयिम्) ऐश्वर्य (वनते) पाता है ।

सुवीरं रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे ।

जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥ २९ ॥

भा०—हे (जातवेदः) ज्ञानवन् ! (विचर्षणे) विविध मनुष्यों के स्वामिन् ! हे ज्ञान द्रष्टः ! तू (सु-वीरं) उत्तम वीरों से युक्त (रयिम्) ऐश्वर्य को (आ भर) प्राप्त कर और हे (सुक्रतो) उत्तम कर्म में समर्थ ! तू (रक्षांसि) विघ्नकारी पुरुषों को (जहि) नाश कर ।

त्वं नः पाह्यंहसो जातवेदो अघायतः ।

रक्षा णो ब्रह्मणस्कवे ॥ ३० ॥ २६ ॥

भा०—हे (जातवेदः) ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! हे (ब्रह्मणः कवे) वेद के उपदेष्टा ! हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! (त्वं) तू (नः) हमें और (नः ब्रह्मणः) हमारे विद्वान् ब्राह्मणों को (अंहसः पाहि) पाप से बचा ।

(अघायतः) अत्याचारी से भी (नः) हमारी (रक्ष) रक्षा कर। इति षड्विंशो वर्गः ॥

यो नो॑ अग्ने दु॒रेव॒ आ मर्तो॑ व॒धाय॒ दाश॑ति ।

तस्मा॑न्नः पा॒ह्यंह॑सः ॥ ३१ ॥

भा०—हे (अग्ने) दुष्ट को जला देने हारे ! (यः) जो (दुरेवः) दुष्ट आचरण वाला, (मर्त्तः) मनुष्य (नः बधाय) हमारे नाश के लिये (आ दाशति) सब यत्न करता है, (तस्मात् अंहसः) उस पापी से (नः पाहि) हमें बचा।

त्वं तं दे॑व जि॒ह्वया॒ परि॑ बाधस्व दु॒ष्कृत॑म् ।

मर्तो॒ यो नो॒ जिघां॑सति ॥ ३२ ॥

भा०—हे (देव) दानशील राजन् ! (यः मर्त्तः) जो मनुष्य (नः) हमें (जिघांसति) मारना चाहता हो (त्वं) तू (दुष्कृतम्) दुष्टाचरण वाले पापी को (जिह्वया) आज्ञा द्वारा (परि बाधस्व) विनाश कर।

भ॒रद्वा॑जाय स॒प्रथः॒ शर्म॑ यच्छ सहन्त्य ।

अग्ने॒ वरे॑ण्यं॒ वसु॑ ॥ ३३ ॥

भा०—हे (सहन्त्य) बलवन्, (अग्ने) हे तेजस्विन् ! तू (भरद्वाजाय) अन्न और बल के धारक प्रजाजन को (सप्रथः शर्म) विस्तृत शरण (यच्छ) दे और (वरेण्यं वसु) श्रेष्ठ धन व बसने योग्य भूमि दे।

अ॒ग्निर्वृ॒त्राणि॑ जङ्घनद् द्रवि॒ण॒स्युर्वि॑प॒न्यया॑ ।

समि॑द्धः शु॒क्र आहु॑तः ॥ ३४ ॥

भा०—जब जैसे (वृत्राणि जंघनद्) बढ़ते मेघों को प्राप्त करता है और जैसे (अग्निः) सूर्य या विद्युत् (वृत्राणि जंघनत्) मेघों पर प्रहार करता है, वैसे ही, हे (शुक्र) कान्तिमान् ! कर्मकुशल ! तू (समिद्धः) खूब तेजस्वी और (आहुतः) आहुति-प्राप्त अग्नि-तुल्य प्रजाजनों द्वारा संवर्धित तथा (आहुतः=आहूतः) शत्रु द्वारा ललकारा जाकर (विप-

-वयया) विशेष व्यवहार-कुशल वाणी से (द्रविणस्युः) धन चाहता हुआ (वृत्राणि जंघनत्) धनों को प्राप्त करे और विघ्नकारी का नाश करे।

गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे।

सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ ३५ ॥ २७॥

भा०—(मातुः योनिम् सीदन् गर्भे स्थितः) माता के गर्भाशय में पहुँचकर वहां स्थित बालक जैसे पुष्टि पाता है वैसे ही हे राजन्! तू (मातुः गर्भे) पृथ्वी के 'गर्भ' अर्थात् बीच में या राष्ट्र में (ऋतस्य योनिम् सीदन्) सत्य-न्याय के घर, सभा-भवन में, अध्यक्ष पद पर बैठता हुआ (अक्षरे) स्थिर पद पर (विद्युतानः) सूर्यवत् चमकता हुआ (पितुः पिता आ) पिता का भी पिता होकर विराज।

ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे।

अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥ ३६ ॥

भा०—हे (जातवेदः) धन-सम्पन्न! हे (विचर्षणे) विविध प्रजाओं के द्रष्टः! (यत्) जो (दिवि) प्रकाश में (दीदयत्) चमकता है या जिससे मनुष्य पृथिवी में चमके, ऐसा (प्रजा-वत्) प्रजा, पुत्र, शिष्यादि-युक्त (ब्रह्म) वेद-ज्ञान, अन्न और धन (आ भर) प्राप्त कर।

उप त्वा रण्वसंदृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत।

अग्ने ससृज्महे गिरः ॥ ३७ ॥

भा०—हे (सहस्कृत) विजयकारी बल से सम्पन्न! (अग्ने) तेजस्विन्! हम लोग (प्रयस्वन्तः) यत्नशील होकर (रण्वसन्दृशं त्वा उप) सम्यक् दर्शन वाले तेरे समीप रहकर (गिरः) वाणियों का (ससृज्महे) ज्ञान-लाभ करें।

उप च्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम्।

अग्ने हिरण्यसंदृशः ३८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! (हिरण्य-सन्दृशः) तेजोयुक्त सम्यक् दर्शन, ज्ञान से सम्पन्न (ते) तुझ (घृणेः) तेजस्वी और कृपालु की (शर्म) शरण (वयम्) हम (छायाम् इव) छाया-समान ही (उप अगन्म) प्राप्त करें।

य उ॒ग्र इ॑व शर्य॒हा ति॒ग्मशृ॑ङ्गो॒ न वंस॑गः।
अग्ने॒ पुरो॑ रु॒रोजि॑थ॥ ३९॥

भा०—(तिग्मशृंगो वंसगः न) जैसे तीखे सींगों वाला सांड (पुरः व्रजति) आगे के पदार्थों को तोड़ता है वैसे ही (यः) जो (उग्रः इव) प्रबल वायु के समान (शर्यहा) बाणों से मारने योग्य दुष्ट पुरुषों का नाशक होकर (पुरः रुरोजिथ) शत्रु पुरों को तोड़ता है, वह तू (वंसगः) सेवनीय ऐश्वर्य को प्राप्त हो।

आ यं हस्ते॒ न खा॒दिनं॒ शिशुं॑ जा॒तं न बिभ्र॑ति।
वि॒शाम॒ग्निं स्व॑ध्व॒रम्॥ ४०॥ २८॥

भा०—(खादिनं) खाने में संलग्न (जातं शिशुं न) उत्पन्न बालक को जैसे (हस्ते बिभ्रति) हाथों में लेते हैं वैसे ही (यं) जिस (स्वध्वरं) हिंसारहित, प्रजापालनादि कर्त्ता (विशाम्) प्रजाओं में (अग्निम्) अग्नि तुल्य तेजस्वी, नायक को प्रजा-जन (हस्ते) शत्रु-नाशक और दुष्टों को हनन करने वाले बल के ऊपर (खादिनं) आयुधसम्पन्न और (शिशुं जातं) प्रशंसनीय प्रसिद्ध पुरुष को (बिभ्रति) परिपुष्ट करते हैं वही श्रेष्ठ है। इत्यष्टाविंशो वर्गः।

प्र दे॒वं दे॒ववी॑तये॒ भर॑ता वसु॒वित्त॑मम्।
आ स्वे योनौ॒ नि षी॑दतु॥ ४१॥

भा०—हे विद्वान् प्रजाजनो! आप (देव-वीतये) विद्वानों की रक्षा, शुभ गुणों की प्राप्ति और कामनावान् प्रजाओं की रक्षार्थ (देवं) ज्ञान वा धन के दाता तेजस्वी (वसु-वित्तमम्) ऐश्वर्यों को भली प्रकार पाने

वाले पुरुष को (प्र भरत) अच्छी प्रकार पुष्ट करो, वह (स्वे योनौ) अपने स्थान पर (आ निषीदतु) आदर से बैठे।

आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम्।
स्योन आ गृहपतिम् ॥ ४२ ॥

भा०—(जात-वेदसि) विद्या में प्रसिद्ध गुरु के अधीन (आजातम्) विद्या-सम्पन्न (प्रियं) प्रिय, (अतिथिम्) अतिथि-तुल्य पूज्य, (गृह-पतिम्) गृह-पालक-तुल्य विद्वान् को (स्योने) सुखकारी पद पर (आ) स्थापित करो।

अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः।
अरं वहन्ति मन्यवे ॥ ४३ ॥

भा०—हे (अग्ने) नायक! (ये हि) जो भी (तव) तेरे (अश्वासः) अश्व-समान वेग से जाने वाले, (साधवः) कार्य-साधन-चतुर पुरुष (मन्यवे) तेरे मन्यु अर्थात् श के प्रति संग्रामादि करने के लिये (अरं वहन्ति) खूब कार्य-भार उठाते हैं उन को तू (युक्ष्व) उचित स्थानों पर रख।

अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये।
आ देवान्त्सोमपीतये ॥ ४४ ॥

भा०—हे विद्वन्! तू (नः अच्छ याहि) हमें भली प्रकार प्राप्त हो। (वीतये) हमारे भोग और रक्षा के लिये (प्रयांसि) उत्तम अन्नों व सैन्यों को (आ वह) धारण कर और (देवान्) विद्वान् पुरुषों को (सोमपीतये) ऐश्वर्य प्राप्त करने और पालन के लिये (आ वह) प्राप्त कर।

उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत्।
शोचा वि भाह्यजर ॥ ४५ ॥ २६ ॥

भा०—हे (भारत) प्रजा-पोषक एवं मनुष्यों के स्वामिन्! तू

(द्युमत्) कान्तियुक्त (अजस्रेण) निरन्तर चमकीले तेज से (उत् द्यवि-द्युतत्) सूर्य-तुल्य सबसे ऊंचा रह कर प्रकाशित हो। हे (अग्ने) नायक! हे (अजर) जरादि-रहित बलवान्! तु (शोचा) कान्ति से (वि भाहि) विविध प्रकार से चमक। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः।

वीती यो देवं मर्तो दुवस्येदग्निमीळीताध्वरे हविष्मान्।
होतारं सत्ययजं रोदस्योरुत्तानहस्तो नमसा विवासेत् ॥ ४६ ॥

भा०—(यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य (वीती) कामना से (देवं) तेजोमय, प्रभु की (दुवस्येत्) सेवा करता है और जो (हविष्मान्) अन्नादि सामग्री से युक्त होकर (अध्वरे अग्निम्) यज्ञ में विद्यमान अग्नि-तुल्य अहिंसा-योग्य कर्मों में ज्ञानवान् पुरुष का (ईडीत) आदर करता है वह (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी के तुल्य माता-पिताओं के भी ऊपर विद्यमान (होतारं) ज्ञान-दाता (सत्य-यजं) सज्जनों के उचित सत्य आचार, सत्य न्याय के दाता आचार्य और प्रभु को (उत्तान-हस्तः) ऊपर हाथ उठाकर (नमसा) आदरपूर्वक झुक कर (आविवासेत्) उसकी सेवा करे।

आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तष्टं भरामसि।
ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उत ॥ ४७ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! (ते) तेरे लिये हम (ऋचा) उत्तम मन्त्र से, आदर-युक्त वचन-सहित (हृदा) हृदय से (तष्टम्) सुसंस्कृत (हविः) अन्न (आ भरामसि) प्रस्तुत करें (ते) तेरे कार्य हेतु (ते) वे सब (उक्षणः) कार्य-भार उठाने वाले तथा वीर्यसेचन-समर्थ पशु और मनुष्य (ऋषभासः) सत्य से कान्तिमान् पुरुष (उत वशाः) राष्ट्रों के वशकारी (ते भवन्तु) तेरे अधीन हों।

अग्निं देवासो अग्रियमिन्धते वृत्रहन्तमम्।
येना वसून्याभृता तृळ्हा रक्षांसि वाजिना ॥४८॥३०॥५॥

भा०—(देवासः) विजयाभिलाषी पुरुष (वृत्रहन्तमम्) विघ्नकारी शत्रु के नाश में सबसे बढ़ के, (अग्नियम्) अग्रासन के योग्य, (अग्निम्) अग्रणी पुरुष को (इन्धते) प्रदीप्त करते हैं (येन वाजिना) जो ऐश्वर्य बल-सम्पन्न पुरुष (वसूनि आभृता) नाना धन लाता और (रक्षांसि तुळ्हा) दुष्टों का नाश करता है। इति त्रिंशो वर्गः। इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

[१७]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ४, ११ त्रिष्टुप्। ५, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप्। ७, ९, १०, १२, १४ निचृत्-त्रिष्टुप्। १३ स्वराट् पंक्तिः। १५ आर्च्युष्णिक् ॥

पिबा सोमम॒भि यमु॑ग्र तर्द॑ ऊ॒र्वं गव्यं॒ महि॑ गृणा॒न इ॑न्द्र।
वि यो धृ॑ष्णो॒ वधि॑षो वज्रहस्त॒ विश्वा॑ वृ॒त्रम॑मि॒त्रिया॒ शवो॑भिः ॥१॥

भा०—हे (वज्रहस्त) शस्त्र को वश में रखने हारे! हे (धृष्णो) शत्रुओं के मान भंजक! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (उग्र) शत्रुओं को उद्विग्न करने में समर्थ! (यः) जो तुम (शवोभिः) बलों से (वृत्रम्) बढ़ते शत्रु को और (विश्वा अमित्रिया) समस्त अमित्र-भाव वाले जनों को (वि वधिषः) विशेषतः दण्डित करते हो, वे आप (यम्) जिस (ऊर्वं) हिंसनीय शत्रु का (तर्दः) नाश करते और (गव्यं) भूमि-हितकारी कृषि आदि (महि) श्रेष्ठ कर्म का (गृणानः) उपदेश करते हुए आप उस (सोमम्) ऐश्वर्य का (पिब) उपभोग करो।

स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो यः शिप्रवान् वृषभो यो मतीनाम् ।
यो गोत्रभिद्वज्रभृद्यो हरिष्ठाः स इन्द्र चित्राँ अभि तृन्धि वाजान् ॥२

भा०—(यः) जो पुरुष (ऋजीषी) सरल-स्वभाव, (तरुत्रः) सब दुःखों से स्वयं पारकर्ता और अन्यों का नाशकों से रक्षक है और (यः) जो (शिप्रवान्) उत्तम मुख, नासिका वाला है (यः मतीनाम् वृषभः) मननशील विद्वानों में श्रेष्ठ, (यः गोत्रभिद्:) पर्वतों को विद्युत् के समान, भूमि-पालक राजाओं के भेदन में समर्थ और (यः) जो (हरिष्ठाः) अश्वसैन्यों और मनुष्यों पर अध्यक्ष रूप से स्थित है, (सः ईं पाहि) वह तू इस राष्ट्र का पालन कर और (सः) वह तू, हे (इन्द्र) ऐश्वर्य-वन्! (चित्रान्) अद्भुत (वाजान्) संग्रामकारी बलवान् परसैन्यों को (अभि तृन्धि) युद्ध द्वारा विनष्ट कर ।

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रु और अज्ञान के नाशक राजन्! विद्वन्! तू (प्रत्नथा) पुरातन, (ब्रह्म) वेदज्ञान और पूर्वजों के धनों को (पाहि) सुरक्षित कर । वह (त्वा मन्दतु) तुझे नित्य उपदेश दे, एवं प्रसन्न करे । तू उसका (श्रुधि) श्रवण कर । (उत) और (गीर्भिः) वेद-वाणियों तथा उपदेष्टा विद्वान् जनों द्वारा (वावृधस्व) बढ़ा कर । तू (सूर्यं आविः कृणुहि) सूर्य-समान तेजस्वी रूप को प्रकट कर । (इषः पीपिहि) अन्नों का पान कर, भोग कर । (शत्रून् जहि) शत्रुओं का नाश कर । (गाः अभि) जो भूमि पर आक्रमण करें उनको (तृन्धि) काट गिरा ।

ते त्वा मदा बृहदिन्द्र स्वधाव इमे पीता उक्षयन्त द्युमन्तम् ।
महामनूनं तवसं विभूतिं मत्सरासो जर्हृषन्त प्रसाहम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रु-नाशक! (ते) वे (इमे) ये

(मदाः) हर्षदायक और स्तुतिकर्ता तुझे सन्तुष्ट करने वाले (पीताः) पालन किये गये, (मत्सरासः) हर्ष-पूर्वक आगे बढ़ने वाले, (द्यु मन्तम्) तेजस्वी (त्वा) तुझ (महाम्) महान्, (अनूनं) किसी से अन्यून, सर्वाधिक (तवसं) बलवान्, (विभूतिं) विशेष सामर्थ्य-युक्त (प्रसाहम्) उत्तम बलशाली (त्वा) तुझको (उक्षयन्त) सींचें, तेरा अभिषेक करें, तुझे (जहषन्त) प्रसन्न करें ।

येभिः सूर्यमुषसं मन्दसानोऽवासयोऽपं दृळ्हानि दर्द्रत् ।
महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं नुत्था अच्युतं सदसस्परि स्वात् ॥५॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! जैसे सूर्य अपने तेजस्वी रूप को प्रकट करता, अन्धकारों को दूर करता, वैसे ही (मन्दसानः) स्वयं प्रसन्न एवं प्रजा की कामना करता हुआ, (येभिः) जिन उपायों से (सूर्यम्) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को और (उषसम्) उषा के समान कान्तियुक्त, वा शत्रु-दहनकारी सेना को (अवासयः) राष्ट्र में बसावे और (दृळ्हानि) दृढ़ शत्रु-सैन्यों को (अपदर्द्रत्) दूर करने में समर्थ होता है, उन ही उपायों से तू (महाम्) गुणों में महान्, (सन्तं) सज्जन (अद्रिम्) मेघवत् प्रजा पर कृपालु, न विदीर्ण होने वाले, (अच्युतम्) धर्म-मार्ग से च्युत न होने वाले, ब्राह्मण-वर्ग और क्षात्र शस्त्र-बल को (गाः परि) भूमियों पर, सब ओर (स्वात् सदसः परि) राजभवन से दूर तक (नुत्थाः) भेजा कर । इति प्रथमो वर्गः ॥

तव क्रत्वा तव तद्दंसनाभिरामासु पक्वं शच्या नि दीधः ।
और्णोर्दुर उस्रियाभ्यो वि दृळ्होदूर्वाद्गा असृजो अङ्गिरस्वान् ॥६॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! (तव क्रत्वा) तेरी बुद्धि से और (तव दंसनाभिः) तेरे कर्मों से, (आमासु) बुद्धि, बल में अपरिपक्व प्रजाओं में, तू अपने (पक्वं) परिपक्व बल, ज्ञान को (शच्या) शक्ति और वाणी द्वारा (नि दीधः) स्थापित कर । (उस्रियाभ्यः) किरणों वा गौओं के

लिये जैसे द्वार खोले जाते हैं वैसे ही (उस्रियाभ्यः) उन्नतिशील प्रजाओं के हितार्थं (दुरः) विघ्नवारक उपाय, (वि और्णोः) प्रकट कर, तू (अंगिरस्वान्) तेजस्वी पुरुषों का स्वामी होकर (ऊर्वात्) हिंसक शत्रु से (गाः) समस्त भूमियों को (वि असृजः) मुक्त कर।

पप्राथ क्षां महि दंसो व्युर्वीमुप द्यामृष्वो बृहदिन्द्र स्तभायः।
अधारयो रोदसी देवपुत्रे प्रत्ने मातरा यह्वी ऋतस्य ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! आप (महि दंसः) बड़े कर्मकौशल से (उर्वीम् क्षां पप्राथ) बड़ी भूमि को ऐश्वर्यों से भरो और आप (ऋष्वः) महान् होकर (उर्वीं द्याम्) बड़ी ज्ञानप्रकाश-युक्त राजसभा, वा शत्रु-विजयकारी सेना को और (बृहत्) बड़े राज्य को (उप स्तभायः) थाम। (ऋतस्य) न्याय के बल पर (यह्वीः) बड़ी, वा अपने पुत्रों के समान (मातरा) सबकी माता, पिता के तुल्य माननीय, (प्रत्ने) सनातन से स्थित, (देवपुत्रे) विद्वान्, उत्तम पुरुषों को उत्पन्न वा पालन करने वाली, (रोदसी) सूर्य और पृथ्वी के तुल्य परस्पर सम्बद्ध स्त्री-पुरुषों तथा राज-प्रजावर्ग को तू (अधारयः) धारण कर।

अध त्वा विश्वे पुर इन्द्र देवा एकं तवसं दधिरे भराय।
अदेवो यद्भ्यौहिष्ट देवान्त्स्वर्षाता वृणत इन्द्रमत्र ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! (यद्) जब (अदेवः) प्रकाश-रहित, तामसी पुरुष (देवान्) उत्तम मनुष्यों को (अभि औहिष्ट) प्राप्त होकर उनसे तर्क-वितर्क करे तब (स्वः साता) वे उत्तम उपदेशार्थ (अत्र) इस लोक में (इन्द्रम्) विद्वान् को (वृणते) प्राप्त करते हैं। ऐसे ही जब (अदेवः) अहित पुरुष (देवान् अभि औहिष्ट) मनुष्यों पर आक्रमण करे तब वे (स्वर्षाता) सुख प्राप्ति और संग्राम के लिये (इन्द्रम् वृणुते) शत्रुहन्ता सेनापति को वरें। (अध) और उसी निमित्त (विश्वे देवाः) सब मनुष्य, (एकं) अद्वितीय (तवसं) बलवान्, (त्वा) तुझको,

(अवाय) अपने पालन और संग्राम के लिये (पुरः दधिरे) आगे स्थापित करें।

अध॒ द्यौश्चि॑त्ते॒ अप॒ सा नु वज्रा॑द् द्वि॒ताऽन॑मद्भि॒यसा॒ स्वस्य॑ म॒न्योः।
अहिं॒ यदिन्द्रो॑ अ॒भ्योह॑सानं॒ नि चि॑द्वि॒श्वायुः॑ श॒यथे॑ ज॒घान॑ ॥ ६ ॥

भा०—(यत्) जो (विश्वायुः) सब मनुष्यों का स्वामी (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (ओहसानम् अहिम् अभि) सम्मुख आते शत्रु को (शयथे चित्) सुला देने के लिये मानो, (नि जघान) विनाश करता है, (अध) तब (द्यौः चित्) आकाश के तुल्य ही (सा) वह प्रजा, हे राजन्! (ते) तेरे समक्ष (द्विता अनमत्) दो प्रकार से झुके। एक तो (वज्राद् भियसा) शस्त्र-भय से, दूसरे (मन्योः भियसा) क्रोध-भय से।

अध॒ त्वष्टा॑ ते म॒ह उ॑ग्र॒ वज्रं॑ स॒हस्र॑भृष्टिं ववृतच्छ॒ताश्रि॑म्।
निका॑मम॒रम॑णसं॒ येन॒ नव॑न्त॒महिं॒ सं पि॑णगृजीषिन् ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—(अध) और, हे (ऋजीषिन्) सरल धर्म मार्ग पर अन्यों को चलाने और स्वयं चलने हारे! (ते महः) तेरे महान् (उग्रं) भयंकर (सहस्र-भृष्टिं) हजारों को एक बार में भून देने वाले, (शताश्रियम्) सैकड़ों पर आश्रित (अरमणसं) शत्रु को अच्छा न लगने वाले (निकामं) यथेष्ट (वज्रं) शस्त्रबल को (त्वष्टा) उत्तम शिल्पी (ववृतत्) बनावे। (येन) जिससे तू (नवन्तम्) स्तुतिशील नम्र (अहिम्) शत्रु को, मेघ को विद्युत् के समान (संपिणक्) दण्डित करे। इति द्वितीयो वर्गः ॥

वर्धा॒न्यं विश्वे॑ म॒रुतः॑ स॒जोषाः॒ पच॑च्छ॒तं म॑हि॒षाँ इ॑न्द्र॒ तुभ्य॑म्।
पू॒षा विष्णु॒स्त्रीणि॒ सरां॑सि धाव॑न्वृत्र॒हणं॑ मदि॒रमं॒शुम॑स्मै ॥ ११ ॥

भा०—(यं) जिसको (विश्वे मरुतः) सब वीर एवं प्रजा-जन (सजोषाः) प्रीतियुक्त होकर (वर्धान्) बढ़ाते हैं, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (पूषा) सर्व-पोषक सूर्य, (तुभ्यम्) तेरे लिये (शतं) सैकड़ों, (महिषान्)

बड़े, श्रेष्ठ भोग्य अन्न, फलादि देने वाले वृक्षों और खेतों को (पचत्) पकाता है और (विष्णुः) व्यापक (धावन्) वेगवान् वायु (त्रीणि सरांसि) तीनों जाने योग्य लोकों को (धावन्) जाता हुआ, (अस्मै) इस राज्य के नायक (वृत्रहणम्) शत्रु-नाशक, (मदिरम्) हर्षजनक (अंशुम्) तेज को देता है।

आ क्षोदो महि वृतं नदीनां परिष्ठितमसृज ऊर्मिमपाम्।
तासामनु प्रवत इन्द्र पन्थां प्रार्दयो नीचीरपसः समुद्रम्॥१२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! जैसे सूर्य (नदीनां) नदियों के (अपां) जलों के (ऊर्मिम्) ऊपर गये अंश को (महिः क्षोदः) बड़े भारी, अति क्षुद्र कणिका-रूप में विद्यमान, (वृतं) आच्छादित और (परि स्थितम्) आकाश में व्याप्त (असृजः) करता है और वही (प्रवतः अनु) नीचे के देशों की ओर (तासां पन्थाम्) उन जलों का मार्ग बनाता है और (समुद्रम् प्रति अपसः नीचीः प्र अर्दयः) समुद्र के प्रति उनके वेगों को नीचे की ओर ही कर देता है, वैसे ही (नदीनाम् अपाम्) समृद्धिशाली प्रजाओं के (महि) बड़े भारी (वृतं) सुरक्षित, (ऊर्मिम्) उन्नत और (परि स्थितम्) सब ओर विराजते (क्षोदः) बल को (असृजः) प्राप्त कर और (प्रवतः अनु) उत्तम उद्देश्यों के प्रति, हे (इन्द्र) राजन्! (तासाम् पन्थाम् असृजः) उन प्रजाओं का मार्ग बना तथा (समुद्रम् प्रति) समुद्र के समान महान् प्रभु के प्रति उनके (अपसः प्रार्दयः) कर्मों को प्रेरित कर।

एवा ता विश्वा चकृवांसमिन्द्रं महामुग्रमजुर्यं सहोदाम्।
सुवीरं त्वा स्वायुधं सुवज्रमा ब्रह्म नव्यमवसे ववृत्यात्॥१३॥

भा०—(एव) इस प्रकार (ता विश्वा) उन कर्मों को (चकृवांसम्) करते हुए, (इन्द्रम्) ऐश्वर्य-युक्त, (महा) महान्, (उग्रम्) बलवान्, (अजुर्यम्) जरा-रहित, (सहोदाम्) बलप्रद (सुवीरं) उत्तम वीर, (स्वा-

शुधम्) उत्तम शस्त्रास्त्र सम्पन्न, पुरुष को प्रजा (अवसे) रक्षा और ऐश्वर्य के लिये (आववृत्यात्) सब प्रकार से प्राप्त करे और वह (नव्यम्) उत्तमोत्तम (ब्रह्म) धन, अन्नादि को प्राप्त करे ।

स नो वाजाय श्रवस इषे च राये धेहि द्युमत इन्द्र विप्रान्।
भरद्वाजे नृवत इन्द्र सूरीन्दिवि च स्मैधि पार्ये न इन्द्र ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (सः) वह तू (द्युमतः) कान्ति से युक्त (नः) हमें (वाजाय श्रवसे, इषे, राये) बलैश्वर्य, अन्न, कीर्त्ति, ज्ञान, सुख तथा (राये) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (धेहि) धारण कर । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (नृवतः सूरीन्) मनुष्यों के स्वामियों और विद्वानों को (भरद्वाजे) अन्नादि से भरण-पोषण के काम में और (दिवि) राज-सभा और न्यायव्यवहार में (धेहि) नियुक्त कर । हे ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (पार्ये) संकटों से पार करने में समर्थ (एधि) हो ।

अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—(अया) इस रीति से हम (देव-हितम्) मनुष्यों के हित-कारी विद्वान् पुरुषों में विद्यमान (वाजं) ज्ञान, ऐश्वर्य, अन्न आदि पदार्थ को (सनेम) सेवन करें और औरों को दान करें । इस प्रकार हम (सु-वीराः) उत्तम पुत्र-पौत्रादिवान् होकर, (शत-हिमाः) सौ वर्षों तक (मदेम) आनन्द में रहें । इति तृतीयो वर्गः ॥

[१८]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६, १४ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ८, ११, १३ त्रिष्टुप् । ७, १० विराट् त्रिष्टुप् । १२ भुरिक् त्रिष्टुप् । ३, १५ भुरिक् पंक्तिः । ५ स्वराट् पंक्तिः ॥ ६ ब्राह्म्युष्णिक् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः ।
अषाळ्हमुग्रं सहमानमाभिर्गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन्! (यः) जो (अभिभूत्योजाः) शत्रु-पराभव करने में समर्थ हो और जो (अवातः) स्वयं न मारा जाकर भी (पुरु-हूतः) बहुतों से स्तुति-योग्य और (वन्वन्) शत्रुओं का नाशक हो (तम् उ) उसकी अवश्य, तू (स्तुहि) स्तुति कर। तू उस ही (चर्षणीनां वृषभम्) मनुष्यों में श्रेष्ठ (अषाढं) पराजित न होने वाले, (उग्रं) बलवान् (सहमानम्) शत्रु-पराजयकारी पुरुष को (गीर्भिः) वाणियों से (वर्ध) बढ़ा।

स युध्मः सत्वा खजकृत्समद्वा तुविम्रक्षो नदनुमाँ ऋजीषी।
बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणामेकः कृष्टीनामभवत्सहावा॥ २॥

भा०—(सः) वह (युध्मः) युद्ध में चतुर, (सत्वा) बलवान्, (खजकृत्) संग्रामों का कर्त्ता, (समद्वा=सम्-अद्वा, स-मद्वा) उत्तम अन्न का भोक्ता, वा सबके साथ प्रसन्न रहने वाला, (तुवि-म्रक्षः) बहुत-सी प्रजाओं का स्नेही (नदनुमान्) गर्जनाशील, उपदेष्टा, (ऋजीषी) सरल मार्ग में प्रेरणा देने वाला, (बृहद्रेणुः) बहुत से वीर पुरुषों का स्वामी, (मानुषीणाम् कृष्टीनाम्) मननशील प्रजाओं में (एकः) अकेला, (च्यवनः) नेता और (सहावा) बलवान् (अभवत्) हो।

त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूँरेकः कृष्टीरवनोरार्याय।
अस्ति स्विन्नु वीर्यं१ तत्त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः॥३॥

भा०—(त्वं ह) तू निश्चय से, (त्यदत्) वह है जो (एकः) अकेला ही (आर्याय) श्रेष्ठ पुरुषों के हितार्थ (दस्यून् अदमायः) प्रजानाशक पुरुषों का दमन करे और तू (कृष्टीः अवनोः) कृषि करने वाली प्रजाओं की रक्षा करे। (तत् ते वीर्यं अस्ति स्वित्) तेरा वह अद्वितीय बल है भी (न स्विद् अस्ति) या नहीं है (तत्) इस बात को हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (ऋतुथा) अवसर २ पर (वि वोचः) विशेषतः बतलाया कर।

सदिद्धि ते तुविजातस्य मन्ये सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य।
उग्रमुग्रस्य तवसस्तवीयोऽरध्रस्य रध्रतुरो बभूव॥ ४॥

भा०—हे (सहिष्ठ) बलशालिन् ! (तुरतः तुरस्य) हिंसक पुरुष को मारने वा अश्वादि-बल को शीघ्रता से चलाने वाले (तुवि-जातस्य) बहुतों में प्रसिद्ध, (ते) तेरा (सहः सत् हि) शत्रु-पराभवकारी बल निश्चय से विद्यमान ही है (इति मन्ये) मैं यह मानता हूँ। (अरध्रस्य) शत्रु के वश न आने वाले (रध्रतुरः) हिंसकों के नाशक (तवसः) बलवान्, (उग्रस्य) भयंकर तेरा (तवीयः) अत्यधिक (उग्रम्) भयंकर बल (बभूव) हो।

तन्नः॑ प्र॒त्नं स॒ख्यम॑स्तु यु॒ष्मे इ॒त्था वद॑द्भि॒र्व॒लमङ्गि॑रोभिः।
हन्न॑च्युतच्युद्दस्मे॒षय॑न्तमृ॒णोः पुरो॒ वि दुरो॑ अस्य॒ विश्वाः॑ ॥५॥४॥

भा०—हे (अच्युत्) इन्द्र ! (नः) हमारा (युष्मे) तुम्हारे साथ (प्रत्नं सख्यम्) पुराना मैत्रीभाव (अस्तु) बना रहे। (इत्था) इस प्रकार (वदद्भिः) सत्य बोलते हुए (अंगिरोभिः) तेजस्वी पुरुषों की सहायता से तू (वलम्) नगर घेरने वाले (इषयन्तं) सैन्य सञ्चालक शत्रु को, मेघ को, सूर्य के समान (हन्) नष्ट करे। (अस्य) नाशक उसके तू (पुरः वि ऋणोः) नगरों का नाश कर और (विश्वाः दुरः वि ऋणः) अपनी समस्त शत्रुवारक सेनाओं को विविध दिशाओं में भेज। इति चतुर्थो वर्गः ॥

स हि धीभि॒र्हव्यो॒ अस्त्यु॒ग्र ई॑शान॒कृन्म॑ह॒ति वृ॑त्र॒तूर्ये॑।
स तो॒कसा॑ता॒ तन॑ये॒ स व॒ज्री वि॑तन्त॒साय्यो॑ अभवत्स॒मत्सु॑ ॥६॥

भा०—(सः हि) वह निश्चय से (धीभिः) बुद्धियों, कर्मों से (हव्यः अस्ति) प्रशंसनीय हो, वह (महति वृत्रतूर्ये) बड़े दुष्टनाशक संग्राम में (उग्रः) बलवान् और (ईशानकृत् अस्ति) सामर्थ्यवान् पुरुषों को अधिकारी बनाने हारा हो। (सः) वह (तनये) पुत्रों में (तोकसाता) धनादि का विभाजक और (सः) वह (वज्री) दण्डधारी (समत्सु) संग्रामों और उत्सवादि में (वितन्तसाय्यः अभवत्) विविध शत्रुओं का नाशक और राष्ट्र-सम्पत्ति का विस्तारक हो।

स मज्मना जनिम मानुषाणाममर्त्येन नाम्नाति प्र सर्स्रे ।
स द्युम्नेन स शवसोत राया स वीर्येण नृतमः समोकाः ॥७॥

भा०—(सः) वह राजा (मज्मना) बल से, (अमर्त्येन नाम्ना) असाधारण सामर्थ्य से (मानुषाणां जनिम) मनुष्यों के समूह को (अति प्रसर्स्रे) लांघ जावे । (सः) वह (द्युम्नेन) यश से (सः शवसा) वह बल से और (उत राया) धन से तथा (सः वीर्येण) वह वीर्य से (नृतमः) सब मनुष्यों में श्रेष्ठ और (सम्-ओकाः) सर्वोत्तम पद प्राप्त करे ।

स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्सुमन्तुनामा चुमुरिं धुनिं च ।
वृणक् पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्रः पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चित् ॥८॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रः) शत्रुनाशक राजा सूर्य-तुल्य तेजस्वी होकर (पिप्रुं) धन भरने वाले, (शम्बरं) मेघवत् सुखों के आच्छादक, (शुष्णम्) प्रजाशोषक (चुमुरिम्) प्रजा का सर्वस्व खाने वाले और (धुनिम् च) प्रजा को कंपाने वाले दुष्ट जनों का भी (वृणक्) नाशक है और जो (पुरां) पूर्ण ऐश्वर्यों के (च्यौत्नाय) प्राप्त करने, (शयथाय नू चित्) प्रजाओं के सुखपूर्वक सोने के लिये, शत्रु को रण में सुलाने के लिये, उक्त दुष्टों का नाश करता है, (यः न मुहे) जो कभी मोह में नहीं पड़ता, (न मिथू जनः भूत्) जो कभी असत्यवादी नहीं होता (सः) वह ही (सुमन्तु नामा भूत्) उत्तम मननशील प्रसिद्ध है ।

उदावता त्वक्षसा पन्यसा च वृत्रहत्याय रथमिन्द्र तिष्ठ ।
धिष्व वज्रं हस्त आ दक्षिणत्राभि प्र मन्द पुरुदत्र मायाः ॥९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (उद्-अवता) उत्तम मार्ग पर चलने हारे, (त्वक्षसा) शत्रुनाशक (पन्यसा) स्तुत्य व्यवहार से, तू (वृत्रहत्याय) विघ्नकारी शत्रुओं के नाश के लिये (रथम् तिष्ठ) रथ पर सवार हो और (दक्षिणत्र हस्ते) दायें हाथ में (वज्रम् धिष्व) शस्त्र ले ।

हे (पुरुदन्न) दान-योग्य धनों के स्वामिन्! तू (मायाः अभि प्रमन्द) उत्तम बुद्धियों को प्राप्त होकर हर्षित हो।

अ॒ग्निर्न शुष्कं॒ वन॑मिन्द्र हे॒ती रक्षो॒ नि ध॑क्ष्य॒शनि॒र्न भी॒मा।
ग॒म्भी॒रयं॑ ऋ॒ष्वया॒ यो रु॒रोजाध्वा॑नयद् दुरि॒ता द॒म्भय॑च्च ॥१०॥५॥

भा०—(अग्निः शुष्कं वनं न) आग जैसे सूखे वन को भस्म कर देती है और जैसे (भीमा अशनिः न) भयंकर विजुली वृक्षादि को जलाती है वैसे ही, हे (इन्द्र) इन्द्र! (यः) जो तू (ररोज) शत्रु-बल को भङ्ग करता, (अध्वनयत्) घोर नाद करता और (दुरिता) दुष्ट आचारों को भी (दम्भयत् च) नष्ट करता है, वह तू (हेतिः) आघात-कारी होकर स्वयं (गम्भीरया) गम्भीर नाद करने वाली (ऋष्वया) बड़ी शक्ति से युक्त होकर (रक्षः नि धक्षि) दुष्ट पुरुष को भस्म कर। इति पञ्चमो वर्गः॥

स॒हस्रै॑ प॒थिभि॑रिन्द्र रा॒या तुवि॑द्युम्न तुवि॒वाजे॑भिर॒र्वाक्।
या॒हि सू॑नो सहसो॒ यस्य॒ नू चि॒ददे॑व॒ ईशे॑ पुरुहूत॒ योतोः॑ ॥११॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बलवान् पिता के पुत्र! हे (पुरुहूत) बहुतों में प्रशंसित! (यस्य) जिस (योतोः) प्राप्त होने योग्य धन का (अदेवः) अदानशील पुरुष (ईशे) स्वामी है, उस धन को, तू (आ याहि) प्राप्त कर। हे (इन्द्र) दुष्टनाशक! हे (तुवि-द्युम्न) बहुत ऐश्वर्यों के स्वामिन्! तू (तुवि-वाजेभिः) बहुत वेगवान् अश्वादि से, (पथिभिः) श्रेष्ठ मार्गों से और (राया) बल से (सहस्रं अर्वाक् आ याहि) हजारों प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त हो।

प्र तु॑विद्यु॒म्नस्य॒ स्थवि॑रस्य॒ घृष्वे॑र्दि॒वो र॑रप्शे महि॒मा पृ॑थि॒व्याः।
नास्य॒ शत्रु॒र्न प्र॑ति॒मान॑मस्ति॒ न प्र॑ति॒ष्ठिः पु॑रुमा॒यस्य॒ सह्योः॑ ॥१२॥

भा०—(तुवि-द्युम्नस्य) बहुत ऐश्वर्यवान्, (स्थविरस्य) दीर्घजीवी, (घृष्वेः) शत्रुओं का घर्षण करने वाले, (पुरु-मायस्य) बहुत बुद्धि वाले,

(सह्योः) सहनशील पुरुष का (महिमा) सामर्थ्य (दिवः ररप्शे) आकाश व सूर्य से भी बढ़ जाता है और (पृथिव्याः प्र ररप्शे) पृथिवी से भी अधिक होता है। (अस्य शत्रुः न अस्ति) उसका कोई शत्रु नहीं होता। (न प्रति-मानम् अस्ति) न उसका कोई प्रतिद्वन्द्वी होता है और (न प्रति-ष्ठिः) न उसके मुकाबले पर खड़ा होने वाला होता है।

प्र तत्ते॑ अ॒द्या कर॑णं कृ॒तं भू॒त्कुत्सं॒ यदा॒युम॑तिथि॒ग्वम॑स्मै।
पु॒रू स॒हस्रा॒ नि शि॑शा अ॒भि क्षामुत्तू॑र्वयाणं धृष॒ता नि॑नेथ ॥१३॥

भा०—हे राजन्! (यत्) जो तू (अस्मै) इस राष्ट्र के लिये (पुरु) बहुत से (कुत्सं) शस्त्र-समूह को (नि शिशाः) शासन कर और (पुरु आयुम् नि शिशाः) बहुत से मनुष्यों को अपने अधीन शासन कर और (पुरु अतिथिग्वम् नि शिशाः) बहुत से अतिथियों को प्राप्त होने वाले सत्कार-योग्य धन दे, (पुरू सहस्रा नि शिशाः) बहुत से, हजारों बलों को भी शासन कर और (धृषता) शत्रु पराजयकारी बल से (तूर्वयाणं) शीघ्र यान वाले (क्षाम्) राष्ट्र-निवासी प्रजाजन को (अभि उद् निनेथ) ऊपर उठाता, उत्तम पद प्रदान करता है (अद्य) आज भी (ते) तेरा (तत्) यह (करणं) प्रदान करना या (कृतम्) किया हुआ कर्म भी (प्र भूत्) उत्तम सामर्थ्य को बढ़ाने वाला है।

अनु॑ त्वाहि॑घ्ने॒ अध॑ देव दे॒वा मद॒न्विश्वे॑ क॒वित॑मं क॒वीना॑म्।
करो॒ यत्र॒ वरि॑वो बाधि॒ताय॑ दि॒वे जना॑य त॒न्वे॑ गृणा॒नः ॥ १४ ॥

भा०—हे (देव) राजन्! तेजस्वी! (यत्र) जहां (बाधिताय) पीड़ित, दुःखित और (दिवे) कामना युक्त, (जनाय तन्वे) प्रजाजन के शरीर-सुख के लिये (गृणानः) उत्तम उपदेश करता हुआ तू ही (वरिवः) धन तथा सेवा (करः) करने हारा है उस देश में (कवीनां कवितमम्) विद्वान् क्रान्तदर्शी पुरुषों में श्रेष्ठ विद्वान् (त्वा) तुझको ही (विश्वे देवाः)

समस्त प्रजा के मनुष्य प्राप्त करके (अहिघ्ने) शत्रु के नाश करने के लिये (अनुमदन्) तेरे अनुकूल रहकर प्रसन्न होते हैं।

अनु द्यावापृथिवी तत्त ओजोऽमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः ।
कृष्वा कृत्नो अकृतं यत्ते अस्त्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः ॥१५॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अमर्त्याः) न मरने वाले, दीर्घ-जीवी (देवाः) विद्वान् और प्रजाजन, (द्यावा-पृथिवी अनु) सूर्य, पृथिवी का अनुकरण करते हुए (ते तत्) तेरे उस (ओजः) तेज को (अनु जिहत) प्राप्त करें। (यत् ते) और जो तेरा (अकृतं) न किया हुआ काम (अस्ति) है, हे (कृत्नो) कर्त्ता पुरुष ! तू उसे भी (कृष्व) कर और (यज्ञैः) सत्संगों द्वारा (नवीयः) उत्तमोत्तम (उक्थं जनयस्व) वेद-ज्ञान-मय उपदेश को प्रकट कर। इति षष्ठो वर्गः ॥

[१९]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, १३ भुरिक् पंक्तिः। ९ पंक्तिः। २, ४, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप्। ५, १०, ११, १२ विराट् त्रिष्टुप्। ८ त्रिष्टुप् ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

महा इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः ।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य जैसे (नृवत्) शरीर के नायक प्राणों से युक्त है, (चर्षणिप्राः) दर्शन कराने वाले आंखों को प्रकाश से पूर्ण करता और (द्वि-बर्हाः) अन्तरिक्ष और वायु दोनों से बढ़ने द्वारा, (वीर्याय) बल-वृद्धि के लिये होता है वैसे ही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष, (महान्) महान् हो। वह (नृवत्) नायक पुरुषों का स्वामी और (चर्षणि-प्राः) प्रजाओं को समृद्धि से भरने वाला, (सहोभिः) बलवान् सैन्य वर्ग से (अमिनः) सहायक वर्ग का स्वामी, शत्रु-पीड़क (उत) और (द्वि-बर्हाः) स्वपक्ष-विपक्ष, वा प्रजा वा शासक दोनों से बढ़ने एवं दोनों को बढ़ाने

वाला होकर (अस्मद्र्यक्) हमारे प्रति कृपायुक्त होकर (वीर्याय) अपने बल बढ़ाने हेतु (वतृधे) खूब बढ़े। वह (कर्तृभिः) कार्य करने वाले सहायकों सहित (सुकृतः) उत्तम कर्म करने हारा, (उरुः) महान् और (पृथुः) विशाल शक्तिसम्पन्न (भूत्) हो।

इन्द्र॑मे॒व धि॒षणा॑ सा॒तये॑ धाद् बृ॒हन्त॑मृ॒ष्वम॒जरं॒ युवा॑नम्।
अषा॑ळ्हेन॒ शव॑सा शूशु॒वांसं॑ स॒द्यश्चि॒द्यो वा॑वृ॒धे अस॑ामि ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (सद्यः चित्) बहुत शीघ्र, (असामि) बहुत (वावृधे) वृद्धि को प्राप्त होता है, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, (बृहन्तम्) महान् (अजरम्) अविनाशी, (युवानम्) तरुण, (अषाढेन शवसा) असह्य बल से (शूशुवांसम्) बढ़ने-बढ़ाने वाले, पुरुष को प्रजाजन (धिषणा) कर्म और बुद्धि से (सातये धात्) राज्य-भोग के लिये सर्वोपरि स्थापित करे।

पृ॒थू क॒रस्ना॑ बहु॒ला गभ॑स्ती अस्म॒द्र्य१॒क् सं मि॑मीहि॒ श्रवां॑सि।
यू॒थेव॑ प॒श्वः प॑शु॒पा दमू॑ना अ॒स्माँ इ॑न्द्रा॒भ्या व॑वृत्स्वा॒जौ ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यशालिन्! तू अपने (पृथू) विशाल (करस्ना) कर्मों को निर्दोष करने वाले (गभस्ती) बाहुओं को (बहुला) बहुत धन प्राप्त करने वाला बना और उनसे हमें (श्रवांसि) यश और ज्ञानादि को (सं मिमीहि) सम्मानपूर्वक दे। (पशुपा पश्वः यूथा इव) पशुपालक पुरुष जैसे पशुओं के यूथों को (आवर्त्तते) वश करता है वैसे ही (आजौ) संग्राम में तू (दमूनाः) दमनशील होकर (अस्मान् अभि) हमारे प्रति (आ ववृत्स्व) आ और हमारी रक्षा कर।

तं व॒ इन्द्रं॑ च॒तिन॑मस्य शा॒कैरि॒ह नू॒नं वा॑ज॒यन्तो॑ हुवेम।
यथा॑ चि॒त्पूर्वे॑ जरि॒तार॑ आ॒सुरने॑द्या अनव॒द्या अरि॑ष्टाः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (नूनं) निश्चय से हम लोग (वः) आप में से (इन्द्रं) ऐश्वर्यशील, (चतिनम्) शत्रु-नाशक, पुरुष को (अस्य शाकैः)

उसकी शक्तियों से (वाजयन्तः) ऐश्वर्यों की कामना करते हुए (इह तं हुवेम) इस राष्ट्र में उसको प्राप्त करें और (यथाचित्) जैसे (पूर्वे) पूर्व के (जरितारः) विद्वान् उपदेष्टा, (अनेद्याः) अनिन्दित आचरण वाले (अनवद्याः) पवित्र, (अरिष्टाः) अहिंसित-जीवन होकर (आसुः) रहें, वैसे ही हम भी उत्तम चरित्र वाले होकर रहें ।

धृतव्रतो धनदाः सोमवृद्धः स हि वामस्य वसुनः पुरुक्षुः ।
सं जग्मिरे पथ्या रायो अस्मिन्त्समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः ॥५॥७

भा०—(सः) वह (हि) निश्चय से (धृत-व्रतः) उत्तम कर्म करने के दृढ़ निश्चयों का धारक (धन-दाः) धन-दाता (सोम-वृद्धः) ऐश्वर्य से परिपुष्ट पुरुष (वामस्य वसुनः) सुन्दर, उपभोग-योग्य ऐश्वर्य और (पुरुक्षुः) बहुत से अन्नों का स्वामी हो । (समुद्रे सिन्धवः न) समुद्र में नदियों के समान (अस्मिन्) उसमें (पथ्याः रायः) सन्मार्गों से आने वाले ऐश्वर्य (यादमानाः) निरन्तर आते हुए (सं जग्मिरे) एकत्र हों । इति सप्तमो वर्गः ॥

शविष्ठं न आ भर शूर शव ओजिष्ठमोजो अभिभूत उग्रम् ।
विश्वा द्युम्ना वृष्ण्या मानुषाणामस्मभ्यं दा हरिवो मादयध्यै ॥६

भा०—हे (शूर) शत्रु-नाश में कुशल ! हे (अभिभूते) शत्रु पराजय में समर्थ ! तू (ओजिष्ठम्) सब से श्रेष्ठ और (उग्रम्) उग्र (ओजः) पराक्रम और (शविष्ठं शवः) सब से उत्तम बल (नः आभर) हमें प्राप्त करा । हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन् ! आप (मानुषाणाम्) मनुष्यों के (मादयध्यै) आनन्द-पूर्वक उपभोग के लिये, उनको सुखी करने हेतु (विश्वा) समस्त (वृष्ण्या) बलवान् पुरुषों के बलजनक (द्युम्ना) धन और यश (अस्मभ्यं दाः) हमें दें ।

यस्ते मदः पृतनाषाळमृध्र इन्द्र तं न आ भर शूशुवांसम् ।
येन तोकस्य तनयस्य सातौ मंसीमहि जिगीवांसस्त्वोताः ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो (ते) तेरा (मदः) उपदेश (पृतनाषाट्) सेना-विजय में समर्थ और (अमृध्रः) कभी नाश न होने योग्य है, (येन) जिसके द्वारा हम (त्वोताः) तुझसे सुरक्षित और (जिगीवांसः) विजयशील होकर (तोकस्य तनयस्य सातौ) पुत्र-पौत्र की प्राप्ति और धन-विभाग के कार्य में (संसीमहि) ठीक न्याय-व्यवहार जानें (तं) उस (शूशुवांसं) गुणी पुरुष को (नः आभर) हमें प्राप्त करा।

आ नो भर वृषणं शुष्ममिन्द्र धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
येन वंसाम पृतनासु शत्रून्तवोतिभिरुत जामीँरजामीन् ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! (वृषणं) बलवान्, (शुष्मम्) शत्रु-शोषक (धनस्पृतं) धन पूरक, (शूशुवांसम्) अति उत्तम, (सु-दक्षम्) व्यवहारकुशल पुरुष (नः भर) हमें दे। (येन) जिसके द्वारा (तव ऊतिभिः) तेरी रक्षा से सुरक्षित हम (जामीन् अजामीन्) क्या बन्धु-रूप और क्या बन्धुओं से भिन्न (शत्रून्) शत्रुओं को (पृतनासु) संग्रामों में (वंसाम) विनष्ट करें।

आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चादोत्तरादधरादा पुरस्तात् ।
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाङिन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! राजन् ! (ते) तेरा (वृषभः) तेजस्वी पुरुष (शुष्मः) शत्रु-शोषण में समर्थ, (पश्चात्) पीछे से, (उत्तरात्) बायें से, (अधरात्) नीचे से, (पुरस्तात्) आगे से (आ एतु) आवे। वह (विश्वतः) सब ओर से (आ एतु) आये, (अभि एतु) आगे बढ़े, (सम् एतु) ठीक प्रकार से चले। हे राजन् ! तू (अस्मे) हमारे उपकारार्थ (अर्वाङ्) प्राप्त होने वाले (स्ववंत्) सुखयुक्त, (द्युम्नं) धन, ज्ञान-प्रकाश (धेहि) धारण कर और करा।

नृवत्त इन्द्र नृतमाभिरूती वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः ।
ईक्षे हि वस्व उभयस्य राजन्धा रत्नं महि स्थूरं बृहन्तम् ॥ १० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! विद्वन्! (ते) तेरे (नृवत्) नेता पुरुष से युक्त, भृत्यादि-सम्पन्न (वामं) उत्तम धन और ज्ञान को हम लोग (नृ-तमाभिः) उत्तम पुरुषों से सेवन-योग्य (ऊती) क्रियाओं और (श्रोमतेभिः) उत्तम पुरुषों से श्रवण-योग्य (वंसीमहि) प्राप्त करें। हे (राजन्) गुणों से प्रकाशमान! तू (उभयस्य वस्वः) दोनों प्रकार के अर्थात् राष्ट्रवासी प्रजा-रूप धन और उपभोग-योग्य ऐश्वर्य सुवर्णादि को भी (ईक्षे.हि) निश्चय से देखता है। तू (महि) बड़ा (स्थूरं) स्थिर और (बृहन्तम्) महान् (रत्नं) उत्तम नर-रत्न को रत्नवद् (धाः) धारण कर।

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम्।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम॥ ११॥

भा०—हम लोग (नूतनाय) नये से नये, (अवसे) रक्षा और ज्ञान-प्राप्ति के लिये (मरुत्वन्तम्) वायु के गुणों से युक्त, वीर पुरुषों के स्वामी, (वृषभं) मेघवत् सुखों के वर्षक (वावृधानं) स्वयं बढ़ने वाले (अकवारिम्) शत्रु भी जिसकी निन्दा न करते हों, ऐसे (दिव्यम्) ज्ञान और तेज में प्रसिद्ध, (शासम्) शस्त्र-बल के तुल्य शासक, (इन्द्रम्) शत्रुहन्ता, (विश्वसाहम्) सबको पराजित करने वाले, (उग्रम्) बलवान् (सहोदाम्) बलप्रद, (तं) उस पुरुष को (इह) इस राष्ट्र में उच्चपद पर (हुवेम) प्राप्त करें।

जनं वज्रिन्महि चिन्मन्यमानमेभ्यो नृभ्यो रन्धया येष्वस्मि।
अधा हि त्वा पृथिव्यां शूरसातौ हवामहे तनये गोष्वप्सु॥१२॥

भा०—हे (वज्रिन्) अज्ञान-वर्जन में समर्थ! मैं (येषु अस्मि) जिनके बीच रहता हूँ (एभ्यः नृभ्यः) उन मनुष्यों के हितार्थ (मन्य-मानं जनं) अभिमानी पुरुष को (रन्धय) वश कर और (महिचित्) बड़े भारी, (मन्यमानं) अन्यों से आदर योग्य (जनं) मनुष्य को

(रंधय) अच्छी प्रकार आराधना कर। (अध हि) और हम (पृथिव्याम्) इस भूमि पर (शूर-सातौ) शूरवीरों के एकत्र होने योग्य संग्राम में (तनये, गोषु, अप्सु) पुत्र, गौ आदि पशु और प्राणों के निमित्त (त्वा हवामहे) तुझे प्राप्त करें।

व॒यं त॑ ए॒भिः पु॑रुहूत स॒ख्यैः शत्रोः॑शत्रो॒रुत्त॑र॒ इत्स्या॑म।
घ्नन्तो॑ वृ॒त्राण्यु॒भया॑नि शूर रा॒या म॑देम बृह॒ता त्वोताः॑ ॥१३॥८॥

भा०—हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित राजन्! (वयम्) हम (ते एभिः सख्येभिः) तेरे इन मित्रता-कार्यों से (शत्रोः शत्रोः) प्रत्येक शत्रु से (उत्तरे) ऊपर, उसे विजय करने में सफल (स्याम) हों, हे (शूर) वीर! हम (उभयानि वृत्राणि) दोनों प्रकार के 'वृत्र' अर्थात् विघ्नकारी पुरुषों और वरण-योग्य धनों को (घ्नन्तः) विनाश और प्राप्त करते हुए (बृहता) बड़े भारी (राया) ऐश्वर्य से (त्वा-ऊताः) तेरे द्वारा रक्षा पाकर (मदेम) सुखी जीवन बितावें। इत्यष्टमो वर्गः॥

[२०]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, आर्ष्यनुष्टुप्। २, ३, ७, १२ पंक्तिः। ४, ६ भुरिक् पंक्तिः। १३ स्वराट् पंक्तिः। १७ निचृत्पंक्तिः। ५, ८, ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप्। सप्तदशर्चं सूक्तम्॥

द्यौर्न य इ॑न्द्रा॒भि भूमा॒र्यस्त॒स्थौ र॒यिः शव॑सा पृ॒त्सु जना॑न्।
तं नः॑ स॒हस्र॑भरमुर्वरा॒सां द॒द्धि सू॑नो सहसो वृत्र॒तुर॑म् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यः) जो (रयिः) दानशील पुरुष (शवसा) बल से (पृत्सु) संग्रामों में (जनान्) शत्रुओं के (अभि तस्थौ) मुकाबले पर खड़ा हो सके वह तू (अर्यः) स्वामी, (द्यौः न) सूर्य-समान तेजस्वी और (भूम) पृथिवी-समान बलवान् हो। हे (सहसः सूनो) बलवान् सैन्य के सञ्चालक! तू ऐसे (वृत्र-तुरम्) विघ्नकारी शत्रु के नाशक (सहस्र-भरम्) सहस्रों पुरुषों के पोषण में समर्थ (उर्वरा-

साम्) अन्नादि-उत्पादक, उर्वरा भूमियों के भोक्ता (तं) उस पुरुष को (नः दद्धि) हमें दे।

दिवो न तुभ्यमन्विन्द्र सत्रासुर्यं देवेभिर्धायि विश्वम्।
अहिं यद्वृत्रमपो वव्रिवांसं हन्नृजीषिन्विष्णुना सचानः॥ २॥

भा०—(न) जैसे (अपः वव्रिवांसं) जलों को अपने भीतर रखने वाले (अहिं) मेघ को (विष्णुना सचानः) व्यापक वायु वा सूर्य से मिलकर (ऋजीषी) सरल रेखा में जाने वाला विद्युत् (हन्) आघात करता है तब (देवेभिः दिवः असुर्यं विश्वम् धायि) कामनावान् मनुष्य आकाश के मेघस्थ जल को प्राप्त करते हैं वैसे ही, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत्) जब (अपः वव्रिवांसम्) आप्त प्रजाजनों को घेर लेने वाले, (अहिम्) सर्पवत् कुटिल, बलवान्, (वृत्रम्) शत्रु को तू (विष्णुना) विस्तृत सैन्य बल से (सचानः) समवाय बनाकर (हन्) मारता है, हे (ऋजीषिन्) सरल मार्ग में प्रजाओं को ले जाने हारे राजन्! तब (तुभ्यम्) तेरे ही लिये (विश्वम् असुर्यम्) समस्त असुरों के नाशक बल और (असुर्यं) असुरों से प्राप्त ऐश्वर्य को (देवेभिः) मनुष्य, (सत्रा अनुधायि) निरन्तर धारते हैं।

तूर्वन्नोजीयान्तवसस्तवीयान्कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः।
राजाभवन्मधुनः सोम्यस्य विश्वासां यत्पुरां दर्त्नुमावत्॥ ३॥

भा०—(यः) जो (विश्वासाम् पुराम्) शत्रु के नगरों के (दर्त्नुम्) तोड़ने-फोड़ने में समर्थ बल को (आवत्) प्राप्त करे वह (तूर्वन्) शत्रु-नाश करता हुआ, (ओजीयान्) अति पराक्रमी, (तवसः) बलवान् से (तवीयान्) अधिक बलशाली, (कृत-ब्रह्मा) और बहुत धन, अन्न प्राप्त करके (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् होकर (वृद्ध-महाः) वृद्धों का आदरकर्ता हो। वह (सोम्यस्य) ऐश्वर्य से प्राप्त होने योग्य (मधुनः) मधुर सुखों का भोक्ता (राजा अभवत्) राजा हो।

शतैरपद्रन्पणय इन्द्रात्र दशोणये कवयेऽर्कसातौ ।
वधैः शुष्णस्याशुषस्य मायाः पित्वो नारिरेचीत्किं चन प्र ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अत्र) इस राष्ट्र में (अर्क-सातौ) पूज्य पुरुषों के सेवा करने और सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष का आश्रय, तथा 'अर्क', अन्नादि पदार्थों की प्राप्ति के लिये (दशओणये) दशों को अपने से न्यून करने हारे, सर्वश्रेष्ठ, (कवये) क्रान्तदर्शी पुरुष के लिये (पणयः) स्तुतिकर्त्ता, व्यवहार-चतुर पुरुष (शतैः) सैकड़ों की संख्या में (अपद्रन्) दूर २ तक जाया करें। (वधैः) वधकारी शस्त्रों से भी (शुष्णस्य) बलवान् (पित्वः) सबके पालक (अशुषस्य) शत्रु द्वारा शोषण न किये जाने वाले राजा की (मायाः) शक्तियों के (किंचन) लवमात्र भी कोई (न अरिरेचीत्) कम नहीं कर सकता ।

महो द्रुहो अप विश्वायु धायि वज्रस्य यत्पतने पादि शुष्णः ।
उरु ष सरथं सारथये करिन्द्रः कुत्साय सूर्यस्य सातौ ॥५॥६॥

भा०—(यत्) जो राजा (शुष्णः वज्रस्य) बलवान् शस्त्रबल के (पतने) पड़ जाने पर (द्रुहः) शत्रु के (महः) बड़े (विश्वायु) समस्त बल को (अप धायि) नीचे गिराता है, (सः) वह (इन्द्रः) सेनापति या राजा (सूर्यस्य सातौ) सूर्य तुल्य तेजस्वी पद की प्राप्ति के लिये (सारथये) अपने सारथी और (कुत्साय) शस्त्रबल की रक्षा के लिये, (उरु सरथं) एक ही रथ पर पर्याप्त उद्योग (कः) करे । इति नवमो वर्गः ॥

प्र श्येनो न मदिरमंशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
प्रावन्नमीं साप्यं ससन्तं पृणग्राया समिषा सं स्वस्ति ॥ ६ ॥

भा०—बलवान् राजा (दासस्य) प्रजा-नाशक, (नमुचेः) बुरे स्वभाव को न छोड़ने वाले, शत्रु के (शिरः) शिर को (मथायन्) नष्ट करता हुआ, (श्येनः) बाज-तुल्य वेग से आक्रमण करने वाला, सेना-

पति (अस्मै) इस राष्ट्र की वृद्धि हेतु (मदिरम् अंशुम्) तृप्तिकारक अन्न को (प्र अवत्) अच्छी प्रकार ग्रहण करे और (साप्यं) अपने साथ समवाय बनाकर रहने वाले, (ससन्तं) सोते हुए पुरुष के समान आगे लेटे, (नर्मी) नम्र होकर रहने वाले शत्रु की भी (प्र अवत्) अच्छी प्रकार रक्षा करे और उसको (राया संपृणक्) धन से संयुक्त करे और (इषा स्वस्ति संपृणक्) उसको अन्न आदि से संयुक्त करे।

वि पिप्रोरहिंमायस्य दृळ्हाः पुरो वज्रिञ्छवसा न दर्दः।
सुदामन्तद्रेक्णो अप्रमृष्यमृजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः ॥ ७ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) शस्त्रबल के धारक! तू (अहिमायस्य) मेघ-समान मायावी, (पिप्रोः) अपना पेट पूरने वाले शत्रु के (दृढाः पुरः) दृढ नगरों को भी (शवसा) बलपूर्वक (न दर्दः) क्यों न तोड़े? हे (सुदामन्) उत्तम दानशील! तू (ऋजिश्वने) सरल, धर्म मार्ग पर चलने वाले अश्वों और इन्द्रियों के स्वामी, (दाशुषे) कर आदि दाता प्रजाजन को (अप्रमृष्यम् दात्रं तत् रेक्णः दाः) ऐसा धन दे जिसे कोई न छीन सके।

स वेतसुं दशमायं दशोणिं तूतुजिमिन्द्रः स्वभिष्टिसुम्नः।
आ तुग्रं शश्वदिभं द्योतनाय मातुर्न सीमुप सृजा इयध्यै ॥ ८ ॥

भा०—(मातुः द्योतनाय न इयध्यै उपसृजे) माता को प्रसन्न करने के लिये जैसे बालक उसके पास आने का यत्न करता है वैसे ही (सः) वह राजा (मातुः द्योतनाय) मातृ-समान राष्ट्र-भूमि को चमकाने और (इयध्यै) प्राप्त करने के लिये (वेतसुं) राज्य को वश करने वाले दण्ड को (दशमायम्) दशगुणा बढ़ाने वाले, दशावरा-परिषत् को, (दशओणिम्) दशों दिशाओं को वश करने में समर्थ सेनापति को, (तूतुजिम्) शत्रु-नाशकारी (तुग्रम्) बल को अपने अधीन करने वाले सैन्य और (इयध्यै) गमनागमन के लिये (इभं) हस्ति को (शश्वत्) सदा (उप सृज) ग्रहण करे।

स ईं स्पृधो वनते अप्रतीतो बिभ्रद्वज्रं वृत्रहणं गभस्तौ ।
तिष्ठद्धरी अध्यस्तेव गर्ते वचोयुजा वहत इन्द्रमृष्वम् ॥ ९ ॥

भा०—(सः) वह राजा (गभस्तौ) हाथ में (वज्रं बिभ्रत्) शस्त्र वा दण्ड धारण किये, (अप्रतीतः) शत्रुओं से अज्ञात रहकर, (ईं स्पृधः वनते) अपने विरोधी शत्रुओं का नाश करे। (अस्ता इव गर्ते अधि हरी अतिष्ठत) जैसे धनुर्धर रथ पर चढ़कर अपने दो अश्वों पर शासन करता है वैसे ही राजा (गर्ते अधि) न्यायासन पर विराज कर (हरी अधि तिष्ठत्) वादी-प्रतिवादी दोनों पक्षों पर शासन करे। उस समय (ऋष्वम् इन्द्रम्) उस पूज्य, इन्द्रासन पर विराजते राजा को (वचो-युजा वहतः) वाणियों से परस्पर पर अभियोग करने वाले दो वकील सत्य-निर्णय पर पहुँचावें।

सनेम तेऽवसा नव्यं इन्द्र प्र पूरवः स्तवन्त एना यज्ञैः ।
सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासीः पुरुकुत्साय शिक्षन् ॥ १० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रु-नाशक! (यत्) जो तू (सप्त) सात (शारदीः) हिंसक शत्रु की (पुरः) नगरियों का (शर्म दर्द्) अपने बल से विनाश करता है और (पुरुकुत्साय) बहुत से शस्त्र समूहों के धारक सेनापति की (दासीः) शत्रु-नाशकारिणी सेनाओं को (शिक्षन्) युद्ध-शिक्षा और वेतनादि देता हुआ शत्रुओं को (हन्) दण्ड देता है, उस (ते) तेरे (अवसा) रक्षा-सामर्थ्य से हम (नव्यः) उत्तम सम्पदाओं को (सनेम) प्राप्त करें और (पूरवः) मनुष्यगण (यज्ञैः) सत्कारों द्वारा (एना) इन सम्पदाओं की (प्र स्तवन्त) खूब प्रशंसा करें।

त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूर्वरिवस्यन्नुशने काव्याय ।
परा नववास्त्वमनुदेयं महे पित्रे ददाथ स्वं नपातम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (उशने काव्याय) कामना वाले विद्वान्, या (पित्रे) पितृ-तुल्य ज्ञानदाता पुरुष के उपकारार्थ;

(स्वं नपातम्) कभी नष्ट न होने वाला धन और (नववास्त्वं) नवीन रहने का घर, पहनने का वस्त्र और (अनुदेयं) बाद में भी देने योग्य विदाई (पराददाथ) दिया कर। इस प्रकार (वृधः वरिवस्यन्) बड़ों की सेवा करता हुआ, (त्वं) तू (पूर्व्यः भूः) अपने पूर्व विद्यमान विद्या और वयस में वृद्ध जनों का हितकारी हो।

त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः।
प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ १२ ॥

भा०—जैसे (धुनिः धुनिमतीः अपः ऋणोः सीराः न स्रवन्तीः) मेघों को कंपाने वाला वायु कम्पनकारी विद्युतों से युक्त जलों को धाराओं के समान बहाता है वैसे ही, हे (इन्द्र) सेनापते! (त्वं) तू (धुनिः) शत्रुओं को कंपाने हारा होकर (धुनिमतीः अपः) स्तुतिशील आप्त प्रजाओं को (सीराः स्रवन्तीः न) बहती धाराओं के समान (ऋणोः) अपने अनुकूल चला। (यत्) जो, हे (शूर) वीर! तू (समुद्रं पर्षि) समुद्रवत् संकट को पार कर, (तुर्वशं) शीघ्र वश आने वाले (यदुम्) यत्नवान् प्रजाजन को भी (स्वस्ति पारय) सुखपूर्वक पार कर।

तव ह त्यदिन्द्र विश्वमाजौ सस्तो धुनी चुमुरी या ह सिष्वप्।
दीदयदित्तुभ्यं सोमेभिः सुन्वन्दभीतिरिध्मभृतिः पक्थ्य१र्कैः॥१३॥१०

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (तव ह त्यत् विश्वम्) यह सब तेरा ही सामर्थ्य है कि (आजौ) युद्ध में जो तेरे (धुनी चुमुरी) शत्रु को कंपाने और राष्ट्र का भोग करने वाले सामर्थ्य हैं, तू उन दोनों को (सस्तः) सुला देता अर्थात् उनको मन्द कर देता है और जो (दभीतिः) विनाशक, (इध्म-भृतिः) लकड़ी से अपना भरण-पोषण करने वाला, अग्नि-समान तेज-मात्र का धारक, (पक्थी) परिपाक करने वाला, तेजस्वी पुरुष (अर्कैः सोमेभिः) अन्नों और जलों से (तुभ्यं) तेरा (सुन्वन्) सत्कार करता हुआ (दीदयत्) प्रकाशित करे, तू उसे सुखी कर। इति दशमो वर्गः ॥

[२१]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ९, १०, १२ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ५, ६, ११ त्रिष्टुप् । ३, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ स्वराड् बृहती । द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

इमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोर्हव्यं वीर हव्या हवन्ते ।
धियो रथेष्ठामजरं नवीयो रयिर्विभूतिरीयते वचस्या ॥ १ ॥

भा०—हे (वीर) विद्वन् ! राजन् ! (इमाः) ये (हव्याः) स्तोता प्रजाएं (पुरु-तमस्य) बहुतों में श्रेष्ठ, (कारोः) विद्वान्, कर्त्ता, पुरुष के (हव्यं) स्तुति-योग्य कर्म की (हवन्ते) स्तुति करती हैं । (धियः) उत्तम बुद्धियां और (अजरं) अक्षय (नवीयः) उत्तम कर्म, नया ज्ञान, (रयिः) ऐश्वर्य, (वचस्या) वचनीय, (विभूतिः) विशेष सामर्थ्य, ये सब वस्तुएं, हे वीर ! (रथेष्ठां त्वा) रथ पर स्थित तुझको (ईयते) प्राप्त हों ।

तमु स्तुष इन्द्रं यो विदानो गिर्वाहसं गीर्भिर्यज्ञवृद्धम् ।
यस्य दिवमति मह्ना पृथिव्याः पुरुमायस्य रिरिचे महित्वम् ॥२॥

भा०—(यस्य) जिस (पुरु-मायस्य) नाना निर्माण-सामर्थ्यों और बुद्धियों से सम्पन्न परमेश्वर का (महित्वम्) सामर्थ्य (दिवम् अति-रिरिचे) सूर्य से बढ़कर है और जो (पृथिव्याः अति रिरिचे) पृथिवी से भी बड़ा है । (यः विदानः) जो ज्ञानवान् है, (तम् उ) उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, (गिर्वाहसं) वाणियों द्वारा स्तुति-योग्य, (यज्ञ-वृद्धम्) उपासना आदि से परिपुष्ट, (इन्द्रं) प्रभु की (स्तुषे) स्तुति कर ।

स इत्तमोऽवयुनं ततन्वत्सूर्येण वयुनवच्चकार ।
कदा ते मर्ता अमृतस्य धामेयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः ॥३॥

भा०—(सः) वह परमेश्वर (इत्) ही (अवयुनं) जिसमें कुछ भी ज्ञान नहीं होता ऐसे (तमः) अन्धकार को (सूर्येण) सूर्य द्वारा (वयुन-वत् चकार) ज्ञान-योग्य कर देता है । हे (स्वधावः) स्वयं धारण-

शक्ति के स्वामिन्! (मर्त्ताः) मरणधर्मा जीव (अमृतस्य ते) मरण-रहित तेरे (धाम) तेजोमय जगत् के धारण को (इयक्षन्तः) प्राप्त होना चाहते हुए (कदा) कभी भी (न मिनन्ति) हिंसा नहीं करते।

यस्ता चकार स कुहं स्विदिन्द्रः कमा जनं चरति कासु विक्षु।
कस्ते यज्ञो मनसे शं वराय को अर्क इन्द्र कतमः स होता ॥४॥

भा०—(यः) जो (ता) वे जगत्-सर्जन आदि कर्म (चकार) करता है (सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (कुह स्विद्) कहां है? वह (कम् जनं आ चरति) किस मनुष्य को प्राप्त होता है? (कासु विक्षु च चरति) किन प्रजाओं में व्यापता है? हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते) तेरा (कः यज्ञः) कौनसा उपासना का प्रकार है जो (मनसे शम्) चित्त को शान्ति-दायक है? (कः अर्कः) कौनसा अर्चना का उपाय है जो (वराय) श्रेष्ठ-पद-प्राप्ति के लिये है? हे प्रभो! (सः) वह (होता) सबका दाता (कतमः) कौन सबसे श्रेष्ठ है? उत्तर—(कतमः) वह सुखस्वरूप, सर्वपूज्य है।

इदा हि ते वेविषतः पुराजाः प्रत्नास आसुः पुरुकृत्सखायः।
ये मध्यमास उत नूतनास उतावमस्य पुरुहूत बोधि ॥५॥११॥

भा०—हे परमेश्वर! (पुरुहूत) बहुतों से स्तुति किये हुए! हे (पुरुकृत्) बहुत लोकों को बनाने हारे! (ये) जो (पुराजाः) पूर्वकाल में उत्पन्न हुए, (प्रत्नासः) पुरातन, (मध्यमासः) मध्यकाल में उत्पन्न (उत) और (नूतनासः) नये विद्वान् (इदा हि) इस समय भी (वेविषतः ते) सर्वव्यापक तेरे (सखायः) मित्र हैं, हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित! (उत) और तू (अवमस्य) अब के अर्थात् बाद के सबको (बोधि) जानता है। इत्येकादशो वर्गः ॥

तं पृच्छन्तोऽवरासः पराणि प्रत्ना त इन्द्र श्रुत्यानु येमुः।
अर्चामसि वीर ब्रह्मवाहो यादेव विद्म तात्त्वा महान्तम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) प्रभो ! (अवरासः) बाद के उत्पन्न जीव गण, (तं) उस परमवेद्य को (पृच्छन्तः) प्रश्न द्वारा पूछते हुए, (ते) तेरे ही (प्रत्ना) सनातन से चले आये, (पराणि) उत्तम (श्रुत्या) श्रवणीय, गुरु-उपदेशादि द्वारा जानने योग्य कर्मों, स्वरूपों को (अनु) जानने और करने को लक्ष्य करके (येमुः) यम, नियम आदि करते हैं। हे (वीर) विविध विद्याओं के उपदेष्टा ! (ब्रह्मवाहः) वेद-ज्ञान-रूप धन के धारक हम लोग (त्वा यात् एव विद्म) जितना ही तुझको जानते हैं (तात् एव) उतना ही (महान्तं) महान् पाकर तेरी (अर्चामसि) अर्चना करते हैं।

अभि त्वा पाजो रक्षसो वि तस्थे महि जज्ञानमभि तत्सु तिष्ठ ।
तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण धृष्णो अप ता नुदस्व ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! जब (रक्षसः) विघ्नकारी पुरुष का (पाजः) बल (महि जज्ञानम्) बड़े रूप में प्रकट होने वाले (त्वा अभि वितस्थे) तेरे प्रति विरोध में खड़ा हो, तब तू (तत्) उसके (अभि) मुकाबले पर (तिष्ठ) खड़ा हो जा। हे (धृष्णो) शत्रु-धर्षक ! और (तव) तू अपने (प्रत्नेन) सनातन (युज्येन) सहायक (सख्या) मित्रवत् (वज्रेण) शस्त्रबल से (ता) उन सबको (अपनुदस्व) दूर कर।

स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः ।
त्वं ह्यापिः प्रदिवि पितॄणां शश्वद् बभूथ सुहव एष्टौ ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (वीर) शूर राजन् ! हे (कारुधायः) स्तोता तथा शिल्पकर्त्ता जनों के पोषक प्रभो ! (सः) वह तू (ब्रह्मण्यतः) धनेच्छुक और ब्रह्मपद की कामना वाले (नूतनस्य) नये, मुमुक्षु पुरुष के (श्रुधि) वचन को सुन। (त्वं हि) तू (प्रदिवि) उत्तम कामना के निमित्त सदा (पितॄणां) पालक-पिताओं का भी (आपिः) बन्धु है, तू ही (शश्वत्) सदा से (सु-हवः) सुखपूर्वक बुलाने योग्य होकर (इष्टौ आ बभूथ) यज्ञ, सत्संग आदि में आदर-पूर्वक प्राप्त है।

प्रोतये वरुणं मित्रमिन्द्रं मरुतः कृष्वावसे नो अद्य ।
प्र पूषणं विष्णुमग्निं पुरन्धिं सवितारमोषधीः पर्वतांश्च ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वन् ! प्रभो ! राजन् ! तू (नः ऊतये) हमारी रक्षार्थ (वरुणं) रात्रि को, श्रेष्ठ पुरुष और शत्रुवारक जन को, (मित्रम्) दिन को और सर्वस्नेही ब्राह्मण को, (मरुतः) वायुओं, विद्वानों और व्यापारी मनुष्यों को, (अद्य) आज, सदा (प्र कृण्व) उत्तम बना और (नः अवसे) हमारी रक्षार्थ (पूषणं) पृथ्वी और उसके पोषक वर्ग को, (विष्णुम्) व्यापक वायु को और प्रजा में प्रभावशाली को, (अग्निम्) अग्नि तत्व को, विद्वान् को, (पुरन्धिम्) देहपुर-वासी पुरुष-धारक बुद्धि को, स्त्री को और राष्ट्र-धारक शक्तिमान् राजा को, (सवितारम्) सर्वोत्पादक पिता, तेजस्वी पुरुष को, (ओषधीः) ओषधियों और शत्रु-तापक तेजस्वी सेनाओं को और (पर्वतान् च) पर्वतों और पालन-कर्त्ता, पर्वतवत् अचल पुरुषों को भी (प्र कृण्व) उत्तम सामर्थ्यवान् बना ।

इम उं त्वा पुरुशाक प्रयज्यो जरितारो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
श्रुधी हवमा हुवतो हुवानो न त्वावाँ अन्यो अमृत त्वदस्ति ॥ १० ॥

भा०—हे (पुरुशाक) बहुत शक्तियों के स्वामिन् ! हे (प्रयज्यो) उत्तम दानशील, प्रभो ! (इमे जरितारः) ये स्तोता विद्वान् (अर्कैः) अर्चना-योग्य वेद-मन्त्रों से (त्वा अभि अर्चन्ति) तेरी अर्चना करते हैं । (आ हुवतः) अपने आत्मा को तेरे प्रति आहुतिवत् अर्पण करने वालों को भी तू (आहुवानः) अपने प्रति बुलाता हुआ उनका वचन (आ श्रुधि) आदरपूर्वक सुन । हे (अमृत) अमृत-स्वरूप ! (त्वावान्) तेरे जैसा (त्वत् अन्यः न अस्ति) तेरे से भिन्न दूसरा नहीं है ।

नू म आ वाचमुप याहि विद्वान् विश्वेभिः सूनो सहसो यजत्रैः ।
ये अग्निजिह्वा ऋतसाप आसुर्ये मनुं चक्रुरुपरं दसाय ॥ ११ ॥

भा०—(ये) जो (ऋत-सापः) सत्य-वचन के आधार पर समवाय बनाने वाले, (अग्निजिह्वाः) अग्नि-ज्वाला के समान ज्ञान-प्रकाश करने वाली वाणी के वक्ता, (आसुः) हैं और (ये) जो (मनुं) मननशील (उपरं) सर्वोपरि विराजमान, मेघवत् उदारता से दान देने वाले को (दसाय) अज्ञान वा शत्रु के नाश के लिये (चक्रुः) नियुक्त करते हैं उन (यजत्रैः) सत्संगी और पूजा-योग्य, (विश्वेभिः) समस्त पुरुषों के साथ हे (सहसः सूनो) बलवान् पुत्र, सैन्य के सञ्चालक ! तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (मे) मेरी (वाचम्) वाणी को (उप याहि) प्राप्त कर ।

स नो बोधि पुर एता सुगेषूत दुर्गेषु पथिकृद्विदानः ।
ये अश्रमास उरवो वहिष्ठास्तेभिर्न इन्द्राभि वक्षि वाजम् ॥ १२।१२

भा०—(सः) वह तू (विदानः) ज्ञानवान् (पथि-कृत्) मार्ग बनाने हारा, (सुगेषु) सुगम और (दुः-गेषु) विषम स्थानों में (उत) भी (पुरः-एता) आगे चलने वाला होकर (नः बोधि) हमें ज्ञान दे । (ये) जो (अश्रमासः) कभी न थकने वाले, (उरवः) बड़े (वहिष्ठाः) उत्तम वहन करने वाले अश्व के समान सुदृढ़, पुरुष हैं (तेभिः) उन द्वारा, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (अभि-वाजम्) ऐश्वर्य-प्राप्ति आदि की ओर (वक्षि) ले चल । इति द्वादशो वर्गः ॥

[२२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७ भुरिक् पंक्तिः । ३ स्वराट् पंक्तिः । १० पंक्तिः । २, ४, ५ त्रिष्टुप् । ६, ८ विराट् त्रिष्टुप । ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः ।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (एक इत्) अद्वितीय ही (चर्षणीनाम् हव्यः) मनुष्यों में सबके पुकारने योग्य है (तं इन्द्रं) उस ऐश्वर्यवान् को

(आभिः) इन (गीर्भिः) वेद-वाणियों से (अभि अर्च) साक्षात् अर्चना कर। (यः) जो (वृषभः) समस्त सुखों का दाता (वृष्ण्या-वान्) बलवान् के बलों का स्वामी है, वह स्वयं भी (सत्यः) सत्य-व्यवहार वाला, (सत्वा) बलवान्, (पुरुमायः) बहुत सी प्रज्ञाओं, वाणियों का ज्ञाता और (सहस्वान्) बलवान् है।

तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम्॥ २॥

भा०—(नः पूर्वे पितरः) हमारे पूर्व-पालक, माता, पिता (नवग्वाः) नये से नये, स्तुत्य वाणी वाले (सप्त) देह में सात प्राणों के समान, (विप्रासः) बुद्धिमान् पुरुष (अभि वाजयन्तः) एक साथ ज्ञान, ऐश्वर्य प्राप्त करते हुए (नक्षत्-दाभं) राष्ट्र में प्राप्त और फैलते शत्रु और सेना का नाश करने वाले, (ततुरिं) शीघ्र कार्य-सम्पादन करने वाले, (पर्वतेष्ठाम्) मेघ में विद्यमान, विद्युत् के तुल्य तेजस्वी, (अद्रोघवाचम्) द्रोह-रहित वाणी वाले, (शविष्ठम्) अति बलवान् (तम्) उसको प्राप्त करें।

तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्तमा भर हरिवो मादयध्यै॥ ३॥

भा०—हे (हरिवः) अश्व-समान सन्मार्ग पर ले जाने हारे! (यः) जो (अस्कृधोयुः) कभी न छुटने वाला, (अजरः) अविनाशी, (स्वर्वान्) सुखप्रद ऐश्वर्य है, वह तू (मादयध्यै) सुख प्राप्ति के लिये (तम् आभर) उसे प्राप्त करा। (अस्य) उस (पुरु-वीरस्य) बहुत से पुत्र, भृत्य जनों से युक्त (नृवतः) उत्तम नायक वाले, (पुरु-क्षोः) बहुत अन्न-सम्पदापूर्ण, (रायः) धन की हम (ईमहे) याचना करते हैं।

तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! राजन् ! (ते) तेरे (यदि) जिस (द्युम्नम्) सुख या उत्तम ज्ञान को (जरितारः) उपदेष्टा वा अध्येता जन (आनशुः) पाते हैं (तत्) उसे (नः) हमें भी तू (वि वोचः) उपदेश कर। हे (दुध्र) शत्रु से न हारने वाले ! हे (पुरु-हूत) बहुतों से अपनाये हुए ! हे (पुरु-वसो) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! (असुरघ्नः) दुष्ट-असुरों के हन्ता (ते) तेरा (कः भागः) कौनसा भाग और (किं वयः) क्या बल है उसे तू पहचान।

तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्करी यस्य नू गीः।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥५॥१३॥

भा०—(यस्य) जिस मनुष्य की (वेपी) भक्ति-भाव से कांपती हुई, (वक्करी) उत्तम वचन कहने वाली, (गीः) वाणी (वज्रहस्तं) शस्त्रधारी, (रथे-ष्ठाम्) रथ पर खड़े, (इन्द्रं) शत्रुहन्ता (तं) उस वीर पुरुष के विषय में (पृच्छन्ती) प्रश्न पूछती हुई (गातुम् इषे) गाना चाहती है, वह (तुवि-ग्राभम्) बहुतों के वशकर्ता (तुवि-कूर्मिम्) बहुत से लोकों के निर्माता, (रभः-दाम्) बल-दाता, (तुम्रम्) शत्रुओं को ग्लानियुक्त कर देने वाले को (अच्छ नक्षते) भली प्रकार प्राप्त होता है। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन।
अच्युता चिद्वीळिता स्वोजो रुजो वि दृळ्हा धृषता विरप्शिन् ॥६

भा०—हे (स्वतवः) स्वयं बलशालिन् ! 'स्व' अर्थात् धनैश्वर्य के बल से युक्त ! हे (स्वोजः) स्वयं अपने ओज वाले ! वा 'स्व' धन के बल पर या उसके लिये पराक्रम करने में समर्थ ! हे (विरप्शिन्) गुणों में महान् ! परमेश्वर ! राजन् ! (त्वं) तू (अया ह मायया) इस अद्भुत निर्माणकर्त्री शक्ति, प्रकृति वा ज्ञानकर्त्री बुद्धि और (मनोजुवा) मन के समान वेग वाले (पर्वतेन) पोरु-पोरु, खण्ड २ में विद्यमान बल

से तू (वधूधानं) अपने बढ़ते शत्रु को विनाश कर और (धृषता) शत्रु का मान भंग करने वाले, (अच्युता चित्) न डोलने वाले, (वीडिता) वीर्यवान्, (दृळ्हा) दृढ़ शत्रु-नगरों वा सैन्यों को भी (रुजः) तोड़ डाल।

तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितंसयध्यै।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥ ७ ॥

भा०—(तं) उस (शविष्ठं) अति बलशाली, (प्रत्नं) सनातन पुरुष को (नव्यस्या) नयी से नयी (धिया) वाणी से (वः) आप लोगों के हित (परितंसयध्यै) सब प्रकार से सुशोभित करने, उसका वर्णन करने के लिये (प्रत्नवत्) पूर्व विद्वानों के तुल्य ही यत्न करता हूँ। (सः) वह (अनिमानः) परिमाणरहित, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (सु-वह्मा) सुखपूर्वक जगत् को वहन करता है। वह (विश्वानि) समस्त (दुर्-गहानि) संकटों से (नः वः अतिवक्षत्) हमें और आपको पार पहुँचा दे।

आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा।
तपा वृषन्विश्वतः शोचिषा तान्ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥८॥

भा०—हे (वृषन्) बलवान्! प्रभो! विद्वन्! तू (पार्थिवानि) पृथ्वी के (दिव्यानि) आकाश के और (अन्तरिक्षा) अन्तरिक्ष के सब पदार्थों को (आ दीपयः) सब प्रकार से चमकाता है, तू (ब्रह्मद्विषे) परमेश्वर, वेदज्ञ और अन्नादि के द्वेषी, (द्रुह्वणे) और द्रोही (जनाय) मनुष्यों के लिये इन सब पदार्थों को (तप) कष्टप्रद कर (तान्) उनको (शोचिषा) अपने तेजस से (विश्वतः शोचय) सब ओर से दग्ध कर। उस ब्रह्मद्वेषी के लिये (क्षाम् अपः च शोचय) भूमि और जलों को भी प्रतप्त कर।

भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसन्दृक्।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! प्रभो! तू (त्वेषसन्दृक्) कान्तियुक्त न्याय-प्रकाश से सम्यक् दर्शन, विवेक करने वाला होकर (दिव्यस्य पार्थिवस्य राजा भुवः) दिव्य पृथिवी के समस्त जनों और ऐश्वर्य का स्वामी हो। हे (अजुर्य) अविनाशिन्! तू (दक्षिणे हस्ते) दायें हाथ में (वज्रं धिष्व) वज्र, बल धारण कर। तू (विश्वाः) समस्त (मायाः) विद्याओं, बुद्धियों को (विदयसे) विविध प्रकार से दे। वैसे ही तू शस्त्र-बल से (मायाः वि दयसे) शत्रु की कपट-चालों का नाश कर।

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम्।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥ १० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यया) जिस शक्ति से (दासानि) मनुष्यों के नाशक (वृत्रा) विघ्नकारी कुलों वा धनों को (आर्याणि) सदाचार युक्त, 'अर्य' अर्थात् स्वामी के उपभोग योग्य (करः) बनाता और, हे (वज्रिन्) शस्त्रास्त्र-स्वामिन्! जिस शक्ति से तू (नाहुषाणि) मनुष्यों के कुलों वा धनों को (सु-तुका) सुखपूर्वक, वृद्धिशील करता है और (वृत्रा सुतुकानि) विघ्नकारी जनों को सुखपूर्वक मारने योग्य करता है, तू (नः) हमारे लिये उस (संयतम् स्वस्तिम् करः) अच्छी प्रकार प्रजा को नियमादि में बांधने वाली और यत्न करने वाली कर, और (शत्रुतूर्याय) शत्रु-नाश के लिये (अमृध्राम्) न नाश होने वाली (बृहतीम् करः) बड़ी सेना को बना।

स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥११।१४

भा०—हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित! हे (वेधः) विधान वा राजनियमों के निर्माता! विद्वन्! हे (प्रयज्यो) पूज्य! सत्संग-योग्य राजन्! (सः) वह तू (विश्व-वाराभिः) सबकी रक्षक (नियुद्भिः) युद्ध

करने वाली सेनाओं और नियुक्त भृत्यादि-सहित (नः) हमें (आ गहि) प्राप्त हो। (या) जिनको (न अदेवः) न तो अदानशील (वरते) निवारण कर सके और (न देवः) न विजयेच्छुक शत्रु ही (वरते) प्राप्त कर सके, (आभिः) उनसे तू (मद्र्यद्रिक्) मेरे प्रति (तूयम्) शीघ्र ही (आ याहि) आ। इति चतुर्दशो वर्गः॥

[२३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ३, ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप्। ५, ६, १० त्रिष्टुप्। ७ विराट् त्रिष्टुप्। २, ४ स्वराट् पंक्तिः॥ दशर्चं सूक्तम्॥

सुत इत्त्वं निमि॑श्ल इन्द्र॒ सोमे॒ स्तोमे॒ ब्रह्म॑णि श॒स्यमा॑न उ॒क्थे।
यद्वा॑ यु॒क्ताभ्यां॑ मघवन्ह॒रिभ्यां॒ बिभ्र॒द्वज्रं॑ बा॒ह्वोरि॑न्द्र॒ यासि॑॥ १॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्य-स्वामिन्! हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! (यत् वा) जब तू (बाह्वोः) शत्रु-पीड़न करने वाली दो बाहुओं के समान दायें-बायें की दो सेनाओं में (वज्रं) शत्रु-वर्जन करने वाले शस्त्र-बल को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (युक्ताभ्यां हरिभ्याम्) जुते दो अश्वों से महारथी के समान (युक्ताभ्यां हरिभ्याम्) नियुक्त प्रजा के स्त्री-पुरुषों सहित (यासि) जाता है तब तू (स्तोमे) स्तुति-योग्य, (उक्थे) प्रशंसनीय वचन के (शस्यमाने) कहे जाते हुए, (ब्रह्मणि) महान् ऐश्वर्य में तथा (सोमे) राजपद पर (सुते) अभिषिक्त होने पर (निमिश्लः) उसमें निःसक्त होकर रह।

यद्वा॑ दि॒वि पार्ये॒ सुष्वि॑मिन्द्र वृत्र॒हत्येऽव॑सि॒ शूर॑सातौ।
यद्वा॒ दक्ष॑स्य बि॒भ्युषो॒ अबि॑भ्यद॒रन्ध॑यः॒ शर्ध॑त इन्द्र॒ दस्यू॑न्॥ २॥

भा०—(यद् वा) और जब तू (पार्ये दिवि) सर्वोत्कृष्ट, दूर तक विस्तृत, तेज में (वृत्र-हत्ये) विघ्नकारियों के नाश करने और (शूर-सातौ) वीर पुरुषों के लाभ कर लेने पर (सु-ष्विम्) उत्तम ऐश्वर्योत्पादक राष्ट्र को (अवसि) प्राप्त कर ले, (यद्वा) और जब (बिभ्युषः)

भयभीत (दक्षस्य) व्यवहारकुशल प्रजा के (शर्धतः) नाशक (दस्यून्) दुष्ट पुरुषों को स्वयं (अबिभ्यत्) भय-रहित होकर (अरन्धयः) वश कर सके तो, हे राजन्! तू (निमिश्लः सन् राज्यं शाधि) निःसंग होकर राज्य का शासन कर।

पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं प्रणेनीरुग्रो जरितारमूती।
कर्ता वीराय सुष्वय उ लोकं दाता वसु स्तुवते कीरये चित् ॥३॥

भा०—(प्र-नेनीः) उत्तम लक्ष्य की ओर ले जाने हारा (उग्रः) बलवान् पुरुष (ऊती) रक्षा और सन्मार्ग से (सुतं) उत्पन्न अभिषेक द्वारा प्राप्त, (सोमं) राष्ट्र को और (जरितारं) उपदेष्टा विद्वान् का (पाता) पालक पुरुष (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् होकर राजा (अस्तु) बने। वह (सु-स्वये वीराय) उत्तम ऐश्वर्योत्पादक वीर पुरुषों के लिये (लोकं कर्त्ता) उत्तम स्थान बनावे। (कीरये चित्) उत्तम विद्वान् (स्तुवते) उपदेष्टा पुरुष के लिये (वसु) गृह आदि का (दाता अस्तु) देने वाला हो।

गन्तेयान्ति सवना हरिभ्यां बभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः।
कर्ता वीरं नर्यं सर्ववीरं श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः ॥ ४ ॥

भा०—वह राजा (हरिभ्यां) अश्वों से रथवान् पुरुष के समान राष्ट्र के स्त्री-पुरुषों द्वारा, (इयन्ति सवना) इतने, नाना ऐश्वर्यों को (गन्ता) प्राप्त होने वाला, (वज्रं बभ्रिः) शस्त्र-बल का धारक, (सोमं पपिः) अन्न और ऐश्वर्य का भोक्ता (गाः ददिः) उत्तम वाणियों और भूमियों का दाता हो। वह (सर्व-वीरं) समस्त वीर पुरुषों से युक्त (नर्यं) नायक पुरुष के अधीन, राष्ट्रवासी मनुष्यों का हितकारी (वीरं) वीर पुत्र का (कर्त्ता) उत्पन्न करने वाला हो। वह (स्तोमवाहाः) स्तुत्य पदाधिकार का धारक होकर (गृणतः हवं श्रोता) निवेदक जन के वचनों का सुनने वाला हो।

अस्मैं वयं यद्वावान तद्विविष्म इन्द्राय यो नः प्रदिवो अपस्कः ।
सुते सोमे स्तुमसि शंसदुक्थेन्द्राय ब्रह्म वर्धनं यथासत् ॥५॥१५॥

भा०—(यः) जो (नः) हमारी (प्र-दिवः) उत्तम कामनाओं को पूर्ण करने के लिये अनादि काल से (अपः कः) नाना कर्म करता है, वह (यत् वावान) जो चाहता है (यत् विविष्मः) हम वह २ प्राप्त करें। (वयं) हम (अस्मै इन्द्राय) इस ऐश्वर्यवान् के लिये (सुते सोमे) अन्न आदि प्राप्त होने पर अवश्य (स्तुमसि) स्तुति करें। मनुष्य को चाहिये कि (इन्द्राय) उस परमेश्वर की (उक्था) स्तुतियां अवश्य (शंसत्) करे, (यथा) जिससे हमारा (ब्रह्म) बृहत् ज्ञान, अन्न और आत्मा (वर्धनम्) वृद्धिशील, बढ़ती देने हारा (असत्) हो। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

ब्रह्माणि हि चकृषे वर्धनानि तावत्त इन्द्र मतिभिर्विविष्मः ।
सुते सोमे सुतपाः शन्तमानि राण्ड्या क्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः ॥६

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (हि) निश्चय से (ब्रह्माणि) धनैश्वर्यों और अन्नों को मेघ तुल्य सदा (वर्धनानि) बढ़ने वाला (चकृषे) करता है। (तावत्) इसी कारण, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हम लोग (मतिभिः) बुद्धियों द्वारा (ते) तेरे सामर्थ्यों को (विविष्मः) प्राप्त करें। हे (सु-तपाः, सुत-पाः) समस्त उत्पन्न होने वाले जीवों, तथा ऐश्वर्य अन्नादि के पुत्रवत् पालन करने हारे ! (सुते सोमे) अन्न, ऐश्वर्य वा पुत्रादि के उत्पन्न होने पर भी हम (शं-तमानि) अति शान्तिदायक, (राण्ड्या) हर्षजनक (वक्षणानि) स्तुति वचन, (यज्ञैः) दान आदि उत्तम कर्मों-सहित (क्रियास्म) करें।

स नो बोधि पुरोळाशं रराणः पिबा तु सोमं गो ऋजीकमिन्द्र ।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदोरुं कृधि त्वायत उ लोकम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! वह तू (रराणः) प्रसन्न होकर एवं

(पुरोडाशं रराणः) अन्न देता हुआ, (गो-ऋजीकम्) दूध आदि से संस्कृत और इन्द्रियों को सौम्य बनाने वाले तथा वाणी से संस्कृत (सोमम्) ऐश्वर्य और पुत्रादि का (पिब) स्वयं पान तथा पालन कर। तू (यजमानस्य) दानशील पुरुष के योग्य (इदं बर्हिः) प्रतिष्ठाजनक इस आसन पर (सीद) विराज। (त्वायतः) तुझे चाहने वाले प्रियजन के लिये (लोकं) स्थान को (उरुं कृधि) बड़ा कर।

स म॑न्दस्वा॒ ह्यनु॒ जोष॑मुग्र॒ प्र त्वा॑ य॒ज्ञास॑ इ॒मे अ॑श्नुवन्तु।
प्रेमे ह॒वासः॑ पुरुहू॒तम॒स्मे आ त्वे॒यं धीरव॑स इन्द्र यम्याः ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (इमे यज्ञासः) ये यज्ञ, सत्संग आदि सत्कर्म, (त्वा) तुझे (प्र अश्नुवन्तु) प्राप्त हों। (इमे हवासः) ये देने, लेने योग्य अन्न आदि पदार्थ (त्वा पुरु-हूतम्) बहुतों से स्तुति-प्राप्त तुझे प्राप्त हों। (इयं धीः) यह बुद्धि और कर्म-कुशलता (अवसे) रक्षा, आदि के लिये (आ) प्राप्त हो। तू (यम्याः) उत्तम प्रबन्ध कर। (सः) वह तू, हे (उग्र) बलशालिन्! (अनु जोषम्) प्रेमपूर्वक (मन्दस्व) प्रसन्न रह।

तं वः॑ सखायः॒ सं यथा॑ सु॒तेषु॒ सोमे॑भिरीं पृणता भो॒जमिन्द्र॑म्।
कु॒वित्तस्मा॒ अस॑ति नो॒ भरा॑य॒ न सुष्वि॒मिन्द्रो॒ऽव॑से मृधाति ॥९॥

भा०—हे (सखायः) मित्रजनो! आप लोग (वः) अपने (सुतेषु) ऐश्वर्यों, अन्नों के आधार पर (सोमेभिः) अन्न आदि पदार्थों और उत्तम पुरुषों द्वारा (भोजम्) भोक्ता पुरुष के तुल्य राष्ट्र-पालक (इन्द्रम्) शत्रु-हन्ता पुरुष को (ईम्) जल से (सं पृणत) अभिषिक्त और पूर्ण करो। (यथा) जिससे (तस्मै) उसको (नः भराय) हमारे पोषण के लिये (कुवित्) साधन तथा अन्न-सम्पदा (असति) हो। (सु-स्विम्) उत्तम रीति से ऐश्वर्य के उत्पादक राष्ट्र को (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् राजा (अवसे) रक्षार्थ (न मृधाति) उनका नाश न करे।

एवेदिन्द्रः सुते अस्तावि सोमे भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः ।
असद्यथा जरित्र उत सूरिरिन्द्रो रायो विश्ववारस्य दाता १०।१६।२

भा०—(इन्द्र एव इत्) वह ऐश्वर्यवान् पुरुष ही (सुते सोमे) उत्पन्न पुत्र के तुल्य ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र में (अस्तावि) स्तुति को प्राप्त हो और वह (भरद्-वाजेषु) अन्न, ज्ञान आदि के धारक मनुष्यों के निमित्त (मघोनः) ऐश्वर्य-सम्पन्न लोगों को भी (क्षयत्) निवास दे । (यथा) जिससे (इन्द्रः) वह राजा (जरित्रे) विद्वान् जनों के हितार्थ (सूरिः) उत्तम शासक (उत) तथा (विश्व-वारस्य रायः दाता) सबको स्वीकार-योग्य धनों का दाता (असत्) हो । इति षोडशो वर्गः ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[२४]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ भुरिक् पंक्तिः । ३, ५, ९ पंक्तिः । ४, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् । १० विराट् त्रिष्टुप् । ६ ब्राह्मी बृहती ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

वृषा मद इन्द्रे श्लोक उक्था सचा सोमेषु सुतपा ऋजीषी ।
अर्चत्र्यो मघवा नृभ्य उक्थैर्द्युक्षो राजा गिरामक्षितोतिः ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रे) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र और शत्रुहन्ता सैन्य पर (वृषा) सुखों का वर्षक, (मदः) अति प्रसन्न, (श्लोकः) कीर्त्तिमान्, (सोमेषु) सौम्य-स्वभाव पुरुषों के बीच (सचा) संघ बनाकर रहने वाला (सुत-पाः) प्रजा को पुत्रवत् पालने और (सु-तपाः) शत्रुओं को तपाने हारा, (ऋजीषी) सरल धर्म-मार्ग से प्रजा को ले जाने हारा, (अर्चत्र्यः) अर्चना योग्य, (मघवा) धनसम्पन्न, (द्युक्षः) तेजस्वी, (राजा) राजा (नृभ्यः) उत्तम मनुष्यों के हितार्थ (गिराम्) उपदेष्टा विद्वानों के (उक्थैः) वचनों से उपदेश प्राप्त कर वह (अक्षितोतिः) अक्षय, रक्षा-सामर्थ्य वाला हो ।

तत्तुरिर्वीरो नर्यो विचेताः श्रोता हवं गृणत उर्व्यूतिः ।
वसुः शंसो नरां कारुधाया वाजी स्तुतो विदथे दाति वाजम् ॥२

भा०—(ततुरिः) शत्रु-नाशक, (वीः) विविध बलों का स्वामी, (विचेताः) विविध ज्ञानों का ज्ञाता (नर्यः) नायकों में श्रेष्ठ, (गृणतः) उपदेष्ट विद्वान् पुरुष के (हवं) ग्रहण-योग्य उपदेश-वचन को (श्रोता) सुनने हारा राजा (उरु-ऊतिः) बड़े रक्षा-सामर्थ्य वाला हो। वह (वसुः) राष्ट्र को बसाने वाला, (नरां शंसः) मनुष्यों में स्तुति-योग्य (कारु-धाया) शिल्पी जनों का पालक (वाजी) बलवान् पुरुष (स्तुतः) प्रशंसित और नायक पद पर प्रस्तुत होकर (विदथे) संग्रामादि के समय (वाजम् दाति) बल को देता है।

अक्षो न चक्र्योः शूर बृहन्प्र ते मह्ना रिरिचे रोदस्योः ।
वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वया व्यू३तयो रुरुहुरिन्द्र पूर्वीः ॥ ३ ॥

भा०—(चक्रयोः अक्षः न) गाड़ी के पहियों में जैसे धुरा रहता है वह उसके भार को सहता और चलता है वैसे ही हे (शूर) वीर ! राजन् ! प्रभो ! (ते) तेरा (बृहन्) बड़ा भारी (अक्षः) तेज और बल, (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी के बीच सूर्य-प्रकाश के तुल्य स्व और पर राष्ट्रों में (ते मह्ना) तेरे सामर्थ्य से, (प्र रिरिचे) बहुत अधिक बड़ा है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित ! (वयाः) ज्ञान, क्रिया आदि शक्तियां, व्यापक सामर्थ्य, शाखा-संस्थाएं, (वृक्षस्य वयाः नु) वृक्ष-शाखाओं के समान (वि रुरुहुः) विविध प्रकारों से उत्पन्न हों और फूलें फलें।

शचीवतस्ते पुरुशाक शाका गवामिव स्रुतयः सञ्चरणीः ।
वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् ॥४॥

भा०—हे (पुरुशाक) नाना शक्तियों के स्वामिन् ! (गवाम् इव स्रुतयः सञ्चरणीः) जैसे गौओं के चलने के मार्ग अच्छी प्रकार चलने

योग्य होते हैं और (गवाम् इव स्रुतयः सञ्चरणीः) जैसे गौओं के दूध की बहती धारें अच्छी प्रकार सुख से खाने योग्य होती हैं वैसे ही (ते शचीवतः) तुझ शक्तिशाली तथा शक्ति वाली सेना के स्वामी के (शाकाः) शक्ति के कार्य (संचरणीः) उत्तम रीति से चलने वाले और सुखदायक हों। हे (सुदामन्) उत्तम नियमों में बांधने हारे! (वत्सानां तन्तयः न) बछड़ों को बांधने की रस्सियां जैसे ढीली रहकर बछड़ों को कष्ट न पहुँचाती हुई उनके लाभ हेतु होती हैं वैसे ही (वत्सानां) राष्ट्र में बसी प्रजाओं के (तन्तयः) विस्तृत राजनियम तथा (शाकाः) तेरे शक्तिशाली कार्य (अदामानः) बन्धनरहित होकर भी (दामन्वन्तः) उत्तम बन्धनों से बद्ध और प्रजा को बांधने में समर्थ हों।

अन्यद॒द्य कर्व॑रम॒न्यदु॒ श्वोऽस॑च्च॒ सन्मुहु॑राच॒क्रिरिन्द्रः॑।
मि॒त्रो नो॒ अत्र॒ वरु॑णश्च पू॒षार्यो वश॑स्य पर्ये॒तास्ति॑ ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (अद्य) आज (अन्यत् कर्वरम्) और ही काम (श्वः अन्यत् कर्वरम्) और कल दूसरा ही काम (सत् च असत्) प्रकट और अप्रकट रूप से (आचक्रिः) करने वाला हो और वह (अर्यः) सबका स्वामी, (नः) हम प्रजाओं को (मित्रः) मृत्यु-भय से रक्षा करने वाला और (वरुणः च) विघ्नों के वारण में समर्थ और (पूषा) सबका पोषक होकर (वयस्य) हमारे कामना-योग्य फल का (पर्येता) प्रापक (अस्ति) हो और राजा (वशस्य पर्येता अस्ति) वश में आये राष्ट्र को अच्छी प्रकार वश करने में समर्थ हो। इति सप्तदशो वर्गः ॥

वि त्वदापो॒ न पर्व॑तस्य पृ॒ष्ठादु॒क्थेभि॑रिन्द्रानयन्त य॒ज्ञैः।
तं त्वा॒भिः सु॑ष्टु॒तिभि॑र्वा॒जय॑न्त आ॒जिं न ज॑ग्मुर्गिर्वाहो॒ अश्वाः॑ ॥६॥

भा०—(पर्वतस्य पृष्ठात् आपः न) पहाड़ की पीठ से जैसे जल-धाराएं काठ आदि को नीचे ले आती हैं वैसे ही (आपः) आप्त प्रजाएं

(त्वत्) तुझ उच्च पुरुष से (उक्थेभिः यज्ञैः) प्रशंसनीय स्तुति-वचनों, यज्ञ-कर्मों द्वारा, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अनयन्त) अपने इष्ट पदार्थ प्राप्त करते हैं। (अश्वाः आजिं न जग्मुः) जैसे अश्व वा अश्वारोही स्तुतियों से राजा वा सेनापति का बल बढ़ाते हुए संग्राम में जाते हैं, वैसे ही हे (गिर्वाहः) वाणियों द्वारा प्राप्त करने योग्य (अश्वाः) विद्याओं में प्रवीण, विद्वान् भी (त्वा) उस पूज्य तुझको (आभिः सुस्तुतिभिः) इन उत्तम स्तुतियों द्वारा (वाजयन्तः) अपने ज्ञान का विषय बनाते हुए (आजि जग्मुः) अपने लक्ष्य को प्राप्त होते हैं।

न यं जरन्ति शरदो न मासा न द्याव इन्द्रमवकर्शयन्ति।
वृद्धस्य चिद्वर्धतामस्य तनूः स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना ॥ ७ ॥

भा०—(यं इन्द्रम्) जैसे शक्तिशाली आत्मा को (न शरदः) न वर्ष, (न मासाः) न मास और (न द्यावः) न दिन ही (अव कर्शयन्ति) कृश कर सकते हैं, (अस्य) इस (वृद्धस्य) महान् की (तनूः) व्यापक शक्ति, (स्तोमेभिः) स्तुति-वचनों और (उक्थैः च) उत्तम वचनों द्वारा (शस्यमाना चित्) वर्णन की जाकर भी (वर्धताम्) अन्नों से देह के समान बढ़ती है, वैसे ही जिस राजा को वर्ष, मास, दिन आदि वा हिंसक सेनाएं और तेजस्वी लोग न घटावें उसकी व्यापक राष्ट्ररूप तनु उत्तम (स्तोमेभिः) उपदेष्टा पुरुषों द्वारा (शस्यमाना) उपदेश की जाकर शिष्य-बुद्धि के तुल्य बढ़े।

न वीळवे नमते न स्थिराय न शर्धते दस्युजूताय स्तवान्।
अज्रा इन्द्रस्य गिरयश्चिदृष्वा गम्भीरे चिद्भवति गाधमस्मै ॥८॥

भा०—जो ऐश्वर्यवान् स्वामी (दस्यु-जूताय) दुष्ट, प्रजा-नाशक पुरुषों से सेवित (वीडवे) बलवान् पुरुष के हित (न नमते) नहीं झुकता, (न स्थिराय) न दृढ़ पुरुष के आगे झुकता और (न शर्धते) न बलवान् के आगे ही झुकता है, वह (न स्तवान्) न ऐसे व्यक्तियों को प्रशंसा

ही करता है, इस (इन्द्र) वैभवशाली पुरुष के (अज्राः) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले शस्त्रास्त्र बल भी (गिरयः चित्) मेघों के तुल्य लगातार बरसने वाले तथा पर्वत-तुल्य अभेद्य और (ऋष्वाः) महान् होते हैं। (अस्मै) इसके लिये (गम्भीरे चित्) गहरे समुद्र में भी (गाधम् भवति) थाह होती है।

गुम्भीरेण न उरुणामत्रिन्प्रेषो यन्धि सुतपावन्वाजान्।
स्था ऊ षु ऊर्ध्व ऊती अरिषण्यन्नक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाम् ॥९॥

भा०—हे (अमत्रिन्) बलशालिन्! हे (सुतपावन्) प्रजा को पुत्र-समान पालने वाले! राजन्! (सुतपावन्) उत्पन्न जगत् के रक्षक और पालक प्रभो! तू (गम्भीरेण) गंभीर और (उरुणा) महान् सामर्थ्य से (नः इषः) हमारी कामनाओं और (वाजान्) अन्नों, ज्ञानों को (प्र यन्धि) हमें खूब दे। और तू (नक्तोः) रात्रि के (वि-उष्टौ) प्रभात होने के काल में तथा (परितक्म्यायाम्) रात्रि-काल में भी, (अरिषण्यन्) स्वयं प्रजाओं का पीड़न न करता हुआ, (ऊती) अपने रक्षा-बल से (ऊर्ध्वः ऊ सु स्थाः) सबसे ऊंचा होकर रह।

सच॑स्व नायमव॑से अभीके इतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१०॥१८

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (अभीके) संग्राम में (अवसे) रक्षा के लिये (नायम्) नायक पुरुष को (सचस्व) प्राप्त कर और (इतः) इस समीप आये (रिपः) हिंसक शत्रु से (पाहि) रक्षा कर। (च) और (एनम्) इस प्रजाजन को (अमा च अरण्ये च) घर में और जंगल में भी (रिषः) हिंसक, व्याघ्रादि से (पाहि) रक्षा कर जिससे हम (सु-वीराः) उत्तम पुत्रादि सहित (शत-हिमाः मदेम) सौ वर्षों तक सुख पावें। इत्यष्टादशो वर्गः॥

[२५]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ५ पंक्ति।

३ भुरिक् पंक्तिः । २; ७, ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ६ त्रिष्टुप् ।

नवर्चं सूक्तम् ॥

या त॑ ऊ॒तिर॑व॒मा या प॑र॒मा या म॑ध्य॒मेन्द्र॑ शुष्मि॒न्नस्ति॑ ।
ताभि॑रू॒ षु वृ॑त्र॒हत्ये॑ऽवीर्न ए॒भिश्च॒ वाजै॑र्म॒हान्न॑ उग्र ॥ १ ॥

भा०—हे (शुष्मिन्) बलशालिन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (उग्र) तेजस्विन् ! (या ते) जो तेरी (ऊतिः अवमा) रक्षा निकृष्ट, (परमा) जो सर्वोत्कृष्ट, (या) जो (मध्यमा) मध्यम कोटि की (अस्ति) है, (ताभिः) उन रक्षकों से (वृत्रहत्ये) बढ़ते शत्रु के मारने योग्य संग्राम में (एभिः वाजैः महान्) इन बलों से महान् होकर (ताभिः) उन सेनाओं से (नः सु अवीः ऊ) हमारी अवश्य अच्छी प्रकार रक्षा कर ।

आ॒भिः स्पृधो॑ मिथ॒तीररि॑षण्यन्न॒मित्र॑स्य व्यथया म॒न्युमि॑न्द्र ।
आ॒भिर्विश्वा॑ अभि॒युजो॒ विषू॑ची॒रार्या॑य॒ विशोऽव॑ तारी॒र्दासीः॑ ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! सेनापते ! राजन् ! तू (आभिः) इन (अमित्रस्य) शत्रु की (मिथतीः) हिंसक (स्पृधः) सेनाओं को (मन्युम्) कोप करके (व्यथय) पीड़ित कर । स्वयं (अरिषण्यन्) प्रजा-विनाश न करता हुआ (आभिः) इन सेनाओं द्वारा (विश्वाः) समस्त (विषूचीः) स्थानों पर विद्यमान (अभियुजः) आक्रमणकारी की (दासीः) प्रजा-नाशक सेनाओं को (अव तारीः) विनष्ट कर और (आर्याय) श्रेष्ठ पुरुष की (विश्वाः) समस्त (विषूचीः) विविध प्रकार की (दासीः विशः) दासवत् सेवा करने वाली प्रजाओं को (अव तारीः) संकट से पार कर ।

इन्द्र॑ जा॒मय॑ उ॒त येऽजा॑मयो॒ऽर्वाची॒नासो॑ व॒नुषो॑ युयु॒ज्रे ।
त्वमे॑षां विथु॒रा शवां॑सि ज॒हि वृष्ण्या॑नि कृणु॒ही परा॑चः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! सेनापते ! राजन् ! (ये) जो लोग (जामयः) बन्धु वा भार्या-समान स्नेही, आज्ञाकारी (उत) और (ये) जो (अजामयः) सपत्नी या अबन्धु जनों के समान निःस्नेह हैं और जो

(अर्वाचीनासः) अब के, वा हमारे प्रति आने वाले, (वनुष,) वेतन आदि देने वाले स्वामियों के प्रति (युयुज्रे) योग देते, वा उनके विरोध में षड्यन्त्र करते हैं (त्वम्) तू (एषां) इनके (विथुरा) पीड़ादायक (शवांसि) बलों को (जहि) विनष्ट कर और (वृष्ण्यानि) बलशाली सैन्यों को (कृणुहि) सम्पादन कर और (पराचः जहि) पराङ्मुख शत्रुओं को भी नष्ट कर।

शूरो॑ वा॒ शूरं॑ वनते॒ शरी॑रैस्तनू॒रुचा॑ तरु॑षि॒ यत्कृ॒ण्वैते॑।
तो॒के वा॒ गोषु॒ तन॑ये॒ यद॒प्सु वि क्रन्द॑सी उ॒र्वरा॑सु॒ ब्रवै॑ते ॥ ४ ॥

भा०—(यत्) जैसे (तनू-रुचा) देह-कान्ति में चमकने वाले दो पुरुष (तरुषि) एक दूसरे को मारने के लिये (कृण्वैते) युद्ध करते हैं वैसे ही दो प्रबल राजा (तनू-रुचा) विस्तृत सेना वा राष्ट्र से शोभावान् होकर (तरुषि) संग्राम में (शरीरैः) शरीरधारी सैन्यों से (कृण्वैतें) उद्योग करें। तब (शूरः शूरं वा) एक वीर पुरुष दूसरे वीर को (वनते) मारता है। ऐसे ही (यत्) जब (तोके) पुत्र, (तनये) पौत्र, (वा गोषु) वा गौओं और (अप्सु उर्वरासु) पुत्र वा अन्नादि को उत्पन्न करने वाली उपजाऊ आप्त स्त्रियों और भूमियों के लिए (क्रन्दमानौ) परस्पर आक्षेप करते हुए, (यत् वि ब्रवैते) परस्पर विवाद करते हैं तब भी तू उनके ऊपर न्यायकर्त्ता के समान रह।

न॒हि त्वा॒ शूरो॒ न तु॒रो न धृ॒ष्णुर्न त्वा॑ यो॒धो मन्य॑मानो यु॒योध॑।
इन्द्र॒ नकि॑ष्ट्वा॒ प्रत्य॑स्त्ये॒षां विश्वा॑ जा॒तान्य॒भ्य॑सि॒ तानि॑ ॥५॥१९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! (त्वा) तेरे से अधिक (नहि शूरः) न कोई शूर (न तुरः) न हिंसक, (न धृष्णुः) न शत्रु घर्षक, (न योधः) न योद्धा, (मन्यमानः) अभिमानी होकर (युयोध) लड़ सकता है, (एषाम्) इनमें से (त्वा प्रति नकिः अस्ति) तेरे मुकाबले पर कोई नहीं है। तू ही (विश्वा जातानि) समस्त उत्पन्न (तानि) उन सैन्यों के (अभि असि) मुकाबले पर समर्थ है। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

स पंत्यत उभयोर्नृम्णमयोर्यदी वेधसः समिथे हवंन्ते ।
वृत्रे वा महो नृवति क्षये वा व्यचस्वन्ता यदि वितन्तसैते ॥ ६ ॥

भा०—(यदि) जो दो (वृत्रे) विघ्न उपस्थित होने पर (वा) अथवा (नृवति क्षये वा) मनुष्यों सहित गृह के निमित्त (व्यचस्वन्ता) एक दूसरे के विपरीत आते हुए, (वितन्तसैते) विशेष रूप से विवाद करते हैं और (यदि) जब (वेधसः) विद्वान् लोग (समिथे) संग्राम में (हवन्ते) निर्णय के लिये बुलाते हैं तब जो (उभयोः) दोनों (नृम्णम् अयोः) धन का ठीक विभाग करता है (सः पत्यते) वह स्वामी होने योग्य है ।

अध स्मा ते चर्षणयो यदेजानिन्द्र त्रातोत भंवा वरूता ।
अस्माकासो ये नृतमासो अर्य इन्द्र सूरयो दधिरे पुरो नः ॥ ७ ॥

भा०—(अध) और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (यत्) जब (ते चर्षणयः) तेरे प्रजाजन (एजान् स्म) भय से कांपें तो उनका तू (त्राता भव) रक्षक हो, (उत) और तू (वरूता भव) दुःखों को दूर करने हारा हो । (ये) जो (अस्माकासः) हमारे (नृतमासः) श्रेष्ठ नायक और (सूरयः) विद्वान् पुरुष (नः) हमारे (पुरः) नगरों को (दधिरे) धारण करते हैं । उनका तू (अर्यः) स्वामी (भव) हो ।

अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये ॥ ८ ॥

भा०—हे (यजत्र) दानशील ! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वृत्रहत्ये) विघ्नकारी शत्रु के नाश में (ते महे इन्द्रियाय) तेरे बड़े बल की वृद्धि के लिये, (देवेभिः) विजयेच्छुक और कर आदि देने वाले प्रजाजन और विद्वान् पुरुष (ते) तेरे लिये (विश्वम् अनु दायि) सभी कुछ देते हैं । वे (नृषह्ये) संग्राम में (क्षत्रम् अनु दायि) बल देते हैं और वे (ते सहः अनु दायि) तुझे शत्रु-पराजयकारी शक्ति देते हैं ।

एवा नः स्पृधः समंजा समत्स्विन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः ।
विद्याम वस्तोरवंसा गृणन्तो भरद्वाजा उत त इन्द्र नूनम् ॥९॥२०

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यदातः ! तू (एव) इस प्रकार (समत्सु) युद्ध के समय (नः) हमारे (स्पृधः) प्रतिस्पर्धी शत्रुओं को (सम् अज) अच्छी प्रकार उखाड़ फेंक (स्पृधः सम् अज) प्रेम करने वालों को मिला। (अदेवीः मिथतीः) ऐश्वर्य वा कर आदि न देने वाली, तथा परस्पर नाश करने वाली सेनाओं, प्रजाओं को (रारन्धि) वश कर। हम (ते अवसा) तेरे रक्षा-सामर्थ्य से (नूनम्) निश्चयपूर्वक (गृणन्तः) तेरी स्तुति करते हुए (भरद्-वाजाः) ज्ञान और ऐश्वर्य के धारक होकर (वस्तोः) राष्ट्र में बसने का सुख (विद्याम) प्राप्त करें। इति विंशो वर्गः ॥

[२६]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ पंक्तिः। २, ४ भुरिक् पंक्तिः। ३ निचृद् पंक्तिः। ५ स्वराट् पंक्तिः। ६ विराट् त्रिष्टुप्। ७ त्रिष्टुप्। ८ निचृत्त्रिष्टुप्। अष्टर्चं सूक्तम् ॥

श्रुधी न॑ इन्द्र॒ ह्वया॑मसि त्वा म॒हो वाज॑स्य सा॒तौ वा॑वृषा॒णाः।
सं यद्विशोऽय॑न्त॒ शूर॑साता उ॒ग्रं नोऽव॒ः पार्ये॒ अह॑न्दाः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (महः वाजस्य सातौ) बड़े ऐश्वर्य और बल की प्राप्ति, विभाग और प्रयोग के लिये, (वावृषाणः) तेरा बल बढ़ाते और अभिषेक करते हुए (त्वा) तुझे (ह्वयामसि) बुलाते हैं। (यत्) जब (विशः) प्रजाएं (शूर-सातौ) वीर पुरुषों के विभाग करने योग्य संग्राम के लिये (सम् अयन्त) एक स्थान पर एकत्र हों, तब तू (पार्ये अहन्) सर्व-पालनीय, नियत दिन पर (नः) हमें (उग्रं अवः) उत्तम, भोग्य अन्न आदि (दाः) दे।

त्वां वा॒जी ह॑वते वाजिने॒यो म॒हो वाज॑स्य॒ गध्य॑स्य सा॒तौ।
त्वां वृ॒त्रेष्वि॑न्द्र॒ सत्प॑तिं॒ तरु॑त्रं॒ त्वां च॑ष्टे मुष्टि॒हा गोषु॒ युध्य॑न् ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वाजिनेयः वाजी) ज्ञान-युक्त माता, पिता वा आचार्य-पुत्र, विद्वान् (महः वाजस्य सातौ) बड़े ज्ञान की

प्राप्ति और विभाग के लिये गुरु को (हवते) स्वीकार करता है वैसे ही (वाजिनेयः) 'वाजिनी', बलवती सेना के योग्य (वाजी) बलवान् पुरुष (महः) उत्तम, देने योग्य, (गध्यस्य) सबको प्राप्त होने योग्य (वाजस्य) ऐश्वर्य, वेतनादि की (सातौ) प्राप्ति के लिये, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वां हवते) तुझ को अपनाता है। ऐसे ही (गोषु) भूमि को विजय करने के लिये (युद्ध्यन्) युद्ध करता हुआ वीर (मुष्टि-हा) मुट्ठी के समान पांचों का संघ बना कर शत्रु-नाश में समर्थ, या 'मुष्टि', चोरी आदि उपद्रवों का नाशक पुरुष भी (वृत्रेषु) बढ़ते शत्रु रूप विघ्नों के बीच (त्वां सत्पतिं) तुझको ही सत्पालक और (त्वां तरुत्रं) तुझे वृक्षवत् आश्रयदाता (चष्टे) कहता है।

त्वं कविं चोदयोऽर्कसातौ त्वं कुत्साय शुष्णं दाशुषे वर्क्।
त्वं शिरो अमर्मणः पराहन्नतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन्! (त्वं अर्कसातौ) तू सूर्यवत् तेजस्वी पद प्राप्त करने के लिये (कविम्) दूरदर्शी विद्वान् को (चोदयः) प्रेरित कर और (त्वं) तू (कुत्साय) राष्ट्र के शस्त्रास्त्र-बल को धारण करने और (दाशुषे) कर आदि देने वाली प्रजा के पालन के लिये (शुष्णं) शत्रुशोषक बल को (वर्क्) नाना विभागों में विभक्त कर और (शुष्णं वर्क्) प्रजाशोषक दुष्ट जन को नष्ट कर और (अतिथिग्वाय) अतिथिवत् पूज्य पुरुषों का गौ, दूध, घी तथा वाणी आदि से सत्कार करने वाले पुरुष के लिये (शंस्यं करिष्यन्) प्रशंसनीय कार्य करना चाहता हुआ (त्वं) तू (अमर्मणः) मर्म-स्थल से रहित, दृढ़ शत्रु के (शिरः) मुख्य अंग को (परा हन्) परास्त कर।

त्वं रथं प्र भरो योधमृष्वमावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम्।
त्वं तुग्रं वेतसवे सचाहन्त्वं तुजिं गृणन्तमिन्द्र तूतोः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (योधं) युद्ध करने वाले

(ऋष्वं) महान् (रथं) रथ तथा रथ-सैन्य को (भरः) अच्छी प्रकार पालन कर। (युध्यन्तं) युद्ध करते हुए (दशद्युम्) दशों दिशाओं में चमकने वाले, (वृषभं) शरवर्षी योद्धा को (आ अवः) आदरपूर्वक सन्तुष्ट कर। (वेतसवे) ऐश्वर्य प्राप्ति करने वाले राष्ट्र के लिये (सचा) साथ ही संघ बनाकर (त्वं) तू (तुग्रं) सैन्य लेकर चढ़ाई करने वाले शत्रु को (अहन्) दण्डित कर और (गृणन्तं तुजिम्) उपदेश करते हुए, विद्या-दाता उपदेष्टा को तू (तूतोः) बढ़ा।

त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणा कः प्र यच्छता सहस्रा शूर दर्षि।
अव गिरेर्दासं शम्बरं हन्प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती ॥५॥२१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (शूर) वीर! (त्वं तत् कः) तू वह काम कर कि (यत्) जो तू (शता सहस्रा) सैकड़ों हजारों शत्रु-सैन्यों को (दर्षि) दलन करता है वह (त्वं) तू (बर्हणा) वृद्धिशील बल से (तत्) वह नाना वा (उक्थं) प्रशंसनीय (गिरेः दासं शम्बरं) मेघ के बीच विद्यमान शान्तिदायक जल को जैसे सूर्य वा विद्युत् (अव हन्ति) नीचे गिराता है वैसे ही (गिरेः) पर्वत के बीच में रहकर (दासं) प्रजाजनों के नाशक, (शम्बरं) शान्ति-नाशक शत्रुजन को (अव हन्) नीचे मार गिरा। इत्येकविंशो वर्गः ॥

त्वं श्रद्धाभिर्मन्दसानः सोमैर्दभीतये चुमुरिमिन्द्र सिष्वप्।
त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन्षष्टिं सहस्रा शच्या सचाहन् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (श्रद्धाभिः) सत्य धारणाओं और (सोमैः) सौम्य-स्वभाव पुरुषों के साथ (मन्दसानः) प्रसन्न होता हुआ (दभीतये) शत्रु-नाश के लिये (चुमुरिम्) प्रजा को खाने वाले दुष्ट-गण (सिष्वप्) सुला दे और (पिठीनसे) 'पिठी' हिंसाकारिणी और दुष्टों को क्लेश देने वाली, शक्ति को नाक के समान मुख्य-रूप से धारण करने वाले नायक पुरुष को (त्वं) तू (रजिं) सैन्य-पंक्ति वा स्वयं उसकी

'नाक' वा अग्रणी होकर रहने वाले वा राज्यशक्ति को (दशस्यन्) देता हुआ, (षष्टिं सहस्रा) ६० हजार शत्रुओं को भी (शच्या) संघ बल से युक्त सेना द्वारा (हन्) विनष्ट कर।

अहं चन तत्सूरिभिरानश्यां तव ज्याय इन्द्र सुम्नमोजः।
त्वया यत्स्तवन्ते सधवीर वीरास्त्रिवरूथेन नहुषा शविष्ठ॥ ७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (अहं चन) मैं भी (तव) तेरे (तत्) उस (ज्यायः) महान्, (सुम्नम्) सुखप्रद (ओजः) पराक्रम का उन (सूरिभिः) विद्वानों सहित (आनश्याम्) उपभोग करूं। हे (शविष्ठ) अति शक्तिशालिन्! हे (सधवीर) वीरों सहित! (यत् नहुषा) जो लोग (त्रिवरूथेन) शीत, उष्ण, वर्षा तीनों से बचाने वाले, गृह के स्वामी रूप (त्वया) तुझसे (वीराः) बली होकर (स्तवन्ते) तेरा गुण गाते हैं।

वयं ते अस्यामिन्द्र द्युम्नहूतौ सखायः स्याम महिन प्रेष्ठाः।
प्रातर्दनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठो घने वृत्राणां सनये धनानाम्॥८॥२२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (महिन) महान्! (वयम्) हम (अस्याम्) इस (ते) तेरी (द्युम्न-हूतौ) धन के लिये आदरपूर्वक पुकार तथा ऐश्वर्य के लिये (ते प्रेष्ठाः) तेरे अति प्रिय (सखायः स्याम) मित्र हों। (वृत्राणां) बढ़ते, विघ्नकारी शत्रुओं के (घने) हनन और (धनानाम् सनये) धनों को प्रजा में विभाग के लिये (प्रातर्दनिः) शत्रु को छिन्न-भिन्न करने वाले सैन्य बल का स्वामी पुरुष, (श्रेष्ठः) सबसे उत्तम (क्षत्र-श्रीः अस्तु) बल और क्षात्र शक्ति की शोभा से युक्त हो। इति द्वाविंशो वर्गः॥

[२७]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ १—७ इन्द्रः। ८ अभ्यावर्तिनश्चायमानस्य दानस्तुतिर्देवता॥ छन्दः— १, २ स्वराट् पंक्तिः। ३, ४ निचृत्त्रिष्टुप्। ५, ७, ८ त्रिष्टुप्। ६ ब्राह्मी उष्णिक्॥ अष्टर्चं सूक्तम्॥

किम॑स्य॒ मदे॒ किम्व॑स्य पी॒ताविन्द्रः॒ किम॑स्य स॒ख्ये च॑कार ।
रणा॑ वा॒ ये नि॒षदि॒ किं ते अ॑स्य पु॒रा वि॑वि॒द्रे किमु॒ नूत॑नासः ॥ १

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (इन्द्रः) शत्रुहन्ता पुरुष (अस्य मदे) इस राज्यैश्वर्य को प्राप्त कर उसके हर्ष के निमित्त (किं चकार) क्या करे ? (अस्यपीतौ) इसके उपभोग के लिये (किं चकार) क्या करे ? (अस्य सख्ये) इसकी मित्रता के लिये वह (किं चकार) क्या करे ? (वा) और (ये) जो (अस्य) इसके (निषदि) राज्यासन पर विराजने पर (रणाः) प्रसन्न होते हैं वे प्रजाजन (पुरा) पहले और (नूतनासः) नये भी (किं विविद्रे) क्या २ लाभ करें और वे क्या २ कर्त्तव्य जानें ? इसका उत्तर अगली ऋचा में है ।

सद॑स्य॒ मदे॒ सद्व॑स्य पी॒ताविन्द्रः॒ सद॑स्य स॒ख्ये च॑कार ।
रणा॑ वा॒ ये नि॒षदि॒ सत्ते अ॑स्य पु॒रा वि॑विद्रे॒ सदु॒ नूत॑नासः ॥२॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष, (अस्य मदे) इस राज्यैश्वर्य के लाभ और शासन में (सद् चकार) सत्य, न्यायपूर्वक कार्य करे । (अस्य पीतौ) इसके उपभोग के लिए (सत् उ चकार) 'सत्' अर्थात् प्रमाद-रहित होकर प्रबन्ध करे । (अस्य सख्ये) उसका मैत्रीभाव बनाये रखने के लिये (सत् चकार) न्यायोचित शुभ कर्म करे । (ये वा अस्य निषदि) और जो इसके सिंहासन पर विराजने में (रणाः) प्रसन्न होते हैं (ते) वे भी (पुरा) पहले और (नूतनासः) नये सभी (सत् सत् उ विविद्रे) उत्तम, उत्तम पुरस्कार आदि लाभ करें ।

न॒हि नु ते॑ महि॒मनः॑ सम॒स्य न म॑घवन् मघव॒त्त्वस्य॑ वि॒द्म ।
न राध॑सोराध॑सो॒ नूत॑न॒स्येन्द्र॒ नकि॑र्ददृश इन्द्रि॒यं ते॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (मघवन्) प्रभो ! राजन् ! (ते महिमानः) तेरे सामर्थ्य के विषय में हम (नहि नु सं विद्म) कुछ भी नहीं जानते हैं । तेरे (मघ-वत्त्वस्य न सं विद्म) ऐश्वर्य के विषय में भी कुछ भी नहीं जानते । हे

(इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते नूतनस्य) तेरे नये से नये (राधसः राधसः) ऐश्वर्य और आराधना-योग्य गुण को भी (न सं विद्म) हम नहीं जानते। (ते इन्द्रियं) तेरा ऐश्वर्यमय स्वरूप (नकिः ददर्श) किसी को गोचर नहीं होता।

एतत्त्यत्त इन्द्रियमचेति येनावधीर्वरशिखस्य शेषः।
वज्रस्य यत्ते निहतस्य शुष्मात्स्वनाच्चिदिन्द्र परमो ददार ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते वर-शिखस्य एतत् त्यत्) उत्तम शिखा वाले तेरा वह प्रसिद्ध प्रत्यक्ष (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य (अचेति) जाना जाता है (येन) जिससे तू (अवधीः) शत्रुओं का नाश करता है। (यत्) और जो (ते) तेरे (नि-हतस्य) प्रहार किये गये (वज्रस्य) शस्त्र के (शुष्मात्) बल और (स्वनात्) शब्द से (परमः शेषः) बड़े से बड़ा और छोटे से छोटा भी (ददार) भयभीत होता है।

वधीदिन्द्रो वरशिखस्य शेषोऽभ्यावर्तिने चायमानाय शिक्षन्।
वृचीवतो यद्धरियूपीयायां हन्पूर्वे अर्धे भियसापरो दर्त् ॥५॥२३॥

भा०—जब (हरि-यूपीयायाम्) वह मनुष्यों को गुणों से मुग्ध करने वाली विद्या के निमित्त (पूर्वे अर्धे) पूर्व के उत्तम काल में (अपरः) दूसरा भी (भियसा दर्त्) भय से डरे, इस प्रकार से वह (वृचीवतः) अज्ञाननाशक विद्या वाले शिष्यों को (हन्) ताड़ना करे। तब (वर-शिखस्य) उत्तम शिखा वाले (वृचीवतः) अविद्या-छेदन करने वाली इच्छा से युक्त विद्यार्थी का (शेषः) शासक (इन्द्रः) आचार्य (चायमा-नाय) सत्कार करने वाले (अभ्यावर्त्तिने) समीप रहने वाले शिष्य को (शिक्षन्) शिक्षा देता हुआ (वधीत्) दण्ड भी दे। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

त्रिंशच्छतं वर्मिण इन्द्र साकं यव्यावत्यां पुरुहूत श्रवस्या।
वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः पात्रा भिन्दाना न्यर्थान्यायन् ॥ ६ ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुत प्रजाओं से पुकारे गये (इन्द्र) राजन्! (यव्या-वत्यां) शत्रुओं को दूर करने में कुशल पुरुषों से बनी सेना में (साकं) एक साथ (त्रिंशत् शतं) तीन सहस्र (वर्मिणः) कवचधारी (वृचीवन्तः) शत्रूच्छेदक तलवार लिये हुए (शरवे) शत्रु-नाश करने के लिये (पत्यमानाः) जाते हुए वीर पुरुष (श्रवस्या) ऐश्वर्यादि की कामना से (पात्रा भिन्दानाः) शत्रु के बचाव-साधनों को भेदते हुए, (नि-अर्थानि) अपने निश्चित प्रयोजनों को (आयत्) प्राप्त करें।

यस्य॒ गावा॑वरु॒षा सू॑यव॒स्यू अ॒न्तरू॒ षु चर॑तो॒ रेरि॑हाणा।
स सृञ्ज॑याय तु॒र्वशं॒ परा॑दाद्वृ॒चीव॑तो दैववा॒ताय॒ शिक्ष॑न् ॥ ७ ॥

भा०—(यस्य) जिस राजा की (गावौ) 'गौ' वाणी और सेना दोनों (अरुषा) रोषरहित और देदीप्यमान (सु-यवस्यू) उत्तम रीति से वयस्, चारे आदि को चाहने वाली दो गौओं के समान (सु-यवस्यू) सुखदायक विवेक और शत्रूच्छेद चाहती हुई (रेरिहाणा) सुखास्वाद कराती हुई, (अन्तः उ) राष्ट्र के मध्य (चरतः) विचरती हैं (सः) वह (दैववाताय) सूर्यवत् तेजस्वी और प्रचण्ड वात के समान शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले राजा के पद को प्राप्त करने और (सृञ्जयाय) आते शत्रुओं के विजय के लिये (वृचीवतः) उच्छेदक सैनिकों को (शिक्षन्) युद्ध-शिक्षा देता हुआ (तुर्वशं परादात्) हिंसक शत्रु को पराजित करे।

द्व॒याँ अ॑ग्ने र॒थिनो॑ विंश॒तिं गा व॒धूम॑न्तो म॒घवा॒ मह्यं॑ स॒म्राट्।
अ॒भ्या॒व॒र्ती चा॑यमा॒नो द॑दाति दू॒णाशे॒यं दक्षि॑णा पार्थ॒वाना॑म् ॥ ८ ॥ २४

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! (सम्राट्) तेजस्वी पुरुष, (अभ्यावर्ती) शत्रु के सन्मुख लड़ने वाला, (चायमानः) सत्कार प्राप्त करता हुआ, (द्वयान् रथिनः) दोनों प्रकार के रथ वाले, (वधूमन्तः) या रथ को अच्छी प्रकार उठाने में समर्थ (विंशतिं गाः) बीस बैलों के समान धुरन्धर पुरुषों को (मघवा) ऐश्वर्यवान् राजा (मह्यं ददाति) मुझ प्रजा

के लिए दे। (पार्थवानाम्) राष्ट्र-स्वामी राजाओं की (इयं दक्षिणा) यह शक्ति (दूणाशा) नाश को प्राप्त न हो। राजा शासन भार को उठाने के लिये २० प्रधान पुरुष नियत करे। धुरन्धरों की यह राज-सभा 'दक्षिणा' नाम की है। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[२८]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ १, ३—७ गावः २, ७ गाव इन्द्रो वा देवता॥ छन्दः—१, ७ निचृत्त्रिष्टुप्। २ स्वराट् त्रिष्टुप्। ५, ६ त्रिष्टुप्। ३, ४ जगती। ८ निचृदनुष्टुप्। अष्टर्चं सूक्तम्॥

आ गावो॑ अग्मन्नु॒त भ॒द्रम॑क्र॒न्त्सीद॑न्तु गो॒ष्ठे र॒णय॑न्त्व॒स्मे।
प्र॒जाव॑तीः पुरु॒रूपा॑ इ॒ह स्यु॒रिन्द्रा॑य पू॒र्वीरु॒षसो॒ दुहा॑नाः॥ १॥

भा०—(गावः) गौएं तथा सुशील वधुएं (अस्मे आ अग्मन्) हमें अच्छी प्रकार प्राप्त हों, (भद्रम् अक्रन्) वे कल्याण करें। (गोष्ठे) गो-शाला में गौएं, वैसे (इह) गृह में वधूजन (सीदन्तु) विराजें और (अस्मे रणयन्तु) हमें प्रसन्न करें और प्रसन्न रहें। वे (प्रजावतीः) उत्तम सन्तान वाली, (पुरु-रूपाः) उत्तम रूप वाली (इन्द्राय) ऐश्वर्य-युक्त स्वामी के लिये (पूर्वीः) श्रेष्ठतम, (उषसः) प्रभात वेलाओं के समान शोभित, पतियों को चाहने वाली एवं (दुहानाः) कामना पूर्ण करने वाली (स्युः) हों।

इन्द्रो॒ यज्व॑ने पृण॒ते च॑ शिक्ष॒त्युपेद्द॑दाति॒ न स्वं मु॑षायति।
भूयो॑भूयो र॒यिमिद॑स्य व॒र्धय॒न्नभि॑न्ने खि॒ल्ये नि द॑धाति देव॒युम्॥२॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (यज्वने) दानी और सत्कार करने वाले (पृणते च) ऐश्वर्यपूरक प्रजाजन को (शिक्षति) शिष्यवत् शिक्षा दे और (उप ददाति इत्) उसे धन दे, वह (स्वं) प्रजा के धन को (न मुषायति) चोरी से ग्रहण नहीं करे, प्रत्युत (भूयः भूयः) अधिका-धिक (अस्य रयिम् वर्धयन् इत्) उसके धनैश्वर्य को बढ़ाता हुआ (देव-

युम्) तेजस्वी राजा को चाहने वाले प्रजाजन को पिता के तुल्य ही (अभिन्ने खिल्ये) अपने से अभिन्न अंश में (नि दधाति) सुरक्षित रखे।

न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह ॥३

भा०—(याभिः) जिनसे (गोपतिः) गौवों, वेदवाणियों, भूमियों से उनका पालक (देवान्) कामनाशील मनुष्यों का (यजते) सत्कार करता, एवं उन्हें (ददाति च) ज्ञान वा धन देता है (ताभिः) उनके (सह) साथ (इत्) ही वह (ज्योग् सचते) चिर काल तक रहता है (ताः) वे भूमियां, वाणियां, (न नशन्ति) कभी नष्ट नहीं होतीं। (तस्करः ता न दभाति) चोर भी उनको नहीं चुराता और (आसाम्) उनको (व्यथिः अमित्रः) कष्टदायी, शत्रु भी (न आदधर्षति) नहीं छीन सकता।

न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ॥४॥

भा०—(ताः गावः) उन वेद-वाणियों को (अर्वा) अश्व-तुल्य केवल पशु, (रेणुक-काटः) धूल-भरे, शुष्क कूंए के समान नीरस पुरुष भी (न अश्नुते) प्राप्त नहीं कर सकता और जो (संस्कृतत्रम् न उप यान्ति) शुद्ध संस्कृत, ज्ञान के रक्षक विद्वान् के पास नहीं जाते, वे भी (ताः अभि न) उनको प्राप्त नहीं करते, परन्तु जो (उरुगायम्) महान् ज्ञान के उपदेष्टा पुरुष को (उपयन्ति) प्राप्त करते हैं वे (तस्य मर्तस्य यज्वनः) उस सत्संगयोग्य पुरुष की (ताः) उन वाणियों को (अनु) प्राप्त करते हैं। (तस्य गावः विचरन्ति) उसकी वाणियां सुख से विविध रूपों में प्रकाशित होती हैं।

गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥५॥

भा०—(प्रथमस्य) श्रेष्ठ (सोमस्य) अन्नादि का (भक्षः) सेवन करने वाला विद्वान् (मे गावः अच्छान्) मुझे गौओं और विद्याओं को दे। (भगः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (मे गावः) मुझे गौएं, ज्ञानवाणियें दे। (इन्द्रः मे गावः अच्छान्) राजा मुझे भूमियां दे। हे (जनासः) लोगो! (याः इमाः गावः) ये जो गौएं, वेदवाणियां और भूमियां हैं (स इन्द्रः) वही परमैश्वर्य है। मैं (हृदा मनसा) हृदय और मन से ऐसे ही (इन्द्रं चित्) ऐश्वर्य को (इच्छामि) चाहता हूँ।

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु॥ ६॥

भा०—(कृशं चित् मेदयथ) जैसे दूध कृश पुरुष को मोटा करता है वैसे ही हे (गावः) वेदवाणियो! (यूयं) तुम (कृशं) तपस्वी पुरुष को (मेदयथ) अन्यों के प्रति स्नेहयुक्त कर देते हो। हे भूमियो! तुम (कृशं चित्) शत्रु के कर्षण में समर्थ राजा को (मेदयथः) स्नेहवान् बनाती हो और जैसे गौवें अपने दूध से (अश्रीरं चित्) दुबले-पतले को (सुप्रतीकं) सुन्दर मुख वाला कर देती हैं, वैसे ही हे वेदविद्याओ! तुम सभी (अश्रीरं) शोभाहीन को भी (सु-प्रतीकम्) सौम्य मुख और उत्तम ज्ञान से युक्त कर देती हो। हे पृथिवियो! तुम लक्ष्मीहीन राजा को (सु-प्रतीकं) सुख से शत्रु के प्रति जाने में समर्थ बना देती हो। हे (भद्रवाचः) कल्याणवाणियो! जैसे गौवें (गृहं भद्रं कृण्वन्ति) घर को सुखयुक्त बनाती हैं वैसे ही तुम भी (गृहं भद्रं कृणुथ) घर को और ग्रहण-योग्य ज्ञान को सुखदायक, सुगम बना देती हो। (वः) तुम्हारा (वयः) बल आदि (सभासु) सभास्थलों में (बृहत् उच्यते) बहुत बड़ा कहा जाता है।

प्रजावतीः सूयवसं रिशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसः परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः॥७॥

भा०—जैसे (रुद्रस्य हेतिः) रोक रखने वाले गवाले का दण्ड (प्रजावतीः) उत्तम बछड़ों वाली (सु-यवसं रिशन्तीः) उत्तम चारा खाने वाली, (शुद्धा अपः सु-प्र-पाणे पिबन्तीः) शुद्ध जलों को उत्तम घाट पर पीती हुई गौओं को (परि वृक्तं) सब ओर से बचाये रखता है, वैसे ही (रुद्रस्य हेतिः) दुष्टरोदक राजा का शस्त्र (प्रजावतीः) प्रजा-युक्त (सु-यवसं रिशन्तीः) उत्तम अन्न का भोग करती हुई (शुद्धाः अपः) शुद्ध जलों का (सु-प्र-पाणे) उत्तम पालक के अधीन (पिबन्तीः) उप-भोग करती हुई भूमियों की (परि वृज्याः) हे राजन् ! तू अच्छी प्रकार रक्षा कर। हे भूमियो ! (स्तेनः वः मा ईशत) चोर तुम पर शासन न करे, (मा अघ-शंसाः) पापी तुम पर आधिपत्य न करे।

उपेदमुपपर्चनमासु गोषूप पृच्यताम्।
उप ऋषभस्य रेतस्युपेन्द्र तव वीर्ये ॥ ८ ॥ २५ ॥ ६ ॥

भा०—जैसे (रेतसि ऋषभस्य गोषु उपपर्चनम्) उत्तम वीर्य के लिये गौओं का सांड के साथ सम्पर्क होता है वैसे ही हे (इन्द्र) विद्या-दातः ! (तव वीर्ये) तेरे ज्ञान-सामर्थ्य के ऊपर (आसु) इन (गोषु) वेद-वाणियों के लिए (इदम्) यह (उप-पर्चनम्) उत्तम सम्बन्ध (उप पृच्यताम्) जुड़े। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥

———

अथ सप्तमोऽध्यायः

[२९]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५ निचृत्-त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप् । २ भुरिक् पंक्तिः । ६ ब्राह्मी उष्णिक् ॥

इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपुर्महो यन्तः सुमतये चकानाः ।
महो हि दाता वज्रहस्तो अस्ति महामु रण्वमवसे यजध्वम् ॥१॥

भा०—हे प्रजाजनो ! (महः यन्तः) बड़े लक्ष्यों को प्राप्त होते हुए और (सुमतये चकानाः) शुभ ज्ञान को चाहते हुए, (वः नरः) आप लोगों में से श्रेष्ठ पुरुष (सख्याय) मित्रभाव के लिये (इन्द्रं सेपुः) ऐश्वर्यवान् राजा वा विद्वान् को प्राप्त करें । (वज्र-हस्तः) शस्त्र को हाथ में रखने वाला राजा और पापों से हटाने वाले दण्ड को हाथों में लेने वाला गुरु, (महः दाता अस्ति) बड़ा दाता है । आप लोग उसी (महाम् रण्वम्) महान् रमणीय, उपदेष्टा का (अवसे) रक्षा और ज्ञान के लिये (यजध्वम्) सत्संग करो ।

आ यस्मिन्हस्ते नर्या मिमिक्षुरा रथे हिरण्यये रथेष्ठाः ।
आ रश्मयो गभस्त्योः स्थूरयोराध्वन्नश्वासो वृषणो युजानाः ॥२॥

भा०—(यस्मिन् हस्ते) जिस प्रबल हाथ के नीचे (नर्याः) मनुष्यों के हितकारी नायक जन (आ मिमिक्षुः) सब ओर से एकत्र होते हैं और (यस्मिन् हिरण्यये रथे) जिस हितकारी, 'रथ' अर्थात् महारथी के अधीन (रथे-ष्ठाः) रथ पर विराजने वाले अन्य महारथी (आ मिमिक्षुः) सम्बन्धित रहकर राष्ट्र की वृद्धि करते हैं और जिन (स्थूरयोः) विशाल (गभस्त्योः) बाहुओं में (रश्मयः) रासें (आ मिमिक्षुः) मिल कर रहती हैं और (अध्वन्) जिस मार्ग में (अश्वासः) अश्वों के समान (वृषणः) बलवान् पुरुष भी (युजानाः) नियुक्त होकर, (आ मिमिक्षुः)

मिलकर राष्ट्र-वृद्धि करते हैं वही सबका (इन्द्रः) स्वामी होने योग्य है।

श्रियें ते पादा दुव आ मिमिक्षुर्धृष्णुर्वज्री शवसा दक्षिणावान्।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्व१र्ण नृतविषिरो बभूथ ॥ ३॥

भा०—हे राजन्! (ते पादौ) तेरे चरणों की, लोग (श्रियै) लक्ष्मी-वृद्धि और आश्रय-प्राप्ति के लिये (दुवः आ मिमिक्षुः) आदर से सेवा करते हैं। हे (नृतो) नायक! तू (धृष्णुः) शत्रुधर्षक, (वज्री) शस्त्र का स्वामी, (शवसा) शक्ति से (दक्षिणावान्) बलवती सेना और दानशक्ति से सम्पन्न होकर और (सुरभिः) उत्तम रीति से कार्य करने में समर्थ कर देने वाले (अत्कं) वस्त्र वा कवचों को (वसानः) पहने हुए, (दृशे) सबको सन्मार्ग दिखाने के लिये (स्वः न) सूर्य समान प्रकाशदाता और (इषिरः) सन्मार्गगामी (बभूथ) हो।

स सोम आमिश्लतमः सुतो भूद्यस्मिन्पक्तिः पच्यते सन्ति धानाः।
इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकारा उक्था शंसन्तो देववाततमाः ॥४॥

भा०—(यस्मिन्) जैसे नायक की अधीनता में (सः) वह (सुतः) उत्पन्न हुआ पुत्रवत्, वा अभिषिक्त (सोमः) ऐश्वर्यवान्, प्रजाजन (आमिश्लतमः) सब प्रकार मिला हुआ, प्रेमयुक्त (भूत्) हो जाता है, (यस्मिन् पक्तिः) जिसके अधीन गृह में भोजन, अन्न का उत्तम परिपाक (पच्यते) हो और (धानाः सन्ति) जिसके अधीन धान की खीलों के सदृश उज्ज्वल-चरित्र प्रजाएं ऐश्वर्य धारने में समर्थ हों उस (इन्द्रं) शत्रुहन्ता राजा को (नरः) नायक (ब्रह्मकाराः) धन, अन्न और ज्ञान-उपदेश करने में दक्ष पुरुष (स्तुवन्तः) स्तुति करते और (उक्था शंसन्तः) उत्तम वचन कहते हुए (देव-वाततमा) सूर्यवत् तेजस्वी राजा वा प्रभु के समीप पहुँच जाते हैं।

न ते अन्तः शवसो धाय्यस्य वि तु बाबधे रोदसी महित्वा।
आ ता सूरिः पृणति तूतुजानो यूथेवाप्सु समीजमान ऊती ॥५॥

भा०—(अस्य) इस प्रभु के (शवसः) बल और ज्ञान की (अन्तः) सीमा (न धायि) नहीं कही जा सकती। वह (महित्वा) सामर्थ्य से (रोदसी) आकाश और भूमि को (वि बाबधे नु) विविध प्रकार से बांधे रहता है। वह (सूरिः) सबका सञ्चालक, (तूतुजानः) बाधाओं का नाशक, सुखदाता होकर (सम्-ईजमानः) उत्तम दान करता हुआ, (यूथा इव अप्सु) पशु-समूहों को जलों पर गवाले के समान (अप्सु ताः ऊतीः आपृणति) उन आकाश और पृथिवीस्थ लोकों की रक्षा और अन्नादि से खूब तृप्त करता है।

एवेदिन्द्रः सुहव ऋष्वो अस्तूती अनूती हिरिशिप्रः सत्वा।
एवा हि जातो असमात्योजाः पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून् ॥६।१

भा०—(एव इत् इन्द्रः) इसी प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा, (सुहवः) सुख से आह्वान करने योग्य, (ऋष्वः) महान् (अस्तु) हो। वह (ऊती) रक्षा-साधनों या (अनूती) उन साधनों के अभाव में भी (हिरि-शिप्रः) मनोहर मुख, नाक वाला और (सत्वा) बलशाली हो। (एवा) इसी प्रकार (हि) निश्चय से वह (असमात्योजाः जातः) बल में अनुपम होकर (पुरू च वृत्रा) बहुत से विघ्नकारियों और (दस्यून्) दुष्ट लोगों को (नि हनति) सर्वथा नष्ट करे। इति प्रथमो वर्गः॥

[३०]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, २, ३ निचृत्-त्रिष्टुप्। ४ पंक्तिः। ५ ब्राह्मी उष्णिक्। पञ्चर्चं सूक्तम्॥

भूय इद्वावृधे वीर्यायँ एको अजुर्यो दयते वसूनि।
प्र रिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे ॥१॥

भा०—(इन्द्रः पृथिव्याः अर्धम् प्रति भवति) सूर्य पृथिवी के आधे भाग को प्रकाशित करता है, (पृथिवी दिवः अर्धम् प्रति) पृथिवी प्रकाश के आधे अंश को ग्रहण करती है तो भी (उभे) दोनों (रोदसी)

आकाश और पृथिवी मिलकर रहते हैं उन दोनों में से (इन्द्रः) सूर्य ही (प्र रिरिचे) अधिक शक्तिशाली है। (उभे रोदसी प्रति) आकाश और पृथिवी दोनों को व्यापता है, वैसे ही (इन्द्रः) राजा (दिवः पृथिव्याः) आकाश और पृथिवीवत् विजयिनी सेना और पृथिवीवासी प्रजा दोनों से (प्र रिरिचे) बड़ा है। (उभे रोदसी अस्य अर्धम् प्रति) सेनापति और सेना, शासक और शास्य दोनों इसके आधे ऐश्वर्य के बराबर हैं। वह (एकः) अकेला (अजुर्यः) कभी नष्ट न होकर (वीर्याय) बल-वृद्धि के हित, (भूय इत् वावृधे) बहुत वृद्धि करे और वह (वसूनि) ऐश्वर्यों से बसे प्राणियों की (दयते) रक्षा करे।

अधा मन्ये बृहदसुर्यमस्य यानि दाधार नकिरा मिनाति।
दिवेदिवे सूर्यो दर्शतो भूद्वि सद्मान्युर्विया सुक्रतुर्धात् ॥ २ ॥

भा०—(अध) और मैं (अस्य) उसके (असुर्यम्) बल को (बृहत्) बड़ा (मन्ये) जानता हूँ और (यानि) जिन (उर्विया) बड़े २ (सद्मानि) लोकों को यह (सुक्रतुः) उत्तम पुरुष (विधात्) बनाता और (दाधार) धारण करता है उनको (नकिः) कोई नहीं (आ मिनाति) नष्ट कर सकता। इसी लिये वह (सूर्यः) सूर्य-समान तेजस्वी (दिवे, दिवे) दिनों-दिन (दर्शतः भूत्) दर्शनीय होता है।

अद्या चिन्नू चित्तदपो नदीनां यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र।
नि पर्वता अद्मसदो न सेदुस्त्वया दृळ्हानि सुक्रतो रजांसि ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) जैसे विद्युत् (नदीनाम् अपः अरदः) नदियों के जल को छिन्न-भिन्न करती है और (यत्) जो (आभ्यः) इनके जाने के लिये (गातुम्) मार्ग या पृथिवी-स्थल को (अरदः) विदीर्ण करता है, वैसे ही हे राजन्! तू (नदीनाम्) समृद्धिशालिनी प्रजाओं के (अद्य चित्) निश्य ही, आज के समान, (तत् अपः अरदः) उन उन कर्मों का निर्माण करे। (आभ्यः) उनके हितार्थ (गातुम्) सन्मार्ग और

भूमियों को (अरदः) खोद, सन्मार्ग बना। (पर्वताः) मेघ तुल्य प्रजा-पालक जन (अद्म-सदः न) अन्नादि उपभोग के लिये बैठे जनों के तुल्य (अद्म-सदः) राजा के दिये अन्न को प्राप्त कर (नि सेदुः) पदों पर विराजें। हे (सु-क्रतो) उत्तम कर्म करने हारे! (त्वया) तेरे द्वारा (रजांसि) समस्त लोक (दृळ्हानि) बलवान् हों।

सत्यमित्तन्न त्वावाँ अन्यो अस्तीन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान्।
अहन्नहिं परिशयानमर्णोऽवासृजो अपो अच्छा समुद्रम् ॥ ४ ॥

भा०—(तत् सत्यम् इत्) यह सर्वथा सत्य है, कि (त्वावान् अन्यः न अस्ति) तेरे जैसा दूसरा नहीं है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (न देवः न मर्त्यः ज्यायान्) न देव और न मर्त्य ही तुझ से बड़ा है। (परि-शयानम्) सब ओर फैले (अहिं) मेघ को जैसे विद्युत्, सूर्य (अहन्) छिन्न-भिन्न करता है और (अर्णः अव असृजः) जल को नीचे गिराता है और (अपः समुद्रम् अच्छ अवासृज) जलों को समुद्र की ओर बहा देता है वैसे ही हे राजन्! तू भी (परि-शयानम्) शान्त रूप से फैले (अहिं) शत्रु का (अहन्) नाश कर। (अर्णः अवासृजः) धन उत्पन्न कर और (अपः अच्छ समुद्रम्) प्रजाओं को समुद्र के समान गंभीर पुरुष को सौंप।

त्वमपो वि दुरो विषूचीरिन्द्र दृळ्हमरुजः पर्वतस्य।
राजाभवो जगतश्चर्षणीनां साकं सूर्यं जनयन् द्यामुषासम् ॥५॥२

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! जैसे सूर्य मेघ के जलों को सब ओर वर्षाता है, वैसे ही तू (अपः) प्रजाओं को (दुरः) शत्रुसंतापक सेनाओं को (विषूचीः वि) विविध दिशाओं में भेज और (पर्वतस्य) मेघ वा पर्वत-तुल्य शरवर्षी और अचल शत्रु के (दृढम्) दृढ़ सैन्य को (वि अरुजः) विनष्ट कर। तू (सूर्यम्) सूर्य, (द्याम्) तेज और (उषासम्) तेजस्वी पुरुष वा 'उषा' अर्थात् शत्रु को भस्म करने वाली सेना को

(जनयन्) प्रकट करता हुआ (जगतः चर्षणीनाम्) जगत् के मनुष्यों में (राजा अभवः) राजा होकर रह। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[३१]

सुहोत्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप् । २ स्वराट् पंक्तिः । ३ पंक्तिः । ४ निचृदतिशक्वरी । ५ त्रिष्टुप् । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अभूरेको रयिपते रयीणामा हस्तयोरधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
वि तोके अप्सु तनये च सूरेऽवोचन्त चर्षणयो विवाचः ॥१॥

भा०—हे (रयिपते) ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! तू (रयीणाम्) समस्त ऐश्वर्यों का (एकः) अकेला ही स्वामी (अभूः) है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (हस्तयोः) हाथों में (कृष्टीः) कृषिकारिणी प्रजाओं और शत्रु नाशिनी सेनाओं को भी (अधिथाः) धारण कर। (चर्षणयः) विद्वान् मनुष्य (अप्सु) अन्तरिक्ष में सूर्य-सदृश (अप्सु) प्रजाजनों में (सूरे) सबके सञ्चालक (तोके तनये च) पुत्र, पौत्र आदि के सम्बन्ध में (वि वाचः) विविध बातें (वि अवोचन्त) विविध प्रकार से कहें।

त्वद्भियेन्द्र पार्थिवानि विश्वाच्युता चिच्च्यावयन्ते रजांसि ।
द्यावाक्षामा पर्वतासो वनानि विश्वं दृळ्हं भयते अज्मन्ना ते ॥२

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! प्रभो ! (त्वत् भिया) तुझसे डर कर, तेरे शासन में (विश्वा पार्थिवानि) समस्त पृथिवी के प्राणी (अच्युता) स्वयं नष्ट न होकर भी (रजांसि चित् च्यावयन्ते) अन्य लोकों को मार्ग पर जाने देते हैं। (ते अज्मन्) तेरे बल के अधीन (द्यावा क्षामा) सूर्य और पृथिवी के तुल्य नर-नारी, (पर्वतासः) पर्वतों के तुल्य बड़े २ प्रजापालक जन और (वनानि) सेव्य नाना ऐश्वर्य, (विश्वं दृढं) सब स्थिर रहकर भी विद्युत् के समान (भयते) भय करते हैं।

त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्राशुषं युध्य कुयवं गविष्टौ ।
दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य मुषायश्चक्रमविवे रपांसि ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! हे भूमि-विदारक ! कृषक ! (त्वं) तू (कुत्सेन) वज्र या हथियार, हल के बल से (अशुषम् शुष्णम्) कभी न सूखने वाले, अपार जल के बल को प्राप्त करके (गविष्टौ) बैलों तथा भूमि की इष्टि अर्थात् प्राप्ति और उसमें बीज वपन आदि करके (कु-यवं) कुत्सित धान्य उत्पन्न करने के दोष को (अभि यु-ध्य) दूर कर । ऐसे ही हे राजन् ! तू (त्वं कुत्सेन अशुषं शुष्णं युध्य) तू शस्त्र-बल से प्रजा-शोषक, अत्याचारी को प्रहार कर । (गविष्टौ) भूमि प्राप्त करने के लिये (कुयवं) कुत्सित अन्न खाने वाले या कुत्सित उपायों से प्रजा-नाश करने वाले दुष्ट का (अभि युध्य) मुकाबला कर । (अध) और (प्रपित्वे) ऐश्वर्य प्राप्त होने पर (सूर्यस्य दश रपांसि) सूर्य के दसों हननकारी बलों को (मुषाय:) प्राप्त कर और (चक्रम् अविवे:) राष्ट्र-चक्र का सञ्चालन कर ।

त्वं शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्थाप्रतीनि दस्योः ।
अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय सुन्वते सुतक्रे
भरद्वाजाय गृणते वसूनि ॥ ४ ॥

भा०—हे (शचीवः) शक्तिशालिन् ! हे बुद्धिमन् ! हे (सु-तक्रे, सुत-क्रे) सुप्रसन्न ! हे उत्तम ऐश्वर्य द्वारा क्रीत ! (त्वं) तू (शम्बरस्य) शान्ति-नाशक (दस्योः) प्रजा-नाशकारी, दुष्ट शत्रु के (शतानि) सैकड़ों और (अप्रतीनि) अप्रतीत गुप्त स्थानों और (पुरः) किलाबन्द नगरियों को भी (अव जघन्थ) पता लगा और नष्ट कर । (यत्र) जिस राष्ट्र में तू (सुन्वते) ऐश्वर्य बढ़ाने वा अभिषेक करने वाले (दिवः दासाय) तेजस्वी सूर्यवत् तेरे पास भृत्यवत् सेवक प्रजाजनों को और (गृणते) उपदेष्टा (भरद्वाजाय) ज्ञानधारक पुरुष को तू (वसूनि अशिक्षः) ऐश्वर्य प्रदान करे, वहां तू सुख से विराज ।

स सत्यसत्वन्महते रणाय रथमातिष्ठ तुविनृम्ण भीमम् ।
याहि प्रपथिन्नवसोप मद्रिक्प्र च श्रुत श्रावय चर्षणिभ्यः ॥५॥३

भा०—हे (सत्य-सत्वन्) सत्यपालक बल वाले ! हे (तुवि-नृम्ण) बहुत ऐश्वर्यशालिन् ! तू (महते रणाय) बड़े संग्राम के लिये (भीमम्) भयजनक (रथम्) रथ वा रथ-सैन्य पर (आ तिष्ठ) बैठ । हे (प्र-पथिन्) उत्तम मार्गगामिन् ! तू (अवसा) रक्षा, ज्ञान-सहित (मद्रिक्) मेरे पास (उप याहि) आ और (चर्षणिभ्यः) विद्वान् पुरुषों से (प्र श्रुत) उत्तम वचन सुन (चर्षणिभ्यः प्र श्रावय च) और मनुष्यों के हितार्थ सुनाया कर । इति तृतीयो वर्गः ॥

[३२]

सुहोत्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥छन्दः—१ भुरिक् पंक्तिः । २ स्वराट् पंक्तिः । ३, ५ त्रिष्टुप् । ४ निचृत्त्रिष्टुप् । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय ।
विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यासा स्थविराय तक्षम् ॥१॥

भा०—मैं (अस्मै) इस (महे) महान्, (तवसे) बलवान् (तुराय) शीघ्रकारी (वीराय) ज्ञानोपदेष्टा, शत्रुओं को कंपाने वाले, (विरप्शिने) विविध प्रकारों से स्तुति-योग्य, (वज्रिणे) शक्तिशाली, (स्थविराय) स्थिर, कूटस्थ प्रभु के (अपूर्व्या) सबसे आदि, परम पुरुष के योग्य (पुरुतमानि) बहुत से (शं-तमानि) अति शान्तिदायक, (वचांसि) वचनों को मैं (आसा) मुख से (तक्षम्) कहूँ ।

स मातरा सूर्येणा कवीनामवासयद्रुजदद्रिं गृणानः ।
स्वाधीभिर्ऋक्वभिर्वावशान उदुस्रियाणामसृजन्निदानम् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह विद्वान् तथा बलवान् पुरुष (सूर्येण) सूर्य-समान तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष द्वारा (कवीनाम्) विद्वानों के (मातरा) माता-पिता, राष्ट्रोत्पादक नर-नारी जनों को (अवासयत्) सुख से

बसावे, और वह स्वामी वा गुरु (गृणानः) उपदेश देता हुआ (अद्रि रुजत्) अभेद्य अज्ञान को, मेघ को सूर्यवत् नष्ट करे। जैसे (वावशानः) चमकता सूर्य (सुआधीभिः ऋक्वभिः उस्रियाणां निदानम् उद् असृजन्) उत्तम जलधारक तेजोयुक्त किरणों द्वारा कान्तियों का और मेघों द्वारा जल-धाराओं को देता है वैसे ही विद्वान् पुरुष वह (वावशानः) निरन्तर चाहता हुआ, (स्वाधीभिः) उत्तम ध्यान, धारणा वाले विद्वानों, (ऋक्वभिः) अर्चना योग्य, मन्त्रज्ञ पुरुषों द्वारा (उस्रियाणाम्) ज्ञान-वाणियों का (निदानम्) निश्चित रूप से दान (उद् असृजत्) करे।

स वह्निभिर्ऋक्वभिर्गोषु शश्वन्मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय।
पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन्दृळ्हा रुरोज कविभिः कविः सन् ॥ ३॥

भा०—(सः) वह विद्वान् पुरुष (ऋक्वभिः) पूजा-योग्य (वह्निभिः) कार्य भार को उठाने में समर्थ, (मित-ज्ञुभिः) गोडे सिकोड़ कर बैठने वाले, सुसभ्य, (सखिभिः) एक समान नाम वा ख्याति वाले वीरों, वा विद्वान् जनों के साथ (सखीयन्) मित्रवत् आचरण करता हुआ, (शश्वत्) सदा (गोषु) भूमियों और वेद-वाणियों को प्राप्त करने के लिए, (पुरु-कृत्वा) बहुत कर्म करने द्वारा, पुरुष (जिगाय) विजय करे और उनके सहाय से वह (पुरोहा) शत्रु के पुरों का नाशक, (कविः) दूरदर्शी पुरुष स्वयं (कविः सन्) क्रान्तदर्शी होकर (दृढाः पुरः रुरोज) शत्रु की दृढ़ नगरियों को तोड़े।

स नीव्याभिर्जरितारमच्छा महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः।
पुरुवीराभिर्वृषभ क्षितीनामा गिर्वणः सुवितायं प्र याहि ॥ ४ ॥

भा०—(सः) वह राजा, तू (नीव्याभिः) प्राप्ति-योग्य उद्देश्यों को लक्ष्य में रखने वाली वा 'नीवी' पंक्तियों में व्यवस्थित सेनाओं, (महद्भिः वाजेभिः) बड़े ज्ञानी, बलवान् पुरुषों तथा (महद्भिः शुष्मैः) बड़े बलों सहित (जरितारम्) स्तुतिशील तथा, स्वपक्ष की हानि करने

वाले शत्रु जन को, पालन और हनन के लिये (अच्छ), सन्मुख होकर प्राप्त हो। हे (वृषभ) बलवन्! हे (गिर्वणः) आज्ञादातः! तू (क्षितीनाम् सुविताय) प्रजाओं के सुख और ऐश्वर्य के लिये (पुरुवीराभिः) बहुत से वीरों से बनी सेनाओं सहित (प्र याहि) आगे बढ़।

स सर्गेण शवसा तक्तो अत्यैरप इन्द्रो दक्षिणतस्तुराषाट्।
इत्था सृजाना अनपावृदर्थं दिवेदिवे विविषुरप्रमृष्यम् ॥५॥४॥

भा०—(इन्द्रः सर्गेण तक्तः) जैसे विद्युत् वा वायु जल-पूर्ण होकर (दक्षिणतः अत्यैः) दक्षिण से आने वाले मेघों द्वारा (अपः सृजति) जलों को बरसाता है और वे (सृजानः दिवे दिवे अनपावृत् अर्थं विविषुः) उत्पन्न होकर दिनों-दिन पुनः न लौटने योग्य गन्तव्य सागर को प्राप्त हो जाते हैं वैसे ही (सः) वह वीर (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (तुराषाट्) अपनी वेगवती सेना वा वेगयुक्त भटों से शत्रुओं का विजयी होकर (सर्गेण) गतिमान् (शवसा) सैन्य-बल से (तक्तः) हृष्ट-पुष्ट होकर (अत्यैः) वेगवान् अश्वगण सहित (अपः) प्रजावर्ग को प्राप्त करे। (इत्था) इस प्रकार से वे (सृजानाः) प्राप्त होती हुई प्रजाएं (दिवेदिवे) दिनों-दिन (अनपावृत्) प्रत्यक्ष रूप से (अप्रमृष्यं अर्थं विविषुः) शत्रु से अपराजेय, शरण-योग्य पुरुष को प्राप्त करें। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[३२]

शुनहोत्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३ निचृत्पंक्तिः। ४ भुरिक् पंक्तिः। ५ स्वराट् पंक्तिः। पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

य ओजिष्ठ इन्द्र तं सु नो दा मदो वृषन्त्स्वभिष्टिर्दास्वान्।
सौवश्व्यं यो वनवत्स्वश्वो वृत्रा समत्सु सासहदमित्रान् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद! (यः) जो तू (ओजिष्ठः) सबसे अधिक पराक्रमी, (मदः) हर्ष-युक्त, (सु-अभिष्टिः) उत्तम आदरणीय, (दास्वान्) और (यः) जो तू (सु-अश्वः) उत्तम अश्व-सैन्यों का स्वामी

है, हे (वृषन्) बलवन्! वह तू (नः) हमें (तम्) उस ऐश्वर्य आदि को (दाः) दे। वह तू (सौवश्व्यं) उत्तम अश्व-सैन्य के कारण प्राप्त होने योग्य यश को (वनवत्) प्राप्त कर, तू (समत्सु) संग्रामों में (वनवत्) विघ्नों का नाश करे और (अमित्रान् सासहत्) शत्रुओं का पराजय करे।

त्वां ह्यि॑न्द्रावसे विवाचो हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ।
त्वं विप्रेभिर्वि पणीँरशायस्त्वोत इत्सनिता वाजमर्वा ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (वि-वाचः) विविध-विद्यायुक्त वाणियों के ज्ञाता, नाना देशवासी, (चर्षणयः) मनुष्य (शूरसातौ) शूर पुरुषों द्वारा सेवन-योग्य संग्राम में (अवसे) रक्षा के लिए (त्वां हि) तुझको ही (हवन्ते) पुकारते, वा रक्षक स्वीकार करते हैं। तू (विप्रेभिः) विद्वान् पुरुषों के द्वारा ही (पणीन्) प्रशंसित, पुरुषों को भी (वि-अशायः) विशेष रूप से सुख की नींद सुला। (त्वा-उतः) तुझसे सुरक्षित रहकर (इत्) ही (अर्वाः) अश्व-तुल्य वेगवान् पुरुष भी (वाजम्) ऐश्वर्यादि का (सनिता) भोग करता है।

त्वं ता इ॑न्द्रो॒भया॑ँ अमित्रान्दासा॑ वृत्राण्यार्या॑ च शूर।
वधीर्वनेव सुधि॑तेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणां नृ॑तम ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (तान्) उन (उभयान्) दोनों (अमित्रान्) शत्रु और (दासा) सेवकों को, (वृत्राणि) धनों और (आर्या) स्वामियों के योग्य ऐश्वर्यों को प्राप्त कर। हे (शूर) वीर! तू (सु धितेभिः वना इव) कुठारों से जंगली वृक्षों के समान (अत्कैः) बलों द्वारा शत्रुओं का (वधीः) नाश कर। हे (नृणां नृतम) नायकों में उत्तम! तू (अमित्रान्) शत्रुओं को (पृत्सु) संग्रामों में (आ दर्षि) सब ओर विदीर्ण कर और (दासा आर्याः) सेवकों, श्रेष्ठ जनों का (आदर्षि) आदर कर।

स त्वं न॑ इन्द्राक॑वाभिरू॒ती सखा॑ वि॒श्वायु॑रवि॒ता वृधे भूः।
स्वर्षाता यद्ध्वया॑मसि त्वा युध्यन्तो नेमधि॑ता पृत्सु शूर ॥४॥

भा०—हे शूर ! (यत्) जो (युध्यन्तः) युद्ध करते हुए हम (स्वःसाता) सुख प्राप्ति के लिये (पृत्सु) संग्रामों में (नेमधिता) आधे ऐश्वर्य के धारक होकर (त्वा ह्वयामसि) तुझे बुलाते हैं, (सः) वह (त्वं) तू, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अकवाभिः) अनिन्दित वाणियों तथा (ऊती) रक्षा-सामर्थ्य से (नः सखा) हमारा मित्र (विश्वायुः) सब मनुष्यों का स्वामी, (अविता) पालक और (वृधे भूः) हमारी वृद्धि के लिये समर्थ हो ।

नूनं न॑ इन्द्रापराय॑ च स्या भवा॑ मृळीक उ॒त नो॑ अ॒भिष्टौ॑ ।
इ॒त्था गृ॒णन्तो॑ म॒हिन॑स्य॒ शर्म॑न्दि॒वि ष्या॑म॒ पार्ये॑ गो॒षत॑माः ॥५॥५॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नूनं) निश्चय से (अपराय) दूसरे के लिये भी (मृळीक) सुखकर (स्याः) हो । (उत) और (नः) हमें (अभिष्टौ) प्राप्त होने पर भी (मृडीकः भव) सुखकारी हो । (इत्था) इस प्रकार (गृणन्तः) स्तुति करते हुए हम (महिनस्य) महान् सामर्थ्य-वान् तेरे (दिवि) सुन्दर; (पार्ये) सबको पूर्ण करने वाले (शर्मन्) सुखमय शरण में (गोषतमाः) ज्ञानवाणी, भूमियों का सेवन करने वाले (स्याम) हों । इति पञ्चमो वर्गः ॥

[३४]

शुनहोत्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

सं च॒ त्वे ज॒ग्मुर्गिर॑ इन्द्र पू॒र्वीर्वि च॒ त्वद्य॑न्ति वि॒भ्वो॑ मनी॒षाः ।
पु॒रा नू॒नं च॑ स्तु॒तय॒ ऋषी॑णां पस्पृ॒ध्र इन्द्रे॒ अध्यु॑क्था॒र्का ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) स्वामिन् ! (पूर्वीः) सबसे पूर्व की, (गिरः) वाणियां (त्वे) तुझमें ही (संजग्मुः) समन्वित होती हैं और (विभ्वः मनीषाः) विशेष बुद्धियां भी (त्वत् वि यन्ति च) तुझसे विशेष रूप से प्रकट होती हैं । (इन्द्रे अधि) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के लिए ही (ऋषीणां स्तुतयः च) मन्त्रार्थ द्रष्टाओं की स्तुतियां, (उक्थ अर्का) अर्चना-योग्य वचन (नूनं) अवश्य (पस्पृध्रे) एक दूसरे से उत्तम जंचते हैं ।

पुरुहूतो यः पुरुगूर्त ऋभ्वाँ एकः पुरुप्रशस्तो अस्ति यज्ञैः ।
रथो न महे शवसे युजानोऽस्माभिरिन्द्रो अनुमाद्यो भूत् ॥२॥

भा०—(यः) जो (पुरुहूतः) बहुतों से स्तुति किया गया, (पुरु-गूर्तः) बहुतों से उद्यम किया गया, अर्थात् जिसके लिए बहुत से उद्यम करते हैं, (यः) जो (ऋभ्वा) सत्य-बल से महान् (यज्ञैः) यज्ञों द्वारा (पुरु-प्रशस्तः) बहुतों से प्रशंसित है, वह (महे) बड़े (शवसे) बल की वृद्धि के लिये (अस्माभिः युजानः) हम लोगों से योग द्वारा उपासित (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (रथः न) रथ के समान (अनुमाद्यः भूत्) प्रति दिन स्तुति-योग्य और हर्ष देने हारा हो।

न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणीरिन्द्रं नक्षन्तीदभि वर्धयन्तीः ।
यदि स्तोतारः शतं यत्सहस्रं गृणन्ति गिर्वणसं शं तदस्मै ॥३॥

भा०—(यं) जिसको (धीतयः) नाना स्तुतियें भी (न हिंसन्ति) कष्ट नहीं देतीं और (न वाणीः) न वाणियां ही विघ्न करती हैं और वे (अभि वर्धयन्तीः इत्) इसको बढ़ाती हुई (इन्द्रं नक्षन्ति) ऐश्वर्यवान् प्रभु को ही व्यापती हैं। (यदि शतं, यत् सहस्रं स्तोतारः) चाहे सौ वा सहस्र स्तोता हों तो भी जब वे (गिर्वणसं गृणन्ति) समस्त स्तुति-वाणियों को स्वीकार करने वाले, उस प्रभु की ही स्तुति करते हैं (तत्) तो भी यह सब अर्चनादि (अस्मै) इस जीव को (शं) शान्तिप्रद होता है।

अस्मा एतद्दिव्य१र्चेव मासा मिमिक्ष इन्द्रे न्ययामि सोमः ।
जनं न धन्वन्नभि सं यदापः सत्रा वावृधुर्हवनानि यज्ञैः ॥४॥

भा०—(दिवि इन्द्रे मासा यथा सोमः मिमिक्षे) आकाश में, तेजोमय सूर्य में जैसे 'सोम' अर्थात् चन्द्र एक मास के बाद (मिमिक्षे) उसके साथ मिलकर एक हो जाता है, वैसे ही (एतत् सोमः) यह सौम्य विद्वान् पुरुष, (अस्मै) अपने सुधार के लिये ही अपने जीव को भी (दिवि इन्द्रे) ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर में (अर्चा एव) अर्चना द्वारा,

(सं मिमिक्षे) मिल जाता है, वैसे ही यह जीव भी (न भयामि) नम्र होकर प्राप्त हो। (धन्वन्) अन्तरिक्ष या मरुस्थल में जैसे (आपः सम् अभि वव्रुधुः) जल किसी को बढ़ाते हैं वैसे ही (आपः) प्रजाजन (सत्रा) सदा (यज्ञैः) यज्ञों द्वारा (हवनानि वावृधुः) हवनों को बढ़ाते हैं।

अस्मा एतन्मह्याङ्गूषमस्मा इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि।
असद्यथा महति वृत्रतूर्य इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च ॥५॥६॥

भा०—(मतिभिः) मननशील पुरुषों द्वारा (अस्मै इन्द्राय) इस ऐश्वर्यवान् के लिये (एतत्) यह (महि) महत्त्व पूर्ण (आंगूषम्) ग्रहण योग्य, (स्तोत्रं) स्तुति-वचन (अवाचि) कहा जावे (यथा) जिससे (महति) बड़े भारी (वृत्र-तूर्ये) दुष्ट पुरुषों के नाशक संग्राम के समय (इन्द्रः) वह शत्रुहन्ता (विश्वायुः) पूर्णायु, सर्वत्र पहुँचने में समर्थ, (अविता) सबका रक्षक (वृधः च असत्) सबको बढ़ाने हारा हो। इति षष्ठो वर्गः॥

[३५]

नर ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्। ३ निचृत्-त्रिष्टुप्। ४, ५ त्रिष्टुप्। २ पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

कदा भुवन्रथक्षयाणि ब्रह्म कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः।
कदा स्तोमं वासयोऽस्य राया कदा धियः करसि वाजरत्नाः॥१॥

भा०—हे राजन्! तेरे (रथ-क्षयाणि) रमण-योग्य साधन, उत्तम स्थानों में निवास के कार्य (कदा भुवन्) कब कब हों और (स्तोत्रे) स्तोता, उपदेष्टा विद्वान् को (सहस्रपोष्यं ब्रह्म) सहस्रों का पोषक धन (कदा दाः) कब २ देवे, (राया) और धनैश्वर्य-युक्त (अस्य) इस राष्ट्र के (स्तोमं) स्तुत्य पद वा जन समूह को (कदा वासयः) कब २ बसावे और (कदा) कब २ (वाजरत्नाः) ऐश्वर्य आदि रमणीय पदार्थों को उत्पन्न करने वाले (धियः) कर्म, तू (करसि) करे। सबका समय नियत कर।

कर्हि स्वित्तदिन्द्र यन्नृभिर्नृन्वीरैर्वीरान्नीळयासे जयाजीन् ।
त्रिधातु गा अधि जयासि गोष्विन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (कर्हि स्वित् तत्) कब ऐसा हो (यत्) कि, तू (वीरैः नृभिः) वीर पुरुषों से (वीरान् नॄन् नीडयासे) वीर पुरुषों को मिलावे, (कर्हि स्वित् आजीन् जय) कब संग्रामों को विजय करे, कब (त्रिधातु) स्वर्ण, रजत और लोह से युक्त (गाः) भूमियों पर (अधि जयसि) अधिकार करे । तू (अस्मे) हम प्रजाजन के उपकार के लिये (गोषु) उत्तम भूमियों में (स्वर्वत् द्युम्नं) सुख से युक्त, धन, अन्न (धेहि) उत्पन्न करावे इत्यादि सब बातों का तू ठीक २ काल जान ।

कर्हि स्वित्तदिन्द्र यज्जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः शविष्ठ ।
कदा धियो न नियुतो युवासे कदा गोमघा हवनानि गच्छाः ॥३॥

भा०—हे (शविष्ठ) उत्तम बलशालिन् ! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (कर्हि स्वित्) कब २ (जरित्रे) विद्वान् पुरुषों को (विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः) समस्त प्रकार के अन्न, धन आदि दे । (कदा) कब २ (धियः) नाना कर्मों तथा उनके कर्ता बुद्धिमान् पुरुषों को (नियुतः न) अपने अधीन नियुक्त पुरुषों के समान (युवासे) कार्य में लगावे और (कदा) कब कब (गो-मघाः) भूमियों के धनस्वरूप (हवनानि) ग्रहण-योग्य अन्न आदि पदार्थों को (गच्छाः) प्राप्त करे । इत्यादि का तू ठीक ठीक काल नियत कर ।

स गोमघा जरित्रे अश्वश्चन्द्रा वाजश्रवसो अधि धेहि पृक्षः ।
पीपिहीषः सुदुघामिन्द्र धेनुं भरद्वाजेषु सुरुचो रुरुच्याः ॥ ४ ॥

भा०—(सः) वह तू (जरित्रे) उपदेष्टा पुरुष के लिये (गोमघाः) पृथिवी के समस्त ऐश्वर्य, भूमि, राज्य, (अश्व-चन्द्राः) वेग से जाने वाले अश्व आदि आह्लादकारक, (वाज-श्रवसः) बलकारक अन्नों से युक्त

(पृक्षः) प्राप्ति-योग्य पदार्थ, (अधि धेहि) अपने अधिकार में रख और दे। तू (इषः) नाना अन्नों को (पीपिहि) पान कर, (इषः पिपीहि) वशवर्ती सेनाओं का पालन कर। (इषः पीपिहि) कामना योग्य प्रजाओं को बढ़ा। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (सु-दुघां धेनुम्) उत्तम दोहने योग्य गो-तुल्य इस भूमि और वाणी को और (सु-रुचः) उत्तम कान्तियुक्त पदार्थों को (भरद्वाजेषु) ज्ञान, ऐश्वर्य-संग्रही पुरुषों के अधीन (रुरुच्याः) उनको अधिक रुचिकर, सामर्थ्यवान् बना।

तमा नूनं वृजनमन्यथा चिच्छूरो यच्छक्र वि दुरो गृणीषे।
मा निररं शुक्रदुघस्य धेनोराङ्गिरसान्ब्रह्मणा विप्र जिन्व ॥५॥७॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन्! तू (यत्) जब (दुरः) द्वारों तथा शत्रुवारक सेनाओं को (वि गृणीषे) विविध आज्ञाएं देवे तब (शूरः) वीर होकर तू (नूनं) निश्चय से (वृजनम्) जाने के मार्ग को (अन्यथा चित्) विपरीत (आ आगृणीषे) कभी मत बतला। (शुक्रः दुघस्य) जल-दोहन करने वाले मेघ के सदृश श्वेत कान्ति के धन या यश के दोग्धा राजा की (धेनोः) विद्युत् के समान, वाणी, वा गौ के तुल्य भूमि से उत्पन्न (ब्रह्मणा) ज्ञान वा अन्न के तुल्य वृद्धिशील धन से, हे (विप्र) विद्वन्! तू (आङ्गिरसान्) अंगारे के समान तेजस्वी, राष्ट्र में बसे विद्वान् पुरुषों को (अरम्) अच्छी प्रकार से (निर् जिन्व) तृप्त कर, बढ़ा। इति सप्तमो वर्गः॥

[३६]

नर ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ निचृत् त्रिष्टुप्॥ २ विराट् त्रिष्टुप। ४, ५ भुरिक् पंक्तिः। ३ स्वराड् पंक्तिः॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

सत्रा मदासस्तव विश्वजन्याः सत्रा रायोऽध ये पार्थिवासः।
सत्रा वाजानामभवो विभक्ता यद्देवेषु धारयथा असुर्यम्॥ १॥

भा०—(यत्) जो तू (देवेषु) तेजस्वी पुरुषों में किरणों के बीच

सूर्य-तुल्य (असुर्यम्) सबके प्राणों के हितकारी अन्नादि को (धारयथाः) धारण करता है, अतः तू (वाजानाम्) ऐश्वर्यों का (सत्रा विभक्ता अभवः) सत्यपूर्वक विभाग करने वाला हो। (तव मदासः=इमासः) तेरे हर्षकारी और शत्रु-दमनकारी उपाय (सत्रा) सदा (विश्व-जन्याः) समस्त जनों के हितकारी हों। (अध ये) और (पार्थिवासः रायः) पृथिवी पर प्राप्त होने योग्य धनैश्वर्य भी (सत्रा) सदा (विश्व-जन्याः) सर्वजन-हितकारी हों।

अनु॒ प्र ये॑जे॒ जन॒ ओजो॑ अस्य स॒त्रा द॑धिरे॒ अनु॑ वी॒र्या॑य।
स्यू॒म॒गृभे॒ दु॒धये॒ऽर्व॑ते च॒ क्रतुं॑ वृ॒ञ्ज॒न्त्यपि॑ वृत्र॒हत्ये॑ ॥ २ ॥

भा०—(अस्य ओजः) इसके पराक्रम को (जनः) मनुष्य (अनु येजे) प्रतिदिन आदर से देखें और (प्र येजे) उत्तम रीति से स्वीकारें। (अस्य वीर्याय) इसके बल बढ़ाने के लिये (सत्रा अनु दधिरे) सदा सत्य को धारण करें। (अपि) और (वृत्रहत्ये) वारण-योग्य, शत्रु के नाश के लिये (स्यूमगृभे) परस्पर सम्बद्ध, दृढ़ सैन्य को वश करने वाले (दुधये) शत्रुहिंसक (अर्वते) आगे बढ़ने वाले वीर के योग्य (क्रतुं) कर्म (वृञ्जन्ति) करें।

तं स॒ध्रीची॑रू॒तयो॒ वृष्ण्या॑नि॒ पौंस्या॑नि नि॒युतः॑ सश्चु॒रिन्द्र॑म्।
स॒मु॒द्रं न सिन्ध॑व उ॒क्थशु॑ष्मा उरु॒व्यच॑सं॒ गिर॒ आ वि॑शन्ति ॥३॥

भा०—(तं) उस (इन्द्रम्) ऐश्वर्य के धारक पुरुष को (ऊतयः) रक्षाकारी सैन्यादि साधन, (सध्रीचीः) एक साथ चलने वाली सेनाएं और (वृष्ण्यानि पौंस्यानि) बलशाली पुरुषों के बने सैन्य, (नियुतः) नियुक्त, लाखों जन, (सश्चुः) प्राप्त हों और (उक्थ-शुष्माः गिरः) उत्तम प्रशंसनीय बल से युक्त वाणियां (उरु-व्यचसं) उस महान्, पराक्रमी पुरुष को (सिन्धवः समुद्रं न) समुद्र को नदियों के समान (आ विशन्ति) प्राप्त होकर उसमें आश्रय लें।

स रायस्खामुपं सृजा गृणानः पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्वः ।
पतिर्बभूथासमो जनानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥ ४ ॥

भा०—(सः) वह, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वम्) तू (गृणानः) उपदेश करता हुआ और स्तुति प्राप्त करता हुआ, (पुरुचन्द्रस्य) बहुतों को सुखी करने वाले (वस्वः) धनों और (रायः) देने-लेने योग्य ऐश्वर्य की (खाम्) खुदी नहर के समान (उप सृज) बनाकर बहा दे । तू (जनानां) मनुष्यों में (असमः) अनुपम, (एकः) अद्वितीय (पतिः) पालक और (विश्वस्य भुवनस्य राजा) समस्त संसार का राजा (बभूव) हो ।

स तु श्रुधि श्रुत्या यो दुवोयुर्द्यौर्न भूमाभि रायो अर्यः ।
असो यथा नः शवसा चकानो युगेयुगे वयसा चेकितानः ॥५॥८॥

भा०—(यः) जो (द्यौः न) सूर्य-समान तेजस्वी (दुवोयुः) परिचर्या की कामना करता हुआ, (भूम रायः अभि) बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त कर (अर्यः) सबका स्वामी है । (सः) वह तू (श्रुत्या) श्रवण-योग्य, प्रजाओं के वचनों को (श्रुधि तु) अवश्य सुन (यथा) जिससे तू (युगे युगे) प्रति वर्ष, (वयसा) दीर्घ आयु (शवसा) और बल ज्ञान से (चकानः) कान्तियुक्त और (चेकितानः) ज्ञानवान् होकर (नः) हमारा प्रिय (असः) हो । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[३७]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३ निचृत्पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अर्वाग्रथं विश्ववारं त उग्रेन्द्र युक्तासो हरयो वहन्तु ।
कीरिश्चिद्धि त्वा हवते स्वर्वानृधीमहि सधमादस्ते अद्य ॥ १ ॥

भा०—हे (उग्र) बलवन् ! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (युक्तासः हरयः) नियुक्त मनुष्य, अश्वों के समान (ते) तेरे (विश्ववारं) सबों से वरण-

योग्य (रथं) रथवत् रमण-योग्य राष्ट्र को (वहन्तु) धारण करें। (स्ववान्) सुख और उत्तम उपदेश से युक्त (कीरिः) विद्वान् पुरुष (त्वा हवते) तुझे उपदेश दे वा विद्वान् जन तुझे स्वीकार करें। (अद्य) आज (ते) तेरे (सधमादः) साथ हर्षित और प्रसन्न होने वाले हम लोग (ऋधीमहि) समृद्ध हों।

प्रो द्रोणे हरयः कर्माग्मन्पुनानास ऋज्यन्तो अभूवन्।
इन्द्रो नो अस्य पूर्व्यः पपीयाद् द्युक्षो मदस्य सोम्यस्य राजा ॥२॥

भा०—(हरयः) मनुष्य (द्रोणे) राष्ट्र में रहते हुए (कर्म) उपयोगी कर्म को (प्र अग्मन्) अच्छी प्रकार करें। वे (पुनानासः) पवित्र रहते हुए (ऋज्यन्तः अभूवन्) सरल, धर्मानुकूल आचरणवान् रहें। (नः) हममें से (इन्द्रः) समृद्ध पुरुष (पूर्व्यः) प्रथम पूजा-योग्य वृद्ध-जनों द्वारा नियत हो। वह (अस्य) इस राष्ट्र को (पपीयात्) निरन्तर पालन तथा समृद्ध करे। वह (द्युक्षः) आकाश-तुल्य भूमि-खण्ड को विस्तृत करने हारा, सूर्यवत् चमकने वाला होकर (सोम्यस्य) राज्यैश्वर्य पद के योग्य (मदस्य) आनन्द, हर्ष एवं सुख का (पपीयात्) लाभ करे।

आ सस्राणासः शवसानमच्छेन्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः।
अभि श्रव ऋज्यन्तो वहेयुर्नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत् ॥ ३ ॥

भा०—(रथ्यासः अश्वाः) रथ-योग्य अश्वों के तुल्य धुरन्धर विद्वान् जन (शवसानम् इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा को (अच्छ आ-सस्राणासः) अच्छी प्रकार प्राप्त होते हुए, (ऋज्यन्तः) सरल धार्मिक मार्ग पर चलाते हुए (श्रवः अभि वहेयुः) उत्तम कीर्त्ति प्राप्त करावें और वह (नू चित्) अति शीघ्र ही (सु-चक्रे) उत्तम चक्रयुक्त रथ के समान उत्तम राज्यचक्र में (वायोः) वायु-समान बलवान्, (अमृतं) अविनाशी, दीर्घायु पद को प्राप्त करें (नु चित्) दुःखों को (वि दस्येत्) नष्ट करे।

वरिष्ठो अस्य दक्षिणामियर्तीन्द्रो मघोनां तुविकूर्मितमः।
यया वज्रिवः परियास्यंहो मघा च धृष्णो दयसे वि सूरीन् ॥४॥

भा०—(मघोनाम्) धन-सम्पन्न पुरुषों में से (वरिष्ठः) उत्तम वरने योग्य और (तुवि-कूर्मितमः) बहुत उत्तम कर्मों को करने वाला पुरुष ही (इन्द्रः) राजपद के योग्य होकर (अस्य) इस राष्ट्र के (दक्षिणाम्) बल से युक्त, सञ्चालक शक्ति सैन्यादि और बलप्रद धनादि को (इयर्त्ति) प्राप्त होता और चलाता है। हे (वज्रिवः) बलशालिन्! (यया) जिससे (अंहः) अपराध आदि को (परि यासि) दूर करता है। हे (वृष्णो) दुष्ट-दमन करने हारे! तू (यया) जिस शक्ति द्वारा (सूरीन्) विद्वानों को (मघा दयसे) दान योग्य धन देता और पालता है।

इन्द्रो वाजस्य स्थविरस्य दातेन्द्रो गीर्भिर्वर्धतां वृद्धमहाः।
इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा ता सूरिः पृणति तूतुजानः॥५॥६

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (स्थविरस्य) स्थिर और बड़े (वाजस्य) अन्न, धन का (दाता) दाता हो। वही (इन्द्रः) विद्या-दाता, आचार्य (वृद्ध-महाः) वृद्धों द्वारा सत्कार-योग्य होकर (गीर्भिः) उपदेश-योग्य वाणियों से (वर्धताम्) बढ़े और राष्ट्र-वृद्धि करे। (इन्द्रः) शत्रुहन्ता पुरुष (वृत्रं) बढ़ते शत्रु को (हनिष्ठः) खूब दण्ड दाता (अस्तु) हो। वह (सूरिः) विद्वान् (तूतुजानः) दुष्टों का नाश और सज्जनों को दान करता हुआ (सत्वा) सात्विक पुरुष (ता) उन धनों को (पृणति) पूर्ण करे। इति नवमो वर्गः॥

[३८]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, २, ३, ५ निचृत् त्रिष्टुप्। ४ त्रिष्टुप्। पञ्चर्चं सूक्तम्॥

अपादित उदु नश्चित्रतमो महीं भर्षद् द्युमतीमिन्द्रहूतिम्।
पन्यसीं धीतिं दैव्यस्य यामञ्जनस्य रातिं वनते सुदानुः॥ १॥

भा०—(चित्र-तमः) अति आश्चर्यजनक कार्य करने हारा, राजा, विद्वान् (नः) हमें (इतः) प्राप्त होकर (अपात् उत् उ) सदा पालन

करे। वह (महीं) पूज्य, बड़ी (धुमतीम्) तेजोयुक्त (इन्द्र-हूतिम्) ऐश्वर्यदात्री भूमि और ज्ञान-प्रकाश से युक्त विद्वान् द्वारा उपदेश-योग्य वाणी को भी (भर्षत्) धारण करे। वह (सु-दानुः) उत्तम दाता होकर (देव्यस्य जनस्य) मनुष्यों और राजा के हितकारी प्रजाजन के (यामन्) शासन कार्य में (पन्यसीं धीतिं) स्तुति योग्य धारण, सामर्थ्य और (रातिं) दानशीलता को (वनते) सेवन करे।

दूराच्चिदा वसतो अस्य कर्णा घोषादिन्द्रस्य तन्यति ब्रुवाणः।
एयमेनं देवहूतिर्ववृत्यान्मद्र्यगिन्द्रमियमृच्यमाना ॥ २ ॥

भा०—(दूरात् चित्) दूर देश से (आ) आकर (वसतः) शिष्य रूप से रहने वाले (अस्य) इस शिष्य के (कर्णा) कानों को (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (घोषात्) वेद से (ब्रुवाणः) ज्ञानोपदेश करता हुआ विद्वान् (तन्यति) अधिक विस्तृत करे, ज्ञानवान् बनावे। (इयम् देव-हूतिः) विद्वान् पुरुष का यह विद्यादान वा देव अर्थात् विद्या-कामी शिष्य की प्रार्थना (इन्द्रम्) उस विद्यादाता आचार्य के प्रति (ऋच्यमाना) स्तुति करती हुई (मद्र्यक्) मुझ शिष्य के प्रति (एनम् आववृत्यात्) उस गुरु को आवर्त्तन करे, मेरे प्रति गुरु का ध्यान आकर्षित करे।

तं वो धिया परमया पुराजामजरमिन्द्रमभ्यनूष्यर्कैः।
ब्रह्मा च गिरो दधिरे समस्मिन्महाँश्च स्तोमो अधि वर्धदिन्द्रे ॥३

भा०—हे विद्वान् लोगो! (वः) आपके बीच (परमया) सबसे उत्तम (धिया) बुद्धि और कर्म से युक्त (पुराजाम्) पूर्व उत्पन्न, (अजरम्) हानिरहित, (इन्द्रम्) ज्ञानी गुरु की मैं (अर्कैः) आदर योग्य उपचारों से (अभि अनूषि) साक्षात् स्तुति करूं। (अस्मिन्) इसके अधीन रहकर शिष्य जन (ब्रह्म) वेदज्ञान और (गिरः च) उपदेश-योग्य वाणियों को (दधिरे) धारें और (इन्द्रे अधि) उस विद्या-ऐश्वर्य के धारक गुरु की अध्यक्षता में (स्तोमः) उपदेश योग्य ज्ञान, वेदमय कोष (वर्धत्) बढ़े।

वर्धांद्यं यज्ञ उत सोम इन्द्रं वर्धाद् ब्रह्म गिर उक्था च मन्म ।
वर्धाहैनमुषसो यामन्नक्तोर्वर्धान्मासाः शरदो द्याव इन्द्रम् ॥ ४ ॥

भा०—(यं) जिस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् राजा, विद्वान् को (यज्ञः) परस्पर का सत्संग और करादि (वर्धात्) बढ़ाता है, (यं सोमः वर्धात्) जिसको विद्वान् शिष्य, ऐश्वर्य, अन्नादि बढ़ाते हैं और जिसको (ब्रह्म) बड़ा धन, बड़ा ज्ञान, बड़ा राष्ट्र, (गिरः) वाणियां और (मन्म उक्था च) मनन-योग्य उत्तम वचन (वर्धात्) बढ़ाते हैं। (नक्तोः यामन्) रात्रि के बीतने पर (एनम् उषसः) उस सूर्य को उषाओं के समान (उषसः) शत्रु को दग्ध वा सन्तप्त करने वाली सेनाएं (अक्तोः यामन्) तेजस्वी राजा के प्रयाण के समय में 'अक्तु' अर्थात् स्नेहयुक्त राष्ट्र के शासन में (वर्धं अह) निश्चय से बढ़ाता है और (मासः) मास (शरदः) वर्ष और (द्यावः) दिन, वर्ष के अवयव, ये (इन्द्रं वर्धान्) उसके ऐश्वर्य को बढ़ावें ।

एवा जज्ञानं सहसे असामि वावृधानं राधसे च श्रुताय ।
महामुग्रमवसे विप्र नूनमा विवासेम वृत्रतूर्येषु ॥ ५ ॥ १० ॥

भा०—(एव) इस प्रकार (सहसे) बल के लिये (असामि जज्ञानं) पूर्ण होते हुए, (राधसे) आराधना और (श्रुताय च) श्रवणीय ज्ञान-प्राप्ति के लिये (वावृधानं) बढ़ते हुए (महाम्) महान् (उग्रम्) उत्तम पुरुष की (आ विवासेम) सब प्रकार सेवा करें। (नूनम्) निश्चय से हम (अवसे) ज्ञान और रक्षा के लिये (वृत्र-तूर्येषु) विघ्नकारी अज्ञान, काम-क्रोधादि व्यसनों और शत्रु नाशक कार्यों के लिए, हे (विप्र) विद्वन्! उस को ही (आ विवासेम) स्वीकारें, उसकी सेवा करें। इति दशमो वर्गः ॥

[३१]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ४, ५ भुरिक् पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

मन्द्रस्य कवेर्दिव्यस्य वह्नेर्विप्रमन्मनो वचनस्य मध्वः ।
अपा नस्तस्य सचनस्य देवेषो युवस्व गृणते गोअग्राः ॥ १ ॥

भा०—गुरु शिष्य प्रकरण । हे (देव) विद्या के अभिलाषी विद्यार्थिन् । तू (गृणते) उपदेष्टा गुरु के (गो-अग्राः इषः) उत्तम वाणियों से युक्त उपदेशों को (युवस्व) प्राप्त कर और (मन्द्रस्य) स्तुति-योग्य, (कवेः) क्रान्तदर्शी, (दिव्यस्य) ज्ञान-प्रकाशक (वह्नेः) विद्या के धारक (विप्रमन्मनः) विद्वान् मेधावी पुरुष के मनन-योग्य ज्ञान को धारण करने वाले, (सचनस्य) सत्संग योग्य (मध्वः वचनस्य) मधुर वचन का (नः अपाः) हमें भी पान करा ।

अयमुशानः पर्यद्रिमुस्रा ऋतधीतिभिर्ऋतयुग्युजानः ।
रुजदरुग्णं वि वलस्य सानुं पणींर्वचोभिरभि योधदिन्द्रः ॥ २ ॥

भा०—जैसे (उशान: ऋतयुग् इन्द्रः ऋतधीतिभिः वलस्यसानु रुजत्, पणीन् वचोभिः अभि योधत्) कान्तिमान्, तेजोयुक्त सूर्य, विद्युत् जलधारक किरणों से व्यापक मेघ के उच्च भाग को छिन्न भिन्न करता है, स्तुत्य व्यवहारों को गर्जनाओं-सहित करता है, वैसे ही (अयम्) यह (उशानः) विद्याकामी, (युजानः) विद्या में मनोयोग देने वाला विद्यार्थी (ऋत-युग्) सत्य ज्ञान में योग दाता हो और (ऋत-धीतिभिः) ज्ञान-धारक उपायों से (अद्रिं परि उस्राः) मेघवत् ज्ञान-वर्षक गुरु के प्रति अपनी वृत्तियों को (युजानः) लगाने वाला हो । वह (इन्द्रः) अज्ञान-नाश में समर्थ विद्वान्, गुरु (अरुग्णं) न टूटे हुए (वलस्य) व्यापक (सानु) अज्ञान के प्रबल अंश को (रुजत्) छिन्न-भिन्न करे । वह (वचोभिः) उत्तम वचनों द्वारा (पणीन् अति) अपने विद्यार्थियों को लक्ष्य कर उनके प्रति (अभि योधत्) युक्ति-प्रतियुक्तियों से आक्षेप-प्रत्याक्षेप करे, वादविवाद द्वारा शिक्षा दे । साथ ही (अयम् उशानः) यह गुरु भी (ऋत-युग्) सत्य ज्ञान का योग कराने वाला

होकर (ऋत-धीतिभिः) सत्य ज्ञान कराने वाली क्रियाओं से (अद्रिं परि इस्राः युजानः) अपने निर्भय शिष्य के प्रति किरणोंवत् वाणियों को प्रदान करे ।

अ॒यं द्यो॑तयद॒द्युतो॒ व्य१॒॑क्तून्दो॒षा वस्तोः॑ श॒रद॒ इन्दु॑रिन्द्र ।
इ॒मं के॒तुम॑दधु॒र्नू चि॒दह्नां॒ शुचि॑जन्मन उ॒षस॑श्चकार ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) सूर्यवत् तेजस्विन् गुरो ! (इन्दुः अक्तून् दोषा वस्तोः शरदः वि अद्योतयत्) जैसे चन्द्र रातों को सदा सब वर्षों में प्रकाशित करता है, वैसे ही (अयम्) यह (इन्दुः) चन्द्रवत् आह्लाद-कारी गुरु भी (दोषा वस्तोः) रात-दिन (शरदः) छहों शरद् आदि ऋतुओं में भी (अद्युतः अक्तून्) ज्ञान की दीप्ति से रहित रात्रिवत् अज्ञात विद्यास्थलों को (वि अद्योतयत्) विशेष रूप से प्रकाशित करे । जैसे उषाएं (अह्नां केतुम् अदधुः) दिनों को चमकाने वाले सूर्य को धारण करती हैं वैसे ही (उषसः) विद्या के इच्छुक जितेन्द्रिय विद्यार्थीजन सूर्यवत् तेजस्वी, (अह्नां) न ताड़ना योग्य शिष्यों को (केतुम्) ज्ञान देने वाले गुरु को (अदधुः) धारण करें । और जैसे सूर्य (शुचि-जन्मनः उषसः चकार) पवित्र जन्मवाली उषाओं को उत्पन्न करता है वैसे ही वह गुरु भी (उषसः) विद्याभिलाषी शिष्यों को (शुचि-जन्मनः चकार) शुद्ध विद्या माता में पवित्र जन्म वाला बना देता है ।

अ॒यं रो॑चयद॒रुचो॑ रुचा॒नो॒३॒॑यं वा॑सयद्व्य१॒॑तेन॑ पू॒र्वीः ।
अ॒यमी॑यत ऋत॒युग्भि॒रश्वैः॑ स्व॒र्विदा॒ नाभि॑ना चर्षणि॒प्राः ॥ ४ ॥

भा०—(रुचानः अरुचः रोचयत्) जैसे सूर्य कान्ति से चमकता हुआ कान्ति-रहित चन्द्र आदि लोकों को प्रकाशित करता है वैसे ही (अयम्) यह विद्वान् गुरु, स्वयं (रुचानः) तेजस्वी होकर (अरुचः) विद्या-प्रकाश-रहित जनों को (रोचयत्) विद्या से प्रकाशित करे । (अयं) यह (पूर्वीः) पूर्व विद्यमान प्रजा-तुल्य ही नवीन विद्यार्थी जनों

को (ऋतेन) सत्योपदेशार्थं (वासयत्) अपने अधीन बसावे, रखे। (अयम्) वह (चर्षणिप्राः) मनुष्यों को ज्ञान से पूर्ण करने द्वारा विद्वान् (स्वः-विदा नाभिना) तेजोमय, उपदेश को प्राप्त करने वाले 'नाभि' अर्थात् सम्बन्ध से (ऋत-युग्भिः) ज्ञान का योग करा देने वाले (अश्वैः) विद्वान् अध्यापकों द्वारा (ईयते) आगे बढ़ता है।

नू गृ॒णा॒नो गृ॑ण॒ते प्र॑त्न राज॒न्निषः॑ पिन्व वसु॒देया॑य पू॒र्वीः।
अ॒प ओष॑धीरवि॒षा वना॑नि॒ गा अर्व॑तो॒ नॄनृ॒चसे॑ रिरीहि ॥५॥११॥

भा०—हे (प्रत्न राजन्) दीर्घायु! विद्या-प्रकाश से युक्त! राजन्! तू (नू) अवश्य (गृणते गृणानः) प्रार्थी को विद्योपदेश देता हुआ (वसु-देयाय) द्रव्य देने में समर्थ जनों को भी (पूर्वीः इषः पिन्व) पूर्व की वेद-वाणियों से तृप्त कर और तू (ऋचसे) उत्तम काम के लिये (अपः) जल, (ओषधीः) ओषधियां, (अविषा) विषों से रहित (वनानि) वन के पदार्थ (गाः अर्वतः) गौ और अश्व आदि (रिरीहि) दे। इत्येकादशो वर्गः॥

[४०]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ३ विराट् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। ४ भुरिक् पंक्तिः। ५ स्वराट् पंक्तिः। पञ्चर्चं सूक्तम्॥

इन्द्र॒ पिब॒ तुभ्यं॑ सु॒तो मदा॒याव॑ स्य॒ हरी॒ वि मु॑चा॒ सखा॑या।
उ॒त प्र गा॑य ग॒ण आ नि॒षद्याथा॑ य॒ज्ञाय॑ गृण॒ते वयो॑ धाः॥ १॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! विद्वन्! (सुतः मदाय) जैसे पुत्र हर्ष के लिये होता है वैसे ही वह प्रजाजन तथा ऐश्वर्य (तुभ्यं) तेरे हर्ष के लिये है। तू उसका (पिब) पालन और ऐश्वर्य का उपभोग कर। हे राजन्! इसी प्रकार (तुभ्यं सुतः मदाय) तेरा राज्याभिषेक हर्ष के लिये हो और तू प्रजा का (पिब) पालन कर, (अव स्य) प्रजा

को दुःखों से छुड़ा। (सखाया हरी) मित्रवत् विद्यमान (हरी) स्त्री-पुरुषों वा राजा-प्रजा के वर्गों को रथ में जुते, अश्वों के समान (वि मुच) विशेष रूप से बन्धनमुक्त कर। (उत) और तू (गणे) प्रजागण के ऊपर (आ निषद्य) आदर से धर्मासन पर विराज कर (प्र गाय) उत्तम उपदेश और आज्ञाएं दे। (अथ) और (गृणते यज्ञाय) उपदेष्टा, सत्संग-योग्य पुरुष को (वयः धाः) अन्न और बल दे।

अस्य॑ पिब॒ यस्य॑ जज्ञा॒न इ॑न्द्र॒ मदा॑य॒ क्रत्वे॒ अपि॑बो विरप्शिन्।
तमु॑ ते॒ गावो॒ नर॒ आपो॒ अद्रि॒रिन्दुं॒ सम॑ह्यन्पी॒तये॒ सम॑स्मै ॥ २ ॥

भा०—हे (विरप्शिन्) महान्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (जज्ञानः) प्रसिद्ध होता हुआ, तू (मदाय) हर्षित, पूर्ण होने और (क्रत्वे) कर्म-सामर्थ्य को बढ़ाने के लिये (अस्य अपिबः) जिस ऐश्वर्य का उपभोग और पालन करता है (अस्य पिब) बाद में भी तू उसी का उपभोग और पालन करता रह। (अस्मै ते) इस तेरी वृद्धि के लिये ही (गावः) गौएं, वाणियें, (नरः) उत्तम नायक, (आपः) राष्ट्र में जल, मेघ, तडाग आदि तथा आप्तजन, (अद्रिः) पर्वत, शस्त्रबल सब (तम् इन्दुं) उस ऐश्वर्य के (पीतये) पालन और उपभोग के लिये (सम् अह्यन्) प्राप्त हों।

समि॑द्धे अ॒ग्नौ सु॒त इ॑न्द्र॒ सोम॒ आ त्वा॑ वहन्तु॒ हर॑यो॒ वहि॑ष्ठाः।
त्वा॒य॒ता मन॑सा जोहवीमीन्द्रा॒ या॑हि सुवि॒ताय॑ म॒हे नः॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (अग्नौ समिद्धे) अग्नि के खूब प्रदीप्त होने के तुल्य (अग्नौ) नायक के (सम-इद्धे) अति तेजस्वी हो जाने पर (सोमे सुते) राष्ट्र-ऐश्वर्य के अभिषेक द्वारा प्राप्त हो जाने पर, (त्वा) तुझको (वहिष्ठाः) धारण करने वा राज्य-भार-वहन में अति कुशल (हरयः) विद्वान् मनुष्य, उत्तम अश्वों के तुल्य (वहन्तु) सन्मार्ग पर ले जावें। मैं प्रजाजन (त्वायता मनसा) तुझे चाहने वाले चित्त से

(जोहवीमि) निरन्तर पुकारता हूँ। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यदातः! तू (नः महे सुविताय) हमारे बड़े उत्तम शासन वा ऐश्वर्य वृद्धि के लिये हमें (आ याहि) प्राप्त हो।

आ या॑हि॒ शश्व॑दुश॒ता य॑या॒थेन्द्र॑ म॒हा मन॑सा सोम॒पेय॑म्।
उप॒ ब्रह्मा॑णि शृणव इ॒मा नोऽथा॑ ते य॒ज्ञस्त॒न्वे॒३॒॑ वयो॑ धात् ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् तू (शश्वत्) निरन्तर (उशता) प्रजा-भिलाषी (मनसा) चित्त से (आ याहि) प्राप्त हो। तू (महा मनसा) बड़े उदार चित्त से युक्त होकर (सोम-पेयम्) पालन-योग्य राष्ट्र-ऐश्वर्य रूप रक्षायोग्य धन को (ययाथ) प्राप्त कर। (नः) हमारे (इमा) इन (ब्रह्माणि) वेदोपदेशों को स्वयं शिष्यवत् (उप शृणवः) ध्यानपूर्वक सुन। (अथ) और (यज्ञः) सत्संग तथा प्रजा का कर आदि देना और दानवान् प्रजाजन भी (ते तन्वे) तेरे शरीर और विस्तृत राष्ट्र के लिये (वयः धात्) उत्तम अन्न और बल दे।

यदि॑न्द्र दि॒वि पार्ये॒ यदृध॒ग्यद्वा॒ स्वे सद॑ने॒ यत्र॒ वासि॑।
अतो॑ नो य॒ज्ञमव॑से नि॒युत्वा॑न्त्स॒जोषाः॑ पाहि गिर्वणो म॒रुद्भिः॑ ॥५॥१२

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! तू (यत्) जब (पार्ये) पालन-योग्य (दिवि) सबको रुचने वाले राज्यपद पर और (यत्) जब (ऋधक् वा) उससे पृथक् भी हो, (यद् वा) अथवा जब तुम (स्वे सदने) अपने गृह में (यत्र वा असि) या जहां कहीं भी हो (अतः) वहां से ही, हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा स्तुति-योग्य! आप (नियुत्वान्) लक्षों सेनाओं के स्वामी होकर (स-जोषाः) प्रीतिपूर्वक (मरुद्भिः) वायुवत् बलवान् मनुष्यों-सहित (अवसे) रक्षा के लिये (नः यज्ञं पाहि) हमारे यज्ञ, राष्ट्र का पालन कर। इति द्वादशो वर्गः॥

[४१]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्। २, ३, ४ त्रिष्टुप्। ५ भुरिक् पंक्तिः। पञ्चर्चं सूक्तम्॥

अहेळमान उप याहि यज्ञं तुभ्यं पवन्त इन्दवः सुतासः ।
गावो न वज्रिन्त्स्वमोको अच्छेन्द्रा गहि प्रथमो यज्ञियानाम् ॥ १ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) बलवन् ! (इन्दवः सुतासः) ऐश्वर्यवान्, दया से आर्द्र प्रजाजन, (तुभ्यं पवन्ते) तेरी वृद्धि के लिये यत्न करते हैं। तू (अहेळमानः) उन पर क्रोध न करता हुआ (यज्ञं उप याहि) आदर तथा सत्संग को प्राप्त हो। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (यज्ञियानाम् प्रथमः) सत्कार-योग्य पुरुषों में सर्व प्रथम (स्वम् ओकः) अपने स्थान को (गावः नः) भूमियों गौओं, प्रजाओं के समान ही (अच्छ आगहि) प्राप्त हो।

या ते काकुत्सुकृता या वरिष्ठा यया शश्वत्पिबसि मध्व ऊर्मिम् ।
तया पाहि प्र ते अध्वर्युरस्थात्सं ते वज्रो वर्ततामिन्द्र गव्युः ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे स्वामिन् ! विद्वन् ! (या ते) जो तेरी (काकुत्) वाणी (सुकृता) सुपरिष्कृत है। (या) जो (वरिष्ठा) सबसे श्रेष्ठ है (यया) जिससे तू (शश्वत्) सदा (मध्वः ऊर्मिम्) ज्ञान के सार भाग का (पिबसि) ग्रहण करता और अन्यों को भी कराता है, तू (तया पाहि) उससे हमारी रक्षा कर। (अध्वर्युः) कभी नाश न करने वाला वीर (ते प्र अस्थात्) तेरी वृद्धि के लिये प्रतिष्ठित हो, हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! (ते वज्रः) तेरा शत्रुसंहारक बल (गव्युः) गौ, ज्ञान, वाणी आदि का हितकारी (सं वर्त्तताम्) रहे।

एष द्रप्सो वृषभो विश्वरूप इन्द्राय वृष्णे समकारि सोमः ।
एतं पिब हरिवः स्थातरुग्र यस्येशिषे प्रदिवि यस्ते अन्नम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन् ! हे (स्थातः) स्थिर रहने वाले ! तू (यस्य ईशिषे) जिसका स्वामी होता है और (यः ते अन्नम्) जो तेरा भोग्य अन्न है (एषः) वह (द्रप्सः) सबको लुभाने वाला, (वृषभः) उत्तम सुखों का वर्षक, (सोमः) ऐश्वर्यवान् (वृषभः) बलवान्

(विश्वरूपः) नाना प्रजाजनों से युक्त, (सोमः) पुत्रवत् प्रिय, राष्ट्र (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् (वृष्णे) बलवान् तेरे लिये (सम् अकारि) अच्छी प्रकार संस्कार किया जावे, हे (उग्र) बलशालिन्! तू (एतं पिब) उसका उपभोग कर।

सुतः सोमो असुतादिन्द्र वस्यानयं श्रेयाञ्चिकितुषे रणाय।
एतं तितिर्व उप याहि यज्ञं तेन विश्वास्तविषीरा पृणस्व ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (असुतात्) न उत्पन्न हुए की अपेक्षा (सुतः सोमः) उत्पन्न हुए पुत्र के तुल्य यह अभिषेक द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य (वस्यान्) प्रजाजनों को बसाने हारा है और वह (चिकितुषे) ज्ञानवान् पुरुष के लिये (रणाय) सुख प्राप्त करने और संग्राम के लिये भी (श्रेयान्) श्रेष्ठ है। हे (तितिर्वः) शत्रु-नाशक तू (एतं यज्ञं उप-याहि) उस यज्ञ, पूज्य पद, सुसंगत राज्य को प्राप्त हो। (तेन) उससे (विश्वाः) समस्त (तविषीः) बलवती सेनाओं को (आपृणस्व) सब प्रकार से पालन कर।

ह्वयामसि त्वेन्द्र याह्यर्वाङरं ते सोमस्तन्वे भवाति।
शतक्रतो मादयस्वा सुतेषु प्रास्माँ अव पृतनासु प्र विक्षु ॥५॥१३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद! प्रभो! (त्वा) तुझे हम (ह्वयामसि) बुलाते हैं। (सोमः) अन्न जैसे (तन्वे) शरीर-पोषण के लिये होता है और (सोमः तन्वे) जैसे पुत्र वंश परम्परा के विस्तार के लिये होता है, वैसे ही यह राष्ट्र भी (ते तन्वे अरम्) तेरे राज्य-विस्तार के लिये पर्याप्त (भवाति) हो। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (अर्वाङ् आ याहि) सबके समक्ष आ। हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्म करने हारे! तू (अस्मान्) हम सबों को (सुतेषु) पुत्रवत् आह्लादक कर्मों के अवसरों वा ऐश्वर्यों के लिये (मादयस्व) आनन्दित कर। (पृतनासु) संग्रामों और (विक्षु) प्रजाओं में भी (अस्मान् प्र अव) हमारी रक्षा कर। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[४२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ स्वराडुष्णिक् । २ निचृदनुष्टुप् । ३ अनुष्टुप् । ४ भुरिगनुष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चाद्दघ्वने नरे ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! प्रजाजन ! तू (अस्मै) उस (पिपीषते) पालन करने की इच्छा करने वाले, (अरंगमाय) विद्या और संग्राम के पार जाने वाले, (अपश्चाद्-दघ्वने) पीछे पैर न रखने वाले (जग्मये) आगे बढ़ने हारे, वीर और (विदुषे) विद्वान् के लिये (विश्वानि) सब पदार्थ (प्रति भर) ला ।

एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् ।
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (एनं) इस (ऋजीषिणम्) सरल, धर्म-मार्ग पर प्रजा को चलाने में समर्थ, बली (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, (सोम-पातमं) प्रजा तथा ऐश्वर्य के पालक पुरुष को, (सुतेभिः) नाना पदों पर अभिषिक्त (इन्दुभिः) ऐश्वर्यवान, दयार्द्र-हृदय (अमत्रेभिः) सहाय-कारी (सोमेभिः) सौम्य गुण युक्त पुरुषों सहित (प्रति एतन) प्राप्त होवो ।

यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रति भूषथ ।
वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तन्तमिदेषते ॥ ३ ॥

भा०—(यदि) यदि आप लोग (सुतेभिः) उत्तम पदों पर अभिषिक्त (इन्दुभिः) तेजस्वी (सोमेभिः) गुणों सहित उस राजा को (प्रति भूषथ) सुभूषित करें तो वह (मेधिरः) शत्रुओं के नाश में समर्थ (विश्वस्य) समस्त राष्ट्र को (वेद) प्राप्त करे । वह (धृषत्) शत्रुओं का धर्षक (तम्-तम् इत्) आपके दिये उस २ ऐश्वर्यादि पदार्थ को (आ ईषते) सादर प्राप्त करे ।

अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्परत् ॥ ४ ॥ १४ ॥

भा०—हे (अध्वर्यो) प्रजा की हिंसा न करने वाले राजन् ! तू (अस्मै अस्मै) इस इस प्रजा के लिये (अन्धसः सुतम्) अन्न से उत्पन्न ऐश्वर्य को (प्र भर) अच्छी प्रकार धारण कर और (समस्य) समस्त (जेन्यस्य) विजय-योग्य (शर्धतः) बलवान् शत्रु के (अभिशस्तेः) शस्त्र-प्रहार से (कुवित्) बारबार (अवस्परत्) हमारी रक्षा कर । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[४३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयः ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यस्य मदे) जिसके हर्ष में (दिवः दासाय) ज्ञान और तेज के दाता प्रजाजन के उपकारार्थ तू (त्यत्) उस (शम्बरम्) मेघ तुल्य गर्जते शत्रु को (रन्धयः) वश करता है (सः अयम्) वह यह (सुतः) उत्पन्न हुआ (सोमः) बलकारक अन्नादि ओषधि रस के तुल्य ऐश्वर्य (ते) तेरे ही लिये है । तू (पिब) उसे पान वा पालन कर ।

यस्य तीव्रसुतं मदं मध्यमन्तं च रक्षसे ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यस्य) जिसके (तीव्रसुतम्) वेग से कार्य करने वाले पुरुषों से शासित, (मदम्) हर्षप्रद (मध्यम् अन्तम्) राष्ट्र के मध्य और सीमाप्रान्त की भी तू (रक्षसे) रक्षा करने में समर्थ है (अयं सः सोमः) वह यह ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र वा प्रजाजन (ते सुतः) तेरे पुत्रवत् हैं । तेरे लिये ही वह (सुतः) अन्न वा ओषधि रसवत् तैयार वा अभिषेक किया गया है । तू उसका (पिब) उपभोग कर ।

यस्य गा अन्तरश्मनो मदे दृळहा अवासृजः ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! राजन् ! (यस्य मदे) जिसके हर्ष के लिये (अश्मनः अन्तः) शस्त्र-बल के भीतर (दृढाः) दृढ़तया सुरक्षित (गाः) भूमियों को तू (अवासृजः) अपने अधीन शासन करता है (अयं) यह (सः) वह (सोमः) ओषधि-रसवत् ऐश्वर्य युक्त राज्य है (ते सुतः) उसके लिये ही मुझे अभिषेक प्राप्त है। तू (पिब) उसका उपभोग कर।

यस्य मन्दानो अन्धसो माघोनं दधिषे शवः ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ४ ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यस्य) जिसके (अन्धसः) प्राण धारक, अन्नवत् पोषक राष्ट्र-बल पर (मन्दानः) तू प्रसन्न होता हुआ, (माघोनं शवः) ऐश्वर्यवान् होने योग्य बल को (दधिषे) धारण करता है (अयं सः सोमः) यह वह ऐश्वर्यमय राष्ट्र (ते सुतः) तेरा पुत्रवत् है। तू (पिब) उसका पालन कर। इति पञ्चदशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[४४]

शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ निचृदनुष्टुप् । २, ५ स्वराडुष्णिक् । ६ आसुरी पंक्तिः । ७ भुरिक् पंक्तिः । ८ निचृत्पंक्तिः । ९, १२, १६ पंक्तिः । १०, ११, १३, २२ विराट् त्रिष्टुप् । १४, १५, १७, १८, २०, २४ निचृत्त्रिष्टुप् । १९, २१, २३ त्रिष्टुप् ॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

यो रयिवो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ १ ॥

भा०—हे (रयिवः) ऐश्वर्य के स्वामिन् ! हे (स्वधा-पते) अन्न-धारक बल के पालक ! (यः सोमः) जो ऐश्वर्य (ते) तेरा (रयिन्तमः) सर्वोत्तम

और (द्युक्षैः) नाना धनों से (द्युक्षवत्तमः) अत्यंत समृद्ध है, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (सुतः) सम्पन्न (सः ते मदः अस्ति) वह तुझे आनन्द देने वाला हो ।

यः शग्मस्तुविशग्म ते रायो दामा मतीनाम् ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ २ ॥

भा०—हे (तुवि-शग्म) बहुत सुखों से पूर्ण प्रभो ! राजन् ! (यः) जो (ते) तेरा (शग्मः) शान्तिदायक, (सोमः) ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र (मतीनाम्) बुद्धिमान् पुरुषों को (रायः दामा) ऐश्वर्य देता है । हे (स्वधापते) हे अन्नपते ! वह सब राष्ट्रैश्वर्य (ते सुतः) समृद्ध होकर (मदः अस्ति) तुझे हर्षदायक हो ।

येन वृद्धो न शवसा तुरो न स्वाभिरूतिभिः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ ३ ॥

भा०—(येन) जिसके बल से, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (शवसा) बल से (वृद्धः न) बढ़े हुए के समान जिस ऐश्वर्य से (स्वाभिः ऊतिभिः) अपनी रक्षा सेनाओं से (तुरः न) शत्रुओं को हिंसक के समान मारता है, हे (स्वधापते) अपने ऐश्वर्य के पालक ! (सः सोमः) वह ऐश्वर्य, राष्ट्रधन (सुतः) तुझे प्राप्त हो और वह (ते मदः अस्ति) तुझे हर्षदायक हो ।

त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।
इन्द्रं विश्वासाहं नरं मंहिष्ठं विश्वचर्षणिम् ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! मैं (वः) आप लोगों को (त्यम् उ) उस (अप्रहणं) अन्याय से किसी को दण्डित न करने वाले, (शवसः पतिम्) समस्त सैन्य-बल और ज्ञान के पालक, (इन्द्रम्) दुष्टनाशक, तत्वदर्शी (विश्वसाहम्) सब का पराजय करने वाले, (मंहिष्ठं) अति दानशील, (विश्वचर्षणिं) समस्त जगत् के द्रष्टा, मनुष्यों के स्वामी

(वरं) नेता, प्रभु को मैं (इन्द्रं गृणीषे) इन्द्र नाम से उपदेश करता हूं। वही सर्वस्तुत्य है।

यं वर्धयन्तीद्गिरः पतिं तुरस्य राधसः।
तमिन्न्वस्य रोदसी देवी शुष्मं सपर्यतः॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—(यं) जिसके (तुरस्य) शत्रुहिंसक सैन्य-बल, (राधसः) कार्यसाधक भृत्य वर्ग और ऐश्वर्य के (पतिम्) पालक पुरुष को (गिरः) वाणियां वा उत्तम वाग्मी पुरुष (वर्धयन्ति) बढ़ाते हैं। (रोदसी) सूर्य और पृथिवी के समान राजा प्रजा जन, तथा स्त्री और पुरुष वर्ग दोनों (तत् इत् शुष्मं नु) उस ही बलशाली पुरुष की (सपर्यतः) सेवा करते हैं और (अस्य इत्) उसके ही (नु शुष्मं वर्धयन्ति) बल को बढ़ाते हैं। इति षोडशो वर्गः॥

तद्व उक्थस्य बर्हणेन्द्रायोपस्तृणीषणि।
विपो न यस्योतयो वि यद्रोहन्ति सक्षितः॥ ६ ॥

भा०—(यस्य) जिस बलवान् पुरुष के (ऊतयः) रक्षा-साधन, शस्त्र-अस्त्र बल आदि उपाय (विपः) स्वयं ज्ञानवान् पुरुषों के समान ज्ञानपूर्वक चलते हैं और (यत्) जो (सक्षितः) एक ही स्थान पर रहकर (वि रोहन्ति) विशेष वृद्धि पाते हैं। (तत्) उस (इन्द्राय) शत्रुनाशक स्वामी के (उक्थस्य) बल के (बर्हणा) बढ़ने से ही (वः उपस्तृणीषणि) आप लोगों को उत्तम छत के समान रक्षक, विस्तर-तुल्य सुखदायक हो।

अविदद् दक्षं मित्रो नवीयान्पपानो देवेभ्यो वस्यो अचैत्।
ससवान्त्स्तौलाभिर्धौतरीभिरुरुष्या पायुरभवत्सखिभ्यः॥ ७ ॥

भा०—(नवीयान्) सर्वाधिक स्तुत्य पुरुष (पपानः) राष्ट्र-पालन करता हुआ, (मित्रः) सबका स्नेही होकर (दक्षं अविदत्) बल प्राप्त करे और (वस्वः अचैत्) धन-सञ्चय करे। वह (ससवान्) अन्न का

स्वामी होकर (स्तौलाभिः धौतरीभिः) बड़ी २ शत्रुओं को कंपाने वाली सेनाओं द्वारा (उरुष्या) प्रजा की इच्छा से (सखिभ्यः) मित्रों का भी (पायुः अभवत्) पालक हो।

ऋतस्य॑ प॒थि वे॒धा अ॑पायि श्रि॒ये मनां॑सि दे॒वासो॑ अक्रन्।
दधा॑नो॒ नाम॑ म॒हो वचो॑भि॒र्वपु॑र्दृ॒शये॑ वे॒न्यो व्या॑वः॥ ८॥

भा०—(ऋतस्य पथि) सत्य-मार्ग में रह कर (वेधाः) विधान में कुशल, न्यायपति (अपायि) राष्ट्र का पालन करे और (देवासः) कामनाशील सभी मनुष्य (श्रिये) अपनी लक्ष्मी को बढ़ाने के लिये (मनांसि) अपने चित्त (अक्रन्) बनाये रक्खें। (वेन्यः) कान्तिमान् राज्य की कामना वाला पुरुष सूर्य के तुल्य (महः वचोभिः) महान् वचनों से (नाम दधानः) ख्याति धारण करता हुआ, (दृशये) देखने योग्य अपने (वपुः) रूप को (वि आवः) विशेष रूप से प्रकट करे।

द्यु॒मत्त॑मं॒ दक्षं॑ धेह्य॒स्मे सेधा॒ जना॑नां पू॒र्वीररा॑तीः।
वर्षी॑यो॒ वयः॑ कृणु॒हि शची॑भि॒र्धन॑स्य सा॒ताव॒स्माँ अ॑विड्ढि॥ ९॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! (अस्मे) हममें (द्युमत्तमं) श्रेष्ठ तेज से युक्त (दक्षं) बल (धेहि) धारण करा और (जनानां) मनुष्यों में (पूर्वीः अरातीः) पूर्व विद्यमान, न देने की आदतों को (सेध) दूर कर और (शचीभिः) बुद्धियों, शक्तियों द्वारा (वर्षीयः वयः) उत्तम, वर्षों तक स्थिर रहने वाला जीवन और बल (कृणुहि) कर और (धनस्य) धन के (सातौ) न्यायपूर्वक विभाग के लिए तू (अस्मान् अविड्ढि) हममें प्रवेश कर।

इन्द्र॒ तुभ्य॒मिन्म॑घवन्नभूम व॒यं दा॒त्रे ह॑रिवो॒ मा वि वे॑नः।
नकि॑रा॒पिर्द॑दृशे मर्त्य॒त्रा किम॒ङ्ग र॑ध्र॒चोद॑नं त्वाहुः॥ १०॥ १७॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (इन्द्र) हे शत्रुहन्तः! (हरिवः) हे मनुष्यों के स्वामिन्! (वयम्) हम लोग (तुभ्यम् इत्) तेरे ही

हितैषी (अभूम) हों । (तू दात्रे) दानशील पुरुष के लिये (मा वि वेनः) विपरीत कामना मत कर । (मर्त्यत्रा) मनुष्यों में से कोई भी अन्य (आपिः) तुझसे अतिरिक्त बन्धु (नकिः ददृशे) दिखाई नहीं देता । (किम् अङ्ग) हे स्वामिन् ! और क्या कहें ? (त्वा) तुझको सब विद्वान् (रध्र-चोदनं आहुः) अपने अधीन व्यक्तियों का प्रेरक कहते हैं । इति सप्तदशो वर्गः ॥

मा जस्वने वृषभ नो ररीथा मा ते रेवतः सख्ये रिषाम ।
पूर्वीष्ट इन्द्र निष्षिधो जनेषु जह्यसुष्वीन्प्र वृहापृणतः ॥ ११ ॥

भा०—हे (वृषभ) बलवान् पुरुष ! तू (नः) हमें (जस्वने) नाशक पुरुष के हाथ (मा ररीथाः) मत दे । (ते रेवतः) तुझ ऐश्वर्यवान् के (सख्ये) मित्रभाव में रहते हुए हम लोग (मा रिषाम) कभी पीड़ित न हों । (जनेषु) मनुष्यों में, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (पूर्वीः) पूर्व से चली आई (निःषिधः) निषिद्ध मर्यादाओं को (ररीथाः) हमें बार २ बतला । जो (असुष्वीन्) ऐश्वर्य-वृद्धि, यज्ञ, उपासना, कर आदि दान, स्नान तथा तेरा अभिषेक न करने वाले हैं उनको (जहि) दण्डित कर । (अपृणतः) सन्तानों तथा व्रत-पालन न करने वालों को (प्र वृह) उखाड़ डाल ।

उद्भ्राणीव स्तनयन्नियर्तीन्द्रो राधांस्यश्व्यानि गव्या ।
त्वमसि प्रदिवः कारुधाया मा त्वादामान आ दभन्मघोनः ॥ १२ ॥

भा०—(इन्द्रः अभ्राणि इव) जैसे सूर्य या विद्युत् मेघों को गर्जता हुआ ऊपर उठाता है वैसे ही (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (स्तनयन्) गर्जता हुआ (अश्व्यानि गव्यानि राधांसि) अश्वों, गौवों और धनों को (उत् इयर्ति) उन्नत करता है । हे राजन् ! (त्वम्) तू (कारुधायाः) विद्वानों, शिल्पियों का धारक, पोषक (प्रदिवः) सबके द्वारा कामना-योग्य (असि) है । (अदामानः) अदानशील, उच्छृङ्खल पुरुष (त्वा)

तुझे और तेरे (मघोनः) राज्य के ऐश्वर्यवान् पुरुषों का (मा दभन्) विनाश न करें।

अध्वर्यो वीर् प्र म॒हे सु॒ताना॒मिन्द्रा॑य भर॒ स ह्य॑स्य॒ राजा॑ ।
यः पू॒र्व्याभि॑रु॒त नूत॑नाभिर्गी॒र्भिर्वा॑वृ॒धे गृ॑ण॒ताम्ऋषी॑णाम् ॥ १३ ॥

भा०—हे (अध्वर्यो) प्रजा-नाश न करने वाले ! (वीर) वीर ! तू (महे) महान् (इन्द्राय) ऐश्वर्य-वृद्धि के लिये (सुतानाम्) ऐश्वर्यों अथवा पुत्रों के तुल्य राष्ट्र में प्रजाओं को (प्र भर) अच्छी प्रकार धारण कर। क्योंकि (सः हि) वह तू ही (अस्य) इस राज्य और ऐश्वर्य का (राजा) राजा है। (यः) जो तू (पूर्व्याभिः) पूर्व की (उत) और (नूतनाभिः) नयी (ऋषीणाम्) तत्वदर्शी (गृणताम्) उपदेष्टाओं की (गीर्भिः) वाणियों से (ववृधे) बढ़े।

अ॒स्य मदे॑ पु॒रु वर्पां॑सि वि॒द्वानिन्द्रो॑ वृ॒त्राण्य॑प्र॒ती ज॑घान ।
तमु॒ प्र हो॑षि॒ मधु॑मन्तमस्मै॒ सोमं॑ वी॒राय॑ शि॒प्रिणे॒ पिब॑ध्यै ॥१४॥

भा०—जैसे (इन्द्रः वृत्राणि जघान) सूर्य मेघों को आघात करता है और (मदे) तृप्तिकारक, जल के आधार पर (पुरु वर्पांसि करोति) वनस्पतियों के नाना रूपों को उत्पन्न करता है और विद्वान् पुरुष (वीराय) विविध सुखों या जलों के दाता (शिप्रिणे पिबध्यै) बलवान् मेघ के पान के लिये (मधुमन्तं सोमं) मधुर पदार्थों से युक्त ओषधि समूह को (प्रहोषि) अग्नि में आहुति करता है वैसे ही (विद्वान् इन्द्रः) ज्ञानवान् राजा (अस्य मदे) इस राष्ट्र के तृप्तिकारक ऐश्वर्य या शासन के बल पर ही (वृत्राणि) विघ्नकारी शत्रुओं को (अप्रती) विना रोक के (जघान) नाश करे और (पुरु वर्पांसि) बहुत प्रजा के शरीरों की रक्षा करे। हे प्रजावर्ग ! तू (अस्मै) इस (शिप्रिणे) मुकुटधारी, सुमुख (वीराय) वीर पुरुष के (पिबध्यै) पीने के लिये (मधुमन्तं सोमं) मधुयुक्त ओषधि रस के समान (तम्) वह अन्नादि ऐश्वर्य (प्रहोषि) दे।

पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं हन्ता वृत्रं वज्रेण मन्दसानः ।
गन्ता यज्ञं परावतश्चिदच्छा वसुर्धीनामविता कारुधायाः ॥१५॥१८

भा०—(इन्द्रः) शत्रुहन्ता पुरुष ही (सुतं पाता) ऐश्वर्य-भोक्ता तथा प्रजाओं का पुत्रवत् पालक (अस्तु) हो। वही (सोमं) ऐश्वर्य-भोक्ता हो। वह (मन्दसानः) हृष्ट होकर (वज्रेण) शस्त्रबल से (वृत्रं) मेघ को सूर्यवत्, बढ़ते शत्रु का (हन्ता) नाशक हो। वह (परावतः चित्) दूर देश से भी (यज्ञं) यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्म तथा सत्संग-योग्य पुरुष को (अच्छ गन्ता) प्राप्त होने वाला हो। वह (वसुः) प्रजा के बसाने हारा (कारु-धायाः) विद्वानों, शिल्पियों का पोषक होकर (धीनाम्) ज्ञानों, कौशलों का (अविता) रक्षक हो। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

इदं त्यत्पात्रमिन्द्रपानमिन्द्रस्य प्रियममृतमपायि ।
मत्सद्यथा सौमनसाय देवं व्य१स्मद् द्वेषो युयवद्व्यंहः ॥ १६ ॥

भा०—जैसे (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के स्वामी जीव का (इदं) यह शरीर (प्रियम्) प्रिय (इन्द्रं-पानं पात्रम्) जीव और जीव को प्राप्त भोगों के उपभोग का साधन है। इससे ही वह साधना करके (अमृतम् अपायि) मोक्ष-रस को भी पीता है और वह (देवं प्रति सौमनसाय मत्सत्) प्रभु के प्रति शुभ-चित्त रहने के लिये ही चाहे उसी प्रकार (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य के स्वामी राजा का (इदं त्यत्) यह भी एक उत्तम (इन्द्र-पानम्) ऐश्वर्यपद का रक्षक (पात्रं) पालक साधन है जिससे (प्रियम्) प्रीतिकारक (अमृतम्) अमृत-तुल्य सुख (अपायि) प्राप्त किया जाता है। वह प्रजाजन (देवं) उस तेजस्वी पुरुष को (सौमनसाय) शुभ-चित्त बनाये रखने के लिये (मत्सत्) आनन्दित करे। वह राजा भी (अस्मत्) हम प्रजाजन से (द्वेषः) द्वेष-भाव को (वि युयवत्) पृथक् करे और वह हमसे (अंहः वि) पाप को भी दूर करे।

एना मन्दानो जहि शूर शत्रूञ्जामिमजामिं मघवन्नमित्रान् ।
अभिषेणाँ अभ्याऽदेदिशानान्परा च इन्द्र प्र मृणा जही च ॥१७॥

भा०—हे (शूर) वीर ! तू (मन्दानः) हर्षित होकर (एना) पूर्व कहे राष्ट्रपालक बल से (शत्रून् जहि) प्रजा-नाशक पुरुषों को दण्ड दे। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (जामिम्) सम्बन्धी और (अजामिम्) सम्बन्ध-रहित (अमित्रान्) स्नेह न करने वालों तथा (अभि-सेनान्) सामने आने वाले और (आ-देदिशानान्) सन्मुख सेनाओं वा प्रजाओं पर आदेश चलाने वाले शत्रुओं को भी (परा जहि) दण्ड दे। हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! उनका (प्र मृण च) अच्छी प्रकार नाश कर और (प्र जहि च) खूब दण्ड दे।

आसु ष्मा णो मघवन्निन्द्र पृत्स्वऽस्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः ।
अपां तोकस्य तनयस्य जेष इन्द्र सूरीन्कृणुहि स्मा नो अर्धम् ॥१८॥

भा०—हे (मघवन्) धन-स्वामिन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (नः) हमारी (आसु पृत्सु) इन वीरजनों की सेनाओं के बल पर (अस्मभ्यं) हमारे सुख के लिये (महि) बड़ा (सुगं) सुख जान कर (वरिवः) धनैश्वर्य (कः) पैदा कर। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अपां) आप्त प्रजाओं के (तोकस्य तनयस्य) पुत्र-पौत्र के लिये ही (जेष) विजय कर और (नः) हमारे (सूरीन्) विद्वान् पुरुषों को (अर्धं कृणुहि) समृद्ध कर।

आ त्वा हरयो वृषणो युजाना वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः ।
अस्मत्राञ्चो वृषणो वज्रवाहो वृष्णे मदाय सुयुजो वहन्तु ॥१९॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (वृषणः) बलवान् (हरयः) मनुष्य (वृषरथासः) बलवान् शस्त्रास्त्रवर्षण-कुशल रथ आदि सैन्यों के स्वामी और (वृषरश्मयः) प्रबन्ध-समर्थ, बागडोरों वाले उत्तम प्रबन्धक, नियम-मर्यादा-सम्पन्न, (अत्याः) सर्वोत्तम पुरुष (युजानाः) तेरा सहयोग देने वाले (अस्मत्राञ्चः) हम लोगों में पूजनीय और (वज्रवाहः) खड्ग-धारक

(वृषणः) बलवान् पुरुष भी (वृष्णे) बल-कारक (मदाय) हर्ष के लिये (सुयुजः) उत्तम मनोयोग देते हुए (त्वा वहन्तु) तुझको धारण करें।

आ ते॑ वृषन्वृष॑णो॒ द्रोण॑मस्थुर्घृत॒प्रुषो॒ नोर्मयो॒ मद॑न्तः।
इन्द्र॒ प्र तुभ्यं॒ वृष॑भिः सु॒ताना॒ं वृष्णे॑ भरन्ति वृष॒भाय॒ सोम॑म् २०।१९

भा०—हे (वृषन्) बलवन्! (घृतप्रुषः ऊर्मयः न) जलवर्धक जल-तरंगों के समान (मदन्तः) हर्षित, (वृषणः) मेघ-तुल्य शस्त्रवर्षी, (ते) तेरे वीर जन (द्रोणम्) रथ और राष्ट्र पर (आ अस्थुः) विराजें और वे (वृषभिः) बलयुक्त सैन्यों से (सुतानां) उत्पन्न ऐश्वर्यों में से, हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! (तुभ्यं) तुझ (वृषभाय) श्रेष्ठ (वृष्णे) सुख-दाता के लिये (सोमम् प्र भरन्ति) ऐश्वर्य प्राप्त करावें। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

वृषा॑सि दि॒वो वृ॑ष॒भः पृ॑थि॒व्या वृषा॒ सिन्धू॑नां वृष॒भः स्तिया॑नाम्।
वृष्णे॑ त॒ इन्दु॑र्वृषभ पीपाय स्वा॒दू रसो॑ मधु॒पेयो॒ वरा॑य॥ २१॥

भा०—हे राजन्! तू (दिवः वृषा असि) प्रकाश-वर्षक सूर्य के समान तेजस्वी है। तू (पृथिव्याः वृषभः) पृथिवी का श्रेष्ठ पुरुष है। तू (सिन्धूनां वृषा) जलों का सेचक है। तू (स्तियानां वृषभः असि) संघ बना कर रहने वाली सेनाओं और प्रजाओं में श्रेष्ठ है। हे (वृषभ) सुखों के वर्षक (वृष्णे) बलवान् (वराय) वरण-योग्य श्रेष्ठ पुरुष के पान के लिये यह (इन्दुः) ऐश्वर्यप्रद (स्वादुः) आनन्ददायक (मधुपेयः रसः) मधुर, शहद आदि के साथ मिलाकर पीने-योग्य रस आदरार्थ (ते पीपाय) तुझे प्राप्त हो।

अ॒यं दे॒वः सह॑सा॒ जाय॑मान॒ इन्द्रे॑ण यु॒जा प॒णिम॑स्तभायत्।
अ॒यं स्वस्य॑ पि॒तुरायु॑धा॒नीन्दु॑रमुष्णा॒दशि॑वस्य मा॒याः॥ २२॥

भा०—(अयं) यह (देवः) तेजस्वी, पुरुष (सहसा) अपने बल से (जायमानः) प्रकट होकर (इन्द्रेण युजा) ऐश्वर्ययुक्त सहायक के साथ मिलकर (पणिम्) व्यवहार-कुशल प्रजावर्ग को (अस्तभायत्) स्थिर

करे और (अयं) वह (इन्दुः) स्वयं चन्द्र के समान आह्लादक होकर (स्वस्य पितुः) अपने पालक पिता के (आयुधानि) शस्त्रों-अस्त्रों को (अस्तभायत्) धारण करे और (अशिवस्य मायाः) असङ्गलजनक शत्रु की चालों को (अमुष्णात्) दूर करे ।

अयमकृणोदुषसः सुपत्नीरयं सूर्ये अदधाज्ज्योतिरन्तः ।
अयं त्रिधातु दिवि रोचनेषु त्रितेषु विन्ददमृतं निगूळ्हम् ॥२३॥

भा०—जैसे सूर्य (उषसः अकृणोत्) तेजोयुक्त प्रभात वेलाओं को प्रकट करता है वैसे ही (अयम्) यह तेजस्वी पुरुष (सु-पत्नीः) राष्ट्र की उत्तम पालक (उषसः) शत्रु को जलाने में समर्थ सेनाओं को (अकृणोत्) तैयार करे और वह (उषसः) कामना-युक्त स्त्रियों को (सु-पत्नीः) उत्तम गृहपत्नी बनने दे । (सूर्ये अन्तः ज्योतिः) सूर्य के भीतर स्थित तेज को वह (अदधात्) धारण करे और (अयं) वह (त्रितेषु रोचनेषु) तीनों प्रकाशमान अग्नि, विद्युत्, सूर्य उनमें (नि-गूढं) गुप्त रूप से स्थित (त्रि-धातु अमृतम्) तीनों तत्वों को धारण करने वाले अमृत तुल्य (दिवि) पृथिवी में भी (त्रितेषु) उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तीनों स्थानों पर शोभाप्रद पुरुषों में (नि-गूढं त्रिधातु अमृतं विन्दत्) छिपे तीनों प्रकार के प्रजाजन के धारक अमृत-बल को प्राप्त करे ।

अयं द्यावापृथिवी वि ष्कभायदयं रथमयुनक्सप्तरश्मिम् ।
अयं गोषु शच्या पक्वमन्तः सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम् ॥२४॥२०॥

भा०—(द्यावा पृथिवी) सूर्य और पृथिवी दोनों को जैसे परमेश्वर (वि स्कभायत्) विविध प्रकार से थाम रहा है वैसे ही (अयम्) यह राजा भी (द्यावा पृथिवी) तेजस्वी पुरुषों और भूमि-वासी प्रजाओं को (वि स्कभायत्) विविध उपायों से वश करे । (सप्तरश्मि रथम्) वैसे ही सात किरणों वाले सूर्य के तुल्य सात रासों से युक्त रथ, वा सात प्रकृतियों से युक्त राज्य को (अयुनक्) संचालित करे । (सोमः) सर्वो-

त्पादक प्रभु जैसे (शच्या) वाणी द्वारा (गोषु) वेदवाणियों के भीतर (पक्वम्) परिपक्व ज्ञान को (दाधार) धारण कराता है और जैसे वह सर्वप्रेरक (दशयन्त्रम् उत्सम्) दश यन्त्रों से युक्त कूप वा जल-स्रोत के समान दशों दिशाओं से नियन्त्रित (उत्सम्) इस जगत् को धारण करता है वैसे ही (अयं) यह (सोमः) अभिषेक-योग्य राजा (शच्या) अपनी शक्ति के बल पर (गोषु अन्तः) भूमियों के बीच (पक्वम्) पके धान्य को (दाधार) ग्रहण करे। इति विंशो वर्गः ॥

[४५]

शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ १—३० इन्द्रः। ३१—३३ बृबुस्तक्षा देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ८, १४, २०, २१, २२, २३, २४, २८, ३०, ३२ गायत्री। ४, ७, ९, १०, ११, १२, १३, १५, १६, १७, १८, १९, २५, २६, २९ निचृद्गायत्री। ५, ६, २७ विराड्गायत्री। ३१ आर्च्युष्णिक्। ३३ अनुष्टुप्। त्रयस्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम्।
इन्द्रः स नो युवा सखा ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (परावतः) दूर देश से (तुर्वशं यदुम्) हिंसक सैन्यगण और यत्नशील प्रजावर्ग दोनों को चाहने वाले यत्नशील प्रजावर्ग को (सुनीती) उत्तम नीति से (आ अनयत्) सत् मार्ग से ले जाता है, (सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (युवा) बलवान् पुरुष (नः सखा) हमारा मित्र हो।

अविप्रे चिद्वयो दधदनाशुना चिदर्वता।
इन्द्रो जेता हितं धनम् ॥ २ ॥

भा०—जो राजा (अविप्रे चित्) अविद्वान् आदि में (वयः चित्) जीवन, ज्ञान (दधत्) धारण कराता और (अनाशुना अर्वता चित्) वेग से न जाने वाले अश्व-सैन्य से (हितं धनं जेता) सुखकारी धन विजय करता है वह (इन्द्रः) राजा होने योग्य है।

म॒हीर॑स्य॒ प्रणी॑तयः पू॒र्वीरु॒त प्रश॑स्तयः ।

नास्य॑ क्षीयन्त ऊ॒तयः॑ ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इस राजा की (महीः प्रणीतयः) बड़ी उत्तम नीतियें और (पूर्वीः) सनातन से आई वेदोपदिष्ट (प्र-शस्तयः) उत्तम आज्ञायें हों। (अस्य ऊतयः) उसके रक्षा-साधन कभी (न क्षीयन्ते) क्षीण न हों।

सखा॑यो॒ ब्रह्म॑वाहु॒सेऽर्च॑त॒ प्र च॑ गायत ।

स हि नः॒ प्रम॑तिर्म॒ही ॥ ४ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रो! आप लोग (ब्रह्म-वाहसे) ज्ञान-धारक विद्वान्, प्रभु और धनैश्वर्य को धारने वाले राजा का (प्र अर्चत) उत्तम सत्कार करो और (प्र गायत च) उसकी प्रशंसा करो। (सः हि) वह ही (नः) हमारे बीच (मही) उत्तम वाणी और (प्र-मतिः) बुद्धि धारण करता है।

त्वमेक॑स्य वृत्रहन्नवि॒ता द्वयो॑रसि ।

उ॒तेदृशे॒ यथा॑ व॒यम् ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) शत्रुहन्ता राजन्! (त्वम्) तू (एकस्य) एक का (उत) और (द्वयोः) दोनों का भी (अविता असि) रक्षक हो (उत) और (ईदृशे) ऐसे समय भी रक्षक हो (यथा) जैसे (वयम्) हम तुम्हारे रक्षक होते हैं। इत्येकविंशो वर्गः ॥

नय॒सीद्वति॒ द्विषः॑ कृ॒णोष्यु॑क्थशं॒सिनः॑ ।

नृभिः॑ सु॒वीर॑ उच्यसे ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन्! तू प्रजा को (द्विषः अति नयसि) शत्रुओं से पार पहुँचाता है। तू (द्विषः उक्थ-शंसिनः कृणोषि) द्वेषयुक्त जनों को भी उत्तम वचन कहने वाला बनाता है। तू (नृभिः) नायक पुरुषों द्वारा (सु-वीरः) उत्तम वीर और विद्योपदेष्टा (उच्यसे) कहा जाता है।

ब्र॒ह्माणं॒ ब्रह्म॑वाहसं गी॒र्भिः सखा॑यमृ॒ग्मिय॑म् ।
गां न दो॒हसे॑ हुवे ॥ ७ ॥

भा०—(दोहसे गां न) दूध दोहने के लिये जैसे गौ को प्रेम से बुलाते हैं वैसे ही मैं (ब्रह्म-वाहसं) ज्ञान के धारक (ऋग्मियं) ऋचाओं के वेत्ता, स्तुति-योग्य पात्र, (सखायं) सबके मित्र (ब्रह्माणं) बड़े वेदज्ञ विद्वान् पुरुष को (दोहसे) ज्ञान रस प्राप्त करने के लिये (हुवे) सादर बुलाऊं ।

यस्य॒ विश्वा॑नि॒ हस्त॑योरू॒चुर्वसू॑नि॒ नि द्वि॒ता ।
वी॒रस्य॑ पृतना॒षहः॑ ॥ ८ ॥

भा०—(यस्य) जिस (वीरस्य) विविध विद्योपदेष्टा तथा प्रजाओं के आज्ञापक (पृतनाषहः) शत्रुओं का जय करने वाले वीर के (हस्तयोः) हाथों में (विश्वानि वसूनि) समस्त ऐश्वर्य (नि ऊचुः) बतलाते हैं (तस्य द्विता) उस के प्रति माता-पिता और गुरु दोनों प्रकार का भाव रहे ।

वि दृ॒ळ्हानि॑ चिदद्रिवो॒ जना॑नां शचीपते ।
वृ॒ह मा॒या अ॑नानत ॥ ९ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) वज्रधर ! हे (शचीपते) शक्ति के पालक ! हे (अनानत) शत्रु के आगे न झुकने हारे ! तू (जनानां) शत्रु लोगों को (दृढानि) दृढ़ दुर्गों और सैन्यों को तथा (मायाः) कपट-व्यवहारों को भी (वि वृह) उन्मूलन कर ।

तमु॑ त्वा सत्य सोमपा॒ इन्द्र॑ वाजानां पते ।
अहू॑महि श्रव॒स्यवः॑ ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (सत्य) सज्जनों में श्रेष्ठ, सत्यभाषण आदि व्यवहार-कर्तः ! हे (सोमपाः) ओषधिरस का पान करने वाले, राष्ट्र-प्रजा के शिष्यवत् पालक ! हे (वाजानां पते) बलों, ज्ञानों के पालक ! हे

(इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हम लोग (अवस्यवः) अन्न आदि के इच्छुक जन (त्वा तम् उ) उस तुझको ही (अहूमहि) पुकारते हैं। इति द्वाविंशो वर्गः॥

तमु त्वा यः पुरासिथ यो वा नूनं हिते धने।

हव्यः स श्रुधी हवम्॥ ११॥

भा०—(यः) जो तू (पुरा) पहले भी (हव्यः आसिथ) स्तुति-योग्य था, (यः वा) और जो तू (नूनं) अब भी (हिते धने) हितकारी धन के प्राप्त होने पर भी (हव्यः) स्तुतियोग्य है (सः) वह तू (हवं श्रुधि) हमारी स्तुति को सुन।

धीभिरर्वद्भिरर्वतो वाजाँ इन्द्र श्रवाय्यान्।

त्वया जेष्म हितं धनम्॥ १२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हम लोग (त्वया) तेरी सहायता से (धीभिः) उत्तम कर्मों और बुद्धियों द्वारा (अर्वद्भिः) शत्रुनाशक पुरुषों और अश्वों से (अर्वतः) शत्रु के वीरों, अश्वों, (श्रवाय्यान्) प्रसिद्ध, (वाजान्) संग्रामों और ऐश्वर्यों को तथा (हितं धनम्) हित-कारी धन को (जेष्म) विजय करें।

अभूरु वीर गिर्वणो महाँ इन्द्र धने हिते।

भरे वितन्तसाय्यः॥ १३॥

भा०—हे (वीर) वीर! हे (गिर्वणः) वाणियों द्वारा स्तुति योग्य! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (हिते धने) सुखजनक धन प्राप्त करने हेतु (भरे) संग्राम और प्रजा पोषण के कार्य में (वितन्तसाय्यः) सबका विजय-कर्त्ता है।

या त ऊतिरमित्रहन्मक्षूजवस्तमासति।

तया नो हिनुही रथम्॥ १४॥

भा०—हे (अमित्र-हन्) शत्रुओं को दण्डित करने वाले! (या)

जो (ते) तेरी (मक्षू जवस्तमा ऊतिः) अति वेग युक्त, गति, रक्षण, (असति) है (तया) उससे तू (नः) हमारे (रथम्) रथ-तुल्य राष्ट्र को (हिनुहि) प्रेरित कर ।

स रथेन रथीतमोऽस्माकेनाभियुग्वना ।
जेषि जिष्णो हितं धनम् ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—हे (जिष्णो) विजयकर्त्तः ! तू (रथीतमः) श्रेष्ठ महारथी होकर (अस्माकेन) हमारे (अभि-युग्वना) शत्रु पर आक्रमण करने में समर्थ (रथेन) रथ सैन्य से (हितं धनं जेषि) सुखकर धन को प्राप्त कर । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

य एक इत्तमु ष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः ।
पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः ॥ १६ ॥

भा०—हे विद्वन् ! (यः) जो (एकः इत्) अकेला ही (कृष्टीनां विचर्षणिः) कृषियों को देखने वाले किसान के समान (कृष्टीनां) प्रजाओं का विशेष द्रष्टा उनको आकर्षण करने वाला होकर (वृष-क्रतुः व) लवती प्रज्ञा और बलयुक्त कर्म वाला, (पतिः) पालक (जज्ञे) प्रसिद्ध हो (तम् उ स्तुहि) तू उसकी स्तुति कर ।

यो गृणतामिदासिथापिरूती शिवः सखा ।
स त्वं न इन्द्र मृळय ॥ १७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो तू (गृणताम् इत्) अन्यों के उपदेष्टा विद्वानों तथा स्तुतिशील पुरुषों का (आपिः इत्) वास्तव बन्धु (आसिथ) हो और (ऊती) रक्षा और ज्ञान से (शिवः) कल्याणकारक (सखा) मित्र हो (सः) वह (त्वं) तू (नः मृडय) हमें सुखी कर ।

धिष्व वज्रं गभस्त्यो रक्षोहत्याय वज्रिवः ।
सासहीष्ठा अभि स्पृधः ॥ १८ ॥

भा०—हे (वज्रिवः) शस्त्र वा शत्रु के वर्जन करने वाले बलों से युक्त पुरुषों के स्वामिन्! तू (रक्षो हत्याय) दुष्ट पुरुषों के नाश के लिये (गभस्त्योः) बाहुओं में (वज्रं धिष्व) शस्त्रवत् वज्र, वीर्य को धारण कर और (स्पृधः) स्पर्धालु शत्रु सेनाओं को (अभि सासहिष्ठाः) मुकाबले पर पराजित कर।

प्रत्नं रयीणां युजं सखायं कीरिचोदनम्।
ब्रह्मवाहस्तमं हुवे॥ १९॥

भा०—मैं (रयीणां युजं) धनों के दाता, (प्रत्नं) पुराने, (सखायं) मित्र, (कीरि-चोदनम्) स्तुतिकर्त्ताओं को उपदेश देने वाले (ब्रह्मवाहः तमम्) उत्तम वेद-विज्ञान वा धन के धारक आपकी (हुवे) आदर-पूर्वक प्रार्थना करूं।

स हि विश्वानि पार्थिवा एको वसूनि पत्यते।
गिर्वणस्तमो अध्रिगुः॥ २०॥ २४॥

भा०—(सः हि) वह ही (एकः) अकेला, (विश्वा पार्थिवा) समस्त पृथिवी के (वसूनि) ऐश्वर्यों को (पत्यते) प्राप्त होता, और वही (गिर्वणः-तमः) अधिक प्रशंसनीय और (अध्रि-गुः) बेरोक जाने वाला होता है। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

स नो नियुद्भिरा पृण कामं वाजेभिरश्विभिः।
गोमद्भिर्गोपते धृषत्॥ २१॥

भा०—हे (गोपते) वाणियों के पालक विद्वन्! पृथ्वी-पालक राजन्! गवादि पालक वैश्य वर्ग! तुम (धृषत्) प्रगल्भ होकर (नियुद्भिः) नियुक्त अश्वादि सैन्यों (वाजेभिः) बलों, संग्रामों और ज्ञान, अन्नादि से और (अश्विभिः) वीरों से (गोमद्भिः) वाणी, भूमि के स्वामी, विद्वानों और भूमि वालों से (सः) वह तू (नः) हमारे (कामम् आपृण) मनोरथ पूर्ण कर।

तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
शं यद् गवे न शाकिने ॥ २२ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (वः सुते) आप लोगों के उत्पन्न इस जगत् में वा अन्न, ऐश्वर्यादि प्राप्त होने पर आप (सचा) सब एक साथ मिलकर (तत्) उस (सत्वने) बलवान्, शुद्ध अन्तःकरण वाले (पुरुहूताय) बहुतों से प्रशंसित, (गवे न शाकिने) बैल के समान शक्तिमान् ज्ञानी की (गाय) स्तुति करो । (यत्) जो (शं) तुम्हें शान्ति दे ।

न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः ।
यत्सीमुप श्रवद् गिरः ॥ २३ ॥

भा०—(यत् वसुः) जो गुरु के अधीन शिष्य होकर (सीम्) सबसे (गिरः उप श्रवत्) वेदवाणियों को सुने वह (गोमतः वाजस्य) वाणी-युक्त ज्ञान का (दानं न घ नि यमते) देना न रोके, प्रत्युत ज्ञान दे । ऐसे ही (यत् सीम् गिरः उपश्रवत्) जो राजा वा ऐश्वर्यवान् पुरुष उत्तम स्तुतियां सुने वह (वसुः) प्रजा का बसाने हारा, (गोमतः वाजस्य दानं न घ नि यमते) सत्कार-योग्य वाणी से युक्त ऐश्वर्य के दान को न रोके ।

कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् ।
शचीभिरप नो वरत् ॥ २४ ॥

भा०—(यः) जो (दस्युहा) दुष्ट-नाशक राजा (कुवित्सस्य) बहुत से विवेकपूर्वक धन-विभाग वा न्यायकर्ता विवेकी पुरुष के (गोमन्तं व्रजं) वाणी-युक्त मार्ग को (प्र गमत्) अच्छी प्रकार जाता है, वह ही (नः) हमारे (शचीभिः) उत्तम वाणियों, शक्तियों से (अप वरत्) कष्ट दूर करे ।

इमा उ त्वा शतक्रतोऽभि प्र णोनुवुर्गिरः ।
इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥ २५ ॥

भा०—(मातरः वत्सं न) माताएं जैसे अपने वत्स को देख रंभाती हैं वैसे ही हे (शतक्रतो) अनन्त प्रज्ञा युक्त ! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (इमाः मातरः) ये उत्तम ज्ञान करने वाले (गिरः) उपदेष्टाजन, वा उनकी वाणियां (त्वा उ अभि प्र नोनवुः) तेरी ही स्तुति करती हैं । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

दूणाशं सख्यं तव गौरसि वीर गव्यते ।
अश्वो अश्वायते भव ॥ २६ ॥

भा०—हे (वीर) विद्याओं के उपदेष्टः ! और हे शत्रुओं को कंपाने हारे वीर पुरुष ! (तव सख्यं) तेरी मित्रता (दूणाशं) अविनाशी हो । तू (गव्यते गौः असि) गौ, भूमि, वाणी चाहने वाले के लिये गौ, भूमि, वाणियों के समान आह्लाद देने वाला हो और (अश्वायते अश्वः भव) वेगवान् अश्व आदि चाहने वाले के लिये तू स्वयं अश्व-समान संकट पार करने में समर्थ हो ।

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे ।
न स्तोतारं निदे करः ॥ २७ ॥

भा०—हे राजन् ! (सः) वह आप (महे राधसे) भारी ऐश्वर्य के लिये (तन्वा) शरीर से (अन्धसः मन्दस्व) अन्न के द्वारा प्रसन्न रहें, अन्यों को भी (तन्वा अन्धसः मन्दस्व) देह के हेतु अन्न से ही तृप्त करें । (स्तोतारं) ज्ञानोपदेष्टा को (निदे न करः) निन्दक के अधीन न करें ।

इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः ।
वत्सं गावो न धेनवः ॥ २८ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) वाणियों से प्रशंसनीय विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (धेनवः गावः वत्सं न) गौएं जैसे बछड़े को प्रेम से प्राप्त करती हैं वैसे ही (इमाः गिरः) ये वाणियें (सुते-सुते) जब २ और जहां भी जगत् उत्पन्न होता है वहां, (त्वा उ नक्षन्ते) तुझे ही प्राप्त होती हैं ।

पुरूतमं पुरूणां स्तोतॄणां विवांचि ।
वाजेभिर्वाजयताम् ॥ २९ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (वाजेभिः) ज्ञानों, ऐश्वर्यों द्वारा (वाजयताम्) ऐश्वर्य, ज्ञानों की प्राप्ति के इच्छुक (पुरूणां स्तोतॄणां) बहुत से विद्वान् पुरुषों के (विवाचि) विविध प्रकार के वाग्-व्यापार के समय (गिरः त्वा नक्षन्ते) नाना वाणियां तुझे प्राप्त हों।

अस्माकमिन्द्र भूतु ते स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः ।
अस्मान्राये महे हिनु ॥ ३० ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! प्रभो ! विद्वन् ! (अस्माकम्) हमारा (वाहिष्ठः) उत्तम कार्य वहन करने में समर्थ, (स्तोमः) स्तुति योग्य व्यवहार (अन्तमः) तेरे समीपतम होकर (ते भूतु) तेरी वृद्धि के लिये हो। ऐसे ही (ते स्तोमः अस्माकम् अन्तमः वाहिष्ठः भूतु) तेरा स्तुति योग्य उपदेश, बल आदि द्वारा हमारे अति निकटतम उन्नतिप्रापक हो। तू (अस्मान्) हमें (महे राये हिनु) भारी ऐश्वर्य वृद्धि के लिये आगे बढ़ा।

अधि बृबुः पणीनां वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात् ।
उरुः कक्षो न गाङ्ग्यः ॥ ३१ ॥

भा०—(प्रणीनां) विद्वान् पुरुषों में (बृबुः) संशयोच्छेदक विद्वान् और (पणीनां) व्यापारी पुरुषों के बीच (बृबुः) काट २ कर नये २ पदार्थ बनाने वाला शिल्पी तथा शत्रु-उच्छेदक वीर पुरुष (गाङ्ग्यः कक्षः न) वेगवती नदी के तट के समान (वर्षिष्ठे मूर्धन्) दानशील, शिरोवत् उन्नत पद पर (उरुः) महान् होकर (अधि अस्थात्) प्रतिष्ठित हो।

यस्य वायोरिव द्रवद्भद्रा रातिः सहस्रिणी ।
सद्यो दानाय मंहते ॥ ३२ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (यस्य) जिसकी (सहस्रिणी) सहस्रों ऐश्वर्य

वाली (भद्रा रातिः) कल्याणमयी दान-क्रिया (वायोः इव) वायु-तुल्य (सद्यः) शीघ्र (दानाय) दान के लिये (मंहते) बढ़ती है [(सः दरुः मूर्धन् अधि स्थात्) वह संकट काटने वाला महापुरुष सबके शिर पर विराजता है।]

तत्सु नो॒ विश्वे॑ अ॒र्य आ सदा॑ गृणन्ति का॒रवः॑ ।
बृ॒बुं स॑हस्र॒दात॑मं सू॒रिं स॑हस्र॒सात॑मम् ॥ ३३ ॥ २६ ॥

भा०—(तत् वः) वह हमारा (अर्यः) स्वामी होने योग्य है जिस (बृबुं) शत्रुनाशक, (सहस्रदातमं) हजारों के दाता और (सहस्र-सातमं) सहस्रों के विभागकर्ता को (विश्वे कारवः सदा आगृणन्ति) समस्त विद्वान् नित्य आदर से स्तुति करते हैं। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[४६]

शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रः प्रगाथं वा देवता ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप् । ५, ७ स्वराडनुष्टुप् । २ स्वराड्बृहती । ३, ४ भुरिग्बृहती । ८, ९ विराड्बृहती । ११ निचृद्बृहती । १३ बृहती । ६ ब्राह्मी गायत्री । १० पंक्तिः । १२, १४ विराट् पंक्तिः । चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

त्वाँमिद्धि हवा॑महे सा॒ता वाज॑स्य का॒रवः॑ ।
त्वां वृ॒त्रेष्वि॑न्द्र॒ सत्प॑तिं॒ नर॒स्त्वां काष्ठा॒स्वर्व॑तः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (कारवः) विद्वान् और शिल्पीजन, (वाजस्य साता) धन और बल की प्राप्ति के लिये (त्वाम् इत हि हवामहे) तुझको ही पुकारते हैं। (वृत्रेषु) विघ्नकारी शत्रुओं के बीच (सत्पतिं त्वाम्) सत्पुरुष-पालक तुझको पुकारते हैं और (नरः) नायक पुरुष (अर्वतः काष्ठासु) अश्वों को दिशाओं में दूर तक पहुँचाने के लिये सारथि तुल्य अध्यक्ष तुझको ही प्राप्त करें।

स त्वं न॑श्चित्र वज्रहस्त धृष्णु॒या म॒हः स्त॑वा॒नो अ॑द्रिवः ।
गामश्वं॑ र॒थ्य॑मिन्द्र॒ सं कि॑र स॒त्रा वाजं॒ न जि॒ग्युषे॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (वज्रहस्त) शस्त्रबल को हाथ में रखने वाले! हे (अद्रिवः) मेघ वा पर्वत के समान शस्त्रवर्षी और अचल वीरों के स्वामिन्! हे (चित्र) आश्चर्यबलयुक्त! तू (धृष्णुया) प्रगल्भ वाणी से (महः) उत्तम २ (स्तवानः) उपदेश करता हुआ (जिग्युषे) विजयशील पुरुष के लिये (वाजं) वेगयुक्त अश्व और पारितोषक रूप से ऐश्वर्यादि के समान (नः) हमें (गाम्) गौ, भूमि, (रथ्यम्) रथ-योग्य अश्व को (सत्रा) सदा न्याय से (सं किर) अच्छी प्रकार दे।

यः स॒त्रा॒हा विच॑र्षणि॒रिन्द्रं॒ तं हू॑महे व॒यम्।
स॒ह॑स्रमुष्क॒ तुवि॑नृम्ण॒ सत्प॑ते॒ भवा॑ स॒मत्सु॑ नो वृ॒धे॥ ३॥

भा०—(यः) जो (सत्राहा) सब दिनों, (विचर्षणिः) विश्व का विविध प्रकार से द्रष्टा है (वयम्) हम (तम्) उसको (इन्द्रं हूमहे) 'इन्द्र' नाम से पुकारते हैं, हे (सत्पते) सज्जन-पालक! हे (तुवि-नृम्ण) बहुत धनों के स्वामिन्! हे (सहस्र-मुष्क) सहस्रों को पुष्ट करने वाले! तू (समत्सु) संग्रामों में (नः वृधे भव) हमारी वृद्धि के लिये हो।

बाध॑से॒ जना॑न् वृष॒भेव॑ म॒न्युना॒ घृषौ॑ मी॒ळ्ह ऋ॑चीषम।
अ॒स्माकं॑ बोध्यवि॒ता म॑हाध॒ने त॒नूष्व॒प्सु सूर्ये॑॥ ४॥

भा०—(ऋचीषम) हे स्तुति-अनुरूप गुण, कर्म, स्वभाव वाले! राजन्! (घृषौ) घर्षण और (मीढे) वर्षणकाल में (वृषभा इव) जैसे मेघों को विद्युत् (बाधते) पीड़ित करता है वैसे ही तू भी (घृषौ) परस्पर संघर्ष (मीढे) शत्रु पर निरन्तर बाणवर्षा तथा प्रजा पर ऐश्वर्यों की वर्षा के निमित्त (मन्युना) क्रोध और ज्ञानपूर्वक (वृषभा इव जनान्) मेघ-तुल्य शरवर्षी एवं बलवान् सांडों के समान नरपुंगवों को भी (बाधसे) पीड़ित करने में समर्थ है। हे राजन्! तू (महाधने) बड़े ऐश्वर्य के लिये होने वाले संग्राम में (तनूषु) प्रजाओं के शरीरों, (अप्सु) प्राणों और (सूर्ये) सूर्य में प्रकाश वा प्रताप के तुल्य होकर, (अस्माकं) हमारा (अविता) रक्षक होकर हमें (बोधि) ज्ञान दे।

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।

येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥५॥२७॥

भा०—हे (वज्र-हस्त) बाहु में बल के धारक ! हे (चित्र) आश्चर्य-जनक कार्यकर्तः ! हे (सु-शिप्र) सुन्दर मुख वाले ! (येन) जिससे तू (इमे) इन दोनों (रोदसी) सूर्य-पृथिवीवत् राज-प्रजावर्ग को (आ प्राः) सब ओर से पूर्ण कर सके, तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (नः) हमें वही (ज्येष्ठं) सर्वोत्तम (ओजिष्ठं) अति बलकारी, (पपुरि) नित्य तृप्त करने वाला, (श्रवः) अन्न और ज्ञान (आ भर) दे । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन्देवेषु हूमहे ।

विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान्त्सुषहान्कृधि ॥६॥

भा०—हे (राजन्) राजन् ! (देवेषु) विद्वानों के बीच (चर्षणी-सहम्) मनुष्यों का पराजय करने वाले (उग्रं त्वाम्) बलवान् तुझको (हूमहे) हम पुकारते हैं । (नः) हमें (विथुरा) पीड़ादायक (पिब्दना) पीस कर नष्ट कर देने योग्य, (अमित्रान्) शत्रुओं को, तू (नः) हमारे लिये (सुसहान् कृधि) सुगमता से विजय-योग्य कर ।

यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।

यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (नाहुषीषु कृष्टिषु) मनुष्य प्रजाओं में (यत् ओजः नृम्णं च) जो पराक्रम, धनैश्वर्य है और (यत्) जो (पञ्च-क्षितीनां द्युम्नं) पांचों प्रकार की प्रजाओं का ऐश्वर्य है और (सत्रा) सत्य (विश्वानि पौंस्या) सब प्रकार के पुरुषार्थोपयोगी बल हैं उनको (आ भर) तू प्राप्त कर ।

यद्वा तृक्षौ मघवन् द्रुह्यावा जने यत्पूरौ कच्च वृष्ण्यम् ।

अस्मभ्यं तद्रिरीहि सं नृषाह्येऽमित्रान्पृत्सु तुर्वणे ॥ ८ ॥

भा०—(यत् वा कत् च) जो कोई (वृष्ण्यम्) बल (तृक्षौ जने)

बलवान् मनुष्यों में, (द्रुह्यौ वा जने) द्रोहशील मनुष्यों, वा (पूरौ वा जने) एक दूसरे के पालक पुरुषों में हो, हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (तत्) वह बल तू (अमित्रान् तुर्वणे) शत्रु-नाश और (नृषाह्ये) मनुष्यों को वश करने के लिये और (पृत्सु) संग्रामों में (अस्मभ्यं) हमें (सं रिरीहि) अच्छी प्रकार दे।

इन्द्र॑ त्रि॒धातु॑ शर॒णं त्रि॒वरू॑थं स्वस्ति॒मत्।
छ॒र्दिर्य॑च्छ म॒घव॑द्भ्यश्च॒ मह्यं॑ च या॒वया॑ दि॒द्युमे॑भ्यः ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! आप (मघवद्भ्यः) धनाढ्यों और (मह्यं च) मेरे लिये भी (त्रि-धातु) तीन धातु, सुवर्ण, रजत, लोह आदि से युक्त (त्रि-वरूथं) तीनों ऋतुओं में वरणीय (स्वस्तिमत्) सुख-युक्त (शरणम्) शरणदाता (छर्दिः) घर (प्र यच्छ) प्रदान कर। (एभ्यः) इन प्रजाजनों के लिए (दिद्युम् यावय) प्रकाश प्राप्त करा।

ये ग॑व्य॒ता मन॑सा॒ शत्रु॑मादभु॒र॑भिप्र॒घ्नन्ति॑ धृष्णु॒या।
अध॑ स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनू॒पा अन्त॑मो भव ॥१०॥२८॥

भा०—हे (गिर्वणः) उत्तम वाणियों के सेवनकर्तः! हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (ये) जो लोग (गव्यता मनसा) भूमि की इच्छा वाले मन से (शत्रुम्) शत्रु को (धृष्णुया) दृढ़ होकर (आ दभुः) नष्ट करते और (अभि प्र घ्नन्ति) सब प्रकार से दण्डित करते हैं, उन (नः) हम लोगों के, तू (तनू-पाः) शरीरों का रक्षक और (अन्तमः) निकटवर्ती (भव) हो। इत्यष्टाविंशो वर्गः॥

अध॑ स्मा नो वृ॒धे भ॒वेन्द्र॑ ना॒यम॑वा यु॒धि।
यद॒न्तरि॑क्षे प॒तय॑न्ति प॒र्णिनो॑ दि॒द्यव॑स्ति॒ग्ममू॑र्धानः ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! (अध) और तू (नः) हमारी (वृधे) वृद्धि के लिये (भव स्म) यत्नवान् हो और (युधि) युद्ध में (यत्) जब कि (अन्तरिक्षे) आकाश में (पर्णिनः) पंखों से जड़े (तिग्म-मूर्धानः)

तीक्ष्ण सिरों से युक्त (दिद्युवः) बाण (पतयन्ति) पड़ रहे हों, वा (पर्णिनः) पक्षियों के समान (दिद्यवः) तीक्ष्ण (तिग्म-मूर्धानः) तीक्ष्ण शिर के टोप पहने, (युधि पतयन्ति) युद्ध में दौड़ रहे हों, तब (नः नायम् अव) हमारे नायक को रक्षा कर।

यत्र शूरा॑सस्त॒न्वो॑ वितन्व॒ते प्रि॒या शर्म॑ पि॒तॄणाम्।
अध॑ स्मा यच्छ त॒न्वे॒३ तने॑ च छ॒र्दिर॒चित्तं॑ या॒वय॒ द्वेषः॑ ॥ १२ ॥

भा०—(यत्र) जहां (शूरासः) वीर पुरुष (पितृणाम्) पालक माता, पिता के (तन्वः) शरीर के (प्रिया शर्म) प्रिय सुखकारक पदार्थों का (वि तन्वते) विस्तार करते हैं, ऐसे राष्ट्र में हे राजन्! (अध स्म) आप भी हमारे (तन्वे तने) शरीर और पुत्र आदि के लिये (छर्दिः यच्छ) गृह प्रदान करें और (अचित्तं द्वेषः यावय) अज्ञान-युक्त, द्वेष को दूर करें।

यदि॑न्द्र॒ सर्गे॒ अर्व॑तश्चो॒दया॑से म॒हाध॒ने।
अ॒स॒म॒ने अध्व॑नि वृजि॒ने प॒थि श्ये॒नाँ इ॑व श्रवस्य॒तः ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यद्) जब (सर्गे) प्रयाण-योग्य (महाधने) संग्राम और (असमने) संग्राम से भिन्न समय में भी (वृजिने) बलयुक्त सैन्य और (पथि अध्वनि) गमन-योग्य मार्ग में (श्येनान् इव) बाजों के समान वेगवान् (श्रवस्यतः) यश के अभिलाषी (अर्वतः) अश्वारोहियों को (चोदयासे) आज्ञा पर चलाता है, वह तू हमें शरण दे।

सिन्धूँ॑रिव प्रव॒ण आ॑शु॒या य॒तो यदि॒ क्लोश॒मनु॒ ष्वणि॑।
आ ये वयो॒ न वर्वृ॑तत्यामि॑षि गृभी॒ता बा॒ह्वोर्गवि॑ ॥ १४ ॥ २९ ॥

भा०—(प्रवणे सिन्धून् इव) जैसे नीचे देश में नदियां बहती हैं और जैसे (स्वनि क्रोशम् अनु वयः न) खटका होने पर पक्षिगण भागते हैं, (बाह्वोः गृभीताः गवि आमिषि वयः न) बाहुओं में संकुचित

काक आदि मृत गौ के मांस पर झपटते हैं वैसे ही (आशुया) वेग-युक्त (स्वनि) नायक की आवाज पर (क्रोशम् अनु) कोस २ पर (यतः) जाते हुए (सिन्धून्) अश्वारोही वीरों को (गवि) भूमि-विजय के लिये (बाह्वोः गृभीताः) रासों को हाथों में पकड़े (ये) जो (आ वर्त्तति) आक्रमण करते हैं, तू उनकी रक्षा कर। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[४७]

गर्ग ऋषिः ॥ १—५ सोमः। ६—१९, २०, २१—३१ इन्द्रः। २० लिंगोक्ता देवताः ॥ २२—२५ प्रस्तोकस्य साञ्जयस्य दानस्तुतिः। २६—२८ रथः। २९—३१ दुन्दुभिर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, २१, २२, २८ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, ८, ११ विराट् त्रिष्टुप्। ६, ७, १०, १५, १६, १८, २०, २९, ३० त्रिष्टुप्। २७ स्वराट् त्रिष्टुप्। २, ९, १२, १३, २६, ३१ भुरिक् पंक्तिः। १४, १७ स्वराट् पंक्तिः। २३ आसुरी पंक्तिः। १९ बृहती ॥ २४, २५ विराड्गायत्री ॥ एकत्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम्।
उतो न्व१स्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥ १ ॥

भा०—(अयं) यह ऐश्वर्य और विद्वज्जन-समूह, वा बल (किल) अवश्य (स्वादुः) अन्न के तुल्य स्वाद-युक्त, (मधुमान्) मधु-युक्त ओषधि-रसवत् मधुर (उत अयं तीव्रः) और तीव्र रस वाले ओषधि-रस के समान वेग से कार्य करने वाला हो। (किल अयं रसवान् उत) और वह निश्चय से रस अर्थात् बलयुक्त भी हो। (उतो नु) और (अस्य पपिवांसम् इन्द्रम्) जैसे ओषधि पीने वाले पुरुष को बल की स्पर्द्धा में कोई नहीं जीतता, वैसे ही (अस्य) इस ऐश्वर्य के (पपीवांसम्) पालक (इन्द्रं) राजा को भी (आहवेषु) युद्धों में (कश्चन) कोई (न सहते) नहीं जीत सके।

अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद ।
पुरूणि यश्च्यौत्ना शम्बरस्य वि नवतिं नवं च देह्यो३हन् ॥२॥

भा०—(अयं) यह ऐश्वर्य, बल देने वाला, (इह) इस राज्य पर लोक में (मदिष्ठः) अति हर्षदायक (आस) होता है (यस्य) जिसके द्वारा (इन्द्रः) शत्रुहन्ता, (वृत्र-हत्ये) मेघ-विनाशक, सूर्य के तुल्य शत्रु नाश के समय (ममाद) प्रसन्न होता है। (यः) जो (शम्बरस्य) मेघ-तुल्य प्रजा-सुखों के विनाशक शत्रु के (नवतिं नव) ९९ प्रकार के (देह्यो च्यौत्ना) बलों और चालों को (वि अहन्) विविध उपायों से नाश करता है।

अयं मे पीत उदियर्ति वाचमयं मनीषामुशतीमजीगः ।
अयं षळुर्वीरमिमीत धीरो न याभ्यो भुवनं कच्चनारे ॥ ३ ॥

भा०—ओषधिरस जैसे (पीतः वाचम् उत् इयर्ति) पिया जाकर उत्तम वाक्-शक्ति को उत्पन्न करता है और जैसे ओषधिरस (उशतीम् मनीषाम् अजीगः) कामना-योग्य, उत्तम बुद्धि को जागृत करता है वैसे ही (अयं) यह विद्वज्जन, (पीतः) पालित होकर (वाचम् उत् इयर्तिः) ज्ञानवाणी का उपदेश करता है। (उशतीम्) कमनीय (मनी-षाम्) मति को (अजीगः) जगाता है और जैसे ओषधि रस के बल से (धीरः) बुद्धिमान् पुरुष (याभ्यः आरे कत् चन भुवनं न) जिनसे परे कोई भुवन नहीं उन (षड् उर्वीः अमिमीत) छहों विशाल चराचर लोक-सृष्टियों को जान लेता है, वैसे (अयं) यह राजा (धीरः) धैर्यवान् होकर उस विद्वज्जन के द्वारा (षट् ऊर्वीः) उन छः बड़ी राजप्रकृतियों को भी (अमिमीत) अपने अधीन कर लेता है (याभ्यः आरे) जिनसे परे या निकट (कत् चन भुवनं न) कोई भी लोक नहीं है। षड् उर्वीः—प्रकृति के पांच भूत या पांच विकृति और महत्तत्त्व, अथवा पांच इन्द्रिय और छठा मन। राजतन्त्र में—स्वपक्ष की षड् प्रकृतियां

स्वामी के अतिरिक्त अमात्यादि, वा षड् गुण, अथवा द्वादश राजचक्र में स्वपक्ष परपक्ष के छः छः सुहृदादि ।

अ॒यं स यो व॑रि॒माणं॑ पृथि॒व्या व॒र्ष्माणं॑ दि॒वो अकृ॑णोद॒यं सः ।
अ॒यं पी॒यूषं॑ ति॒सृषु॑ प्र॒वत्सु॒ सोमो॑ दाधारो॒र्व१॒॑न्तरि॑क्षम् ॥ ४ ॥

भा०—सोम तत्व का वर्णन । (अयं सोमः) यह सबका उत्पादक, सबका प्रेरक बल है (यः) जो (पृथिव्याः) पृथिवी के (वरिमाणं) बड़प्पन को (अकृणोत्) बनाता है, (अयं सः) यह वह पदार्थ है जो (दिवः वर्ष्माणं) सूर्य वा आकाश के वृष्टि और दृढत्व वा लोकों के नियन्त्रण सामर्थ्य को (अकृणोत्) उत्पन्न करता है। (अयं) यह (तिसृषु) तीनों (प्रवत्सु) ऊपर नीचे की भूमियों में भी (पीयूषं) जल तत्व को और (उरु अन्तरिक्षं) विशाल अन्तरिक्ष को वायुवत् (दाधार) धारण करता है ।

अ॒यं वि॑दच्चित्र॒दृशी॑क॒मर्णः॑ शु॒क्रस॑द्मनामु॒षसा॒मनी॑के ।
अ॒यं म॒हान्म॑ह॒ता स्कम्भ॑नेनो॒द्द्याम॑स्तभ्नाद्वृष॒भो म॒रुत्वा॑न् ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—जैसे (शुक्रसद्मनाम्) तेज का आश्रय उषाओं के (अनीके) प्रमुख भाग में (अयम्) यह सूर्य (चित्र-दृशीकम् अर्णः विदत्) आश्चर्य से देखने योग्य तेज को प्राप्त कराता है वैसे (अयम्) वह तेजस्वी राजा (शुक्र-सद्मनाम्) उत्तम गृह बना कर रहने वाली (उपसाम्) उसको चाहने वाली प्रजाओं के (अनीके) प्रमुख भाग वा सैन्य में (चित्रं दृशीकम् अर्णः) अद्भुत दर्शनीय तेज को (विदत्) प्राप्त करे और करावे । (अयं) और वह (मरुत्वान्) वायुवत् बलवान् पुरुषों का स्वामी, (वृषभः) सूर्यवत् प्रजा पर सुख-वर्षक होकर (महता स्कम्भनेन द्याम्) बड़े थामने वाले बल से सूर्य जैसे आकाश के चन्द्रादि पिण्डों को धारण करता है वैसे (महता स्कम्भनेन) बड़े थामने के बल से (महान्) महान् होकर (द्याम् अस्तभ्नात्) चाहने वाली प्रजा वा पृथिवी को अपने वश करे । इति त्रिंशो वर्गः ॥

धृषत्पिब कुलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समुरे वसूनाम्।
माध्यन्दिने सवन आ वृषस्व रयिस्थानो रयिमस्मासु धेहि ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (शूर) वीर! (धृषत्) शत्रु-धर्षण में समर्थ होकर (वसूनाम् समरे) राष्ट्रवासी प्रजाजन के संगम-स्थान में (वृत्रहा) बढ़ते शत्रु का नाशक होकर (कलशे) पात्र स्थित जल के समान, राष्ट्र में विद्यमान (सोमम्) शासकपद तथा ऐश्वर्य को (पिब) पान वा पालन कर। सूर्य जैसे (माध्यन्दिने सवने) मध्याह्न में जल सोखता है वैसे ही तू भी (सवने) अभिषेक काल वा शासन में तीक्ष्ण होकर (आ वृषस्व) प्रबन्ध कर और (रयिस्थानः) ऐश्वर्यों का आश्रय होकर (अस्मासु) हम में भी (रयिम् धेहि) ऐश्वर्य स्थापन कर।

इन्द्र प्र णः पुरएतेव पश्य प्र नो नय प्रतरं वस्यो अच्छ।
भवा सुपारो अति पारयो नो भवा सुनीतिरुत वामनीतिः ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमें (पुरः एता इव) अग्रगामी नायक-तुल्य (प्र पश्य) अच्छी प्रकार देख, (नः) हमें (वस्यः) श्रेष्ठ धन (प्रतरं) दुःखों से पार करने वाला (अच्छ प्र नय) अच्छी प्रकार दे। तू (सुपारः) उत्तम पालक होकर (अति पारयः भव) संकटों से पारकर्त्ता हो। तू (नः) हमारे लिये (सु-नीतिः) उत्तम नीति वाला और (वाम-नीतिः) सुन्दर नीति वाला (भव) हो।

उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमें (उरु) बड़े (लोकं) अभ्युदय और ज्ञान-प्रकाश को (अनु नेषि) प्राप्त करा। तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (नः) हमें (स्वर्वत्) सुखयुक्त (अभयं) भयरहित (ज्योतिः) प्रकाश और (स्वस्ति) कल्याण (अनु नेषि) प्राप्त करा। हम लोग (ते) तुझ (स्थविरस्य) वृद्ध की (ऋष्वा) बड़े २ (बाहू) बाहुओं को (बृहन्ता) बड़े (शरणा) आश्रयवत् (उपस्थेयाम) प्राप्त करें।

वरिष्ठे न इन्द्र वन्धुरे धा वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा ।
इषमा वक्षीषां वर्षिष्ठां मा नस्तारीन्मघवन्रायो अर्यः ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (वरिष्ठे) बड़े और उत्तम (वन्धुरे) प्रेमयुक्त बन्धन में (नः आ धाः) हमें रख और (वहिष्ठयोः) खूब सुख से वहन करने में समर्थ (अश्वयोः) दो घोड़ों के आश्रय पर जैसे रथ को सुख से ले जाते हैं वैसे ही (वहिष्ठयोः) राज्य भार को वहन करने वाले दो पुरुषों के आश्रय पर, हे (शतावन्) सैकड़ों ऐश्वर्यों के स्वामिन्! (इषां) सेनाओं में से (वर्षिष्ठाम् इषम्) खूब शरवर्षा करने वाली बड़ी सेना को (आ वक्षि) धारण कर और (इषां वर्षिष्ठाम् इषम्) अन्नों के बीच में से बढ़े हुए अन्न-सम्पदा को हमें दे। हे (मघवन्) ऐश्वर्य-स्वामिन्! तू (अर्यः) स्वामी (नः रायः) हमारे धनों को (मा तारीत्) नष्ट न कर।

इन्द्र मृळ मह्यं जीवातुमिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम् ।
यत्किञ्चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम् १०।२१

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! तू (मह्यं मृड) मुझे सुखी कर, (मह्यं जीवातुम् इच्छ) मेरे दीर्घ-जीवन की इच्छा कर। (मह्यं धियं धारां च) बुद्धि और वाणी दोनों को (अयसः धाराम् न) लोहे की बनी शस्त्र धारा के समान तीक्ष्ण कर (चोदय) सन्मार्ग में चला। (अहं) मैं (त्वायुः) तेरी इच्छा करता हुआ (यत् किं च इदं वदामि) यह जो कुछ भी कहूँ (तत् जुषस्व) उसे तू स्वीकार कर और (मा) मुझे (देववन्तं) उत्तम मनुष्यों का स्वामी (कृधि) कर। इत्येकविंशो वर्गः ॥

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ ११ ॥

भा०—मैं प्रजाजन (त्रातारम्) रक्षक, (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान्,

(अवितारम् इन्द्रम्) रक्षादि दाता, (शूरम्) शत्रुहिंसक, (इन्द्रम्) सेना के स्वामी, (सु-हवं) उत्तम नाम वाले पुरुष को (हवे-हवे) प्रति यज्ञ और संग्राम में (ह्वयामि) पुकारता हूँ और (शक्रं) शक्तिशाली (पुरु-हूतं) बहुतों से आह्वान-योग्य (इन्द्रं) शुभ गुणधारी पुरुष को मैं 'इन्द्र' नाम से कहता हूँ और (मघवा) धनवान् (इन्द्रः) ऐश्वर्यप्रद पुरुष (नः स्वस्ति धातु) हमें सुख दे।

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ १२ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्य दाता राजा (सुत्रामा) प्रजा का सुख से पालक, (स्व-वान्) अपने भृत्यादि का स्वामी (सु-मृडीकः) उत्तम सुखप्रद, (अवोभिः) रक्षा-साधनों, तृप्तिकारक अन्नों से (विश्व-वेदाः) समस्त ज्ञानों और धनों का प्राप्तकर्ता (भवतु) हो। वह (द्वेषः बाधतां) शत्रुओं को पीड़ित करे और हमें (अभयं कृणोतु) भय-रहित करे जिससे हम (सु-वीर्यस्य पतयः) उत्तम बल के स्वामी हों।

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥ १३ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (तस्य) उस (यज्ञियस्य) पूजा आदि के योग्य पुरुष के (सु-मतौ) शुभ बुद्धि और (भद्रे) कल्याणकारी (सौमनसे) मनन और व्यवहार के (अपि स्याम) अधीन रहें। (सः) वह (सु-त्रामा) सुखपूर्वक प्रजा-रक्षक (स्ववान्) धन आदि वाला (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (अस्मे द्वेषः) हमारे द्वेषी को (आरात् चित्) दूर से ही (सनुतः) सदा, (युयोतु) दूर करे।

अव त्वे इन्द्र प्रवतो नोर्मिर्गिरो ब्रह्माणि नियुतो धवन्ते।
उरू न राधः सवना पुरूण्यपो गा वज्रिन्युवसे समिन्दून् ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ऊर्मिः प्रवतः न) जल-स्रोत जैसे

नीचे की ओर जाता है वैसे ही (गिरः) स्तुतिकर्त्ताओं की वाणियां जन (ब्रह्माणि) समस्त वेद और धनैश्वर्य (नि-युतः) लक्षों की संख्या में वा युद्ध करने वाले नियुक्त अश्वादि, जन, (त्वे) तेरे अधीन (अव धवन्ते) चलते हैं। तू भी, हे (वज्रिन्) बलवन्! (पुरूणि सवनानि) बहुत ऐश्वर्यों को (ऊरू राधः न) बहुत धन के समान और (अपः) प्रजाजनों को (गाः) भूमियों, वाणियों और (इन्दून्) आह्लादक पुरुषों को भी (सं युवसे) अच्छी प्रकार देता है।

क ईं॑ स्तवत्कः पृ॑णात्को य॑जाते यदु॒ग्रमिन्म॒घवा॑ वि॒श्वहावे॑त्।
पादा॑विव प्र॒हर॑न्न॒न्यम॑न्यं कृ॒णोति॒ पूर्व॒मप॑रं॒ शची॑भिः ॥१५॥३२॥

भा०—(यत्) जो (मघवा) ऐश्वर्य का स्वामी (उग्रम् इत्) उग्र, समर्थ पुरुष को ही (विश्वहा) सदा (अवेत्) प्राप्त करे और जैसे (पादौ प्रहरन् इव) पैरों को चलाता हुआ पुरुष (पूर्वम् अपरं अन्यम्-अन्यम् कृणोति) पहले पैर को पीछे और दूसरे को आगे करता है वैसे ही जो (शचीभिः) अपनी बुद्धियों, शक्तियों द्वारा पूर्व पदाधिकारी को पद-च्युत और अनियुक्त पुरुष को पद पर नियुक्त करता है, (कः ईं स्तवत्) उसको कौन उपदेश करे, (कः पृणात्) उसको कौन प्रसन्न करे और उसका (कः यजाते) कौन साथ दे सकता है? यह वह जाने। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

शृ॒ण्वे वी॒र उ॒ग्रमु॑ग्रं दमा॒यन्न॒न्यम॑न्यमतिनेनी॒यमा॑नः।
ए॒ध॒मा॒न॒द्वि॒ळु॒भय॑स्य राजा॑ चोष्कूयते॒ विश॒ इन्द्रो॑ मनु॒ष्या॑न् ॥१६॥

भा०—(वीरः) वीर पुरुष (उग्रम् उग्रम्) प्रत्येक तेजस्वी पुरुष को (दमायन्) दमन करता हुआ और (अन्यम् अन्यम्) नाना व्यक्तियों को (अति नेनीयमानः) एक दूसरे से बढ़ाता हुआ, (एधमानद्विट्) बढ़ते हुए शत्रु से द्वेष करता हुआ (उभयस्य राजा) शासक, शास्य के बीच चमकता हुआ, (विशः) शासन में बसे (मनुष्यान्) मनुष्यों को वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान, पुरुष (चोष्कूयते) बुलाता है।

परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरेति।
अनानुभूतीरवधून्वानः पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति ॥ १७ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, राजा (पूर्वेषां) पूर्व विद्यमान अनुभवी लोगों की (सख्या) मित्रता के बल से वह (अनानुभूतीः) अपनी अनुभवशून्यताओं को (वितर्तुराणः) विनाश करता हुआ (परावृणक्ति) दूर करता है और (अपरेभिः) अन्य पुरुषों (अनानुभूतीः) अनुभव-रहित जनों को (अव-धून्वानः) दूर करता हुआ (एति) आगे बढ़ता है। इस प्रकार वह सूर्य तुल्य (पूर्वीः शरदः) पूर्व आयु के वर्षों को (तर्तरीति) व्यतीत करे।

रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश ॥१८॥

भा०—वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (रूपं रूपं) प्रत्येक रूप का (प्रति रूपं) प्रतिनिधि (बभूव) हो। (यस्य) इस राजा का (तत्) वह रूप (प्रति-चक्षणाय) प्रत्यक्ष देखने के लिये है। (इन्द्रः) वह ऐश्वर्य-वान् पुरुष (मायाभिः) नाना शक्तियों से (पुरु-रूपः ईयते) बहुत प्रकार का जाना जाता है। क्योंकि (अस्य) इसके अधीन (शता दश) हजारों (हरयः) मनुष्य (युक्ताः) नियुक्त रहते हैं।

युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति।
को विश्वाहा द्विषतः पक्ष आसत उतासीनेषु सूरिषु ॥ १९ ॥

भा०—जैसे (रथे) रथ में (हरिता) वेगवान् अश्वों को (युजानः) लगाता हुआ रथी विराजता है वैसे ही राजा (रथे) रमणीय, राष्ट्र में (हरिता) कार्यभार उठाने में समर्थ संचालकों को (युजानः) नियुक्त करता हुआ (त्वष्टा) सूर्य-समान तेजस्वी (इह) इस लोक में (भूरि राजति) बहुत प्रकाशित होता है। (कः) कौन अतेजस्वी पुरुष (विश्वाहा) सब दिनों (द्विषतः पक्षः) शत्रु सन्तापक होकर (आसते)

विराज सकता है। (उत) और (आसीनेषु सूरिषु) विद्वानों के विराजते हुए उनके बीच कौन तेजस्वी सिंहासन पर विराज सकता है।

अगव्यूति क्षेत्रमागन्म देवा उर्वी सती भूमिरंहूरणाभूत्।
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टावित्था सते जरित्र इन्द्र पन्थाम्॥२०॥२२

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो! यह (भूमिः) भूमि (उर्वी सती) विशाल होती हुई (अंहू-रणा) आने वाले प्राणियों से युद्ध और क्रीड़ा करने योग्य (अभूत्) रही है। इस भूमि में हम (अगव्यूति क्षेत्रम्) विना मार्ग के क्षेत्र, निवास-भूमि को (आगन्म) प्राप्त हों, हे (बृहस्पते) राष्ट्र-स्वामिन्! तू (गविष्टौ) भूमि के प्राप्त करने पर (प्र चिकित्स) अच्छी प्रकार गुण-दोष आदि जान। (इत्था) इस प्रकार (सते जरित्रे) सज्जन विद्वान् पुरुष के लिये, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (पन्थाम् प्र चिकित्स) मार्ग का ज्ञान कर। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः॥

दिवेदिवे सदृशीरन्यमर्धं कृष्णा असेधदप सद्मनो जाः।
अहन्दासा वृषभो वस्नयन्तोदव्रजे वर्चिनं शम्बरं च॥ २१॥

भा०—जैसे (जाः) उत्पन्न हुआ सूर्य (दिवे दिवे) प्रतिदिन (सदृशीः कृष्णाः) समान काली रात्रियों को (अप असेधत्) दूर करता है और (अन्यम् अर्धं) दूसरे आधे को (असेधत्) प्राप्त करता है और जैसे (वृषभः) वर्षा का मूल कारण सूर्य (उद-व्रजे) जल-मार्ग आकाश में (वस्नयन्ता) रहना चाहते हुए (वर्चिनं शम्बरं च) तेजोमय मेघ और जल दोनों को (अहन्) आघात करता है वैसे ही राजा भी (जाः) प्रकट होकर (दिवे-दिवे) प्रतिदिन (सदृशीः) एक समान (कृष्णाः) घोर प्रजा-पीड़ाकारिणी शत्रु सेनाओं को (सद्मनः) अपने स्थान से (अप असेधत्) दूर करे और (अन्यम्) दूसरे (अर्धम्) समृद्ध राष्ट्र को (असेधत्) प्राप्त करे। वह (वृषभः) बलवान् होकर (उद-व्रजे) जल-मार्ग, नदी आदि के तटों पर (वर्चिनं) तेजस्वी (शम्बरं) शान्तिनाशक (वस्नयन्ता) निवासादि चाहने वाले (दासा) शत्रु को (अहन्) दण्डित करे।

प्रस्तोक इन्नु राधंसस्त इन्द्र दश कोशयीर्दश वाजिनोंऽदात् ।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राधंः शाम्बरं वसु प्रत्यंग्रभीष्म ॥२२॥

भा०—हे (इन्द्रः) राजन् ! (प्र-स्तोकः इत् नु) तेरा स्तोता प्रजाजन ही (ते) तुझे (राधसः) धनैश्वर्य-पूर्ण (दश कोशयीः) खजानों से भरी दस भूमियों और (दश वाजिनः) अश्व, धनादि से युक्त दशों प्रकार के पदार्थों को भी (अदात्) देता है । (दिवः-दासात्) ज्ञान-प्रकाश और भूमि को तेरे हाथ सौंपने वाले दाता ब्राह्मणवर्ग से प्राप्त (अतिथिग्वस्य) अतिथिवत् पूज्य होकर वाणी, गौ, भूमि को प्राप्त करने वाले तेरे ही (राधः) धनैश्वर्य को (शाम्बरं वसु) मेघ के जल के समान (प्रति अग्रभीष्म) हम प्राप्त करें ।

दशाश्वान्दश कोशान्दश वस्त्राधिभोजना ।
दशो हिरण्यपिण्डान्दिवोदासादसानिषम् ॥ २३ ॥

भा०—मैं (दिवः-दासात्) कामना-योग्य ज्ञानप्रकाश और भूमि आदि पदार्थों के दाता से (दश अश्वान्) दश अश्व (दश कोषान्) दश कोश (दश अधि-भोजना) दस प्रकार के उत्तम भोजन और (वस्त्रा) पहनने के वस्त्र (दशो हिरण्य-पिण्डान्) दस सुवर्णादि के पिण्ड भी (असानिषम्) प्राप्त करूं ।

दश रथान्प्रष्टिमतः शतं गा अथर्वभ्यः ।
अश्वथः पायवेऽदात् ॥ २४ ॥

भा०—(अश्वथः) अश्व-सैन्यों का स्वामी राजा (अथर्वभ्यः) अहिंसक राज्य के पालक शासकों के लिये (प्रष्टि-मतः) पूछ कर काम करने के स्वभाव वाले, (दश रथान्) दस रथों (शतं च गाः) सौ भूमियां या सौ गौवें (पायवे) पालक के लिये (अदात्) देवे ।

महि राधो विश्वजन्यं दधानान् ।
भरद्वाजान्त्सार्ञ्जयो अभ्यंयष्ट ॥ २५ ॥ ३४ ॥

भा०—(साश्र्यः) न्याययुक्त राज्य-कार्यों में समर्थ पुरुषों का स्वामी (विश्वजन्यं) सर्वजनहितकारी (महि राधः) बड़े धन के (दधानान्) धारक (भरद् वाजान्) अन्नादि के द्वारा प्रजा-पालन में समर्थ पुरुषों को (अभि अयष्ट) आदर दे। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः॥

वन॑स्पते वी॒ड्व॑ङ्गो॒ हि भू॒या अ॒स्मत्स॑खा प्र॒तर॑णः सु॒वीरः॑।
गोभिः॒ सन्न॑द्धो असि वी॒ळय॑स्वास्था॒ता ते॑ जयतु॒ जेत्वा॑नि ॥२६॥

भा०—हे (वनस्पते) किरण-पालक सूर्य-समान तेजस्विन्! राजन्! विद्वन्! तू (वीडु-अङ्गः) शरीर और राज्य के सुदृढ़ अंगों वाला, (प्रतरणः) नौकावत् संकटों से पार उतारने वाला (सुवीरः) उत्तम वीर होकर (अस्मत् सखा भूयाः) हमारा मित्र हो। हे राजन्! तू (सन्नद्धः) अच्छी प्रकार तैयार होकर (गोभिः) बाण फेंकने वाली डोरियों से, (वीडयस्व, वीरयस्व) वीर कर्म कर। तू (आस्थाता असि) अध्यक्ष होकर विराज और (ते) तेरे अधीन सैन्य-वर्ग (जेत्वानि जयतु) विजय-योग्य शत्रु-सैन्यों को जीते।

दि॒वस्पृ॑थि॒व्याः पर्योज॒ उद्भृ॑तं॒ वन॒स्पति॑भ्यः॒ पर्याभृ॑तं॒ सहः॑।
अ॒पामो॒ज्मानं॒ परि॒ गोभि॒रावृ॑त॒मिन्द्र॑स्य॒ वज्रं॑ ह॒विषा॒ रथं॑ यज ॥२७

भा०—(दिवः) सूर्य और (पृथिव्याः) पृथिवी से (परि उद्भृतं ओज) उत्पन्न तेज, अन्न तथा (वनस्पतिभ्यः) वनस्पतियों से (परि आभृतं) प्राप्त (सहः) उत्तम बल को, हे राजन्! तू (यज) एकत्र प्राप्त कर और (इन्द्रस्य) सूर्य के (गोभिः) किरणों से (आवृतम्) आच्छादित (अपाम् ओज्मानं) जलों के बल-रूप (वज्रं) विद्युत रूप तेज और (रथं) उत्तम यानादि को भी (हविषा) ग्रहण करने के साधनों द्वारा (यज) सुसंगत कर। हे राजन्! तू (हविषा) अन्न, आदि के बल पर (इन्द्रस्य वज्रं) राजा के शस्त्र और (रथं) रथ या नाभि को जो (गोभिः परि आवृतम्) भूमियों से घिरा हो, उनको (यज) प्राप्त कर।

इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः।
सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥ २८ ॥

भा०—हे (देव) विजयेच्छुक! हे (रथ) रथवत् राष्ट्र-पालन को कन्धों ले चलने हारे राजन्! तू (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य-सम्पन्न राष्ट्र का (वज्रः) पराक्रम रूप है! तू (मरुताम् अनीकम्) समस्त मनुष्यों का सैन्यवत् प्रमुख है। तू (मित्रस्य गर्भः) मित्र-राजवर्ग के मध्य स्थित उनको वश करने वाला है, तू (वरुणस्य नाभिः) श्रेष्ठ पुरुष वर्ग का 'नाभि' उनके केन्द्र के समान है। (सः) वह तू (नः) हमारी (इमां) इस (हव्य-दातिम्) ग्रहण योग्य भेंट को (जुषाणः) सेवन करता हुआ (हव्या) ग्राह्य पदार्थों को (प्रति गृभाय) ले।

उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत्।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अप सेध शत्रून् ॥ २९ ॥

भा०—हे (दुन्दुभे) द्वन्द्व युद्ध में प्रकाशित वीर! हे शत्रु-नाशक! तू (पृथिवीम्) भूमिवासी (उत द्याम्) तेजस्विनी, व्यापार में लगी प्रजा को (उप श्वासय) आश्वासन और उनको जीवन-वृत्ति दे। (ते) तेरे अधीन (पुरुत्रा) बहुत प्रकार के (जगत्) जंगम प्राणीगण (विस्थितं) विविध प्रकार से स्थित होकर (मनुतां) तेरा मान करें। (सः) वह तू (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् और शत्रुनाशक भूमि पर कृषि के उत्पादक समृद्ध प्रजावर्ग और (देवैः) विद्वान् पुरुषों से (सजूः) मिलकर, उनके सहयोग से (शत्रून्) शत्रुओं को (दूराद् दवीयः) दूर से भी दूर तक (अपसेध) भगा दे।

आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा निः ष्टनिहि दुरिता बाधमानः।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीळयस्व ॥३०॥

भा०—हे (दुन्दुभे) नकारे के समान गर्जने हारे! तू शत्रुओं को (आ क्रन्दय) ललकार और रुला। तू (नः) हममें (बलं ओजः) बल,

पराक्रम (आ धाः) धारण करा और (दुरिता) व्यसनों को (बाधमानः) दूर करता हुआ, तू (निः स्तनिहि) गर्जना कर। (इतः) इस राष्ट्र से तू (दुच्छुनाः) दुष्ट कुत्तों के स्वभाव वाले शत्रुजनों को (अप प्रोथ) दूर भगा। तू (इन्द्रस्य) विद्युत् के (मुष्टिः) मुक्के के समान शत्रुसंहारक (असि) है। वह तू सदा (वीडयस्व) पराक्रम कर।

आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीति।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ३१।३५।७

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! तू (अमूः) उन दूर की और (इमाः) इन अपनी और पराई सेनाओं को (आ अज) दूर हटा और भेज (प्रति वर्त्तय, आवर्त्तय च) परे लौटा दे और अपनी ओर लौटा ले। (केतु-मत् दुन्दुभिः) ध्वजा से युक्त नक्कारा जैसे गर्जता है वैसे ही तू, राजा (वावदीति) बराबर अपनी सेनाओं को आज्ञा दे। (नः) हमारे (नरः) नायक जन (अश्व-पर्णाः) अश्वों पर चढ़कर वेग से जाने वाले (सञ्चरन्ति) साथ मिलकर चलें और (अस्माकं रथिनः) हमारे रथारोही (जयन्तु) विजय प्राप्त करें। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः॥ इति सप्तमोऽध्यायः॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

[४८]

शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम् ॥ देवता—१—१० अग्निः । ११, १२, २०, २१ मरुतः । १३—१५ मरुतो लिंगोक्ता देवता वा । १६—१९ पूषा । २२ पृश्निर्द्यावाभूमी वा देवताः ॥ छन्दः—१, ४, ५, १४ बृहती । ३, १९ विराड्बृहती । १०, १२, १७ भुरिग्बृहती । २ आर्ची जगती । १५ निचृदति जगती । ६, २१ त्रिष्टुप् । ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ८ भुरिक् त्रिष्टुप् । ९ भुरिग् नुष्टुप् । २० स्वराडनुष्टुप् । २२ अनुष्टुप् । ११, १६ उष्णिक् । १३, १८ निचृदुष्णिक् ॥

द्वाविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (वयम्) हम लोग (यज्ञे यज्ञे) प्रत्येक यज्ञ, परस्पर के सत्संग में (वः) आप लोगों के प्रति (गिरा गिरा च) प्रत्येक वाणी से (दक्षसे अग्नये) अग्नि के समान सब पापों और पापियों को भस्म करने वाले, व्यवहारज्ञ स्वामी या प्रभु के (अमृतम्) अविनाशी स्वरूप का (प्र-प्र) निरन्तर वर्णन करें, उत्तम पद के लिये प्रस्ताव करें । हे जिज्ञासु जनो ! मैं भी उसी (जातवेदसं) समस्त ज्ञानों के ज्ञाता, ऐश्वर्यों के स्वामी को (प्रियं मित्रं न) प्रिय मित्र के तुल्य ही (प्र-प्र शंसिषम्) प्रशंसा करूं ।

ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥ २ ॥

भा०—(सः हि न) वह निश्चय से (अस्मयुः) हमारा स्वामी, (तनूनाम्) हमारे शरीरों का (वाजेषु) संग्रामों में (अविता) रक्षक

(भुवत्) हो। वह (वृधः भुवत्) हमारा बढ़ाने हारा और (त्राता) पालक (भुवत्) हो। हम उस (ऊर्जः नपातम्) बल के पुत्र, बल को नष्ट न होने देने वाले नायक को प्रस्तुत करके (हव्य-दातये) कर आदि को देने के लिये तैयार रहें और अपना अंश नियम से उसे (दाशेम) देते रहें।

वृषा ह्यग्ने अजरो महान्विभास्यर्चिषा।
अजस्रेण शोचिषा शोशुचच्छुचे सुदीतिभिः सु दीदिहि ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (हि) क्योंकि (वृषा) सुखों का मेघवत् वर्षक और (अर्चिषा) विद्युत्वत् कान्ति से (वि भासि) प्रकाशित होता है, तू (अजरः) जीर्ण न होने वाला, (महान्) महान्, (अजस्रेण) अविनाशी, (शोचिषा) तेज से (शोशुचत्) चमकता हुआ, हे (शुचे) शुद्ध-स्वभाव! (सु-दीतिभिः) उत्तम कान्तियों से हमें (सु-दीदिहि) अच्छी प्रकार प्रकाशित कर।

महो देवान्यजसि यक्ष्यानुषक्तव क्रत्वोत दंसना।
अर्वाचः सीं कृणुह्यग्नेऽवसे रास्व वाजोत वंस्व ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! आप (महः) बड़े (देवान्) किरणों को सूर्यवत् (यजसि) संगत करते हो, (उत) और (दंसना) नाना कर्मों को भी (यक्षि) संगत करते हो, (तव क्रत्वा) तेरे कर्म-सामर्थ्य से (आनुषक्) निरन्तर हम भी मिलकर रहें। तू (सीम्) सब ओर से (अवसे) रक्षार्थ (देवान् अर्वाचः कृणुहि) बड़े देवों, विद्वानों को प्राप्त करा और (वाजा) नाना ऐश्वर्य (रास्व) दे (उत उ) और (वंस्व) न्याय से विभक्त कर।

यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्य पिप्रति।
सहसा यो मथितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सानवि ॥५॥१॥

भा०—जैसे (आपः) समुद्र-जल, (अद्रयः) मेघ (वना) सूर्य-

किरण और काष्ठ (ऋतस्य गर्भम्) तेज को अपने में धारण करने वाले अग्नि को (पिप्रति) अपने में विद्युत्, तेज, ताप आदि के रूप में धारते हैं और (यः) जो (नृभिः सहसा मथितः जायते) मनुष्यों से बलपूर्वक मथा जाकर प्रकट होता है, वह (पृथिव्याः अधि) पृथिवी और (अधि सानवि) अन्तरिक्ष के ऊपर भी विराजता है वैसे ही (यम्) जिस (ऋतस्य गर्भम्) न्याय व्यवहार के धारक पुरुष को (आपः) आप्तजन, (अद्रयः) मेघ-तुल्य उदार, पर्वत तुल्य अचल, क्षत्रिय वीर पुरुष और (वना) शत्रुहिंसक सैन्यगण, (पिप्रति) जिसको प्रसन्न करते, जिसकी शक्ति को बढ़ाते हैं और (यः) जो (नृभिः) नायक पुरुषों द्वारा (मथितः) वाद-विवाद से निर्णय पाकर (सहसा) अपने विजयी बल से (जायते) प्रकट होता है, वह (पृथिव्याः अधि सानवि) पृथिवी पर सूर्यवत् विराजता है। इति प्रथमो वर्गः ॥

आ यः पप्रौ भानुना रोदसी उभे धूमेन धावते दिवि। तिरस्तमो ददृश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरुषो वृषा श्यावा अरुषो वृषा ॥६॥

भा०—जैसे अग्नि (भानुना) सूर्यस्थ प्रकाश से (उभे रोदसी) आकाश, पृथिवी दोनों को (आ पप्रौ) व्यापता है और जो (धूमेन दिवि धावते) धूम से आकाश में जाता है और जो (श्यावासु ऊर्म्यासु) काली रातों में (तमः तिरः) अन्धकार को दूर करके (आ ददृशे) सब ओर दिखाई देता है वैसे ही (यः) जो (अरुषः) शत्रु-मर्मों पर आघात करने वाला पुरुष (भानुना) अपने तेज से (उभे रोदसी) अपनी और शत्रु की सेनाओं को (आपप्रौ) व्याप लेता है और जो (धूमेन) शत्रु को कंपा देने वाले सामर्थ्य से (दिवि) भूमि पर (धावते) आक्रमण करता है। (श्यावासु ऊर्म्यासु) श्याम-वर्ण की सस्य-श्यामला भूमियों में (तमः तिरः) शत्रु-दल को अन्धकारवत् दूर करके (वृषा) सूर्यवत् (आ) विराजता है, वही (अरुषः) रोष-रहित (वृषा) बलवान्, राज्य-

अबन्धक और प्रजा पर सुखों का वर्षक राजा (श्यावाः) समृद्ध प्रजाओं को (आपप्रौ) सब प्रकार से पूर्ण करता है ।

बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा । भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! जैसे अग्नि (बृहद्भिः अर्चिभिः) बड़ी ज्वालाओं और (शुक्रेण शोचिषा) निर्मल प्रकाश से (समिधानः) प्रकाशमान होता है वैसे ही हे (देव) तेजस्विन् ! विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! तू (बृहद्भिः) बड़े (अर्चिभिः) अर्चनीय गुणों और (शुक्रेण) शुद्ध (शोचिषा) तेज से (भरद्वाजे) ज्ञान आदि को धारण करते हुए राष्ट्र वा शिष्यादि में (समिधानः) प्रकाशित होता हुआ विराज । हे (यविष्ठ्य) अति बलशालिन् ! हे (शुक्र) कान्तिमन् ! तू (रेवत्) अन्नादि-सम्पन्न होकर (नः दीदिहि) हमें प्रकाशित कर । हे (पावक) पवित्रकर्तः ! तू (द्युमत्) ज्ञान-प्रकाश से युक्त होकर (नः दीदिहि) हमें प्रकाशित कर ।

विश्वासां गृहपतिर्विशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम् । शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाह्यंहसः समेद्धारं शतं हिमाः स्तोतृभ्यो ये च ददति ॥८॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! प्रभो ! राजन् ! (त्वम्) तू (मानुषीणाम् विश्वासां विशाम्) समस्त मानुष प्रजाओं में (गृहपतिः असि) गृह-स्वामीवत् उनके गृहों व स्त्री-पुत्रादि का पालक है । हे (यविष्ठ) बलशालिन् ! अति शत्रुहिंसक ! (ये च ददाति) जो तुझे कर आदि देते हैं उनको और (समेद्धारं) तुझे चमकाने और बढ़ाने वाले प्रजावर्ग को भी (पूर्भिः) नगर, प्रकोट आदि साधनों से (शतं हिमाः) सौ वर्षों तक उनकी (अंहसः पाहि) पाप, शत्रु आदि से रक्षा कर । (स्तोतृभ्यः) उपदेष्टाओं के हितार्थ उनके (समेद्धारं) बढ़ाने वाले को (शतं हिमाः पाहि) सौ बरसों तक पालन कर ।

त्वं नो॑ अग्ने कृत्या वसो राधां॑सि चोदय।
अस्य रा॒यस्त्वम॑ग्ने र॒थीर॑सि वि॒दा गा॒धं तु॒चे तु नः॥ ९ ॥

भा०—हे (वसो) सबमें बसने वाले प्रभो ! शिष्यादि को अधीन बसाने वाले आचार्य ! (त्वं) तू (क्रत्वा) रक्षा और ज्ञान-सामर्थ्य से, (नः राधांसि) हमें नाना ऐश्वर्य (चोदय) दे। हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तू (अस्य रायः) इस ऐश्वर्य का (रथीः असि) महारथी के तुल्य स्वामी है। तू (नः तुचे तु) हमारे पुत्रादि के लिये भी (गाधं विदाः) ऐश्वर्य और बुद्धि प्राप्त करा और (चोदय) उनको सन्मार्ग में प्रेरित कर।

पर्षि॑ तो॒कं तन॑यं प॒र्तृभि॒ष्ट्वमद॑ब्धै॒रप्र॑युत्वभिः।
अग्ने॒ हेळां॑सि दैव्या॑ युयोधि॒ नोऽदे॑वानि॒ ह्वरां॑सि च ॥१०॥२॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! प्रभो ! तू (अदब्धैः) अहिंसक दम्भादि-वृत्तियों से रहित, (अप्रयुत्वभिः) कभी पृथक् न होने वाले, (पर्तृभिः) पालक पुरुषों द्वारा (तनयं तोकं) पुत्र-पौत्रवत् प्रजाजन को (पर्षि) ज्ञान, धनादि से पूर्ण कर और (नः) हमारे (दैव्या) विद्वानों के प्रति उत्पन्न (हेडांसि) क्रोध आदि के भावों को (च) और (अदेवानि ह्वरांसि) अविद्वानों, दुष्टों के योग्य कुटिल कर्मों को (युयोधि) दूर कर। इति द्वितीयो वर्गः॥

आ स॑खायः सब॒र्दुघां॑ धे॒नुम॑जध्व॒मुप॒ नव्य॑सा॒ वचः॑।
सृ॒जध्व॒मन॑पस्फुराम्॥ ११ ॥

भा०—जैसे लोग (सबर्दुघाम् अनपस्फुराम् धेनुम् आ अजन्ति, आ सृजन्ति) दूध देने वाली, न मारने योग्य गौ को प्राप्त करते हैं और वध-बंधन आदि से मुक्त करते हैं, हे (सखायः) मित्रो ! आप लोग भी वैसे ही (सबर्दुघाम्) सुखदायक अन्न आदि को दोहन करने वाली, (अनपस्फुराम्) कभी नाश न होने वाली, (धेनुम्) वेदवाणी और भूमि की (नव्यसा) नये उपाय, अध्ययनाध्ययन तथा हलाकर्ष-

णादि से (आ भजध्वम्) प्राप्त करो, भूमि को जोतो और उत्तम (वचः आ सृजध्वम्) वचन बोलो। भूमि से (वचः=पचः) पका अन्न पैदा करो।

या शर्धाय मारुताय स्वभानवे श्रवोऽमृत्यु धुक्षत।
या मृळीके मरुतां तुराणां या सुम्नैरेवयावरी ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (या) जो भूमि गौ के समान ही (स्वभानवे) धनैश्वर्य से स्वयं चमकने वाले, तेजस्वी (शर्धाय) बलवान् शरीरादि के धारक, (मारुताय) मनुष्यों के स्वामी राजा, वा मनुष्यों के बसे राष्ट्र के लिये (अमृत्यु श्रवः) कभी न मरने वाले, क्षुधा-रूप मृत्यु के नाशक, यश और अन्न को (धुक्षत) देती है और (या) जो (मरुतां) मनुष्यों और (तुराणां) क्षिप्रकारी, शत्रुहिंसक वीर पुरुषों के (मृडीके) सुखकारी कार्य में लगी हो और (या) जो (सुम्नैः) सुखकारी कार्यों से (एव-यावरी) उत्तम उपायों द्वारा प्राप्त होती है उस भूमि को प्राप्त करो।

भरद्वाजायाव धुक्षत द्विता।
धेनुं च विश्वदोहसमिषं च विश्वभोजसम् ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वान् जनो! वह पूर्वोक्त वेदवाणी, विदुषी स्त्री और पृथ्वी रूप गौ, (भरद्-वाजाय) ज्ञान-ऐश्वर्य के धारक के लिये (द्विता) दोनों पदार्थ (अव धुक्षत) प्रेमपूर्वक देती है, एक तो (विश्वदोहसं धेनुं च) वह समस्त सुखप्रद वाणी का उपदेश करती है और (विश्वभोजसम् इषं च) समस्त विश्व के पालक भोजन-योग्य अन्न भी देती है। हे विद्वान् पुरुषो! आप सुखों के देने और पालन करने वाली दोनों प्रकार की (धेनुं) वाणी और गोवत् भूमि का और (इषं च) अन्न एवं सेनादि का (अव धुक्षत) दोहन करो और ऐश्वर्यादि प्राप्त करो।

तं व इन्द्रं न सुक्रतुं वरुणमिव मायिनम्।
अर्यमणं न मन्द्रं सृप्रभोजसं विष्णुं न स्तुष आदिशे ॥ १४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! मैं (आदिशे) शासन-कार्य के (इन्द्रं न) विद्युत् के समान (सु-क्रतुं) उत्तम कर्मकुशल, (वरुणम्) सबको आवरण करने में समर्थ, (मायिनम्) बुद्धिचतुर, (अर्यमणं न) मनुष्यों को नियम में बांधने वाले पुरुष के समान (मन्द्रं) स्तुत्य और (विष्णुं न) व्यापक प्रभु के समान (सप्र-भोजसं) प्राप्त शरणागत-रक्षक (तं) उस पुरुष की (स्तुषे) स्तुति करता हूँ।

त्वेषं शर्धो न मारुतं तुविष्वण्यनर्वाणं पूषणं सं यथा शता।
सं सहस्रा कारिषच्चर्षणिभ्य आ आविर्गूळ्हा वसू करत्
सुवेदा नो वसू करत् ॥ १५ ॥

भा०—(सुवेदाः) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष (तुविष्वणि) बहुत शब्द करने वाला (त्वेषं) दीप्तियुक्त (शर्धः) शत्रुहिंसक, शस्त्र (मारुतं शर्धः न) वायुओं के बल के समान घोर शब्दकारी (कारिषत्) बनवाये और वह (अनर्वाणं करत्) अश्वादि-रहित सामान्य प्रजावर्ग को भी राष्ट्र का (पूषणं) पोषक बनावे। (यथा) जिससे, वह (चर्षणिभ्यः) मनुष्यों के हितार्थ (शता) सैकड़ों और (सहस्रा) हजारों (वसू) ऐश्वर्यों को (सम् कारिषत्) संग्रह करे और (सु-वेदाः) उत्तम वैज्ञानिक पुरुष (नः) हमारे लिये सैकड़ों-सहस्रों (गूढा वसू) गुप्त ऐश्वर्यों को भी (आविः करत्) प्रकट करे।

आ मा पूषन्नुप द्रव शंसिषं नु ते अपिकर्ण आघृणे।
अघा अर्यो अरातयः ॥ १६ ॥ ३ ॥

भा०—हे (पूषन्) राष्ट्र के पोषक ! हे (आ-घृणे) सब ओर से तेजस्विन् ! दयाशील ! तू (मा आ द्रव) मुझे आदरपूर्वक प्राप्त हो। (उप द्रव) समीप आ। (अपि-कर्णे) तेरे कान के समीप (शंसिषम्) तुझे मैं उपदेश करता हूँ। तू (अर्यः) प्रजा का स्वामी होकर (अरातयः) कर न देने वाले और अदानी दुष्टजनों को (अघाः) दण्डित कर। इति तृतीयो वर्गः ॥

मा काकम्बीरमुद्वृहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः ।
मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः ॥ १७ ॥

भा०—हे राजन् ! हे विद्वन् ! तू (काकं-बीरम्) काक आदि पक्षियों के पोषक (वनस्पतिम्) वृक्ष-तुल्य (काकं-बीरम्) क्षुद्र जनों के पालक पुरुष को (मा उद् वृहः) मत उखाड़ । (अशस्तीः) अयुक्त वचन वालों को, बुरी घासों के समान (वि नीनशः हि) अवश्य नष्ट कर । तू (सूरः) प्रजा-शासक, सूर्यवत् तेजस्वी होकर (वेः चन ग्रीवाः आदधते) व्याध जैसे पक्षियों की गरदन पकड़ते और उसे दुःख देते हैं, तू (एवा) वैसे ही (आ चन) हमारी गर्दनें मत पकड़ (उत) और (मा अहः) मत मार ।

दृतेरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम् ।
अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दधन्वतः ॥ १८ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! (दधन्वतः) धारण करने वाले, (अच्छिद्रस्य) छिद्ररहित (दृतेः) पात्र के समान (दधन्वतः) प्रजा का पोषण करते हुए (अच्छिद्रस्य) प्रजा का व्यर्थ छेदन भेदन न करने वाले, (दधन्वतः) धनवान्, भू-स्वामी, (दृतेः) शत्रु-विदारक की (सख्यम्) मित्रता (अवृकम् अस्तु) भेड़िये के समान छल से युक्त, न हो ।

परो हि मर्त्यैरसि समो देवैरुत श्रिया ।
अभि ख्यः पूषन् पृतनासु नस्त्वमवा नूनं यथा पुरा ॥ १९ ॥

भा०—हे (पूषन्) राष्ट्र-पालक ! तू (मर्त्यैः) मनुष्यों सहित (परः) सबका पालक (असि) है (उत) और (श्रिया) लक्ष्मी से (देवैः समः असि) तेजस्वी, धनाढ्य पुरुषों के तुल्य है । तू (पृतनासु) संग्रामों के अवसरों वा सेनाओं के बीच (नः अभि ख्यः) हमें देख और (यथा पुरा) पूर्व के समान (नूनं) अवश्य (त्वं नः अव) तू हमारी रक्षा कर ।

वामी वामस्यं धूतयः प्रणींतिरस्तु सूनृतां ।
देवस्यं वा मरुतो मर्त्यस्य वेजानस्यं प्रयज्यवः ॥ २० ॥

भा०—हे (धूतयः) शत्रुओं को कंपाने हारे, (प्र-यज्यवः) उत्तम दान, यज्ञ करने वाले, (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! (वामस्य) श्रेष्ठ (देवस्य) दानशील, (वा) और (ईजानस्य) यज्ञशील (मर्त्यस्य) मनुष्य की (सूनृता) उत्तम सत्यवाणी और (प्र-नीतिः) उत्तम नीति (वामी अस्तु) सर्व-प्रिय हो ।

सद्यश्चिद्यस्यं चर्कृतिः परि द्यां देवो नैति सूर्यः । त्वेषं शवों दधिरे नामं यज्ञियं मरुतो वृत्रहं शवो ज्येष्ठं वृत्रहं शवः ॥ २१ ॥

भा०—(द्याम् परि सूर्यः नः) आकाश में जैसे सूर्य उदय होता है वैसे जो (देवः) तेजस्वी राजा (द्यां परि एति) भूमि पर विचरता है और (यस्य चित् सद्यः चर्कृतिः) जिसका कर्म-सामर्थ्य शीघ्र फल देता है, वह पुरुष तेजस्वी होता है । उसके अधीन ही (मरुतः) वीर मनुष्य (त्वेषं) दीप्तियुक्त (शवः) बल, (वृत्रहं नाम) शत्रु-हननकारी नाम और (यज्ञियं) यज्ञ, संगठन के (शवः) बल को (दधिरे) धारें, क्योंकि (वृत्रहं शवः) विघ्नकारी शत्रु का नाशक बल ही (ज्येष्ठं) सबसे श्रेष्ठ है ।

सकृद्ध द्यौरंजायत सकृद्भूमिरजायत ।
पृश्न्यां दुग्धं सकृत्पयस्तदन्यो नानु जायते ॥ २२ ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (द्यौः सकृत् अजायत) सूर्य जैसे एक बार उत्पन्न होता है, (भूमिः सकृत् अजायत) और भूमि भी एक बार उत्पन्न होती है । (पृश्न्याः दुग्धं पयः सकृत्) भूमि से दोहन-योग्य अन्न तथा अन्तरिक्ष से दोहन-योग्य वृष्टि-जल भी वर्ष में एक ही बार होता है । (अन्यः) दूसरा जो होता भी है वह (न अनु जायते) उसके समान नहीं होता, वैसे ही तेजस्वी पुरुष एक ही बार अभिषिक्त हो । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[४१]

ऋजिश्वा ऋषिः ॥ विश्वे देवा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, १०, ११ त्रिष्टुप् । ५, ६, ९, १३ निचृत्त्रिष्टुप् । ८, १२ विराट् त्रिष्टुप् । २, १४ स्वराड् पंक्तिः । ७ ब्राह्म्युष्णिक् । १५ अतिजगती ।

पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभिर्गीर्भिर्मित्रावरुणा सुम्नयन्ता ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः ॥१॥

भा०—(सु-व्रतं) उत्तम व्रत-धारक (जनं) प्रजाजन को (नव्यसीभिः गीर्भिः) नयी से नयी, विद्याओं वा वाणियों से (सुम्नयन्ता मित्रावरुणा) सुख देते हुए स्नेहयुक्त और कुपथ से वारक मित्र और वरुण अध्यापक और उपदेशक, ब्राह्मण और क्षत्रिय, दोनों की मैं (स्तुषे) स्तुति करता हूं । (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, (मित्रः) प्रजा को मरण से बचाने वाला, (अग्निः) अग्रणी पुरुष तीनों ही (सु-क्षत्रासः) उत्तम, क्षात्रबल और धन से युक्त हैं । (ते) वे (आ गमन्तु) आवें, (ते इह) वे यहां हमारे वचन (श्रुवन्तु) श्रवण करें ।

विशोविश ईड्यमध्वरेष्वदृप्तक्रतुमरतिं युवत्योः ।
दिवः शिशुं सहसः सूनुमग्निं यज्ञस्य केतुमरुषं यजध्यै ॥ २ ॥

भा०—(विशः विशः) प्रत्येक प्रजा में (ईड्यम्) स्तुति-योग्य, (अध्वरेषु) हिंसारहित, कार्य-व्यवहारों में, (अदृप्तक्रतुम्) कर्म करने पर गर्व-रहित, (युवत्योः) युवा-युवती दोनों में (दिवः) पुत्र कामना वाली स्त्री और (सहसः) बलवान् पुरुष दोनों के (सुनूम्) पुत्र (अग्निम्) अग्नि-समान तेजस्वी, (अरतिम्) विषय में न रमने वाले, (यज्ञस्य केतुम्) लेन-देन के व्यवहार के ज्ञापक और (अरुपं) रोष-रोहित पुरुष की (यजध्यै) आदर के लिये स्तुति करूं ।

अरुषस्य दुहितरा विरूपे स्तृभिरन्या पिपिशे सूरो अन्या ।
मिथस्तुरा विचरन्ती पावके मन्म श्रुतं नक्षत ऋच्यमाने ॥ ३ ॥

भा०—(अरुषस्य) जैसे प्रदीप्त सूर्य के (दुहितरा) पुत्र-पुत्रियों के समान (विरूपे) एक दूसरे से भिन्न-रूप होकर भी उनमें से (अन्या) एक (स्तृभिः पिपिशे) नक्षत्रों से शोभित होती है और (अन्या सूरः) दूसरे को सूर्य प्रकाशित करता है, वे दोनों रात और दिन जैसे (मिथः-तुरा) परस्पर मिलने को त्वरावान् होते हुए (पावके) पवित्र रूप होकर (वि-चरन्ती) विविध रूप में गति करते हुए रहते हैं वैसे ही (अरुषस्य) तेजस्वी, आचार्य के (दुहितरा) ज्ञान का दोहन करने वाले, शिष्य-शिष्या, (वि-रूपे) भिन्न २ कान्तियों वाले हों, उनमें से (अन्या) एक (स्तृभिः) वस्त्रों से (पिपिशे) सजे, (अन्या सूरः) अन्य सूर्यवत् कान्तिमान् हो। वे दोनों (पावके) पवित्र होकर (मिथः-तुरा) एक दूसरे से मिलने के लिये त्वरावान्, अति उत्सुक (वि-चरन्ती) व्रतादि का आचरण करते हुए हों। वे दोनों (ऋच्यमाने) स्तुति-योग्य होते हुए (श्रुतं मन्म) श्रवण किये गये, मनन-योग्य ज्ञान को (नक्षतः) प्राप्त हों।

प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम्।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥४॥

भा०—(मनीषा वायुम्) जैसे बुद्धि चेतन आत्मा को प्राप्त होती है वैसे ही (बृहती मनीषा) बड़ी, बुद्धिमती स्त्री (बृहद्-रयिं) बड़े ऐश्वर्य युक्त, (विश्व-वारं) सब प्रकार से वरण-योग्य (रथ-प्राम्) रथ से आने वाले (वायुम्) वायुवत् बलवान् पुरुष को (अच्छ) उत्तम रीति से (प्र इयक्षसि) प्राप्त हो। हे (प्र-यज्यो) उत्तम सम्बन्ध में बंधने हारे पुरुष! तू (कविः) विद्वान् और (द्युतद्-यामा) चमचमाते रथ वाला, (नियुतः) सब प्रकार से मिलने वाली स्त्री का (पत्यमानः) पति होना चाहता हुआ (कविम्) बुद्धिमती स्त्री को (प्र इयक्षसि) प्राप्त कर।

स मे वपुश्छदयदश्विनोर्यो रथो विरुक्मान्मनसा युजानः।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—(यत् रथः) जो श्रेष्ठ व्यवहार (विरुक्मान्) विविध रुचियों से समृद्ध, (मनसा युजानः) चित्त से जुड़ने वाला है (येन) जिससे (नरा) स्त्री-पुरुष दोनों (न-असत्या) असत्याचरण न करते हुए, (तनयाय त्मने च) पुत्र और आत्मा के हितार्थं (वर्त्तिः याथः) जीवन-मार्ग व्यतीत करते हैं वह (विरुक्मान् रथः) विशेष कान्तिमान् रथ के तुल्य आश्रय (मे वपुः च्छदयत्) मेरे शरीर को बल देता हुआ उसकी रक्षा करे। इति पञ्चमो वर्गः ॥

पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः पुरीषाणि जिन्वतमप्यानि।
सत्यंश्रुतः कवयो यस्य गीर्भिर्जगतः स्थातर्जगदा कृणुध्वम् ॥६॥

भा०—जैसे (पर्जन्य-वाता वृषभा) मेघ लाने और वर्षा करने वाले सूर्य, वायु दोनों (पृथिव्याः) पृथिवी के लिये (अप्यानि पुरीषाणि जिन्वतः) समुद्र-जलों को लाते हैं वैसे, हे (वृषभा) वीर्य-सेचन-समर्थ स्त्री-पुरुषो! और (पर्जन्यवाता) मेघ, वायु के समान सुखवर्षक! आप दोनों (पृथिव्याः) पृथिवी (अप्यानि) जलों से उत्पन्न (पुरीषाणि) ऐश्वर्यों को (जिन्वतम्) प्राप्त करो। हे (कवयः) विद्वानो! (यस्य सत्यश्रुतः) सत्योपदेश को सुनने वाले जिस विद्वान् की (गीर्भिः) वाणियों से (जगतः) जंगम और (स्थातः) स्थावर संसार का ज्ञान होता है आप लोग उसके (आ) अधीन ही (जगत्) इस जंगम संसार को (कृणुध्वम्) करो।

पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात्।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ॥ ७ ॥

भा०—(पावीरवी) आचारादि की पवित्रकर्त्री, (कन्या) कन्या (चित्रायुः) आश्चर्यजनक जीवन वाली, (सरस्वती) ज्ञान-युक्त, (वीरपत्नी) वीर की स्त्री, (ग्नाभिः) वेद-वाणियों से (धियं धात्) यज्ञ आदि कर्म करे। वह (सजोषाः) समान प्रीतियुक्त होकर (गृणते) मुझ स्तोता को (दुराधर्षं) दृढ़ (शरणं) गृह और (शर्मं) सुख (यंसत्) दे।

पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानळर्कम् ।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियं सीषधाति प्र पूषा ॥ ८ ॥

भा०—(पूषा) पोषक जन, (कामेन कृतः) कामना से प्रेरित होकर (वचस्या) उत्तम वाणी से (पथः-पथः) प्रत्येक मार्ग में (परि-पतिं अर्कम् अभ्यानड्) पालक स्वामी से प्राप्त अन्न वा आदर प्राप्त करे। (सः) वह (नः) हमें (चन्द्राग्राः) आह्लादजनक वचनों सहित (शुरुधः=आशु-रुधः, शुग्-रुधः) अति शीघ्र पापादि प्रवृत्तियों को रोकने वाली वाणियों का (रासत्) उपदेश करे, वह (धियं-धियं) प्रत्येक कार्य और ज्ञान को (प्र सीषधाति) अच्छी प्रकार करे।

प्रथमभाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सुगभस्तिमृभ्वम् ।
होता यक्षद्यजतं पस्त्यानामग्निस्त्वष्टारं सुहवं विभावा ॥ ९ ॥

भा०—(होता) दानशील (अग्निः) तेजस्वी विद्वान् (वि-भा-वा) विशेष कान्तिमान् होकर (प्रथम-भाजं) पूज्यों का सेवन करने वाले, (यशसं) यशस्वी, (वयोधां) दीर्घायु-धारक, (सुपाणिं) उत्तम हाथ वाले, (देवम्) दानशील, (सु-गभस्तिम्) सूर्यवत् उत्तम बाहु वाले और उत्तम किरणवान्, (ऋभ्वम्) ज्ञान से युक्त (यजतं) सत्संग-योग्य, (त्वष्टारं) संशय-छेत्ता, (पस्त्यानां) प्रजाओं के बीच (सु-हवं) सुगृहीत नामधेय गुरुजन का (यक्षत्) सत्कार करे। भेंट आदि दे।

भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ ।
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्नमृधग्घुवेम कविनेषितासः ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—हे मनुष्य ! (आभिः गीर्भिः) इन वाणियों से (भुवनस्य पितरं) संसार-पालक (रुद्रं) रोगों के दूरकर्त्ता प्रभु को (दिवा) दिन में और उसी (रुद्रम्) दुष्ट-रोदक प्रभु को (अक्तौ) रात्रि में भी (वर्धय) बढ़ा और हम (कविना) विद्वान् द्वारा (इषितासः) प्रेरित होकर (बृह-न्तम्) बड़े (ऋष्वम्) दर्शनीय (अजरम्) अविनाशी, (सु-सुम्नम्)

उत्तम सुखमय प्रभु को (ऋधक् हुवेम) सत्य-रूप में स्तुति करें।
इति षष्ठो वर्गः ॥

आ युवानः कवयो यज्ञियासो मरुतो गन्त गृणतो वरस्याम्।
अचित्रं चिद्धि जिन्वथा वृधन्त इत्था नक्षन्तो नरो अङ्गिरस्वत् ११

भा०—(अङ्गिरस्वत् मरुतः चित् अचित्रं जिन्वन्ति) दीप्ति-युक्त किरणों के समान वायुगण जैसे ओषधि-रहित क्षेत्र को जल वृष्टि से तृप्त करते हैं वैसे, हे (युवानः कवयः) युवा विद्वान् पुरुषो! हे (नरः) नेता जनो! आप (अंगिरस्वत्) अग्नियों के तुल्य (नक्षन्तः) स्थान २ पर जाते हुए (अचित्रं हि जिन्वथ) साधारण जन को ज्ञान से तृप्त करो और (वृधन्तः) बढ़ते-बढ़ाते हुए, (यज्ञियासः) सत्कार-योग्य होकर (गृणतः) उपदेष्टा पुरुष की (वरस्यां) उत्तम वाणी को (गन्त) ग्रहण करो।

प्र वीराय प्र तवसे तुरायाजा यूथेव पशुरक्षिरस्तम्।
स पिस्पृशति तन्वि श्रुतस्य स्तृभिर्न नाकं वचनस्य विपः ॥१२॥

भा०—(पशुरक्षिः अस्तम् यूथा इव) पशु रक्षक जैसे पशु-रेवड़ को घर हांक ले जाता है वैसे ही तू (वीराय) विविध विद्या-दाता, (तवसे) बलवान्, (तुराय) शत्रुहिंसक पुरुष के लिये (प्र अज) स्तुति प्रकट कर, (नाकं स्तृभिः न) अन्तरिक्ष जैसे नक्षत्रों से मण्डित होता है वैसे ही (सः विपः) वह विद्वान् भी (तन्वि स्तृभिः) शरीर पर वस्त्रों से शोभित होकर (श्रुतस्य वचनस्य) श्रवण-योग्य, वचन को (पिस्पृशति) सुने।

यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद्विष्णुर्मनवे बाधिताय।
तस्य ते शर्मन्नुपदद्यमाने राया मदेम तन्वा३ तना च ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो (विष्णुः) व्यापक प्रभु (बाधिताय मनवे) कर्म-बन्धनों से पीड़ित, ज्ञानी, चेतन जीवगण के उपकार हेतु (त्रिः चित्

पार्थिवानि रजांसि) तीनों पार्थिव आदि लोक (वि ममे) विचरता है, हे प्रभो ! (तस्य ते) उस तेरे (उपदद्यमाने) दिये गये (शर्मन्) शरण में हम (तना) विस्तृत (राया) ऐश्वर्य और (तन्वा) शरीर से (मदेम) सुखी हों।

तन्नोऽहिर्बुध्न्यो अद्भिर्कैस्तत्पर्वतस्तत्सविता चनो धात् ।
तदोषधीभिरभि रातिषाचो भगः पुरंन्धिर्जिन्वतु प्र राये ॥ १४ ॥

भा०—(बुध्न्यः अहिः) अन्तरिक्ष में उत्पन्न मेघ, (पर्वतः) पालक मेघ वा पर्वत (सविता) और सूर्य (नः) हमें (तत् तत् तत्) उन २ नाना प्रकार का (चनः) अन्न (अद्भिः) जलों और (अर्कैः) सूर्य-किरणों सहित (धात्) दे। (तत्) वह (राति-साचः) दानशील पुरुष (भगः) ऐश्वर्यवान् और (पुरन्धिः) जगत् को एक पुर के समान धारण करने वाला प्रभु (ओषधीभिः) ओषधियों द्वारा (चनः) अन्न को (अभि जिन्वतु) खूब बढ़ावे और (राये प्रजिन्व) ऐश्वर्य के लिये अन्न को बढ़ावे।

नू नो रयिं रथ्यं चर्षणिप्रां पुरुवीरं मह ऋतस्य गोपाम् ।
क्षयं दाताजरं येन जनान्त्स्पृधो अदेवीरभि च क्रमाम
विश आदेवीरभ्यश्नवाम ॥ १५ ॥ ७ ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वानो ! आप (नः) हमें (रथ्यं) रथ-योग्य (चर्षणी-प्राम्) मनुष्यों को पूर्ण करने वाले (पुरुवीरं) बहुत से वीरों से युक्त, (महः ऋतस्य) बड़े धनैश्वर्य के (गोपाम्) रक्षक (अजरं) अविनाशी (क्षयं) गृह (दात) दो, (येन) जिससे हम (स्पृधः जनान्) स्पर्धा वाले मनुष्यों और (अदेवीः) शुभ गुणों से रहित दुष्ट प्रजाओं को (अभि क्रमाम) पराजित करें और (आदेवीः) सब प्रकार से उत्तम गुण-युक्त प्रजाओं को (अभि अश्नवाम) प्राप्त करें। इति सप्तमो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

[५०]

ऋजिश्वा ऋषिः ॥ विश्वे देवा देवता ॥ छन्दः—१, ७ त्रिष्टुप् । ३, ५, ६, १०, ११, १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ८, १३ विराट्त्रिष्टुप् । २ स्वराट् पंक्तिः । ९ पंक्तिः । १४ भुरिक् पंक्तिः । १० निचृत्पंक्तिः ॥

पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

हुवे वो देवीमदितिं नमोभिर्मृळीकाय वरुणं मित्रमग्निम् ।
अभिक्षदामर्यमणं सुशेवं त्रातॄन्देवान्त्सवितारं भगं च ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! मैं (वः) आप के (मृडीकाय) सुख के लिये (अदितिम्) अखण्डित-चरित्रा, (देवीम्) तेजस्विनी स्त्री को (नमोभिः) सत्कारों सहित (हुवे) अपने यहां बुलाऊं । इसी प्रकार (वरुणं) कष्टों के वारक (मित्रम्) स्नेहवान्, (अग्निम्) अग्रणी, (अभिक्ष दाम्, अभि-क्षदाम्=अभिक्षदाम्) कुपात्र में भिक्षा न देने वाले, (अर्यमणं) शत्रुओं के नियन्ता, (सुशेवं) उत्तम सुखदाता, (सवितारं) तेजस्वी और उत्पादक पिता, माता, गुरु और (भगं) सेवन योग्य ऐश्वर्यवान् पुरुष, (त्रातॄन् देवान्) पालक वीर पुरुषों को भी मैं (नमोभिः हुवे) आदर-युक्त वचनों से बुलाऊं ।

सुज्योतिषः सूर्य दक्षपितॄननागास्त्वे सुमहो वीहि देवान् ।
द्विजन्मानो य ऋतसापः सत्यः स्वर्वन्तो यजता अग्निजिह्वाः ॥२॥

भा०—सूर्य जैसे (सु-महः) उत्तम तेज-युक्त (दक्ष-पितॄन्) दाहक सामर्थ्य से युक्त (सु-ज्योतिषः) उत्तम कान्तियुक्त (देवान्) किरणों को प्राप्त है वैसे, हे (सूर्य) सूर्य-समान तेजस्विन् ! विद्वन् ! तू भी (सु-ज्योतिषः) उत्तम ज्ञान-प्रकाश से युक्त (दक्ष-पितॄन्) चतुर माता-पिता और गुरुजनों, (देवान्) ज्ञान, धन, वस्त्रादि के दाता (सुमहः) उत्तम पूजनीय पुरुषों को (अनागास्त्वे) पाप-मुक्त होने के लिये (वीहि) प्राप्त हो । और (ये) जो (द्वि-जन्मानः) माता-पिता और गुरु द्वारा जन्म

प्राप्त कर द्विज हों, (ऋत-साप:) उन सत्यवादी (सत्याः) सत्य-कर्मा, (यजताः) सत्संग-योग्य और (अग्नि-जिह्वाः) अग्नि-समान वाणी द्वारा यथार्थ के प्रकाशक, (स्वर्वन्तः) सुख और उत्तम ज्ञान के धारक जनों को [प्राप्त हो ।]

उत द्यावापृथिवी क्षत्रमुरु बृहद्रोदसी शरणं सुषुम्ने ।
महस्करथो वरिवो यथा नोऽस्मे क्षयाय धिषणे अनेहः ॥ ३ ॥

भा०—(उत) और, हे (द्यावा पृथिवी) सूर्य-पृथिवी तुल्य प्रजा-राजा, माता-पिता जनो ! आप (उरु क्षत्रम् करथः) बड़ा बल उत्पन्न करो। हे (रोदसी) एक दूसरे को धर्म में बांधने वाले स्त्री-पुरुषो ! हे (सु-सुम्ने) सुखी जनो ! आप (बृहत् शरणं) बड़ा गृह (करथः) बनाओ। हे (धिषणे) धारक जनो ! आप (नः) हमारे लिये (यथा महः वरिवः करथः) जैसे बड़ा भारी धन और सेवादि करते हैं वैसे ही (नः क्षयाय) हमारे निवासार्थ (अनेहः) पाप रहित गृह, राज्य-प्रबन्धादि करो ।

आ नो रुद्रस्य सूनवो नमन्तामद्या हूतासो वसवोऽधृष्टाः ।
यदीमर्भे महति वा हितासो बाधे मरुतो अह्वाम देवान् ॥ ४ ॥

भा०—(यत् ईम्) जो कोई (अर्भे महति वा) छोटे वा बड़े कार्य में (हितासः) नियुक्त हैं ऐसे (रुद्रस्य सूनवः) दुष्टरोदक सेनापति के अधीन उसके पुत्रवत् आज्ञापालक (वसवः) राष्ट्र में बसे, (अधृष्टाः) विनीत हैं, वे (अद्य) आज (नः आ नमन्ताम्) हमें विनयपूर्वक प्राप्त हों । हम उन (देवान्) विजयेच्छुक (मरुतः) मनुष्यों को (बाधे) दुःखादि के समय (अह्वाम) बुलावें, वे हमें कष्ट से पार करें ।

मिम्यक्ष येषु रोदसी नु देवी सिषक्ति पूषा अभ्यर्धयज्वा ।
श्रुत्वा हवं मरुतो यद्ध याथ भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते ॥५॥८॥

भा०—जैसे (पूषा मरुत्सु देवी रोदसी मिम्यक्ष सिषक्ति च) सूर्य वायुओं के आश्रय पर आकाश और पृथिवी को वृष्टि से सींचता है,

जैसे (येषु) जिन विद्वानों का आश्रय लेकर (अभ्यर्ध-यज्वा) समृद्ध भाग देने वाला, (पूषा) प्रजा-पालक राजा (रोदसी देवी) दुष्टरोदक राजा वा सेनापति को विजयशील और सर्व सुखदात्री सेना और प्रजा दोनों पर (मिम्यक्ष) ऐश्वर्य-सेचन करता और (सिपक्ति) दोनों को मिलाये रखता है और (यत् ह) जो (मरुतः) वीर पुरुष (प्र-विक्ते) अच्छी प्रकार से विवेचित (अध्वनि) मार्ग में (रेजन्ते) चलते हैं, हे मनुष्यो ! (भूमौ) इस भूमि पर आप उनका (हवं श्रुत्वा) उपदेश सुन कर (याथ) सन्मार्ग पर चलो । इत्यष्टमो वर्गः ॥

अभि त्यं वीरं गिर्वणसमर्चेन्द्रं ब्रह्मणा जरितर्नवेन ।
श्रवदिद्धवमुप च स्तवानो रासद्वाजाँ उप महो गृणानः ॥ ६ ॥

भा०—हे (जरितः) उपदेशक विद्वन् ! जो (गृणानः) उपदेश देता हुआ (महः वाजान् उप रासत्) बड़े २ उत्तम ज्ञानों को कहता और (स्तवानः) उपदेश किया जाता हुआ (त्यम्) उस ग्राह्य ज्ञान को (उप श्रवत् च) गुरु के समीप सुनता है (त्यं वीरम्) उस वीर, विविध विद्योपदेष्टा, (गिर्वणसं) वाणी-प्रदाता, (इन्द्रं) ज्ञानद्रष्टा आचार्य को (नवेन ब्रह्मणा) नवोत्पन्न अन्न और धन से प्रथम विद्वान् उपदेष्टा गुरु की अर्चना करनी चाहिये । वे विद्वान् ज्ञानोपदेश किया करें ।

ओमानमापो मानुषीरमृक्तं धात तोकाय तनयाय शं योः ।
यूयं हि ष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः ॥ ७

भा०—हे (आपः) आप्त जनो ! आप लोग (ओमानं) रक्षक पुरुष को और (मानुषीः) मनुष्य प्रजा और (अमृक्तं) अशुद्ध जन को स्वच्छ करके (धात) धारण करो और (तोकाय तनयाय) छोटी उमर वाले पुत्र के लिये मातावत् (शं) शान्ति प्रदान करो। (यूयं) आप लोग (विश्वस्य) समस्त (स्थातुः जगतः) स्थावर और जंगम के (जनित्रीः) पैदा करने वाली (मातृतमाः) माताओं के समान (भिषजः स्थः) रोगों को दूर करने वाले होओ ।

आ नो॑ दे॒वः स॑वि॒ता त्राय॑माणो॒ हिर॑ण्यपाणिर्यज॒तो ज॑गम्यात्।
यो दत्र॑वा उ॒षसो॒ न प्रती॑कं व्यूर्णु॒ते दा॒शुषे॒ वार्या॑णि ॥८॥

भा०—(देव:) ज्ञान का दाता, (सविता) सूर्य-तुल्य तेजस्वी, (त्रायमाणः) प्रजा-रक्षक, (हिरण्यपाणिः) सुवर्ण को हाथ में रखने वाला (यजतः) पूज्य पुरुष (नः आ जगम्यात्) हमें प्राप्त हो। (यः) जो (दत्रवान्) दान-योग्य धन का स्वामी, (उषसः प्रतीकं न) प्रभात के समान प्रतीति-कर वचन तथा (वार्याणि) धन और ज्ञान भी (दाशुषे) समर्पक प्रजाजन को (वि ऊर्णुते) प्रकट करता है।

उ॒त त्वं सू॑नो सहसो नो अ॒द्या दे॒वाँ अ॒स्मिन्न॑ध्व॒रे व॑वृत्याः।
स्याम॒हं ते॒ सद॒मिद्रा॒तौ तव॑ स्याम॒ग्नेऽव॑सा सु॒वीरः॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे (सहसः सूनो) शत्रुजयी सैन्य बल के संचालक! (त्वं) तू (अद्य) आज (अस्मिन् अध्वरे) इस हिंसारहित प्रजापालनादि कार्य में (देवान्) उत्तम पुरुषों को (नः आववृत्याः) हमें प्राप्त करा। (उत) और मैं (सदम्) सदा (ते रातौ स्याम्) तेरी ही वृत्ति के अधीन रहूँ और (तव अवसा) तेरी रक्षा, अन्नादि से, हे (अग्ने) तेजस्विन्! (सुवीरः स्याम्) उत्तम सन्तानयुक्त होऊं।

उ॒त त्या मे॒ हव॒मा ज॑ग्म्यातं॒ नास॑त्या धी॒भिर्यु॒वम॒ङ्ग वि॑प्रा।
अत्रिं॒ न म॒हस्तम॑सोऽमुमुक्तं॒ तूर्व॑तं नरा दुरि॒ताद॒भीके॑ ॥१०॥९॥

भा०—(उत) और, (अङ्ग) हे (नासत्या) असत्याचरण न करने वाले, (विप्रा) विद्वान् स्त्री-पुरुषो! (त्या युवम्) वे आप (मे) मेरे (हवम्) वचन, अन्नादि को (जग्म्यातम्) प्राप्त करो। सूर्य, चन्द्र जैसे (अत्रिं) इस लोकवासी जनों को (महः तमसः मोचयतः) बड़े अन्धकार से मुक्त करते हैं वैसे ही आप दोनों (अत्रिं) इस लोक में विद्यमान जन को (महः तमसः) बड़े अज्ञानान्धकार से और (दुरितात्) दुष्टाचरण से भी (अमुमुक्तम्) छुड़ाते रहो। हे (नरा) उत्तम नर-नारियो!

उत्तम मार्ग में ले जाने हारे आप (अभीके) समीप रहकर (तूर्वतम्) दुर्गुणों का नाश करो । इति नवमो वर्गः ॥

ते नो॑ रा॒यो द्यु॒मतो॒ वाज॑वतो दा॒तारो॑ भूत नृ॒वतः॑ पुरु॒क्षोः ।
द॒श॒स्यन्तो॑ दि॒व्याः पार्थि॑वासो॒ गोजा॑ता॒ अप्या॑ मृ॒ळता॑ च देवाः ११

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! (ते) वे आप (नः) हमें (द्युमतः) दीप्तियुक्त, (वाजवतः) बलयुक्त, (नृवतः) भृत्यादि वाले, (पुरु-क्षोः) बहुत अन्नादि से सम्पन्न (रायः) ऐश्वर्य के (दातारः भूत) दाता होवो । आप (पार्थिवासः) पृथिवी के स्वामी, (गौ-जाताः) वाणी के प्रसिद्ध विद्वान्, (अप्याः) भूमि और जलों की विद्या में निष्णात होकर (दशस्यन्तः) ज्ञान देते हुए (नः) हम सबको (मृडत) सुखी करो ।

ते नो॑ रु॒द्रः सर॑स्वती स॒जोषा॑ मी॒ळ्हुष्म॑न्तो॒ विष्णु॑र्मृळन्तु वा॒युः ।
ऋ॒भु॒क्षा वाजो॒ दैव्यो॑ विधा॒ता प॒र्जन्या॒वाता॑ पिप्यता॒मिषं॑ नः ॥१२

भा०—(रुद्रः) दुष्ट पुरुषों को दण्ड दाता राजा, उपदेशक विद्वान्, (सरस्वती) उत्तम विज्ञानवती वेदवाणी और विदुषी स्त्री, (सजोषाः) प्रीतियुक्त मित्रजन, (विष्णुः) सामर्थ्यवान् पुरुष, (वायुः) वायुवत् बलवान् और ज्ञानी पुरुष (ऋभुक्षाः) विद्वान्, (दैव्यः) विद्वानों से नियुक्त (विधाता) विधानकर्त्ता, (पर्जन्य-वाता) मेघ और वायुवत्, बलवान् पुरुष ये सभी (मीढुष्मन्तः) प्रजावर्धक गुणों से युक्त होकर (नः) हमें (मृडयन्तु) सुखी करें और (नः इषं पिप्यताम्) हमारे अन्न की वृद्धि करें ।

उ॒त स्य दे॒वः स॑वि॒ता भगो॑ नो॒ऽपां नपा॑दवतु॒ दानु॒ पप्रिः॑ ।
त्वष्टा॑ दे॒वेभि॒र्जनि॑भिः स॒जोषा॒ द्यौर्दे॒वेभिः॑ पृथि॒वी स॑मु॒द्रैः ॥१३॥

भा०—(उत) और (स्यः देवः) वह तेजस्वी, (सविता) सूर्यवत् प्रकाशित, (भगः) ऐश्वर्यवान् पुरुष और (अपां नपात्) जलों में विद्यमान,

उन से उत्पन्न विद्युत्, (पविः) सबका (त्वष्टा) तेजस्वी, (देवेभिः) दिव्य गुणों और (जनिभिः) प्राणियों-सहित, (द्यौः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (देवेभिः) किरणवत् दीप्त पुरुषों और (समुद्रैः पृथिवी) समुद्रों सहित पृथिवी, ये सब (सजोषसः) समान प्रीतियुक्त होकर (नः दातु) हमारे देने योग्य पदार्थ की (अवतु) रक्षा करें।

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु १४

भा०—(उत) और (बुध्न्यः अहिः) आकाश में उत्पन्न मेघ और (बुध्न्यः) प्रजा को प्रबन्ध में बांधने वाला (अहिः) अहिंसनीय पुरुष, (अजः एक-पात्) न कभी उत्पन्न होने वाला, अद्वितीय, जगत् में व्यापक, प्रभु और (अजः) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला और राज्य सञ्चालक (एक-पात्) एकमात्र चरणवत् राष्ट्र का आश्रय, राजा, (पृथिवी समुद्रः) पृथिवी-समान विशाल और समुद्र-समान गम्भीर पुरुष और (ऋत-वृधः) सत्य, यज्ञ और धनादि से बढ़ने और बढ़ाने वाले (स्तुताः) स्तुति-योग्य, (कविशस्ताः) विद्वान् पुरुषों द्वारा स्तुति या शिक्षा-प्राप्त, (मन्त्राः) मननशील, मन्त्रदाता विद्वान् वा वेद के मन्त्र और उत्तम विचार सभी (हुवानाः) हमसे बुलाये गये (विश्वे-देवाः) सभी उत्तम मनुष्य (नः अवन्तु) हमारी रक्षा करें।

एवा नपातो मम तस्य धीभिर्भरद्वाजा अभ्यर्चन्त्यर्कैः।
ग्ना हुतासो वसवोऽधृष्टा विश्वे स्तुतासो भूता यजत्राः ॥१५॥१०

भा०—(एव) इस प्रकार जो (नपातः) धर्म से प्रजाओं को न गिरने देने और स्वयं भी न गिरने वाले, (भरद्-वाजाः) ज्ञान और बल के धारक, (धीभिः) बुद्धियों, कर्मों से और (अर्कैः) अन्नों द्वारा (अभि अर्चन्ति) सत्कार करते हैं और (हुतासः) आदरपूर्वक आमन्त्रित, (अधृष्टाः) विनीत, (यजत्राः) दानशील, (विश्वे वसवः) सब राष्ट्रवासी

जन और (ग्नाः) स्त्रियां भी जिनसे (स्तुतासः भूत) प्रशंसित हों। वे (ग्नाः अभ्यर्चन्ति) स्त्रियों और ज्ञानप्रद वाणियों का आदर करें। इति दशमो वर्गः ॥

[५१]

ऋजिश्वा ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ३, ५, ७, १०, ११, १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् । ४, ६, ९ स्वराट् पंक्तिः । १३, १४, १५ निचृदुष्णिक् । १६ निचृदनुष्टुप् ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

उदु त्यच्चक्षुर्महि मित्रयोराँ एति प्रियं वरुणयोरदब्धम् ।
ऋतस्य शुचि दर्शतमनीकं रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत् ॥१॥

भा०—जैसे (मित्रयोः वरुणयोः महि चक्षुः ऋतस्य दर्शतम्, अनीकं, दिवः रुक्मन्, उदिता वि अद्यौत्) मित्र दिन, वरुण रात्रि इन दोनों में वह बड़ा, नेत्रवत् सूर्य प्रकाश दिखाने वाले मुख के समान और आकाश के मध्य स्वर्ण के समान, उदय काल में विशेष रूप से चमकता है वैसे ही (मित्रयोः) एक दूसरे को चाहने वाले (वरुणयोः) एक दूसरे का वरण करने वाले, वर-वधू, दोनों की (त्यत्) वह (महि) बड़ी, (प्रियं चक्षुः) प्रिय, एक दूसरे को तृप्त और प्रसन्न करने वाली आंख (अदब्धम्) एक दूसरे से अहिंसित होकर बिना बाधा के (एति) एक दूसरे को प्राप्त हो। वह (दर्शतम्) सत्य ज्ञान को दिखाने वाली, (शुचि) पवित्र, (अनीकम्) सैन्यवत् एक दूसरे का विजय करने वाली, चक्षु भी, (दिवः रुक्मः न) कामनायुक्त कामिनी के स्वर्णमय आभूषण-वत्, (दिवः) कामना वाली स्त्री के (उदिता) उद्गमन काल में (रुक्मः) रुचि अर्थात् अभिलाषाओं का ज्ञापक होकर (वि अद्यौत्) विविध भावों, विशेष सौहार्दों को प्रकट करे।

वेद यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः ।
ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान् ॥२॥

भा०—विद्वान् रूप आंख का सूर्यवत् वर्णन। (यः) जो (त्रीणि विदथानि) जानने और प्राप्ति-योग्य ज्ञान, कर्म और उपासना को (वेद) जानता है, और जो (विप्रः) विद्वान् (सनुतः) सदा (देवानां) सूर्य चन्द्रादि लोकों के (जन्म) प्रकट होने का तत्व (च) भी (वेद) जानता है वह (सूरः) तेजस्वी (अर्यः) स्वामी के समान, (मर्त्तेषु) मनुष्यों में उनके हितार्थ, (ऋजु) सरल, धर्म-मार्ग को और (वृजिना च) वर्जनीय पाप-कर्मों को (पश्यन्) देखता हुआ (एवान्) प्राप्तव्य पदार्थों को (अभि चष्टे) देखता है।

स्तुष उ वो मह ऋतस्य गोपानदितिं मित्रं वरुणं सुजातान्।
अर्यमणं भगमदब्धधीतीनच्छा वोचे सधन्यः पावकान्॥ ३॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (स-धन्यः) धन-धान्य सम्पन्न मैं, (वः) आप में से (ऋतस्य गोपान्) न्याय, तेज और बल के रक्षक (अदितिं) पृथ्वी तुल्य माता पिता, पुत्रादि, (मित्रं) स्नेही, (वरुणं) संकटों के वारक, (अर्यमणं) न्यायकारी, (भगं) ऐश्वर्यवान्, (सुजातान्) उत्तम गुणों में प्रसिद्ध, (अदब्धधीतीन्) जिनका अध्ययन नष्ट न हो, (पावकान्) अग्निवत् पवित्रकर्त्ता इन सब (महः ऋतस्य गोपान्) महान् सत्य, ज्ञान के रक्षक जनों की मैं (स्तुषे) उत्तम स्तुति करूं। (अच्छ वोचे) उनके प्रति उत्तम वचन कहूँ।

रिशादसः सत्पतीँरदब्धान्महो राज्ञः सुवसनस्य दातॄन्।
यूनः सुक्षत्रान्क्षयतो दिवो नॄनादित्यान्याम्यदितिं दुवोयु॥ ४॥

भा०—(रिशादसः) हिंसक-नाशक, (सत्पतीन्) सज्जन-पालक, (अदब्धान्) अन्यों से पीड़ित न होने और अन्यों को पीड़ा न देने वाले, (महः) बड़े (राज्ञः) राजावत् स्वामी, (सु-वसनस्य) उत्तम वस्त्र, आश्रय के (दातॄन्) दाता, (यूनः) तरुण, (सुक्षत्रान्) उत्तम बल-युक्त, (क्षियतः) ऐश्वर्यवान्, (दिवः) ज्ञान-प्रकाशक (आदित्यान्) आदित्य

ब्रह्मचारी, (नॄन्) नायक और (दुवोयु) सेवाभिलाषी पुरुषों को और (अदितिं) अदीन स्वभाव के माता व पिता को (यामि) मैं प्राप्त होऊं।

द्यौ३ष्पितः पृथिवि मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृळता नः ।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्त ५।११

भा०—हे (पितः द्यौः) सूर्य तुल्य तेजस्विन् पालक पितः! हे (मातः पृथिवि) माता पृथिवी! हे (अध्रुक्) द्रोह रहित (अग्ने) ज्ञानवन्! हे (भ्रातः) भाई! हे (वसवः) बसे हुए प्रजाजनो! आप (नः) हमें (मृडत) सुखी करो। हे (आदित्याः) आदित्यसम तेजस्वी पुरुषो! (अदिते) हे मातः! हे अखण्ड शक्ते! आप (विश्वे) सब (सजोषाः) समान प्रीतियुक्त होकर (अस्मभ्यम्) हमें बहुत (शर्म) सुख (यन्त) दो। इत्येकादशो वर्गः ॥

मा नो वृकाय वृक्ये समस्मा अघायते रीरधता यजत्राः ।
यूयं हि ष्ठा रथ्यो नस्तनूनां यूयं दक्षस्य वचसो बभूव ॥ ६ ॥

भा०—हे (यजत्राः) सत्संग-योग्य पुरुषो! आप (नः) हमें (वृक्ये) चोरों के योग्य व्यवहार के लिये (समस्मै) सब प्रकार के (अघायते) हम पर पापाचरण की इच्छा वाले, (वृकाय) भेड़िये के समान चोर स्वभाव के मनुष्य के लाभार्थ (मा रीरधत) नष्ट मत करो, (हि) क्योंकि आप (नः तनूनां) हमारे शरीरों के भी (रथ्यः) सारथिवत् सन्मार्ग में ले जाने वाले (स्थ) हो और (यूयं) तुम लोग सदा (दक्षस्य वचसः) उत्तम वचन के प्रवर्त्तक (बभूव) हो।

मा व एनो अन्यकृतं भुजेम मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे ।
विश्वस्य हि क्षयथ विश्वदेवाः स्वयं रिपुस्तन्वं रीरिषीष्ट ॥ ७ ॥

भा०—हे (वसवः) राष्ट्रवासी विद्वान् पुरुषो! (अन्यकृतं) किसी अन्य के किये (एनः) अपराध को हम (मा भुजेम) न भोगें। (यत्) जिसे आप (चयध्वे) रोको वह कर्म भी (मा कर्म) न करें। हे (विश्व-

देवाः) विद्वान् पुरुषो ! आप (विश्वस्य हि क्षयथ) सब कार्यों के स्वामी हो। मनुष्य प्रायः स्वयं अपना (रिपुः) शत्रु होकर (तन्वं) अपने शरीर का (रीरिषीष्ट) विनाश कर लेता है। अतः सावधान रहो।

नम॒ इदु॒ग्रं नम॒ आ वि॑वासे॒ नमो॑ दाधार पृथि॒वीमु॒त द्याम्।
नमो॑ दे॒वेभ्यो॒ नम॑ ईश एषां कृ॒तं चि॒देनो॒ नम॒सा वि॑वासे ॥८॥

भा०—(नमः इत्) 'नमस्' अर्थात् दुष्टों और सज्जनों को नमाने का उपाय बड़ा ही (उग्रं) बलशाली होना उचित है। मैं उसी (नमः) विनय के साधन, दण्ड, बल, या नमस्कार योग्य परब्रह्म का (आ विवासे) सेवन करूं। (नमः) वही परब्रह्म ही (पृथिवीम् उत द्याम् दाधार) पृथिवी और सूर्य को धारण कर रहा है। (देवेभ्यः) विद्वानों, विजेताओं और द्यूतादि खेलने वालों के लिये (नमः) उनको नमाने वाला यह वज्र और विनय ही है। (नमः) वह दण्ड या आदर ही (एषां) इन सब पर (ईशे) प्रभुत्व करता है। इनके (कृतं चित् एनः) किये हुए पाप को भी मैं (नमसा) दण्ड से ही (आ विवासे) दूर करने में समर्थ होऊं।

ऋ॒तस्य॑ वो र॒थ्यः॑ पू॒तद॑क्षानृ॒तस्य॑ पस्त्य॒सदो॒ अद॑ब्धान्।
ताँ आ नमो॑भिरुरु॒चक्ष॑सो॒ नॄन्विश्वा॑न्व॒ आ न॑मे म॒हो य॑जत्राः ॥९॥

भा०—हे (यजत्राः) ऐश्वर्य दातः ! हे पूज्य पुरुषो ! (रथ्यः) सारथि के तुल्य गृहस्थ वा राष्ट्र का नेता मैं (ऋतस्य) सत्य-व्यवहार के द्वारा (पूतदक्षान्) पवित्र कर्म वाले और (ऋतस्य पस्त्यसदः) न्याय गृहों में स्थित (अदब्धान्) अन्यायाचरण से अपीड़ित, (उरुचक्षसः) बड़े दूरदर्शी (विश्वान् वः महः नॄन्) समस्त उन आप पूज्य लोगों को (नमोभिः) विनय-युक्त व्यवहारों से (आ नमे) नमता, नमाता हूँ।

ते हि श्रेष्ठ॑वर्चस॒स्त उ॑ नस्ति॒रो विश्वा॑नि दुरि॒ता नय॑न्ति।
सु॒क्ष॒त्रासो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॒ग्निर्ऋ॒तधी॑तयो वक्म॒राज॑सत्याः ॥१०॥१२॥

भा०—(वरुणः) पापों से निवारक, (मित्रः) सर्वस्नेही, (अग्नि)

तेजस्वी पुरुष, जो (ऋत-धीतयः) सत्य शास्त्रों को पढ़ने और (वक्म-राजसत्याः) वचन में सत्य से चमकने वाले, सत्यभाषी और (सु-क्षत्रासः) उत्तम बलशाली हैं (ते हि) वे ही (श्रेष्ठ-वर्चसः) सर्वोत्तम तेज से युक्त होते हैं। (ते उ) वे ही (नरः) लोग (नः) हमारे (विश्वानि दुरितानि) सब बुरे आचरणों को (तिरः नयन्ति) दूर करते हैं। इति द्वादशो वर्गः ॥

ते नु इन्द्रः पृथिवी क्षाम वर्धन् पूषा भगो अदितिः पञ्च जनाः ।
सुशर्माणः स्ववसः सुनीथा भवन्तु नः सुत्रात्रासः सुगोपाः ॥११॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (पृथिवी) भूमि तुल्य सर्वाधार, (क्षाम) क्षमावान्, (पूषा) सर्वपोषक (भगः) ऐश्वर्यवान्, (अदितिः) अदीन-शक्ति, (पञ्च-जनाः) पांचों जन, (सु-शर्म्माणः) उत्तम गृह, उत्तम सुख, शरणदाता, (सु-अवसः) उत्तम रक्षक (सु-नीथाः) उत्तम मार्ग से जाने और ले जाने वाले (भवन्तु) हों। वे (नः) हमारे (सु-त्रात्रासः) उत्तम रक्षक और (सु-गोपाः) पशुओं और इन्द्रियों के उत्तम पालक (भवन्तु) हों।

नू सद्मानं दिव्यं नंशि देवा भरद्वाजः सुमतिं याति होता ।
आसानेभिर्यजमानो मियेधैर्देवानां जन्म वसूयुर्ववन्द ॥ १२ ॥

भा०—हे (देवाः) ज्ञान देने के इच्छुक गुरु जनो! जो (भरद्-वाजः) ज्ञान-धारक और (होता) अन्यों को ज्ञान देने वाला विद्वान् (सुमतिम् याति) उत्तम मतिमान् शिष्य को प्राप्त करता है, वह (नु) मानो शीघ्र ही (दिव्यं सद्मानं) उत्तम प्रकाश-योग्य गृह के समान (दिव्यं) ज्ञान-धारण-योग्य, विद्या के सत्पात्र को (नंशि) प्राप्त कर लेता है। वह (यजमानः) ज्ञान दाता, (आसनेभिः) समीप स्थित (मियेधैः यजमानः) सत्संगकर्ता, विद्यार्थियों से सत्संग करता हुआ, (वसूयुः) अधीनस्थ वसु, ब्रह्मचारियों का स्वामी होकर (देवानां)

विद्याभिलाषी जनों के (जन्म) विद्या-जन्म का (ववन्द) उपदेश करता है।

अप॒ त्यं वृ॑जि॒नं रि॒पुं स्ते॒नम॑ग्ने दुरा॒ध्य॑म्।
द॒वि॒ष्ठम॑स्य सत्पते कृ॒धी सु॒गम्॥ १३॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! आप (त्यं) उस (रिपुम्) शत्रु, (स्तेनम्) चोर, (दुराध्यम्) दुःशील (वृजिनं) मार्गवत् (दविष्ठम्) दूर से दूर को भी, पैर रखकर जाने योग्य शत्रु को (सुगं कृधि) सुगम कर। हे (सत्पते) सज्जन-पालक! तू (अस्य) इस प्रजा से उसे (अप कृधि) दूर कर।

ग्रावा॑णः सोम नो॒ हि कं॑ सखित्व॒नाय॑ वाव॒शुः।
ज॒ही न्य॑१॒त्रिणं॑ प॒णिं वृको॒ हि षः॥ १४॥

भा०—हे (सोम) सर्वप्रेरक! (नः) हमारे बीच (ग्रावाणः) शास्त्रोपदेष्टा और शत्रुओं को कुचलने वाले वीर (हि) भी (सखित्वनाय) मैत्री के लिये (कं) कर्त्ता पुरुष को (वावशुः) चाहते हैं। हे राजन्! तू (पणिम्) व्यवहारवान्, (अत्रिणम्) मूल खा जाने वाले पुरुष को (नि जहि) दण्ड दे (हि) क्योंकि (सः वृकः हि) वह अवश्य भेड़िये के स्वभाव वाला है।

यू॒यं हि ष्ठा सु॑दानव॒ इन्द्र॑ज्येष्ठा अ॒भिद्य॑वः।
कर्ता॑ नो॒ अध्व॒न्ना सु॒गं गो॒पा अ॒मा॥ १५॥

भा०—हे (सु-दानवः) उत्तम ऐश्वर्यादि के दाताः! (यूयं) आप (हि) निश्चय से (सु-दानवः) उत्तम सुख दाता, (अभि) सब प्रकार से तेजस्वी और (इन्द्र-ज्येष्ठाः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को अपने में बड़ा मानने वाले (स्थ) होकर रहो। (नः) हमारे (अध्वन्) मार्ग को (सुगं) सुगम (आ कर्त) करो। हे (गोपाः) प्रजा-रक्षक जनो! आप लोग (अमा) हमारे गृह को (सुगं कर्त्ता) सुखदायक बनाओ।

अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम् ।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥१६॥१३॥

भा०—हम (स्वस्ति-गाम्) सुख से चलने योग्य भूमि वाले, (अनेहसम्) कष्ट-रहित (पन्थाम्) मार्ग को (अपि अगन्म) प्राप्त हों, (येन) जिससे जाता हुआ मनुष्य (विश्वाः द्विषः) समस्त शत्रुओं को (परि वृणक्ति) दूर करने में समर्थ होता है और (वसु विन्दते) ऐश्वर्य पाता है । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[५२]

ऋजिश्वा ऋषिः ॥ विश्वे देवा देवताः ॥ छन्दः—१, ४, १५, १६ निचृत्-त्रिष्टुप् । २, ३, ६, १३, १७ त्रिष्टुप् । ५ भुरिक् पंक्तिः । ७, ८, ११ गायत्री । ९, १०, १२ निचृद्गायत्री । १४ विराड् जगती ॥

न तद्दिवा न पृथिव्यानु मन्ये न यज्ञेन नोत शमीभिराभिः ।
उब्जन्तु तं सुभ्वः पर्वतासो नि हीयतामतियाजस्य यष्टा ॥१॥

भा०—(अतियाजस्य) अति दान का (यष्टा) दाता, ईश्वरार्चक पुरुष (तत्) वह (न दिवा नि हीयताम्) न तेजस्वी पद से गिर सकता है, (न पृथिव्या नि हीयताम्) न पृथिवी से त्यागा जा सकता है । (अनु मन्ये) मैं मानता हूँ कि वह (न यज्ञेन नि हीयताम्) न कभी यज्ञ से रहित होता है, (उत न) और न (शचीभिः नि हीयताम्) वह उत्तम कर्मों से रहित होता है, (तम्) उसके प्रति (सुभ्वः) उत्तम भूमियों के स्वामी लोग, और (पर्वतासः) मेघवत् उदार और पर्वत-वत् उन्नत जन भी विनम्र हो जावें तथा उसको (न उब्जन्तु) कभी विनष्ट न करें ।

अति वा यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यः क्रियमाणं निनित्सात् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषमभि तं शोचतु द्यौः ॥२॥

भा०—(यः वा) और जो, हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! (नः) हमारे (क्रियमाणं) किये जाते हुए (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञान, अन्न आदि को

(अति मन्यते) अतिक्रमण करे, (वा) अथवा (यः) जो उसकी (निनित्सात्) निन्दा करे (तस्मै) उसके लिये (तपूंषि) तापदायक अस्त्रादि (वृजिनानि) वर्जक बाधक (सन्तु) हों। (तं) उस (ब्रह्म-द्विषम्) प्रभु, अन्न आदि के द्वेषी पुरुष को (द्यौः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (अभि शोचतु) सब ओर से शोकित, व्यथित करे।

किमङ्ग त्वा ब्रह्मणः सोम गोपां किमङ्ग त्वाहुरभिशस्तिपां नः।
किमङ्ग नः पश्यसि निद्यमानान् ब्रह्मद्विषे तपुंषिं हेतिमस्य ॥३॥

भा०—(अङ्ग) हे राजन्! (सोम) ऐश्वर्येच्छुक! (त्वा) तुझे (ब्रह्मणः गोपाम्) धन, वेद और राष्ट्र का रक्षक (किम् आहुः) क्यों कहते हैं? (अङ्ग) हे राजन्! (त्वा) तुझे (नः) हमारा (अभिशस्तिपाम्) निन्दा से बचाने वाला (किम्) क्यों (आहुः) कहते हैं? (अङ्ग) हे राजन्! (नः) हमें (निद्यमानान्) निंदा का विषय बनाते हुए दुष्ट जनों को (किम् पश्यसि) क्यों देखता है? तू (ब्रह्म-द्विषे) वेद, अन्नादि के द्वेषी के लिये (तपुषिम् हेतिम्) संतापदायक अस्त्र (अस्य) फेंक।

अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमानाः।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासोऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ ॥ ४ ॥

भा०—(माम्) मुझको (जायमानाः) उत्तम गुणों से प्रकट होने वाली प्रभात वेलाएं, शत्रु-दर्प को दग्ध करने वाली सेनाएं और मुझे चाहने वाली प्रजाएं (अवन्तु) मेरी रक्षा करें। (पिन्वमानाः) सींचने वाली (सिन्धवः) नदियें और बढ़ते समुद्र तथा तृप्त होते हुए प्राणगण आदि (मा अवन्तु) मेरी रक्षा करें। (ध्रुवासः पर्वतासः) स्थिर पर्वत (मा अवन्तु) मेरी रक्षा करें। (देव-हूतौ) शुभ गुणों की प्राप्ति, विद्वानों की अर्चना तथा प्रभु की उपासना-काल में (पितरः) माता-पिता आदि सभी (मा अवन्तु) मेरी रक्षा करें।

विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्।
तथा करद्वसुपतिर्वसूनां देवाँ ओहानोऽवसागमिष्ठः ॥५॥१४॥

भा०—(विश्व दानीम्) सदा ही हम सब (सु-मनसः) शुभ चित्त वाले (स्याम) रहें। हम लोग (सूर्यम् नु) सूर्य को ही (उत् चरन्तम्) ऊपर आते हुए देखें, जैसे वह (देवान् ओहानः अवसा आगमिष्ठः) समस्त किरणों को धारण करता हुआ तेज-सहित आने वालों में सर्वोत्तम है (तथा) वैसे ही शुभ गुणों को धारने और विद्या के इच्छुक शिष्यों का पालन करता हुआ प्रधान पुरुष (अवसा) अपने रक्षा और ज्ञान से (आगमिष्ठः) आने वालों में श्रेष्ठ हो और वह (वसूनां) बसे प्रजाजनों के बीच (वसु-पतिः) वसु ब्रह्मचारियों का स्वामी होकर (तथा करत्) तेज और ज्ञान प्रदान करे।

इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना।
पुर्जन्यो न ओषधीभिर्मयोभुरुग्निः सुशंसः सुहवः पितेव ॥ ६ ॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा, ज्ञान-दाता आचार्य (अवसा) ज्ञान और रक्षा-सामर्थ्य से (नेदिष्टम्) अति पास (आगमिष्ठः) आने वाला हो। वह (सिन्धुभिः) जलधाराओं से (पिन्वमाना) बढ़ी हुई, (सरस्वती) नदी के समान वेग से प्रवाहित होने वाले वचनों से उत्तम ज्ञान की धारावत् हमें नित्य बढ़ाने हारा हो। (ओषधिभिः) ओषधियों, वनस्पतियों सहित (पर्जन्यः) जलों के दाता मेघ-समान ज्ञान और रक्षा देने वाला, शत्रु-विजेता होकर (नः) हमें (मयोभूः) सुख-दाता हो। वह (अग्निः) तेजस्वी, (सु-शंसः) उत्तम उपदेशकर्ता (पिता इव) पालक के समान (सु-हवः) सुख से पुकारने योग्य हो।

विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम्।
एदं बर्हिर्नि षीदत ॥ ७ ॥

भा०—हे (विश्वे देवासः) समस्त विद्वानो! (आ गत) आप आओ। (मे) मेरे (इमं) इस (हवं) ग्राह्य ज्ञान को (शृणुत) सुनो और (इदं बर्हिः) इस योग्य आसन पर (आ नि सीदत) आकर विराजो।

यो वो देवा घृतस्नुना हव्येन प्रतिभूषति । तं विश्व उप गच्छथ ॥८

भा०—हे (देवाः) विद्वानो ! (घृत-स्नुना हव्येन) घृत-युक्त अन्न से जैसे विद्वानों का सत्कार किया जाता है वैसे ही हे (देवाः) विद्या-कामी विद्यार्थी जनो ! (यः) जो (घृत-स्नुना) स्नेह से हृदय से निकलने वाले, (हव्येन) ग्राह्य ज्ञान से (वः) आप को अलंकृत करता है (तम्) उस गुरु को (विश्वे) आप लोग (उप गच्छथ) प्राप्त होओ ।

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृळीका भवन्तु नः ६

भा०—हे विद्वानो ! (ये) जो (नः) हमारे (सूनवः) पुत्रादि हों वे (अमृतस्य) नित्य ज्ञान वेद की (गिरः) वाणियों को (उप शृण्वन्तु) गुरु के पास श्रवण करें और वे (नः) हमें (सुमृडीकाः भवन्तु) उत्तम सुख दाता हों ।

विश्वे देवा ऋतावृध ऋतुभिर्हवनश्रुतः । जुषन्तां युज्यं पयः॥१०॥१५

भा०—(विश्वे देवाः) समस्त विद्याभिलाषी मनुष्य (ऋता-वृधः) सत्य ज्ञान के वृद्धिकर्ता हों और (ऋतुभिः) ऋतु-अनुसार वा सत्य-ज्ञान के स्वामी विद्वानों द्वारा (हवनश्रुतः) दान और ग्रहण-योग्य ज्ञान के श्रोता होकर (युज्यम्) चित्तवृत्तिनिरोध को बढ़ाने वाले (पयः) ज्ञान रस का (जुषन्ताम्) सेवन करें । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

स्तोत्रमिन्द्रो मरुद्गणस्त्वष्टृमान्मित्रो अर्यमा ।
इमा हव्या जुषन्त नः ॥ ११ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (मरुद्-गणः) गतिशील, (त्वष्टमान्) तेजस्वी (मित्रः) स्नेही, (अर्यमा) न्यायकारी पुरुष (नः) हमारे (स्तोत्रम्) उपदेश और (इमा हव्यानि) इन ग्राह्य वचनों, पदार्थों को (जुषन्त) स्वीकार करें ।

इमं नो अग्ने अध्वरं होतर्वयुनशो यज ।
चिकित्वान् दैव्यं जनम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (होतः) ज्ञानदातः! (अग्ने) तेजस्विन् आचार्य ! प्रभो ! आप (चिकित्वान्) ज्ञानवान् हो । आप (नः) हमारे बीच (अध्वरं) अविनाशी, अध्ययनादि ज्ञान-यज्ञ को (वयुनशः) उनकी ज्ञान-शक्ति के अनुसार (यज) करें । तू (दैव्यं) ज्ञानेच्छुक (जनम्) जन को भी (यज) संगति में रख ।

विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम् ॥१३॥

भा०—(विश्वे देवाः) हे सब विद्याभिलाषी पुरुषो ! (ये) जो (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्षवत् बीच की भूमि, (ये च द्यवि स्थ) और जो सूर्यवत् प्रकाशमान ज्ञान-मार्ग में विद्यमान हों (ये अग्नि-जिह्वाः) और जो अग्नि-ज्वाला के समान सब पदार्थों की प्रकाशक वाणी वाले (उत वा) और (यजत्राः) ज्ञान देने योग्य हैं, वे (मे) मेरे (इमं) इस (हवं) देने योग्य ज्ञान को (शृणुत) सुनो और (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) उच्च आसन पर (आसद्य) बैठ कर (मादयध्वम्) स्वयं प्रसन्न हों ।

विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञिया उभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म ।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥१४॥

भा०—हे (विश्वे देवाः) समस्त विद्वानो ! हे (यज्ञियाः) पूजादि के योग्य जनो ! हे (उभे रोदसी) सूर्य-पृथिवीवत् परस्परोपकारक स्त्री-पुरुषो ! और (अपां नपात् च) प्राणों का नाश न करने वाला जन (मम) मेरे (मन्म) मनन-योग्य ज्ञान को आप लोग (शृण्वन्तु) सुनें । मैं (वः) आप लोगों के प्रति (परि-चक्ष्याणि) निन्दा योग्य (वचांसि) वचन (मा वोचम्) न कहूँ । हम लोग (वः सुम्नेषु) आप के सुखों में (इत्) ही (अन्तमाः) समीपस्थ होकर (मदेम) हर्ष लाभ करें ।

ये के च ज्मा महिनो अहिमाया दिवो जज्ञिरे अपां सधस्थे ।
ते अस्मभ्यमिषये विश्वमायुः क्षप उस्रा वरिवस्यन्तु देवाः ॥१५॥

भा०—(ये के च) और जो कोई (महिनः) गुणों में महान्, (ग्मा) भूमि पर (दिवः) सूर्य-प्रकाश से तथा (अपां सधस्थे अहि-मायाः) जलों के रहने के स्थान अन्तरिक्ष में मेघ समान आवरण वाले, निष्पक्ष होकर सुखों के वर्षक वा (अपां सधस्थे) विद्वज्जनों के साथ सभा आदि में (दिवः) ज्ञान प्रकाश से (अहि-मायाः) अन्यों को पराजित करने वाली बुद्धि वाले (जज्ञिरे) प्रकट हों (ते देवाः) वे ज्ञानादि देने में कुशल पुरुष (क्षपः उस्राः) रात-दिन, (इष्टये) इष्ट सुख लाभार्थ (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (विश्वं आयुः) समस्त आयु (वरिवस्यन्तु) दें।

अ॒ग्नीप॑र्जन्या॒वव॑तं॒ धियं॑ मे॒ऽस्मिन्हवे॑ सुहवा सुष्टु॒तिं नः ।
इळा॑म॒न्यो ज॒नय॒द् गर्भ॑म॒न्यः प्र॒जाव॑ती॒रिष॒ आ ध॑त्तम॒स्मे ॥१६॥

भा०—(अग्नि-पर्जन्यौ) अग्नि-तुल्य ज्ञानप्रकाश युक्त, और मेघ-तुल्य प्रजाओं पर सुखों का वर्षक ये दोनों प्रकार के पुरुष (सु-हवा) उत्तम दान, ज्ञान और धन से युक्त होकर (मे धियं अवतम्) मेरी बुद्धि की रक्षा करें और (अस्मिन् हवे) इस दान-प्रतिदान यज्ञ में (नः सु-स्तुतिम् अवतम्) हमारी उत्तम स्तुति सुनें। उन दोनों में से (अन्यः) जैसे एक अग्नि (इडाम् जनयत्) मेघ तुल्य भूमि को बीज-वपन योग्य बनाकर अन्न उत्पन्न करता है, वैसे ही (अन्यः) एक तो (इडाम् जनयत्) उपदेश-योग्य वाणी को प्रकट करे और (अन्यः गर्भम् जनयत्) सूर्य जैसे अन्तरिक्ष में जलों को गर्भित करता, वा पृथिवी पर जाठर रूप में अन्न को पचाकर, वीर्य बना कर प्रथम पुरुष में, फिर स्त्रीयोनि में गर्भ उत्पन्न करता है वैसे ही (अन्यः) दूसरा विद्वान् जन (गर्भम्) विद्यार्थी को माता के तुल्य विद्या के गर्भ में ग्रहण करके पुनः पुत्रवत् वेदविद्या में उत्पन्न करे। जैसे सूर्य और मेघ दोनों (प्रजावतीः इषः धत्तम्) प्रजा से युक्त अन्न-सम्पदा को देते और

पुष्ट करते हैं वैसे ही आचार्य उत्तम सन्ततियुक्त कामनाओं को धारण करें।

स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्नौ सूक्तेन महा नमसा विवासे।
अस्मिन्नो अद्य विदथे यजत्रा विश्वे देवा हविषि मादयध्वम् १७।१६

भा०—(बर्हिषि स्तीर्णे) यज्ञवेदी पर कुशा आदि आस्तरण-योग्य पदार्थ के बिछने पर और (अग्नौ समिधाने) अग्नि के दीप्त होते हुए जैसे (महा-सूक्तेन) वेद के बड़े सूक्त से और (महा नमसा) बड़े अन्नादि से (आविवासे) यज्ञ कर्म करता है वैसे ही (बर्हिषि) बड़े मान-वृद्धि-युक्त, (स्तीर्णे) बिछे आसन पर (अग्नौ समिधाने) ज्ञानप्रकाश-युक्त विद्वान् के विराजने पर, मैं (महा-नमसा) बड़े आदर से (सूक्तेन) उत्तम वचनों से उसकी (आ विवासे) सेवा करूं। हे (यजत्राः) यज्ञ-शील, पुरुषो! (अद्य) आज (नः) हमारे (अस्मिन् विदथे) उस यज्ञ में (विश्वे देवाः) आप सब विद्वान् जन (हविषि) अन्नादि से (मादयध्वम्) स्वयं तृप्त होओ और (नः मादयध्वम्) हमें प्रसन्न करो। इति षोडशो वर्गः॥

[५३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ पूषा देवता॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ७, १० गायत्री। २, ५, ९ निचृद्गायत्री। ८ निचृदनुष्टुप्॥
दशर्चं सूक्तम्॥

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये। धिये पूषन्नयुज्महि॥१॥

भा०—जैसे (वात-सातये रथं न) वेग से देशान्तर जाने के लिये रथ को जोड़ते हैं वैसे ही हे (पथस्पते) मार्ग के स्वामिन्! हे (पूषन्) पोषक प्रभो! (वाज सातये धिये) ज्ञानदात्री बुद्धि और ऐश्वर्यदाता कर्म के लिये (रथं) रमणीय, वा वेगगामी (त्वा) तुझको (वयम् उ) हम (अयुज्महि) योगाभ्यास द्वारा चित्त से ध्यान करें।

अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम् । वामं गृहपतिं नय ॥२॥

भा०—हे राजन् ! तू (नः) हमें (नर्यं) मनुष्यों का हितकारी, (वीरं) वीर (प्रयत-दक्षिणम्) उत्तम बल वीर्य से युक्त, (वामं) सेवन योग्य (गृहपतिं) गृह स्वामी और (नर्यं) मनुष्यों के हितकारी (वीरं) विविध कष्टों को दूर करने वाले, (प्रयत-दक्षिणं) खूब दक्षिणा देने योग्य, (वामं) सुखकर, (गृहपतिम्) गृह-पालक (वसु) धन को और (नः) हमें (अभि नय) प्राप्त करा।

अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय ।
पणेश्चिद्वि म्रदा मनः ॥ ३ ॥

भा०—हे (आ घृणे) सर्वत्र प्रकाशित ! (पूषन्) पोषक ! तू (अदित्सन्तं चित्) अदान-कामी पुरुष को (दानाय) देने के लिये (चोदय) प्रेरित कर। (पणेः चित्) व्यवहार-कुशल, वणिग्जन के (मनः) मन को (वि म्रद) विशेष मृदु कर। वह कंजूस न होकर दयाशील रहे।

वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि ।
साधन्तामुग्र नो धियः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (वाज-सातये) ज्ञान और बल की प्राप्ति हेतु (पथः) उत्तम मार्गों को (वि चिनुहि) खोज। (मृधः) हिंसाकारियों को (वि जहि) दण्डित कर। हे (उग्र) बलवन् ! (नः) हमारी (धियः) बुद्धियां और कर्म (साधन्ताम्) उत्तम फलों को सिद्ध करें।

परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे ।
अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! आप (पणीनाम्) द्यूतादि व्यवहार वालों के (हृदया) हृदयों को (आरया) आरा से जैसे काष्ठों को चीरा जाता, वैसे ही (आरया) शिक्षा और 'आर्त्ति' दण्डादि की व्यवस्था

द्वारा (परि तृन्धि) पीड़ित कर (अथ) इस प्रकार (ईम्) उनको (अस्मभ्यम्) हमारे हितार्थ (रन्धय) दण्ड दे। इति सप्तदशो वर्गः॥

वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम्।
अथेमस्मभ्यं रन्धय॥ ६॥

भा०—हे (पूषन्) निर्बलों के पक्ष-पोषक! तू (पणेः) व्यवहार में लगे दुष्ट जन को (आरया) दण्ड-व्यवस्था से, पशु को चोब से जैसे, वैसे (वि तुद) विशेष व्यथित कर और (हृदि) हृदय में (प्रियम्) उनका हित (इच्छ) चाहा कर। (अथ ईम् अस्मभ्यम् रन्धय) और उनको हमारे हितार्थ वश कर।

आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे।
अथेमस्मभ्यं रन्धय॥ ७॥

भा०—हे (कवे) विद्वन्! तू (पणीनां) व्यवहारवान् लोगों के (किकिरा) व्यवस्था पत्रों की छोटी बातों को भी (आ रिख) अवश्य लिख। (अथ) और (हृदया) उनके हृदयों को (ईम्) सब प्रकार से (अस्मभ्यम्) हमारे हितार्थ (रन्धय) वश कर।

यां पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे।
तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु॥ ८॥

भा०—हे (पूषन्) निर्बलों के पक्ष-पोषक! हे (आघृणे) सब प्रकार तेजस्विन्! तू (यां) जिस (ब्रह्म-चोदनीम्) ब्रह्म-विद्या की प्रेरक (आराम्) आरा शस्त्री के तुल्य सद्-असद् विवेक वाली बुद्धि को (बिभर्षि) धारण करता है (तया) उससे (समस्य हृदयम्) सबके दिलों को (आ रिख) अंकित कर और (किकिरा कृणु) उत्तम विचारों को लिखकर फैला।

या ते अष्ट्रा गोओपशाघृणे पशुसाधनी।
तस्यास्ते सुम्नमीमहे॥ ९॥

भा०—हे (आ-घृणे) तेजस्विन् ! (पशु-साधनी) पशुओं को वश करने वाली, (अष्ट्रा गो-ओपशा) बैलों के पास रहकर चाबुक जैसे सन्मार्ग में चलाती है वैसे ही, (ते) तेरी (या) जो (अष्ट्रा) व्यापक शक्ति (गो-ओपशा) भूमि पर प्रशान्त रूप से विद्यमान रहकर (पशु-साधनी) पशु-तुल्य मूर्खों को वश करने वाली है, (तस्याः) उसके (सुम्नम्) सुखकारी परिणाम को हम (ते) तुझ से (ईमहे) प्राप्त करें।

उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत ।
नृवत् कृणुहि वीतये ॥ १० ॥ १८ ॥

भा०—हे (पूषन्) पोषक राजन् ! (उत) और तू (गो-सणिम्) गौ देने वाली, (अश्व-साम्) अश्व देने वाली (उत) और (वाज-साम्) ऐश्वर्य देने वाली, (धियं) बुद्धि वा कर्म को (नः वीतये) हमारे सुख और ज्ञान के लिये (कृणुहि) कर। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[५४]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ६, ७, ८, ९ गायत्री । ३, १० निचृदगायत्री । ५ विराड्गायत्री ।
षड्जः स्वरः ॥

सं पूषन् विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति ।
य एवेदमिति ब्रवत् ॥ १ ॥

भा०—हे (पूषन्) पोषक ! (यः) जो विद्वान् (इदम् एव) 'यह ऐसा ही है', इस प्रकार यथार्थ (ब्रवत्) उपदेश करता और (अञ्जसा) ज्ञान से (अनु शासति) अनुशासन अर्थात् न्यायोपदेश करता है, तू उस (विदुषा) विद्वान् द्वारा हमें (सं नय) उत्तम मार्ग से ले चल।

समु पूष्णा गमेमहि यो गृहाँ अभिशासति ।
इम एवेति च ब्रवत् ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (गृहान्) गृहस्थों को (अभि शासति) उपदेश

देता और (प्रवत् च) बताता है कि (इमे एव इति) ये ही पदार्थ ग्राह्य हैं ऐसे (पूषणा) पालक के साथ (सं गमेमहि) हम सत्संग करें।

पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते।
नो अस्य व्यथते पविः ॥ ३ ॥

भा०—(पूष्णः) पोषक राजा का (चक्रम्) राजतन्त्र (न रिष्यति) कभी नष्ट नहीं होता। (कोशः न अवपद्यते) उसका कोष भी कम नहीं होता है, (अस्य पविः न व्यथते) उसका बल भी पीड़ित नहीं होता।

यो अस्मै हविषाविधन्न तं पूषापि मृष्यते।
प्रथमो विन्दते वसु ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो व्यक्ति (अस्मै) इस प्रजाजन को (हविषा) लेने-देने योग्य करादि से (अविधत) पीड़ित करता और स्वयं (प्रथमः) मुख्य होकर (वसु विन्दते) धन लेता है, (तं पूषा अपि) उसको पोषक राजा भी (न मृष्यते) सहन नहीं करता।

पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः।
पूषा वाजं सनोतु नः ॥ ५ ॥ १९ ॥

भा०—(पूषा) पोषक राजा, (गाः) गौवों को गोपाल तुल्य (अन्वेतु) भूमियों को प्राप्त करे। वह (अर्वतः नः रक्षतु) अश्वों को सारथिवत् हमारी रक्षा करे। वह (पूषा नः वाजं सनोतु) पोषक अन्नवत् हमें ऐश्वर्य विभक्त करे। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

पूषन्नन्तु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः।
अस्माकं स्तुवतामुत ॥ ६ ॥

भा०—हे (पूषन्) प्रजापोषक! (सुन्वतः यजमानस्य) अभिषेक कर्ता करने और कर दाता प्रजाजन को (गाः अनु) भूमियों, वाणियों का (अनु इहि) गौओं के पीछे गोपालवत् अनुगमन कर अर्थात् प्रजा के बहुमत के पीछे चल। (उत्) और (स्तुवताम् अस्माकं) उत्तम उपदेशक हम लोगों की (गाः अनु इहि) वाणियों का अनुसरण कर।

माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं सं शारि केवटे ।
अथारिष्टाभिरा गहि ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रजाजन (माकिः नेशत्) कभी नष्ट न हो, (माकीं रिषत्) किसी अन्य द्वारा पीड़ित न हो। वह (केवटे) कूप के समान, अवनत दशा में भी (माकीं सं शारि) कभी शीर्ण न हो। (अथ) और (अरिष्टाभिः) अहिंसित प्रजाओं सहित तू (आ गहि) हमें प्राप्त हो।

शृण्वन्तं पूषणं वयमिर्यमनष्टवेदसम् ।
ईशानं राय ईमहे ॥ ८ ॥

भा०—(वयम्) हम (इर्यम्) प्रजा को सन्मार्ग में चलाने वाले (अनष्ट-वेदसम्) ज्ञान और धन से सम्पन्न, (ईशानं) राष्ट्र पर प्रभुत्व करने में समर्थ, (शृण्वन्तं) प्रजा के न्याय-कथन को सुनने वाले (पूषणं) सर्वपोषक राजा से (रायः) नाना ऐश्वर्यों की (ईमहे) याचना करते हैं।

पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन ।
स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ९ ॥

भा०—हे (पूषन्) पोषक ! (तव व्रते) तेरे काम में लगे हुए (वयं) हम (कदा चन न रिष्येम) कभी पीड़ित न हों। हम (ते स्तोतारः) तेरे गुणों का कथन करते हुए (इह) इस राष्ट्र में (स्मसि) रहें।

परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् ।
पुनर्नो नष्टमाजतु ॥ १० ॥ २० ॥

भा०—(पूषा) पोषक राजा, (परस्तात्) दूर तक भी (दक्षिणं) दानशील (हस्तं) हाथ (परि दधातु) रखे। जिससे (नः) हमारा (नष्टम्) खोया हुआ धन भी (आ अजतु) हमें प्राप्त हो। इति विंशो वर्गः ॥

[५५]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ६ गायत्री । ३, ४ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

एहि वां विमुचो नपादाघृणे सं सचावहै ।
रथीर्ऋतस्य नो भव ॥ १ ॥

भा०—हे (आ घृणे) तेजस्विन् ! तू (आ इहि) हमें प्राप्त हो । हे (नपात्) कुमार्ग में न जाने वाले ! तू (वाम्) हम दोनों को (विमुचः) दुःखों से मुक्त कर । हम (सं सचावहै) दोनों राजा-प्रजा और स्त्री-पुरुष अच्छी प्रकार मिल कर रहें । तू (नः) हमारे (ऋतस्य) सत्य व्यवहार का (रथीः) रथवान् के तुल्य सञ्चालक (भव) हो ।

रथीतमं कपर्दिनमीशानं राधसो महः ।
रायः सखायमीमहे ॥ २ ॥

भा०—(रथीतमम्) श्रेष्ठ रथ के स्वामी, (कपर्दिनम्) मानसूचक शिखा धारक प्रमुख, (महः राधसः ईशानम्) महान् ऐश्वर्य के स्वामी, (सखायम्) मित्र से हम लोग (रायः) नाना धन (ईमहे) याचना करें ।

रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व ।
धीवतोधीवतः सखा ॥ ३ ॥

भा०—हे (अजाश्व) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले अश्व-सैन्य के स्वामिन् ! तू (रायः) ऐश्वर्यों की (धारा असि) धारक वाणी के समान आज्ञापक है, हे (आ-घृणे) तेजस्विन् ! तू (वसोः) बसने वाले प्रजाजन का (राशिः असि) राशि अर्थात् जन-समूह का प्रतिनिधि है । और तू (धीवतः धीवतः) प्रत्येक बुद्धिमान् पुरुष का (सखा) मित्र है ।

पूषणं न्व१जाश्वमुप स्तोषाम वाजिनम् ।
स्वसुर्यो जार उच्यते ॥ ४ ॥

भा०—हम लोग (वाजिनं) बलवान्, (अजाश्व) शत्रु को उखाड़

फेंकने वाले (पूषणं) पोषक राजा को (नु उप स्तोषाम) अवश्य पास बैठकर विचार प्रस्तुत करें। ऐसे व्यक्ति को राजा बनावें (यः) जो (स्वसुः=सु-असुः, स्व-सुः) उत्तम प्राणवान्, सुख से शत्रु को उखाड़ फेंकने में समर्थ होकर भी (जारः) उत्तम, उपदेष्टा (उच्यते) कहा जावे।

मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः।
भ्रातेन्द्रस्य सखा मम॥ ५॥

भा०—जो (स्वसुः जारः) रात्रि-नाशक सूर्यवत् भगिनीतुल्य प्रजा को (जारः) सन्मार्ग में चलाने वाला और (इन्द्रस्य सखा) अग्नि के मित्र वायु के तुल्य (मम सखा) मेरा मित्र (स्वसुः भ्राता इव) बहिन के भाई के समान भरण करने वाला है, उसको मैं (मातुः) ज्ञानदात्री माता के तुल्य, माल को (दिधुषुम्) धारण करने में समर्थ (अब्रवम्) कहता हूँ, वह (नः शृणोतु) हमारा वचन सुन।

आजासः पूषणं रथे निशृम्भास्ते जनश्रियम्।
देवं वहन्तु बिभ्रतः॥ ६॥ २१॥

भा०—(ते) वे (अजासः) शत्रु को उखाड़ने वाले वीर (नि-शृम्भाः) नित्य, सम्बद्ध होकर (रथे अजासः) रथ में लगे वेगगामी अश्वों के समान (जन श्रियं बिभ्रतः) प्रजा के धारक (देवं) तेजस्वी राजा को (आ वहन्तु) धारण करें। इत्येकविंशो वर्गः॥

[५६]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ पूषा देवता॥ छन्दः—१, ४, ५ गायत्री। २, ३ निचृद्गायत्री। ६ स्वराडुष्णिक्॥

य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणम्।
न तेन देव आदिशे॥ १॥

भा०—(यः) जो विद्वान् (एनं पूषणम्) उस पोषक प्रभु को

(करम्भात्) स्वयं कर्म-फल का भोक्ता होकर इस हेतु (आ दिदेशति) स्तुति करता है (तेन) इसे (देवः) कर्म-फलदाता प्रभु से (आदिशे न) कार्य-फल मांग की आवश्यकता नहीं। वह बिना मांगे देता है।

उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा।
इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ २ ॥

भा०—(उत) और (घ) निश्चय से (सः) वह (रथीतमः) उत्तम रथ का स्वामी, (सख्या युजा) मित्र सहायक से (सत्-पतिः) सज्जनों का प्रतिपालक है। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् होकर (वृत्राणि) मेघों को सूर्य के समान विघ्नों को (जिघ्नते) विनाश करता है।

उतादः परुषे गवि सूरश्चक्रं हिरण्ययम्।
न्यैरयद्रथीतमः ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (रथीतमः सूरः गवि चक्रं नि ऐरयत्) उत्तम महारथि भूमि पर रथ चक्र को चलाता है वा (सूरः परुषे) शूरवीर पुरुष, कठोरभाषी शत्रु पर (हिरण्ययं चक्रं नि ऐरयत्) दीप्तियुक्त शस्त्र को चलाता है, वैसे ही (रथीतमः) उत्तम रथों का स्वामी, शूरवीर पुरुष कठोर शत्रु वा कठोर संग्राम काल में वा ([अ] प-रुषे) रोषरहित प्रजा के हितार्थ (गवि) इस भूमि पर (हिरण्ययं) हित और रमणीय (अदः) उस दूर स्थित (चक्रम्) राज्य-चक्र वा सैन्य-चक्र को (नि ऐरयत्) अच्छी प्रकार चलावे।

यदद्य त्वा पुरुष्टुत ब्रवाम दस्र मन्तुमः।
तत्सु नो मन्म साधय ॥ ४ ॥

भा०—हे (पुरु-स्तुत) बहुतों से प्रशंसित! हे (दस्र) दर्शनीय! हे (मन्तुमः) ज्ञानवान्! (यत्) जो (अद्य) आज (त्वा) तुझे (ब्रवाम) उपदेश करें (नः) हमारे लिये (तत्) उस (मन्म) ज्ञान का (सु साधय) अच्छी प्रकार साधन कर।

इमं च नो गवेषणं सातये सीषधो गणम् ।
आरात् पूषन्नसि श्रुतः ॥ ५ ॥

भा०—हे (पूषन्) प्रजापोषक ! तू (आरात्) दूर वा समीप (श्रुतः असि) प्रसिद्ध है। तू (इमं) इस (गो-एषणम्) पशु, भूमि, उत्तम वाणी आदि के इच्छुक (जनं) जन समूह को (सातये) नाना ऐश्वर्यादि विभक्त करने के लिये (सीषधः) प्राप्त कर ।

आ ते स्वस्तिमीमह आरेअघामुपावसुम् ।
अद्या च सर्वतातये श्वश्च सर्वतातये ॥ ६ ॥ २२ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! (अद्य च श्वः च) आज भी और कल भी (सर्व-तातये) सबके कल्याणकारी, यज्ञादि कार्य में (ते) तेरी (आरेअघाम्) पापादि से रहित (उप-वसुम्) धनप्रद (स्वस्तिम्) कल्याणकारिणी, नीति को (ईमहे) याचना करते हैं । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[५७]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्र-पूषणौ देवते ॥ छन्दः—१, ३ विराड्गायत्री । २,३ निचृद्गायत्री ॥ ४,५ गायत्री । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये ।
हुवेम वाजसातये ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रा पूषणा नु) ऐश्वर्ययुक्त और निर्बलों के पोषक, पुरुषों को (सख्याय) मित्र भाव, (स्वस्तये) सुख प्राप्ति और (वाज-सातये) अन्नादि प्राप्त करने के लिये (वयं हुवेम) हम प्राप्त करें, बुलावें ।

सोममन्य उपासदत्पातवे चम्वोः सुतम् ।
करम्भमन्य इच्छति ॥ २ ॥

भा०—(चम्वोः) राष्ट्र का भोग करने वाले इन्द्र और पूषा राजा

और प्रजावर्ग दोनों में से (अन्यः) एक तो (पातवे) स्वपालन के लिये (सुतम्) अभिषिक्त (सोमम्) प्रेरक राजा को (उप सदत्) प्राप्त होता है और (अन्यः) दूसरा राजा (करम्भम्) कर ग्रहण कर उससे ही भरण करने योग्य अन्नवत् राष्ट्र को (इच्छति) प्राप्त करना चाहता है।

अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य सम्भृता।
ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते ॥ ३ ॥

भा०—उन दोनों में से, (अन्यस्य) एक, प्रजावर्ग के (अजाः वह्नयः) शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ, राज्य-भार के धारक, (सम्भृता) वेतनादि द्वारा पोषित हों और (अन्यस्य) दूसरे, राजपक्ष के, (अजा) वेगवान् (हरी) स्त्री-पुरुष (संभृता) वेतनबद्धवत् हृष्ट-पुष्ट हों। (ताभ्याम्) उन दोनों से, (वृत्राणि) विघ्नकारी संकटों को (जिघ्नते) नाश करता है।

यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः।
तत्र पूषाभवत्सचा ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (वृषन्तमः) अति वर्षक मेघ (महीः अपः) बहुत जलों को सर्वत्र फैला देता है (पूषा सचा अभवत्) पोषक वायु सहायक होता है। वैसे (यत्) जब (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजवर्ग, (वृषन्तमः) खूब भूमिसेचक होकर (रितः) सब ओर जाने वाली गाड़ियों, वा (महीः) बड़ी अन्न-सम्पद् देने वाली भूमियों को (अनयत्) प्राप्त करावे। (तत्र) वहां (सचा) सहायक रूप से (पूषा अभवत्) पोषक कृषक वर्ग होता है।

तां पूष्णः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वयामिव।
इन्द्रस्य चा रभामहे ॥ ५ ॥

भा०—(पूष्णः) सर्वपोषक और (इन्द्रस्य च) शत्रुहन्ता, ज्ञान-

दायक जन की (तां) उस (सुमतिम्) शुभ मति को (वृक्षस्य) वृक्ष की (वयाम् इव) शाखा के समान अपने आश्रय और उन्नति के लिये (प्र आ रभामहे) प्राप्त करें। ऐसे ही (पूष्णः) सर्वपोषक पृथ्वी और (इन्द्रस्य) विद्युत्, मेघ, सूर्य आदि सम्बन्धी (सुमतिं) उत्तम ज्ञान को हम प्राप्त करें।

उत्पूषणं युवामहेऽभीशूँरिव सारथिः।
मह्या इन्द्रं स्वस्तये॥ ६॥ २३॥

भा०—(सारथिः अभीशून् इव) सारथि जैसे घोड़े की लगाम को अलग २ रखता और उनको वश करता है वैसे हम लोग (पूषणम्) प्रजा-पोषक, पृथ्वी तथा उस पर कृषि आदि करने वाले प्रजावर्ग तथा (इन्द्रम्) ऐश्वर्ययुक्त वैश्य वर्ग, दोनों को (मह्यै) भूमि की उन्नति और (स्वस्तये) कल्याण के लिये (उत् युवामहे) उद्योगपूर्वक पृथक् २ रक्खें और उनको वश करें। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[५८]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ पूषा देवता॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। ३—४ विराट् त्रिष्टुप्। २ विराट् जगती॥ चतुर्ऋचं सूक्तम्॥

शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु॥१

भा०—हे (स्वधावः) अपने तेज को धारण कराने वाले पुरुष! हे (पूषन्) धारण किये वीर्य को पोषण करने वाली! भूमिवत् स्त्रि! आप दोनों (वि सु-रूपे) विशेष रूपवान्, (अहनी) दिन-रात्रिवत् परस्पर पीड़ा न देने वाले होवो। हे (स्वधावः) आत्मांश को धारण करने वाले पुरुष! (ते शुक्रं) तेरा वीर्य, (अन्यत्) भिन्न प्रकृति का है और, हे (पूषन्) गर्भ में वीर्य पुष्ट करने हारी भूमिस्वरूप! (ते) तेरा वीर्य रजः-रूप (अन्यत्) भिन्न प्रकृति का है। पुरुष, तू (द्यौः इव असि) सूर्य के समान है और आप दोनों (यजतम्) मिलकर रहो। हे

स्त्रि ! तू (द्यौः इव असि) भूमि के समान कामना वाली है। हे पुरुष ! हे स्त्रि ! तुम दोनों पृथक् (विश्वाः मायाः) समस्त निर्माणकारिणी शक्तियों को (अवसि) सुरक्षित रखते हो। (ते) तुम्हारी (रातिः) दान-आदान, (भद्रा) कल्याणकारक (इह अस्तु) इस लोक में हो।

अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियञ्जिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः।
अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत् सञ्चक्षाणो भुवना देव ईयते ॥२॥

भा०—(पूषा) गृहस्थ-पोषक पुरुष (अज-अश्वः) भेड़-बकरियों और अश्वों का स्वामी (पशु-पाः) पशु-पालक, (वाजपस्त्यः) अन्न और ऐश्वर्य का सञ्चयी, (धियं-जिन्वः) ज्ञान और कर्म द्वारा परमेश्वर को प्रसन्न करने हारा होकर (विश्वे भुवने) समस्त संसार में (अर्पितः) स्थिर होकर रहे। वह (पूषा) गृहस्थ का पोषक (शिथिराम्) काम करने में शिथिल, अल्पशक्ति वाली, (अष्ट्राम्) भोग-योग्य स्त्री को (उद् वरीवृजत्) उत्तम रीति से प्राप्त करे। वह (देवः) तेजस्वी होकर (सं-चक्षाणः) अच्छी प्रकार देखता हुआ (भुवना ईयते) समस्त पदार्थों को प्राप्त हो।

यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति।
ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमानः ॥ ३ ॥

भा०—हे (पूषन्) पालक गृहपते ! (नावः हिरण्ययीः अन्तः समुद्रे अन्तरिक्षे चरन्ति) जैसे नौकाएं और स्वर्णादि से भूषित, वा लोह आदि से बनी, समुद्र और आकाश में चलती हैं वैसे ही (याः) जो (ते) तेरी (हिरण्ययीः) हितकारी और रमण योग्य, (नावः) हृदय-प्रेरक वाणियां (समुद्रे) अति हर्षयुक्त (अन्तरिक्षे अन्तः) अन्तः-करण में (चरन्ति) प्रवेश करती हैं (ताभिः) उन वाणियों से ही, हे (कृत) कर्त्तः ! तू (श्रवः इच्छमानः) अन्न और यश को चाहता हुआ (सूर्यस्य) सूर्य की (दूत्यां) दूतवत् प्रतिनिधि होने की क्रिया को (यासि) प्राप्त होता है।

पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इळस्पतिर्मघवा दस्मवर्चाः ।
यं देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृतं तवसं स्वञ्चम् ॥४॥२४॥

भा०—(यं) जिसको (कामेन कृतम्) कामना-युक्त (तवसं) बलवान् (सु-अञ्चम्) सुन्दर ढंग करके (देवासः) विद्वान् लोग (सूर्यायै) सूर्य-दीप्ति तुल्य कमनीय स्त्री के लिये (अददुः) पति रूप से दें । (पूषा) गृहस्थ-पोषक पुरुष (दिवः) उसे चाहने वाली और (पृथिव्याः) उसकी पृथिवीवत् आश्रय रूप स्त्री का (सुबन्धुः) बन्धुवत् प्रिय हो । वह (इडः पतिः) भूमि-पालक के समान 'इडा' अर्थात् चाहने योग्य प्रिय पत्नी का पालक तथा (मघवा) धनादि-सम्पन्न और (दस्म-वर्चाः) विघ्न-नाशक तेज से सम्पन्न हो । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[५९]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५ निचृद् बृहती । २ विराड्बृहती । ६, ७, ९ भुरिगनुष्टुप् । १० अनुष्टुप् । ८ उष्णिक् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

प्र नु वोचा सुतेषु वां वीर्या३ यानि चक्रथुः ।
हतासो वां पितरो देवशत्रव इन्द्राग्नी जीवथो युवम् ॥१॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, सूर्य, वायु वा विद्युत् तुल्य बलवान् पुरुष, और हे अग्नि-समान उत्तेजना उत्पन्न करने वाली स्त्रि ! आप दोनों (सुतेषु) उत्पन्न होने वाले पुत्रों के लिये (यानि वीर्या) जिन २ बलयुक्त कार्यों को (चक्रथुः) करें, मैं (वां) आप दोनों को उनका (प्र वोच) उपदेश करता हूँ । (देव-शत्रवः) 'देव' अर्थात् प्रकाश, जल आदि पदार्थों और शुभ गुणों के शत्रु, (वां पितरः) आप दोनों के पालक माता पिता, पितामह, चाचा आदि वृद्धजन (हतासः) अवश्य पीड़ित होते और मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं और (युवम्) तुम दोनों (जीवथः) जीवित रहकर दीर्घ जीवन जीओ ।

बळित्था महिमा वामिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ।
समानो वां जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेहमातरा ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य और अग्नि के तुल्य पति-पत्नी, (वाम्) आप दोनों का (पनिष्ठः) अति स्तुत्य (महिमा) महान् सामर्थ्य वह (इत्था बट्) इस प्रकार का सत्य है। क्योंकि (वां) आप दोनों का (जनिता) उत्पादक, मां बाप वा आचार्य, गुरुजन (समानः) एक समान मान पाने योग्य हैं। (युवं) आप दोनों वस्तुतः (भ्रातरौ) भाई-बहन के समान, एक दूसरे के पालक हो। (युवं) तुम दोनों (यमौ) ब्रह्मचर्याश्रम में संयम से रहने वाले, युगल होकर और (इह-इह-मातरौ) इस गृहाश्रम में रह २ कर सन्तानों के माता पिता होवो।

ओकिवांसा सुते सचाँ अश्वा सप्ती इवादने।
इन्द्रान्वग्नी अवसेह वज्रिणा वयं देवा हवामहे ॥ ३ ॥

भा०—पूर्वोक्त दोनों पति-पत्नी, (इन्द्रा) मेघ विद्युत् के तुल्य स्नेही और (अग्नी) दोनों अग्नियों के तुल्य तेजस्वी, (ओकिवांसा) मिलकर रहने वाले, (सुते) पुत्र के निमित्त (सचा) संगत हुए, (आदने) भोग वा भोजन के लिये (अश्वा सप्ती इव) वेगवान् दो अश्वों के समान साथ रहने वाले, (अवसा) परस्पर रक्षा, ऐश्वर्य आदि द्वारा (इह) इस गृहाश्रम में विराजें और (वयम्) हम सब उन (वज्रिणा) बलवान्, (देवा) दानशील, दोनों को (हवामहे) इस गृहस्थाश्रम में बुलाते हैं।

य इन्द्राग्नी सुतेषु वां स्तवत्तेष्वृतावृधा।
जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा न देवा भसथश्चन ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) अग्नि तुल्य तेजस्वी स्त्री-पुरुषो! (सुतेषु) उत्पन्न पुत्रों के निमित्त (ऋत-वृधा वां) धन, वीर्य, ज्ञान के वर्धक आप दोनों को (यः) जो विद्वान् (स्तवत्) उपदेश करे, आप (जोष-वाकं वदतः) प्रीति वचन बोलने वाले, उसके प्रति (पज्रहोषिणा)

उत्तम वचन कहने वाले होओ। आप दोनों (देवा) प्रीतियुक्त होकर उसके प्रति (न मसथः चन) कभी उपहास न करो।

इन्द्राग्नी को अस्य वां देवौ मर्तश्चिकेतति।
विषूचो अश्वान्युयुजान ईयत एकः समान आ रथे ॥५॥२५॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य और अग्निवत् तेजस्वी और, हे (देवौ) विद्वान् स्त्री-पुरुषो! (वां) आप दोनों में, (कः मर्त्तः) कौन मनुष्य (चिकेतति) जानता है जो (एकः) अकेला ही, (समाने रथे) एक समान गृहस्थ या देहस्थ रथ में (वि-षूचः) विविध दिशाओं में जाने वाले (अश्वान्) अश्वों के समान नाना विषय भोगने वाले इन्द्रियों को (युयुजानः) योग वा कर्मकौशल से एकाग्र करता हुआ (ईयते) जीवन मार्ग पर चलता है? उत्तर—(कः) कर्त्ता, प्रजापति, गृहस्थ। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) विद्युत् और अग्निवत् तेजस्वी स्त्री-पुरुषो! (इयम्) यह स्त्री (अपात्) अपने सत्य से न गिरने हारी, (पद्वतीभ्यः) उत्तम आचरण वाली अन्य सखियों से भी (पूर्वा) मुख्य होकर (आ अगात्) सबके सन्मुख आवे। वह (शिरः हित्वी) सिर को बांधकर वेणी आदि बनाकर (जिह्वया) वाणी से (वावदत्) भाव प्रकट करे और (चरत्) तदनुसार आचरण करे और (त्रिंशत् पदा) तीसों पदों या स्थानों में (नि अक्रमीत्) निकल कर जावे।

इन्द्राग्नी आ हि तन्वते नरो धन्वानि बाह्वोः।
मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्क्तं गविष्टिषु ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) विद्युत्-अग्निवत् तेजस्वी स्त्री-पुरुषो! (अस्मिन् महाधने) इस संग्राम में (गविष्टिषु) भूमियों को विजय करने के

अवसरों में (नः मा परा वर्क्तम्) हम अन्य नगरवासियों को छोड़कर मत भागना। क्योंकि उस समय तो (नरः) मनुष्य (बाह्वोः) बाहुओं में (धन्वानि) धनुषों को लेकर (आ तन्वते) युद्ध करते हैं।

इन्द्राग्नी तपन्ति माघा अर्यो अरातयः।
अप द्वेषांस्या कृतं युयुतं सूर्यादधि ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य-अग्निवत् तेजस्वी स्त्री-पुरुषो ! (अर्यः) आगे आने वाली (अघाः) पापी (अरातयः) शत्रु-सेनाएं (मा तपन्ति) मुझे तपाती हैं। आप (द्वेषांसि) द्वेषियों को (अप आ कृतं) दूर करो और (सूर्यात् अधि) सूर्य के प्रकाशमय जीवन से उनको (युयुतम्) नियुक्त करो।

इन्द्राग्नी युवोरपि वसु दिव्यानि पार्थिवा।
आ न इह प्र यच्छतं रयिं विश्वायुपोषसम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) तेजस्वी स्त्री-पुरुषो ! (युवोः) तुम दोनों के (दिव्यानि) सूर्यादि से उत्पन्न और (पार्थिवानि) पृथिवी से उत्पन्न, अन्न, जल आदि (वसु) नाना द्रव्य हों। आप दोनों (नः) हमें (इह) इस राष्ट्र में (विश्वायु-पोषसम्) समस्त मनुष्यों को पोषण करने में समर्थ (रयिम्) ऐश्वर्य (प्र यच्छतम्) प्रदान करो।

इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता।
विश्वाभिर्गीर्भिरा गतमस्य सोमस्य पीतये ॥ १० ॥ २६ ॥

भा०—हे (उक्थ-वाहसा) उत्तम वचन-धारक ! (स्तोमेभिः) स्तुति-वचनों और वेद-सूक्तों से (हवनश्रुता) दानयोग्य ज्ञान के श्रोतः ! (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी पुरुषो ! आप दोनों (अस्य सोमस्य पीतये) इस उत्पन्न पुत्रादि के पालने के लिये (विश्वाभिः गीर्भिः) सब विद्याओं से युक्त होकर (आ गतम्) आओ। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[६०]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट्त्रिष्टुप् । ४, ६, ७ विराड्गायत्री । ५; ८, ११ निचृद्गायत्री । ९, १०, १२ गायत्री । १३ स्वराट् पंक्तिः । १४ निचृदनुष्टुप् । १५ विराड्नुष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

श्नथ॑द्वृ॒त्रमु॒त स॑नोति॒ वाज॒मिन्द्रा॒ यो अ॒ग्नी सहु॑री सप॒र्यात् ।
इ॒र॒ज्यन्ता॑ वस॒व्य॑स्य॒ भूरेः॒ सह॑स्तमा॒ सह॑सा वाज॒यन्ता॑ ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रा) ऐश्वर्यवान्, (अग्नी) अग्नीवत् तेजस्वी (सहुरी) सहनशील (सहस्-तमा) अति बलशाली, (सहसा) बल से (वाजयन्ता) संग्राम करने वाले, (भूरेः वसव्यस्य) बहुत द्रव्य के (इरज्यन्ता) स्वामियों की (सपर्यात्) सेवा करे वह (वृत्रम् श्नथत्) विघ्नों को नाश करता और (वाजं सनोति) ऐश्वर्य को भोगता है ।

ता यो॑धिष्टम॒भि गा इ॑न्द्र नू॒नम॒पः स्व॑रु॒षसो॑ अग्न ऊ॒ळ्हाः ।
दिशः॒ स्व॑रु॒षस॑ इन्द्र चि॒त्रा अ॒पो गा अ॑ग्ने युवसे नि॒युत्वा॑न् ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (अग्ने) विद्वन् ! हे पूर्वोक्त स्त्री-पुरुषो ! आप (ताः) उन (गाः अभि) भूमियों को लक्ष्य करके (योधिष्टम्) शत्रुओं से युद्ध करो और (नूनम्) अवश्य (अपः) प्रजाओं और (स्वः) सुखकारक, (उषसः) कान्तियुक्त, प्रभातवेलाओं के समान सुन्दर (ऊढाः) पत्नियों को लक्ष्य कर उनकी मान रक्षा के लिये (अभि योधिष्टम्) दुष्ट जनों को प्रहार करो । हे (इन्द्र) तेजस्विन् ! तू (दिशः) दिशाओं (स्वः) सुखमय प्रकाश और (उषसः) उषाओं के समान सुप्रसन्न प्रजाजनों को और (चित्राः) अद्भुत एवं पूज्य (अपः) जलवत् शीतल आप्त जनों और (गाः) भूमियों, इन्द्रिय गणों को (युवसे) मिला और हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! तू भी उसी प्रकार (नियुत्वान्) उत्तम अश्वों का स्वामी होकर (दिशः) आदेश मानने वाली (स्वः)

प्रेरणा-योग्य (उपसः) शत्रु को जलाने वाली (चित्राः) अद्भुत बल-शाली, (अपः) जल-धारावत् प्रवाह से न जाने वाली, (गाः) शस्त्राघ्र चालक सेनाओं को (शुवसे) प्राप्त कर।

आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैरिन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक्।
युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्राग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः॥ ३॥

भा०—हे (वृत्रहणा) विद्युत् और सूर्य तुल्य मेघवत् शत्रु पर आघात करने वाले (इन्द्र अग्ने) विद्युत् के समान तेजस्विन्! राजन्! अग्नि के तुल्य सत्यप्रकाशक विद्वन्! आप (वृत्रहभिः) दुष्टों के नाशक (नमोभिः) शस्त्रास्त्रों से और (शुष्मैः) बलों सहित (अर्वाक् आ यातम्) हमारे पास आओ और, हे (इन्द्र अग्ने) दुष्ट-नाशक सन्तापक जनो! (युवं) आप दोनों (अकवेभिः) अनिन्दनीय अनेकों (उत्तमेभिः) उत्तम (राधोभिः) धनों से (भवतम्) सम्पन्न होओ।

ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम्।
इन्द्राग्नी न मर्धतः॥ ४॥

भा०—(ययोः) जिन दो के बल पर (इदं विश्वम्) यह समस्त विश्व (पुरा कृतम्) पहले बना और अब भी (पप्ने) व्यवहार करता है, मैं (ता) उन दोनों (इन्द्राग्नी) विद्युत् अग्नि वा वायु तत्वों का (हुवे) उपदेश करूं। वे दोनों (न मर्धतः) विश्व को नाश नहीं करते।

उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे।
ता नो मृळात ईदृशे॥ ५॥ २७॥

भा०—हम (उग्रा) तेजस्वी, (वि-घनिना) विशेष आघात करने वाले (इन्द्राग्नी) वायु-विद्युत् को (हवामहे) प्राप्त करें, (ता) वे (नः) हमें (ईदृशे) ऐसे व्यवहार में (मृडातः) सुखी करें। इति सप्तविंशो वर्गः॥

हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती।
हतो विश्वा अप द्विषः॥ ६॥

भा०—आप दोनों (आर्या) श्रेष्ठ होकर (वृत्राणि हतः) विघ्नकारियों को दण्ड दें। आप (सत्पती) सज्जन-पालक होकर (दासानि) भृत्यों तथा प्रजा के उपक्षय करने वालों को (हतः) दण्ड दें और आप (विश्वा द्विषः) सब द्वेष करने वालों को भी (अप हतः) दण्डित कर दूर करो।

इन्द्राग्नी युवामिमे३ऽभि स्तोमा अनूषत।
पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) विद्युत्-अग्नि के समान तेजस्वी स्त्री-पुरुषो! हे (शम्भुवा) शान्ति देने हारो! (युवाम्) आप दोनों की (इमे) ये (स्तोमाः) स्तुति-युक्त-वचन (अभिअनूषत) साक्षात् प्रशंसा करते हैं। आप (सुतम् पिबतम्) उत्पन्न अन्नादि, प्राप्त ऐश्वर्य का उपभोग करो।

या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा।
इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (नरा) नायको! हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् और अग्रणी पुरुषो! (याः) जो (वां) आप की (पुरु-स्पृहः) बहुतों से अभिलाषा-योग्य (नि-युतः) नियुक्त सेनाएं वा लक्षों सम्पदाएं (सन्ति) हैं (ताभिः) उनसे आप दोनों (दाशुषे) करप्रद प्रजा के हितार्थ (आगतम्) आइये।

ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम्।
इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ९ ॥

भा०—हे (नरा) स्त्री-पुरुषो! हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी जनो! आप (ताभिः) इन शुभ कामनाओं से (आ गच्छतम्) आइये। (इदं सवनं) यह यज्ञ (उप सुतम्) अच्छी प्रकार किया गया है। आप (सोम-पीतये) ओषधिरस-वत् सुखोपभोगार्थ प्राप्त हूजिये।

तमीळिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत्।
कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥ १० ॥ २८ ॥

भा०—जैसे अग्नि (अर्चिषा) ज्वाला से (विश्वा वना) सब वनों में (परि स्वजत्) लग जाता है और उनको (जिह्वया) ज्वाला से (कृष्णा) काला कोयला (करोति) बना देता है और जैसे सूर्य वा विद्युत् (अर्चिषा) अपनी दीप्ति से (विश्वा वना परिष्वजत्) समस्त किरणों और मेघस्थ जलों को व्यापता है और (जिह्वया कृष्णा करोति) अपनी ग्रहणकारिणी आकर्षक शक्ति से आकर्षण करता है वैसे ही (यः) जो पुरुष (अर्चिषा) सत्कार योग्य उत्तम कर्म से (विश्वा वना) समस्त विभाग-योग्य द्रव्यों को (परि स्वजत्) प्राप्त कर लेता है और (जिह्वया) वाणी द्वारा (कृष्णा) नाना आकर्षण (करोति) उत्पन्न करता है, हे विद्वन्! तू (तम् ईडिष्व) उसकी स्तुति कर। इत्यष्टाविंशो वर्गः॥

य इन्द्र आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः।
द्युम्नाय सुतरा अपः॥ ११॥

भा०—(यः) जो (मर्त्यः) मनुष्य (इन्द्रस्य) राजा की (द्युम्नाय) तेजोवृद्धि के लिये (सुतराः अपः) सुखप्रद जल और (सुम्नम्) सुखकारी अन्न (इद्धे) उसके तेजस्वी होने पर (आ विवासति) देता है, वह (सुम्नम्) सुख और (सुतराः अपः) सुखजनक जलों को पाता है।

ता नो वाजवतीरिष आशून्पिपृतमर्वतः।
इन्द्रमग्निं च वोळ्हवे॥ १२॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) तेजस्वी और ज्ञानी स्त्री-पुरुषो! आप (नः वाजवतीः इषः) हमारे बलयुक्त अन्नों, ऐश्वर्ययुक्त कामनाओं को (पिपृतम्) पालो। (आशून् अर्वतः) शीघ्रगामी अश्वों और शत्रुहिंसक वीरों को (पिपृतम्) पालो और (इन्द्रम् अग्निं च) ऐश्वर्ययुक्त पुरुष, ज्ञानयुक्त और अग्नितत्त्व से युक्त तुझे प्राप्त होने वाले स्त्री-पुरुष इन दोनों को (वोढवे) विवाह करने के निमित्त (पिपृतम्) पालो।

उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै।
उभा दातारविषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम्॥१३॥

भा०—(इन्द्राग्नी) हे तेजस्वी प्रकाशवान् धनी ज्ञानी स्त्री-पुरुषो ! (उभा) आप दोनों (इषां) अन्नों और (रयीणाम् दातारा) धनों के दाता हो। (वाम् उभा) आप को मैं (वाजस्य सातये) अन्न और ऐश्वर्य के विभाग के लिये (हुवे) बुलाता हूँ और (उभा) दोनों आदरपूर्वक और (सह) एक साथ मिलकर (राधसः) धन का (मादयध्यै) आनन्द लेने के लिये (वाम् उभा हुवे) आप दोनों की प्रार्थना करता हूँ।

आ नो गव्येभिरश्व्यैर्वसव्यैरुप गच्छतम्।
सखायौ देवौ सख्याय शम्भुवेन्द्राग्नी ता हवामहे ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) मेघ-विद्युत् के समान वर्त्तने वाले स्त्री-पुरुषो ! आप (नः) हमें (गव्येभिः) गौ आदि पशु से प्राप्त दुग्ध आदि पदार्थों, ज्ञानों और भूमि से प्राप्त अन्नों सहित और (अश्व्यैः) अश्व-योग्य रथों और (वसव्यैः) धनों से प्राप्त होने योग्य सुखों एवं बसे हुए जनों के हितकारी साधनों सहित (उप गच्छतम्) प्राप्त होओ। आप दोनों (सखायौ) समान ख्याति वाले, परस्पर मित्र, (देवौ) दीप्ति-युक्त और (सख्याय) मित्रता की वृद्धि के लिये (शम्भुवा) शान्ति दाता हो। (ता) उन आप दोनों को हम लोग (हवामहे) आदरपूर्वक बुलावें।

इन्द्राग्नी शृणुतं हवं यजमानस्य सुन्वतः।
वीतं हव्यान्या गतं पिबतं सोम्यं मधु ॥ १५ ॥ २९ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवन् ! तेजस्विन् ! आप (सुन्वतः यजमानस्य) नाना पदार्थों के उत्पादक, दानशील पुरुष के (हवं) वचन को (श्रृणुतं) सुनो। (हव्यानि वीतं) उत्तम भोजन करो। (सोम्यं मधु) ओषधिरस-युक्त मधुर पदार्थ का (पिबतं) पान करो। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[६१]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ सरस्वती देवता ॥ छन्दः—१, १३ निचृज्जगती । २ जगती । ३ विराड्जगती । ४, ९, ११, १२ निचृद्गायत्री । ५, ६, १० विराड्गायत्री । ७, ८ गायत्री । १४ पंक्तिः ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

इयमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे ।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति १

भा०—(इयम्) यह सरस्वती, वेगयुक्त जल, वाणी, नदी जैसे (वध्र्यश्वाय) अश्व अर्थात् वेगगामी प्रवाह को रोकने या उसको और अधिक बढ़ाने वाले पुरुष को (ऋण-च्युतं) जल से प्राप्त होने वाला, (दिवः दासम्) तेज या विद्युत् का दाता (रभसम्) वेग (अददात्) प्रदान करती है और (यः) जो नदी (शश्वन्तम्) निरन्तर चलने वाली और (पणिं) व्यवहार-योग्य, (अवसं) गति को (आचखाद) स्थिर रखती है और उसके (ता तविषा दात्राणि) वे २ नाना प्रकार के बलयुक्त दान हैं वैसे ही यह सरस्वती, वाणी वा ज्ञानमय प्रभु ! (वध्र्यश्वाय) अपने इन्द्रिय रूप अश्वों को बांधकर संयम से रहने वाले और (दाशुषे) स्वयं को उसके अर्पण करने वाले भक्त को वा ज्ञानदाता को, (ऋण-च्युतं) ऋण से मुक्त करने और (दिवोदासं) ज्ञान-प्रकाश देने वाले (रभसं) कार्य-साधक बल और ज्ञान (अददात्) देती है और (या) जो (शश्वन्तम्) अनादि काल से विद्यमान, (अवसम्) रक्षा, बल और (पणिम्) व्यवहार-साधक, वा स्तुत्य ज्ञान वा ज्ञानवान् पुरुष को (आचखाद) स्थिर करती है । हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञान वाली वाणि ! (ते) तेरे (तविषा) बड़े (ता दात्राणि) वे अनेक दान हैं ।

इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः ॥ २

भा०—जैसे नदी (बिसखाः-इव) कमल-मूल उखाड़ने वाले के तुल्य (ऊर्मिभिः तविषेभिः) बलवान् तरंगों से (गिरीणां सानु अरजत्) पर्वत-चट्टानों को तोड़ देती है, जैसे विद्युत् (शुष्मेभिः) बलयुक्त प्रहारों से (गिरीणां सानु) मेघों या पर्वतों के शिखरों को तोड़ती है, वैसे (इयं) यह वाणी (शुष्मेभिः) बलयुक्त (तविषेभिः) बड़े २ (ऊर्मिभिः) तरंगों से युक्त उल्लासों से (गिरीणां) वाणियों के प्रयोक्ता विद्वान् पुरुषों के (सानु) प्राप्तव्य ज्ञान को (अरुजत्) तोड़ देती है। उस (पारावतघ्नीं) परब्रह्मस्वरूप 'अवत' अर्थात् प्राप्तव्य पद तक पहुँचने वाली, (सरस्वतीम्) वेद वाणी को (सु-वृक्तिभिः) उत्तम पापशोधक (धीतिभिः) अध्ययनादि कर्मों से (आ विवासेम) अच्छी प्रकार सेवन करें।

सर॑स्वति देव॒निदो॒ नि ब॑र्हय प्र॒जां विश्व॑स्य॒ बृस॑यस्य मा॒यिनः॑।
उ॒त क्षि॒तिभ्यो॒ऽवनी॑रविन्दो वि॒षमे॑भ्यो अस्रवो वाजिनीवति ॥३॥

भा०—हे (सरस्वति) वाणि! तू (देवनिदः) ईश्वर के निन्दकों को (नि बर्हय) दूर कर। (बृसयस्य) संशयशील (विश्वस्य) सब (मायिनः) प्रज्ञावान् पुरुष की (प्रजां) प्रजा, शिष्य आदि को (अविन्दः) प्राप्त कर (उत) और (क्षितिभ्यः) भूमि-वासी मनुष्यों के हितार्थ (अवनीः) सुरक्षित भूमियों को (अविन्दः) प्राप्त करा। हे (वाजिनीवति) विद्याओं से समृद्ध वाणि! तू (एभ्यः) इन लोगों के लिये (विषम्) विविध पापों का अन्त कर देने वाले ज्ञान को (अस्रवः) प्रवाहित कर।

प्र णो॑ दे॒वी सर॑स्वती॒ वाजे॑भिर्वा॒जिनी॑वती।
धी॒नाम॑वि॒त्र्य॑वतु ॥ ४ ॥

भा०—(सरस्वती देवी) जल-प्रवाह-युक्त नदी जैसे (वाजेभिः) अन्नों से (वाजिनीवती) अन्न-सम्पन्न भूमि वाली होकर (धीनाम् अवित्री) कर्मों को चलाने वाली होती और प्रजा को पालती है वैसे

ही (देवी) विदुषी (सरस्वती) ज्ञानवती स्त्री हो। वह (वाजेभिः) ज्ञानों से (वाजिनीवती) विद्या-सम्पन्न होकर, (धीनाम्) बुद्धियों और कर्मों की (अवित्री) प्रकाश करने वाली होकर (नः प्र अवतु) हमें प्राप्त हो।

यस्त्वां देवि सरस्वत्युपब्रूते धने हिते।
इन्द्रं न वृत्रतूर्ये ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—हे (देवि) ज्ञानदात्रि! (सरस्वति) ज्ञान-सम्पन्न महाभागे! (वृत्र-तूर्ये इन्द्रं न) मेघ को छिन्न-भिन्न करने में 'इन्द्र' अर्थात् विद्युत् के समान (यः) जो पुरुष (त्वा) तुझको (हिते धने) हितकारी धन की प्राप्ति के लिये (उप ब्रूते) उपदेश करता है, तू ऐसे पुरुष की (धीनाम् अवित्री प्र अवतु) बुद्धियों का पालन करती हुई प्राप्त हो॥ इति त्रिंशो वर्गः॥

त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि।
रदा पूषेव नः सनिम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (देवि) कमनीये! (सरस्वति) विदुषि! हे (वाजिनि) ज्ञानवति! तू (वाजेषु) ज्ञानयुक्त अध्ययनादि कालों में भी (नः सनिम्) हमें देने योग्य विवेचक बुद्धि को (पूषा) पोषक पति के समान ही (अव) पालन कर और (रद) दे।

उत स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनिः।
वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥

भा०—(उत) और (स्या) वह (नः) हमारी (सरस्वती) वेद-वाणी, (घोरा) दुष्टों को भयदात्री, (हिरण्य-वर्त्तनिः) हित मार्ग का उपदेश देने वाली (वृत्र-घ्नीः) अज्ञान रूप विघ्न की नाशक, (सु-स्तुतिम् वष्टि) उत्तम उपदेश करना चाहती है।

यस्या अनन्तो अह्रुतस्त्वेषश्चरिष्णुरर्णवः।
अमश्चरति रोरुवत् ॥ ८ ॥

भा०—(यस्याः) जिस वाणी का (अनन्तः) अनन्त (अमः) व्यापक ज्ञान (अह्रु तः) कुटिलतारहित, (त्वेषः) दीप्तियुक्त, (चरिष्णुः) फैलने वाला, (अर्णवः) सत्य-युक्त, समुद्र-तुल्य महान्, (रोरुवत्) शब्द करता हुआ उपदेश रूप में (चरति) गुरु से शिष्य के पास जाता है वह वेदवाणी सबके अभ्यास-योग्य है।

सा नो विश्वा अति द्विषः स्वसॄरन्या ऋतावरी।
अतन्नहेव सूर्यः ॥ ९ ॥

भा०—(अहा इव सूर्यः) सूर्य जैसे दिनों के पार पहुँच जाता है, वैसे ही (सा) वह, (ऋतावरी) ज्ञान से श्रेष्ठ, वाणी, (अन्याः) अन्य (स्वसॄः) स्वयं आ जाने वाले (नः) हमारे (द्विषः) शत्रु या द्वेष भावों से (अति अतन्) हमें पार करे।

उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा।
सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥ १० ॥ ३१ ॥

भा०—(उत) और (सरस्वती) ज्ञान-पूर्ण वाणी (सप्त-स्वसा) पांच प्राण, मन और बुद्धि इन ७ मुखों में स्थित, (सु-जुष्टा) सुख से सेवित, (प्रियासु) सब प्रिय वृत्तियों में भी (नः प्रिया) हमें अति प्रिय होने से (स्तोम्या भूत्) स्तुति-योग्य है। वेदवाणी, गायत्री आदि सात छन्दों से 'सप्त-स्वसा' है। वही (स्तोम्या) ईशस्तुति के योग्य है। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम्।
सरस्वती निदस्पातु ॥ ११ ॥

भा०—(सरस्वती) विद्यारूप सरस्वती (पार्थिवानि) पृथिवी के पदार्थों, (रजः) कण २, लोकों और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष में (आप-प्रुषी) व्याप्त है। वह हमें (निदः) निन्दक से (पातु) बचावे।

त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती।
वाजेवाजे हव्या भूत् ॥ १२ ॥

भा०—जो वाणी (त्रि-सधस्था) नाभि, उरस्, कण्ठ तीनों में स्थित है। जो (सप्त-धातुः) रक्त, मेदस्, मांस, अस्थि, वसा, मज्जा और शुक्र सातों से धारण योग्य होकर (जाता) उत्पन्न (पञ्च) पांचों ज्ञानेन्द्रियों को (वर्धयन्ती) बढ़ाती हुई, (वाजे वाजे) प्रत्येक ज्ञान-कार्य में (हव्या भूत्) स्तुति-योग्य है।

प्र या म॑हि॒म्ना म॒हिना॑ सु॒चेकि॑ते द्यु॒म्नेभि॑र॒न्या अ॒पसा॑म॒पस्त॑मा।
रथ॑ इव बृह॒ती वि॒भ्वने॑ कृ॒तोप॒स्तुत्या॑ चिकि॒तुषा॒ सर॑स्वती ॥१३॥

भा०—(या) जो (महिम्ना) ज्ञान से (महिना) पूज्य है, जो (अप्सु) इन सबमें (द्युम्नेभिः) ज्ञान-प्रकाशों से (अन्याः) अन्य प्रजाओं को भी (सु चेकिते) ज्ञानयुक्त करती है और (अपसाम्) कर्मकारी विद्वानों में (अपस्तमा) उत्तम कर्मोपदेशिका है, जो (रथः इव) रथ-वत् (बृहती) विशाल, (विभ्वने) व्यापक ब्रह्म की स्तुति के लिये (कृता) प्रकट की जाती है, जो (चिकितुषा) विद्वान् द्वारा (उपस्तुत्या) उपासना काल में भी परमेश्वर की स्तुति है, वह (सरस्वती) वेदवाणी पूज्य है।

सर॑स्वत्य॒भि नो॑ नेषि॒ वस्यो॒ माप॑ स्फरीः॒ पय॑सा॒ मा न॒ आ ध॑क्।
जु॒षस्व॑ नः स॒ख्या वे॒श्या॑ च॒ मा त्वत्क्षेत्रा॒ण्यर॑णानि गन्म ॥१४॥
३२ ॥ ८ ॥ ४ ॥ ५ ॥

भा०—हे (सरस्वति) ज्ञान-सम्पन्न वेदवाणि ! तू (नः) हमें (वस्यः) ऐश्वर्य (अभि नेषि) प्राप्त करा। (मा अप स्फरीः) हमें विनाश मत कर। (पयसा) पुष्टिकारक ज्ञान से (नः) हमें (मा आ धक्) थोड़ा भी संतप्त न होने दे। (वेश्या) प्रवेश-योग्य (सख्या) मित्रभाव से (नः जुषस्व) हमें स्वीकार कर। (त्वत्) तुझसे रहित हम (अरणानि) दुःखदायी (क्षेत्राणि) देहों में (मा गन्म) न जावें। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

इत्यष्टमोऽध्यायः ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

—————

अथ पञ्चमोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः

(षष्ठे मण्डले षष्ठोऽनुवाकः)

[६२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २ भुरिक् पंक्तिः। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ४, ६, ७, ८, १० निचृत्त्रिष्टुप्। ५, ९, ११ त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

स्तुषे नरा॑ दि॒वो अ॒स्य प्र॒सन्ता॒श्विना॑ हुवे॒ जर॑माणो अ॒र्कैः।
या स॒द्य उ॒स्रा व्यु॒षि ज्मो अन्ता॒न्युयू॑षतः पर्यु॒रू वरां॑सि ॥ १ ॥

भा०—जैसे (उस्रा) किरणों से युक्त, (अश्विना) वेगवान् सूर्य और उषा (ज्मः अन्तान् उरू वरांसि) पृथिवी के पास के पदार्थों को (परि युयूषतः) पृथक् २ दर्शाते हैं वैसे ही (अश्विना) अश्व आदि वेगवान् साधनों से सम्पन्न (दिवः नरा) ज्ञानप्रकाश के प्रवर्त्तक, (अस्य) इस जगत् के बीच (प्र-सन्ता) उत्तम सामर्थ्यवान् होकर रहें। (या) जो (सद्यः) शीघ्र ही (उस्रा) तेजस्वी होकर (व्युषि) विशेष कामना होने पर (अन्तान्) समीपस्थ सत्य पदार्थों और (उरू वरांसि) बहुत से दुःखवारक पदार्थों को (ज्मः परि युयूषतः) पृथिवी से पृथक् कर लेते और उनका विवेक करते हैं, ऐसे विवेचक स्त्री-पुरुषों को (अर्कैः जरमाणः) सत्कारोचित साधनों से (हुवे) बुलाता हूँ।

ता य॒ज्ञमा शुचि॑भिश्चक्रमा॒णा रथ॑स्य भा॒नुं रु॑रुचू॒ रजो॑भिः।
पु॒रू वरां॒स्यमि॑ता॒ मिमा॑ना॒पो धन्वा॒न्यति॑ याथो॒ अज्रा॑न् ॥ २ ॥

भा०—(रथस्य रजोभिः भानुम्) रथ की धूलि से सूर्य को सुशोभित करते हुए, (ता) वे आप दोनों (शुचिभिः) पवित्राचरणों से,

(यज्ञम् आ चक्रमाणा) सत्संग आदि करते हुए (रथस्य) रमणीय व्यवहार के (रजोभिः) तेजों से (भानुम्) अपने तेज को (रुरुचुः) चमकाओ। आप दोनों इस जगत् में (अमिता) अनेक (पुरू) बहुविध (वरांसि) श्रेष्ठ रथादि को (मिमाना) बनाते हुए (अज्रान्) वेगगामी यानादि को (अपः धन्वान् अतियाथः) समुद्रों, मैदानों के पार पहुँचाने में समर्थ होवो।

ता ह त्यद्वर्तिर्यदरध्रमुग्रेत्था धियं ऊहथुः शश्वदश्वैः।
मनोजवेभिरिषिरैः शयध्यै परि व्यथिर्दाशुषो मर्त्यस्य ॥ ३ ॥

भा०—(त्यत् वर्तिः) वह मार्ग (यत् अरध्रम्) जो मनुष्यों के वश का न हो और जो (दाशुषः मर्त्यस्य) कर आदि देने वाले प्रजाजन को (व्यथिः) दुःख देता है, उसको (परि शयध्यै) सुख से पार करने के लिये (उग्रा) बलवान् (ता) वे दोनों (अश्विना) रथ, यन्त्रादि निर्माण के ज्ञाता, शिल्प-कुशल स्त्री-पुरुष, (शश्वत्) सदा (अश्वैः) वेग से जाने वाले यन्त्रों और (मनोजवेभिः) मन के समान वेगवान् (इषिरैः) इच्छानुकूल चलने वाले रथादि से (इत्था धियः ऊहथुः) इस प्रकार कर्म करें, लोगों को उन रथ, अश्व, यन्त्रादि से (परि ऊहथुः) पार तक पहुँचावें।

ता नव्यसो जरमाणस्य मन्मोप भूषतो युयुजानसप्ती।
शुभं पृक्षमिषमूर्जं वहन्ता होता यक्षत्प्रत्नो अध्रुग् युवाना ॥ ४ ॥

भा०—(युयुजान-सप्ती) रथादि यन्त्रों में जुड़े वायु, विद्युत् जैसे (नव्यसः जरमाणस्य मन्म उपभूषतः) स्तुत्य उपदेष्टा के ज्ञान को भूषित करते हैं वैसे ही (युयुजान-सप्ती) अश्वादि को रथ में जोड़ने वाले सातों प्राणों से युक्त मन को योग द्वारा एकाग्र करने वाले (ता) वे दोनों स्त्री-पुरुष (नव्यसः जरमाणस्य) स्तुत्य ज्ञान के उपदेष्टा पुरुष को (मन्म उपभूषतः) मनन-योग्य ज्ञान प्राप्त करावें। वे दोनों (शुभं)

उत्तम कान्ति (पृक्षस्) परस्पर सम्पर्क और (इषम्) अन्न (ऊर्जं) बल (वहन्ता) धारण करते हुए हों। उन (युवाना) युवा युवति दोनों को (प्रत्नः) वृद्ध (होता) ज्ञानदाता विद्वान्, (यक्षत्) ज्ञान दे।

ता वल्गू दस्रा पुरुशाकतमा प्रत्ना नव्यसा वचसा विवासे।
या शंसते स्तुवते शम्भविष्ठा बभूवतुर्गृणते चित्रराती ॥५॥१॥

भा०—जैसे वायु, विद्युत् (वल्गू) सुखजनक, (दस्रा) दुःख-नाशक, (पुरु-शाक-तमा) नाना शक्तिमान्, (नव्यसा वचसा) स्तुत्य, वचन-योग्य और (शंसते स्तुवते शंभविष्ठा बभूवतुः) विद्वान् उपदेष्टा को शान्तिदायक होते और (चित्रराती) अद्भुत ऐश्वर्यदाता होते हैं वैसे ही (या) जो स्त्री-पुरुष (शंसते) उत्तम आशंसा करने वाले और (स्तुवते) ज्ञानोपदेष्टा विद्वान् को (शम्भविष्ठा) शान्तिदायक (बभूवतुः) हों और (गृणते) विद्या-दाता गुरु को (चित्र-राती) उत्तम धनादि देने वाले होते हैं (ता) उन (वल्गू) मधुर-भाषी, (दस्रा) दुःखनाशक, (पुरु-शाक-तमा) बहु-शक्ति-सम्पन्न (प्रत्ना) श्रेष्ठ पुरुषों का (नव्यसा) स्तुतियोग्य (वचसा) वचन से (विवासे) आदर करूं। इति प्रथमो वर्गः॥

ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समुद्रात्तुग्रस्य सूनुमूहथू रजोभिः।
अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात् ॥ ६ ॥

भा०—(ता) वे विद्युत् और पवन (तुग्रस्य सूनुम्) लेन-देन करने वाले के पुत्र और (तुग्रस्य सूनुम्) शत्रु-नाशक सैन्य के सञ्चालक (भुज्युं) पालक सेनानायक को (समुद्रात् अद्भ्यः) आकाश और जलों से (विभिः) पक्षि-समान आकाशगामी यन्त्रों द्वारा (रजोभिः) मार्गों से और (अरेणुभिः योजनेभिः) रेणु-रहित, योजनों तक (अर्णसः उपस्थात्) जल के पास (पतत्रिभिः) वेगगामी साधनों से वे (भुजन्ता) पालनकर्ता (निर् ऊहथुः) उठा ले जाने में समर्थ होते हैं।

वि जयुषा रथ्या यातमद्रिं श्रुतं हवं वृषणा वध्रिमत्याः।
दशस्यन्ता शयवे पिप्यथुर्गामिति च्यवाना सुमतिं भुरण्यू ॥७॥

भा०—हे स्त्री-पुरुषो ! आप (जयुषा रथ्या) विजयशील रथ पर रथी-सारथी के समान (अद्रिं वि यातम्) पर्वतादि दुर्गम मार्ग को भी जाओ। (वृषणा) आप दोनों बलवान्, सुखों को वर्षाते हुए (वध्रिमत्याः हवं) कुल-वृद्धिकारिणी और संयत इन्द्रियों से युक्त भूमि-रूप स्त्री के वचन और वृद्धि-युक्त ऐश्वर्यों की स्वामिनी भूमि-विषयक उत्तम ज्ञान का (श्रुतं) श्रवण करो। (दशस्यन्ता) परस्पर का बल बढ़ाते हुए (शयवे) शयु अर्थात् शिशु को उत्पन्न करने के लिये (गाम्) भूमिवत् स्त्री को (पिप्यथुः) शक्तियुक्त करो। (इति) इस प्रकार (सुमतिं च्यवाना) उत्तम ज्ञान को प्राप्त होते हुए (शुरण्यू) सन्तानों के पोषक होवो।

यद्रोदसी प्रदिवो अस्ति भूमा हेळो देवानामुत मर्त्यत्रा।
तदादित्या वसवो रुद्रियासो रक्षोयुजे तपुरघं दधात ॥८॥

भा०—हे (रोदसी) दुष्टों के रोदक राजन् ! सेनानायक ! (यत्) जो (देवानाम्) तेजस्वी पुरुषों (उत) और (मर्त्यत्रा) 'मर्त्य', शत्रुमारक वीर भटों में (प्रदिवः) तेजस्वी, (भूमा) और बड़ा (हेडः) क्रोधवान् पुरुष (अस्ति) है, हे (आदित्याः) तेजस्वी पुरुषो ! हे (वसवः) राष्ट्रवासी प्रजाजनो ! हे (रुद्रासः) दुष्टरोदको ! उस (रक्षोयुजे) विघ्नकारी के सहयोगी को दण्डित करने के लिये आप लोग (अघं तपुः) शत्रु-नाशक, शस्त्रादि, (दधात) धारण करो।

य ईं राजानावृतुथा विदधद्रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत्।
गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य द्रोघाय चिद्वचस आनवाय ॥ ९ ॥

भा०—(यः) जो (ईं) सब प्रकार से (राजानौ) सूर्य-चन्द्रवत् प्रकाशित स्त्री-पुरुषों को (रजसः) लोकों के हितार्थ, उनमें (ऋतुथा) समय पर (विदधत्) विशेष रूप से धारण करता है उस जगत् को, वे दोनों (वरुणः मित्रः) दुष्ट-वारक और स्नेही बनकर (चिकेतत्) जानें

और (आनवाय) मनुष्यों के (द्रोघाय चित्) द्रोह के लिये और (वचसे) निन्दा-वचन के लिये जैसे राजा दण्ड देता है वैसे ही (गम्भीराय रक्षसे) बड़े दुष्ट पुरुष के विनाशार्थ (हेतिम् अस्य) शस्त्र-प्रहार करो।

अन्तरैश्चक्रैस्तनयाय वर्तिर्द्युमता यातं नृवता रथेन।
सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य वनुष्यतामपि शीर्षा ववृक्तम् ॥ १० ॥

भा०—हे (अश्विनौ) स्त्री-पुरुषो! आप (द्युमता) तेज-युक्त, (नृवता) नायक-युक्त (रथेन) रथ-तुल्य गृहस्थ-रूप रथ से और (अन्तरैः चक्रैः) भीतरी साधनों से (तनयाय) सन्तान-लाभार्थ (वर्त्तिः यातम्) रथ से जैसे मार्ग चला जाता है वैसे ही गृहस्थोचित व्यवहार से गृहाश्रम को प्राप्त होओ। जैसे (त्यजसा वनुष्यतां शीर्षा वृजन्ति तथा) क्रोध से हिंसकों के शिर काट देते हैं वैसे ही आप (सनुत्येन त्यजसा) चिरस्थायी पुत्र और धन के बल से (मर्त्यस्य) मनुष्य के (वनुष्यताम्) विनाशकों के (शीर्षा) प्रमुख कारकों को (ववृक्तम्) विनष्ट करो।

आ पर॒माभि॑रु॒त म॑ध्य॒माभि॑र्नि॒युद्भि॑र्यातमव॒माभि॑र॒र्वाक्।
दृ॒ळ्हस्य॑ चि॒द् गोम॑तो॒ वि व्र॒जस्य॒ दुरो॑ वर्तं गृण॒ते चि॑त्ररा॒ती ११।२

भा०—हे (चित्ररातो) अद्भुत दानी, पति-पत्नी जनो! (परमाभिः मध्यमाभिः उत अवमाभिः नियुद्भिः) उत्कृष्ट, मध्यम और निकृष्ट इन सब प्रकार की अश्व-सेनाओं से जैसे राजा आदि जाते हैं वैसे ही आप दोनों भी इन तीनों प्रकार की प्रजाओं सहित (आ यातम्) आओ और (दृढस्य) दृढ़ (गोमतः) गवादि पशु वाले (व्रजस्य) प्राप्ति योग्य गृहाश्रम के (दुरः) द्वारों को (वि वर्त्तम्) खोलो और (गृणते) उपदेष्टा विद्वान् के भी (गोमतः व्रजस्य) वेद-वाणी-युक्त व्रज अर्थात् आश्रय के द्वार को (वि वर्त्तम्) विशेष रूप से खोलो। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[६३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ स्वराड्-

बृहती। २, ४, ६, ७ पंक्तिः। ३, १० भुरिक् पंक्तिः। ८ स्वराट् पंक्तिः। ११ आसुरी पंक्तिः। ५, ९ निचृत्त्रिष्टुप्॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

क्व१ त्या वल्गू पुरुहूताद्य दूतो न स्तोमोऽविदन्नमस्वान्।
आ यो अर्वाङ् नासत्या ववर्त प्रेष्ठा ह्यसथो अस्य मन्मन्॥ १॥

भा०—हे स्त्री-पुरुषो! (दूतः न) संदेश-हर जैसे (पुरुहूता वल्गू नमस्वान् सन् अविदत्) बहुतों में प्रशंसित, बलशाली राजा, सेनापति दोनों को नमस्कारवान् होकर भेंट करता है वैसे ही (स्तोमः) विद्वान् (नमस्वान्) दण्डपूर्वक शासन-शक्ति से सम्पन्न होकर (त्या) उन (वल्गू) सुन्दर वाणी वक्ता, (पुरु-हूता) बहुतों से प्रशंसित आप को आज (क्व अविदत्) किस स्थान पर मिले? हे (नासत्या) असत्याचरण न करने वाले जनो! (यः) जो आप से (अर्वाक्) विनययुक्त होकर (आ ववर्त) व्यवहार करे, तुम दोनों (अस्य मन्मन्) उसके मान और ज्ञान में (प्रेष्ठा हि असथः) अति प्रिय होकर रहो।

अरं मे गन्तं हवनायास्मै गृणाना यथा पिबाथो अन्धः।
परि ह त्यद्वर्तिर्याथो रिषो न यत्परो नान्तरस्तुतुर्यात्॥ २॥

भा०—हे स्त्री-पुरुषो! (अस्मै) इस मेरे उपकारार्थ आप (मे हवनाय) मेरे सत्कार को स्वीकार करने हेतु (गृणाना) उत्तम वचन कहते हुए (यथा) जब भी (अरं गन्तम्) अच्छी प्रकार आइये तो (अन्धः पिबाथः) अन्न का भोजन करें और आप दोनों (त्यद् वर्त्तिः परियाथः) उस मार्ग में जावें (यत् परः न) जिसमें न दूसरा शत्रु और (न अन्तरः) न अपना अन्तरंग भी (तुतुर्यात्) अपने पर प्रहार करें।

अकारि वामन्धसो वरीमन्नस्तारि बर्हिः सुप्रायणतमम्।
उत्तानहस्तो युवयुर्ववन्दा वां नक्षन्तो अद्रय आञ्जन्॥ ३॥

भा०—हे स्त्री-पुरुषो! (वाम्) आप के प्रति (वरीमन्) वरण योग्य समय में (अन्धसः) अन्नों का (अकारि) सत्कार किया जाय

और (सुप्र-अयनतमम्) उत्तम रीति से स्थिति करने योग्य (बर्हिः) आसन (अस्तारि) बिछाया जावे। (युव-युः) तुम दोनों को चाहने वाला पुरुष (वां) आप दोनों की, (उत्तानहस्तः) हाथों को ऊपर उठा-कर (ववन्द) स्तुति करे और (अद्रयः) मेघ-तुल्य उदार जन (वां नक्षन्तः) आप दोनों को प्राप्त होकर (आञ्जन्) स्नेहपूर्वक चाहें।

ऊर्ध्वो वा॒म॒ग्निर॑ध्व॒रेष्व॑स्था॒त्प्र रा॒तिरे॑ति जू॒र्णिनी॑ घृ॒ताची॑ ।
प्र होता॑ गू॒र्तम॑ना उरा॒णोऽयु॑क्त यो नास॑त्या ह॒वीम॑न् ॥ ४ ॥

भा०—हे (नासत्या) असत्याचरण न करने वाले स्त्री-पुरुषो! (यः) जो (होता) ज्ञान वा धन का दाता, (गूर्त-मनाः) उद्यमी चित्त वाला, सुख से ज्ञान का उपदेष्टा (उराणः) दानशील (ऊर्ध्वः) तुम दोनों के ऊपर अध्यक्षवत् रहकर (प्र अयुक्त) लोगों को सत्कर्म में लगाता है और (अग्निः) सूर्यवत् ज्ञानप्रकाशक होकर (अध्वरेषु) हिंसारहित कार्यों में (वाम् ऊर्ध्वः अस्थात्) आप दोनों के ऊपर स्थित होता है उसके (हवीमन्) शासन में (वाम्) तुम दोनों को (जूर्णिनी घृताची) वेग से जाती रात्रि के तुल्य वृद्ध पुरुष की स्नेह-युक्त (रातिः) ज्ञान सम्पदा, (प्र एति) अच्छी प्रकार प्राप्त होती है।

अधि॒ श्रि॒ये दु॑हि॒ता सूर्य॑स्य॒ रथं॑ तस्थौ पुरुभुजा श॒तोति॑म् ।
प्र मा॒याभि॑र्मायिना भूत॒मत्र॒ नरा॑ नृतू॒ जनि॑मन्य॒ज्ञिया॑नाम् ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—(सूर्यस्य दुहिता) सूर्य की पुत्री, उषा जैसे सूर्य के (रथं) रमणीय (शत-ऊतिम्) सैकड़ों दीप्तियुक्त विश्व पर (श्रिये) शोभा के लिये विराजती है वैसे ही (सूर्यस्य) तेजस्वी पिता की (दुहिता) दूर विवाह करने वाली कन्या (शत-ऊतिम्) सैकड़ों उत्तम भोगों से युक्त (रथं) सुन्दर आश्रय पर शोभा-वृद्धि के लिये रथवत् ही (अधि तस्थौ) विराजे। हे (पुरु-भुजा) बहुत से भोग और प्रजापालनादि-कुशल तुम दोनों! (अत्र) इस लोक में ही (मायाभिः) नाना बुद्धि-सम्पन्न होकर

(मायिना भूतम्) बुद्धिमान् हो जाओ। आप दोनों (नरा) उत्तम नायक, (यज्ञियानां) सत्कारपात्र पुरुषों में (जनिमन्) इस नवीन जन्म ग्रहण के अवसर पर (नृतू भूतम्) हर्ष-युक्त रहो। इति तृतीयो वर्गः॥

युवं श्रीभिर्दर्शताभिराभिः शुभे पुष्टिमूहथुः सूर्यायाः।
प्र वां वयो वपुषेऽनु पप्तन्नक्षद्वाणी सुष्टुता धिष्ण्या वाम्॥ ६॥

भा०—जैसे सेनापति और सभापति दोनों ही (सूर्यायाः) सूर्य की कान्ति से चमकने वाली पृथ्वी की (शुभे) शोभा के लिये, (आभिः दर्शताभिः श्रीभिः पुष्टिम् वहतः) इन नाना दर्शनीय कान्ति-सहित समृद्धि को (ऊहथुः) वहन करते हैं ऐसे ही, हे वर-वधू जनो! (युवं) आप दोनों (आभिः दर्शताभिः श्रीभिः) इन दर्शन योग्य सम्पदाओं द्वारा (शुभे) शोभा के लिए (पुष्टिम् ऊहथुः) गवादि सम्पदा को प्राप्त कर घर ले जाओ। (वां) तुम दोनों के (वयः) वेगवान् इन्द्रियगण, वा रक्षक गण, (वां वपुषे) तुम दोनों की शरीर-पुष्टि और रक्षा के लिये (अनुपसन्) पीछे २ चलें और हे (धिष्ण्या) गृहस्थ-धारण-समर्थ वर-वधू जनो! (वाम्) आप दोनों को (सु-स्तुता वाणी नक्षत्) प्रशंसित वाणी प्राप्त हो।

आ वां वयोऽश्वासो वहिष्ठा अभि प्रयो नासत्या वहन्तु।
प्र वां रथो मनोजवा असर्जीषः पृक्ष इषिधो अनु पूर्वीः॥ ७॥

भा०—हे (नासत्या) असत्य व्यवहार न करने वाले स्त्री-पुरुषो! (वां) आप के (प्रयः) रथ को (वयः) वेगगामी (अश्वासः) अश्ववत् आशु जाने वाले अग्नि आदि तत्व (वहिष्ठाः) वहन करने में समर्थ होकर (अभि वहन्तु) ले चलें। ऐसे ही (वयः) तेजस्वी पुरुष (वहिष्ठाः) उत्तम ज्ञान-धारक होकर (वाम् प्रयः वहन्तु) तुम दोनों को उत्तम ज्ञान प्राप्त करावें। (वां रथः) आप का रथ (मनः-जवाः) मन के तुल्य तीव्र-वेग से जाने वाला (प्र असर्जि) बनाया जावे और वह (पूर्वीः)

पूर्ण (इषः) चाहने योग्य (पृक्षः) सम्पर्क योग्य (इषिधः) इच्छाओं का पूरक अन्न भी (अनु ससर्जि) तैयार हो ।

पुरु हि वां पुरुभुजा देष्णं धेनुं न इषं पिन्वतमसंक्राम् ।
स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन् ॥८॥

भा०—जैसे मेघ और विद्युत् का जन्तु मात्र पर उपकार होता है, वे प्राणि-जगत् को, (इषं धेनुं पिन्वतम्) अन्न और भूमि को समान रूप से सेचन करते हैं, वैसे ही हे (पुरु-भुजा) इन्द्रियों द्वारा उपभोग करने वाले स्त्री-पुरुषो ! (वां) तुम दोनों का (देष्णम्) दान-योग्य धन भी (पुरु हि) बहुत प्रकार का हो । आप (नः) हमारी (धेनुं न) गौ या भूमि को मेघ के समान ही (असक्राम् इषम्) हमसे अन्य के पास न जाने वाली, निजु (इषं) अन्न आदि की (पिन्वतम्) वृद्धि करो । (ये) जो (स्तुतः) उपदेष्टा (सुस्तुतिः च) उत्तम स्तुति और (ये रसाः च) जो रस हैं, वे भी, हे (माध्वी) अन्नादि के भोक्ता जनो ! (वाम् रातिम् अनु अग्मन्) आप दोनों के दिये धन का अनुगमन करें ।

उत मे ऋज्रे पुरयस्य रघ्वी सुमीळ्हे शतं पेरुके च पक्का ।
शाण्डो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन् दश वशासो अभिषाच ऋष्वान् ॥९॥

भा०—(पुरयस्य) पुर के नियन्ता (मे) मुझ पुरुष के अधीन मेरे (ऋज्रे) सरल नीति से युक्त, सर्वप्रिय (सुमीढे) धन-धान्य-समृद्ध, मेघादि से सुसेचित, (पेरुके च) प्रजा-पालक राष्ट्र में (रघ्वी) कर्म-कुशल प्रजा वेगवती नदी के समान सुखप्रद हो और (शतं पक्का) नाना पके अन्न आदि हों और (शांडः) प्रजा को शान्तिदायक और शत्रु-नाश में समर्थ पुरुष, (हिरणिनः) सुवर्ण आदि का स्वामी (स्मद्-दिष्टीन्) शुभ दर्शन वा ज्ञान वाले (ऋष्वान्) बड़े २ (दश) दस (अभिसाचः) सहयोगी ऐसे पुरुषों को (दात्) स्थापित करे जो (वशासः) उसके अधीन कार्य करें ।

सं वां शता नासत्या सहस्राश्वानां पुरुपन्था गिरे दात्।
भरद्वाजाय वीर नू गिरे दाद्धता रक्षांसि पुरुदंससा स्युः ॥१०॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य व्यवहार न करने वाले जनो! (वां) तुम दोनों के (अश्वानां) अश्व-सैन्यों के (गिरे) शिक्षक के लिये (पुरु-पन्थाः) बहुतों को जीवनोपाय रूप मार्ग देने में समर्थ राजा (शता सहस्रा) सैकड़ों और हज़ारों तक (दात्) दे। हे (वीर) वीर पुरुष! तू (भरद्-वाजाय) ज्ञान और बल के धारक (गिरे) उपदेष्टा, विद्वान् के सेवार्थ उसके अधीन (दात्) सैकड़ों, सहस्रों अश्व सैन्य रक्खे जिससे हे (पुरुदंससा) बहुकर्मा राज-प्रजावर्गो! (रक्षांसि) विघ्नकारी सदा (हताः स्युः) दण्डित हों।

आ वां सुम्ने वरिमन्त्सूरिभिः ष्याम् ॥ ११ ॥ ४ ॥

भा०—व्यवहार-निपुण राजा-प्रजावर्गो! वा सभा-सेनाध्यक्षो! मैं (वां) आप दोनों के (वरिमन् सुम्ने) विशाल सुखप्रद शासन में (सूरिभिः) विद्वानों सहित (स्याम्) रहूँ। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[६४]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ उषा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ६ विराट्-त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप्। ४ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

उदु श्रिय उषसो रोचमाना अस्थुरपां नोर्मयो रुशन्तः।
कृणोति विश्वा सुपथा सुगान्यभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनी ॥१॥

भा०—(उषसः) प्रभात वेलाएं जैसे (रोचमानाः) प्रकाशमान होकर (श्रिये उत् अस्थुः) शोभा के लिये ऊपर उठती हैं और (रुशन्तः अपां ऊर्मयः न) स्वच्छ-वर्ण जलों की तरंगे उठा करती हैं वैसे ही (उषसः) कान्ति वाली, विदुषी (रोचमानाः) सुस्वभाव स्त्रियें, शुक्ल-कर्मा होकर (श्रिये) घर की शोभा के लिये (उत् अस्थुः) उत्तम स्थिति, मान पावें। (मघोनी) ऐश्वर्यवती (दक्षिणा) कर्म-कुशल स्त्री, (वस्वी

अभूत् उ) गृह में बसने वाली, माता बनने योग्य हो। वह ही (विश्वा सुपथा) समस्त उत्तम धर्म-मार्गों को (सुगानि कृणोति) सुगम कर देती है।

भुद्रा द॑दृक्ष उर्वि॒या वि भा॒स्युत्ते॑ शो॒चिर्भा॒नवो॒ द्याम॑पप्तन् ।
आ॒विर्वक्षः॑ कृणुषे शु॒म्भमा॒नोषो॑ देवि॒ रोच॑माना म॒होभिः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (उषः देवि) उषा तुल्य कान्तिमति देवि ! तू (भद्रा) कल्याणकारिणी (ददृशे) उत्तम स्वरूप से दिखाई दे। (उर्विया) बहुत उत्तम गुणों से प्रकाशित हो, (ते) तेरी (शोचिः) शुद्ध (भानवः) कान्तियोंवत् कामनाएं (द्याम्) तेरी कामना वाले पुरुष को (उत् अपप्तन्) प्राप्त हों। तू (शुम्भमाना) शोभित होकर (वक्षः) अपना स्वरूप, (आविः कृणुषे) प्रकट कर। हे (देवि) विदुषि ! तू (महोभिः) बड़े उत्तम गुणों से (रोचमाना) प्रिय लगती हुई विराज।

वह॑न्ति सी॒मरु॒णासो॒ रुश॑न्तो॒ गावः॑ सु॒भगा॑मुर्वि॒या प्र॑था॒नाम् ।
अपे॑जते॒ शूरो॒ अस्ते॑व॒ शत्रू॒न् बाध॑ते॒ तमो॑ अजि॒रो न वोळ्हा॑ ॥३॥

भा०—(गावः) बैल जैसे (उर्विया प्रथानां भूमिम् प्राप्य रथं वहन्ति) विस्तृत भूमि को प्राप्त होकर रथादि को ले जाते हैं और जैसे (गावः प्रथानाम् उर्विया वहन्ति) किरण फैलती हुई उषा को धारण करते हैं वैसे ही (अरुणासः) तेजस्वी, (रुशन्तः) दुष्टों के नाशक, (गावः) ज्ञानवान् पुरुष, (उर्विया प्रथानाम्) पृथ्वी के समान विशाल, (सुभगाम्) सौभाग्यवती स्त्री को (वहन्ति) उद्वाहपूर्वक ग्रहण करें। (शूरः अस्ता इव शत्रून् अप-एजते) शूरवीर, धनुर्धारी के समान वह स्त्री तथा पुरुष, अन्तःशत्रु काम, क्रोधादि तथा बाहरी शत्रुओं को दूर करे। (तमः बाधते) जैसे सूर्य अन्धकार को दूर करता है वैसे ही वे दोनों (तमः) शोक आदि का नाश करें। वह पुरुष (अजिरः नवोढा) वेग से जाने वाला अश्व जैसे रथ ढोने में समर्थ होता है वैसे जरा वा

वृद्धावस्था से रहित पुरुष (नवोढा) नयी वधू का विवाह करने में समर्थ हो ।

सुगोत ते सुपथा पर्वतेष्ववाते अपस्तरसि स्वभानो ।
सा न आ वह पृथुयामन्नृष्वे रयिं दिवो दुहितरिषयध्यै ॥ ४ ॥

भा०—उषा जैसे (दिवः-दुहिता) सूर्य से उत्पन्न होने से 'दिवः दुहिता' है, वह पर्वतों या मेघों पर पड़ती, (स्वभानुः) स्वतः कान्तिमती होकर प्राणिवर्ग को जीवन देती है वैसे, हे (दिवः दुहितः) कामनाओं को पूर्ण करने हारी, स्त्रि ! (ते) तेरे लिये (पर्वतेषु) पर्वत वा मेघवत् पालक जनों के बीच (सु-पथा) उत्तम धार्मिक मार्ग (सुगा) सुगम हों । (अवाते अपः तरसि) प्रचण्ड वात से रहित शान्त समय में जैसे समुद्र का जल पार किया जाता है वैसे ही हे (स्व-भानो) स्वयं कान्ति से चमकने हारी, हे (दिवः दुहितः) उत्तम संकल्पों को उत्पन्न करने हारी स्त्रि ! तू भी (अवाते) विघ्नादि-नाशक कारणों से रहित पुरुष के अधीन रहकर (अपः) कर्मों को जलमार्ग के समान (तरसि) पार कर । (सा) वह तू (पृथु-यामन्) बड़े भारी (ऋष्वे) शर्म में रहकर (नः) हमें (इषयध्यै) सत्कार करती हुई (आवह) प्राप्त कर ।

सा वह योक्षभिरवातोषो वरं वहसि जोषमनु ।
त्वं दिवो दुहितर्या ह देवी पूर्वहूतौ मंहना दर्शता भूः ॥ ५ ॥

भा०—हे (उषः) कमनीये ! तू (या ह) जो निश्चय से (देवी) पति-कामना करती हुई (अवाता) किसी को प्राप्त न होकर, अनन्यपूर्वा होकर (जोषम् अनु) प्रेम के अनुसार (वरं) वरणीय पुरुष के साथ (आवहसि) विवाह करती है और (या ह) जो तू (देवी) गुणवती होकर (पूर्वहूतौ) प्रथम वार के दान और स्वीकार के समय (मंहना) आदरणीय और (दर्शता) दर्शनीय (भूः) होती है । (त्वं) तू, हे (दिवः

दुहितः) सूर्य-कन्या उषावत् पति-कामना पूर्ण करने हारी विदुषि ! (सा) वह तू (उक्षभिः आ वह) सेचन समर्थ दृढ अंगों से, गृहस्थ भार को उठा।

उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥६॥५॥

भा०—(व्युष्टौ) विशेषतः प्रकाश का आवरण हटने पर, प्रभात में (चित्) जैसे (वयः) पक्षी (वसतेः) अपने घोंसले से (उत् अपप्तन्) उड़कर देशान्तर में जीविकार्थ जाते हैं वैसे ही (नरः च) पुरुष भी (व्युष्टौ) प्रातः हो जाने पर (ये पितु-भाजः) जो अन्न खा चुके के भोजनान्तर (वसतेः) निवास स्थान से (उप अपप्तन्) बाहर कमाने के लिये जायें। हे (देवि उषः) देवि ! विदुषि ! तू (दाशुषे) अन्न-वस्त्र दाता (अमा) साथी (सते) सच्चरित्र (मर्त्याय) पुरुष के लिये (भूरिवामम् वहसि) बहुत उत्तम सुख आदि प्राप्त करा। इति पञ्चमो वर्गः॥

[६५]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ उषा देवता॥ छन्दः—१ भुरिक् पंक्तिः। विराट् पंक्तिः। २, ३ विराट्त्रिष्टुप्। ४, ६ निचृत्त्रिष्टुप्॥ षड्‌ृचं सूक्तम्॥

एषा स्या नो दुहिता दिवोजाः क्षितीरुच्छन्ती मानुषीरजीगः।
या भानुना रुशता राम्यास्वज्ञायि तिरस्तमसश्चिदक्तून्॥ १॥

भा०—(एषा) यह (दिवः जाः) सूर्य से उत्पन्न उषा जैसे (उच्छन्ती) प्रकट होती हुई (मानुषीः क्षितीः) मनुष्य प्रजाओं को जगाती है और (राम्यासु) रात्रियों के उत्तर भाग में वह जैसे (रुशता भानुना) चमकते प्रकाश से (अज्ञायि) सबको जान पड़ती है, वह (तमसः अक्तून्) अन्धकार से रात्रियों को (तिरः) पृथक् करती है, (चित्) वैसे ही (एषा) यह (नः) हमारी (दुहिता) पुत्री (दिवः दुहिताः) उत्तम भाव-

नाओं की पूरक और दूर विवाहित होने योग्य कन्या, (दिवः-आः) तेजोमय ज्ञानी पुरुष से विनयादि गुणों में प्रसिद्ध होकर, (मानुषीः क्षितीः अजीगः) मनुष्य प्रजाओं को जगावे और (या) जो (रुशता भानुना) चमकते ज्ञान-प्रकाश से (राम्यासु) रमण-योग्य स्त्रियों में से सर्वश्रेष्ठ (अज्ञायि) प्रसिद्धि प्राप्त कर, जानी जावे, (सा) वह (अक्तून्) पूज्य माता-पिता, सास-ससुर, भाई आदि को (तमसः) शोकादि अन्धकार से (तिरः) पृथक् करे।

वि तद्ययुररुणयुग्भिरश्वैश्चित्रं भान्त्युषसश्चन्द्ररथाः।
अग्रं यज्ञस्य बृहतो नयन्तीर्वि ता बाधन्ते तम ऊर्म्यायाः ॥ २ ॥

भा०—जैसे (उषसः) प्रभात वेलायें (चन्द्र-रथाः) प्रातःकाल तक दीखने वाले चन्द्र पर रथवत् चढ़कर आने वाली होकर, (अरुण-युग्भिः) प्रातःकालिक अरुण वर्ण से युक्त अश्वों अर्थात् किरणों-सहित (तत् वि ययुः) उस परम क्रान्तिमार्ग पर गति करती हैं वैसे ही (उषसः) कमनीय कन्याएं, (चन्द्र-रथाः) उत्तम रथों पर विराजमान होकर (अरुण-युग्भिः) रक्त वर्ण के (अश्वैः) अश्वों से (चित्रं) अद्भुत (वि भान्ति) विशेष रूप से चमकें (तत्) गृह-आश्रम को (ययुः) प्राप्त हों। (यज्ञस्य) श्रेष्ठ प्रजोत्पत्ति रूप अंश को प्राप्त कराती हुई, (ताः) वे सब मिलकर (ऊर्म्यायाः) रात्रि के (तमः) अन्धकार के समान दुःख को (वि बाधन्ते) विविध प्रकार से दूर करें।

श्रवो वाजमिषमूर्जं वहन्तीर्नि दाशुष उषसो मर्त्याय।
मघोनीर्वीरवत्पत्यमाना अवो धात विधते रत्नमद्य ॥ ३ ॥

भा०—हे (उषसः) प्रभात के सदृश कान्ति युक्त कन्याओ! आप (दाशुषे मर्त्याय) अन्न, वस्त्र आदि देने वाले पुरुष के लिये (श्रवः) यश, ज्ञान, (वाजम्) बल, वीर्य, (इषम्) अन्न और (ऊर्जम्) पराक्रम (वहन्तीः) प्राप्त कराती हुई स्वयं (मघोनी) धन-सम्पन्न होकर (पत्य-

मानाः) पति को चाहती हुई (वीरवत् अवः) सन्तानयुक्त कामना, (पत्यमानाः) प्राप्त करती हुई (विधते) विशेष पोषक पति के लिये (अद्य) आज (रत्नम् निधात) पुत्र-रत्न धारण करो ।

इदा हि वो विधते रत्नमस्तीदा वीराय दाशुष उषासः ।
इदा विप्राय जरते यदुक्था नि ष्म मावते वहथा पुरा चित् ॥४॥

भा०—हे (उषासः) प्रभात समान कान्ति-युक्त स्त्रियो ! (वः) आप में से (विधते) विशेषरूप से धारण करने वाले के लिये (इदा हि) इसी समय (रत्नम्) रम्य सुख (अस्ति) है । (वीराय दाशुषे) शूर, दानशील पुरुष को भी (इदा) इस समय (रत्नम् अस्ति) रमण योग्य सुख प्राप्त होता है। आप (पुरा चित्) पहले के समान ही (मावते) मेरे सदृश (जरते विप्राय) उपदेष्टा पुरुष के लिये (यद् उक्था) जो उत्तम वचन हों वे भी (इदा) इस समय ही (नि वहथ स्म) प्रकट करो ।

इदा हि त उषो अद्रिसानो गोत्रा गवामङ्गिरसो गृणन्ति ।
व्य१र्केण बिभिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणामभवद्देवहूतिः ॥ ५ ॥

भा०—हे (अद्रिसानो) पर्वत-शिखर तुल्य दृढ़ आधार पर आरूढ़ (उषः) कन्ये ! (इदा हि) इसी नवयौवन में (अंगिरसः) तेजस्वी लोग (ते) तेरे उपदेश के लिये, (गवाम् गोत्रा गृणन्ति) नाना वाणियों के समूह उपदेश करें और (अर्केण) सूर्यवत् प्रकाशमान, (ब्रह्मणा च) वेद के द्वारा वे (सत्या) सत्य रहस्यों को (वि बिभिदुः) विशेष रूप से खोल कर कहें । इस प्रकार ही (नृणाम्) मनुष्यों में (देव-हूतिः अभवत्) 'देव' उत्तम गुणों वाले वर की प्राप्ति हो ।

उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद्विधते मघोनि ।
सुवीरं रयिं गृणते रिरीह्युरुगायमधि धेहि श्रवो नः ॥ ६ ॥ ६ ॥

भा०—हे (दिवः दुहितः) सूर्य से उत्पन्न उषावत् कमनीय ! स्त्रि !

(प्रत्नवत्) पुराने आचार के तुल्य तू भी (नः) हमारे प्रति (दिवः) सद् व्यवहारों को (उच्छ) प्रकट कर। हे (मघोनि) ऐश्वर्य-युक्ते ! (विधते) पालक स्वामी के लिये (भरद्-वाजवत्) ज्ञानी विद्वान् के तुल्य सत्कार कर। (गृणते) उपदेष्टा पति के लिये, तू (सुवीरं रयिम्) उत्तम पुत्रादि से युक्त धन को (रिरीहि) दे। (नः) हममें (पुरु-गायम् श्रवः) बहुत से अपत्यादि-युक्त धन और बहुतों से स्तुति योग्य ऐश्वर्य (अधि धेहि) धारण कर। इति षष्ठो वर्गः ॥

[६६]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप्। २, ५ विराट्त्रिष्टुप्। ३, ४ निचृत्पंक्तिः। ६, ७, १० भुरिक् पंक्तिः। ८ स्वराट्पंक्तिः। एकादशर्चं सूक्तम् ॥

वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु समानं नाम धेनु पत्यमानम्।
मर्तेष्वन्यद्दोहसे पीपाय सकृच्छुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥ १ ॥

भा०—जैसे वायुओं का (वपुः समानं, धेनु, पत्यमानम्) रूप समान, सबको प्राण से तृप्त करने वाला और गति-युक्त होता है वह (चिकितुषे) विद्वान् के लिये (नाम) कार्यसाधक होता है, उनका एक स्वरूप (मर्त्येषु) प्राणियों में (दोहसे) जीवन देने के लिये (पीपाय) उनको प्राण से तृप्त करता है और दूसरा रूप यह कि (ऊधः पृश्निः) रात्रि में अन्तरिक्ष, एक बार ही (शुक्रं दुदुहे) जल प्रदान करता है। अर्थात् दूसरा गुण वायु का है कि वह अपने में जल को धारण करता है। ऐसे ही (वपुः नु) शरीर (चिकितुषे) चिकित्सक वैद्य की दृष्टि में, (समानं चित् अस्ति) एक समान है। उन सबका (नाम समानं) नाम भी एक समान हो। (पृश्निः) सूर्य समान तेजस्वी, प्रश्नों को सरल करने वाला विद्वान् (धेनु) वत्स को तृप्त करने वाले (ऊधः) गाय के थन के समान (धेनु) सबके तृप्त करने वाले वाङ्मय रूप (पत्यमानम्

ऊधः) प्राप्त होते हुए ज्ञान को धारण कराने वाले, (शुक्रं) कान्तियुक्त वेद को (सकृत् दुदुहे) एक ही वार, ब्रह्मचर्य काल में दोहन करे, प्राप्त करे। वह उसको (अन्यत्) नाना रूप में (मर्त्तेषु) मनुष्यों के बीच (दोहसे) उसका ज्ञान देने के लिये (पीपाय) उसी को बढ़ावे।

ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना द्विर्यत्त्रिर्मरुतो वावृधन्त।
अरेणवो हिरण्ययास एषां साकं नृम्णैः पौंस्येभिश्च भूवन् ॥२॥

भा०—(मरुतः) वायु-समान बली पुरुष (इधानाः अग्नयः न) प्रदीप्त अग्नियों के तुल्य (शोशुचन्) अपने को शुद्ध आचारवान् बनावें। वे (द्विः त्रिः वावृधन्त) दुगना, तिगुना वृद्धि को प्राप्त हों। (एषां) इन के सम्बन्धी (अरेणवः) निर्दोष, (हिरण्ययासः) स्वर्ण आदि ले ऐश्वर्यवान् (नृम्णैः) धनों और (पौंस्यैः च साकं) बलों से सम्पन्न (भूवन्) हों।

रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्रा यांश्चो नु दाधृविर्भरध्यै।
विदे हि माता महो मही षा सेत्पृश्निः सुभ्वे गर्भमाधात् ॥३॥

भा०—(ये) जो (रुद्रस्य) वायु-तुल्य बलवान्, (मीढ्ढुषः) वीर्यसेचन-समर्थ पुरुष के (पुत्राः) पुत्र हैं (यान् च) और जिनको माता (नु) शीघ्र ही (भरध्यै) भरण-पोषण के लिये (विदे) प्राप्त करती है, वे ही (महः) महान् होते हैं और (सा माता) वह माता (मही) बड़ी पूज्य होती है। (सा इत्) वह ही (पृश्निः) पृथ्वी के समान दूध पिला कर पालने-पोषने में समर्थ माता (सुभ्वे) उत्तम पुरुष की वंश-वृद्धि के लिये (गर्भम् आधात्) गर्भ धारण करती और इसी प्रकार (पृश्नि) वृष्टिकारक सूर्यवत् वीर्यसेचन-समर्थ पुरुष (सुभ्वे) उत्तम भूमि के तुल्य स्त्री के शरीर में (गर्भम् आ अधात्) गर्भ धारण करावे।

न य ईषन्ते जनुषोऽया न्वन्तः सन्तोऽवद्यानि पुनानाः।
निर्यद् दुह्रे शुचयोऽनु जोषमनु श्रिया तन्वमुक्षमाणाः ॥ ४ ॥

भा०—(ये) जो विद्वान् (जनुषः) जन्तुओं की (न ईषन्ते) हिंसा

नहीं करते, ऐसे (सन्तः) सन्त जन (अन्तः) अन्तःकरण से (अवद्यानि) निन्द्य विचारों को (पुनानाः) दूसरों को पवित्र करते हुए (शुचयः) स्वयं पवित्र होकर (जोषम्) प्रेम-रस का (अनु निर्दुह्रे) सबको भरपूर प्रदान करते हैं। जैसे (श्रिया) विद्युत्-कान्ति से युक्त वायु-गण (तन्वं) विस्तृत भूमि सेचन करते हैं वैसे ही वे (अनु) बाद में (श्रिया) शोभा से अपने (तन्वम्) यशःशरीर को (उक्षमाणाः) सींचते हैं।

मक्षू न येषु दोहसे चिदया आ नाम धृष्णु मारुतं दधानाः।
न ये स्तौना अयासो मह्ना नू चित्सुदानुरव यासदुग्रान् ॥५॥७॥

भा०—(येषु) जिन मनुष्यों में राजा (मक्षु) शीघ्र ही (दोहसे न) ऐश्वर्य प्राप्ति में समर्थ नहीं होता और जो (अयाः) मनुष्य (धृष्णु) शत्रु विजयी (मारुतं) वायुवत् अनन्त बल (दधानाः) धारण करते हैं और (ये) जो (अयासः) प्रजाजन (स्तौनाः न) चोर नहीं हैं उन (उग्रान्) बलवान् पुरुषों को (चित्) भी (सुदानुः) उत्तम दानशील पुरुष (मह्ना) महान् सामर्थ्य से (नु) शीघ्र ही (अव यासत्) अपने अधीन रखकर एकत्र करे। इति सप्तमो वर्गः ॥

त इदुग्राः शवसा धृष्णुषेणा उभे युजन्त रोदसी सुमेके।
अध स्मैषु रोदसी स्वशोचिरामवत्सु तस्थौ न रोकः ॥ ६ ॥

भा०—जैसे (उग्राः) बलवान् वायुगण (शवसा) बल या जल से (उभे रोदसी सुमेके=सुमेघे युजन्त) उत्तम मेघयुक्त आकाश और पृथिवी दोनों को मिलाते हैं वैसे ही (ते) वे (उग्राः) बलवान् पुरुष (इत्) ही (शवसा) अपने शरीर-बल और ज्ञान-बल से (धृष्णु-सेनाः) शत्रु-पराजय करने वाली सेनाओं को बनाकर (रोदसी उभे) सूर्य और पृथिवी के तुल्य राजवर्ग और प्रजावर्ग (सुमेके) उत्तम रूपवान्, एक दूसरे को बढ़ाने वाले दोनों को (युजन्त) संयुक्त बनायें। (अध स्म) और (अमवत्सु तेषु) बलवान्, सहायवान् उन पुरुषों में ही (रोदसी)

राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों की (स्व शोचिः) अपनी पवित्र ज्योति (रोकः न तस्थौ) उनकी उत्तम रुचि के समान विराजती है।

अनेनो वो मरुतो यामो अस्त्वनश्वश्चिद्यमजत्यरथीः।
अनवसो अनभीशू रजस्तूर्वि रोदसी पथ्या याति साधन् ॥७॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् लोगो ! जैसे वायु-बल से जाने वाला (यामः) यान (अनश्वः चित्) विना अश्व के होता है और (यम्) जिसको (अरथीः) विना सारथी के एक ही आदमी (अजति) चला सकता है, (अनवसः अनभीशूः) जिसमें न कोई गति देने वाला और न कोई लगाम हो, तो भी (रजस्तूः) जल और पृथ्वी दोनों में चले। वैसे ही, हे (मरुतः) विद्वान् लोगो ! (वः यामः) तुम्हारा जीवन का सत्-मार्ग (अनेनः) निष्पाप (अस्तु) हो और वह (अनश्वः अरथीः) अश्व और रथ आदि नाना साधनों से रहित भी (यम् अजति) जिसको चला सके, जिस तक पहुँच सके, वह सच्चरित्रता का मार्ग (अनवसः) जिस पर अन्नादि भोग्य पदार्थों से रहित, (अनभीशुः) बाहु आदि के बल से रहित (रजस्तूः) रजो-गुण को दूर करने वाला पुरुष भी (पथ्या साधन्) हिताचरण करता हुआ (वि याति) विशेष रूप से चलता है।

नास्य वर्ता न तरुता न्वस्ति मरुतो यमवथ वाजसातौ।
तोके वा गोषु तनये यमप्सु स व्रजं दर्ता पार्ये अध द्योः ॥ ८॥

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् वीर और जीवनदाता पुरुषो ! आप (वाज-सातौ) ऐश्वर्य-प्राप्ति और संग्राम-कार्य में (यम् अवथ) जिसकी रक्षा करते हो, (अस्य वर्ता न) न उसे निवारण करने वाला और (अस्य तरुता न नु अस्ति) न उसे मारने वाला कोई होता है। हे वीर पुरुषो ! (यम्) जिसको आप लोग (तोके) पुत्र (तनये) पौत्र, (वा गोषु) और गवादि पशुओं के निमित्त (अवथ) रक्षा करते हो, (सः) वह (व्रजं) गोसमूह को (दर्ता=धर्ता) धारने में समर्थ होता तथा वह

(द्यौः पार्ये) भूमि-पालन में भी (व्रजं दर्त्ता) सैन्य-दल तथा शत्रु के मार्ग, नगर आदि का नाशक होता है।

प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मारुताय स्वतवसे भरध्वम्।
ये सहांसि सहसा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः ॥ ९ ॥

भा०—हे मनुष्यो! आप लोग (गृणते) उपदेश देने, (तुराय) शत्रु-नाश करने और (स्वतवसे) अपने धन को बल के तुल्य धारण करने वाले विद्वान्, क्षत्रिय और वैश्य तीनों प्रकार के (मारुताय) मनुष्य-वर्ग के लिये (चित्रम् अर्कम्) अद्भुत, सत्कारयोग्य ज्ञान, अर्चना-योग्य सत्कार, शस्त्रादि बल तथा अन्न (प्र भरध्वम्) अच्छी प्रकार धारण करो। हे (अग्ने) नायक! विद्वन्! जिनके (मखेभ्यः) संग्रामों और यज्ञों के भय से (पृथिवी) समस्त संसार (रेजते) कांपता है और (ये) जो (सहसा) बल और उत्साह से (सहांसि) शत्रु-सैन्यों को (सहन्ते) पराजित करते हैं उनके लिये भी (चित्रम् अर्क प्र भरध्वम्) नाना संचय-योग्य अन्न दो।

त्विषीमन्तो अध्वरस्येव दिद्युत्तृषुच्यवसो जुह्वो३नाग्नेः।
अर्चत्रयो धुनयो न वीरा भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः ॥ १० ॥

भा०—(अध्वरस्य इव दिद्युत्) जैसे यज्ञ का प्रकाश हो और (अग्नेः जुह्वः न) जैसे अग्नि-ज्वालाएं प्रकाश युक्त हों वैसे ही (मरुतः) वायु-तुल्य बलवान् मनुष्य भी (त्विषीमन्तः) कान्ति-युक्त (तृषु-च्यवसः) तीक्ष्ण-वेग वाले, (अर्चत्रयः) परस्पर सत्कार करने वाले वा माता, पिता, गुरु और परमेश्वर के उपासक (धुनयः न) शत्रुजनों और वृक्षों को वायु-तुल्य कंपाने वाले, (वीराः) शूरवीर, (भ्राजत्-जन्मानः) तेजस्वी शरीर वाले, (अधृष्टाः) विनीत और अपराजित रहें।

तं वृधन्तं मारुतं भ्राजदृष्टिं रुद्रस्य सूनुं हवसा विवासे।
दिवः शर्धाय शुचयो मनीषा गिरयो नाप उग्रा अस्पृध्रन् ॥ ११ ॥ ८ ॥

भा०—मैं प्रजाजन (वृधन्तं) राष्ट्रवर्धक, (रुद्रस्य सूनुम्) दुष्टों को रुलाने वाले, सेनापति, उपदेष्टा आचार्य के पुत्रवत् प्रिय, (तं) उस (मारुतं) बलवान् मनुष्य-गण का (हवसा) अन्नादि से (आविवासे) सत्कार करूं। वे (दिवः) तेजस्वी (शुचयः) शुद्ध, ईमानदार, (मनीषाः) मनस्वी, (गिरयः न) मेघों के समान और (आपः न) जल-धाराओं के समान (शर्धाय) जल-वर्षण और बल के लिये (अस्पृध्रन्) एक दूसरे से बढ़ने के लिये उद्योग करें। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[६७]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ९ स्वराट् पंक्ति। २, १० भुरिक् पंक्तिः। ३, ७, ८, ११ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, ५ त्रिष्टुप्। ६ विराट् त्रिष्टुप्। एकादशर्चं सूक्तम् ॥

विश्वेषां वः सतां ज्येष्ठतमा गीर्भिर्मित्रावरुणा वावृधध्यै।
सं या रश्मेव यमतुर्यमिष्ठा द्वा जनाँ असमा बाहुभिः स्वैः ॥१॥

भा०—हे मनुष्यो! (विश्वेषां वः सताम्) आप समस्त सज्जन पुरुषों के बीच (ज्येष्ठ-तमा) सर्वाधिक श्रेष्ठ (मित्रा-वरुणौ) मित्रवत् स्नेही और दुःखों के वारक वे दोनों हैं जो (द्वा) दोनों मिलकर (असमौ) अन्यों के असमान रहकर भी (वावृधध्यै) राष्ट्र और कुल की वृद्धि के लिये (यमिष्ठौ) संयमशील होकर (गीर्भिः) वाणियों से (जनान् सं यमतुः) लोगों को नियम में रखते हैं और जो (बाहुभिः) बाहुबलों और (स्वैः) धनों के बल से मनुष्यों को काबू करते हैं।

इयं मद्वां प्र स्तृणीते मनीषोप प्रिया नमसा बर्हिरच्छ।
यन्तं नो मित्रावरुणावधृष्टं छर्दिर्यद्वां वरूथ्यं सुदानू ॥ २ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणौ) हे परस्पर स्नेही और एक दूसरे का वरण करने वाले वर-वधू! (इयं मनीषा) यह मेरे मन की कामना (प्रिया वां) आप दोनों प्रिय जनों को (मत्) मेरी ओर से (नमसा)

विनयपूर्वक, अन्नादि के साथ (प्र स्तृणीते) प्राप्त होती है। इसी प्रकार (अच्छ बर्हिः प्र स्तृणीते) उत्तम आसन भी आप के लिये बिछाया जाता है। आप (सु-दानू) उत्तम दानशील होकर (नः) हमें (वरूथ्यं) शीत, वर्षा आदि का वारक (छर्दिः अघृष्टं) दृढ़ गृह (यन्तं) दो।

आ यातं मित्रावरुणा सुशस्त्युप प्रिया नमसा हूयमाना।
सं यावप्नःस्थो अपसेव जनाञ्छ्रुधीयतश्चिद्यतथो महित्वा ॥३॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) स्नेही और वरणकर्त्ता स्त्री-पुरुषो! (चित्) जैसे (अप्नः स्थः) कर्माध्यक्ष पुरुष (अवसा) कर्म से (श्रुधीयतः जनान्) वृत्ति चाहने वाले मनुष्यों को (यतते) काम कराता है वैसे ही (यौ) जो आप दोनों (महित्वा) सामर्थ्य से (श्रुधीयतः) अन्नाभिलाषी (जनान्) जन्तुओं को (सं यतथः) एक साथ कार्य कराओ। (नमसा) सत्कार-पूर्वक (हूयमाना) आमन्त्रित होकर (प्रिया) आपस में प्रिय होकर (सुशस्ति) उत्तम कीर्त्ति को (उप आ यातम्) प्राप्त होवो।

अश्वा न या वाजिना पूतबन्धू ऋता यद् गर्भमदितिर्भरध्यै।
प्र या महि महान्ता जायमाना घोरा मर्ताय रिपवे नि दीधः ॥४॥

भा०—(या) जो आप दोनों (अश्वा न) रथ के दो अश्वों के तुल्य, (वाजिना) बल में समान हैं, जो दोनों (पूत-बन्धू) पवित्र सम्बन्धों से बंधे, (ऋता) सत्य आचरण वाले हो, (यत्) जिन दोनों को (अदितिः) माता के तुल्य भूमि, वा भूमि के समान माता (भरध्यै) पोषणार्थ (गर्भम्) गर्भ-रूप में धारती है और (या) जो आप (मर्त्ताय, रिपवे) सामान्य मनुष्य तथा शत्रु के दमन के लिये (घोरा) भयंकर हो, वे आप (महन्ता) गुणों में महान् (जायमाना) प्रसिद्ध होकर (महि प्र नि दीधः) बहुत बल, ज्ञान का मनन और प्राप्ति करो।

विश्वे यद्वां मंहना मन्दमानाः क्षत्रं देवासो अदधुः सजोषाः।
परि यद्भूथो रोदसी चिदुर्वी सन्ति स्पशो अदब्धासो अमूराः ॥५॥६

भा०—(यत्) जो आप (रोदसी चित्) भूमि, आकाश के तुल्य, जल, अन्न, आश्रय आदि दाता माता-पिता के समान (ऊर्वी) विशाल (परि भूथः) शक्तिमान् होकर रहते हो, उन (वाम्) आप दोनों के (मंहना) सामर्थ्य से (सन्दमानाः) प्रसन्न (विश्वे देवासः) सब मनुष्य, (सजोषाः) समान रूप से प्रीतियुक्त होकर (वां क्षत्रं अदधुः) प्राण अपान के बल इन्द्रिय गण के तुल्य, आप दोनों के बल को धारण करते हैं और आपके (स्पशः) यथार्थ बात को देखने वाले, दूत आदि भी (अदब्धासः) कभी पीड़ित न होने वाले (अमूराः) मोह में न पड़ने वाले (सन्ति) हों। इति नवमो वर्गः ॥

ता हि क्षत्रं धारयेथे अनु द्यून् दृंहेथे सानुमुपमादिव द्योः ।
दृळ्हो नक्षत्र उत विश्वदेवो भूमिमातान्द्यां धासिनायोः ॥ ६ ॥

भा०—(ता हि) वे आप दोनों (अनु द्यून् हि) सब दिनों (क्षत्रं धारयेथे) बल को धारण करें और आप (द्यौः उपमात् इव) सूर्य के तेज और ताप के समान सामर्थ्य से दृढ़ होकर (सानुम्) ऐश्वर्य व उन्नत भाग को (दृंहेथे) वृद्धि करो। (विश्वदेवः नक्षत्रः सन् यथा दृढ़ आयोः धासिना द्याम् आतान्) सब किरणों का स्वामी सूर्य जैसे स्थिर होकर दृढ़ है और वह जीवन वा जन समूह के धारक सामर्थ्य से प्रकाश को फैलाता है वैसे ही (दृढ) सुदृढ़ (नक्षत्रः) व्यापक सामर्थ्यवान्, (विश्व-देवः) सब मनुष्यों का स्वामी, (आयोः धासिना) सब मनुष्यों के जीवन-धारक बल, अन्नादि से (भूमिम् आ आतान्) भूमि को पालन करे।

ता विग्रं धैथे जठरं पृणध्या आ यत्सद्म सभृतयः पृणन्ति ।
न मृष्यन्ते युवतयोऽवाता वि यत्पयो विश्वजिन्वा भरन्ते ॥७॥

भा०—हे स्नेही और परस्पर वरण करने वाले स्त्री-पुरुषो ! (ता) वे आप दोनों, जैसे (जठरं पृणध्यै) उदर-तृप्ति के लिये (विग्रं) विशेष

रूप से गले से नीचे उतारने योग्य चबाया खाद्य प्राप्त करते हो, वैसे ही (जठरं पृणध्यै) पेट भर खिलाने के लिये (विप्रम्) विद्वान् पुरुष का (धैथे) आदर-पूर्वक पोषण करो। (यत्) क्योंकि (स-भृतयः) वेतन प्राप्त करने वाले भृत्यादि लोग (सद्म) एक ही आश्रय गृह को (आपृणन्ति) पूर्ण कर उसे भरते हैं, गृह की सेवा करते हैं, परन्तु (अवाताः युवतयः) अविवाहित युवती स्त्रियें (न मृण्यन्ते) एक दूसरे को सहन नहीं करतीं, इसलिये हे (विश्वजिन्वा) समस्त विश्व को अन्नादि से तृप्त करने वालो! (यत्) जो (पयः सद्म विभरन्ते) नदी तुल्य अन्न-जलादि पुष्टिकारक पदार्थों से गृह को भरें उनका तुम दोनों (धैथे) पालन-पोषण करो।

ता जि॒ह्वया॒ सद॒मेदं सु॑मे॒धा आ यद्वां॑ स॒त्यो अ॑र॒तिर्ऋ॒ते भूत्।
तद्वां॑ महि॒त्वं घृ॑ताना॒वस्तु यु॒वं दा॒शुषे॒ वि च॑यिष्ट॒मंहः॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे स्त्री-पुरुषो! (यत्) जो पुरुष (इदं सदम्) आप दोनों के, विद्वानों के बैठने योग्य इस गृह को प्राप्त होकर (जिह्वया) वाणी से तुम्हें प्राप्त हो, वह (सु-मेधाः) उत्तम बुद्धिमान् आप दोनों को (आ) प्राप्त हो, वह (ऋते) ज्ञान, व्यवहार वा धन के सम्बन्ध में (सत्यः) सच्चा (वाम् अरतिः) आप दोनों का स्वामी (भूत्) हो। (वां तत् महित्वम्) आप लोगों का यह बड़ा गुण हो। हे (घृतान्नौ) घृत-युक्त अन्न खाने वाले सत्पुरुषो! (ता युवं) वे आप दोनों (दाशुषे अंहः) दानी के पाप को (वि चयिष्टम्) दूर करो।

प्र यद्वां॑ मित्रावरुणा स्पू॒र्धन्प्रि॒या धाम॑ यु॒वधि॑ता मि॒नन्ति॑।
न ये दे॒वास॒ ओह॑सा॒ न मर्ता॒ अय॑ज्ञसाचो॒ अप्यो॒ न पु॒त्राः ॥ ९ ॥

भा०—हे (मित्रा-वरुणा) स्नेही एवं वरणीय पूज्य-पुरुषो! (यत्) जो लोग (प्रिया) प्रिय (धामा) आप दोनों के धारण-योग्य कर्मों और पदों की प्राप्ति के लिये (स्पूर्धन्) स्पर्धा करते हैं और (युव-धिता)

आप लोगों के किये कर्मों का (न प्र मिनन्ति) नाश नहीं करते और (ये देवासः) जो विद्वान् (मर्त्ताः) मनुष्य (ओहसा) अपने कर्म-सामर्थ्य से (अयज्ञ-साचः) परस्पर सत्संग को प्राप्त न होकर भी (नः स्पृधन्) आप दोनों के कर्मों में विघ्न नहीं करते वे भी (अप्यः न पुत्राः) आप दोनों के कर्म-निष्ठ एवं प्राप्त दाराओं में उत्पन्न पुत्रों के तुल्य ही प्रिय होते हैं।

वि यद्वाचं कीस्तासो भरन्ते शंसन्ति के चिन्निविदो मनानाः ।
आद्वां ब्रवाम सत्यान्युक्था नकिर्देवेभिर्यतथो महित्वा ॥ १० ॥

भा०—(यत्) जो (कीस्तासः) विद्वान् (वाचं) वेद-वाणी को (वि भरन्ते) धारण करते हैं (यत् केचित्) जो कोई (निविदः शंसन्ति) विद्यायुक्त वाणियों को कहते हैं वे (मनानाः) मननशील हम (सत्यानि उक्था) सत्य वचनों का (आत्) बाद में, (वां ब्रवाम) हे स्त्री-पुरुषो! आप को उपदेश दें। (देवेभिः) उत्तम पुरुषों के साथ आप दोनों (महित्वा) अपने सामर्थ्य से (यतथः) यत्न करते रहो।

अवोरित्था वां छर्दिषो अभिष्टौ युवोर्मित्रावरुणावस्कृधोयु ।
अनु यद् गावः स्फुरानृजिप्यं धृष्णुं यद्रणे वृषणं युनजन् ॥११॥१०॥

भा०—हे (मित्रा-वरुणौ) स्नेही, श्रेष्ठ स्त्री-पुरुषो! (यत् अनु) जिन आप के पीछे (गावः) वाणियें और पशु (अनु स्फुरान्) चलते हैं और (यत्) जो आप (ऋजिप्यं) सत्य-पालक, (धृष्णुं) शत्रु-पराजय-समर्थ (वृषणं) बलवान् पुरुष को (रणे) संग्राम में (युनजन्) नियुक्त करते हैं, उन (अवोः वां) रक्षक आप दोनों के (इत्था) इस प्रकार (छर्दिषः अभिष्टौ) गृह को प्राप्त करने में (अस्कृधोयुः) महत्वाकांक्षी पुरुष (युवोः) आप दोनों के अधीन विद्याभ्यास करे। इति दशमो वर्गः ॥

[६८]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ४, ११

त्रिष्टुप् । ६ निचृत्त्रिष्टुप् । २ भुरिक् पंक्तिः । ३, ७, ८ स्वराट्पंक्तिः । ५ पंक्तिः । ९, १० निचृज्जगती ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

श्रुष्टी वां यज्ञ उद्यतः सजोषा मनुष्वद् वृक्तबर्हिषो यजध्यै ।
आ य इन्द्रावरुणाविषे अद्य महे सुम्नाय मह आववर्तत् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्रा-वरुणौ) 'इन्द्र' ऐश्वर्ययुक्त ! हे 'वरुण' दुःखों के वारक युगल पुरुषो ! (यः वां यज्ञः) जो आप दोनों का परस्पर दान-प्रतिदान, सत्संग (अद्य) आज (महे इषे) उत्तम, इच्छापूर्त्ति और (महे) उत्तम (सुम्नाय) सुख प्राप्ति के लिये (आ ववर्त्तत्) हो वह आप का यज्ञ (श्रुष्टी) शीघ्र ही (सजोषाः) प्रीतियुक्त, (उद्यतः) उत्तम सुनियंत्रित, (मनुष्वत्) मननशील पुरुषों से युक्त और (वृक्तबर्हिषः) तृणों के समान संशयों के छेत्ता पुरुष के (यजध्यै) दान, सत्संग के लिये (आववर्तत्) हो ।

ता हि श्रेष्ठा देवताता तुजा शूराणां शविष्ठा ता हि भूतम् ।
मघोनां मंहिष्ठा तुविशुष्म ऋतेन वृत्रतुरा सर्वसेना ॥ २ ॥

भा०—(ता) वे ऐश्वर्यवान् और शत्रुवारक दोनों पुरुष (हि) निश्चय से, (देवताता) व्यवहारवान् मनुष्यों के बीच (श्रेष्ठा) सबसे उत्तम, (शूराणां तुजा) वीर पुरुषों के पालक और शत्रु-वीरों के नाशक हों । (ताः) वे दोनों (हि) निश्चयपूर्वक (शविष्ठा भूतम्) सर्वाधिक बलशाली होवें । वे दोनों (मघोनां मंहिष्ठा) उत्तम धनसम्पन्न पुरुषों में अति दानशील, (तुवि-शुष्मा) बहुत बली और (ऋतेन) सत्य ज्ञान, धन-बल से (वृत्र-तुरा) मेघवत् बढ़ते शत्रु और विघ्नों के नाशक, (सर्व-सेना) सब सेनाओं के स्वामी (भूतम्) हों ।

ता गृणीहि नमस्येभिः शूषैः सुम्नेभिरिन्द्रावरुणा चकाना ।
वज्रेणान्यः शवसा हन्ति वृत्रं सिषक्त्यन्यो वृजनेषु विप्रः ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (इन्द्रा-वरुणा) ऐश्वर्यवान् और वरण-योग्य,

सैन्य, सेनापति, (सुम्नेभिः) सुखकारी (शूषैः) बलों से (चकाना) तेजस्वी (ता) उन दोनों की (नमस्येभिः) आदर-योग्य वचनों से (गृणीहि) स्तुति कर, उन दोनों में से (अन्यः) एक तो (वज्रेण) बाहुबल से और (शवसा) सैन्यबल से (वृत्रं हन्ति) बढ़ते शत्रु को मारे और (अन्यः) दूसरा (वृजनेषु) सैन्यबलों में (सिषक्ति) समवाय उत्पन्न करे।

ग्नाश्च यन्नरश्च वावृधन्त विश्वे देवासो नरां स्वगूर्ताः।
प्रैभ्य इन्द्रावरुणा महित्वा द्यौश्च पृथिवि भूतमुर्वी ॥ ४ ॥

भा०—(ग्नाः) स्त्रियें और (नरः च) पुरुष (नरां) मनुष्यों में भी (विश्वे देवासः) समस्त व्यवहारकुशल स्त्री-पुरुष (स्वगूर्ताः) स्वयं उद्यमी होकर (वावृधन्त) बढ़ते हैं। हे (इन्द्रा-वरुणा) ऐश्वर्यवान् और श्रेष्ठ पुरुषो! आप दोनों (महित्वा) महान् सामर्थ्य से (एभ्यः) इन प्रजाओं को (द्यौः पृथिवी च) सूर्य और भूमि तुल्य प्रकाश और अन्न देने वाले (प्र भूतम्) होओ।

स इत्सुदानुः स्ववाँ ऋतावेन्द्रा यो वाँ वरुणा दाशति त्मन्।
इषा स द्विषस्तरेद्दास्वान्वंसद्रयिं रयिवतश्च जनान् ॥५॥११॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्ययुक्त! हे वरणीय जनो! (वां) आप में से (यः) जो (त्मन् दाशति) अपने बल पर देता है, (सः इत् सुदानुः) वही उत्तम दाता है, वही (स्व-वान्) धनवान्, वही (ऋतावा) बलवान् है। (सः) वह (दास्वान्) दानी पुरुष ही (इषा द्विषः तरेत्) इच्छा, बल और अन्नसम्पदा से शत्रु को पार करता है, जो (रयिं सत्) ऐश्वर्य को बांटता और (जनान् च रयिवतः करोति) लोगों को धन-सम्पन्न करता है।

यं युवं दाश्वध्वराय देवा रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुक्षुम्।
अस्मे स इन्द्रावरुणावपि ष्यात्प्र यो भनक्ति वनुषामशस्तीः ॥६॥

भा०—हे (इन्द्रा-वरुणा) ऐश्वर्यवान् और गुणों में श्रेष्ठ पुरुषो!

(यूयं) आप दोनों (दाशु-अध्वराय) दानरूप से दूसरे को कष्ट न देने वाले यज्ञ के सम्पादनार्थं (यम्) जिस प्रकार के (वसुमन्तं) धन-सम्पन्न और (पुरु-क्षुम्) बहुत धान्यों से युक्त (रयिं) ऐश्वर्य को (धत्थः) धारण करते हैं (यः) जो ऐश्वर्यं (वनुषाम् अशस्तीः) याचकों की दुःख-दायी दशाओं को (प्र भनक्ति) दूर करता और जो पुरुष (वनुषां अशस्तीः प्र भनक्ति) हिंसक दुष्टों के निन्दित कर्मों को तोड़ता है (सः) वह (अस्मे) हमारे हितार्थं (अपि स्यात्) होवे ।

उत नः सुत्रात्रो देवगोपाः सूरिभ्यः इन्द्रावरुणा रयिः ष्यात् ।
येषां शुष्मः पृतनासु साह्वान्प्र सद्यो द्युम्ना तिरते ततुरिः ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) शत्रुहन्ता और वरण-योग्य ! सैन्य-सेनापति जनो ! (येषां) जिनका (शुष्मः) बल (पृतनासु) संग्रामों वा सेनाओं के बीच (साह्वान्) सर्वविजयी हो, जो (सद्यः) बहुत शीघ्र ही (ततुरिः) शत्रुनाशक होकर (द्युम्ना) धन और बल से (तिरते) शत्रु-नाश करता है और जिनका (रयिः) धन वा बल (नः) हमारे (सूरि-भ्यः) विद्वानों की (सुत्रात्रः) उत्तम रीति से रक्षा करने वाला और (देवगोपाः) मनुष्यों का रक्षक (स्यात्) हो, वही हमारा (सुत्रात्रः) उत्तम रक्षक है ।

नू नं इन्द्रावरुणा गृणाना पृङ्क्तं रयिं सौश्रवसाय देवा ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्धोऽपो न नावा दुरिता तरेम ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) शत्रुहन्तः ! हे शत्रुवारक सेनापति, सैन्यवर्ग ! आप (देवा) विजयशील होकर (गृणाना) मा बाप के तुल्य उत्तम उपदेश देते हुए, (सौश्रवसाय) उत्तम कीर्त्ति के लिये (रयिं पृङ्क्तम्) ऐश्वर्यं प्राप्त करो । (इत्था) इस प्रकार सत्य (महिनस्य शर्धः) महान् प्रभु के बल की हम लोग (गृणन्तः) स्तुति करते हुए (नावा अपः न) नाव से जलों के तुल्य (नावा) और प्रेरणा द्वारा (दुरिता) सब पापों और कष्टों से (तरेम) पार हो जायं ।

प्र सम्राजे बृहते मन्म नु प्रियमर्च देवाय वरुणाय सप्रथः।
अयं य उर्वी महिना महिव्रतः क्रत्वा विभात्यजरो न शोचिषा ॥९

भा०—(यः) जो (महिना) अपने सामर्थ्य से, (उर्वी) विशाल भूमि और आकाश को (शोचिषा न) दीप्ति से सूर्य के समान राजा और प्रजा को (विभाति) प्रकाशित करता है वह (महिव्रतः) बड़े कर्म वाला, (सप्रथः) उत्तम ख्याति-युक्त (अजराः) जरारहित, (क्रत्वा) बुद्धि और कर्म से सम्पन्न है उस (बृहते सम्राजे) बड़े सम्राट्, (देवाय) दानशील (वरुणाय) सर्वश्रेष्ठ पुरुष की (प्रियम् मन्म) प्रिय, मनन-योग्य ज्ञान और स्तुति का (प्र अर्च) सेवन कर।

इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रता।
युवो रथो अध्वरं देववीतये प्रति स्वसरमुप याति पीतये ॥१०॥

भा०—हे (इन्द्रा-वरुणौ) ऐश्वर्यवान् और श्रेष्ठ स्त्री-पुरुषो! (धृत व्रता) व्रतों के धारक (सुत-पा) प्रजा जनों को, राष्ट्र को पुत्रवत् पालन करने वाले, आप दोनों (इमं सुतं) इस पुत्रवत् प्रजा जन को (सोमं) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र वा सौम्य स्वभाव के (मद्यम्) हर्ष-जनक, तृप्तिदायक को (पिबतम्) पालन करो। (युवोः) आप दोनों का (रथः) रमणीय व्यवहार (देव-वीतौ) विद्वानों की रक्षा और कान्ति के लिये, (स्व-सरम् अध्वरम् प्रति) दिन के समान सुप्रकाशित, स्वयं उत्तम वेग से जाने वाले, हिंसा-रहित, अध्ययनाध्यापन कार्य के प्रति (प्रीतये) प्रजा के पालनार्थ (उप याति) प्राप्त हो।

इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम्।
इदं वामन्धः परिषिक्तमस्मे आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादये-थाम् ॥ ११ ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्रा-वरुणा) ऐश्वर्ययुक्त! हे दुःखों के वारक स्त्री-पुरुषो! आप (मधुमत्-तमस्य) अति मधुर (वृषणः) बलकारी (सोमस्य)

ऐश्वर्य से (वृषेथाम्) बली बनो। हे (वृषणा) बली स्त्री-पुरुषो! (इदं) यह (वाम्) आप का (अन्धः) अन्न (अस्मे) हमारे लिये भी (परि-सिक्तम्) सब प्रकार से सिंच कर रक्खा हो और आप (अस्मिन् बर्हिषि) इस वृद्धिशील राष्ट्रगृह में (आसद्य) विराजकर (मादयेथाम्) हर्ष लाभ करो। इति द्वादशो वर्गः॥

[६९]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ इन्द्राविष्णू देवते॥ छन्दः—१, ३, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप्। २,४,८ त्रिष्टुप्। ५ बाहुर्म्युष्णिक्॥ अष्टर्चं सूक्तम्॥

सं वां कर्मणा समिषा हिनोमीन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य।
जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्तमरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता॥ १॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) 'इन्द्र' ऐश्वर्ययुक्त! हे 'विष्णु' अर्थात् व्यापक रूप से विद्यमान, विविध सुखों के दातः! आप दोनों राजा, प्रजाजनो! मैं विद्वान् पुरुष (अस्य अपसः पारे) इस कर्म के पार (वां) आप दोनों को (कर्मणा) कर्म-सामर्थ्य से (सं हिनोमि) अच्छी प्रकार पहुँचाता हूँ और (इषा सं) आज्ञा, सेनादि से भी (वां सं हिनोमि) आप दोनों को बढ़ाता हूँ। आप (नः) हमें (अरिष्टैः) उपद्रव-रहित (पथिभिः) मार्गों से (अस्य अपसः पारे पारयन्ता) इस महान् कर्म के पार पहुँचाते हुए (यज्ञं) इस सत्संग को (जुषेथाम्) प्रेम से स्वीकार करो और (नः द्रविणं च धत्तम्) हमें धनादि दो।

या विश्वासां जनितारा मतीनामिन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना।
प्र वां गिरः शस्यमाना अवन्तु प्र स्तोमासो गीयमानासो अर्कैः॥२

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्यवान् और व्यापक बल-युक्त, सूर्य-विद्युत्वत् स्त्री-पुरुषो! आप दोनों (सोमधाना) ऐश्वर्य-धारक (कलशा) दो कलसों के समान अक्षयनिधि होकर (विश्वासां) समस्त (मतीनां) बुद्धियों को (जनितारा) प्रकट करने वाले होओ। (अर्कैः) स्तुति वा

आदर-योग्य वेदमन्त्रों और सूर्यवत् तेजस्वी पुरुषों से (गीयमानासः) गाये गये (स्तोमासः) स्तुति वचन और वेद-सूक्त तथा (शस्यमानाः) उपदेश की गई (गिरः) वाणियां (वां प्र वहन्तु) आप दोनों को अच्छी प्रकार प्राप्त हों।

इन्द्रा॑विष्णू मदपती मदाना॒मा सोमं॑ यातं॒ द्रवि॑णो॒ दधा॑ना।
सं वा॑मञ्जन्त्व॒क्तुभि॑र्मती॒नां सं स्तोमा॑सः श॒स्यमा॑नास उ॒क्थैः ॥३॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्यवन्! व्यापक सामर्थ्यवन्! राजन्! प्रभो! आप दोनों (द्रविणः दधाना) धनों के धारक होकर (सोमं आ यातम्) ऐश्वर्य, वा सौम्य प्रजा को पुत्र वा शिष्यवत् प्राप्त होओ। आप दोनों (मदानां मदपती) सुखों को प्राप्त कर उनको पालन करने वाले होओ। (मतीनां) मननशील पुरुषों के (शस्यमानासः) कहे गये (स्तोमासः) स्तुतियोग्य उपदेश, (उक्थैः) उत्तम प्रशंसनीय (अक्तुभिः) चमका देने वाले गुणों से (वां सं सं अञ्जन्तु) आप दोनों को अच्छी प्रकार प्रकाशित करें।

आ वा॒मश्वा॑सो अभिमाति॒षाह॒ इन्द्रा॑विष्णू सध॒मादो॑ वहन्तु।
जु॒षेथां॒ विश्वा॒ हव॑ना मती॒नामुप॒ ब्रह्मा॑णि शृणु॒तं॒ गिरो॑ मे ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्यवन्! राजन्! प्रजा में संघशक्ति के स्वामिन्! (वाम्) आप को (अभिमाति सहः) अभिमानी शत्रुओं का पराजय करने में समर्थ, (अश्वासः) घुड़सवार वीर (सध-मादः) एक साथ प्रसन्न होकर (वहन्तु) धारण करें। आप (मतीनां) विद्वानों के (विश्वा) समस्त (हवना) ग्रहण योग्य वचनों का (जुषेथाम्) सेवन करो और (मे) मेरे तथा उन विद्वानों के (ब्रह्माणि) वेदोक्त मन्त्रों और (गिरः) वाणियों को (उप शृणुतम्) न्यायपूर्वक सुनो।

इन्द्रा॑विष्णू॒ तत्प॑न॒याय्यं॑ वां॒ सोम॑स्य॒ मद॑ उ॒रु च॑क्रमाथे।
अकृ॑णुतम॒न्तरि॑क्षं॒ वरी॒योऽप्र॑थतं जी॒वसे॑ नो॒ रजां॑सि ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्यवन् ! व्यापक सामर्थ्यवन् राजन् ! विद्वन् ! (वां) आप दोनों का (तत्) वह (पनयाय्यं) प्रशंसनीय कार्य है कि आप (सोमस्य मदे) अन्न के समान ऐश्वर्य-युक्त राष्ट्र द्वारा हर्ष-लाभ करने पर, (उरु अन्तरिक्षम्) विशाल अन्तरिक्ष को सूर्य-वायु के समान स्वभूमियों के मध्य देश में भी (उरु चक्रमाथे) बहुत पराक्रम करते हो, उसको (वरीयः अकृणुतम्) विस्तृत बनाओ और (नः) हम को (जीवसे) दीर्घ जीवन के लिये (रजांसि अकृणुतम्, अप्रथतम्) नाना ऐश्वर्यों की उत्पत्ति और वृद्धि करो।

इन्द्रा॑विष्णू ह॒विषा॑ वावृधा॒नाग्रा॑द्वाना॒ नम॑सा रातहव्या ।
घृता॑सुती॒ द्रवि॑णं धत्तम॒स्मे स॑मु॒द्रः स्थः॑ क॒लशः॑ सोम॒धानः॑ ॥६॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्ययुक्त, व्यापक, सामर्थ्यवान् पुरुषो ! आप (हविषा) प्रजा से लेने योग्य कर और अन्न से (वावृधाना) बढ़ते, बढ़ाते हुए (रातहव्या) उत्तम अन्नों को मेघवत् देते हुए, (नमसा) शक्ति से (अग्राद्वाना) प्रमुख होकर सम्पत्ति का सबमें विभाग करते हुए, (घृतासुती) सूर्य, मेघवत् तेज और अन्न को उत्पन्न करते हुए, (अस्मे द्रविणं धत्तम्) हमें ऐश्वर्य दो। आप (सोम-धानः) ऐश्वर्य को रखने वाले (कलशः समुद्रः) मुद्रा से अंकित कलश के समान ऐश्वर्य-युक्त, समुद्रवत् रत्नादि के आकर (स्थः) होओ।

इन्द्रा॑विष्णू॒ पिब॑तं॒ मध्वो॑ अ॒स्य सोम॑स्य दस्रा ज॒ठरं॑ पृणेथाम् ।
आ वा॒मन्धां॑सि मदि॒राण्य॑ग्म॒न्नुप॒ ब्रह्मा॑णि शृणु॒तं हवं॑ मे ॥ ७॥

भा०—हे (इन्द्रा-विष्णू) शत्रुनाशक ! तथा विविध विद्याओं के दाता ज्ञानवान् पुरुषो ! आप दोनों (अस्य मध्वः) उस मधुर अन्न वा जल, (सोमस्य) वनस्पति और ऐश्वर्य का भी (पिबतं) उपभोग करो। ऐसे ही (जठरं) अपने उदर को (पृणेथाम्) पूर्ण करो। (वाम्) आप दोनों को (मदिराणि अन्धांसि) हर्षजनक नाना अन्न (अग्मन्) प्राप्त हों, आप (मे हवं उप शृणुतम्) मेरे उपदेश को सुनो और (मे ब्रह्माणि उपशृणुतम्) मेरे उपदिष्ट वेद-मन्त्रों को सुनो।

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः ।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥८॥१३॥

भा०—हे विष्णो ! वायु-समान प्राणप्रद ! और (इन्द्रः च) विद्युतवत् शत्रु-नाशक, आप दोनों (यत्) जब (अप स्पृधेथाम्) बढ़ने का उद्योग करो तब (सहस्रं) अपरिमित ज्ञान, बल और ऐश्वर्य को (त्रेधा ऐरयेथां) तीनों प्रकारों से प्रेरित करो, तीनों को प्रकट करो। (उभा जिग्यथुः) आप दोनों विजय करो, (न पराजयेथे) पराजित न होओ। (कतरः चन एनोः) इनमें से कोई भी (न पराजिग्ये) पराजय को प्राप्त न हो। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[७०]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ द्यावापृथिव्यौ देवते ॥ छन्दः—१, ५ निचृज्जगती ॥ २, ३, ६ जगती ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥१॥

भा०—जैसे (द्यावापृथिवी) सूर्य, भूमि (घृतवती) जल और तेज से युक्त हों तो, (भुवनानाम् अभिश्रिया) सब प्राणियों को आश्रय देने वाले, (मधु-दुघे) जल और अन्न के दाता, (सु-पेशसा) उत्तम रूपयुक्त, (वरुणस्य धर्मणा विस्कभिते) सर्वश्रेष्ठ प्रभु या वायु के धारण सामर्थ्य से थमे हुए (भूरि-रेतसा) बहुत जल, तेज से युक्त होते हैं वैसे ही माता-पिता और वर-वधू दोनों ही (घृतवती) तेज, अन्न और स्नेह से युक्त हों। वे दोनों (भुवनानाम् अभिश्रिया) पुत्रादि के सब प्रकार से आश्रय-योग्य और (उर्वी) विशाल-हृदय, (पृथ्वी) भूमिवत् आश्रय-दाता, (मधु-दुघे) मधुर वचन और अन्न दाता, (सु-पेशसा) उत्तम रूपवान् हों। वे (वरुणस्य) वरण-योग्य पुरुष के (धर्मणा) धर्म से (विस्कभिते) परस्पर आश्रय होकर (अजरे) जरा-रहित, (भूरिरेतसा) बहुत वीर्यवान् हों।

असंश्चन्ती भूरिधारे पयस्वती घृतं दुहाते सुकृते शुचिव्रते ।
राजन्ती अस्य भुवनस्य रोदसी अस्मे रेतः सिञ्चतं यन्मनुर्हितम् ॥ २ ॥

भा०—जैसे (रोदसी) सूर्य, भूमि (असश्चन्ती) पृथक् २ रहकर भी (भूरि-धारे) बहुत जलधाराओं से युक्त (पयस्वती) जल, अन्न से सम्पन्न होकर (घृतं दुहाते) जल, तेज और अन्न देते हैं, वे (मनुर्हितं रेतः सिञ्चतम्) मनुष्य-हितकारी तेज और जल देते हैं, जैसे माता पिता (असश्चन्ती) पृथक् गोत्रों के होते हुए, (भूरि-धारे) बहुत, उत्तम वाणियों और स्तन्यधाराओं से युक्त, (पयस्वती) अन्न और दूध से युक्त, (शुचि-व्रते) पवित्र व्रत-पालक (सु-कृते) पुण्य वाले होकर (घृतं दुहाते) स्रवणशील दुग्ध और अन्न प्रदान करें। वे दोनों (अस्य भुवनस्य) इस संसार में (राजन्ती) गुणों से प्रकाशित होकर (रोदसी) सूर्य-भूमिवत् परस्पर मर्यादा का पालन करते हुए (यत् मनुः हितम्) जो मनुष्य के उत्पन्न करने के लिये पूर्व में धारण किया (रेतः) वीर्य हो, उसको वे दोनों (अस्मे) हमारी प्रजावृद्धि के लिये (सिञ्चतम्) गृहाश्रम में निषिक्त कर धारण करें, सन्तान उत्पन्न करें।

यो वामृजवे क्रमणाय रोदसी मर्तो ददाश धिषणे स साधति ।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि युवोः सिक्ता विषुरूपाणि सव्रता ॥ ३

भा०—हे (धिषणे) बुद्धिमान्, (रोदसी) सूर्य-भूमि तुल्य स्त्री-पुरुषो! (वां) आप में से (यः मर्त्तः) जो मनुष्य (ऋजवे क्रमणाय) धर्म-मार्ग पर चलने के लिये (ददाश) स्वयं को खपाता है (सः साधति) वह सन्मार्ग पर जाता है। वही (युवोः) आप दोनों के बीच (धर्मणः परि) धर्मानुसार (प्रजाभिः प्र जायते) उत्तम सन्तानों द्वारा उत्पन्न होता है। (युवोः) आप दोनों के (सिक्ता) वीर्यों से उत्पन्न सन्तान (विषुरूपाणि) नाना प्रकार के (सव्रता) शुभाचरण युक्त होते हैं।

घृतेन॒ द्यावा॑पृथि॒वी अ॒भीवृ॑ते घृत॒श्रिया॑ घृत॒पृचा॑ घृता॒वृधा॑ ।
उ॒र्वी पृ॒थ्वी हो॑तृ॒वूर्ये॑ पु॒रोहि॑ते॒ ते इद्विप्रा॑ ईळते सु॒म्नमि॒ष्टये॑ ॥ ४ ॥

भा०—(द्यावापृथिवी) सूर्य, भूमि जैसे (घृतेन अभीवृते) जल, प्रकाश से युक्त हैं, वैसे ही स्त्री-पुरुष एक दूसरे की कामना वाले, (घृतेन अभीवृते) स्नेह से सबके समक्ष एक दूसरे से वरण किये जावें। वे दोनों (घृत-श्रिया) जल से शोभित मेघविद्युत् के समान, स्नेह और ज्ञान से शोभा युक्त हों। वे (घृत-पृचा) स्नेहपूर्वक परस्पर सम्बद्ध हों, (घृता-वृधा) स्नेह से बढ़ने और बढ़ाने वाले हों, दोनों वे (उर्वी) बड़े आदरणीय हों (पृथ्वी) भूमि के समान परस्पर आश्रय रूप, (होतृ-वूर्ये) दोनों ही ज्ञानादि दाता विद्वानों का यज्ञों में वरण करने वाले, (पुरोहिते) दोनों एक दूसरे के कार्यों के ऊपर विद्वान् पुरोहित के समान साक्षी हों। (विप्राः) विद्वान् पुरुष (इष्टये) परस्पर संगति के लिये, (ते इत्) उन दोनों को ही (सुम्नम् ईडते) सुखपूर्वक चाहते हैं।

मधु॑ नो॒ द्यावा॑पृथि॒वी मि॑मिक्षतां मधु॒श्चुता॑ मधु॒दुघे॒ मधु॑व्रते ।
दधा॑ने य॒ज्ञं द्रवि॑णं च दे॒वता॒ महि॒ श्रवो॒ वाज॑म॒स्मे सु॒वीर्य॑म् ॥५॥

भा०—(द्यावापृथिवी) सूर्य, भूमि दोनों जैसे (मधुमिमिक्षतः) अन्न, जल वर्षाते हैं वैसे ही वर-वधू दोनों माता-पिता होकर (नः) हमें (मधु मिमिक्षताम्) अन्न, जल दें। वे दोनों (मधु-श्चुता) मधुर पदार्थों के दाता, (मधु-दुघे) मधुर पदार्थों को दोहनकर्ता, (मधु-व्रते) मधुर कर्म वाले हों। वे (अस्मे) हमें (महि) बड़ा (सु-वीर्यम्) उत्तम बल-प्रद (वाजं श्रवः) अन्न, ज्ञान, (द्रविणं यज्ञम् च दधाने) धनैश्वर्य और सत्संग के धारक होकर (मधु मिमिक्षताम्) मधुर अन्न दें।

ऊर्जं॑ नो॒ द्यौश्च॑ पृथि॒वी च॑ पिन्वतां पि॒ता मा॒ता वि॑श्व॒विदा॑ सु॒दंस॑सा । सं॒र॒रा॒णे रोद॑सी वि॒श्वश॑म्भुवा स॒निं वाजं॑ र॒यिम॒स्मे समि॑न्वताम् ॥ ६ ॥ १४ ॥

भा०—(द्यौः च पृथिवी च) सूर्य, पृथिवी जैसे (वः) हमें (ऊर्जं) अन्न देते हैं वैसे ही (विश्व-विदा) सब प्रकार के ज्ञानों को जानने वाले (सुदंससा) उत्तम कर्म कर्ता, (पिता माता) पिता और माता (नः ऊर्जं पिन्वताम्) हमें बलकारक अन्न दें। वे दोनों (विश्वशम्भुवा) समस्त जनों को शान्तिदाता, (रोदसी) सूर्य, पृथिवीवत् (सनि) उत्तम दान-योग्य (वाजं) ऐश्वर्य को (संरराणे) देते हुए, (अस्मे) हमें (रयिं सम् इन्वताम्) बल, वीर्य और धन दें। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[७१]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ सविता देवता ॥ छन्दः—१ जगती । २,३ निचृज्जगती । ४ त्रिष्टुप् । ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । षडृचं सूक्तम् ॥

उदु ष्य देवः स॑वि॒ता हि॑र॒ण्यया॑ बा॒हू अ॑यंस्त॒ सव॑नाय सु॒क्रतुः॑ ।
घृतेन॑ पा॒णी अ॒भि प्रु॑ष्णुते म॒खो युवा॑ सु॒दक्षो॒ रज॑सो॒ विध॑र्मणि ॥१॥

भा०—जैसे (देवः सविता) प्रकाशमान सूर्य (हिरण्यया बाहू) सबके हित और रमणीय 'बाहू' अर्थात् अन्धकार को बाधने वाले किरणों को (उद् अयंस्त) ऊपर थामता है और (सु-दक्षः) खूब दाह-कारी होकर (विधर्मणि) अन्तरिक्ष में विद्यमान (रजसः अभि घृतेन प्रुष्णुते) समस्त भुवनों को तेज से तपाता वा जल से सेचन करता है, वैसे (स्यः देवः) वह दानशील, (सविता) शासक, राजा (सुक्रतुः) उत्तम कर्म से सम्पन्न होकर (सवनाय) ऐश्वर्य वृद्धि और शासन के लिये (हिरण्यया बाहू) हित और सबको प्रिय, सुवर्णालंकृत बाहुवत् हिरण्य अर्थात् लोह के बने, शस्त्रास्त्रों से युक्त, बलवान् सैन्यों को भी (उद् अयंस्त) उत्तम रीति से उठाता, उनको नियन्त्रण में रखता है, वही (मखः) यज्ञ तुल्य पूज्य (युवा) बलवान्, (सु-दक्षः) कार्यकुशल, होकर (विधर्मणि) प्रजाओं के धारण-कार्य में (रजसः अभि) लोक-समूह के प्रति (घृतेन) तेज से (पाणी) अपने हाथों को (प्रुष्णुते) प्रतप्त करता है, जिनसे वह दुष्टों के दमन में समर्थ हो।

देवस्य वयं सवितुः सवीमनि श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने।
यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रसवे चासि भूमनः॥२

भा०—हे प्रभो ! (यः) जो तू (विश्वस्य) समस्त (द्विपदः) दोपाये, मनुष्यों और (यः चतुष्पदः) जो चौपायों, पशुओं तथा (भूमनः) बहुत प्रकार के जगत् के भी (निवेशने) बसने और (प्रसवे) पैदा होने और शासन में (च) भी समर्थ है, उस तुझ (सवितुः) सर्वोत्पादक, (देवस्य) तेजस्वी प्रभु के (वलिष्ठे) अति प्रशंसनीय, (सवीमनि) शासन और (वसुनः दावने) ऐश्वर्य के दान पर हम (स्याम) रहें।

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वं शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम्।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत॥३॥

भा०—हे (सवितः) सर्वोत्पादक प्रभो ! (अदब्धेभिः) नाश न होने वाले रक्षासाधनों और (शिवेभिः) कल्याणकारी उपायों से (अद्य) आज (नः गयम्) हमारे जीवन को (त्वं) तू (परि पाहि) पालन कर। तू (हिरण्य-जिह्वः) सर्व-हितकारी, सुवर्णवत् कान्तियुक्त, (नव्यसे) नये से नये, (सुविताय) सुखपूर्वक गमनयोग्य, ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये (नः रक्ष) हमारी रक्षा कर और (नः) हम पर (अघ-शंसः) पापमार्ग का प्रशंसक पुरुष (माकिः ईशत) कभी प्रभुता न करे।

उदु ष्य देवः सविता दमूना हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्थात्।
अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिह्व आ दाशुषे सुवति भूरि वामम्॥ ४॥

भा०—(सविता देवः प्रतिदोषम् उद् अस्थात्) जैसे प्रकाशमान् सूर्य प्रति रात्रि समाप्ति पर उदय होता है, वैसे ही (स्यः देवः) वह तेजस्वी, (सविता) शासक, (दमूनाः) इन्द्रियों का दमनकर्ता, (हिरण्य-पाणिः) सुवर्णादि को हाथ में रखने वाला होकर (प्रति दोषम्) प्रति दिन (उद् अस्थात्) उठे, वह (अयोहनुः) लोहे के बने अस्त्रों-शस्त्रों से से शत्रु-हन्ता, सेना का स्वामी, (यजतः) सत्संगयोग्य, (मन्द्रजिह्वः)

प्रसन्नकारिणी वाणी को बोलने वाला होकर (दाशुषे) करप्रद प्रजा के उपकारार्थ (भूरिवामम् आसुवति) बहुत सा उत्तम ऐश्वर्य दे।

उदू अयाँ उपवक्तेव बाहू हिरण्यया सविता सुप्रतीका।
दिवो रोहांस्यरुहत्पृथिव्या अरीरमत्पतयत् कच्चिदभ्वम् ॥ ५ ॥

भा०—जैसे (सविता सुप्रतीका उत् अयान् पतयत्, अभ्वम् अरीरमत्, दिवः पृथिव्या रोहांसि अरुहत्) सूर्य सुन्दर प्रतीति-कर तेजों को लेकर उदय होता हुआ जगत् को प्रसन्न करता, भूमि आकाश के उन्नत भागों पर चढ़ता है, वैसे ही जो (सविता) राजा, (उपवक्ता इव) उपदेष्टा पुरुष के समान (हिरण्यया) हित, रमणीय (सुप्रतीका) उत्तम मार्ग को बताने वाले (बाहू) शत्रु-नाशक बाहुओं को (उत् अयान् उ) सदा उद्यत रक्खे, वह (दिवः) तेज के (रोहांसि) उन्नत पदों और (पृथिव्याः रोहांसि) पृथ्वी के उत्तम भागों और ऐश्वर्यों को भी (अरुहत्) प्राप्त करे, (अभ्वम्) महान् राष्ट्र को भी (कत् चित्) कभी (पतयत्) प्राप्त करे और (अरीरमत्) सुख से रमण कर, राष्ट्र को सुखी करके पाले।

वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यं सावीः।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥६।१५॥

भा०—हे (सवितः) सर्वोत्पादक प्रभो! (अद्य) आज तू (अस्मभ्यं) हमारे लिये (वामम्) उत्तम सुख (सावीः) दे। (श्वः उ) और कल भी (वामम्) सुखैश्वर्य (सावीः) दे और तू (दिवेदिवे अस्मभ्यम् वामम् सावीः) प्रतिदिन हमें उत्तम २ सुख ऐश्वर्य दिया कर। हे (देव) दानशील! (वयं) हम लोग (अया धिया) इस उत्तम बुद्धि से युक्त होकर (वामस्य) प्रशंसनीय और (भूरेः) बहुत से (क्षयस्य) गृह, ऐश्वर्य और प्रतिष्ठा के (वामभाजः स्याम) सुखपूर्वक उपभोग करने वाले हों। इति पञ्चदशो वर्गः॥

[७२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रासोमौ देवते ॥ छन्दः—१ निचृत्-त्रिष्टुप् । २, ४, ५ विराट्त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

न्द्रासोमा महि तद्वां महित्वं युवं महानि प्रथमानि चक्रथुः ।
युवं सूर्यं विविदथुर्युवं स्वर्विश्वा तमांस्यहतं निदश्च ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) सूर्य और चन्द्र के समान ऐश्वर्य और वीर्य से युक्त स्त्री-पुरुषो ! (वां तत् महित्वं) तुम दोनों का वह महत्त्व-पूर्ण कार्य है कि (युवं) तुम दोनों (महानि) आदर-योग्य (प्रथमानि) श्रेष्ठ कार्य (चक्रथुः) करो । (युवं) तुम दोनों (सूर्यं) सर्व-प्रकाशक सूर्य तथा प्रभु को, (विविदथुः) अपना आदर्श जानो । (विश्वा तमांसि निदः च) सब प्रकार के अविद्याजनित मोह, शोकादि अन्धकारों का भी (अहतम्) नाश करो ।

इन्द्रासोमा वासयथ उषासमुत्सूर्यं नयथो ज्योतिषा सह ।
उप द्यां स्कम्भथुः स्कम्भनेनाप्रथतं पृथिवीं मातरं वि ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्ययुक्त एवं प्रजा को शासन करने वाले जनो ! आप (उषासं वासयथः) उत्तम कामना-युक्त प्रजा को बसाओ । (सूर्यं) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को (ज्योतिषा सह) उसके तेज सहित (उत् नयथः) उत्तम पद प्राप्त कराओ । (स्कम्भनेन) आश्रय-दाता स्तम्भ से जैसे गृह की छत को थामा जाता है, वैसे ही (स्कम्भ-नेन) आश्रयप्रद सामर्थ्य से (द्यां) परस्पर कामना वाले दूसरे अंग को (स्कम्भथुः) अपने ऊपर थामो । (पृथिवीं मातरम्) पृथिवी के समान माता को (वि अप्रथतम्) विशेष रूप से विख्यात करो । मातृ-जाति का अधिक मान करो ।

इन्द्रासोमावहिमपः परिष्ठां हथो वृत्रमनु वां द्यौरमन्यत ।
प्रार्णांस्यैरयतं नदीनामा समुद्राणि पप्रथुः पुरूणि ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्रासोमौ) आचार्य, शिष्य ! हे स्त्री-पुरुषो ! (अपः परि-स्थाम् अहिम् वृत्रम् हथः) जैसे जलों के धारक व्यापक मेघ को विद्युत् और वायु आघात करते हैं वैसे ही आप दोनों (अपः परि-स्थाम्) उत्तम कर्मों वा ज्ञानों के ऊपर स्थित (वृत्रम् अहिम्) आवरणकारी अज्ञान को (हथः) विनष्ट करो। (वां) आप दोनों में से (द्यौः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (अनु अमन्यत) उत्तम कार्य की अनुमति दिया करे। आप दोनों (नदीनां) नदियों के (अर्णांसि) जलों को विद्युत् के समान, (नदीनाम्) समृद्धि-युक्त प्रजाजनों के (अर्णांसि) ऐश्वर्यों को (प्र ऐरयतम्) प्रदान करो। (पुरूणि) बहुत से (समुद्राणि) समुद्रवत् विस्तृत कामनायोग्य उत्तम कर्मों को (आ पप्रथुः) विस्तृत करो।

इन्द्रासोमा पुक्वमामास्वन्तर्नि गवामिद्दधथुर्वक्षणासु।
जगृभथुरनपिनद्धमासु रुशच्चित्रासु जगतीष्वन्तः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) वायु, विद्युत्वत् युगल जनो ! जैसे (आमासु अन्तः पक्वम् निदधथुः) सूर्य, वायु वा सूर्य, चन्द्र कच्ची ओषधियों में रस भरते हैं, जैसे (गवां वक्षणासु जलं नि दधथुः) भूमियों के बीच नदियों में वायु और मेघ जल भरते हैं, वैसे ही आप (आमासु) सह धर्मचारिणी दाराओं में (पक्वम् वीर्यं नि दधथुः) परिपक्व वीर्य आधान करो और (गवाम्) धर्मदाराओं के (वक्षणासु अन्तः) कोखों में शिशु का (नि दधथुः) पालन करो। (आसु) उनके बीच सब उत्तम व्यवहार (अनपिनद्धम्) बन्धन-रहित, स्पष्ट रूप से (जगृभथुः) ग्रहण करो और (चित्रासु जगतीषु अन्तः) अद्भुत सृष्टियों में (रुशत्) तेजोयुक्त पदार्थ को (जगृभथुः) ग्रहण कराओ।

इन्द्रासोमा युवमङ्ग तरुत्रमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथे।
युवं शुष्मं नर्यं चर्षणिभ्यः सं विव्यथुः पृतनाषाहमुग्रा ॥५॥१६॥

भा०—हे (इन्द्रसोमा) सूर्य-चन्द्रवत् स्त्री-पुरुषो ! (युवम्) आप दोनों (तरुत्रम्) पार उतारने वाले (अपत्य-साचं) सन्तान-युक्त,

(श्रुत्यं) श्रवण-योग्य धन को (रराथे) दो। आप (उग्रा) बलवान् होकर (चर्षणिभ्यः) मनुष्यों के हितार्थ (नर्यं) नायकोचित (पृतनाषाहम्) सैन्य विजेता (शुष्मं) बलवान् पुत्र को (सं विव्यथुः) सन्तान रूप से उत्पन्न करो। इति षोडशो वर्गः॥

[७३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ बृहस्पतिर्देवताः॥ छन्दः—१,२ त्रिष्टुप् ३ विराट् त्रिष्टुप्॥ तृचं सूक्तम्॥

यो अद्रिभित्प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान्।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत्पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति॥१॥

भा०—(यः) जो (अद्रि-भित्) मेघों के भेदक सूर्य के समान, (अद्रिभित्) शस्त्रयुक्त सैन्यों को भेदने में समर्थ (प्रथमजाः) मुख्य रूप से प्रकट होने वाला, (ऋतावा) तेज को सेवन करने वाला, (हविष्मान्) अन्नों का स्वामी, (आङ्गिरसः) अङ्गारों के समान तेजस्वी विद्वानों का स्वामी है, (बृहस्पतिः) वही 'बृहस्पति' अर्थात् बड़े भारी राष्ट्र का पालक है। वह (द्विबर्हज्मा) शास्त्र-बल और बुद्धिबल दोनों से राष्ट्र की वृद्धि करने वाला (प्राघर्मसत्) उत्तम तेज-धारक (नः पिता) हमारा पालक होकर (रोदसी) राजा, प्रजा दोनों को (आ रोरवीति) सब प्रकार से आज्ञा करे।

जनाय चिद्य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार।
घ्नन्वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूँरमित्रान्पृत्सु साहन्॥२॥

भा०—(यः) जो (बृहस्पतिः) बड़े राष्ट्र का स्वामी राजा (देवहूतौ) विद्वानों व शूरों को निमन्त्रित करने योग्य यज्ञ व संग्राम में (ईवते जनाय) शरणागत मनुष्य की रक्षार्थ (उ) भी (लोकं) आश्रय (चकार) करता है और जो (वृत्राणि) शत्रुओं को (घ्नन्) मारता हुआ, (अमित्रान्) स्नेहरहित (शत्रून्) शत्रुओं को (पृत्सु) संग्रामों में (साहन्)

हराता और (जयन्) जीतता, (पुरः वि दर्दरीति) शत्रु पुरों को तोड़ता-फोड़ता है ।

बृहस्पतिः समजयद्वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन्त्स्वः रप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥३॥१७॥

भा०—(बृहस्पतिः) बड़े राष्ट्र का स्वामी, (देवः) दानशील राजा, (महः वसूनि) बहुत ऐश्वर्यों और बसने योग्य जनपदों को (सम् अजयत्) विजय करे और (एषः) वह (महः) बड़े (गोमतः) भूमि-युक्त (व्रजान्) मार्गों को जीते । वह (बृहस्पतिः) बड़े ऐश्वर्य और सैन्यादि का पालक होकर (अप्रतीतः) अन्यों से मुकाबला न किया जाकर, (अपः सिषासन्) मेघवत् जलों की वर्षा करता हुआ और (स्वः) राष्ट्र में सम्पदाएं विभक्त करता हुआ, (अमित्रम्) शत्रु को (अर्कैः) शस्त्रों द्वारा (हन्ति) दण्ड दे । इति सप्तदशो वर्गः ॥

[७४]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ सोमारुद्रौ देवते ॥ छन्दः—१; २, ४ त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

सोमारुद्रा धारयेथामसुर्यं१ प्र वामिष्टयोऽरमश्नुवन्तु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधाना शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥

भा०—हे (सोमारुद्रा) चन्द्रवत् आह्लादक, सोम और रुद्र अर्थात् रोगों को दूर करने वाले वैद्य के समान देश से दुष्टों को भगाने वाले राजन् ! आप दोनों (असुर्यं धारयेथाम्) जल वा पवन के तुल्य बल धारण करो । (वाम्) आप दोनों के (इष्टयः) दान हमें (अरम् अश्नुवन्तु) खूब प्राप्त हों । आप दोनों (दमे-दमे) प्रत्येक घर में (सप्त रत्ना दधाना) सातों रत्न धारण कराते हुए (नः द्विपदे) हमारे दोपाये और चौपायों को (शं शं भूतम्) अति शान्तिदायक होओ ।

सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।
आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचैरस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥२॥

भा०—हे (सोमारुद्रा) 'सोम' अर्थात् जल के समान शान्ति-दायक और 'रुद्र' अर्थात् रोगहारक अग्नि के समान पीड़ा नाशक वैद्य के तुल्य आर्तिनाशक! (या अमीवा) जो रोग-दायक पीड़ा (नः गयम्) हमारे प्राणयुक्त देह में (आविवेश) प्रविष्ट हो (विषूची) विविध अनर्थों से युक्त उस को (वि-वृहतम्) सर्वथा उखाड़ फेंको और (निर्ऋतिं) कष्टदायी विपत्ति को (पराचैः बाधेथाम्) दूर से ही हरो और (अस्मै) हमें (भद्रा सौश्रवसानि सन्तु) सुखदायी अन्न-समृद्धियें प्राप्त हों।

सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम्।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥३॥

भा०—हे (सोमारुद्रा) जल और अग्नितत्वों के तुल्य शान्तिदायक, रोगहारक पुरुषो! (युवम्) आप दोनों (अस्मे तनूषु) हमारे शरीरों के निमित्त (एतानि) इन (विश्वा) समस्त (भेषजानि) रोग नाशक औषधों को (धत्तम्) धारण करो। (नः तनूषु) हमारे शरीरों में (यत्) जो (कृतं) किया हुआ (एनः) पाप (बद्धं अस्ति) बंधा है उसको (अव स्यतम्) दूर करो और (अस्मत्) हमसे (अव मुञ्चतम्) छुड़ाओ।

तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृळतं नः।
प्र नो मुञ्चतं वरुणस्य पाशाद् गोपायतं नः सुमनस्यमाना ॥४॥१८

भा०—(सोमारुद्रौ) जल-अग्निवत् शान्तिदायक, पीड़ानाशक जन (तिग्म-आयुधौ) तीक्ष्ण प्रहारसाधनों से युक्त, (तिग्म-हेती) तीक्ष्ण शस्त्रों वाले, (सु-शेवौ) सुखदाता पुरुष (नः सुमृडतम्) हमें सुखी करें। वे दोनों (सु-मनस्यमाना) शुभ चित्त वाले (वरुणस्य पाशात्) वरुण अर्थात् प्रबल रोग के पाश से (नः मुञ्चतम्) हमें छुड़ावें और (नः गोपायतम्) हमारी रक्षा करें। इत्यष्टादशो वर्गः॥

[७५]

पायुर्भारद्वाज ऋषिः ॥ देवता—१ वर्म । २ धनुः । ३ ज्याः । ४ आर्त्नी । ५ इषुधिः । ६ सारथिः । ६ रश्मयः । ७ अश्वाः । ८ रथः । ९ रथगोपाः । १० लिङ्गोक्ताः । ११, १२, १५, १६ इषवः । १३ प्रतोदः । १४ हस्तघ्नः । १७—१९ लिङ्गोक्ता तङ्ग्रामाशिषः (१७ युद्धभूमिर्ब्रह्मणस्पतिरदितिश्च । १८ कवचसोमवरुणाः । १९ देवाः । ब्रह्म च) ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४, ५, ७, ८, ९, ११, १४, १८ त्रिष्टुप् । ६ जगती । १० विराड् जगती । १२, १९ विराडनुष्टुप् । १५ निचृदनुष्टुप् । १६ अनुष्टुप् । १३ स्वराडुष्णिक् । १७ पंक्तिः ॥

एकोनविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥१॥

भा०—(यत्) जो वीर (वर्मी) कवच धारण करके (समदाम् उपस्थे) संग्राम में (याति) जाता है वह (जीमूतस्य इव) मेघ तुल्य (प्रतीकं) प्रतीत होता है । हे वीर ! तू (अनाविद्धया तन्वा) अक्षत शरीर से (जय) विजय कर । (वर्मणः सः महिमा) कवच का यही गुण है कि शरीर पर घाव न लगे । वही कवच (त्वा पिपर्तु) तेरी रक्षा करे ।

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ २ ॥

भा०—जो (धनुः) धनुष (शत्रोः) शत्रु के (अपकामं) मन चाहे फल का नाश (कृणोति) करता है, ऐसे (धन्वना) धनुष के बल से हम लोग (गाः जयेम) भूमियों का विजय करें । उसी (धन्वना आजिं जयेम) धनुष से संग्राम को जीतें । उसी (धन्वना तीव्राः समदः जयेम) धनुष से हम वेग से आने वाली हर्ष-युक्त शत्रुसेनाओं को भी जीतें ।

(धन्वना) धनुष के बल से हम (सर्वाः दिशः जयेम) समस्त दिशाओं को जीतें।

व॒क्ष्यन्ती॒वेदा ग॑नीगन्ति॒ कर्णं॑ प्रि॒यं सखा॑यं परिषस्वजा॒ना।
योषे॑व शिङ्क्ते॒ वित॒ताधि॒ धन्व॒ञ्ज्या इ॒यं सम॑ने पा॒रय॑न्ती ॥ ३ ॥

भा०—(योषा-इव) जैसे स्त्री (प्रियं सखायं परि-षस्वजाना) प्रिय मित्र को आलिङ्गन करती हुई (वक्ष्यन्ती इव) कुछ कहती सी हुई (कर्णम् आ गनीगन्ति) कान के पास आती है, वैसे (अधि धन्वन्) धनुष पर (वितता) तनी (ज्या) डोरी, मित्रवत् धनुर्दण्ड के साथ लगकर मानो वीर के कान में कुछ कहती हुई सी कान तक आती है और (समने पारयन्ती) संग्राम में संकट से पार करती हुई (शिङ्क्ते) मधुर रव करती है।

ते आ॒चर॑न्ती॒ सम॑नेव॒ योषा॑ मा॒तेव॑ पु॒त्रं बि॑भृतामु॒पस्थे॑।
अप॒ शत्रू॑न् विध्यतां संविदा॒ने आर्त्नी॑ इ॒मे वि॑ष्फु॒रन्ती॑ अ॒मित्रा॑न् ॥४॥

भा०—(समना-इव योषा) समान-मन हुई स्त्री जैसे पति को और (माता इव पुत्रं) माता जैसे पुत्र को (आचरन्ती) प्रेम-व्यवहार करती हुई (संविदाने) परस्पर ऐकमत्य होकर (उपस्थे बिभृताम्) अपने पास, गोद में धारण करती है वैसे ही (ते) वे (इमे) दोनों (आर्त्नी) धनुष की कोटियां भी (सं-विदाने) एक साथ डोरी से मिलकर (अमित्रान् विस्फुरन्ती) शत्रुओं का नाश करती हुई (शत्रून् अप विध्यताम्) शत्रुओं को मार भगावें।

ब॒ह्वी॒नां पि॒ता ब॒हुर॑स्य पु॒त्रश्चि॒श्चा कृ॑णोति॒ सम॑नाव॒गत्य॑।
इ॒षु॒धिः सङ्काः॒ पृत॑नाश्च॒ सर्वाः॑ पृ॒ष्ठे निन॑द्धो जयति॒ प्रसू॑तः ॥५॥१९

भा०—जैसे (बह्वीनां पिता) एक पुरुष बहुत-सी कन्याओं का पिता हो और (अस्य बहुः पुत्रः) उसके बहुत से पुत्र हों, वे सब (समना अवगत्य चिश्चा कृणोति) एक स्थान पर मिलकर चीं-चां करें

ठीक वैसे ही (इषुधिः) बाणों का धारक तरकस (बह्वीनां पिता) बहुत से बाणों का पालक होने से उनका पिता है और (अस्य) इस से निकला बाणसंघ (बहुः पुत्रः) बहुत से पुत्रों के तुल्य है। वह (समना अवगत्य) संग्राम में आकर (चिश्चा कृणोति) 'चींचां' ध्वनि करता है। वह (इषुधिः) तरकस (पृष्ठे निनद्धः) वीर के पीठ-पीछे बंधकर, भागते शत्रु की पीठ पर लगे सन्नद्ध वीर के समान (प्र-सूतः) मानो बाणों को अपने में से पैदा-सा करता हुआ (सर्वाः सं-काः) समस्त संग्राम में स्थित, संघ बनाकर खड़ी (पृतनाः) सेनाओं को (जयति) जीतता है। वैसे ही (इषुधिः) बाण-धारक वीर भी (नि-नद्धः) कवच बांधे शत्रु के पीछे लगकर बाणों को फेंकता हुआ शत्रु सेनाओं को जीते। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

रथे॒ तिष्ठ॑न्नयति वा॒जिनः॑ पु॒रो यत्र॑यत्र का॒मय॑ते सुषार॒थिः।
अ॒भीशू॑नां महि॒मानं॑ पनायत॒ मनः॑ प॒श्चादनु॑ यच्छन्ति र॒श्मयः॑॥६॥

भा०—(सु-सारथिः) रथ चालक उत्तम सारथी (रथे तिष्ठन्) रथ पर बैठा हुआ, (यत्र-यत्र कामयते) जहां-जहां चाहता है वहां २ (वाजिनः) वेगवान् अश्वों को (पुरः नयति) आगे-आगे ले जाता है। (मनः) मन जैसे इन्द्रियों को वश रखता है वैसे (रश्मयः) रासें भी घोड़ों को (पश्चात् अनु यच्छन्ति) पीछे से नियम में बांधे रहती हैं। हे विद्वानो! आप (अभीशूनां महिमानं पनायत) रासों के सामर्थ्य का वर्णन करो।

ती॒व्रान् घोषा॑न् कृण्वते॒ वृष॑पाण॒योऽश्वा॒ रथे॑भिः स॒ह वा॒जय॑न्तः।
अ॒व॒क्राम॑न्तः॒ प्रप॑दैर॒मित्रा॑न् क्षि॒णन्ति॒ शत्रूँ॒रन॑पव्ययन्तः॥ ७॥

भा०—(रथेभिः सह वाजयन्तः) रथों के साथ वेग से जाते हुए, (वृष-पाणयः) शकट में लगे बैलों के समान अधिक भार-वहन में समर्थ (अश्वाः) घोड़े और (रथेभिः सह वाजयन्तः) रथों और रथ-सवारों

सहित युद्ध करने वाले (वृष-पाणयः) बलवान् शरवर्षी धनुष हाथ में लिये, (अश्वाः) बलवान् अश्व-सवार सेनानायक (तीव्रान् घोषान् कृण्वते) तीव्र गर्जना करते हैं। वे (प्रपदैः) आगे के कदमों से (अमित्रान् अव-क्रामन्तः) शत्रुओं को रौंदते हुए, स्वयं (अनप-व्ययन्तः) दूर न जाते हुए भी स्थिर रह कर (शत्रून् क्षियन्ति) शत्रुओं का नाश करते हैं।

रथवाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म।
तत्रा रथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः॥ ८॥

भा०—(यत्र) जिसमें (अस्य) इस वीर के (रथवाहनं) रथ को चलाने वाले उपकरण, (हविः) अन्न और (नाम) शत्रु को नमाने वाले (आयुधं) अस्त्रादि और (अस्य) इसका (वर्म) कवच भी (निहितम्) रक्खे हों (तत्र) उस रथवत् राष्ट्र में हम (सु-मनस्यमानाः) शुभ-चित्त होकर रहें और (विश्वाहा) सब दिनों (शग्मं) सुखकारी (रथम्) रथ को (सदेम) प्राप्त हों, रथ पर सवारी करें।

स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः।
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः॥९॥

भा०—(स्वादु-संसदः) सुखजनक ऐश्वर्यादि भोग हेतु न्यायासन आदि पदों पर स्थित (वयः-धाः) दीर्घायु, बल-धारक (कृच्छ्रे-श्रितः) संकटों में प्रजाओं के आश्रय (शक्तिवन्तः) शक्तिमान्, (गभीराः) गंभीर, (चित्र-सेनाः) अद्भुत सेनाओं के स्वामी (इषु-बलाः) धनुषबाण के बल से युक्त, (अमृध्राः) शत्रुओं से न मारे जाने योग्य, (सतः-वीराः) बल से सम्पन्न, (व्रात-साहाः) शत्रु-दलों को हराने वाले, (उरवः) संख्या में अधिक (पितरः) पालक, पिता के तुल्य आदरणीय हों।

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा ।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत
॥ १० ॥ २० ॥

भा०—हे (पितरः) पालक पिता-माता के समान आदर-योग्य (सोम्यासः) सोम अर्थात् पुत्र वा शिष्यों के प्रति हितकारी (ब्राह्मणासः) वेद ज्ञाता पुरुषो ! आप (रक्ष) हमारी रक्षा करो और (ऋतवृधः) न्याय, ऐश्वर्य की वृद्धि करते हुए (ईशत) शासन करो । (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी दोनों (नः) हमें (दुरितात् पातु) दुष्टाचरण से बचावें और (अघशंसः) पाप की शिक्षा देने वाला पुरुष (नः माकिः ईशत) हम पर प्रभुत्व न करे । इति विंशो वर्गः ॥

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥ ११ ॥

भा०—इषवः देवताः । यह 'इषु' बाण (मृगः) सिंह-तुल्य वेग से आक्रमण करने वाला चमचमाता हो । वह (सुपर्णं) उत्तम वेग से जाने योग्य पंखों को (वस्ते) धारण करता है । (अस्याः दन्तः) इस बाण का, दांत के समान तीक्ष्ण फला हो । वह (सं-नद्धा) खूब दृढ़ता से बंधा हो और (गोभिः प्र-सूता पतति) धनुष की डोरियों से प्रेरित होकर वह दूर जाता है । (यत्र) जिस संग्राम में (नरः सं द्रवन्ति च वि द्रवन्ति च) मनुष्य मिलकर वेग से दौड़ते और विविध दिशाओं में भागते हैं (तत्र) उस युद्ध में भी (अस्मभ्यम्) हमें वे (इषवः) बाण गण (शर्म यंसन्) शरण प्रदान करते हैं ।

ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥ १२ ॥

भा०—हे (ऋजीते) सरल न्याय मार्ग में चलने हारे विद्वन् ! तू (नः) हमें (परिवृङ्धि) रक्षा कर । (नः) हमारा शरीर (अश्मा)

पत्थर या शिला के समान कठोर (भवतु) हो। (सोमः) विद्वान्, उत्तम शास्ता (नः अधि) हमारे ऊपर (ब्रवीतु) शासन करे। (अदितिः) अखण्डशासन और यह अदीन प्रजा वा भूमि-माता (नः शर्म यच्छतु) हमें सुख दे।

आ जंङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उप जिघ्नते।
अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय॥ १३॥

भा०—हे (अश्वाजनि) अश्वों को चलाने वाली, कशा तुल्य आज्ञा-दात्रि विदुषि! राजसभे! तू (अश्वान्) अश्व तुल्य (प्रचेतसः) विद्वान् पुरुषों को (समत्सु) संग्रामों और आनन्द के अवसरों पर (चोदय) सन्मार्ग में चला। जो विद्वान् (एषां) इन दुष्ट लोगों के (सानु) अवयवों पर (आ जङ्घन्ति) प्रहार करते और (जघनान्) नीच जनों, मारने वाले वा मारने योग्य शत्रु जनों को (उप जिघ्नते) मारने में समर्थ होते हैं उनको (समत्सु चोदय) संग्रामों में ठीक प्रकार से चला।

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान्पुमांसं परि पातु विश्वतः॥१४

भा०—(अहिः इव भोगैः बाहुम् परि एति) सांप जैसे अपने अंगों से बाहु के इर्द-गिर्द लिपट जाता है, वैसे (हस्त-घ्नः) हाथ में लगा दस्तबन्द भी (भोगैः) अपने अवयवों से (बाहुं परि एति) बाहु के इर्द-गिर्द रहता है और (ज्यायाः) डोरी के (हेतिं) आघात को (परि-बाधमानः) बचाता है। वैसे ही (पुमान्) वीर पुरुष (हस्त-घ्नः) सधे हाथ से शत्रुओं को मारने में कुशल (अहिः इव) मेघ-तुल्य (भोगैः) प्रजा को पालने में समर्थ शस्त्रादि सहित (बाहुम् परि एति) शत्रु को बांधने वाले सैन्य को प्राप्त होता और (ज्यायाः) प्राण-नाशक शत्रु-सेना के (हेतिं) शस्त्रबल को (परि-बाधमानः) दूर से ही नाश करता हुआ,

(विश्वा वयुनानि) सब ज्ञानों को जानता हुआ (विश्वतः) सब प्रकार से (पुमांसं परि पातु) सहयोगी पुरुष की रक्षा करे।

आलाक्ता या रुरुशीर्ष्ण्यथो यस्या अयो मुखम्।
इदं पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः ॥ १५ ॥ २१ ॥

भा०—जैसे 'इषु' अर्थात् बाण की डण्डी (आल-अक्ता) विष-बुझी, (रुरु-शीर्ष्णी) मृग-समान अग्रमुख वाली, (अथो) और (यस्याः मुखम्) जिसके मुख में (अयः) लोहे का फल लगा रहता है वह (पर्जन्यरेतसे) मेघ-जल से सिंचकर वृद्धि पाती है उसको ही हम (बृहत् नमः) बड़ा शत्रु नमाने का साधन बनाते हैं, वैसे ही (या) जो स्त्री (आलाक्ता= आरक्ता वा आरा-अक्ता) ईषत् अनुराग-युक्त (रुरुशीर्ष्णी) हरिण के समान शिर, मुख, नयनों से युक्त, (अथो यस्य मुखम् अयः) और जिसका मुख सुवर्णालंकार से भूषित हो, ऐसी (पर्जन्यरेतसे) सुखदाता प्रिय पुरुष के वीर्य को धारण करने वाली (इष्वै) मनोकामना-युक्त (देव्यै) उत्तम विदुषी स्त्री को प्राप्त करने अर्थात् गृहस्थ बसाने के लिये इस (बृहत् नमः) बहुत आदर, अन्नादि से ग्रहण करें। इत्येकविंशो वर्गः ॥

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते।
गच्छामित्रान्प्र पद्यस्व मामीषां कं चनोच्छिषः ॥ १६ ॥

भा०—हे (शरव्ये) बाण फेंकने में कुशल सेने! बाण जैसे (अव-सृष्टा परा पतति) छूट कर दूर पड़ता है, वैसे ही तू भी (अव-सृष्टा) छूट कर (परा पत) दूर तक जा, हे (ब्रह्म-संसिते) वेदज्ञ सेनानायक, या धनैश्वर्य-प्राप्ति के लिये अति तीक्ष्ण तू (अमित्रान् गच्छ) शत्रुओं को लक्ष्य करके जा, (तान्-प्रपद्यस्व) उन तक पहुँच और (अमीषां) उनमें से (कं चन मा उत् शिषः) किसी को भी मत बचा।

यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव।
तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥१७

भा०—जिस गृह में (वि शिखाः) बिना शिखा के, चूड़ा-कर्म करने के उपरान्त मुंडित (कुमाराः सं पतन्ति) बालक आते हैं वहां जैसे (ब्रह्मणः पतिः) वेद-पालक विद्वान् और (अदितिः) माता-पिता सदा ही (शर्म यच्छन्ति) सुख प्रदान करते हैं वैसे ही (यत्र) जिस रण में (कुमाराः) छुरी मार मारने वाले (वि-शिखाः) विशेष तीक्ष्ण शिखा वाले, पैने, (बाणाः सम्पतन्ति) बाण एक साथ आ गिरते हैं (तत्र) वहां (ब्रह्मणः पतिः) धनैश्वर्य, वेद और बड़े राष्ट्र का पालक (अदितिः) अखण्ड राज्य का स्वामी होकर (नः शर्म यच्छतु) हमें सुख शान्ति दे। (विश्वाहा शर्म यच्छतु) वह सदा हमें शान्ति दे।

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥ १८ ॥

भा०—हे योद्धः! (ते) तेरे (मर्माणि) मर्मस्थलों को (वर्मणा) कवच से (छादयामि) ढकता हूँ। (राजा सोमः) तेजस्वी, 'सोम' ऐश्वर्यवान् पुरुष (त्वा) तुझे (अमृतेन) अन्नादि से (अनु वस्ताम्) सुरक्षित करें। (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ (ते) तेरे लिये (उरोः वरीयः कृणोतु) बहुत २ धन प्रदान करे। (जयन्तं त्वा अनु) विजयी तेरे पीछे (देवाः) उत्तम मनुष्य (मदन्तु) हर्षित हों।

यो नः स्वो अरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥१९॥२२॥६॥६॥

भा०—(यः) जो (नः) हमारा (स्वः) अपना (अरणः) बिना युद्ध के ही है, जिससे कोई हमारा झगड़ा भी नहीं, (यः च) और जो (निस्त्यः) छिपा रहकर भी (नः) हमें (जिघांसति) मारना चाहता है (तं) उस शत्रु को (सर्वे) समस्त (देवाः) युद्धकुशल पुरुष (धूर्वन्तु) विनष्ट करें। (मम) मेरा (अन्तरं) निकटतम (वर्म) कवच (ब्रह्म) बहुत बड़ा, महान् चेतन ही है। इति द्वाविंशो वर्गः ॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

॥ इति षष्ठं मण्डलं समाप्तम् ॥

अथ सप्तमं मण्डलम्

[१]

वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१-१८ एकादशाक्षरपदैस्त्रिपदा विराड्गायत्री । १९-२५ त्रिष्टुप् ॥ पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

अ॒ग्निं नरो॒ दीधि॑तिभिर॒रण्यो॒र्हस्त॑च्युती जनयन्त प्रश॒स्तम् ।
दू॒रे॒दृशं॑ गृ॒हप॑तिमथ॒र्युम् ॥ १ ॥

भा०—(नरः) मनुष्य (दीधितिभिः) अंगुलियों से और (हस्त-च्युती) हाथों से घुमा २ कर (अरण्योः) दो अरणि काष्ठों में (अग्निं जनयन्त) अग्नि को उत्पन्न करें जो (प्रशस्तम्) सबसे उत्तम (दूरे-दृशं) दूर से दीखने योग्य और (अथर्युम्) जो पीड़ा न दे । वैसे ही (नरः) नायक लोग (हस्त-च्युती) हनन-साधन शस्त्रास्त्रों के सञ्चालन द्वारा शत्रु-नाश करके (अरण्योः) उत्तरारणि और अधरारणिवत् पूर्वपक्ष, उत्तर पक्ष के दोनों दलों में से (दीधितिभिः) कर्मों को धारण करने में समर्थ सहाय-सहित वा उसके गुणों, प्रकाशक स्तुतियों से (प्रशस्तम्) गृह-स्वामीवत् राष्ट्र-पालक (अग्निं) तेजस्वी पुरुष को (जनयन्त) प्रकट करें ।

तम॒ग्निमस्ते॒ वस॑वो॒ न्यृ॑ण्वन्त्सुप्रति॒चक्ष॒मव॑से॒ कुत॑श्चित् ।
द॒क्षाय्यो॒ यो दम॒ आस॒ नित्यः॑ ॥ २ ॥

भा०—(वसवः अग्निम् अस्ते कुतश्चित् नि ऋण्वन्) जैसे नये बसे गृहाश्रम में प्रविष्ट जन कहीं से भी अग्नि को लाकर स्थापित करते हैं वह (दक्षाय्यः नित्यः दमे आस) सब कर्म करने हारा, गृह में नित्य रूप से रहता है वैसे (यः) जो (नित्यः) स्थिर, (दक्षाय्यः) चतुर होकर (दमे आस) प्रजाओं के दमन में लगा रहे । (तम्) ऐसे (सु-

प्रति-चक्षम्) प्रत्येक विद्या को उत्तम रीति से देखने वाले (कुतश्चित्) किसी भी कुल से उत्पन्न पुरुष को (अग्निम्) नायक रूप से (वसवः) राष्ट्र में बसी प्रजाएं (अवसे) राष्ट्र-रक्षार्थं (नि-ऋण्वन्) नियुक्त करें।

प्रेद्धो॑ अग्ने दीदिहि पु॒रो नो॒ऽज॑स्रया सू॒र्म्या॑ यविष्ठ।
त्वां शश्व॑न्त॒ उप॑ यन्ति॒ वाजाः॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! नायक! तू (प्र-इद्धः) अच्छी प्रकार प्रकाशित होकर (नः पुरः) हमारे आगे (अजस्रया) निरन्तर (सूर्म्या) उत्तम क्रिया और वाणी से, (दीदिहि) चमक और, हे (यविष्ठ) अति बलवन्! (त्वां) तुझको (शश्वन्तः) अनेक (वाजाः) जानने और प्राप्त करने योग्य पदार्थ, ऐश्वर्यादि (उपयन्ति) प्राप्त होते हैं।

प्र ते अ॒ग्नयो॒ऽग्निभ्यो॒ वरं॒ निः सु॒वीरा॑सः शोशुचन्त द्यु॒मन्तः॑।
यत्रा॒ नरः॑ स॒मास॑ते सुजा॒ताः ॥ ४ ॥

भा०—(अग्निभ्यः अग्नयः) पूर्व कारणरूप अग्नियों से उत्पन्न जैसे अन्य कार्यरूप अग्नियें (द्यु-मन्तः) तेजोयुक्त होकर (शोशुचन्त) चमकती हैं, वैसे ही (अग्निभ्यः) अग्रणी विद्वानों से (वरं) श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करके (द्युमन्तः) ज्ञानप्रकाश से युक्त होकर (अग्नयः) विद्वान् जन (निः शोशुचन्त) खूब चमकें। (यत्र) जहां (सु-जाताः) शुभ गुणों से प्रसिद्ध, (नरः) प्रधान पुरुष (सम आसते) एकत्र होकर विराजते हैं।

दा नो॑ अग्ने धि॒या र॒यिं सु॒वीरं॑ स्वप॒त्यं स॑हस्य प्रश॒स्तम्।
न यं यावा॒ तर॑ति यातु॒मावा॑न् ॥ ५ ॥ २३ ॥

भा०—अग्नि जैसे (धिया) कर्म द्वारा (प्रशस्तं) उत्तम (सु-वीरं) सुख से बहुतों को सञ्चालित करने में समर्थ (स्व-पत्यं) अपना ऐसा वेगयुक्त (रयिं) बल उत्पन्न करता है (यं यावा) जिसको पैरों से जाने वाला या (यातुमावान्) यानसाधनों अश्वादि का स्वामी भी पार नहीं करता, ऐसे ही हे (अग्ने) नायक! तू (धिया) बुद्धि और कर्मकौशल

से (नः) हमें (सुवीरं) उत्तम वीरों से समृद्ध (स्वपत्यं=सु-अपत्यं) उत्तम सन्तान से युक्त (प्रशस्तं रयिम्) प्रशंसनीय ऐश्वर्य (दाः) दे (यं) जिसको (यावा) आक्रमणकारी और (यातुमा-वान्) पीड़ा देने में समान बल-सामर्थ्य वाला जन (न तरति) पार न कर सके। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

उप॒ यमेति॑ युव॒तिः सु॒दक्षं॑ दो॒षा वस्तो॑र्ह॒विष्म॑ती घृ॒ताची॑ ।
उप॒ स्वैन॑म॒रम॑तिर्वसू॒युः ॥ ६ ॥

भा०—(हविष्मती घृताची दोषा वस्तोः सुदक्षं) घृत, चरु आदि हविष्यान्न से युक्त, घृत से पूर्ण आहुति जैसे दिन-रात्रि, सायं-प्रातः उत्तम ग्राहक अग्नि को प्राप्त होती है और (युवतिः दोषा वस्तोः) युवती स्त्री जैसे दिन-रात्रि काल में निवासार्थ उत्तम कुशल पुरुष के पास (हविष्मती) उत्तम भोजन लेकर (घृताची) घृत आदि स्निग्ध पदार्थ अंग में लगाकर (उप एति) पुरुष को प्राप्त होती है और जैसे (वसू-युः) वसु, २४ वर्ष के ब्रह्मचारी युवा पुरुष को चाहने वाली (अरमति) पूर्व रति को न प्राप्त ब्रह्मचारिणी (स्वा) स्वयं (उप एति) प्राप्त होती है वैसे ही (यम्) जिस (सु-दक्षं) उत्तम कर्म-कुशल पुरुष को (हवि-ष्मती) ऐश्वर्यादि से युक्त (घृताची) अन्नादि से पूर्ण भूमि या प्रजा (उप एति) प्राप्त होती है, (वसू-युः) अपने बसाने वाले प्रभु और नाना धनों की कामना करती हुई (अरमतिः) अन्य कहीं विश्राम-सुख न पाकर (स्वा) उसकी निजी सम्पत्ति-सी बन कर (एनम्) उसको ही (उप एति) प्राप्त होती है।

विश्वा॑ अग्ने॒ऽप॑ द॒हारा॑ती॒र्येभि॒स्तपो॑भि॒रद॑हो॒ जरू॑थम् ।
प्र नि॑स्व॒रं चा॑तय॒स्वामी॑वाम् ॥ ७ ॥

भा०—जैसे अग्नि (तपोभिः) तीक्ष्ण तापों से (जरूथम्) सूखे घास को जलाती है वैसे ही हे (अग्ने) तेजस्विन् नायक! तू (येभिः)

जिन (तपोभिः) संतापदायक शस्त्रास्त्रादि से (जरूथम्) परुषभाषी शत्रु को (अदहः) दग्ध करे उनसे ही (अरातीः) शत्रुओं को भी (अप दह) भस्म कर और शत्रु को (अमीवाम्) कष्टप्रद रोग के समान (नि-स्वरं) निः-शब्द, मृतवत् करके (चातयस्व) पीड़ित कर और उसे नष्ट कर।

आ यस्ते अग्न इधते अनीकं वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक ।
उतो न एभिः स्तवथैरिह स्याः ॥ ८ ॥

भा०—जैसे अग्नि वा विद्युत् अपने प्रकाशक को प्राप्त होता है, वैसे ही, हे (अग्ने) विद्वन्! हे (वसिष्ठ) बसने वालों में श्रेष्ठ! हे (शुक्र) कान्तिमन्! हे (दीदिवः) तेजस्विन्! हे (पावक) पंक्तिपावन! (यः) जो (ते) तेरे (अनीकं) तेजोवत् सैन्य बल को (आ इधते) अति दीप्त करता है, उस प्रजावर्ग (उत) और (नः) हमें भी (एभिः स्तवथैः) इन स्तुति वचनों सहित (इह स्याः) यहां प्राप्त हो।

वि ये ते अग्ने भेजिरे अनीकं मर्ता नरः पित्र्यासः पुरुत्रा ।
उतो न एभिः सुमना इह स्याः ॥ ९ ॥

भा०—(उत) और हे (अग्ने) प्रतापवन्! (ये) जो (मर्त्ताः) मनुष्य (नरः) नेता रूप से (पुरु-त्रा) बहुत पदों पर (पित्र्यासः) माता-पिता के पद के योग्य, उन सदृश प्रजा-पालक होकर (ते अनीक) तेरे सैन्य को (भेजिरे) बनाते हैं (एभिः) उनके साथ तू (नः) हमें (सुमनाः) शुभ चित्तवान् होकर (इह स्याः) इस राष्ट्र में रह।

इमे नरो वृत्रहत्येषु शूरा विश्वा अदेवीरभि सन्तु मायाः ।
ये मे धियं पनयन्त प्रशस्ताम् ॥ १० ॥ २४ ॥

भा०—हे राजन्! (ये) जो (मे) मुझ राष्ट्रवासी जन के हितार्थ (प्रशस्तां) उत्तम (धियं) बुद्धि को (पनयन्त) उपदेश करते हैं (इमे) ये (नरः) लोग (शूराः) वीर होकर (वृत्र-हत्येषु) शत्रुओं को मारने के लिये संग्रामों में (विश्वाः) समस्त (अदेवीः) अशुभ (मायाः) शत्रुकृत छलादि को (अभि सन्तु) पराजित करें। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

मा शूने अग्ने नि षदाम नृणां माशेषसोऽवीरता परि त्वा।
प्रजावतीषु दुर्यासु दुर्य ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्ने) राजन्! हे (दुर्य) गृहों के स्वामिन्! हम (अशेषसः) बिना सन्तानादि के होकर (शूने) शून्य गृहों में (मा नि सदाम) कभी न बैठें और (नृणां) मनुष्यों के बीच हम (त्व परि) तेरे अधीन (अवीरता) वीरता-रहित होकर (मा नि सदाम) उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त न करें और (प्रजावतीषु दुर्यासु) प्रजा-युक्त गृह में बसी स्त्रियों के बीच रहते हुए हम (अशेषसः अवीरता मा निषदाम) पुत्रादि और शौर्यादि से रहित होकर घरों में न बैठें, प्रत्युत पुत्रवान्, वीर प्रजाजन हों।

यमश्वी नित्यमुपयाति यज्ञं प्रजावन्तं स्वपत्यं क्षयं नः।
स्वजन्मना शेषसा वावृधानम् ॥ १२ ॥

भा०—(यम् यज्ञम्) जिस यज्ञ को (अश्वी) इन्द्रियरूप अश्वों का स्वामी (नित्यम् उप याति) नित्य प्राप्त करता है और (यम् प्रजावन्तं) जिस प्रजा से युक्त, (क्षयं) बसे हुए, (स्वपत्यं) अपने अधिपतित्व में विद्यमान देश को (अश्वी) अश्व-सैन्यों का स्वामी राजा प्राप्त होता है और जो निवास-योग्य गृह (स्व-जन्मना) अपने से जन्म लाभ करने वाले (शेषसा) पुत्र और धन से (वावृधानम्) बढ़ते हुए को भी प्राप्त होता है, उसी (प्रजावन्तं) पुत्रादि-समृद्ध (स्वपत्तं=सु-अपत्यं) उत्तम पुत्र-युक्त और (स्व-जन्मना शेपसा वावृधानं क्षयं) अपने वीर्य से उत्पन्न सुपुत्र से बढ़ते हुए यज्ञस्वरूप (क्षयं) गृह को (नः) हमें भी प्राप्त करा।

पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात् पाहि धूर्तेरररुषो अघायोः।
त्वा युजा पृतनायूँरभि ष्याम् ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! प्रभो! आप (अजुष्टात्) धर्म सेवन न करने वाले, (रक्षसः) क्रोधी, हिंसक, (अघायोः) पापाचारी, दुर्जन

से भी (नः पाहि) हमारी रक्षा करो। मैं (त्वा युजा) तुझ सहायक से (पृतनायून्) संग्राम के इच्छुक शत्रुओं को भी (अभि स्याम्) पराजित करने में समर्थ होऊं।

सेद॒ग्निर॒ग्नीँ रत्य॑स्त्व॒न्यान्यत्र॑ वा॒जी तन॑यो वी॒ळुपा॑णिः।
स॒हस्र॑पाथा अ॒क्षरा॑ स॒मेति॑ ॥ १४ ॥

भा०—जैसे (अन्यान् अग्नीन् अति) अन्य सब अग्नियों से बढ़ कर (अग्निः) यज्ञाग्नि (वाजी) अन्नादि-आहुति-युक्त और (सहस्रपाथाः) अनेक विध अन्नो वाला होकर (अक्षरा समेति) मेघ के उदकों सहित प्राप्त होता है, वैसे ही (यत्र) जहां (अग्निः) तेजस्वी नायक (अन्यान् अग्नीन् अति) अन्य तेजस्वी पुरुषों को अतिक्रमण करके स्वयं (वाजी) बलवान् (तनयः) प्रजाजनों का पुत्रवत् प्रेमपात्र और (वीळु-पाणिः) वीर्यवान् हाथों वाला हो, (सः इत् अग्निः) वही 'अग्नि' है। वह ही (सहस्रपाथा) सहस्रों जनों का पालक, अन्नों से समृद्ध होकर (अक्षरा) न नाश होने वाली नदियों के समान सदाबहार प्रजाओं को (सम् एति) प्राप्त होता है।

सेद॒ग्निर्यो व॑नुष्य॒तो नि॒पाति॑ स॒मेद्धार॒मंह॑स उरु॒ष्यात्।
सु॒जा॒तासः॒ परि॑ चरन्ति वी॒राः ॥ १५ ॥ २५ ॥

भा०—(यः) जो (वनुष्यतः) आजीविकादि चाहने वालों की (निपाति) रक्षा करता है और (समेद्धारम्) अपने को प्रदीप्त, बलवान् करने वाले को (अंहसः) पाप से (उरुष्यात्) रक्षा करे और जिसकी (सुजातासः) उत्तम जन्म वाले (वीराः) द्विज, शिष्य, (परिचरन्ति) सेवा करते हैं (सः इत् अग्निः) वह गुरु अग्निवत् तेजस्वी है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

अ॒यं सो अ॒ग्निराहु॑तः पुरु॒त्रा यमीशा॑नः॒ समिदि॒न्धे ह॒विष्मा॑न्।
परि॒ यमेत्य॑ध्व॒रेषु॒ होता॑ ॥ १६ ॥

भा०—जैसे अग्नि को (ईशानः सम् इन्धे) जगत् का स्वामी सूर्य विद्युत् से प्रज्वलित करता है और (होता अध्वरेषु परि एति) जैसे अग्नि को आहुतिदाता हिंसा-रहित यज्ञादि कर्मों में प्राप्त होता है वैसे ही (यम्) जिस प्रतापी पुरुष को (हविष्मान्) अन्नादि का स्वामी, (ईशानः) राष्ट्र का अध्यक्ष (सम् इन्धे इत्) अच्छी प्रकार प्रज्वलित करता है और (यम्) जिसका (अध्वरेषु) प्रजापालन, हिंसारहित एवं कार्यों में (होता) कर आदि देने और विद्यादि ग्रहण करने वाली प्रजा वा शिष्यादि जन (परि एति) परिचर्या करता है (सः) वह ही (अयम्) यह (अग्निः) ज्ञानवान्, प्रकाशक पुरुष (पुरुत्रा) बहुत से कार्यों में (आहुतः) सादर स्वीकार-योग्य है ।

त्वे अग्न आहवनानि भूरीशानास आ जुहुयाम नित्या ।
उभा कृण्वन्तो वहतू मियेधे ॥ १७ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! जैसे हम लोग (मियेधे) यज्ञ में (आहवनानि) आहुति-योग्य अन्नादि (आ जुहुयाम) आहुति करते हैं, वैसे ही (ईशानासः) ऐश्वर्ययुक्त होकर हम लोग (त्वे) तेरे अधीन (नित्या आहवनानि) नित्य देने योग्य अन्न-वस्त्रादि (आ जुहुयाम) आदरपूर्वक दें और (मियेधे) यज्ञादि के समय भी (वहतू) कार्य वा गृहस्थाश्रम के भार के धारक वर-वधू वा यजमान-पुरोहित (उभा) दोनों को (आ कृण्वन्तः) सन्मुख करते हुए (त्वे आ जुहुयाम) अग्निवत् तुझमें दान दें ।

इमो अग्ने वीततमानि हव्याजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ ।
प्रति न ईं सुरभीणि व्यन्तु ॥ १८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! जैसे अग्नि (देवतातिम् हव्या वहति) यज्ञ को प्राप्त कर उसमें चरु आदि ग्रहण करता है वैसे ही तू भी (इमा) इन (वीततमानि हव्या वक्षि) उक्त कामना-योग्य अन्नादि

पदार्थों को धारण कर और कामना-योग्य सुन्दर ज्ञान को धारण कर, दूसरों तक पहुँचा। तू (अजस्रः) अहिंसित होकर (देवतातिम् अच्छ) शुभ गुणों को प्राप्त कर और (नः) हमें (सुरभीणि) शक्तिप्रद अन्न (ईम्) सब प्रकार से (प्रति व्यन्तु) प्रति दिन प्राप्त हों।

मा नो अग्नेऽवीरते परा दा दुर्वाससेऽमतये मा नो अस्यै।
मा नः क्षुधे मा रक्षस ऋतावो मा नो दमे मा वन आ जुहूर्थाः १९

भा०—हे (अग्ने) नायक ! प्रभो ! (नः) हमें (अवीरते) वीरों से रहित देश में, (मा परा दाः) मत छोड़। (दुर्वाससे) मैले-कुचैले वस्त्र पहनने वाले के लाभ के लिये और (अस्यै अमतये) इस मति-रहित पुरुष के सुख के लिये (नः मा परा दाः) हमें मत त्याग अर्थात् तू हमें मैला, कुचैला और मूढ मत रहने दे। हे विद्वन् ! (क्षुधे नः मा परा दाः) भूख से पीड़ित होने या भूखे के आगे भी हमें मत डाल। हे (ऋतावः) न्यायशील ! तू हमें (रक्षसे मा परा दाः) राक्षस के सुख के लिये मत त्याग। (नः) हमें (दमे मा आ जुहूर्थाः) घर में पीड़ित न होने दे। (नः वने मा आ जुहूर्थाः) हमें वन में भी मत त्याग।

नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२०॥२६

भा०—हे (देव) ऐश्वर्यदातः ! (अग्ने) तत्व-प्रकाशक विद्वन् ! (त्वं) तू (मे) मेरे हितार्थ (ब्रह्माणि) वेदमन्त्रों का (उत् शशाधि) उत्तम रीति से अनुशासन कर। हे विद्वन् ! तू (मघवद्भ्यः) ऐश्वर्यवान् पुरुषों के हितार्थ (ब्रह्माणि उत् शशाधि) वेद-मन्त्रों का उपदेश कर और (सु-सूदः) दुःखों को दूर कर। हम (उभयासः) विद्वान् और अविद्वान् दोनों (ते रातौ आ स्याम) तेरे दान में समर्थ हों। हे विद्वान् जनो ! (यूयम्) आप सब (नः) हमें (स्वस्तिभिः) कल्याणजनक साधनों से (पात) रक्षा करो। इति षड्विंशो वर्गः॥

त्वमग्ने सुहवो रण्वसंन्दृक् सुदीती सूनो सहसो दिदीहि।
मा त्वे सचा तनये नित्य आ धङ् मा वीरो अस्मन्नर्यो वि दासीत्॥२१

भा०—जैसे (सहसः सूनुः अग्निः रण्वसंदृक् सुदीती दीप्यते) बल-पूर्वक उत्पन्न अग्नि, विद्युत् कान्ति से चमकता और रम्य रूप से दीखता है, वह (मा अधङ्) हमें भस्म न करे और (मा वि दासीत्) पीड़ा न दे। वैसे ही हे (अग्ने) तेजस्वी पुरुष! (त्वं) तू (सु-हवः) उत्तम दान-योग्य पदार्थों का ग्रहणकर्ता तथा (रण्व-संदृक्) रमणीय रूप से दीखने हारा हो। हे (सहसः सूनो) बलवान् पुरुष के पुत्र! तू (सुदीती) उत्तम दीप्ति से (दिदीहि) चमक। (सचा) सम्बन्ध से (त्वे तनये) तेरे सदृश पुत्र रहने पर तू पितृजनों को (मा आ धङ्) दग्ध न कर, कुलक्षणों से उन्हें न सता। ऐसे ही (वीरः नर्यः) हमारा पुत्र और वीर मनुष्यों का हितकारी होकर (मा वि दासीत्) नष्ट न हो।

मा नो अग्ने दुर्भृतये सचैषु देवेद्धेष्वग्निषु प्र वोचः।
मा ते अस्मान्दुर्मतयो भृमाच्चिद्देवस्य सूनो सहसो नशन्त॥२२॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (सचा) सहयोगी होकर (देवेद्धेषु अग्निषु) उत्तम गुणों से प्रदीप्त तेजस्वी पुरुष के होते हुए भी (नः) हमें (दुर्भृतये) दुःख से भरण पोषण करने वाले कुस्वामी की सेवा के लिये (मा प्र वोचः) कभी मत कह। हे (सहसः सूनो) बलवान् के पुत्र! (देवस्य ते) तेजस्वी तेरी (दुर्मतयः) दुष्ट बुद्धि (भृमात् चित्) भूलकर भी (अस्मान् मा नशन्त) हमें प्राप्त न हों।

स मर्तो अग्ने स्वनीक रेवानमर्त्ये य आजुहोति हव्यम्।
स देवता वसुवनिं दधाति यं सूरिरर्थी पृच्छमान एति॥ २३॥

भा०—(यः) जो पुरुष (अमर्त्ये) न मरने वाले परमेश्वर में (हव्यम्) अग्नि में हव्य के समान देने योग्य चित्त को (आ जुहोति) आहुति देता है, हे (स्वनीक अग्ने) उत्तम बलशालिन्! विद्वन्! (सः

मर्त्तः) वह मनुष्य (रेवान्) रयि अर्थात् भौतिक देहादि का उत्तम स्वामी होकर रहता है। (यं) जिस परमेश्वर को (सूरिः) विद्वान् और (अर्थी) अर्थार्थी वा ज्ञानार्थी (पृच्छमानः) विद्वानों से ब्रह्म-विषयक शक्तियों और ज्ञानों का पूछने हारा पुरुष (वसु-वनिं दधाति) उत्तम ऐश्वर्य धारता या जीवगणों को न्यायानुसार देता है।

म॒हो नो॑ अग्ने सुवि॒तस्य॑ वि॒द्वान् र॒यिं सू॒रिभ्य॒ आ व॑हा बृ॒हन्त॑म् ।
येन॑ व॒यं स॑हसाव॒न्मदे॒मावि॑क्षितास॒ आयु॑षा सु॒वीराः॑ ॥ २४ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! तू (नः) हमारे (सुवितस्य) सुखदायक हित का (विद्वान्) ज्ञाता, (सूरिभ्यः) विद्वान् पुरुषों के लाभ के लिये (बृहन्तं रयिम्) बहुत ऐश्वर्य (आ वह) प्राप्त कर। हे (सहसावन्) बल से राष्ट्र पर प्रभुत्व करने हारे ! (येन) जिस ऐश्वर्य से (वयम्) हम (अविक्षितासः) बिना क्षीण हुए (मदेम) प्रसन्न हों और (आयुषा) दीर्घ जीवन से युक्त और (सु-वीराः) उत्तम वीर पुत्रों वाले हों।

नू मे॒ ब्रह्मा॑ण्यग्न॒ उच्छ॑शाधि॒ त्वं दे॑व म॒घव॑द्भ्यः सुषूदः ।
रा॒तौ स्या॑मो॒भया॑स॒ आ ते॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः २५।८७।६

भा०—व्याख्या देखो (मं० ७ । सू० १ । मन्त्र २०) इति सप्तविंशो वर्गः ॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

———

अथ द्वितीयोऽध्यायः

[२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ आप्रं देवता ॥ छन्दः—१, ९ विराट्त्रिष्टुप् । २, ४ त्रिष्टुप् । ३, ६, ७, ८, १०, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ पंक्तिः ।
एकादशर्चं सूक्तम् ॥

जुषस्व नः समिधमग्ने अद्य शोचा बृहद्यजतं धूममृण्वन् ।
उप स्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः सं रश्मिभिस्ततनः सूर्यस्य ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (नः) हमारे (समिधम्) काष्ठ को अग्नि के तुल्य तेजस्वी होने के साधन को (जुषस्व) प्राप्त कर। (अद्य) आज (बृहत्) बड़े (यजतं) सम्मेलन को (शोच) सुशोभित कर और धूम तुल्य (धूमम्) शत्रु को कंपाने वाला सामर्थ्य (ऋण्वन्) देता हुआ, (स्तूपैः) रश्मियों से सूर्य के समान (स्तूपैः) स्तुत्य गुणों से (दिव्यं सानु) कान्तियुक्त ऐश्वर्य को (उपस्पृश) प्राप्त कर और (रश्मिभिः) रश्मियों से (सूर्यस्य) सूर्य-तुल्य तेज को (सं ततनः) फैला।

नराशंसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।
ये सुक्रतवः शुचयो धियं धाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥२॥

भा०—(ये) जो (सु-क्रतवः) उत्तमकर्मा (शुचयः) शुद्ध चरित्र-वान् (धियं-धाः) उत्तम बुद्धि के धारक, (देवाः) विद्वान् (उभयानि) शरीर, आत्मा दोनों को पुष्ट करने वाले, (हव्या) अन्नों और ज्ञानों का (स्वदन्ति) आस्वाद लेते हैं (एषाम्) उनकी और (यज्ञैः) यज्ञों, दानों, सत्कारों से (यजतस्य) सत्कार-योग्य, (नराशंसस्य) मनुष्यों से स्तुति-योग्य पुरुष के (महिमानम्) बड़े सामर्थ्य की हम (उप स्तोषाम) स्तुति करें।

ईळेन्यं वो असुरं सुदक्षमन्तर्दूतं रोदसी सत्यवाचम् ।
मनुष्वदग्निं मनुना समिद्धं समध्वराय सदमिन्महेम ॥ ३ ॥

भा०—हम लोग (नः) आप लोगों में से (ईडेन्यम्) स्तुति-योग्य, (असुरं) मेघ-तुल्य जीवन दाता, (सुदक्षं) कर्मकुशल, (रोदसी अन्तः) भूमि और आकाश के बीच (दूतम्) प्रतापी, (सत्य-वाचम्) सत्य वक्ता, (मनुष्वत्) मननशील विद्वान् के तुल्य (अग्निं) ज्ञानी,

(मनुना) ज्ञान से (समिद्धं) प्रज्वलित, प्रसिद्ध पुरुष को (अध्वराय) हिंसा-रहित, प्रजापालन, अध्ययनाध्यापनादि कार्य के लिये, (सदम्-इत्) सदा ही (सं महेम) अच्छी प्रकार सत्कार करें।

सपर्यवो भरमाणा अभिज्ञु प्र वृञ्जते नमसा बर्हिरग्नौ।
आजुह्वाना घृतपृष्ठं पृषद्वदध्वर्यवो हविषा मर्जयध्वम्॥ ४॥

भा०—जैसे (अध्वर्यवः) यज्ञकर्ता विद्वान्, (घृतपृष्ठं आ-जुह्वानाः) घृत से सिंचे अग्नि में आहुति देते हुए (अभि-ज्ञु) पालथी मार कर बैठते और (नमसा) अन्नादि-युक्त (बर्हिः अग्नौ प्र वृञ्जते) चरु को अग्नि में त्यागते हैं वैसे ही (सपर्यवः) परिचर्या करने वाले, (बर्हिः) वृद्धि-शील प्रजा को (भरमाणाः) भरण-पोषण करते हुए, (अभि-ज्ञु) अपने अभिमुख गोड़े किये, सभ्यतापूर्वक आसन पर विराज कर, (अग्नौ) ज्ञानवान् पुरुष के अधीन रहकर, (नमसा) बल वीर्य के द्वारा (प्र वृञ्जते) ध्यानपूर्वक धनादि का विभाग करते हैं और आप (घृतपृष्ठं) तेजस्वी पुरुष को (आजुह्वानाः) आदरपूर्वक अपना अध्यक्ष स्वीकार करते हुए (पृषद्-वत) सेचनकारी मेघों के समान (हविषा) ज्ञान से अपने को (मर्जयध्वम्) शुद्धाचारवान् बनाओ।

स्वाध्यो३वि दुरो देवयन्तोऽशिश्रयू रथयुर्देवताता।
पूर्वी शिशुं न मातरा रिहाणे समग्रुवो न समनेष्वञ्जन्॥५॥१॥

भा०—(पूर्वी मातरा) पूर्व विद्यमान माता-पिता (शिशुं न) दोनों जैसे बालक को (रिहाणे) भोज्य पदार्थ का आस्वादन कराते हुए, (समञ्जतः) अच्छी प्रकार अभ्यङ्गमर्दनादि से चमकाते हैं और (सम-नेषु) संग्रामों में जैसे (अग्रुवः) आगे बढ़ने वाली सेनाएं (सम् अञ्जन्) अपने नायक के गुणों को चमकाती हैं वैसे ही (देवयन्तः) विद्वानों को चाहने वाले (स्वाध्यः) उत्तम ध्यान करने वाले, (देवताता) विद्वानों के करने योग्य कार्य में (रथयुः) वीर रथी के समान (दुरः अशिश्रयुः) उत्तम द्वारों का आश्रय लेते हैं। इति प्रथमो वर्गः॥

उत योषणे दिव्ये मही न उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
बर्हिषदा पुरुहूते मघोनी आ यज्ञिये सुविताय श्रयेताम् ॥ ६ ॥

भा०—(सुदुघा-इव धेनुः) उत्तम दूध देने वाली गौ के समान कल्याणकारक (दिव्ये योषणे) उत्तम गुणयुक्त युवा-युवतीजन (उषा-सानक्ता च) दिन-रात्रि के समान (बर्हि-सदा) उत्तम आसन पर विराजने वाले (पुरु-हूते) बहुतों से प्रशंसित, (मघोनी) ऐश्वर्यवान् और (यज्ञिये) सत्संग-योग्य होकर (सुविताय) कल्याण और उत्तम सन्तान प्राप्ति के लिये (श्रयेताम्) परस्पर का आश्रय लें ।

विप्रा यज्ञेषु मानुषेषु कारू मन्ये वां जातवेदसा यजध्यै ।
ऊर्ध्वं नो अध्वरं कृतं हवेषु ता देवेषु वनथो वार्याणि ॥ ७ ॥

भा०—हे (विप्रा) विद्यायुक्त स्त्री-पुरुषो ! (मानुषेषु यज्ञेषु) मनुष्यों के यज्ञों में (कारू) कर्मशील, (जातवेदसा) ज्ञान और ऐश्वर्य-युक्त आपको (यजध्यै) प्रतिष्ठा-योग्य (मन्ये) मानता हूँ । आप (नः) हमारे बीच यज्ञ को, (देवेषु) विद्वानों के बीच और (हवेषु) ग्रहण-योग्य आश्रमों में भी अपने (अध्वरं) यज्ञ को (ऊर्ध्वं कृतम्) सबसे श्रेष्ठ करो और (ता) उन (वार्याणि) वरणीय धनों को (वनथः) प्राप्त करो ।

आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥ ८ ॥

भा०—(भारती) सब शास्त्रों की धारक विद्या-माता के समान वेद-वाणी (भारतीभिः) विदुषी स्त्रियों के साथ और (इडा) स्तुति-योग्य वाणी (मनुष्यैः देवैः) साधारण मनुष्यों और विशेष विद्वानों के साथ, (सरस्वती) विज्ञान-युक्त वाणी (सारस्वतेभिः) विज्ञान-युक्त विद्वानों से (सजोषाः) प्रीतियुक्त हों । (तिस्रः देवीः) तीनों प्रकार की विदुषी स्त्रियां (इदं बर्हिः सदन्तु) इस वृद्धियुक्त राष्ट्र में वाक्, मन,

प्राण शक्तियों के समान देह में (अर्वाक् सदन्तु) सबके समक्ष आदर प्राप्त करें।

तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥ ९ ॥

भा०—हे (देव) कामनायुक्त! हे (त्वष्टः) तेजस्विन्! तू अपनी पत्नी के साथ रमण करता हुआ (नः) हमारे उपकार के लिये (तत्) उस (तुरीपम्) विनाश से बचाने वाले (पोषयित्नु) शरीर-पुष्टिकारक वीर्य को (वि स्यस्व) त्याग कर (यत्) जिससे (कर्मण्यः) कर्म-कुशल (सु-दक्षः) उत्तम चतुर, (युक्तग्रावा) विद्वानों का उपासक (देवकामः) विद्वानों का प्रिय, (वीरः) पुत्र (जायते) उत्पन्न होता है।

वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥१०॥

भा०—हे (वनस्पते) महावृक्ष के समान आश्रितशरण, राजन्! एवं सैन्य जनों के पति सेनापते! (देवान्) सूर्य जैसे किरणों को प्रकट करता है वैसे ही तू भी (देवान्) तेजस्वी पुरुषों, अग्नि आदि दिव्य तत्वों को (उप अव सृज) अपने अधीन रख। (शमिता हविः सूदयाति) पाचक जैसे भोजन को पकाता है वैसे (अग्निः) अग्नि ही ऐसा है जो (शमिता) कल्याणदाता होकर (हविः) अन्नादि पदार्थ को (सूदयाति) पकाता है। वही (हविः) देह में मुख-मार्ग से ग्रहण किये अन्न को रस बना कर अंग २ में (सूदयाति) प्रवाहित करता है। (स इत् होता) वही देने-लेने में समर्थ (सत्यतरः) सत्य से अत्यन्त श्रेष्ठ होकर (यजाति) धन को यथोचित रूप से दे। (यथा) क्योंकि वही (देवानां) विद्वानों, विद्याभिलाषी शिष्यों के (जनिमानि) वास्तविक रूपों एवं जन्मों को (वेद) जानता है।

आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङ् इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः। बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥११॥२॥

भा०—(समिधानः अग्निः यथा इन्द्रेण देवैः तुरेभिः अर्वाङ् आ यातु) अच्छी प्रकार दीप्तियुक्त अग्नि वा सूर्य-प्रकाश जैसे विद्युत्, मेघ और जलादिदाता वायुगण तथा दीप्तियुक्त प्रकाशों, रोगनाशक, वेग-युक्त गुणों सहित (स-रथं) समान रंगरूप में हमें प्राप्त होता है वैसे ही हे (अग्ने) विद्वन्! तू भी (समिधानः) तेजस्वी होकर (इन्द्रेण) ऐश्वर्य-युक्त राष्ट्र और (तुरेभिः) शत्रु-बल के नाशक वीरों, (देवैः) विद्वानों सहित (अर्वाङ्) हमें विनययुक्त होकर प्राप्त हो। (बर्हिः न) आसन पर विद्वान् के समान (बर्हिः) वृद्धिशील राष्ट्र के ऊपर (आस्ताम्) विराजे। वह (स्वाहा) उत्तम वचन और कर्म से (सुपुत्रा अदितिः) उत्तम पुत्रों की माता के समान, (अदितिः) अदीन स्वभाव वाला हो और (देवाः) विद्वान्गण (अमृताः) राज्यों में मृत्युभय से रहित होकर (मादयन्ताम्) सुखी हों। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ९, १० विराट्त्रिष्टुप्। ४, ६,७,८ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप् ॥ २ स्वराट् पंक्ति। ३ भुरिक् पंक्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

अ॒ग्निं वो॑ दे॒वम॒ग्निभिः॑ स॒जोषा॒ यजि॑ष्ठं दू॒तम॑ध्व॒रे कृ॑णुध्वम्।
यो मर्त्ये॑षु नि॒ध्रु॒वि॑र्ऋ॒ताव॒ा तपु॑र्मूर्धा घृ॒तान्नः॑ पाव॒कः ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (मर्त्येषु) प्राणियों में (निध्रुविः) नित्य, ध्रुव, (ऋतावा) धनैश्वर्यादि का भोक्ता, (तपुः-मूर्धा) सूर्य के समान दुष्टों को तपाने में सर्वोत्कृष्ट (घृतान्नः) जो घृत-युक्त अन्न का भोजन करता है, (पावकः) प्रजा के व्यवहारों को पवित्र करता, एवं (स-जोषाः) सबके प्रति प्रीतियुक्त हो (वः) आप लोगों में उस (देवम्) तेजस्वी, (यजिष्ठं) अतिपूज्य, (अग्निम्) अग्रणी पुरुष को (अध्वरे) हिंसारहित प्रजापालन आदि कार्यों में (दूतम्) सेवा-योग्य, (कृणुध्वम्) बनाओ।

प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ २ ॥

भा०—(अविष्यन्) तृप्ति चाहता हुआ (अश्वः) अश्व (यवसे) घास के लिये (न) जैसे (प्रोथत्) हिनहिनाता है वैसे ही राजा (अविष्यन्) प्रजा-रक्षा चाहता हुआ (यवसे) शत्रु को छिन्न-भिन्न करने के लिए (प्रोथत्) गर्जना करता हुआ (यदा) जब (महः संवरणात्) बड़े रक्षा-स्थान, प्रकोट से (वि अस्थात्) विशेष रूप से प्रस्थान करे (आत्) अनन्तर (अस्य शोचिः अनु) उसके तेज के साथ साथ, अग्नि-ज्वाला के पीछे २ (वातः) वायुवत् प्रबल सैन्य समूह (अनुवाति) जाता है । (अध) तब हे राजन् ! (ते व्रजनं) तेरा चलना (कृष्णम् अस्ति) बड़ा चित्ताकर्षक एवं शत्रु-मूल को काटने वाला होता है ।

उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः ।
अच्छा द्यामरुषो धूम एति सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (नवजातस्य अजराः इधाना उत् चरन्ति) नये उत्पन्न अग्नि से गतिशील जलते लपटें उठते हैं (द्याम् धूमः अच्छ एति) आकाश की ओर धूम उठता है, (दूतः सम् देवान् ईयसे) तप्त होकर किरणों को प्रकट करता है वैसे, हे (अग्ने) राजन् ! (यस्य नवजातस्य) जिस नये पदाधिकारी बने (वृष्णः) सुख-वर्षक, (ते) तेरे (इधानाः) तेजस्वी (अजराः) शत्रु को उखाड़ देने वाले पुरुष (उत्-चरन्ति) उत्तम पद पर नियुक्त होकर राष्ट्र में विचरते हैं, वह तू (धूमः) शत्रुओं को कंपा देने वाला होकर (द्याम् अच्छ एति) सूर्यवत् उच्च पद को प्राप्त होता है । वह ही, हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (दूतः) शत्रु-सन्तापदायी होकर (देवान्) विद्वान् पुरुषों को (सम् ईयसे) अच्छी तरह प्राप्त हो ।

वि यस्य ते पृथिव्यां पाजो अश्रेत्तृषु यदन्ना समवृक्त जम्भैः ।
सेनेव सृष्टा प्रसितिष्ट एति यवं न दस्म जुह्वा विवेक्षि ॥ ४ ॥

भा०—जैसे अग्नि (पाजः तृषु वि अश्रेत्) शीघ्र ही पृथिवी में विविध दिशाओं में फैल जाता है, जैसे जाठराग्नि (जम्भैः अन्ना सम् अवृक्त) दांता द्वारा अन्नों को ग्रहण कर शरीर में फैला देता है, जैसे अग्नि की (प्रसितिः) ज्वाला (सेना इव) सेना के समान फैलती है और जैसे वह (जुह्वा) ज्वाला से चमकता वा यवादिकों को भस्म करता है वैसे, हे राजन् ! (यस्य ते) जिस तेरा (पाजः) बल (तृषु) अति-शीघ्र (पृथिव्याम् वि अश्रेत्) पृथिवी पर विविध प्रकार से विराजता है, (यत्) जो (जम्भैः) अन्नों को दांतों के समान हिंसाकारी शस्त्रों-अस्त्रों के बल से अन्नवत् भोग्य देशों को (सम् अवृक्त) पृथक् २ करता है (ते प्रसितः) तेरा उत्तम प्रबन्ध, (सेना इव सृष्टा) सेना-तुल्य व्यवस्थित होकर (एति) प्राप्त होता है। हे (दस्म) शत्रुनाशक ! वह तू (जुह्वा) अपनी वाणी से (यवं) यव को भुस के समान, विनाश्य शत्रु का (विवेक्षि) नाश करता है।

तमिद्दोषा तमुषसि यविष्ठमग्निमत्यं न मर्जयन्त नरः।
निशिशाना अतिथिमस्य योनौ दीदाय शोचिराहुतस्य वृष्णः ॥५॥३

भा०—(नरः) मनुष्य (अत्यं न) अश्व को जैसे (मर्जयन्त) खरखरे से साफ करते और स्वच्छ रखते हैं वैसे ही (नि-शिशानाः नरः) खूब तीक्ष्ण करने वाले मनुष्य (तम्) उस (यविष्ठम्) अति बलशाली (अतिथिम्) व्यापक (अग्निम्) अग्नि को (दोषा उषसि) रात्रि और प्रातः-काल में (मर्जयन्त इव) सदा स्वच्छ रक्खें। (आहुतस्य) एक स्थान पर सब ओर से सुरक्षित (वृष्णः) बलवान्, (अस्य) इसकी (शोचिः) कान्ति को (योनौ) गृह में (दीदाय) प्रकाशित करे। इति तृतीयो वर्गः॥

सुसन्दृक्ते स्वनीक प्रतीकं वि यद्रुक्मो न रोचस उपाके।
दिवो न ते तन्यतुरेति शुष्मश्चित्रो न सूरः प्रति चक्षि भानुम् ॥६

भा०—हे (स्वनीक) सुन्दर मुख वाले ! विद्वन् ! हे उत्तम सैन्य

वाले ! सेनापते ! (यत्) जो तू (रुक्मः) कान्तिमान्, (उपाके) सबके समीप (रोचसे) रुचिकर होता, सबको भाता है, (ते प्रतीकं) तेरा प्रतीति कारक ज्ञान, बल उत्तम हो और तेरी (सु-सन्दृक्) उत्तम दृष्टि हो। (ते शुष्णः) तेरा बल, (दिवः न तन्यतुः न) सूर्य या विद्युत् के समान (एति) प्राप्त होता है और तू (सूरः न चित्रः) सूर्य तुल्य आश्चर्यकारक होकर (भानुम् प्रति चक्षि) अपने तेज को प्रकट करे।

यथा॑ वः स्वाहा॒ग्नये॒ दाशे॑म॒ परीळा॑भिर्घृ॒तव॑द्भिश्च ह॒व्यैः।
तेभि॑र्नो अग्ने॒ अमि॑तै॒र्महो॑भिः श॒तं पू॒र्भिराय॑सीभि॒र्नि पा॑हि ॥७॥

भा०—जैसे (इडाभिः घृतवद्भिः हव्यैः च अग्नये स्वाहा) अन्नों और घृतयुक्त आहुति-योग्य पदार्थों से अग्नि के लिये आहुति दी जाती है, वैसे ही, हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगों में (अग्नये) अग्नि तुल्य ज्ञान-प्रकाशक और अग्नि पद पर स्थित, सन्मार्ग पर ले जाने वाले पुरुष के लिये हम लोग (इडाभिः) उत्तम वाणियों से और (घृतवद्भिः) घृत-युक्त हव्य अर्थात् भोजन-योग्य अन्नों से (परि दाशेम) उसका सत्कार करें। हे (अग्ने) विद्वन् ! तू (तेभिः) उन २, (अमितैः) अपरिमित (महोभिः) तेजों से और (शतम्) सैकड़ों (आयसीभिः पूर्भिः) लोह निर्मित नगरियों से (नि पाहि) अच्छी प्रकार राष्ट्र-रक्षा कर।

या वा॒ ते॒ सन्ति॑ दा॒शुषे॒ अधृ॑ष्टा॒ गिरो॒ वा॒ याभि॑र्नृ॒वती॑रुरु॒ष्याः।
ताभि॑र्नः सूनो सहसो॒ नि पा॑हि॒ स्मत्सू॒रीञ्ज॑रि॒तॄञ्जा॑तवेदः ॥८॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! (वा) और (याः) जो (ते दाशुषे) तुझ विद्या और न्याय के दाता की (अधृष्टाः) आदर योग्य, (गिरः) वाणियां, (दाशुषे) करादि-दाता प्रजाजन के हितार्थ हैं (वा) अथवा (याभिः) जिनसे (नृवतीः) उत्तम नायकों वाली सेनाओं और प्रजाओं की (उरुष्याः) रक्षा करता है, हे (सहसः सूनो) बलशाली सैन्य के चालक ! हे (जातवेदः) ज्ञानवन् ! तू (ताभिः) उनसे (नः) हमारे (जरितॄन्) उपदेशक (सूरीन्) विद्वानों का (नि पाहि) पालन कर।

निर्यत्पूतेव स्वधितिः शुचिर्गात् स्वया कृपा तन्वा॒३रोचमानः ।
आ यो मात्रोरुशेन्यो जनिष्ट देवयज्याय सुक्रतुः पावकः ॥९॥

भा०—(यत्) जो (पूता इव स्वधितिः) स्वच्छ शस्त्र की धार-तुल्य (शुचिः) कान्तियुक्त, (निर्गात्) अपने गृह से निकले और (स्वया कृपा) अपनी कृपा, सामर्थ्य और (तन्वा) देह से (रोचमानः) चमकता है, (यः) जो (मात्रोः) माता-पिता के बीच (उशेन्यः) कामना-योग्य पुत्र के समान (आ जनिष्ट) प्रकट होता है, वह (सु-क्रतुः) उत्तम कर्म करता हुआ (पावकः) पवित्रकर्त्ता होकर (देव-यज्याय) विद्वानों के सत्संग के लिये यत्नशील रहे ।

एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १०।४

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! (नः) हमारे (एता) इन (सौभगानि) ऐश्वर्यों को (दिदीहि) प्रकाशित कर । हम लोग (अपि) अवश्य (सुचेतसं) उत्तम चित्त वाली (क्रतुम्) बुद्धि को (वतेम) प्राप्त करें । (स्तोतृभ्यः) स्तुतिशील और (गृणते) उपदेष्टा पुरुष के लिये (विश्वा च) सब सौभाग्य (सन्तु) हों और हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (स्वस्तिभिः) उत्तम कर्मों से (नः) हमारी (सदा पात) सदा रक्षा करो ।

[४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ७ भुरिक् पंक्तिः । ६ स्वराट् पंक्तिः । ८, ९ पंक्तिः । २, ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ १० विराट् त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाग्नये सुपूतम् ।
यो दैव्यानि मानुषा जनूंष्यन्तर्विश्वानि विद्मना जिगाति ॥ १ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वः) आप में से (यः) जो (शुक्राय) शुद्ध (भानवे) ज्ञान-प्रकाश-प्राप्ति के लिये और (अग्नये) अग्नि में आहुति

देने के लिये (सु-पूतं) शुद्ध पवित्र (हव्यं) आहुति-योग्य पदार्थ और (मतिं) उत्तम बुद्धि को (जिगाति) प्राप्त करता है, (यः) जो (दैव्यानि) विद्वानों और (मानुषा) साधारण मनुष्यों के (विश्वानि) समस्त (जनूंषि) जन्मों को भी (अन्तः) अपने भीतर (जिगाति) प्राप्त कर लेता है, उस विद्वान् के लिये आप भी (हव्यं) उत्तम पदार्थ (प्र) (भरध्वम्) प्राप्त कराओ ।

स गृत्सो अग्निस्तरुणश्चिदस्तु यतो यविष्ठो अजनिष्ट मातुः ।
सं यो वना युवते शुचिदन् भूरि चिदन्ना समिदत्ति सद्यः ॥२॥

भा०—(यः) जो (मातुः अजनिष्ट) माता से बालक के समान ज्ञानदाता गुरु से उत्पन्न होता है । (सः) वह (यतः) यम-नियम का पालक, (यविष्ठः) उत्तम युवा और (तरुणः) तरुण (गृत्सः) विद्वान् (अग्निः) अग्नि-तुल्य तेजस्वी (अस्तु) हो । वह (शुचिदन्) शुद्ध दन्तों वाला हो, वह (वना) सूर्यवत् किरणों को (युवते) प्राप्त करता है । वह (समित् चित्) काष्ठों को अग्नि के समान (सद्यः) शीघ्र ही (भूरि चित् अन्ना) नाना अन्नों वा ऐश्वर्यों का (अत्ति) भोग करता है ।

अस्य देवस्य संसद्यनीके यं मर्तासः श्येतं जगृभ्रे ।
नि यो गृभं पौरुषेयीमुवोच दुरोकमग्निरायवे शुशोच ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इस (देवस्य) विद्वान् को (संसदि) सभा वा (अनीके) सैन्य में (यं) जिस नायक को (मर्तासः) मनुष्य (श्येतं) शुद्ध चरित्र जानकर (जगृभ्रे) स्वीकार करते हैं (यः) जो (पौरुषेयीम् गृभम्) पुरुषों के व्यवहार-योग्य पदार्थों को लेने-देने की विधि का (नि उवोच) नियमित उपदेश करता है, जो (अग्निः) अग्नि तुल्य तेजस्वी पुरुष (आयवे) राष्ट्रवासी जन के हितार्थ (दुरोकम्) शत्रुओं से दुःख से सेवने-योग्य सैन्य बल को (शुशोच) चमका देता है वही राजा होने योग्य है ।

अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि।
स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनसः स्याम ॥४॥

भा०—(अयं) यह (अग्निः) अग्नि तुल्य अज्ञान-अन्धकार के बीच ज्ञान-प्रकाश करने हारा, (कविः) विद्वान्, (प्रचेताः) उत्कृष्ट चित्त वाला, (अमृतः) दीर्घायु, (अकविषु) अविद्वानों के बीच (नि धायि) स्थापित हो। (सः) वह (नः) हमें (अत्र) इस लोक में (मा जुहुरः) विनाश न करे। हे तेजस्विन्! (ते) तेरे अधीन हम लोग (सदा) सदा (सु-मनसः) शुभ चित्त वाले होकर (स्याम) रहें।

आ यो योनिं देवकृतं ससाद क्रत्वा ह्य१ग्निरमृताँ अतारीत्।
तमोषधीश्च वनिनश्च गर्भं भूमिश्च विश्वधायसं बिभर्ति ॥५॥५॥

भा०—जैसे अग्नि (देवकृतं योनिम् आससाद) विद्वानों द्वारा स्थापन-योग्य कुण्ड आदि में स्थापित होता, (क्रत्वा अमृतान् अतारीत्) कर्म द्वारा जीवों को संकट से पार करता और (ओषधीः वनिनः भूमिः च बिभर्त्ति) इसको ओषधियां और वन के वृक्ष अरणि आदि और भूमि आदि धारण करते हैं वैसे ही (यः) जो विद्वान् (देवकृतं) विद्याभिलाषी विद्यार्थियों के लिये बनाये (योनिं) पाठशालादि को (आ ससाद) प्राप्त होता है, (च) और जैसे (ओषधयः वनिनः भूमिः च) ओषधियें अपने रस में और वन के वृक्ष आग के रूप में और भूमि अपने गर्भ में ज्वालामुखी आदि रूप से अग्नि को धारण करते हैं वैसे ही (विश्वधायसं) समस्त ज्ञान के पालक (तम्) उसको (वनिनः) वानप्रस्थी जन (ओषधीः च भूमिः च गर्भं) गर्भ को ओषधियों और उत्पादक भूमि के माता के समान (बिभर्त्ति) धारण करते हैं। इति पञ्चमो वर्गः ॥

ईशे ह्य१ग्निरमृतस्य भूरेरीशे रायः सुवीर्यस्य दातोः।
मा त्वा वयं सहसावन्नवीरा माप्सवः परि षदाम मादुवः ॥६॥

भा०—(अग्निः अमृतस्य ईशे) विद्युत् या सूर्य जैसे जीवन का प्रभु

है, वैसे ही (अग्निः) ज्ञानी (हि) निश्चय से (भूरेः अमृतस्य) बड़े मोक्ष-मय अमृत को (ईशे) प्राप्त करे, वह (भूरेः रायः) बहुत ऐश्वर्य, (सुवीर्यस्य) उत्तम बल, (भूरेः दातोः) बहुत दान भी (ईशे) करने में समर्थ हो। हे (सहस्वावन्) बलयुक्त (वयम्) हम लोग (अवीराः) वीरों से रहित होकर (त्वा मा परि सदाम) तेरे इर्द-गिर्द न बैठें, और हम (अप्सवः) मात्र दर्शनीय बनकर (मा परि सदाम) न बैठे रहें और (मा अदुवः) और हम सेवा-रहित न रहें।

परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
न शेषो अग्ने अन्यजातमस्त्यचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः ॥७॥

भा०—(अरणस्य) ऋण-रहित पुरुष का (रेक्णः) धन (परिसद्यम्) पर्याप्त है, इसलिये हे (अग्ने) विद्वन्! हम लोग (नित्यस्य) नित्य (अरणस्य) ऋण और रण, लड़ाई-झगड़े से मुक्त (रायः) धनैश्वर्य के भी (पतयः) स्वामी (स्याम) हों। ऐसे ही (अरणस्य) जिसके उत्पन्न करने में स्वयं वीर्याधान नहीं किया ऐसे पुरुष का (रेक्णः) पर-वीर्य का सन्तान भी (परि-सद्यं) त्याज्य है। क्योंकि (अन्य-जातम् शेषः) दूसरे से प्राप्त धन और पुत्र दोनों ही (न अस्ति) नहीं के बराबर हैं इसलिये, हे विद्वन्! पर-धन और पर-पुत्र तो (अचेतानस्य) ना समझ का होता है। वस्तुतः हे विद्वन्! तू (पथः मा वि दुक्षः) सन्मार्गों को दूषित मत कर।

नहि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ ।
अधा चिदोकः पुनरित्स एत्या नो वाज्यभीषाळेतु नव्यः ॥ ८ ॥

भा०—(अरणः) जो उत्तम स्वभाव वाला न हो या जो ऋण न दे सके ऐसा (सु-शेवः) उत्तम सुखदायक (अन्योदर्यः) दूसरे के पेट से उत्पन्न सन्तान, उसको (मनसा उ ग्रभाय मन्तवै नहि) मन से भी अपना लेने की नहीं सोचनी चाहिये। (अध चित्) और (सः पुनः)

वह पुत्र ही (ओकः इत् एति) गृह को प्राप्त करता है, जिसको पुत्र बनाया जाता है वही गृहादि सम्पत्ति का स्वामी होता है। यह अनर्थ है, इसलिये (नः) हमें (नव्यः) स्तुति-योग्य, (वाजी) बली (अभिषाड्) शत्रुविजयी पुत्र (एतु) प्राप्त हो।

त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात्।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥६॥

भा०—हे (सहसावन्) बलवन्! हे (अग्ने) तेजस्विन्! (त्वं) तू (नः) हमें (वनुष्यतः) हिंसाकारी और (अवद्यात्) निन्दनीय कर्मों, जन्तुओं से (नि पाहि) रक्षा कर। (ध्वस्मन्वत् पाथः) दोष-रहित पथ और (ध्वस्मन्-वन् पाथः) शत्रु-नाशक सामर्थ्य वाला बल (त्वा सम् अभ्येतु) तुझे प्राप्त हो। (स्पृहयाय्यः रयिः) सबसे चाहने योग्य धन (सहस्री) सहस्रों की संख्या में (त्वा सम् अभ्येतु) तुझे प्राप्त हो।

एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १०।६

भा०—व्याख्या देखो सू० ३ मन्त्र १० ॥ इति षष्ठो वर्गः ॥

[५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१, ४ विराट् त्रिष्टुप्। २, ३, ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप्। ५, ७ स्वराट् पंक्तिः। ६ पंक्तिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्राग्नये तवसे भरध्वं गिरं दिवो अरतये पृथिव्याः।
यो विश्वेषाममृतानामुपस्थे वैश्वानरो वावृधे जागृवद्भिः ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (विश्वेषाम्) समस्त (अमृतानाम्) अविनाशी जीवात्माओं के (उपस्थे) पास (वैश्वानरः) समस्त मनुष्यों से उपासित है, जो (जागृवद्भिः) ज्ञानी पुरुषों से उपासित होता और (ववृधे) सबको बढ़ाता है, उस (दिवः पृथिव्याः अरतये) सूर्य और पृथिवी में

व्यापक, (तवसे) बलशाली, (अग्नये) अग्नि-तुल्य प्रकाशस्वरूप प्रभु की उपासना के लिये (गिरं प्र भरध्वम्) वाणी का प्रयोग करो।

पृष्टो दिवि धाय्यग्निः पृथिव्यां नेता सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम्।
स मानुषीरभि विशो वि भाति वैश्वानरो वावृधानो वरेण ॥२॥

भा०—जो (अग्निः) स्वयं-प्रकाश, प्रभु, (दिवि पृथिव्यां) तेजस्वी सूर्य आदि और पृथिवी आदि में भी (धायि) स्थित है, जो (सिन्धूनां नेता) बहने वाले प्रवाहों का संचालक है, जो (स्तियानाम् वृषभः) प्रकृति के परमाणुओं में विद्यमान और बलशाली, उनको नियम में बांधने वाला है, (सः) वह (अग्निः) सबका नायक (वैश्वानरः) सबको ठीक मार्ग में चलाने वाला 'वैश्वानर' है। वही प्रभु (मानुषीः विशः) मनुष्य प्रजाओं को (अभि वि भाति) प्रकाशित करता है। वह (वरेण) श्रेष्ठ स्वभाव से ही (वावृधानः) सबको बढ़ाने हारा सबसे महान् है।

त्वद्भिया विश आयन्नसिक्नीरसमना जहतीर्भोजनानि।
वैश्वानर पूरवे शोशुचानः पुरो यदग्ने दरयन्नदीदेः ॥ ३ ॥

भा०—हे (वैश्वानर) समस्त मनुष्यों में विराजमान, सर्वहितकारी! (अग्ने) सर्वप्रकाशक! (यत्) जो (पूरवे) मनुष्यमात्र के लिये (शोशुचानः) ज्ञानरूप में प्रकाश करता हुआ, (पुरः दरयन्) ज्ञान वज्र से आत्मा के देह रूप पुरों को काटता हुआ (अदीदेः) ज्ञान को प्रकाशित करता है, (त्वद् भिया) तेरे ही भय से (असिक्नीः) रात्रि-समान अन्धकारमय दशाओं को प्राप्त (विशः) जीव प्रजाएं भी (असमना) समान चित्त न होकर (भोजनानि जहतीः) भोग्य पदार्थों को त्याग कर (आयन्) तेरी शरण आती हैं।

तव त्रिधातु पृथिवी उत द्यौर्वैश्वानर व्रतमग्ने सचन्त।
त्वं भासा रोदसी आ ततन्थाजस्रेण शोचिषा शोशुचानः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशक ! हे (वैश्वानर) समस्त संसार के चलाने हारे, (त्रि-धातु) तीनों गुणों को धारण करने वाली प्रकृति और (पृथिवी उत द्यौः) पृथिवी और द्यौ अर्थात् प्रकाशसहित समस्त पदार्थ भी (तव व्रतम्) तेरी कर्म-व्यवस्था को (सचन्ते) धारण करते हैं। हे प्रभो ! (त्वं) तू (भासा) अपनी दीप्ति से (रोदसी) भूमि और आकाश में (आ ततन्थ) व्याप रहा है। तू (अजस्रेण) निरन्तर स्थिर (शोचिषा) तेज से सूर्यवत् (शोशुचानः) प्रकाशमान रहता है।

त्वामग्ने हरितो वावशाना गिरः सचन्ते धुनयो घृताचीः।
पतिं कृष्टीनां रथ्यं रयीणां वैश्वानरमुषसां केतुमह्नाम् ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (वावशानाः) चाहती हुई (हरितः) दिशावासी प्रजाएं, (गिरः) वेद-वाणियों और (घृताचीः धुनयः) समुद्र को जलयुक्त नदियों के तुल्य (कृष्टीनां पतिम्) मनुष्यों के पालक, (रथ्यम्) रथयोग्य सारथिवत् (रयीणां) ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाले (उषसाम्) प्रभात-वेलाओं और (अह्नाम्) दिनों के (केतुम्) प्रकट करने वाले सूर्य तुल्य (उषसां केतुम्) दुर्भावों को भस्म करने वालों के ज्ञापक (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों के सञ्चालक, (त्वाम्) तुझ परमेश्वर को (सचन्ते) प्राप्त होते हैं। इति सप्तमो वर्गः ॥

त्वे असुर्यं१ वसवो न्यृण्वन्क्रतुं हि ते मित्रमहो जुषन्त।
त्वं दस्यूँरोकसो अग्न आज उरु ज्योतिर्जनयन्नार्याय ॥ ६ ॥

भा०—हे (मित्रमहः) स्नेहियों से पूज्य ! प्रभो ! (वसवः) बसने वाले जीवगण (त्वे) तेरे ही में (असुर्यं) सामर्थ्य को (नि ऋण्वन्) सब प्रकार से साधते हैं, वे (ते हि) निश्चय से तेरे (क्रतुं) कर्म और ज्ञान को (जुषन्त) सेवन करते हैं। (त्वं) तू, हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (आर्याय) सज्जन पुरुष के लिये (उरु) बहुत भारी (ज्योतिः जनयन्) ज्ञानप्रकाश करता हुआ (ओकसः) उसके निवास-स्थान देह से (दस्यून्) दुष्टभावों और जनों को (आ अजः) दूर करता है।

स जायमानः परमे व्योमन्वायुर्न पाथः परि पासि सद्यः ।
त्वं भुवना जनयन्नभि क्रन्नपत्याय जातवेदो दशस्यन् ॥ ७ ॥

भा०—(सः) वह तू, हे परमेश्वर ! (परमे) सर्वोत्कृष्ट, (व्योमन्) विशेष रक्षा के पद पर (जायमानः) रक्षक रूप से प्रकट होता हुआ (वायुः न) वायु के समान (पाथः) विश्व का पालन करता है और (सद्यः) संकट में विना विलम्ब के (परि पासि) बचा लेता है । हे (जातवेदः) प्राणियों और पदार्थों के ज्ञाता प्रभो ! तू (भुवना) समस्त लोकों को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (अपत्याय) पुत्र के समान जीव संसार को (अभि क्रन्) विद्युत्वत् निष्पक्षपात रूप से गर्जन-वर्षणादिवत् उपदेश करता हुआ और उनको (दशस्यन्) सुख सामग्री और भोग-शक्ति देता हुआ (परि पासि) सबका पालन करता है ।

तामग्ने अस्मे इषमेरयस्व वैश्वानर द्युमतीं जातवेदः ।
यया राधः पिन्वसि विश्ववार पृथु श्रवो दाशुषे मर्त्याय ॥ ८ ॥

भा०—जैसे सूर्य (द्युमतीम् इषम् ईरयति) तेज-युक्त वृष्टि को प्रेरित करता है ऐसे ही हे (अग्ने) तेजःस्वरूप ! हे (जातवेदः) प्रभो ! आप (अस्मे) हमारे लिये (ताम्) उस (द्युमतीम्) कामना-योग्य (इषम्) समृद्धि को (ईरयस्व) दो । हे (वैश्वानर) सब मनुष्यों में बसने वाले ! तू (यया) जिस भी प्रकार से (राधः पिन्वसि) धन की वृष्टि करता है, हे (विश्ववार) वरने योग्य तू (दाशुषे मर्त्याय) दानशील मनुष्य को (पृथु श्रवः) बहुत बड़ा यश, अन्न, ज्ञान (पिन्वसि) देता है ।

तं नो अग्ने मघवद्भ्यः पुरुक्षुं रयिं नि वाजं श्रुत्यं युवस्व ।
वैश्वानर महि नः शर्म यच्छ रुद्रेभिरग्ने वसुभिः सजोषाः ॥९॥८॥

भा०—हे (अग्ने) स्वप्रकाश ! आप (नः) हममें से (मघवद्भ्यः) पूजनीय, ऐश्वर्य वाले पुरुष को (तं) उस (पुरुक्षुम्) बहुत प्रकार के अन्नों से सम्पन्न (रयिम्) ऐश्वर्य और (श्रुत्यं वाजं) श्रवण-योग्य ज्ञान

(युवस्व) प्रदान कर, हे (वैश्वानर) सर्व मनुष्यों के हितकारी प्रभो! आप (रुद्रेभिः) अग्नि आदि द्रव्यों और (वसुभिः) प्राणों सहित (सजोषाः) समान प्रीतियुक्त होकर (नः) हमें (महि) बड़ी (शर्म) शान्ति (यच्छ) प्रदान करें। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१; ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। ६ विराट् त्रिष्टुप् ॥ २ निचृत्पंक्तिः। ३, ७ भुरिक् पंक्तिः। सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र सम्राजो असुरस्य प्रशस्तिं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य।
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दे दारुं वन्दमानो विवक्मि ॥१॥

भा०—(असुरस्य) बलवान्, (सम्राजः) सर्वत्र तेजस्वी, (कृष्टीनाम्) मनुष्यों के बीच, उनके लिये (अनु-माद्यस्य) उसके हर्ष में अन्यों को भी हर्षित होने योग्य (तवसः) बलवान् (पुंसः) पुरुष की (इन्द्रस्य इव) वायु के समान ही (प्रशस्तिं) उत्तम प्रशंसा और (कृतानि) उसके समान उसके कर्मों को (वन्दे) वर्णन करता हूँ। (दारुं) दुःखों और शत्रु-नगरों के विदारक तथा दुष्टों के भयदाता की (वन्दमानः) स्तुति करता हुआ मैं (विवक्मि) उसके गुणों का भी वर्णन करता हूँ।

कविं केतुं धासिं भानुमद्रेर्हिन्वन्ति शं राज्यं रोदस्योः।
पुरन्दरस्य गीर्भिरा विवासेऽग्नेर्व्रतानि पूर्व्या महानि ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष! (रोदस्योः) सूर्य, पृथिवी के समान राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों में (कविम्) बुद्धिमान्, (केतुम्) अन्यों को सन्मार्ग बतलाने वाले, (धासिम्) अन्नवत् पालक (भानुम्) दीप्तियुक्त, (राज्यम्) राज-पद के योग्य और (शं) प्रजाओं को शान्तिदायक, पुरुष को (हिन्वन्ति) प्राप्त होते हैं। (अद्रेः) मेघ के समान उदार शस्त्रास्त्र सम्पन्न, (पुरन्दरस्य) शत्रु-नगरों को तोड़ने वाले, (अग्नेः)

अग्नि-तुल्य तेजस्वी पुरुष के (पूर्व्यं) पूर्व जनों से किये श्रेष्ठ (महानि) बड़े आदर-योग्य (व्रतानि) कर्मों का (आ विवासे) वर्णन करता हूँ।

न्य१क्रतून् ग्रथिनो मृध्रवाचः पणीँरश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान्।
प्रप्र तान्दस्यूँरग्निर्विवाय पूर्वश्चकारापराँ अयज्यून् ॥ ३ ॥

भा०—(पूर्वः) सबसे मुख्य, (अग्निः) अग्नि तुल्य तेजस्वी पुरुष (अक्रतून्) कर्महीन, मूर्ख, (ग्रथिनः) कुटिलाचारी, (मृध्रवाचः), असत्य वाणी वाले, (पणीन्) व्यवहारी और (अश्रद्धान्) सत्य वचन को धारण न करने वाले, (अवृधान्) दूसरों को न बढ़ने देने वाले, (अयज्ञान्) दान, उपासनादि से रहित और (तान्) उन नाना (अपरान्) अन्य (अयज्यून्) अन्यों का सत्कार न करने वाले लोगों को (प्र विवाय, नि चकार) दूर करे और पराजित करे।

यो अपाचीने तमसि मदन्तीः प्राचीश्चकार नृतमः शचीभिः।
तमीशानं वस्वो अग्निं गृणीषेऽनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो (अपाचीने) नीचे के या दूर के (तमसि) अन्धकार में (मदन्ती) सुखी प्रजाओं को अपनी (शचीभिः) शक्तियों, वाणियों, किरणों से सूर्य के समान (नृतमः) पुरुषोत्तम (प्राचीः चकार) आगे की ओर अग्रसर करता है (तम्) उस (वस्वः ईशानम्) बसे संसार और ऐश्वर्य के स्वामी, (पृतन्यून्) सेनाओं को चाहने वाले, उनके स्वामियों को भी (दमयन्तम्) दमन करते हुए (अनानतं) अति विनयी, (अग्निम्) सेनानायक पुरुष के (गृणीषे) गुण वर्णन करता हूँ।

यो देह्यो३अनमयद्वधस्नैर्यो अर्यपत्नीरुषसश्चकार।
स निरुध्या नहुषो यह्वो अग्निर्विशश्चक्रे बलिहृतः सहोभिः ॥५॥

भा०—(यः) जो (देह्यः) कर आदि से बढ़ाने योग्य, देह में आत्मा के समान राष्ट्र में बसने वाला, (वधस्नैः) वधकारी शस्त्रों से शत्रु को (अनमयत्) नमाता है और जो व्यवस्था द्वारा (अर्यपत्नीः)

स्वामी की पत्नियों को (उषसः) प्रभात के समान सुभूषित (चकार) करता है, (सः) वह (यह्वः) महान् (अग्निः) तेजस्वी पुरुष भी स्वयं (नहुषः) सत्य-नियम में बद्ध होकर (विशः नियम्य) प्रजाओं को नियन्त्रित करके (सहोभिः) शत्रुपराजयकारी बलों से शत्रुओं को भी (बलिहृतः चक्रे) करदाता बनाता है।

यस्य शर्मन्नुप विश्वे जनास एवैस्तस्थुः सुमतिं भिक्षमाणाः।
वैश्वानरो वरमा रोदस्योराग्निः ससाद पित्रोरुपस्थम् ॥ ६ ॥

भा०—(यस्य शर्मन्) जिसके सुखप्रद शरण में रहकर (विश्वे जनासः) समस्त मनुष्य, (सुमतिं भिक्षमाणाः) उत्तम ज्ञान की याचना करते हुए (एवैः) शुभ गुणों सहित (उप तस्थु) विराजते हैं वह (वैश्वानरः) सब मनुष्यों में श्रेष्ठ (अग्निः) तेजस्वी पुरुष (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी के बीच सूर्य के तुल्य (पित्रोः) माता पिता दोनों के (उप-स्थम्) समीप (वरम्) श्रेष्ठ पद को (आ ससाद) प्राप्त करता है।

आ देवो ददे बुध्न्या३वसूनि वैश्वानर उदिता सूर्यस्य।
आ समुद्रादवरादा परस्मादाग्निर्ददे दिव आ पृथिव्याः ॥७॥९॥

भा०—(सूर्यस्य उदिता वैश्वानरः) जैसे सूर्योदयकाल में अग्नि (बुध्न्या वसूनि आ ददे) अन्तरिक्ष के अन्धकारों को ग्रस लेता है (दिवः पृथिव्याः आ ददे) आकाश और पृथिवी के अन्धकारों को हरता है वैसे ही (देवः) दानशील, (वैश्वानरः) सब मनुष्यों का हितैषी पुरुष (सूर्यस्य उदिता) सूर्य तुल्य अपने अभ्युदयकाल में (बुध्न्या वसूनि) भृत्यादि को कार्यों में बांधने वाले ऐश्वर्यों को (आ ददे) प्राप्त करे और वह (अवरात् समुद्रात्) समीपवर्ती समुद्र से (परस्मात्) दूरस्थ समुद्र तक (दिवः, पृथिव्याः) व्यापार से तथा पृथिवी से भी धन और रत्नादि पदार्थ (आ, आ, आ ददे) पुनः-पुनः प्राप्त करे। इति नवमो वर्गः ॥

[७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता: ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप् । ४, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । २, भुरिक् पंक्तिः । ७ स्वराट् पंक्तिः । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र वो देवं चित्सहसानमग्निमश्वं न वाजिनं हिषे नमोभिः ।
भवा नो दूतो अध्वरस्य विद्वान्त्मना देवेषु विविदे मितद्रुः ॥१॥

भा०—(वाजिनं अश्वं नमोभिः) जैसे वेगवान् अश्व को विनम्र करने के लिये कशादि साधनों से प्रेरित किया जाता है और जैसे उसको (नमोभिः) अन्नों से पुष्ट करते हैं, वैसे ही हे मनुष्यो! (वः) आप लोगों के बीच (देवं चित्) सूर्यवत् तेजस्वी, अग्नि तुल्य प्रतापी, ज्ञानप्रकाशक, (सहसानम्) बलवान् (अश्वम्) राष्ट्र भोक्ता, (वाजिनं) ऐश्वर्यवान् पुरुष को भी (नमोभिः प्र हिषे) उत्तम सत्कारों से प्रेरित, प्रार्थित करें। हे विद्वन्! राजन्! तू (त्मना) स्वयं अपने सामर्थ्य से (मित-द्रुः) परिमित भय वाला, (देवेषु) श्रेष्ठ पुरुषों के बीच (विविदे) विदित हो और तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (नः) हमारे (अध्वरस्य) अविनाश्य कर्तव्य का (दूतः) प्रकाशक (भव) हो।

आ याह्यग्ने पथ्याउअनु स्वा मन्द्रो देवानां सख्यं जुषाणः ।
आ सानु शुष्मैर्नदयन्पृथिव्या जम्भेभिर्विश्वमुशधग्वनानि ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (देवानां) ज्ञानप्रकाशक विद्वानों की (सख्यं) मित्रता को (जुषाणः) प्राप्त करता हुआ (मन्द्रः) सबको हर्ष देता हुआ (स्वाः) अपनी (पथ्याः) धर्म-मार्गगामी प्रजाओं को (अनु आयाहि) अनुकूल रूप से प्राप्त कर, सिंहवत् (पृथिव्याः सानु) पृथिवी के उच्च प्रदेश को भी (शुष्मैः) अपने बलों से (नदयन्) गुंजित करता हुआ (जम्भेभिः) शत्रु-नाशक उपायों से (विश्वम्) राष्ट्र और (वनानि) ऐश्वर्यों को (उशधक्) काष्ठों को अग्निवत् चाहे और उपभोग करे।

प्राचीनो यज्ञः सुधितं हि बर्हिः प्रीणीते अग्निरीळितो न होता।
आ मातरा विश्ववारे हुवानो यतो यविष्ठ जज्ञिषे सुशेवः ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (प्राचीनः यज्ञः) प्राङ्मुख यज्ञ (सुधितम् बर्हिः) अच्छी प्रकार बिछे कुशासनादि चाहता है वैसे ही (प्राचीनः) उत्तम पद पर प्राप्त (यज्ञः) आदर-योग्य (अग्निः) तेजस्वी पुरुष सत्कार प्राप्त कर (बर्हिः अग्निः च) हविर्द्रव्य को अग्नि के समान (होता) स्वयं ग्रहण करके (प्रीणीते) तृप्त होता है। हे (यविष्ठ) बलशालिन्! तू (यतः) जिनसे (जज्ञिषे) उत्पन्न होता है वे (मातरा) माता-पिता (विश्व-वारे) सब सुखों के दाता, सब से वरण योग्य, पूज्य होते हैं, उन दोनों को तू (आ हुवानः) आदरपूर्वक स्तुति करता हुआ (सुशेवः) उनको सुख देने वाला हो।

सद्यो अध्वरे रथिरं जनन्त मानुषासो विचेतसो य एषाम्।
विशामधायि विश्पतिर्दुरोणे३ऽग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ॥ ४ ॥

भा०—(ये) जो (एषाम्) इन प्रजावर्गों में (वि-चेतसः) विशेष ज्ञानी (मानुषासः) मनुष्य हैं वे (सद्यः) शीघ्र (अध्वरे) यज्ञ में अग्नि तुल्य तेजस्वी (रथिरं) रथ के सञ्चालक अग्नि को (जनन्त) उत्पन्न करें। (दुरोणे अग्निः) दुःख से चढ़ने योग्य अन्तरिक्ष में जैसे सूर्य है वैसे ही (दुरोणे) गृह में (अग्निः) 'गार्हपत्य' अग्नि-स्थापन किया जाता है (विशां विश्पतिः) प्रजाओं का स्वामी, (विशां दुरोणे) प्रजा के गृह-स्वरूप राष्ट्र में (मन्द्रः) आनन्दप्रद हो। वह (मधुवचाः) मधुरभाषी (ऋतावा) न्यायकारी पुरुष (अधायि) राज-पद पर स्थापित हो।

असादि वृतो वह्निराजगन्वानग्निर्ब्रह्मा नृषदने विधर्ता।
द्यौश्च यं पृथिवी वावृधाते आ यं होता यजति विश्ववारम् ॥५॥

भा०—जैसे (नृसदने अग्निः विधर्ता) मनुष्यों के रहने के स्थान में अग्नि विविध सुखों को धारण करता है वैसे ही (वह्निः) पद्मी से

विवाह करने वाला, (वृतः) स्वयं वृत होकर (अग्निः) अग्नि तुल्य तेजस्वी पुरुष (नृ-सदने) नरनारी के रहने योग्य गृह में (ब्रह्मा) प्रजा की वृद्धि करने हारा होकर (आ जगन्वान्) आदर पूर्वक (असादि) विराजे। वह स्वयं (द्यौः) सूर्य तुल्य और (पृथिवी) गृहस्थ का आश्रय होने से पृथिवी-तुल्य है। ऐसे ही स्त्री कामना-योग्य होने से 'द्यौ' और सन्तानोत्पादक भूमि होने से पृथिवी के तुल्य है। दोनों (यं वावृधाते) जिसको बढ़ाते हैं, (यं) जिसको (होता) ज्ञानोपदेष्टा पुरुष भी (विश्ववारं) सब से वरण-योग्य जानकर (यजति) प्राप्त होता और ज्ञान देता है।

एते द्युम्नेभिर्विश्वमातिरन्त मन्त्रं ये वारं नर्या अतक्षन्।
प्र ये विशस्तिरन्त श्रोषमाणा आ ये मे अस्य दीधयन्नृतस्य॥६॥

भा०—(ये) जो (नर्याः) मनुष्य-हितकारी लोग (वारं) वरणीय, (मन्त्रम्) राष्ट्रपालक मन्त्रणा को (अतक्षन्) प्रकट करते हैं (एते) वे (द्युम्नेभिः) ऐश्वर्यों से (विश्वम्) सब विश्व को (आ अतिरन्त) बढ़ाते हैं और (ये) जो (श्रोषमाणाः) स्वयं ज्ञान-श्रवण करते कराते हुए, (विशः) प्रजाओं को (प्र तिरन्त) बढ़ाते हैं और (ये) जो (मे) मुझे (अस्य ऋतस्य) इस विज्ञान और न्याय को (आदीधयन्) प्रकाशित करते हैं वे (विश्वम् आतिरन्त) सबको दुःखों से पार करते हैं।

नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम्।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥७।१०

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! हे (सहसः सूनो) बलवान् पुरुष के पुत्र! हम (वसिष्ठाः) उत्तम वसु होकर (वसूनाम्) राष्ट्र में बसे प्रजा-जनों के (ईशानं) स्वामी (त्वाम्) तुझसे (ईमहे) प्रार्थना करते हैं कि (स्तोतृभ्यः) स्तुतिशील और (मघवद्भ्यः) धन-सम्पन्नों के लिये (इषं आनट्) इच्छानुरूप ज्ञान और धन दे। हे विद्वानो! (यूयं) आप

(स्वस्तिभिः) कल्याणकारी साधनों से (सदा नः पात) हमारी सदा रक्षा करें। इति दशमो वर्गः॥

[८]

वसिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ७ स्वराट् पंक्तिः। ५ निचृत्-त्रिष्टुप्। २, ३, ४, ६ त्रिष्टुप्।

इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन।
नरो हव्येभिरीळते सबाध आग्निरग्र उषसामशोचि॥ १॥

भा०—(अग्निः) जैसे सूर्य (उषसाम् अग्रे) प्रभातों के पूर्व भाग में (आ अशोचि) प्रदीप्त होता है वैसे ही (अग्निः) यह गृह्य अग्नि (उषसाम् अग्रे अशोचि) प्रभातों के पूर्व अंश में प्रदीप्त हो। (यस्य प्रतीकं घृतेन आहुतम्) जिसका प्रज्वलित रूप घृत से आहुत होकर चमकता है, (सबाधः नरः) रोगादि से व्यथित लोग उसको (हव्येभिः) नाना प्रकार के आहुति योग्य अन्नों से (ईळते) तृप्त करते हैं, (सः) राजा अर्यः) वह अग्नि स्वामी के समान (नमोभिः सम् इन्धे) उत्तम अन्नों से खूब प्रदीप्त हो।

अयमु ष्य सुमहाँ अवेदि होता मन्द्रो मनुषो यह्वो अग्निः।
वि भा अकः ससृजानः पृथिव्यां कृष्णपविरोषधीभिर्ववक्षे॥२॥

भा०—जैसे (अग्निः कृष्ण-पविः ओषधीभिः ववक्षे) अग्नि काले मार्ग वाला है, उसे ओषधियां धारण करती हैं। वैसे ही (मनुष्यः) मनुष्य भी (यह्वः) महान् (अग्निः) अग्नि-तुल्य है जो (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (कृष्ण-पविः) शत्रु को काटने वाले शस्त्रास्त्र से युक्त है। उसे (ओषधीभिः) शत्रु को दग्ध करने वाले सैन्यगण (ववक्षे) धारण करते हैं। वह (ससृजानः) अग्नि-तुल्य उत्पन्न होकर कार्य करता हुआ (भाः वि अकः) विशेष कान्तियें प्रकट करता है (अयम् उ ष्यः) वह ही यह (होता) सहस्रों को वृत्ति दाता, (मन्द्रः) सबको सुखी करने वाला होकर (सु-महान् अवेदि) खूब बड़ा जाना जाता है।

कथा नो अग्ने वि वसः सुवृक्तिं कामु स्वधामृणवः शस्यमानः ।
कदा भवेम पतयः सुदत्र रायो वन्तारो दुष्टरस्य साधोः ॥३॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे राजन् ! तुम (कथा) किस नीति से (नः वि वसः) हमारी विविध प्रकार से रक्षा करते हो ? और (काम् सुवृक्तिम्) किस उत्तम संविभाग की (स्वधां) ऐश्वर्य-धारक नीति को (शस्यमानः) स्तुति-योग्य होकर (ऋणवः) प्राप्त होते हो ? हे (सुदत्र) उत्तम दानशील ! हम लोग (दुस्तरस्य रायः) अपार ऐश्वर्य के (पतयः) स्वामी और (वन्तारः) सेवन करने वाले (कदा) कब (भवेम) हों ? और (दुःस्तरस्य) विद्या में अपार (साधोः) सज्जन पुरुष के हम भी (वन्तारः कदा भवेम) सेवक कब हों ?

प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ॥४॥

भा०—(यत्) जो (भाः) दीप्तिमान् (सूर्यः न रोचते) सूर्य-तुल्य चमकता, (बृहत्) महान् (अयम्) वह (भरतस्य) मनुष्यमात्र का (अग्निः) अग्नि-तुल्य मार्गदर्शक रूप से (प्र-प्र शृण्वे) उच्च पद पर सुना जाता और उनके निवेदनादि सुनता है; (यः) जो (पृतनासु) मनुष्यों में (पूरुम्) पालक जनों को (अभि तस्थौ) प्राप्त कर अध्यक्ष रूप से स्थित है वह (द्युतानः) दीप्तियुक्त (दैव्यः) विद्वानों में प्रशंसित (अतिथिः) अतिथिवत् पूज्य, सर्वोपरि (शुशोच) चमकता है ।

असन्नित्त्वे आहवनानि भूरि भुवो विश्वेभिः सुमना अनीकैः ।
स्तुतश्चिदग्ने शृण्विषे गृणानः स्वयं वर्धस्व तन्वं सुजात ॥५॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (त्वे) तेरे निमित्त (भूरि) बहुत (आहवनानि) निमन्त्रण (असन् इत्) हों । तू (विश्वेभिः अनीकैः) सब सैन्यों से युक्त और (सुमनाः) उत्तम चित्त वाला (भुवः) हो । हे (सुजात) गुणों से प्रख्यात ! तू (स्तुतः-चित्) प्रशंसित और (गृणानः)

उपदेश करता हुआ (शग्धिवे) अन्यों के वचन सुन और (स्वयं) अपने आप (तन्वं वर्धस्व) शरीरवत् अपने राष्ट्र और ज्ञान की वृद्धि कर।

इदं वर्चः शतसाः संसहस्रमुदग्नये जनिषीष्ट द्विबर्हाः।
शं यत्स्तोतृभ्य आपये भवाति द्युमदमीवचातनं रक्षोहा॥ ६॥

भा०—हे विद्वन्! (द्वि-बर्हाः) ज्ञान और कर्म दोनों से बढ़ने वाला पुरुष (अग्नये) अग्रगण्य पुरुष की उन्नति के लिये (शत-साः) सैकड़ों ज्ञानों का दाता होकर (सं-सहस्रम्) सहस्रों, अपरिमित ऐश्वर्यों को देने वाला (इदं वचः) इस प्रकार का वचन (उत् जनिषीष्ट) उत्पन्न करे, कहे (यत्) जो (स्तोतृभ्यः) विद्वानों और (आपये) बन्धु-वर्ग के लिये (शं भवाति) शान्तिदायक हो और जो (द्युमत्) शुभ कामनायुक्त, (अमीव-चातनं) रोगादिनाशक और (रक्षः हा) दुष्ट पुरुषों का नाशक हो।

नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम्।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७।११

भा०—व्याख्या देखो (सू० ७। म० ७) इत्येकादशो वर्गः॥

[९]

वसिष्ठ ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। २, ३ भुरिक् पंक्तिः। ६ स्वराट् पंक्तिः॥ षड्टचं सूक्तम्॥

अबोधि जार उषसामुपस्थाद्धोता मन्द्रः कवितमः पावकः।
दधाति केतुमुभयस्य जन्तोर्हव्या देवेषु द्रविणं सुकृत्सु॥ १॥

भा०—(जारः) रात्रि को जीर्ण कर देने वाला सूर्य जैसे (उपसाम् उपस्थात्) प्रभात वेलाओं के बीच प्रकट होकर (अबोधि) सबको प्रबुद्ध करता, (उभयस्य जन्तोः) दोपाये, चौपाये दोनों को (केतुम् दधाति) चेतना देता है, वैसे ही (उपसाम् उपस्थात्) हृदय से चाहने वाले शिष्यों वा प्रजाओं के बीच (जारः) उपदेष्टा पुरुष (अबोधि) अन्यों

को ज्ञान से बोधित करे। वह (होता) उत्तम ज्ञानदाता (मन्द्रः) हर्ष-जनक, (कवि-तमः) श्रेष्ठ विद्वान्, (पावकः) अग्नि के समान सबका पवित्रकर्ता होता है। वह (उभयस्य जन्तोः) ज्ञानी, अज्ञानी, पशु, मनुष्य वा इहलोक, परलोक को जाने वाले दोनों प्रकार के (जन्तोः) प्राणियों को (केतुम्) ज्ञान-प्रकाश (दधाति) देता है, वह (देवेषु) विद्वानों, ज्ञान-कामना वालों और (सुकृत्सु) उत्तम सुकर्मा पुरुषों में (हव्या) ग्रहण-योग्य अन्न- वचनादि तथा (द्रविणं) धन (दधाति) दे।

स सुक्रतुर्यो वि दुरः पणीनां पुनानो अर्कं पुरुभोजसं नः।
होता मन्द्रो विशां दमूनास्तिरस्तमो ददृशे राम्याणाम् ॥ २ ॥

भा०—जैसे (राम्याणां तमः दमूनाः तिरः ददृशे) रात्रियों के अन्धकार को दूर करके सूर्य दिखाई देता है वैसे ही (यः) जो (दमूनाः) जितेन्द्रिय (होता) दाता, (मन्द्रः) सबका प्रसन्नकर्ता पुरुष (नः) हमारे (पुरुभोजसं) बहुत ऐश्वर्यों के भोक्ता (अर्कं) पूज्य पुरुष को (वि पुनानः) विशेष रूप से, अभिषिक्त करता हुआ (पणीनां) व्यवहारी प्रजागणों के (दुरः) व्यवहार-मार्गों को (वि पुनानः) न्यायमर्यादा से स्वच्छ करता हुआ (राम्याणाम्) रमण-योग्य, (विशां तमः तिरः ददृशे) प्रजाओं के अज्ञान को दूर करके स्वयं तेजस्वी रूप से दीखता है (सः सुक्रतुः) वही पुरुष शुभकर्मा है।

अमूरः कविरदितिर्विवस्वान्त्सुसंसन्मित्रो अतिथिः शिवो नः।
चित्रभानुरुषसां भात्यग्रेऽपां गर्भः प्रस्व१आ विवेश ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (चित्र-भानुः) अद्भुत कान्ति वाला सूर्य (उषसाम् अग्रे भाति) प्रभातों के आगे चमकता है और जैसे विद्युत् (अपाम्) जलों के (गर्भः) बीच, (प्र-स्वः) उत्तम रीति से ओषधियों की उत्पादक भूमियों और ओषधियों में भी (आ विवेश) प्रविष्ट हो जाता है, वैसे ही (अमूरः) कभी नाश न होने वाला, (कविः) क्रान्तदर्शी, (अदितिः)

अदीन, (विवस्वान्) सूर्यवत् किरणों के सदृश प्रजाओं का स्वामी, (सु-संसद्) उत्तम राजसभा का स्वामी, (मित्रः) स्नेही, न्यायशील, (अतिथिः) अतिथिवत् पूज्य (शिवः) कल्याणकारी हो। वह (नः) हमारे बीच में (उपसाम्) शत्रु को भस्म करने वाले सैन्यों के आगे नायकवत् प्रकाशित हो और वह (अपां) प्रजाओं को (गर्भः) वश में लेने हारा होकर (प्र-स्वः) उत्तम धनवान् होकर (प्रस्वः=प्रसुवः) प्रभूत ऐश्वर्यवान् प्रजाओं में गृहपति तुल्य (आविवेश) प्रविष्ट हो।

ई॒ळेन्यो॑ वो॒ मनु॑षो यु॒गेषु॑ समन॒गा अ॑शुचज्जा॒तवे॑दाः ।
सु॒स॒न्दृशा॑ भा॒नुना॒ यो वि॒भाति॒ प्रति॒ गावः॑ समिधा॒नं बु॑धन्त ॥४॥

भा०—हे मनुष्यो! जो (युगेषु) वर्षों में (समनगाः) संग्रामों में जाने वाला, (जातवेदाः) विद्यावान् (वः) आप सब (मनुषः) मनुष्यों को (अशुचत्) पवित्र करता है वह (ईडेन्यः) स्तुत्य है और (यः) जो (भानुना) तेज से सूर्य-तुल्य (सु-सन्दृशा) उत्तम सम्यक् दर्शन, ज्ञान-प्रकाश से (वि भाति) प्रकाशित है (गावः) किरणें जैसे (समिधानं) चमकते सूर्य का बोध कराती हैं वैसे ही (गावः) वेद-वाणियां भी (समिधानं प्रति) अच्छी प्रकार प्रकाशमान पुरुष को (बुधन्त) पदार्थ का बोध कराती हैं।

अग्ने॑ या॒हि दू॒त्यं१॒॑ मा रि॑षण्यो दे॒वाँ अच्छा॑ ब्रह्म॒कृता॑ ग॒णेन॑ ।
सर॑स्वतीं म॒रुतो॑ अ॒श्विना॒पो यक्षि॑ दे॒वान्र॑त्न॒धेया॑य॒ विश्वा॑न् ॥५॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (दूत्यं याहि) अग्नि तुल्य शत्रु-संतापन-सामर्थ्य को प्राप्त हो, तथा (देवान्) उत्तम मनुष्यों को (मा रिषण्यः) दण्डित मत कर। (ब्रह्म-कृता गणेन) धन, अन्न और ज्ञान के उत्पादक 'गण' अर्थात् नाना साधनों से (सरस्वतीम्) वेद-वाणी को, (मरुतः) व्यापारी पुरुषों को (अश्विना) प्रजा के उत्तम स्त्री-पुरुषों, और (अपः) आप्त पुरुष साथ (अच्छ यक्षि) भली प्रकार सत्संग

कर। (रत्नधेयाय) रमणीय गुणों को धारण करने के लिये (विश्वान् देवान्) समस्त विद्वानों का (यक्षि) सत्सङ्ग कर।

त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठो जरूथं हन्यक्षि राये पुरन्धिम्।
पुरुणीथा जातवेदो जरस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥१२॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! (वसिष्ठः) गुरु के अधीन उत्तम वसु ब्रह्मचारी (त्वा जरूथं) तुझ विद्या और वयस् में वृद्ध एवं उत्तम ज्ञानोपदेष्टा को (हन्) प्राप्त हो। वह विद्वान् होकर (राये) धन-प्राप्ति के लिये (पुरन्धिम्) बहुत से धनों के धारक पुरुष को (यक्षि) प्राप्त करे। हे (जातवेदः) विद्वन्! हे धनवन्! तू (पुरु-नीथाः) बहुत वाणियों व उपायों से सम्पन्न होकर (जरस्व) अन्यों को विद्या का उपदेश कर और स्वयं बड़ा हो। हे विद्वान् पुरुषो! (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा शुभ साधनों से पालन करो। इति द्वादशो वर्गः ॥

[१०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ३ निचृत्त्रिष्टुप्।
४, ५ त्रिष्टुप्। पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

उषो न जारः पृथु पाजो अश्रेद्दविद्युतद्दीद्यच्छोशुचानः।
वृषा हरिः शुचिरा भाति भासा धियो हिन्वान उशतीरजीगः ॥१॥

भा०—जैसे (जारः) रात्रि को जीर्ण करने वाला सूर्य (पृथुपाजः अश्रेद्) महान् तेज धारण करता है, (शोशुचानः दविद्युतत्) खूब तेजस्वी होकर चमकता है वैसे ही (जारः) विद्योपदेष्टा, (उषः न) प्रभात काल के समान (पृथु-पाजः) बड़े बल और अन्न को (अश्रेत्) प्राप्त करे। वह (शोशुचानः) अन्यों को शुद्ध करता हुआ (दविद्युतत्) प्रकाशित हो। वह (शुचिः) शुद्धचित्त, (वृषा) बलवान्, सुखों का वर्षक (हरिः) पुरुष (आ भाति) सब प्रकार से प्रकाशित हो। वह

(धियः) ज्ञानों का (हिन्वानः) उपदेश करता हुआ (उशतीः) धनादि की अभिलाषी प्रजाओं को (अजीगः) प्रबुद्ध करे ।

स्व॒र्ण वस्तो॑रु॒षसा॑मरोचि य॒ज्ञं त॑न्वा॒ना उ॒शिजो॒ न मन्म॑ ।
अ॒ग्निर्जन्मा॑नि दे॒व आ वि वि॒द्वान्द्र॒वद्दू॒तो दे॑व॒यावा॒ वनि॑ष्ठः ॥२॥

भा०—(अग्निः) तेजस्वी पुरुष (वस्तोः स्वः न) दिन के समय किरणों के बीच सूर्य तुल्य (उषसाम्) शत्रुओं को दग्ध करने वाली सेनाओं के बीच (अरोचि) शोभित होता है । (यज्ञं तन्वानाः उशिजः न) यज्ञकर्ता धनादि के इच्छुक ऋत्विजों के समान धनादि की कामना वाले पुरुष भी (यज्ञं तन्वानाः) सत्संग करते हुए (मन्म) मनन योग्य ज्ञान प्राप्त करें । वह (अग्निः) ज्ञानी पुरुष (देवः) ज्ञानदाता (विद्वान्) विद्वान् (देव-यावा) ज्ञानी पुरुषों को प्राप्त होकर (वनिष्ठः) ऐश्वर्यादि का विभाग करता हुआ (जन्मानि) उत्तम जन्मों, रूपों को ग्रहण करने हारे शिष्यों को (आ वि द्रवत्) विशेष रूप से प्राप्त करे ।

अच्छा॒ गिरो॑ म॒तयो॑ देव॒यन्ती॑र॒ग्निं य॑न्ति॒ द्रवि॑णं॒ भिक्ष॑माणाः ।
सु॒स॒न्दृशं॑ सु॒प्रती॑कं॒ स्वञ्चं॑ हव्य॒वाह॑मर॒तिं मानु॑षाणाम् ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (द्रविणं भिक्षमाणाः मानुषाणाम् अरतिं यन्ति) धन के याचक लोग मनुष्यों के स्वामी को प्राप्त होते हैं और जैसे (गिरः) वाणियां, (मतयः) बुद्धियां (देवयन्तीः) प्रभु को चाहती हुई (भिक्षमाणाः) यज्ञादि की प्रार्थना करती हुईं प्रभु को लक्ष्य कर जाती हैं वैसे ही (गिरः) स्तुतिशील (मतयः) मननशील कन्याएं भी (देवयन्तीः) कामना-योग्य पति को चाहती हुईं, (द्रविणं भिक्षमाणाः) पुत्रादि की कामना करती हुईं (सुसन्दृशं) सुन्दर दीखने वाले, (सुप्रतीकम्) सुमुख, (स्वञ्चम्) उत्तम पूजा-योग्य (हव्यवाहम्) अन्न, वस्त्रादि प्राप्त कराने वाले (अरतिम्) स्वामी, एवं (मानुषाणाम्) पुरुषों के बीच (अग्निम्) अग्नि तुल्य तेजस्वी पुरुष एवं यज्ञाग्नि को भी (यन्ति) प्राप्त करती हैं ।

इन्द्रं॑ नो अग्ने॒ वसु॑भिः स॒जोषा॑ रु॒द्रं रु॒द्रेभि॒रा व॑हा बृ॒हन्त॑म् ।
आ॒दि॒त्येभि॒रदि॑तिं वि॒श्वज॑न्यां॒ बृह॒स्पति॒मृक्व॑भिर्वि॒श्ववा॑रम् ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! आप (सजोषाः) प्रेम-युक्त होकर (वसुभिः) पृथिवी आदि द्वारा हमें (इन्द्रं) ऐश्वर्य-युक्त विद्युत् आदि को (आ वह) प्राप्त कराओ। (आदित्येभिः) सूर्य द्वारा उत्पन्न मास आदि कालावयवों से (विश्व-जन्यां) समस्त जन-हितकारी (अदितिं) अखण्ड काल के ज्ञान और (ऋक्वभिः) ऋचाओं से (विश्व-वारम्) सबके वरणीय (बृहस्पतिम्) ब्रह्माण्ड-पालक प्रभु को (नः आवह) हमें प्राप्त कराओ। ऐसे ही (रुद्रेभिः रुद्रं) रोगनाशक ओषधियों सहित 'रुद्र' अर्थात् वैद्य को हम प्राप्त करें।

म॒न्द्रं होता॑रमु॒शिजो॒ यवि॑ष्ठम॒ग्निं विश॑ ईळते अध्व॒रेषु॑ ।
स हि क्षपा॑वाँ॒ अभ॑वद्रयी॒णामत॑न्द्रो दू॒तो य॒जथा॑य दे॒वान् ॥५॥१३

भा०—(उशिजः) द्रव्यादि के इच्छुक (विशः) प्रजागण (अध्वरेषु) हिंसारहित, प्रजापालनादि कार्यों में, (अग्निं) यज्ञों में अग्नि-तुल्य तेजस्वी, (मन्द्रम्) सब को हर्षदाता, (होतारम्) सबको आदर से बुलाने वाले, (अग्निम्) नायक पुरुष को (ईडते) चाहते हैं। (सः हि) वह निश्चय से (रयीणाम्) ऐश्वर्य-रक्षा के लिये (अतन्द्रः) अप्रमादी, (दूतः) दुष्ट-संतापक और (देवान् यजथाय) विद्वानों का आदर करने के लिये तत्पर एवं (क्षपावान्) रात्रि-स्वामी चन्द्र-तुल्य आह्लादकारक और शत्रु नाशक सेनाओं का स्वामी (अभवत्) हो। इति त्रयोदशो वर्गः॥

[११]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ स्वराट् पंक्तिः। २, ४ भुरिक्पंक्ति। ३ विराट्त्रिष्टुप्। ५ निचृत्त्रिष्टुप्। पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

म॒हाँ अ॑स्यध्व॒रस्य॑ प्रके॒तो न ऋ॒ते त्वद॒मृता॑ मादयन्ते ।
आ विश्वे॑भिः स॒रथं॑ याहि दे॒वैर्न्य॑ग्ने॒ होता॑ प्रथ॒मः स॑दे॒ह ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! तू (अध्वरस्य) सब व्यवहारों का (प्रकेतः) बताने वाला और (महान् असि) गुणों में महान् है। (त्वद् ऋते) तेरे विना (अमृताः) जीव (न मादयन्ते) प्रसन्न नहीं हो सकते। तू (विश्वेभिः देवैः) समस्त मनुष्यों सहित (सरथं आयाहि) अपने रथों-सुखों-सहित आ, (होता) तू सब सुखों का दाता (प्रथमः) सबसे मुख्य होकर (इह सद) यहां विराज।

त्वामीळते अजिरं दूत्याय हविष्मन्तः सदमिन्मानुषासः।
यस्य देवैरासदो बर्हिरग्नेऽहान्यस्मै सुदिना भवन्ति॥ २॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (हविष्मन्तः मानुषासः) अन्नादि-साधनों वाले मनुष्य (सदम् इव) स्थिरता से विराजने वाले (अजिरम्) शत्रुओं के नाशक (त्वाम्) तुझको (दूत्याय) उत्तम दूत कर्म और शत्रु-संतापन के कार्य के लिये (ईडते) प्रार्थना करते हैं। (यस्य) जिसका (बर्हिः) बड़ा राष्ट्र (देवैः आ सदः) विद्वान् पुरुषों द्वारा शासित होता है, (अस्मै) इसके (अहानि) सब दिन (सुदिना भवन्ति) उत्तम होते हैं।

त्रिश्चिदक्तोः प्र चिकितुर्वसूनि त्वे अन्तर्दाशुषे मर्त्याय।
मनुष्वदग्न इह यक्षि देवान्भवा नो दूतो अभिशस्तिपावा॥ ३॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (त्वे अन्तः) तेरे शासन में (दाशुषे मर्त्याय) भृत्ति-दाता मनुष्य के (वसूनि) ऐश्वर्यों को विद्वान् (अक्तोः) दिन वा रात्रि में भी (त्रिः) तीन बार (प्रचिकितुः) अच्छी प्रकार चेत लेवें। तू (मनुष्वत्) मनुष्यों के तुल्य विचारवान् होकर ही (देवान् यक्षि) उत्तम पुरुषों से संगत हो। (नः) हमारा (दूतः) शत्रुसंतापक होकर (अभिशस्तिपावा) शत्रु-प्रहार से रक्षक (भव) हो।

अग्निरीशे बृहतो अध्वरस्याग्निर्विश्वस्य हविषः कृतस्य।
क्रतुं ह्यस्य वसवो जुषन्ताथा देवा दधिरे हव्यवाहम्॥ ४॥

भा०—(अग्निः) जैसे अग्नि (बृहतः अध्वरस्य ईशे) बड़ा यज्ञ कराने में समर्थ है वैसे ही तेजस्वी पुरुष (बृहतः अध्वरस्य) बड़े हिंसारहित यज्ञ का (ईशे) प्रभु है। (अग्निः) तेजस्वी पुरुष ही (कृतस्य) स्वयं किये (विश्वस्य) सब प्रकार के (हविषः) धन का (ईशे) स्वामी है। (अस्य) इसके उपदेश किये (क्रतुम्) ज्ञान को (हि) निश्चय से (वसवः) ब्रह्मचारी (जुषन्त) सेवन करें (अथ) और (देवाः) विद्वान् (हव्यवाहम्) ग्रहण-योग्य ज्ञान धारक इसको (दधिरे) धारण करें।

आग्ने वह हविरद्याय देवानिन्द्रज्येष्ठास इह मादयन्ताम्।
इमं यज्ञं दिवि देवेषु धेहि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥१४॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! (देवान्) विद्वानों के (अद्याय) खाने के लिये (हविः आ वह) अन्न प्राप्त करा। (इह) इस राष्ट्र में (इन्द्र-ज्येष्ठासः) राजा को मुख्य मानने वाले प्रजाजन (मादयन्ताम्) प्रसन्नतापूर्वक जीवन बितायें। हे राजन्! (इमं यज्ञं) इस यज्ञ को (दिवि) परमेश्वर और (देवेषु) विद्वान् पुरुषों के आश्रय पर (धेहि) स्थापित कर। हे विद्वानो! (यूयं) तुम सब लोग (नः) हमें (सदा) सर्वदा (स्वस्तिभिः पात) सुख-साधनों से पालन करो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[१२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता । छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३ पंक्तिः ॥ तृचं सूक्तम् ॥

अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे।
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥ १ ॥

भा०—(स्वे दुरोणे) अपने गृह, अग्नि कुण्ड में (समिद्धः) प्रदीप्त अग्नि-तुल्य (यः) जो (स्वे दुरोणे) अपने गृह वा पद में (सम्-इद्धः सम् दीदाय) सर्वत्र समान रूप से प्रकाशित है उस (यविष्ठं) अति

बलवान्, (महा) बड़े (उर्वी रोदसी अन्तः) विशाल आकाश और पृथिवी के बीच (चित्र-भानुम्) अद्भुत कान्तिमान्, (विश्वतः प्रत्यञ्चम्) सर्वत्र व्यापक (सु-आहुतम्) उत्तम रीति से स्वीकृत एवं वर्णन-योग्य प्रभु को (अगन्म) हम प्राप्त हों।

स म॒ह्ना विश्वा॑ दुरि॒तानि॑ सा॒ह्वान॒ग्निः ष्ट॑वे॒ दम॒ आ जा॒तवे॑दाः।
स नो॑ रक्षिषद्दुरि॒ताद॑व॒द्याद॒स्मान्गृ॑ण॒त उ॒त नो॑ म॒घोनः॑ ॥ २ ॥

भा०—(दमे) गृह में (अग्निः) अग्नि-तुल्य (दमे) संसार को दमन करने में सर्वज्ञ प्रकाशक (जात-वेदाः) सर्वैश्वर्यवान् (स्तवे) स्तुति करने पर (मह्ना) सामर्थ्य से (सः) वह (विश्वा दुरितानि) सब दुष्टाचारों को (साह्वान्) पराजित करने हारा है। (सः) वह (नः) हम (गृणतः) स्तुतिकर्त्ताओं को (अवद्यात् दुरितात्) निन्दनीय पापाचार से (रक्षिषत्) बचावे और (उत) वह (नः मघोनः) धन-सम्पन्न हुए हमें भी पापाचार से बचावे।

त्वं वरु॑ण उ॒त मि॒त्रो अ॑ग्ने॒ त्वां व॑र्धन्ति म॒तिभि॒र्वसि॑ष्ठाः।
त्वे वसु॑ सुषण॒नानि॑ सन्तु यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥३।१५॥

भा०—हे (अग्ने) स्वप्रकाश प्रभो! (त्वं वरुणः) सर्वश्रेष्ठ होने से तू 'वरुण' है। (उत मित्रः) और तू ही सबको स्नेह करने वाला होने से 'मित्र' है। (वसिष्ठाः) उत्तम विद्याओं में निवास करने वाले विद्वान् (मतिभिः) बुद्धियों और वाणियों से (त्वां वर्धन्ति) तुझे बढ़ाते हैं। (त्वे) तेरे में ही समस्त (वसु) ऐश्वर्य (सु-सननानि) उत्तम रीति से देने योग्य (सन्तु) हों। हे विद्वानो! (यूयम्) आप (नः) हमें (स्वस्तिभिः पात) सुख-उपायों से रक्षा करो। इति पञ्चदशो वर्गः॥

[१३]

वसिष्ठ ऋषिः। वैश्वानरो देवता॥ छन्दः—१, २ स्वराट् पंक्तिः। ३ भुरिक्पंक्तिः। तृचं सूक्तम्॥

प्राग्नये विश्वशुचे धियन्धेऽसुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वम् ।
भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनाम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वानो ! आप (विश्व-शुचे) जगत् को पवित्र करने वाले और (विश्व-शुचे) सबके प्रति शुद्ध अन्तःकरण, (धियन्धे) उत्तम बुद्धि, ज्ञान और कर्म के धारक, (असुरघ्ने) दुष्टों के नाशक (मतीनां यतये) बुद्धियों के देने एवं मननशील पुरुषों के बीच संयम से ईश्वर प्राप्ति का यत्न करने वाले, (वैश्वानराय) सर्व मनुष्य-हितकारी, (अग्नये) ज्ञानस्वरूप प्रभु के लिये (बर्हिषि अग्नये) यज्ञ में अग्नि के लिये (हविः न) हवि तुल्य (मन्म धीतिम् भरे) मनन-योग्य संकल्प और स्तुति करता हूँ ।

त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान आ रोदसी अपृणा जायमानः ।
त्वं देवाँ अभिशस्तेरमुञ्चो वैश्वानर जातवेदो महित्वा ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! जैसे सूर्य (जायमानः) प्रकट होता हुआ (शोचिषा शोशुचानः रोदसी अपृणात्) प्रदीप्त होकर आकाश, पृथिवी दोनों को तेज से भरता है, वैसे ही, तू भी (जायमानः) प्रकट होकर (शोशुचानः) पवित्र होकर (शोचिषा) तेज से (रोदसी) स्त्री-पुरुषों को (अपृणाः) पूर्ण कर । हे (जातवेदः) विद्यावन् ! (त्वं) तू (देवान्) उत्तम मनुष्यों को (महित्वा) महान् सामर्थ्य से (अभि-शस्तेः) सामने प्रशंसाकारी, दम्भी और मिथ्याभियोगी पुरुष से (अमुञ्चः) छुड़ा ।

जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः पशून्न गोपा इर्यः परिज्मा ।
वैश्वानर ब्रह्मणे विन्द गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥१६

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! संन्यासिन् ! जैसे अग्नि (जातः भुवना वि-अख्यः) उत्पन्न होकर पदार्थों को प्रकाशित करता है, वैसे ही तू भी (जातः) विद्यादि गुणों से प्रकाशित होकर (भुवना) ज्ञानों का (वि अख्यः) विशेष उपदेश कर । तू (परिज्मा) सब ओर भ्रमण-

शील होकर (गोपाः पशून् न) गौओं का पालक जैसे पशुओं को दण्ड के बल से रास्ते चलाता है वैसे ही अज्ञानी जनों का (गोपाः) रक्षक होकर (इर्यः) सन्मार्ग में चलाने वाला है। हे (वैश्वानरः) समस्त मनुष्यों के हितैषिन्! तू (ब्रह्मणे) प्रभु की प्राप्ति के लिये (गातुम्) सन्मार्ग (विन्द) प्राप्त कर। हे विद्वान् लोगो! (यूयं) आप भी (स्वस्तिभिः) उत्तम उपायों से (नः पात) हमारी रक्षा करो। इति षोडशो वर्गः॥

[१४]

वसिष्ठ ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१ निचृद्बृहती। २ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्॥ तृचं सूक्तम्॥

स॒मिधा॑ जा॒तवे॑दसे दे॒वाय॑ दे॒वहू॑तिभिः।
ह॒विर्भिः॑ शु॒क्रशो॑चिषे नम॒स्विनो॑ व॒यं दा॑शेमा॒ग्नये॑॥ १॥

भा०—जैसे (अग्नये देवहूतिभिः समिधा हविर्भिः सह वयं नमस्विनः सन्तः दाशेम) अग्नि में परमेश्वर की स्तुतियों, काष्ठों और अन्नों सहित विनयी होते हुए चरु आदि त्यागते हैं वैसे ही (वयम्) हम लोग (जातवेदसे) ज्ञान, ऐश्वर्य के स्वामी और विद्या-व्रतस्नातकों में विद्यमान, (देवाय) ज्ञानप्रद, (शुक्रशोचिषे) वीर्य के तेजों से युक्त, (अग्नये) तेजस्वी पुरुष के सत्कारार्थ (नमस्विनः) अन्न और विनय आदि से युक्त होकर (देव-हूतिभिः) विद्वान् और इष्ट देव के प्रति कहने योग्य वाणियों और (हविर्भिः) उत्तम अन्नों से (वयं दाशेम) सेवा करें।

व॒यं ते॑ अग्ने स॒मिधा॑ विधेम व॒यं दा॑शेम सुष्टु॒ती य॑जत्र।
व॒यं घृ॒तेना॑ध्वरस्य होतर्व॒यं दे॑व ह॒विषा॑ भद्रशोचे॥ २॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! जैसे हम (समिधा सुस्तुती घृतेन हविषा दाशेम) अग्नि की परिचर्या काष्ठ, मन्त्रस्तुति, घी, हवि, आदि से करते हैं वैसे ही (वयम्) हम, हे विद्वन्! (ते) तेरी सेवा (समिधा)

गुणों के प्रकाशन से (विधेम) करें, हे (यजत्र) ज्ञानदातः! हम (ते सुस्तुती दाशेम) तेरी उत्तम स्तुति से सत्कार करें। हे (अध्वरस्य होतः) यज्ञ के होता के समान व्यवहार का उपदेश देने हारे! (देव) विद्वन्! हे (भद्र-शोचे) सुखमय मार्ग के प्रकाशक! (वयम्) हम (घृतेन हविषा विधेम) घृतयुक्त अन्न से तेरा सत्कार करें।

आ नो॑ दे॒वेभि॒रुप॑ दे॒वहू॑ति॒मग्ने॑ या॒हि वष॑ट्कृतिं जुषा॒णः।
तुभ्यं॑ दे॒वाय॒ दाश॑तः स्याम यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥२।१७

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक! तू (नः) हमारे (वषट्कृतिं=अव-सत्कृतिं जुषाणः) सत्कार को स्वीकार करता हुआ (देवेभिः) विद्वानों सहित, (नः) हमारे (देव-हूतिम्) विद्वानों की आमन्त्रित सभा को (आ उप याहि) प्राप्त हो। (देवाय तुभ्यम्) तुझ विद्वान् के उपकारार्थ हम (दाशतः) आदर सहित देने वाले (स्याम) हों। हे विद्वान् पुरुषो! (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) आप सब हमारी उत्तम साधनों से रक्षा कीजिये। इति सप्तदशो वर्गः॥

[१५]

वसिष्ठ ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ३, ७, १०, १२, १४ विराड्गायत्री। २, ४, ५, ६, ९, १३ गायत्री। ८ निचृद्गायत्री। ११, १५, आर्च्युष्णिक्॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

उ॒प॒सद्या॑य मी॒ळ्हुषे॑ आ॒स्ये॑ जुहुता ह॒विः।
यो नो॒ नेदि॑ष्ठ॒माप्य॑म्॥ १॥

भा०—(यः) जो (नः) हमारे (नेदिष्ठम्) अति समीप (आप्यम्) प्राप्त सौहार्द को पाता उस (उप-सद्याय) उपास्य (मीढुषे) सुख-वर्षक विद्वान् पुरुष के (आस्ये) मुख में (हविः) अन्न का (जुहुत) त्याग करो।

यः पञ्च चर्षणीरभि निषसाद दमेदमे ।
कविर्गृहपतिर्युवा ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (युवा) बलवान् (गृहपतिः) गृह-पालक और गृह के समान राष्ट्र-पालक राजा (कविः) क्रान्तदर्शी, (दमे-दमे) गृह २ में तथा राष्ट्र के दुष्टों के दमन-कार्य में (पञ्चचर्षणीः) पांचों प्रकार के प्रजाओं तथा (पञ्च चर्षणीः) पांचों विषयों के द्रष्टा पांचों इन्द्रियों पर (अभि नि-ससाद) अध्यक्षरूप से विराजता है, वह सत्संग-योग्य है।

स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु विश्वतः ।
उतास्मान्पात्वंहसः ॥ ३ ॥

भा०—(सः वेदः अग्निः) वह विद्वान् राजा (नः) हमारी और (अमात्यं) हमारे साथी की (विश्वतः) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे (उत) और (अस्मान्) हमें (अंहसः) पाप से (पातु) बचावे ।

नवं नु स्तोममग्नये दिवः श्येनाय जीजनम् ।
वस्वः कुविद्वनाति नः ॥ ४ ॥

भा०—जो (नः) हमें (कुवित्) बहुत (वस्वः) धन की मात्रा (वनाति) देता है उस (दिवः) शुभ-कामना के लिये (श्येनाय) बाज-समान तीव्र-गामी (अग्नये) तेजस्वी पुरुष के प्रति (नवं स्तोमं) उत्तम स्तुतिवचन (जीजनम्) करूं ।

स्पार्हा यस्य श्रियो दृशे रयिर्वीरवतो यथा ।
अग्रे यज्ञस्य शोचतः ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—(यज्ञस्य अग्रे शोचतः अग्नेः यथा श्रियः दृशे स्पार्हाः) यज्ञ के अग्र भाग में जैसे प्रज्वलित अग्नि की कान्तियां देखने में हृदय-हारिणी होती हैं वैसे ही (यज्ञस्य) धन आदि-दान, सत्संगादि-व्यवहार के (अग्रे) प्रथम रूप में (शोचतः) व्यवहार को स्वच्छ बनाये रखने वाले (वीरवतः) वीरों, विद्वानों के स्वामी (यस्य) जिसकी (स्पार्हाः

प्रियः) स्पृहा करने योग्य सत्पदार्थ (दृशे) देखने योग्य हैं वैसे ही उसका (रयिः) ऐश्वर्य भी देखने योग्य हो। इत्यष्टादशो वर्गः॥

सेमां वेतु वषट्कृतिमग्निर्जुषत नो गिरः।
यजिष्ठो हव्यवाहनः॥ ६॥

भा०—(सः) वह (यजिष्ठः) अतिपूज्य (हव्यवाहनः) स्वीकार-योग्य अन्नादि को प्राप्त कराने वाला (अग्निः) ज्ञानवान् पुरुष (इमाम्) इस (नः) हमारे किये (वषट्-कृतिम्) सत्कार को (वेतु) प्राप्त करे और इसी प्रकार हे विद्वान् लोगो! आप लोग (नः) हमारी वाणियों और सत्कार को (जुषत) स्वीकार करो।

नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं देव धीमहि।
सुवीरमग्न आहुत॥ ७॥

भा०—हे (विश्पते) प्रजा-पालक! हे (देव) दानशील! हे (आ-हुत) सादर निमन्त्रित! हे (अग्ने) मुख्य पद के योग्य! हे (नक्ष्य) प्राप्त होने योग्य! विद्वन्! हम (त्वा) तुझको (द्युमन्तं) दीप्तियुक्त, (सुवीरम्) वीर्यवान् जानकर (धीमहि) तुझे धारण करते, ध्यान करते हैं।

क्षप उस्रश्च दीदिहि स्वग्नयस्त्वया वयम्।
सुवीरस्त्वमस्मयुः॥ ८॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! तू (क्षपः उस्रः च) दिन और रात्रि को भी (दीदिहि) स्वयं प्रकाशित हो (त्वया) तेरे से ही (वयम्) हम लोग (सु-अग्नयः) उत्तम नेता वाले हों और (त्वम्) तू (सु-वीरः) उत्तम वीर पुरुषों का स्वामी तथा (अस्मयुः) हमारा प्रिय हो।

उप त्वा सातये नरो विप्रासो यन्ति धीतिभिः।
उपाक्षरा सहस्रिणी॥ ९॥

भा०—हे राजन्! प्रभो! (विप्रासः नरः) विद्वान् मनुष्य (धीतिभिः) अंगुलियों से जैसे (अक्षरा उप यन्ति) अक्षरों को लिखते

हैं और (धीतिभिः) अध्ययनादि द्वारा (अक्षरा) अविनाशिनी (सहस्रिणी) सहस्रों वेद-मन्त्रों से युक्त वाणी को प्राप्त होते हैं वैसे ही वे (धीतिभिः) कामों और धारण-शक्तियों से बद्ध अंगुलियों से (सातये) सम्यक् भजन और अभीष्ट लाभ के लिये (त्वा उप यन्ति) तुझे प्राप्त होते हैं।

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः।
शुचिः पावक ईड्यः ॥ १० ॥ १६ ॥

भा०—(अग्निः) तेजस्वी (शुक्र-शोचिः) शुद्ध तेज वाला, (शुचिः) धर्मात्मा, (पावकः) पवित्रकर्ता (ईड्यः) आदर-योग्य है। वह (अमर्त्यः) साधारण मनुष्यों से भिन्न, उनसे अधिक होकर (रक्षांसि) दुष्ट पुरुषों को (सेधति) वश करता है। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

स नो राधांस्या भरेशानः सहसो यहो।
भगश्च दातु वार्यम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (सहसः यहो) बलवान् के पुत्र! (सः) वह तू (ईशानः) सबका स्वामी है। तू (नः) हमें (राधांसि) धनैश्वर्य (आ भर) प्राप्त करा। (भगः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (नः) हमें (वार्यम् दातु) धन दे।

त्वमग्ने वीरवद्यशो देवश्च सविता भगः।
दितिश्च दाति वार्यम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू और (देवः सविता च) सूर्यवत् दानशील, सर्वोत्पादक (भगः) ऐश्वर्यवान्, (दितिः च) कष्टों का नाशक नीति और हल आदि से कर्षित भूमि ये सब (वार्यम् दाति) धन दें।

अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति ष्म देव रीषतः।
तपिष्ठैरजरो दह ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! राजन्! तू (नः) हमें (अंहसः रक्ष) पाप और पापी से बचा। हे (देव) तेजस्विन्! तू (रीषतः) हिंसकों

को स्वयं (अजरः) उखाड़ने में समर्थ, बलवान् होकर (तपिष्ठैः) अति सन्तापदायक उपायों से (प्रति दह स्म) एक २ करके जला ।

अधा मही न आयस्यनाधृष्टो नृपीतये ।
पूर्भवा शतभुंजिः ॥ १४ ॥

भा०—(अध) और हे राजन् और राज्ञि ! जैसे (नृ-पीतये) मनुष्यों के पालनार्थ तू (अनाधृष्टः) शत्रुओं से कभी पराजित नहीं होता वैसे ही, हे रानी ! तू भी (अनाधृष्टा उ नृ-पीतये) मनुष्यों में नारियों की रक्षा के लिये कभी पराजित न हो और (आयसी पूः) लोह-निर्मित प्रकोट के तुल्य (शत-भुजिः) सैकड़ों की पालक, पालिका, (अध) हो ।

त्वं नः पाह्यंहसो दोषावस्तरघायतः ।
दिवा नक्तमदाभ्यः ॥ १५ ॥ २० ॥

भा०—हे राजन् ! (त्वं) तू (दोषावस्तः) रात-दिन (नः) हमें (अंहसः पाहि) पाप से बचा । तू (नः) हमें (अघायतः) पापाचार के इच्छुक पुरुष से (दिवा नक्तम्) दिन-रात (पाहि) बचा । इति विंशो वर्गः ॥

[१६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ स्वराडनुष्टुप् । ५ निचृदनुष्टुप् । ७ अनुष्टुप् । ११ भुरिगनुष्टुप् । २ भुरिग्बृहती । ३ निचृद्बृहती । ४, ९, १० बृहती । ६, ८, १२ निचृत्पंक्तिः । द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ १ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! (वः) आप के (ऊर्जः नपातम्) बल से उत्पन्न, एवं पराक्रम का नाश न होने देने वाले, (अग्निम्) अग्नि-तुल्य तेजस्वी, (प्रियम्) प्रिय, (चेतिष्ठम्) ज्ञानोपदेष्टा, (अरतिम्) सुख-

ज्ञायक, विषयों में सशक्त (स्वध्वरम्) उत्तम हिंसा-रहित कर्त्तव्यों के पालक, (विश्वस्य) सबके (दूतम्) सन्देश-हर (अमृतम्) अविनाशी पुरुष को (एना मनसा) इस प्रकार के विनय, आदर, अधिकार से (आ हुवे) बुलाता हूँ।

स यो॑जते अरु॒षा वि॒श्वभो॑जसा॒ स दु॑द्रव॒त्स्वा॑हुतः।
सु॒ब्रह्मा॑ य॒ज्ञः सु॒शमी॒ वसू॑नां दे॒वं राधो॒ जना॑नाम् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह विद्वान् (अरुषा) तेजो-युक्त अश्वों के समान (विश्व-भोजसा) समस्त विश्व के पालक, जल और अग्नि को (योजते) रथ में संयुक्त करता है (सः स्वाहुतः) वह उत्तम रीति से आदत (दुद्रवत्) वेग से जाने में समर्थ होता है। ऐसे ही वह (सु-ब्रह्मा) उत्तम वेदों का विद्वान् और उत्तम धन-सम्पन्न राजा, (यज्ञः) पूज्य, (सु-शमी) सुकर्मा और उत्तम शम का साधक (वसूनां जनानां) बसी प्रजाओं में से (देवं) सुखदाता (राधः) ऐश्वर्य को भी (दुद्रवत्) प्राप्त होता है।

उद॑स्य शो॒चिर॑स्थादाजु॒ह्वा॑नस्य मी॒ळ्हुषः॑।
उद्धू॒मासो॑ अरु॒षासो॑ दिवि॒स्पृशः॒ सम॒ग्निमि॑न्धते॒ नरः॑ ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (आजुह्वानस्य मीढुषः) आहुति दिये गये (अस्य) इस अग्नि की (शोचिः) ज्वाला (उत् अस्थात्) ऊपर उठती है और (अरु-षासः धूमासः दिवि स्पृशः उत् अस्थुः) चमकते आकाश को छूने वाले धूम ऊपर उठते हैं उस (अग्निम्) अग्नि को (नरः समिन्धते) उत्तम पुरुष प्रज्वलित करते हैं वैसे ही (आजुह्वानस्य) किरणों से जल ग्रहण करने वाले (मीढुषः) वृष्टि करने वाले (अस्य) इस सूर्य का (शोचिः) प्रकाश (उत् अस्थात्) ऊपर विद्यमान रहता है और उसके (दिवि-स्पृशः) आकाश में व्यापक (अरुषासः) दीप्त (धूमासः) धूम के समान ज्वाला-पटल (उत्) ऊपर उठते हैं उस (अग्निम्) तेजस्वी सूर्य के (नरः) प्रकाश लाने वाले किरण संसार को (सम् इन्धते) प्रदीप्त करते हैं।

तं त्वा॑ दू॒तं कृ॑ण्महे य॒शस्त॑मं दे॒वाँ आ वी॒तये॑ वह।
विश्वा॑ सूनो सहसो मर्त॒भोज॑ना रास्व॒ तद्यत्त्वेम॑हे ॥ ४ ॥

भा०—वैसे ही हे राजन् ! (तं) उस (त्वा) तुझ (यशस्तमं) कीर्त्तिमान् पुरुष को ही हम (दूतं) दुष्टों को पीड़ित करने और सबको आदेशादि देने वाला प्रमुख रूप से (कृण्महे) बनाते हैं, तू (वीतये) राष्ट्र-रक्षा के लिये (देवान्) व्यवहारज्ञ, तेजस्वी पुरुषों को (आवह) धारण कर। हे (सहसः सूनो) बल, सैन्य के सञ्चालक, तू ही (विश्वा) समस्त (मर्त्तभोजना) मनुष्यों के भोग-योग्य ऐश्वर्यादि पदार्थ (रास्व) दे (यत्) जो २ हम (त्वा ईमहे) तुझसे मांगें।

त्वम॑ग्ने गृ॒हप॑तिस्त्वं होता॑ नो अध्व॒रे।
त्वं पोता॑ विश्ववार॒ प्रचे॑ता॒ यक्षि॒ वेषि॑ च॒ वार्य॑म् ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! राजन् ! (त्वम्) तू (गृहपतिः) गृहस्थ और राष्ट्र को गृहवत् पालने वाला (अध्वरे) प्रजापालक पद पर स्थित होकर (होता) सबको वेतनादि देने और करादि लेने वाला है। (त्वं पोता) न्याय और व्यवस्था से राज्य-शासन और व्यवहार को शोधने वाला है। हे (विश्ववार) समस्त संकटों को वारने हारे ! तू (प्रचेताः) ज्ञान वाला होकर (वार्यम्) श्रेष्ठ धन का (यक्षि) प्रदान करता है।

कृ॒धि रत्नं॒ यज॑मानाय सुक्रतो॒ त्वं हि र॑त्न॒धा असि॑।
आ न॑ ऋ॒ते शि॑शीहि॒ विश्व॑मृ॒त्विजं॑ सु॒शंसो॒ यश्च॒ दक्ष॑ते ॥६॥२१॥

भा०—हे (सुक्रतो) शुभकर्मा पुरुष ! (हि) जिससे (त्वं रत्नधा असि) तू रमण योग्य, उत्तम धनों का धारक है, इससे तू (यजमानाय) यज्ञादिकर्त्ता के लिये (रत्नं कृधि) धन उत्पन्न कर और (नः) हमारे (विश्वम् ऋत्विजं) समस्त ऋतु-अनुकूल यज्ञकर्त्ता को (ऋते) यज्ञ, व्यवहार और धनोपार्जन-कार्य में (आ शिशीहि) सब प्रकार से तीक्ष्ण अर्थात् उत्साहित कर। (यः) जो (सुशंसः) उत्तम प्रशंसा योग्य, (दक्षते) कुशल होकर कार्य करता है उसे भी बढ़ा। इत्येकविंशो वर्गः ॥

त्वे अ॑ग्ने स्वाहुत प्रि॒यास॑: सन्तु सू॒रय॑: ।
य॒न्तारो॒ ये म॒घवा॑नो॒ जना॑नामू॒र्वान्दय॑न्त॒ गोना॑म् ॥ ७ ॥

भा०—हे (स्वाहुत) उत्तम रीति से आमन्त्रित (अग्ने) तेजस्विन्! (ये) जो (मघवानः) धनैश्वर्यवान्, (यन्ता) व्यवस्था-कुशल पुरुष (जनानाम् गोपाम्) मनुष्यों, इन्द्रियों के (ऊर्वान्) पालकों की (दयन्त) रक्षा करते हैं ऐसे (सूरयः त्वे प्रियासः सन्तु) विद्वान् तेरे प्रिय हों।

येषा॒मिळा॑ घृ॒तह॑स्ता दुरो॒ण आँ अपि॑ प्रा॒ता नि॒षीद॑ति ।
ताँस्त्रा॑यस्व सहस्य द्रु॒हो नि॒दो यच्छा॑ नः॒ शर्म॑ दीर्घ॒श्रुत् ॥ ८ ॥

भा०—(येषां) जिन के (दुरोणे) घर में (इळा) पूज्य देवी, (घृत-हस्ता) पूज्यों का सत्कार करने के लिये जलपात्र हाथ में उठाये (प्राता) पूर्ण प्राप्त होकर (अपि आ निषीदति) विराजती है, हे (सहस्य) बल-वन्! तू (तान्) उनकी (द्रुहः) द्रोही और (निदः) निन्दकों से (त्रायस्व) रक्षा कर और तू (दीर्घश्रुत्) दीर्घ काल तक ज्ञान-श्रवण करने द्वारा होकर (नः) हमें (शर्म यच्छ) सुख दे ।

स म॒न्द्रया॑ च जि॒ह्वया॒ वह्नि॑रा॒सा वि॒दुष्ट॑रः ।
अग्ने॑ र॒यिं म॒घव॑द्भ्यो न॒ आ व॑ह ह॒व्यदा॑तिं च सूदय ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) नायक! (सः) वह तू (वह्निः) राज्य-भार को उठाने वाला, (मन्द्रया जिह्वया) हर्षप्रद वाणी और (आसा) मुख से (विदुः-तरः) उत्तम विद्वान् होकर (नः मघवद्भ्यः) हमारे धनाढ्य पुरुषों को (रयिम् आ वह) ऐश्वर्य प्राप्त करा और (हव्य-दातिं च) अन्न के विनाश को (सूदय) दूर कर ।

ये राधां॑सि॒ दद॒त्यश्व्या॑ म॒घा कामे॑न॒ श्रव॑सो म॒हः ।
ताँ अंह॑सः पिपृहि प॒र्तृभि॒ष्ट्वं श॒तं पू॒र्भिर्य॑विष्ठ्य ॥ १० ॥

भा०—हे (यविष्ठ्य) बलशालिन्! (ये) जो (महः) बड़े (श्रवसः) यश, ज्ञान की (कामेन) अभिलाषा से (राधांसि) नाना धन, (अश्व्या)

अश्वों के सैन्य और (मघा) नाना सत्कार (ददति) देते हैं, तू (तान्) उनको (पर्तृभिः) पालक जनों से और (शतं पूर्भिः) सैकड़ों नगरियों आदि उपायों से (पिपृहि) पालन और पूर्ण कर।

देवा वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्यासिचम्।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥ ११ ॥

भा०—हे मनुष्यो! (देवः) सुखों का दाता ही (वः) आप को (द्रविणोदाः) ऐश्वर्य देता है। वह (पूर्णाम्) पूर्ण (आसिचम्) आहुति (विवष्टि) चाहता है। आप (उप सिञ्चध्वम्) उसको बढ़ाओ (वा) और (उप पृणध्वम्) प्रसन्न करो। (आत् इत्) अनन्तर वही (देवः) प्रभु (वः) आप के (ओहते) कर्मों की विवेचना करता और कर्म-फल देता है।

तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ॥ १२ ॥ २२ ॥

भा०—(देवाः) विद्वान् लोग (होतारं) विद्या ग्रहण करने और शिष्यों को देने वाले (अध्वरस्य) यज्ञ के (प्र-चेतसम्) उत्तम ज्ञाता पुरुष को (वह्निम् अकृण्वत) अग्नि तुल्य कार्य का बोझ उठाने वाला, आश्रय बनावें। वह (अग्निः) अग्नि-तुल्य तेजस्वी पुरुष (विधते) विशेष कर्म करने वाले को (रत्नं) सुखकारी फल (दधाति) देता और (दाशुषे) दानशील पुरुष को (सु-वीर्यम् दधाति) उत्तम बल देता है। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[१७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ७ आर्च्युष्णिक्। २ साम्नी त्रिष्टुप्। ५ साम्नी पंक्तिः। सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने भव सुषमिधा समिद्ध उत बर्हिरुर्विया वि स्तृणीताम् ॥१॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! आप (सु-समिधा) उत्तम काष्ठ से

जैसे अग्नि चमकता है वैसे ही उत्तम तेज और सत्कर्म से (समिद्धः भव) चमकें। (उत) और (उर्विया बर्हिः) जैसे यज्ञ में बहुत कुशा बिछती हैं वैसे ही विद्वान् भी (उर्विया) बहुत (बर्हिः) वृद्धिशील ज्ञान और प्रजा को (वि स्तृणीताम्) विस्तृत करे।

उत द्वारं उशतीर्वि श्रंयन्तामुत देवाँ उशत आ वंहेह ॥ २ ॥

भा०—हे राजन्! (उत) और (द्वारः) वेग से जाने वाली, शत्रु-वारक सेनाएं (उशतीः) तुझे चाहती हुईं देवियों के तुल्य (वि श्रयन्ताम्) विशेष रूप से स्वामी का आश्रय लें। (उत) और (उशतः देवान्) तुझे चाहते विद्वानों को तू (इह) इस स्थान में (आ वह) प्राप्त करा।

अग्ने वीहि हविषा यक्षि देवान्त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥३॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (हविषा) अन्न से (वीहि) विद्वानों की रक्षा कर, (देवान् यक्षि) विद्वानों का आदर कर। हे (जातवेदः) ज्ञानिन्! तू (सु-अध्वरा कृणुहि) उत्तम हिंसारहित कर्म कर।

स्वध्वरा करति जातवेदा यक्षद्देवाँ अमृतान्पिप्रयच्च ॥ ४ ॥

भा०—(जातवेदाः) ऐश्वर्य और ज्ञान वाला पुरुष (सु-अध्वरा करति) उत्तम यज्ञ करे। वह (देवान् यक्षत्) विद्वानों का सत्संग करे, वह (अमृतान् पिप्रयत्) मरण रहित, जीवित पुरुषों को अन्न से पाले।

वंस्व विश्वा वार्याणि प्रचेतः सत्या भवन्त्वाशिषो नो अद्य ॥५॥

भा०—हे (प्रचेतः) उत्तम ज्ञानी पुरुष! तू (विश्वा वार्याणि) सब प्रकार के वरण-योग्य धन आदि पदार्थ (नः वंस्व) हमें दे और (अद्य) आज, (नः आशिषः) हमारी सब अभिलाषाएं (सत्याः भवन्तु) पूर्ण हों।

त्वामु ते दधिरे हव्यवाहं देवासो अग्न ऊर्ज आ नपातम् ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! (ते) वे (देवासः) विद्वान् लोग (ऊर्जः नपातम्) बल का नाश न होने देने वाले (हव्यवाहं) उत्तम गुणों, पदार्थों के धारक (त्वाम् उ) तुझको (दधिरे) पुष्ट करें।

ते ते॑ दे॒वाय॒ दाश॑तः स्याम म॒हो नो॒ रत्ना॑।
वि द॑ध इ॒ध्यानः॥ ७॥ २३॥ १॥

भा०—जो तू (नः इध्यानः) हमें प्राप्त होकर (महः रत्ना) उत्तम-उत्तम पदार्थ (विदधे) बनाता और उत्तम कर्मों का विधान करता है (ते देवाय) तुझ विद्वान् के लिये हम सदा (दाशतः स्याम) सब कुछ देने वाले हों। इति त्रयोविंशो वर्गः॥ इति प्रथमोऽनुवाकः॥

[१८]

वसिष्ठ ऋषिः॥ १-२१ इन्द्रः। २२-२५ सुदासः पैजवनस्य दानस्तुतिर्देवता॥ छन्दः—१, १७, २१ पंक्तिः। २, ४, १२, २२ भुरिक् पंक्ति। ८, १३, १४ स्वराट् पंक्तिः। ३, ७ विराट् त्रिष्टुप्। ५, ६, ११, १६, १९, २० निचृत्त्रिष्टुप्। ९, १०, १५, १८, २३, २४, २५ त्रिष्टुप्॥ पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम्॥

त्वे ह॒ यत्पि॒तर॑श्चिन्न इन्द्र॒ विश्वा॑ वा॒मा ज॑रि॒तारो॒ अस॑न्वन्।
त्वे गावः॑ सु॒दुघा॒स्त्वे ह्यश्वा॒स्त्वं वसु॑ देवय॒ते वनि॑ष्ठः॥ १॥

भा०—हे (इन्द्र) प्रभो! (नः पितरः चित्) हमारे पिता माता, (चित्) और (जरितारः) ज्ञानोपदेष्टा जन (त्वेह) तुझ पर आश्रय पाकर (विश्वा वामा) सब उत्तम फलों की (असन्वन्) याचना करते हैं, तू ही (वनिष्ठः) सबसे श्रेष्ठ दाता है। (त्वे गावः) तेरे ही अधीन गौएं (सु-दुघाः) उत्तम दूध वाली हैं, (त्वे हि अश्वाः) तेरे ही अधीन अश्व हैं। (त्वं वसु देवयते) विद्वानों को तू ही ऐश्वर्य देता है।

राजे॑व॒ हि जनि॑भिः॒ क्षेष्ये॒वाव॒ द्युभि॑र॒भि वि॒दुष्क॒विः सन्।
पि॒शा गिरो॑ मघव॒न् गोभि॒रश्वै॑स्त्वाय॒तः शि॑शीहि रा॒ये अ॒स्मान्॥२

भा०—हे विद्वन् ! (जनिभिः) प्रजाओं सहित तू (राजा इव) राजा के तुल्य (क्षेषि) निवास कर और तू (विद्रुः) विद्वान् (कविः) क्रान्तदर्शी, उपदेष्टा होकर (अभि अव क्षेषि) अनुशासन कर और, हे (मघवन्) विद्याधन के धनी ! तू (कविः सन्) विद्वान् होकर (पिशा) उत्तम रूप से (गिरः शिशीहि) वाणियों को प्रकट कर और (त्वायतः अस्मान्) तेरी शुभ कामना करते हुए, हमें तू (गोभिः) गौओं, भूमियों और (अश्वैः) अश्वों से (राये) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (शिशीहि) उत्साहित कर ।

इमा उ त्वा पस्पृधानासो अत्र मन्द्रा गिरो देवयन्तीरुप स्थुः ।
अर्वाची ते पथ्या राय एतु स्याम ते सुमताविन्द्र शर्मन् ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (इमाः गिरः) ये वाणियां (देवयन्तीः) विद्वानों को चाहती हुईं (मन्द्राः) हर्षदात्री (पस्पृधानासः) एक दूसरे से बढ़कर (त्वा उ) तुझको ही (उप स्थुः) प्राप्त हों । (ते) तेरी (अर्वाची) नवीन (पथ्या) सन्मार्ग पर चलने वाली नीति (राये एतु) हमारे ऐश्वर्य हेतु प्राप्त हो । हम लोग (ते सुमतौ) तेरी श्रेष्ठ सम्मति और (शर्मन्) शरण में (स्याम) रहें ।

धेनुं न त्वा सूयवसे दुदुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठः ।
त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आहा न इन्द्रः सुमतिं गन्त्वच्छ ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (सुयवसे धेनुं न दुदुक्षन्) उत्तम चारे के ऊपर गौ-पालक गौ को खूब दुहने की इच्छा करता है वैसे ही, हे राजन् ! (वसिष्ठः) राज्यवासी उत्तम प्रजाजन (सूयवसे) उत्तम अन्न-सम्पदा के लिये (त्वा) तुझको गौ के समान (दुदुक्षन्) दोहने, तुझसे ऐश्वर्य लेने या तुझे समृद्ध करना चाहता हुआ (ब्रह्माणि) बल, धन और अन्न (उप ससृजे) उत्पन्न करता, प्राप्त करता है । हे स्वामिन् ! (विश्वः) समस्त जन (त्वाम् इव) तुझको ही (मे गोपतिम्) मेरा 'गोपति',

भूमिपति (आह) कहें। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (नः) हमारी (सुमतिं) उत्तम सम्मति को (अच्छ गन्तु) अच्छी प्रकार प्राप्त करे।

अर्णांसि चित्पप्रथाना सुदास इन्द्रो गाधान्यकृणोत्सुपारा।
शर्धन्तं शिम्युमुचथस्य नव्यः शापं सिन्धूनामकृणोदशस्तीः ॥५॥२४

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (सुदासे) उत्तम करप्रद प्रजाजन के लिये (पप्रथाना अर्णांसि) दूर तक फैले जलों को नौकादि द्वारा (गाधानि) परिमित एवं (सुपारा) सुख से पार जाने योग्य (अकृणोत्) करे। वह (नव्यः) स्तुति-योग्य राजा (सिन्धूनां) नदियों के तुल्य प्रवाह से चलने वाली, एवं प्रबन्ध से बंधी प्रजाओं में से (शर्धन्तं) बलात्कार करते हुए (शिम्युम्) कर्म करने वाले को (उचथस्य) आज्ञा वचन कहने वाले के आगे (शापं) आक्रोश या दुर्वचन कहने योग्य, निन्दनीय करे और (अशस्तीः) निन्दित लोगों को (अकृणोत्) दण्ड दे। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

पुरोळा इत्तुर्वशो यक्षुरासीद्राये मत्स्यासो निशिता अपीव।
श्रुष्टिं चक्रुर्भृगवो द्रुह्यवश्च सखा सखायमतरद्विषूचोः ॥६॥

भा०—(यक्षुः) दान देने और सत्कार करने वाला (तुर्वशः) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों का अभिलाषी पुरुष (पुरोडाः इव आसीत्) द्रव्य के पहले या आगे कर देने वाला हो। तब (राये मत्स्यासः) जैसे मत्स्य अन्नादि लेने के लिये जल में वेग से दौड़ते हैं वैसे ही (राये) धनैश्वर्य प्राप्त करने के लिये (मत्स्यासः) प्रसन्न चित्त होकर लोग (अतीव निशिताः) बहुत ही तेज हो जायेंगे और (भृगवः) वेद वाणी के धारक विद्वान्, भूमिपति, क्षत्रिय और गवादिपालक वैश्य तथा (द्रुह्यवः च) परस्पर के द्रोही स्पर्धालु लोग भी (श्रुष्टिं चक्रुः) शीघ्र कार्य करने लगेंगे। (विसूचीः) आगे रक्खे धन के कारण एक दूसरे के विपरीत जनों में से (सखा) मित्र भी (सखायम् अतरत्) अपने मित्र को पार कर जाता है, मित्र भी मित्र से बढ़ जाना चाहता है।

आ प॒क्थासो॑ भला॒नसो॑ भन॒न्ताल॑िनासो विषा॒णिन॑ः शि॒वास॑ः ।
आ योऽन॑यत्सध॒मा आर्य॑स्य ग॒व्या तृत्सु॑भ्यो अजगन्यु॒धा नॄन् ॥७॥

भा०—(पक्थासः) परिपक्व ज्ञान और उम्र वाले जन, (भलानसः) उत्तम नासिका वाले सुमुख जन वा (भल अनसः) उत्तम रथों, शकटों पर स्थित (अलिनासः) सुन्दर नाक वाले (विषाणिनः) सींग के समान हाथ में शस्त्र रखने वाले, वीर, (शिवासः) मंगलकारी लोग (भनन्त) जब संदेशादि कहा करें। तब (यः) जो (सधमाः) समान स्थान या पद पर मान पाकर (आर्यस्य) उत्तम पुरुष के (गव्या) भूमि-विषयक राज्य-कार्यों को (अनयत्) चलाने में समर्थ है वह सेनापति होकर (तृत्सुभ्यः) हिंसक पुरुषों के विनाशार्थ (युधा) युद्ध के हेतु (नॄन् अजगन्) नायकों को प्राप्त करे।

दु॒रा॒ध्यो॑ अदि॑तिं स्रे॒वय॑न्तोऽचे॒तसो॒ वि ज॑गृभ्रे परु॒ष्णीम् ।
म॒ह्नावि॑व्यक् पृथि॒वीं पत्य॑मानः प॒शुष्क॒विर॑शय॒च्चाय॑मानः ॥ ८ ॥

भा०—(दुराध्यः) दुष्ट आचार वाले (अचेतसः) अज्ञानी (अदितिम्) तेजस्वी पुरुष की अखण्ड, (परुष्णीम्) पालने वाली नीति को (स्रेवयन्तः) उल्लंघन करते हुए (वि जगृभ्रे) विरोध करते हैं। (मह्ना) महान् सामर्थ्य से (चायमानः) ऐश्वर्य बढ़ाता हुआ (कविः) विद्वान् (पृथिवीं पत्यमानः) पृथिवी का स्वामी होता हुआ (अविव्यक्) पृथ्वी पर अधिकार करता है और (पशुः) पशु-तुल्य मूर्ख राजा (चायमानः) वृद्धियुक्त होकर भी (पत्यमानः) गिराया जाकर (पृथिवीम् अशयत्) भूमि पर पशु-तुल्य सोता है, मारा जाता है।

ई॒युरर्थं॒ न न्य॒र्थं परु॒ष्णीमा॒शुश्च॒नेद॑भिपि॒त्वं ज॑गाम ।
सु॒दास॒ इन्द्र॑ः सु॒तुकाँ॑ अ॒मित्रा॒नर॑न्धय॒न्मानु॑षे॒ वध्रि॑वाचः ॥ ९ ॥

भा०—(यत्) जब (सुदासः) उत्तम भृत्य वाला (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (मानुषे) मनुष्यों से करने योग्य संग्रामों में (वध्रिवाचः)

परुष-भाषी (सु-तुकान्) खूब हिंसक (अमित्रान्) शत्रुओं को (अरन्धयत्) दण्डित करता है और ऐसे ही वह (मानुषे) मनुष्यों से बसे राष्ट्र में (वध्रि-वाचः) वृद्धिकारक विद्वानों और (सु-तुकान्) उत्तम पुत्रों वाले प्रजाजनों को (अरन्धयत्) वश करता है तब वह (आशुः) शीघ्रकारी (अभिपित्वं) प्राप्ति-योग्य ऐश्वर्य को (जगाम) प्राप्त करता है। तब सब लोग (अर्थं न) अपने धन के समान (न्यर्थं) निश्चित लक्ष्य को और (परुष्णीम्) पालक नीति को (ईयुः) प्राप्त होते हैं।

ई॒युर्गावो॒ न यव॑सा॒दगो॑पा यथाकृ॒तम॒भि मि॒त्रं चि॒तासः॑।
पृश्नि॑गावः॒ पृश्नि॑निप्रेषितासः श्रु॒ष्टिं च॑क्रु॒र्नि॒युतो॒ रन्त॑यश्च ॥१०॥२५

भा०—(अगोपाः गावः न) रक्षक-रहित गायें जैसे (यवसात्) अन्नादि के हेतु (ईयुः) स्वामी के घर आ जाती हैं वैसे ही (चितासः) चेतना-युक्त जीव भी (यथाकृतम्) कर्म के अनुसार (मित्रम् अभि ईयुः) स्नेही वा जीवन रक्षक प्रभु को प्राप्त होते हैं। जैसे (पृश्नि-गावः) 'पृश्नि' अर्थात् सूर्य से उत्पन्न नाना वर्ण की किरणें (पृश्नि निप्रेषितासः) पृथ्वी पर प्रेरित होकर (श्रुष्टिं चक्रुः) वर्षा द्वारा अन्न उत्पन्न करती हैं, वैसे ही (पृश्निः-गावः) भूमि-रूप गौवें, (पृश्निनिप्रेषितासः) तेजस्वी पुरुषों से प्रेरित होकर (श्रुष्टिं-चक्रुः) अन्न-सम्पत्ति को उत्पन्न करती हैं। ऐसे ही (नियुतः) लक्षों नियुक्त सेनादि पुरुष तथा (रन्तयः) रमण करने वाले सुप्रसन्न प्रजाजन भी (श्रुष्टिं चक्रुः) सम्पदा उत्पन्न करते हैं। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

एकं॑ च॒ यो विं॑श॒तिं च॑ श्रव॒स्या वै॑क॒र्णयो॒र्जना॒न्राजा॒ न्यस्तः॑।
द॒स्मो न सद्म॒न्नि शि॑शाति ब॒र्हिः शूरः॒ सर्ग॑मकृणो॒दिन्द्र॑ एषाम् ॥११

भा०—(न्यस्तः) निश्चितरूप से स्थापित (यः) जो (राजा) राजा (वैकर्णयोः) विविध कानों वाले दोनों पक्षों के बीच (एकं च विंशति च) एक और बीस अर्थात् इक्कीस, (जनान्) विद्वान् मनुष्यों को

(श्रवस्या) श्रवण योग्य कार्यों को सुनने के लिये अपना सभासद् बनाता है (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् वह (एषाम्) इन इक्कीसों का (सर्गम्) एक संघ (अकृणोत्) बना लेता है। वह (सद्मन्) अपने भवन में रहता हुआ (दस्मः) शत्रु नाश में समर्थ (शूरः) शूरवीर पुरुष (बर्हिः) कुश-तुल्य बढ़ते शत्रु को (नि शिशाति) नष्ट करता है।

अधं श्रुतं कवषं वृद्धमप्स्वनु द्रुह्युं नि वृंणग्वज्रंबाहुः।
वृणाना अत्रं सख्यायं सख्यं त्वायन्तो ये अमंदन्ननु त्वा ॥ १२ ॥

भा०—(अत्र) इस राष्ट्र में, हे राजन्! (ये) जो (त्वायन्तः) तेरी चाहना करते हुए, (त्वा सख्यं) तुझ मित्र को (सख्याय) मित्र बनाने के लिये (वृणानाः) चुनते हुए (त्वा अनु अमदन्) तेरी प्रसन्नता में प्रसन्न होते हैं, (अध) तू भी (वज्र-बाहुः) शस्त्रास्त्र बल को बाहुओं में धारण करता हुआ (अप्सु) आप्त प्रजाओं के बीच (श्रुतं) बहु-श्रुत, (कवषं) उपदेष्टा, (वृद्धम्) विद्या-वयोवृद्ध पुरुष को (अनु वृणक्) अपने अनुकूल करता और (द्रुह्युम् निवृणक्) द्रोही को दूर करता है।

वि सद्यो विश्वां दृंहितान्येषामिन्द्रः पुरः सहसा सप्त दंर्दः।
व्यानंवस्य तृत्संवे गयं भाग्जेष्मं पूरुं विदथें मृध्रवाचम् ॥ १३ ॥

भा०—जब भी (सद्यः) शीघ्र (विश्वा) सब (दृंहितानि) सैन्य दृढ़ हों, (इन्द्रः) आत्मा जैसे (सहसा) अपने प्राण-बल से (एषां) इन जीव-शरीरों के (सप्त पुरः वि दर्दः) सात इन्द्रिय, ज्ञानपूरक छिद्रों को भेदता है वैसे ही राजा भी (एषां) इन शत्रु जनों के (सप्त पुरः) सातों प्रकार के दुर्गों को (वि दर्दः) विविध प्रकार से भेदे। आत्मा जैसे 'अनु' अर्थात् प्राणी जीव के योग्य इस देह के (गयम्) प्राण को (वि भाक्) देह में विभक्त करता है वैसे ही राजा (आनवस्य) अनु अर्थात् मनुष्यों के रहने योग्य राष्ट्र के (गयं) प्रजाजन को (वि भाक्) विभक्त करे और (तृत्सवे) हिंसक पुरुष को राष्ट्र से हटाने के लिये हम लोग (मृध्र-

वाचस्) दुःखदायी वाणी बोलने वाले (पूरुं) मनुष्य समूह को (जेष्म) जीतें।

नि गव्यवोऽनवो द्रुह्यवश्च षष्टिः शता सुषुपुः षट् सहस्रा।
षष्टिर्वीरासो अधि षड् दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि ॥१४॥

भा०—(गव्यवः) गौ आदि और भूमियों के इच्छुक (अनवः) युद्धार्थी लोग भी जो (षष्टिः शता, अधि षष्टिः षट्) साठ सौ और ६६ अधिक, अर्थात् ६ सहस्र ६६ संख्या में (दुवोयु) स्वामी के सुख के लिये (नि सुषुपुः) सुख से सोते हैं, ऐसे ही (द्रुह्यवाचः षट् सहस्रा अधि षष्टिः षट्) द्रोह करने वाले विरोधी लोग भी ६०६६ संख्या में (दुवोयु) स्वामी के सुख के लिये (अधि सुषुपुः) भूमि पर पड़े सोते अर्थात् मारे जाते हैं, (विश्वा इत्) ये सब (इन्द्रस्य कृतानि वीर्या) ऐश्वर्ययुक्त शत्रुहन्ता राजा के करने योग्य कार्य हैं।

इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणा आपो न सृष्टा अधवन्त नीचीः।
दुर्मित्रासः प्रकलविन् मिमाना जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे॥१५।२६

भा०—(एते) ये (तृत्सवः) हिंसाकारी सिपाही लोग (वेविषाणा) शत्रु-सैन्य में फैलते हुए, (सृष्टाः आपः न) वर्षा से उत्पन्न जलों के तुल्य (नीचीः अधवन्त) नीचे की भूमियों में वेग से जाते हैं, और (दुर्मित्रासः) दुष्ट मित्र, (मिमानाः) हिंसा करते हुए (प्रकलविद्) अल्प संख्या जानने वाले (सुदासे) या उत्तम दानशील राजा के हितार्थ (भोजना जहुः) भोग्य सुखों को भी त्यागते हैं। इति षड्विंशो वर्गः॥

अध वीरस्य शृतपामनिन्द्रं परा शर्धन्तं नुनुदे अभि क्षाम्।
इन्द्रो मन्युं मन्युम्यो मिमाय भेजे पथो वर्तनिं पत्यमानः॥ १६ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (वीरस्य अर्धम्) वीरों के बढ़ाने वाले (शृतपाम्) पके दुग्धादि के पीने वाले पुरुष को (क्षाम् अभि) भूमि की प्राप्ति के लिये (नुनुदे) प्रेरित करता है और (अनिन्द्रं शर्ध-

न्तम्) इन्द्र-विरोधी बल को बढ़ाते हुए पुरुष को भी (परा नुनुदे) दूर करने में समर्थ होता है। वह ऐश्वर्यवान् (मन्युम्यः) मन्यु वालों का नाशक होकर भी (मन्युम्) क्रोध (मिमाय) करता है, वह (पत्यमानः) राष्ट्र की प्रजा का पति होकर (वर्त्तनिं) न्यायमार्ग तथा (पथः) सन्मार्गों का (भेजे) सेवन करे।

आध्रेण चित्तद्वेकं चकार सिंह्यं चित्पेत्वेना जघान।
अव स्रक्तीर्वेश्यावृश्चदिन्द्रः प्रायच्छद्विश्वा भोजना सुदासे ॥१७॥

भा०—वह राजा, (आध्रेण चित्) सब प्रकार से रक्षित सैन्य बल से (तत् उ) उस राष्ट्र को (एकं चकार) अद्वितीय साम्राज्य बना लेता है। (पेत्वेन) अश्व सैन्य के सामर्थ्य से (सिंह्यं चित्) सिंह-समान शत्रु को भी (आजघान) आघात करे। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (वेश्या) भीतर दुर्गादि में प्रवेश करने वाली, सूची-व्यूहादि के आकार की सेना से (स्रक्तीः) माला-समान लम्बी शत्रु-सेनाओं को (आवृश्चत्) वनों को परशु के समान काट गिरावे और (सुदासे) उत्तम, दानी प्रजा को (विश्वा भोजना) सब प्रकार के रक्षा-साधन और ऐश्वर्य (प्रायच्छत्) दे।

शश्वन्तो हि शत्रवो रारधुष्टे भेदस्य चिच्छर्धतो विन्द रन्धिम्।
मर्ताँ एनः स्तुवतो यः कृणोति तिग्मं तस्मिन्नि जहि वज्रमिन्द्र ॥१८॥

भा०—हे राजन्! (शश्वन्तः शत्रवः) सदा के शत्रु लोग (शर्धतः) बलवान् (भेदस्य) भेद नीति में कुशल (ते) तेरे (रारधुः) वश हों और वे (रन्धिं विन्द) विनाश को प्राप्त हों, (यः) जो (स्तुवतः) स्तुति आदि करते हुए, (मर्त्तान्) मनुष्यों को उपदेष्टा विद्वान् पुरुषों के प्रति (एनः कृणोति) हत्यादि अपराध करता है, (तस्मिन्) उस दुष्ट पुरुष पर, हे (इन्द्र) राजन्! तू (वज्रं जहि) शस्त्र का प्रयोग कर।

आवदिन्द्रं यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेदं सर्वताता मुषायत्।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि ॥१९॥

भा०—(यमुना) प्रजा की नियन्त्रक नीति, (तृत्सवः च) शत्रु-नाश में कुशल सैनिक और जो (अत्र) इस राष्ट्र में (सर्वताता) सर्व-हितकारी कार्य में (भेदं) परस्पर फूट को (प्र मुषायत्) नष्ट करते हैं और (अजासः) शत्रुओं को उखाड़ने वाले और (शिग्रवः) अन्यों को न पता चलने वाले संकेत शब्द या अस्पष्ट भाषा बोलने वाले विदेशी और (यक्षवः च) राजा से सन्धि करके रहने वाले ये सभी (इन्द्रं आवत्) ऐश्वर्यवान् राजा की रक्षा करें, वे (बलिं जभ्रुः) कर लावें, इसके अतिरिक्त वे (शीर्षाणि) शिरःस्थानीय, प्रमुख (अश्व्यानि) अश्वों के बड़े-बड़े सैन्यों को भी (जभ्रुः) धारण करें। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

न त॑ इन्द्र सुम॒तयो॒ न रायः॑ सं॒चक्षे॒ पूर्वा॑ उ॒षसो॒ न नूत्नाः॑ ।
दे॒व॒कं चि॑न्मान्यमा॒नं ज॑घ॒न्थाव॒ त्मना॑ बृह॒तः शम्ब॑रं भेत् ॥२०॥२७

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते) तेरी (सुमतयः) शुभ बुद्धियां और बुद्धिमान् पुरुष (संचक्षे न) गिने नहीं जा सकते। ऐसे ही हे राजन्! (ते रायः न संचक्षे) तेरे ऐश्वर्य भी नहीं गिने जा सकते। (पूर्वाः उषसः न नूत्नाः) जैसे नई प्रभात वेलाएं पूर्व की प्रभात वेलाओं के तुल्य ही होती हैं वैसे ही (उषसः) तुझे चाहने वाली प्रजाएं भी (पूर्वाः न नूत्नाः) पूर्व प्रजाओं के समान नयी भी तुझे चाहें। तू (मान्यमानं) मान्य पुरुषों के सत्कारकर्ता (देवकं) विद्वान् जनों को (जघन्थ) प्राप्त हो और (त्मना) अपने सामर्थ्य से (बृहतः) बड़े से बड़े के (शम्बरम्) मेघ-तुल्य शान्तिनाशक आवरण जाल को (भेत्) छिन्न-भिन्न कर। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

प्र ये गृ॒हाद॑ममदुस्त्वा॒या प॑राश॒रः श॒तया॑तु॒र्वसि॑ष्ठः ।
न ते॑ भो॒जस्य॑ स॒ख्यं मृ॑ष॒न्ताधा॑ सू॒रिभ्यः॑ सु॒दिना॒ व्यु॑च्छान् ॥२१॥

भा०—(ये) जो लोग (त्वाया) तेरी नीति से (गृहात्) गृह से निकल कर भी (अममदुः) प्रसन्न रहते हैं और (पराशरः) दुष्टों का

नायक (शत-यातुः) सैकड़ों वीरों को साथ लेकर चलने वाला (वसिष्ठः) श्रेष्ठ जन और (ये) जो (ते भोजस्य) तुझ पालक राष्ट्र-भोक्ता के (सख्यं) मित्र को (न मृषन्त) नहीं भूलते उन (सूरिभ्यः) विद्वानों के तू (सुदिना) शुभ दिन (वि उच्छान्) प्रकट कर जिससे वे अधिक हर्षित हों ।

द्वे नप्तुर्देववतः शते गोर्द्वा रथा वधूमन्ता सुदासः ।
अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानं होतेव सद्म पर्येमि रेभन् ॥ २२ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (होता इव सद्म) दानशील पुरुष जैसे सभाभवन को प्राप्त होता है वैसे ही मैं भी (अर्हन्) सत्कार को प्राप्त होकर (रेभन्) उपदेश करता हुआ (पैजवनस्य) स्पर्धा-योग्य वेग, आचार वाले चरित्रवान् पुरुष के पुत्र (सु-दासः) उत्तम दानशील पुरुष के (दानं) सात्विक दान को (सद्म पर्येमि) अपने प्रतिष्ठित गृह के समान ही प्राप्त करूं । ऐसे ही (नप्तुः) प्रजाओं के उत्तम प्रबन्धक (देव-वतः) विद्वानों, वीरों के स्वामी, (सु-दासः) उत्तम दानशील राजा के (द्वे शते) दो सौ (गोः) भूमि के (वधूमन्ता) 'वधू' अर्थात् राज्य के भार को वहन करने वाली विशेष शक्ति से युक्त, (द्वा रथा) दो रथ, रथवान् नायक जनों को भी मैं प्रजाजन प्राप्त करूं ।

चत्वारो मा पैजवनस्य दानाः स्मद्दिष्टयः कृशनिनो निरेके ।
ऋज्रासो मा पृथिविष्ठाः सुदासस्तोकं तोकाय श्रवसे वहन्ति ॥२३॥

भा०—(पैजवनस्य) उत्तम आचरणवान् प्रभु के (स्मद्दिष्टयः) उत्तम दर्शन वाले, (कृशनिनः) धनादि-सम्पन्न (दानाः) दानशील (ऋज्रासः) सरल, (पृथिविष्ठाः) पृथिवी पर विद्यमान (चत्वारः) चार (सुदासः) उत्तम सुखदाता हैं । वे (मा तोकं) पुत्रवत् मुझको (निरेके) शङ्कारहित सन्मार्ग में (वहन्ति) यज्ञ में चार ऋत्विजों और रथ में नियुक्त चार अश्वों के समान ले जावें और वे (मा) मुझको (तोकाय) सन्तान और

(अवसे) यश प्राप्ति के लिये (वहन्ति) सन्मार्ग पर चलावें। ये चार प्रभु के चार वेद और राजा के राज्य में चार वेदज्ञ विद्वान् हों।

यस्य॒ श्रवो॒ रोद॑सी अ॒न्तरु॒र्वी शी॒र्ष्णेशी॑र्ष्णे वि॑ब॒भाजा॑ वि॒भक्ता॑।
स॒प्तेदिन्द्रं॒ न स्र॒वतो॑ गृणन्ति॒ नि यु॑ध्याम॒धिम॑शिशाद॒भीके॑ ॥२४॥

भा०—(यस्य श्रवः) जिसका ज्ञान, ऐश्वर्य (उर्वी रोदसी अन्तः) विशाल आकाश और पृथ्वी के बीच तेज को सूर्य के समान (शीर्ष्णे-शीर्ष्णे) प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति के लिये (वि बभाज) विभक्त किया जाता है। जिसको (स्रवतः सप्त) वेगगामी, देह में प्राणों के समान, राष्ट्र के सातों विभाग, (इन्द्रं न) आत्मा वा राजा के समान (गृणन्ति) बतलाते हैं वह (युधि-आमधिम् अथवा युध्या-मधिं=मदिम्) युद्ध में पीड़ादायक वा युद्ध के मद वाले शत्रु को (अभीके) संग्राम में (नि अशिशात्) पराजित करे।

इ॒मं न॑रो मरुतः सश्चता॒नु दिवो॑दासं॒ न पि॒तरं॑ सु॒दासः॑।
अ॒वि॒ष्टना॑ पैजव॒नस्य॒ केतं॑ दू॒णाशं॑ क्ष॒त्रम॒जरं॑ दुवो॒यु ॥२५॥२८॥

भा०—हे (नरः) नायक (मरुतः) वायुवत् प्रिय मनुष्यो! (दिवः दासम्) सत्य-व्यवहारोपदेष्टा पुरुष को (पितरम्) पिता के समान जान (अनुसश्चत) उसका अनुकरण करो। (सु-दासः) शुभ ज्ञान और द्रव्यदाता (पैजवनस्य) आचारवान् पुरुष के (केतम्) गृह और ज्ञान को (अविष्टन) प्राप्त करो, उसकी रक्षा करो। (दुवोयु) उत्तम शुश्रूषा के अभिलाषी स्वामी वा गुरुजन के (दूणाशं) अविनाशी, (अजरं) स्थायी, (क्षत्रं) बल को प्राप्त करो। इत्यष्टाविंशो वर्गः॥

[१९]

वसिष्ठ ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ५ त्रिष्टुप्। ३, ६ निचृत्-त्रिष्टुप्। ७, ९, १० विराट् त्रिष्टुप्। २ निचृत्पंक्तिः। ४ पंक्तिः। ८, ११ भुरिक् पंक्तिः॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥१॥

भा०—(यः) जो राजा (तिग्म-शृङ्गः वृषभः न) तीक्ष्ण सींगों वाले सांड के समान (भीमः) भयंकर, (तिग्म-शृङ्गः) तीक्ष्ण शस्त्र से युक्त राजा (एकः) अकेला ही (विश्वाः कृष्टीः) समस्त मनुष्यों को (प्र च्यावयति) उत्तम रीति से चलाता है और (यः) जो (शश्वतः) बहुत से (अदाशुषः) कर आदि न देने वाले शत्रु और (गयस्य) अपत्यवत् अपने प्रजाजन का (प्रयन्ता) अच्छा शासक है, वह तू (सुस्वि-तराय) उत्तम ज्ञानैश्वर्यवान् पुरुष को (वेदः प्रयन्ता असि) ज्ञान और धन देने वाला है।

त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं ह) तू निश्चय ही (त्यत् कुत्सम्) शत्रु को काटने वाले शस्त्र-बल को (आवः) प्राप्त कर। (शुश्रूषमाणः) ज्ञान और प्रजा की प्रार्थना को सुनता हुआ (तन्वा) विस्तृत राष्ट्रबल वा सैन्य-बल से (अस्मै आर्जुनेयाय) इस पृथ्वी के ऊपर रहने वाले प्रजाजन के उपकारार्थ (दासं) प्रजा-नाशक, (शुष्णं) प्रजा-शोषक, (कुयवम्) निन्दित अन्न खाने वाले पुरुष को (शिक्षन्) शिक्षा देता हुआ (अरन्धयः) दण्डित कर।

त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम्।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (धृष्णो) शत्रुविजयी राजन्! (त्वं) तू (धृषता) शत्रु-जेता शस्त्रबल और (विश्वाभिः ऊतिभिः) समस्त रक्षा-साधनों से (वीत-हव्यम्) अन्नादि पदार्थों के रक्षक (सु-दासम्) उत्तम दानशील स्वामी की (प्र आवः) रक्षा कर। तू (पौरुकुत्सिम्) बहुत शस्त्रों के

धारक सैन्यनायक (त्रसदस्युम्) दुष्टों को भयकारी, (पूरुम्) वीर पुरुष को (वृत्र-हत्येषु) शत्रु-नाश के समय और (क्षेत्र-साती) रणक्षेत्र को प्राप्त करने और क्षेत्र अर्थात् भूमियों के विभाग के लिये भी (प्र अवः) प्रधान पद पर स्थापित कर।

त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहन्तु ॥ ४ ॥

भा०—हे (हर्यश्व) वेग वाले अश्वों के स्वामिन्! हे (नृमणः) उत्तम अधिनायकों में चित्त देने हारे! (त्वं) तू (देव-वीतौ) शुभगुणों, वीरों, विद्वानों को प्राप्त कराने वाले कार्य, उनकी रक्षा के लिये विघ्नों के स्थान, युद्ध के बीच (भूरीणि) बहुत से (वृत्राणि) बाधक शत्रुओं का (हंसि) विनाश कर और (त्वं) तू (चुमुरिम्) प्रजा का सर्वस्व चुराने वाले और (धुनिम्) प्रजा को भय से कंपाने वाले को (दभीतये) शत्रु-नाश के सद् उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये ही, (सु-हन्तु) अच्छी प्रकार दण्ड दे और (निः स्वापः) सदा के लिये सुला।

तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत्पुरो नवतिं च सद्यः।
निवेशने शततमाविवेषीरहन् च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥ ५ ॥ २९ ॥

भा०—हे (वज्रहस्त) शस्त्रास्त्रों को हाथों में धारणकर्ता, बलवन्! (तव) तेरे (तानि) वे (च्यौत्नानि) प्रजा वा सैन्यों को संचालित करने वाले सामर्थ्य हों (यत्) कि तू (सद्यः) शीघ्र ही (नव नवतिं पुरः) ९९ अर्थात् अनेक शत्रु-नगरों का (अहन्) नाश कर और स्वयं (निवेशने) बसने के लिये (शततमाम्) सौवीं नगरी को (अविवेषीः) व्याप, अधिकार कर। (वृत्रं) विघ्नकरी (नमुचिम्) दुष्टता न छोड़ने वाले, कैद योग्य शत्रु को भी (अहन्) दण्ड दे। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः॥

सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते) तेरे (सना) सदा से चले आये (ता) वे २ अपूर्व (भोजनानि) भोग्य ऐश्वर्य हैं, वे (रात-हव्याय) आह्य ऐश्वर्यों को देने और रक्षा करने वाले (दाशुषे) दानशील, (सुदासे) उत्तम आज्ञापालक प्रजाजन के हित के लिये हों और (दाशुषे सुदासे) सर्वप्रद, सुखदाता (वृष्णे) सुखों के वर्षक, मेघवत् उदार पुरुष के रथ में (वृषणा) विद्या और कर्म कौशल से बलवान् पुरुषों को (युनज्मि) युक्त करता हूँ, जोड़ता हूँ, जिससे हे (पुरु-शाक) बहुत शक्तिशालिन्! (ते ब्रह्माणि) तेरे नाना वेदज्ञ कुल (वाजं व्यन्तु) अन्न का भोजन करें (ते ब्रह्माणि वाजं व्यन्तु) ब्राह्मण कुल तेरे लिये ज्ञान प्रदीप्त करें।

मा ते अस्यां सहसावन्परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥ ७ ॥

भा०—हे (सहसावन्) बलवन्! (ते) तेरी (अस्याम्) इस (परिष्टौ) सब ओर से प्राप्त प्रजा में हम लोग (अघाय) पाप के निमित्त (परादै मा भूम) त्याज्य न हों। तू (नः) हमें (अवृकेभिः) भेड़िये के स्वभाव से रहित (वरूथैः) शत्रुवारक सैन्यों द्वारा (त्रायस्व) रक्षा कर। हम (सूरिषु) विद्वानों में (तव प्रियासः) तेरे प्रिय (स्याम) रहें।

प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ८ ॥

भा०—हे (मघवन्) धन-स्वामिन्! हम (नरः) नायक (सखायः) तेरे मित्र होकर (अभिष्टौ) अभीष्ट वस्तु प्राप्त करने के लिये (ते प्रियासः इत्) तेरे प्रिय होकर ही (मदेम) आनन्दित रहें। (अतिथिग्वाय) अतिथियों को प्राप्त होकर उनके सत्कार के लिये (तुर्वशं) निकट रहने वाले और (याद्वं) मनुष्यों को (निशिशीहि) तीक्ष्ण कर।

सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था ।
ये ते हवेभिर्वि पणीँरदाशन्नस्मान्वृणीष्व युज्याय तस्मै ॥ ९ ॥

भा०—हे (मघवन्) धन के स्वामिन् ! (ते) तेरी अभिमत नीति में (सद्यः चित् नु) बहुत शीघ्र ही (नरः) उत्तम पुरुष (उक्थ-शासः) वेद वचनों का अनुशासन और अध्ययनकर्ता (उक्था) मन्त्रों का (शंसन्ति) उपदेश करते हैं और (ये) जो (हवेभिः) सत्कारों सहित, (ते पणीन्) तुझे स्तुत्य पुरुष (अदाशन्) देते हैं। (तस्मै) उस (युज्याय) सहयोगी योग्य पद के लिये तू (अस्मान्) हमें ही (वृणीष्व) वरण कर।

एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि ।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् ॥ १० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (एते अस्मद्र्यञ्चः) हमें प्राप्त (नरां स्तोमाः) उत्तम पुरुषों के वचन-समूह, हे (नृतम) नरश्रेष्ठ ! (मघानि ददतः) नाना ऐश्वर्य देते हैं। तू (तेषाम्) उनके (वृत्र-हत्ये) शत्रुनाशक संग्राम में (शिवः भूः) कल्याणकारी हो। तू (नृणाम्) मनुष्यों का (सखा शूरः च) मित्र, शूर (अविता च) और रक्षक (भूः) हो।

नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व । उप नो वाजान्मिमीह्युप स्तीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ११ ॥ ३० ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र शूर) ऐश्वर्यवन् ! हे शूर ! तू (स्तवमानः) अपने सैन्यों के उत्साह की प्रशंसा करता हुआ (ब्रह्म-जूतः) बड़े धनों से युक्त होकर (तन्वा) शरीरवत् प्रिय राष्ट्र से (वावृधस्व) वृद्धि को प्राप्त हो। (नः) हमें (वाजान्) ऐश्वर्य (उप मिमीहि) प्राप्त करा और (स्तीन्) संघ बने शत्रुओं को (उप मिमीहि) उखाड़ फेंक। हे वीर पुरुषो ! आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः सदा पात) हमारी सदा शुभ उपायों से रक्षा करो। इति त्रिंशो वर्गः ॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

[२०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ स्वराट् पंक्तिः । ७ भुरिक् पंक्तिः । २, ४, १० निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ ६, ८, ९ त्रिष्टुप् । दशर्चं सूक्तम् ॥

उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावाञ्चक्रिरपो नर्यो यत्करिष्यन् ।
जग्मिर्युवा नृषदनमवोभिस्त्राता न इन्द्र एनसो महश्चित् ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (उग्रः) तेजस्वी पुरुष (स्वधावान्) अन्न आदि से सम्पन्न, वा आत्मा के धारक उपायों का स्वामी होकर (वीर्याय) बल-सम्पादन में (जज्ञे) समर्थ होता है, वह (चक्रिः) कर्म-कुशल, (अपः करिष्यन्) सूर्य जैसे वृष्टि-जलों को उत्पन्न करना चाहता हुआ तपता है वैसे ही उत्तम कार्य करना चाहता हुआ (नृ-सदनं जग्मिः) नायक के विराजने योग्य सभा-भवन आदि को प्राप्त होकर (युवा) बलवान् पुरुष (महः चित् एनसः) बड़े पापाचरण से (नः) हमें (अवोभिः) रक्षा-साधनों द्वारा (त्राता) बचाने हारा हो ।

हन्ता वृत्रमिन्द्रः शूशुवानः प्रावीन्नु वीरो जरितारमूती ।
कर्ता सुदासे अह वा उ लोकं दाता वसु मुहुरा दाशुषे भूत् ॥२॥

भा०—(इन्द्रः) तेजस्वी राजा (शूशुवानः) बढ़ता हुआ (वृत्रं हन्ता) मेघ-तुल्य विघ्नकारक का नाश करे । वह (वीरः) वीर (ऊती) रक्षार्थ (जरितारम्) प्रार्थना करने वाले की (प्र अवीत् नु) रक्षा करे । (अह वा उ) और (सुदासे) उत्तम दानशील पुरुष के हितार्थ (लोकं) उत्तम उपकार का (कर्त्ता) करने वाला हो और (दाशुषे) स्वयं को देने वाले पुरुष के पालनार्थ (मुहुः) बार २ (वसु दाता भूत्) ऐश्वर्य-दाता हो ।

युध्मो अनर्वा खजकृत्समद्वा शूरः सत्राषाड् जनुषेमषाळ्हः।
व्यास इन्द्रः पृतनाः स्वोजा अधा विश्वं शत्रूयन्तं जघान ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा, (युध्मः) योद्धा, (अनर्वा) अहिंसक, (खजकृत्) संग्रामकारी, (समद्वा) हर्ष-युक्त पुरुषों को प्राप्त करने वाला, (सत्राषाड्) यज्ञों का कर्त्ता, (ईम् जनुषा अषाढः) स्वभाव से किसी से पराजित न होने वाला हो। वह (सु-ओजाः) उत्तम पराक्रमशील होकर (आसे) स्वयं प्रमुख स्थान पर विराजकर (पृतनाः वि जघान) सब मनुष्यों को प्राप्त करे (अध) और (पृतनाः) शत्रु-सेनाओं तथा (विश्वम् शत्रूयन्तं) शत्रुता करने वाले सबका (वि जघान) विविध उपायों से नाश करे।

उभे चिदिन्द्र रोदसी महित्वा पप्राथ तविषीभिस्तुविष्मः।
नि वज्रमिन्द्रो हरिवान्मिमिक्षन्त्समन्धसा मदेषु वा उवोच ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! आप (तुविष्मः) बलवान् होकर (तविषीभिः) बलशालिनी सेनाओं से (उभे रोदसी चित्) आकाश और पृथिवी दोनों के समान विस्तृत राजवर्ग प्रजावर्ग दोनों को (महित्वा) महान् सामर्थ्य से (पप्राथ) विस्तृत करें। (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (हरिवान्) मनुष्यों का स्वामी होकर (वज्रम्) अपने शस्त्रास्त्र-बल को (अन्धसा) अन्न-सम्पदा से (नि मिमिक्षन्) पुष्ट करता हुआ (मदेषु) युद्ध के समय (वा) भी (सम् उवोच) अच्छा (समवाय) बनावे।

वृषा जजान वृषणं रणाय तमु चिन्नारी नर्यं ससूव।
प्र यः सेनानीरध नृभ्यो अस्तीनः सत्वा गवेषणः स धृष्णुः ॥५॥१

भा०—(यः) जो (सेनानीः) सेना-नायक (गवेषणः) भूमि का इच्छुक, (सत्वा) बलवान् (नृभ्यः इनः अस्ति) मनुष्यों का स्वामी है (सः धृष्णुः) वह शत्रु पराजयकर्ता होता है। (तम् वृषणम्) उस बल-वान् को (रणाय) रणादि के लिये (वृषा) वीर्य-सेचन-समर्थ पुरुष ही

(जजान) उत्पन्न करता है और (चित्) उसी प्रकार (नर्यं) मनुष्यों से श्रेष्ठ उस पुरुष को (नारी) उत्तम स्त्री ही (सुसूव) जनती है। इति प्रथमो वर्गः ॥

नू चित्स भ्रेषते जनो न रेषन्मनो यो अस्य घोरमाविवासात्।
यज्ञैर्य इन्द्रे दधते दुवांसि क्षयत्स राय ऋतपा ऋतेजाः ॥ ६ ॥

भा०—जो मनुष्य (अस्य) इस स्वामी के (घोरं मनः) घोर, आर्द्र अन्तःकरण को (आविवासात्) सेवता है, (सः जनः) वह कभी (न भ्रेषते) च्युत नहीं होता, (न रेषत्) कभी नष्ट नहीं होता और (यः) जो (यज्ञैः) यज्ञ आदि उपायों से (इन्द्रे) परमैश्वर्यवान् प्रभु में (दुवांसि दधते) प्रार्थनादि करता है (सः) वह (ऋत-पाः) व्रतों का पालक और (ऋतेजाः) सत्य-निष्ठ होकर (राये क्षयत्) ऐश्वर्य के लिये यत्न करता है।

यदिन्द्र पूर्वो अपराय शिक्षन्नयज्ज्यायान् कनीयसो देष्णम्।
अमृत इत्पर्यासीत दूरमा चित्र चित्र्यं भरा रयिं नः ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत्) जो (पूर्वः) पूर्व विद्यमान, अनुभवी, (अपराय) दूसरे को (देष्णम् शिक्षन्) देने योग्य ज्ञान-देता, वा (कनीयसः) छोटों से (ज्यायान्) बड़ा होकर भी (अयत्) प्राप्त करता है, वा (अमृतः) दीर्घायु, मुमुक्षु होकर (दूरम् इत् पर्यासीत) दूर रहता है, हे (मित्र) पूज्य! तू (नः) हमें वह (चित्र्यं) अद्भुत, (रयिम् आभर) ऐश्वर्य, ज्ञान दे।

यस्त इन्द्र प्रियो जनो ददाशदसन्निरेके अद्रिवः सखा ते।
वयं ते अस्यां सुमतौ चनिष्ठाः स्याम वरूथे अघ्नतो नृपीतौ ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) तेजस्विन्! हे (अद्रिवः) मेघ-तुल्य शस्त्रों पर शस्त्रवर्षक वीरों के स्वामिन्! (यः) जो (ते) तेरा (प्रियः जनः) प्रिय-जन (ददाशद्) कर आदि देवे, वह (निरेके) निःशंक व्यवहार में (ते

३३ प.

सखा) तेरा मित्र, (असत्) रहे। (वयम्) हम (ते) तेरी (अस्यां) इस (सुमतौ) शुभ मति में (चनिष्ठाः) ऐश्वर्ययुक्त (स्याम) हों और (अघ्नतः) अहिंसक तुझ पालक के (नृ-पीतौ) नायकों द्वारा पालन करने वाले (वरूथे) सैन्य में, घर समान (स्याम) सुखी रहें।

एष स्तोमो अचिक्रदद्वृषा त उत स्तामुर्मघवन्नक्रापिष्ट।
रायस्कामो जरितारं त आगन्त्वमङ्ग शक्र वस्व आ शको नः ॥९॥

भा०—हे प्रजाजन! (एषः) यह (स्तोमः) प्रशंसायोग्य (वृषाः) बलवान् राजा (ते अचिक्रदत्) तुझे आदर से बुलावे (उत) और हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! वह (अक्रपिष्ट) सब सामर्थ्य प्राप्त करे। (ते रायः-कामः) तेरे ऐश्वर्य को चाहने वाला पुरुष (जरितारं) ज्ञानोपदेष्टा तुझको (आगन्) प्राप्त हो और (अंग शक्र त्वं) हे शक्तिशालिन्! तू (नः वस्वः) हमारे धन पर (आ शकः) पूर्ण अधिकार प्राप्त कर।

स नं इन्द्र त्वयंताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जुनन्ति।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१०॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (नः) हममें से (ये) जो (त्मना) स्व-सामर्थ्य से (मघवानः) धनी होकर (जुनन्ति) तुझे प्राप्त होते उनको तू (त्वयताया) तेरे से सुप्रबद्ध (इषे) प्रेरणा के लिये (धाः) धारण कर। (जरित्रे) विद्वान् के लिये (ते) तेरी (वस्वी) ऐश्वर्ययुक्त (शक्तिः) दान शक्ति (सु-अस्तु) खूब हो। (यूयम्) तुम लोग हे विद्वानो! (नः सदा) हमें सदा (स्वस्तिभिः पात) कल्याणकारी उपायों से पालन करो। इति द्वितीयो वर्गः॥

[२१]

वसिष्ठ ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ६, ८, ९ विराट् त्रिष्टुप्। २, १० निचृत्त्रिष्टुप्। ३, ७ भुरिक्पंक्तिः। ४, ५ स्वराट् पंक्तिः॥ दशर्चं सूक्तम्॥

असा॑वि दे॒वं गोऋ॑जीक॒मन्धो॒ न्य॑स्मि॒न्निन्द्रो॑ ज॒नुषे॑मुवोच ।
बोधा॑मसि त्वा हर्यश्व य॒ज्ञैर्बोधा॑ नः॒ स्तोम॒मन्ध॑सो॒ मदे॑षु ॥ १॥

भा०—(गो-ऋजीकं) भूमि से सरलता से प्राप्त होने वाला, (देवं) सुखप्रद (अन्धः) अन्न आदि (असावि) उत्पन्न होता है। (अस्मिन्) इस पर (इन्द्रः ईम् उवोच) जैसे मेघ जल देता और बढ़ाता है वैसे ही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा भी (जनुषा) स्वभावतः (अस्मिन् नि उवोच) उस अन्न के निमित्त सब उपाय करावे। हे (हर्यश्व) मनुष्यों में श्रेष्ठ! हम (यज्ञैः) सत्कारों से (त्वा बोधामसि) तुझे कर्त्तव्य बतलाते हैं (अन्धसः मदेषु) अन्न आदि पदार्थों के सुखों के लिए तू (नः) हमें (स्तोमम्) स्तुत्यवचन (बोध) बोध करा।

प्र य॑न्ति य॒ज्ञं वि॒पय॑न्ति ब॒र्हिः सो॑म॒मादो॑ वि॒दथे॑ दु॒ध्रवा॑चः ।
न्यु॑ भ्रियन्ते य॒शसो॑ गृ॒भादा दू॒रउ॑पब्दो॒ वृष॑णो नृ॒षाचः॑ ॥ २ ॥

भा०—(सोम-मादः) ऐश्वर्य और बल से हर्ष-युक्त, (दुध्र-वाचः) दुर्धर, वाणी के स्वामी, शासक (यज्ञं) विद्वत्संग और परस्पर के संघ को (यन्ति) प्राप्त करते हैं, वे (बर्हिः विपयन्ति) वृद्धिशील पद को प्राप्त करते और (विदथे) संग्राम वा ज्ञान-व्यवहार में विशेष रूप से रहते हैं। वे (यशसः गृभात्) यशोजनक घर से निकल कर (वृषणः) बलवान् पुरुष (नृषाचः) मनुष्यों का संघ बनाकर (दूरे-उपब्दः) दूर देशों तक अपनी वाणी पहुँचाते और (नि भ्रियन्ते) निरन्तर आदर पाते हैं।

त्वमि॑न्द्र॒ स्रवि॑त॒वा अ॒पस्कः॒ परि॑ष्ठिता॒ अहि॑ना शूर पू॒र्वीः ।
त्वद्वा॑वक्रे र॒थ्यो॒३ न धेना॒ रेज॑न्ते॒ विश्वा॑ कृ॒त्रिमा॑णि भी॒षा ॥३॥

भा०—जैसे विद्युत् (अहिना परिस्थिता) मेघ रूप से सर्वत्र व्यापक होकर (अपः) जल-परमाणुओं को (स्रवितवै अकः) बहने के लिये प्रवृत्त करता है, वैसे ही, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (शूर) शूर!

(त्वम्) तू (पूर्वीः) समृद्धि-पूर्ण (अहिना परि स्थिताः) अग्रगन्ता नायक से अधिष्ठित (अपः) प्रजाओं को (स्रवितवै अकः) सन्मार्ग के लिये तैयार कर और अभिमुख आकर मारने वाले शत्रु के अधीन स्थित सेनाओं को भागने को बाधित कर। (त्वत् धेनाः) तेरी वाणियां (रथ्यः न) रथ के अश्वों के समान वेग से वा (वावक्रे) सफलता-पूर्वक सौन्दर्य से प्रकट हों और (विश्वा) समस्त (कृत्रिमाणि) कृत्रिम मित्र और शत्रु (भीषा रेजन्ते) भय से कांपें।

भीमो विवेषायुधेभिरेषामपांसि विश्वा नर्याणि विद्वान्।
इन्द्रः पुरो जर्हृषाणो वि दूधोद्वि वज्रहस्तो महिना जघान ॥४॥

भा०—(इन्द्रः) तेजस्वी, (आयुधेभिः) शस्त्रों से (भीमः) भयानक, (एषां) इन शत्रुजनों के (विश्वा) समस्त (नर्याणि) मनुष्यों से करने योग्य, (अपांसि) कर्मों को (विद्वान्) जानता हुआ, (विवेष) शत्रुओं के भीतर व्यापे, उनका रहस्य जाने। वह (जर्हृषाणः) प्रसन्न होकर शत्रुओं की (पुरः) नगरियों को (वि दूधोत्) विविध प्रकार से कंपा दे। (वज्र-हस्तः) हाथों में शस्त्र लिये (महिना) सामर्थ्य से (वि जघान) विविध प्रकार से शत्रुओं को दण्ड दे।

न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः ॥५॥३

भा०—हे (इन्द्र) तेजस्विन्! (यातवः) पीड़ादाता, (नः न जूजुवुः) हम तक न पहुँचें। हे (शविष्ठ) बलशालिन्! (वेद्याभिः) ज्ञान प्राप्त करने की क्रियाओं से वे पीड़क लोग (नः वन्दना) हमारे उपदेश योग्य कार्यों तक भी (न जुजुवुः) न पहुँचें। (अर्यः) राजा (विषुणस्य जन्तोः) विस्तृत प्रजाजन को (शर्धत) उत्साहित करे और (शिश्न-देवाः) उपस्थेन्द्रिय विलासी, नीच पुरुष (नः) हमारे (ऋतं) सत्य-व्यवहार, यज्ञ और अन्न को भी (मा अपि गुः) प्राप्त न हों। इति तृतीयो वर्गः॥

अभि क्रत्वेन्द्र भूरध ज्मन्न ते विव्यङ् महिमानं रजांसि ।
स्वेना हि वृत्रं शवसा जघन्थ न शत्रुरन्तं विविदद्युधा ते ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (अध) और तू (क्रत्वा) उत्तम कर्म से (ज्मन्) पृथिवी पर (रजांसि) राजस भावों को (अभि भूः) पराजित कर। (रजांसि) वे लोग (ते) तेरे (महिमानं) सामर्थ्य को (न विव्यङ्) न प्राप्त कर सकें। तू (स्वेन शवसा हि) अपने ही बल से (वृत्रं) विघ्न-कारी शत्रु को (जघन्थ) विनष्ट कर। (शत्रुः) तेरा नाशक, (ते अन्तं) तेरा अन्त (युधा) युद्ध द्वारा (न विविदत्) न पा सके।

देवाश्चित्ते असुर्याय पूर्वेऽनु क्षत्राय ममिरे सहांसि ।
इन्द्रो मघानि दयते विषह्येन्द्रं वाजस्य जोहुवन्त सातौ ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन् ! (असुर्याय क्षत्राय) मेघ में उत्पन्न जल प्राप्त करने के लिये जैसे अन्नाभिलाषी जन यत्न करते हैं वैसे ही (पूर्वे देवाः) वे पूर्व के, शिक्षित, विद्वान् (ते असुर्याय क्षत्राय) तेरे मेघ में उत्पन्न विद्युत् के बल को प्राप्त करने के लिये (सहांसि) साहस और बल-युक्त कर्म (अनु ममिरे) तेरी आज्ञा में करते हैं। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् तू (विषह्य) शत्रु को पराजित करके (मघानि दयते) ऐश्वर्यों का दान करता है। प्रजाजन (वाजस्य सातौ) बल और संग्राम में विजय लाभ-हेतु (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (जोहुवन्त) बुलाते हैं।

कीरिश्चिद्धि त्वामवसे जुहावेशानमिन्द्र सौभगस्य भूरेः ।
अवो बभूथ शतमूते अस्मे अभिक्षत्तुस्त्वावतो वरूता ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) स्वामिन् ! (कीरिः) क्रियाकुशल पुरुष (चित्) भी (अवसे) स्व रक्षा हेतु (भूरेः) बड़े, (सौभगस्य) ऐश्वर्य के (ईशानं) स्वामी (त्वाम्) तुझको (जुहाव) पुकारता है। हे (शतम्-ऊते) सैकड़ों रक्षा साधनों से सम्पन्न ! तू (अस्मे) हमारा (अवः बभूथ) रक्षक हो। (त्वावतः) तेरे जैसे (अभि-क्षत्तुः) सम्मुख आये शत्रु नाशक वीर को

(वरूता) स्वीकार करने और उसको युद्ध में पराजित कर भगाने वाला भी, तू ही (बभूथ) हो।

सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम नमोवृधासो महिना तरुत्र।
वन्वन्तु स्मा तेऽवसा समीकेऽभीतिमर्यो वनुषां शवांसि॥ ९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (तरुत्र) शत्रु नाशक! (ते) तेरे हम लोग (विश्वह) सदा (सखायः) मित्र और (महिना) तेरे सामर्थ्य से (नमः-वृधासः) अन्न और शस्त्र से बढ़ने हारे (स्याम) हों। (समीके) रण में (ते) तेरे (शवसा) रक्षण-सामर्थ्य से ही प्रजास्थ पुरुष (अभीतिम् वन्वन्तु) अभय पावें और (वनुषां शवांसि) हिंसक शत्रु बलों के प्रति (अभि-इतिम् वन्वन्तु) प्रयाण करें। तू उनका (अर्यः) स्वामी होकर रक्षा कर।

स न इन्द्र त्वयताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जुनन्ति।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥१०॥४

भा०—व्याख्या देखो सू० २० (मं० १०) इति चतुर्थो वर्गः॥

[२२]

वसिष्ठ ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ भुरिगुष्णिक्। २, ७ निचृदनुष्टुप्। ३ भुरिगनुष्टुप्। ५ अनुष्टुप्। ६, ८ विराडनुष्टुप्। ४ आर्षी पंक्तिः। ९ विराट् त्रिष्टुप्॥ नवर्चं सूक्तम्॥

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा॥ १॥

भा०—हे (हर्यश्व) उत्तम सैन्य के स्वामिन्! (यं) जिस (सोमम्) अन्नवत् ऐश्वर्य को (ते) तेरे लिये (अद्रिः) मेघवत् शस्त्र बल (सुषाव) उत्पन्न करता है तू उसको (सोमम्) ओषधि-रस के समान (पिब) उपभोग कर। वह (त्वा मन्दन्तु) तुझे हर्षित करे और (सोतुः बाहुभ्यां सुयतः), सञ्चालक सारथि के बाहुओं से नियन्त्रित (अर्वा न)

अश्व-समान, तू भी (सोतुः) मार्ग में सञ्चालन करने वाले पुरुष के (बाहुभ्यां) कुमार्ग से रोकने वाले ज्ञान और कर्मरूप बाहुओं से (सुयतः) उत्तम रूप से नियन्त्रित होकर (सोमम् पिब) इस राष्ट्ररूप ऐश्वर्य का पालन कर।

यस्ते॒ मदो॒ युज्य॒श्चारु॒रस्ति॒ येन॑ वृ॒त्राणि॑ हर्यश्व॒ हंसि॑।
स त्वामि॑न्द्र प्रभूवसो ममत्तु॥ २॥

भा०—हे (हर्यश्व) वेगयुक्त अश्वों के स्वामिन्! (यः) जो (ते) तेरा (युज्यः) सहयोग देने योग्य, (चारुः) उत्तम (मदः) हर्ष (अस्ति) है और (येन) जिससे तू (वृत्राणि) मेघों को सूर्यवत्, शत्रुओं का (हंसि) विनाश करता है, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (प्रभूवसो) प्रचुर ऐश्वर्य के स्वामिन्! (सः) वह (त्वा) तुझको (ममत्तु) अति हर्षयुक्त बनावे।

बोधा॒ सु मे॑ मघव॒न्वाच॒मेमां यां ते॒ वसि॑ष्ठो॒ अर्च॑ति॒ प्रश॑स्तिम्।
इ॒मा ब्रह्म॑ सध॒मादे॑ जुषस्व॥ ३॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (याम्) जिस (प्रशस्तिम्) प्रशंसित (ते) तेरी (वाचम्) वाणी का (वसिष्ठः) उत्तम विद्वान् (सु अर्चति) आदर कर रहा है तू (इमाम्) उसको (सु बोध) अच्छी प्रकार जान। (इमा ब्रह्म) तू इन ज्ञानों को (सध मादे) हर्ष के साथ मिलकर (जुषस्व) सेवन कर।

श्रु॒धी हवं॑ विपिपा॒नस्याद्रे॒र्बोधा॒ विप्र॒स्यार्च॑तो मनी॒षाम्।
कृ॒ष्वा दुवां॒स्यन्त॑मा॒ सचे॒मा॥ ४॥

भा०—(वि-पिपानस्य) विविध प्रकार के रसों के पालक (अद्रेः) मेघ तुल्य नाना विद्याओं के रसों का पान करने वाले (अद्रेः) आदर योग्य (विप्रस्य) मेधावी (अर्चतः) पूज्य विद्वान् के (हवम्) उपदेश और (मनीषाम्) बुद्धि का (बोध) ज्ञान कर और (इमा) इन (सचेमा दुवांसि) नाना सेवाओं को (अन्तमा कृष्व) समीप कर।

न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥ ५ ॥

भा०—हे राजन् ! (विद्वान्) मैं विद्वान् होकर (ते गिरः) तेरी वाणियों को (न अपि मृष्ये) न त्यागूँ । (तुरस्य) अति शीघ्र कार्यकर्त्ता और शत्रु-हिंसक (असुर्यस्य) बलवानों में श्रेष्ठ तेरी (सुस्तुतिम्) उत्तम स्तुति को भी (न अपि मृष्ये) न त्यागूँ । मैं (ते नाम) तेरे नाम, यश सामर्थ्य को ही (स्व-यशः) अपनी कीर्त्ति या बल (वि वक्मि) कहूँ ।

भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।
मारे अस्मन्मघवञ्ज्योक्कः ॥ ६ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्ययुक्त ! (ते) तेरे (भूरि हि सवना) अनेक ऐश्वर्य (मानुषेषु) मनुष्यों में हैं । (मनीषी) बुद्धिमान् व्यक्ति (त्वाम् इत् हवते) तेरी ही स्तुति करता है । तू (अस्मत्) हमसे (ज्योक् मा कः) अपने को दूर मत कर ।

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि ।
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥ ७ ॥

भा०—हे (शूर) वीर ! (इमा सवना तुभ्यं इत्) ये समस्त ऐश्वर्य तेरे ही अधिकार में हों । (तुभ्यं वर्धना) तुझे बढ़ाने वाले (विश्वा ब्रह्माणि) समस्त अन्न और वेद-वचन (कृणोमि) मैं करता हूं । हे प्रभो ! (त्वं) तू (नृभिः) मनुष्यों से (हव्यः) स्तुति योग्य, और (विश्वधा असि) विश्व का धारक है ।

नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र ।
न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥ ८ ॥

भा०—हे (दस्म) दर्शनीय ! हे (उग्र) प्रचण्ड राजन् ! (मन्यमानस्य) मानने योग्य (ते) तेरे (महिमानम्) सामर्थ्य को (नू चित् नु) अवश्य सज्जन लोग (उद् अश्नुवन्ति) प्राप्त करें । परन्तु शत्रु (ते

महिमानम् न उद् अश्नुवन्तु) तेरे सामर्थ्य को न पा सकें, वे (न ते वीर्यम्, न ते राधः) न तेरे बल और न तेरे ऐश्वर्य को प्राप्त करें।

ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः।
अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! आचार्य ! (ये च ऋषयः) जो सत्य-ज्ञानों के द्रष्टा, (पूर्वे) पूर्व काल के गुरुजन और (ये च नूत्नाः) जो नये शिष्य, नवशिक्षित (विप्राः) विद्वान् पुरुष हैं वे (ब्रह्माणि जनयन्त) वेद-मन्त्रों के अर्थों का प्रकाश करें। हे विद्वन् ! तेरी (सख्यानि) मित्रता के कार्य (अस्मे) हमारे लिये (शिवानि) कल्याणकारक हों। (यूयम्) आप लोग, हे विद्वान् ऋषिजनो ! (नः) हमारी (सदा) सदा (स्वस्तिभिः पात) उत्तम साधनों से रक्षा करो। इति षष्ठो वर्गः ॥

[२३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवताः ॥ छन्दः—१, ६ भुरिक् पंक्तिः। ४ स्वराट् पंक्तिः। २, ३ विराट् त्रिष्टुप्। ५ निचृत्त्रिष्टुप्। षड़ृचं सूक्तम् ॥

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥१॥

भा०—हे (वसिष्ठ) प्रजा को बसाने हारे वसो ! विद्वन् ! तू (श्रवस्या) यश की कामना से (ब्रह्माणि) ऐश्वर्यों को लक्ष्य कर (उद् ऐरत उ) उत्तम रीति से उपदेश कर। तू (समर्थे) संग्राम में या सभा आदि में (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, वीर पुरुष का (महय) आदर कर। (यः) जो तू (उप-श्रोता) प्रजाओं के कष्टों को सुनने वाला (शवसा) बलपूर्वक (ईवतः) समीप आने वाले (मे) मेरे उपकारार्थ (विश्वानि वचांसि) समस्त उत्तम आज्ञाएं (आ ततान) देता है।

अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥२॥

भा०—जैसे (देवजामिः घोषः) जलदाता मेघ की गर्जना होती है और (विवाचि) विविध मध्यमा वाक् विद्युत् के गर्जते हुए (शुरुधः) शीघ्र आने वाली ओषधियां बढ़ती हैं, वैसे हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जब (देव-जामिः) विजयेच्छु पुरुषों में रहने वाला (घोषः) घोष उठता है उस समय (वि वाचि) विशेष वाणी के प्रवक्ता पुरुष के अधीन (शुरुधः) शत्रुओं को रोकने में समर्थ वीर (इरज्यन्त) आगे बढ़ते हैं। (जनेषु) मनुष्यों में कोई भी (स्वम् आयुः) अपना जीवन सुरक्षित (नहि चिकिते) नहीं जानता, तब, हे राजन् ! तू ही (तानि इत् अंहांसि) उन पापाचारों से (अस्मान् अतितर्षि) हमें पार करता है।

युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥३॥

भा०—(हरिभ्यां रथं) जैसे दो अश्वों से रथ को जोड़ा जाता है वैसे मैं (हरिभ्याम्) दो विद्वान् पुरुषों से (रथम्) राष्ट्र को (युजे) युक्त करूं। समस्त प्रजा वर्ग (ब्रह्माणि जुजुषाणम्) धनों को प्राप्त करने वाले पुरुष का (उप अस्थुः) आश्रय लेते हैं। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष ही (महित्वा) सामर्थ्य से (रोदसी) शत्रु को रुलाने वाली उभय पक्ष की सेनाओं को (वि बाधिष्ट) विविध प्रकार से वश करे और वह (अप्रति) बे-मुकाबला होकर (वृत्राणि जघन्वान्) शत्रुओं का नाश करे।

आपश्चित्पिप्युः स्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥४

भा०—(स्तर्यः गावः न) जैसे गौएं गृहस्थ को (पिप्युः) बढ़ाती हैं (आपः चित्) और जैसे रक्तधाराएं शरीर की वृद्धि करती हैं, वैसे ही (आपः) विद्वान् और प्रजाएं (स्तर्यः) शत्रुहिंसक और देश की रक्षक सेनाएं तथा (गावः) गौएं भी देश को (पिप्युः) समृद्ध करती हैं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (जरितारः) विद्वान् उपदेष्टा और शत्रुओं की जीवन-

हानि करने वाले वीर (ते ऋतं रक्षन्) तेरे सत्य, न्याय को प्राप्त करें। (त्वं) तू (नः) हमारे (नियुतः) लक्षों प्रजाजनों तथा अश्व-सैन्यों को भी (वायुः) प्राणवत् प्रिय, वा वायु तुल्य बल से शत्रु को उखाड़ने में समर्थ होकर (अच्छ याहि) प्राप्त हो और (धीभिः) अपने कर्मों और सम्मतियों से (वाजान्) ऐश्वर्यों को (वि दयसे) विविध प्रकार से दे और (वाजान् वि दयसे) वेगवान् अश्वों को पालन कर और ज्ञानवान् पुरुषों पर (वि दयसे) विशेष कृपा कर।

ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥ ५ ॥

भा०—(हि) जिससे, हे (शूर) वीर! तू (देवत्रा) विद्वानों के बीच, उनका त्राता होकर (एकः) अद्वितीय (मर्तान् दयसे) मनुष्यों को जीवन देता है, अतः (जरित्रे) विद्वान् के लिये (तुवि-राधसं) बहुत धन देने वाले (शुष्मिणं) बलशाली, (त्वा) तुझको, हे (इन्द्र) ऐश्वर्य-वन्! ते देवे (मदाः) तृप्तिकारक पदार्थ (मादयस्व) प्रसन्न करें।

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः।
स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥६।७

भा०—(वसिष्ठासः) राष्ट्रवासी जन (एव) निश्चय से (वृषणं) शत्रु पर शरों की वर्षा करने वाले (वज्र-बाहुम्) शस्त्रास्त्र बल को बाहुओं में रखने वाले, (इन्द्रं) शत्रुनाशक पुरुष को (अर्कैः) अर्चना-योग्य उपायों से (अभि-अर्चन्ति) सत्कार करते हैं। (सः स्तुतः) वह प्रशंसित शासक (नः) हमारे (वीरवत्) वीरों से युक्त सैन्य और (गोमत्) भूमि-युक्त राष्ट्र की (पातु) रक्षा करे। हे वीरो (नः) हमें (सदा) सदा (स्वस्तिभिः) उत्तम उपायों से (पात) पालन करो। इति सप्तमो वर्गः॥

[२४]

वसिष्ठ ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप्। २, ५ त्रिष्टुप्। ४ विराट् त्रिष्टुप्। ६ विराट् पंक्तिः। षडृचं सूक्तम्॥

योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।
असो यथा नोऽविता वृधे च ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (सदने) सभा में (ते) तेरा (योनिः) गृहवत् स्थान (अकारि) बने । हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित ! तू (तम्) उस मुख्य स्थान को (नृभिः) नायकों सहित (आ याहि) प्राप्त कर और (प्र याहि) प्रयाण कर । (यथा) जैसे भी हो वैसे ही तू (नः) हमारा (अविता) रक्षक (असः) हो । (नः वृधे च) हमारी वृद्धि के लिये तू (वसूनि आ ददः) ऐश्वर्य दे और ग्रहण कर । तू (सोमैः च) सौम्य पुरुषों, ऐश्वर्यों से (ममदः) तृप्त हो ।

गृभीतं ते मन इन्द्र द्विबर्हाः सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
विसृष्टधेना भरते सुवृक्तिरियमिन्द्रं जोहुवती मनीषा ॥ २ ॥

भा०—(इयम्) यह (सु-वृक्तिः) सद्व्यवहार वाली (मनीषा) मनोहारिणी (विसृष्ट-धेना) उत्तम वाणी वाली स्त्री (इन्द्रं) ऐश्वर्य-युक्त पुरुष को (जोहुवती) प्राप्त करती हुई (परि-सिक्ता) गर्भाशय में निषिक्त (मधूनि) वीर्यों को (भरते) धारण करे । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते मनः गृभीतं) तेरा मन इस स्त्री द्वारा ग्रहण किया जाय । तेरा (सुतः) उत्पन्न (सोमः) पुत्र (द्वि-बर्हाः) माता पिता दोनों द्वारा वृद्धि को प्राप्त और दोनों को बढ़ाने हारा हो ।

आ नो दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन्निदं बर्हिः सोमपेयाय याहि ।
वहन्तु त्वा हरयो मद्र्यञ्चमाङ्गूषमच्छा तवसं मदाय ॥ ३ ॥

भा०—हे (ऋजीषिन्) सरल मार्ग में प्रजा को चलाने हारे ! तू (सोम-पेयाय) प्रजा-पालन और ऐश्वर्यों के भोग के लिये (दिवः पृथिव्याः) उत्तम व्यवहार और भूमि के लिये (नः) हमारी (इदं बर्हिः) इस बढ़ती प्रजा को (आ याहि) प्राप्त हो । (हरयः) प्रजास्थ पुरुष (तवसं) बलवान् (मद्र्यञ्चम्) मेरे प्रति आने वाले (त्वा) तुझको

(मदाय) प्रसन्नता के लिये (आङ्गूषं अच्छ वहन्तु) उत्तम स्तुति वचन प्रदान करें।

आ नो विश्वाभिरूतिभिः सजोषा ब्रह्म जुषाणो हर्यश्व याहि।
वरीवृजत् स्थविरेभिः सुशिप्रास्मे दधद्वृषणं शुष्ममिन्द्र ॥ ४ ॥

भा०—हे (हर्यश्व) मनुष्यों में श्रेष्ठ ! राज्य-रथ के सञ्चालक ! तू (नः) हमारे (ब्रह्म जुषाणः) अन्न और ज्ञान को सेवन करता हुआ (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब रक्षा-साधनों से (नः) हमें (आयाहि) प्राप्त हो। हे (सु-शिप्र) उत्तम मुकुटधारिन् ! तू (स्थविरेभिः) विद्या और आयु में वृद्ध पुरुषों सहित विपक्षियों को (वरीवृजत्) दूर कर। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अस्मे) हमारे लिये (वृषणं) बलवान् (शुष्मम्) शत्रु-शोषक सैन्य को (दधत्) धारण कर।

एष स्तोमो मह उग्राय वाहे धुरीवात्यो न वाजयन्नधायि।
इन्द्र त्वायमर्क ईट्टे वसूनां दिवीव द्यामधि नः श्रोमतं धाः ॥ ५ ॥

भा०—(वाहे धुरि अत्यः न) रथ को उठाने वाले धुरा में जैसे अश्व लगाया जाता है वैसे ही (वाहे धुरि) राष्ट्र को धारण के पद पर (महे उग्राय) महान्, बलवान् पुरुष के लिये (एषः स्तोमः) यह स्तुत्य व्यवहार (वाजयन् इव) उसे ऐश्वर्य देता हुआ (अधायि) नियत किया जाता है। (वसूनां मध्ये दिवि अर्कः) पृथिव्यादि वस्तुओं के बीच, आकाश में सूर्य के समान, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वसूनाम्) प्रयोजनों, शासकों के बीच (अयम् अर्कः) यह अर्चना-योग्य पद (त्वाम् ईट्टे) तुझे ही ऐश्वर्य देता है। तू (नः) हमें प्रकाशवत् (द्याम्) उत्तम व्यवहार और (श्रोमतं) श्रवण-योग्य यश (धाः) धारण करा।

एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (नः) हमें तू (वार्यस्य) धनैश्वर्य से

(पूर्धि) पूर्ण कर। हम (ते) तेरे (महीं) पूज्य (सुमतिं) ज्ञान को (वेविदाम) प्राप्त करें। तू (मघवद्भ्यः) धन-युक्तों को (सुवीरास्) शुभ पुत्रों से युक्त (इषं) अन्न (पिन्व) दे। हे सम्पन्न पुरुषो! (यूयं) आप (नः स्वस्तिभिः सदा पात) उत्तम उपायों से हमारी सदा रक्षा करो।

इत्यष्टमो वर्गः ॥

[२५]

वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृत्पंक्तिः। २ विराट् पंक्तिः। ४ पंक्तिः। ६ स्वराट् पंक्तिः। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ५ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ षड्ऋचं सूक्तम् ॥

आ ते मह इन्द्रोत्युग्र समन्यवो यत्समरन्त सेनाः।
पपाति दिद्युन्नर्यस्य बाह्वोर्मा ते मनो विष्वद्र्यग्वि चारीत् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (उग्र) प्रचण्ड! (यत्) जब (महते) तुझ महान् की (समन्यवः) क्रोध-युक्त गर्व-पूर्ण (सेनाः) सेनाएं (ऊती) देश-रक्षा के लिये (सम्-अरन्त) आगे बढ़ें तब (नर्यस्य) सब मनुष्यों में श्रेष्ठ (ते) तेरे (बाह्वोः) बाहुओं में (दिद्युत्) चमकता शस्त्रास्त्र (पताति) शत्रु पर पड़े और (ते मनः) तेरा चित्त (विश्वद्र्यग् मा विचारीत्) सब तरफ न जाय।

नि दुर्ग इन्द्र श्नथिह्यमित्राँ अभि ये नो मर्तासो अमन्ति।
आरे तं शंसं कृणुहि निनित्सोरा नो भर सम्भरणं वसूनाम् ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ये) जो (मर्तासः) मनुष्य (नः) हमें (अमन्ति) रोगों के तुल्य पीड़ा देते हैं उन (अमित्रान्) शत्रुओं को (दुर्गे) दुर्ग में बैठ कर (अभि श्नथिहि) मुकाबला करके मार। (निनित्सोः) निन्दक से (आरे) दूर रह कर ही (नः) हमारी (तं शंसं कृणुहि) वह प्रशंसनीय विजय कर और (नः) हमें (वसूनाम्) ऐश्वर्यों का (सम्भरणं आ भर) समूह दे।

शतं ते शिप्रिन्नूतयः सुदासे सहस्रं शंसा उत रातिरस्तु ।
जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्यास्मे द्युम्नमधि रत्नं च धेहि ॥ ३ ॥

भा०—हे (शिप्रिन्) सुन्दर मुख वाले ! राजन् ! (सु-दासे) उत्तम दानी पुरुष के लिये (ते) तेरी (शतं) सैकड़ों (ऊतयः) रक्षायें और (सहस्रं शंसाः) सहस्रों प्रशंसाएं हों और (सहस्रं रातिः अस्तु) हजारों दान हों। हे राजन् ! तू (वनुषः मर्त्यस्य) दुष्ट पुरुष के (वधः) हिंसाकारी साधनों को (जहि) नष्ट कर और (अस्मे) हमें (द्युम्नम्) यश और (रत्नं च) धन (अधि धेहि) अधिक दे ।

त्वावतो हीन्द्र क्रत्वे अस्मि त्वावतोऽवितुः शूर रातौ ।
विश्वेदहानि तविषीव उग्रँ ओकः कृणुष्व हरिवो न मर्धीः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! प्रभो ! (विश्वा इत् अहानि) मैं सब दिनों (त्वावतः) तेरे जैसे स्वामी के (क्रत्वे) कर्म करने के लिये (अस्मि) रहूँ। हे (शूर) वीर ! मैं (त्वावतः अवितुः) तेरे जैसे रक्षक के ही (रातौ) दिये दान पर (अस्मि) वृत्ति करूं। हे (तविषीव) बलवती सेना के स्वामिन् ! तू सब दिनों (उग्रः) शत्रु के लिये भयजनक, (ओकः कृणुष्व) स्थान और सेना का समवाय बना। हे (हरिवः) अश्वसैन्य और मनुष्यों के स्वामिन् ! तू (न मर्धीः) हमें मत मार ।

कुत्सा एते हर्यश्वाय शूषमिन्द्रे सहो देवजूतमियानाः ।
सत्रा कृधि सुहना शूर वृत्रा वयं तरुत्राः सनुयाम वाजम् ॥५॥

भा०—(इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् राजा के अधीन ही (हर्यश्वाय) उस वेगवान् अश्व के स्वामी के विजयार्थ (एते) ये (कुत्साः) शस्त्रास्त्र-समूह वा उत्तम शिल्पों के करने वाले जन (देव-जूतम्) वीरों से प्रेरित वा उनके अभिलषित (शूषम्) सुखकारी (सहः) शत्रुविजयी बल को (इयानाः) प्राप्त करते रहें और ऐसे ही (वयम्) हम भी (तरुत्राः) सबको दुःखों से तारते हुए (वाजम् सनुयाम) बल और धन प्राप्त

करें। हे (शूर) वीर ! तू (सत्रा) सदा, (वृत्रा) दुष्ट पुरुषों को (सुहना कृध) सुख से नाश-योग्य बना।

एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥९

भा०—व्याख्या देखो (सू० २४ मं० ६) ॥ इति नवमो वर्गः ॥

[२६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ४, त्रिष्टुप्। ५ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

न सोम इन्द्रमसुतो ममाद नाब्रह्माणो मघवानं सुतासः।
तस्मा उक्थं जनये यज्जुजोषन्नृवन्नवीयः शृणवद्यथा नः ॥ १ ॥

भा०—(असुतः सोमः) जैसे बिना तैयार किया ओषधि-रस (इन्द्रम्) जीव को (न ममाद) सुख नहीं देता और (असुतः सोमः) न उत्पन्न हुआ पुत्र (इन्द्रं न ममाद) गृह-स्वामी को हर्षित नहीं करता, वैसे ही (असुतः) ऐश्वर्यरहित (सोमः) राष्ट्र (इन्द्रम् न ममाद) राजा को सुखी नहीं करता। (अब्रह्माणः सुतासः) वेदज्ञान-रहित पुत्र (मघवानम्) धन वा ज्ञान के स्वामी पिता को हर्ष नहीं देते, वैसे ही (अब्रह्माणः) धन न देने वाले (सुतासः) उत्पन्न जन भी (मघवानं न ममदुः) धनाढ्य को प्रसन्न नहीं करते। (यत् जुजोषत्) जो प्रेम से सेवन करे मैं (तस्मै) उसी के लिये (उक्थं जनये) उत्तम वचन प्रकट करूं (यथा) जिससे वह (नः नवीयः) हमारा उत्तम वचन (नृवत्) उत्तम पुरुष के समान (शृणवत्) सुने।

उक्थउक्थे सोम इन्द्रं ममाद नीथेनीथे मघवानं सुतासः।
यदीं सबाधः पितरं न पुत्राः समानदक्षा अवसे हवन्ते ॥ २ ॥

भा०—(उक्थे-उक्थे) प्रत्येक उत्तम, उपदेश योग्य व्यवहार-ज्ञान में (सोमः) शिष्य (इन्द्रं ममाद) आचार्य को हर्ष देने वाला हो।

(नीथे-नीथे) उत्तम उद्देश्य की ओर जाने वाले प्रत्येक मार्ग में (सुतासः) शिष्य वा पुत्र भी (मघवानं) दान-योग्य ज्ञान और धन के स्वामी गुरु वा पिता को प्रसन्न करें। ऐसे ही (सोमः) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र राजा को प्रसन्न करे। (समानदक्षाः पुत्राः सबाधः पितरं न) समान बल से युक्त पुत्र जैसे पीड़ायुक्त पिता को (अवसे हवन्ते) उसकी रक्षार्थ प्राप्त होते हैं वैसे ही (यत् ईम्) जब भी प्रजाजन (सबाधः) पीड़ित हों तब वे भी पुत्रवत् ही (पितरं) राजा को (समान-दक्षाः) समान बलशाली होकर (अवसे हवन्ते) रक्षा के लिये पुकारें।

चुकार ता कृणवन्नूनमन्या यानि ब्रुवन्ति वेधसः सुतेषु।
जनीरिव पतिरेकः समानो नि मामृजे पुर इन्द्रः सु सर्वाः ॥३॥

भा०—(वेधसः) विद्वान् लोग (सुतेषु) अपने पुत्रों में और विद्वान् जब (सुतेषु) अभिषिक्त पुरुषों में (यानि) जिन २ (अन्या) भिन्न २ उपदेश वचनों का (ब्रुवन्ति) उपदेश करते हैं (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (ता) उन २ उत्तम कर्मों को (नूनम्) अवश्य (चकार) करे और (कृणवत्) अन्य २ भी उत्तम कर्म करें। (एकः) एक (पतिः) पति जैसे (जनीः इव) पुत्रोत्पादक दाराओं को (नि मामृजे) प्रथम ही दोष-रहित कर लेता है ऐसे ही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (एकः) अद्वितीय, (सर्वाः समानः) उत्तम आदरयुक्त एवं सबके प्रति समान होकर समस्त (पुरः) समक्ष आये प्रजाओं को (सु) अच्छी प्रकार (नि मामृजे) पवित्र करे।

एवा तमाहुरुत शृण्व इन्द्र एको विभक्ता तरणिर्मघानाम्।
मिथस्तुर ऊतयो यस्य पूर्वीरस्मे भद्राणि सश्चत प्रियाणि ॥४॥

भा०—(यस्य) जिसके (पूर्वीः) सदा से विद्यमान (मिथस्तुरः) परस्पर मिलकर शीघ्र कार्य करने वाली, (ऊतयः) रक्षाएं वा रक्षा-कारिणी सेनाएं (अस्मे) हमें (भद्राणि) सुखजनक, (प्रियाणि) ऐश्वर्य

(सश्चत) प्राप्त कराती हैं वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (एकः) अद्वितीय (तरणिः) संकटों से पार उतारने वाला, (मघानां विभक्ता) ऐश्वर्यों का विभाग करने वाला है (तम् एव आहुः) उसका ही लोग उपदेश करते हैं (उत तम् एव शृण्वे) और उसको ही मैं गुरुजनों से उपदेश द्वारा श्रवण करूं।

एवा वसिष्ठ इन्द्रमूतये नृन्कृष्टीनां वृषभं सुते गृणाति। सहस्रिण
उप नो माहि वाजान् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥ १० ॥

भा०—(सुते) अन्न को उत्पन्न करने के लिये जैसे (कृष्टीनां) खेतियों के वृद्धयर्थ (वृषभं) वर्षक मेघ की विद्वान् स्तुति करते हैं और अन्न के उत्पन्न करने के लिये जैसे (कृष्टीनां) खेती करने हारों के बीच (वृषभं) बलवान् बैल की स्तुति की जाती है, वैसे (वसिष्ठः) देशवासी उत्तम जन (सुते) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये और (ऊतये) रक्षार्थ भी (कृष्टीनां) मनुष्यों में (वृषभं) श्रेष्ठ (इन्द्रं) ऐश्वर्य-युक्त पुरुष की (गृणाति) स्तुति करता है। हे राजन्! तू (नः) हमें (सहस्रिणः वाजान्) सहस्रों सुखों से युक्त ऐश्वर्य (उप माहि) दे। हे विद्वान् पुरुषो! (यूयं) आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमारी सदा उत्तम उपायों से रक्षा करें। इति दशमो वर्गः ॥

[२७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५ विराट् त्रिष्टुप्। २ निचृत्-त्रिष्टुप्। ३, ४ त्रिष्टुप्। पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः।
शूरो नृषाता शवसश्चकान आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥१॥

भा०—(यत्) जो (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् को (नेमधिता) संग्राम में (नरः) मनुष्य (हवन्ते) पुकारते हैं, (यत्) जो (पार्याः) पालन-योग्य (धियः) और धारण-योग्य प्रजाएं ऐश्वर्यवान् राजा का (युनजते)

सहयोग करती हैं, हे राजन् ! तू वह (शूरः) वीर (नृ-साता) मनुष्यों को विभक्त करने वाला, (शवसः चकानः) बल की इच्छा करता हुआ (ताः) उन प्रजाओं को और (नः) हमें भी (गोमति व्रजे) उत्तम वाणियों से प्राप्तव्य ज्ञानमार्ग वा ब्रह्मपद से युक्त उत्तम राज्य में (आ भज) रख ।

य इन्द्र शुष्मो मघवन्ते अस्ति शिक्षा सखिभ्यः पुरुहूत नृभ्यः ।
त्वं हि दृळ्हा मघवन्विचेता अपा वृधि परिवृतं न राधः ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! हे (मघवन्) धन के स्वामिन् ! राजन् ! (यः) जो (ते) तेरा (शुष्मः अस्ति) बल है, वह तू (सखिभ्यः) मित्र (नृभ्यः) मनुष्यों को (शिक्ष) दे। हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित ! हे (मघवन्) उत्तम धन के स्वामिन् ! (त्वं हि) तू निश्चय से (वि-चेताः) ज्ञानवान् होकर (परि-वृतं राधः न) छुपे धन के समान ही (दृढा) दृढ दुर्गों और परम ज्ञान को (अपा वृधि) खोलकर हमें दे ।

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रु-नाशक पुरुष (राजा) सूर्यवत् तेजस्वी, और (जगतः) जंगम संसार और (चर्षणीनाम्) मनुष्यों का स्वामी हो। (अधि क्षामि) पृथिवी पर (यत्) जो (विषु-रूपं) विविध प्रकार का धन है वह उसी का है। (ततः) उसमें से वह (दाशुषे) दानशील पुरुष को (वसूनि ददाति) धन देता है। वह (उप-स्तुतः) प्रशंसित (अर्वाक्) हमें प्राप्त होकर (राधः चोदत्) धन प्राप्ति की प्रेरणा करे ।

नू चिन्न इन्द्रो मघवा सहूती दानो वाजं नि यमते न ऊती ।
अनूना यस्य दक्षिणा पीपाय वामं नृभ्यो अभिवीता सखिभ्यः ॥४

भा०—(यस्य) जिसका (अभि-वीता) तेजो-युक्त, (दक्षिणा) दान और क्रिया-सामर्थ्य, (अनूना) किसी से न्यून न होकर (सखिभ्यः

नृभ्यः) मित्रों के लिये (वामं) उत्तम ऐश्वर्य को (पीपाय) बढ़ाता है (नु चित्) वह पूज्य (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (मघवा) धन का स्वामी (दानः) दान देता हुआ (नः) हमारी (ऊती) रक्षार्थ (स-हूती) सबको समान देने की नीति से (वाजं) ऐश्वर्य को (नि यमते) नियन्त्रित करता है।

नू इ॑न्द्र रा॒ये वरि॑वस्कृधी न॒ आ ते॒ मनो॑ ववृत्याम म॒घाय॑।
गोम॒दश्वा॑व॒द्रथ॑व॒द्व्यन्तो॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥५॥११॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नु) शीघ्र ही (राये) ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिये (नः वरिवः कृधि) हम प्रजाजनों की सेवा कर। हम भी (ते मनः) तेरे मन को (मघाय) धन के लिये (आ ववृत्याम) आकर्षण करें। हे विद्वान् पुरुषो! (गोमत्) गौओं, भूमियों से युक्त (अश्ववत्) अश्वों से युक्त, (रथवत्) रथों से सम्पन्न ऐश्वर्य का (व्यन्तः) उपभोग करते हुए (यूयम्) आप लोग (स्वस्तिभिः) उत्तम साधनों से (नः पात) हमारी रक्षा करें। इत्येकादशो वर्गः ॥

[२८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५ निचृत्त्रिष्टुप्।
३ भुरिक् पंक्तिः। ४ स्वराट् पंक्तिः। पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

ब्रह्मा॑ ण इन्द्रोप॑ याहि वि॒द्वान॒र्वाञ्च॑स्ते॒ हर॑यः सन्तु यु॒क्ताः।
विश्वे॑ चि॒द्धि त्वा॑ वि॒हव॑न्त॒ मर्ता॑ अ॒स्माक॒मिच्छृ॑णुहि विश्वमिन्व १

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य और विद्योपदेशदाता राजन्! आचार्य! तू (विद्वान्) विद्वान् होकर (नः ब्रह्म उप याहि) हमारा बड़ा राष्ट्र और धन प्राप्त कर, करा। (ते) तेरे अधीन (हरयः) अश्वारोही और नियुक्त मनुष्य (अर्वाञ्चः) विनयशील और (युक्ताः) मनोयोग देने वाले हों। (विश्वे चित् मर्त्ताः हि) समस्त मनुष्य निश्चय से (त्वा वि हवन्त) तुझे विविध प्रकार से पुकारते हैं। हे (विश्वमिन्व) सबके प्रेरक! तू (अस्माकम् इत्) हमारा वचन अवश्य (शृणुहि) सुन।

इवं त इन्द्र महिमा व्यानड् ब्रह्म यत्पासि शवसिन्नृषीणाम् ।
आ यद्वज्रं दधिषे हस्त उग्र घोरः सन्क्रत्वा जनिष्ठा अषाळ्हः ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते महिमा) तेरा सामर्थ्य (इवं) यज्ञ और संग्राम को भी (वि आनड्) व्याप्त है । (यत्) जिससे, हे (शवसिन्) बलवन् ! तू (ऋषीणाम्) ऋषियों के (इवं, ब्रह्म) स्तुत्य ज्ञान को भी (पासि) रक्षा करता है । हे (उग्र) तेजस्विन् ! (यत्) जो (वज्रं हस्ते दधिषे) शस्त्रास्त्र बल को हाथ में धारण करता है वह, तू (घोरः सन्) शत्रुनाश में समर्थ होकर (क्रत्वा) अपने कर्म से (अषाढः) अन्यों के लिये असह्य हो (जनिष्ठाः) अजेय सेनाओं को प्रकट कर ।

तव प्रणीतीन्द्र जोहुवानान्त्सं यन्नॄन्न रोदसी निनेथ ।
महे क्षत्राय शवसे हि जज्ञेऽतूतुजिं चित्तूतुजिरशिश्नत् ॥ ३ ॥

भा०—(रोदसी न) सूर्य जैसे आकाश और पृथ्वी को मार्ग पर चलाता है वैसे ही (यत्) जो पुरुष (जोहुवानान्) निरन्तर पुकारने वाले और बुलाये गये, (नॄन्) नायक पुरुषों को (सं निनेथ) सन्मार्ग पर चलाता है और जो (तूतुजिः) शत्रु-नाशक होकर (अतूतुजिं) अहिंसक प्रजा और कर न देने वाले शत्रु का (अशिश्नत्) शासन करता है वह, तू (हि) निश्चय से (महे क्षत्राय) बड़े क्षात्र बल और (महे शवसे) बड़े सैन्य बल के सञ्चालन के लिये (जज्ञे) समर्थ है ।

एभिर्न इन्द्राहभिर्दशस्य दुर्मित्रासो हि क्षितयः पवन्ते ।
प्रति यच्चष्टे अनृतमनेना अव द्विता वरुणो मायी नः सात् ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) न्याय के द्रष्टा राजन् ! (नः) हमारे (दुः-मित्रासः) दुष्ट मित्र और (क्षितयः) साथी (हि) भी (पवन्ते) तुझे प्राप्त होते हैं । तू (एभिः अहभिः) इन कुछ दिनों में, शीघ्र (दशस्य) न्याय प्रदान कर । (यः) जो तू (अनृतम्) असत्य को (प्रतिचष्टे)

खण्डित करता है वह, तू (अनेनाः) पाप-रहित, (वरुणः) श्रेष्ठ (मायी) बुद्धिमान् होकर (द्विता) सत्य और असत्य दोनों के बीच (नः अव साव्) हमारा निर्णय कर।

वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्ददन्नः।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५।१२

भा०—(यत्) जो (महः रायः) बड़े २ ऐश्वर्य (नः ददत्) हमें देता है। (एनं मघवानम्) उस ऐश्वर्य स्वामी को हम (इन्द्रम् इत् वोचेम) 'इन्द्र' ही पुकारें और (यः) जो (अर्चतः) अपने सत्कारकों को (ब्रह्म-कृतिम्) धनैश्वर्य के उत्पन्न करने के साधन देता, वही (अविष्ठः) उत्तम रक्षक है। हे विद्वान् पुरुषो! (यूयं) आप लोग (नः सदा स्व-तिभिः पात) हमें सदा उत्तम साधनों से पालन करो। इति द्वादशो वर्गः॥

[२६]

वसिष्ठ ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ स्वराट्पंक्तिः। ३ पंक्तिः। २ विराट्त्रिष्टुप्। ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। पञ्चर्चं सूक्तम्॥

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे आ तु प्र याहि हरिवस्तदोकाः।
पिबा त्वस्य सुषुतस्य चारोर्ददो मघानि मघवन्नियानः॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (अयं सोमः) यह ऐश्वर्य (तुभ्यम्) तेरे लिये (सुन्वे) उत्पन्न किया है। हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन्! (तदोकाः) तू उस गृह में रहता हुआ (तु) भी (आ याहि) हमें प्राप्त हो और (प्र याहि) प्रयाण कर। (अस्य) इस (सु-सुतस्य) उत्तम रीति से उत्पन्न प्रजाजन को (तु) भी (पिब) पालन कर। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (इयानः) प्राप्त होता हुआ तू हमें (मघानि) ऐश्वर्य (ददः) दे।

ब्रह्मन्वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणोऽर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम् ।
अस्मिन्नू षु सवने मादयस्वोप ब्रह्माणि शृणव इमा नः ॥ २ ॥

भा०—हे (ब्रह्मन्) विद्वन् ! हे (वीर) शूर ! तू (ब्रह्मकृतिं) परमेश्वर-निर्मित जगत् को, बड़े राष्ट्र-कार्य को (जुषाणः) सेवन करता हुआ (हरिभिः) उत्तम पुरुषों सहित (अर्वाचीनः) अब भी (तूयम् याहि) शीघ्र प्राप्त हो । (अस्मिन् सवने) इस यज्ञ, वा राष्ट्र-शासन में (नु सु मादयस्व) शीघ्र, तू प्रसन्न होकर अन्यों को भी सुखी कर और (नः) हमारे (इमा) इन (ब्रह्माणि) वेद-वचनों को (उप-शृणवः) सुन ।

का ते अस्त्यरंकृतिः सूक्तैः कदा नूनं ते मघवन् दाशेम ।
विश्वा मतीरा ततने त्वायाधा म इन्द्र शृणवो हवेमा ॥ ३ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्य-स्वामिन् ! (ते) तेरी (सूक्तैः) उत्तम वचनों, विद्या-प्रवचनों से (का अरंकृतिः अस्ति) कैसी शोभा है । हे ऐश्वर्यवन् ! हम (ते) तेरे लिये (नूनं) सत्य कहो, आज्ञा करो (कदा दाशेम) कब २ उपहार दें ? (त्वाया) तुझसे ही हमारी (विश्वाः मतीः) सब बुद्धियां (आ ततने) विस्तृत ज्ञान वाली होती हैं । (अध) और, हे (इन्द्र) ज्ञानप्रद ! (मे इमा हवा) मेरे ग्राह्य पदार्थ और प्रार्थना-वचन (शृणवः) सुनो और (हवा) ग्राह्य ज्ञानोपदेश (मे शृणवः) मुझे सुनाओ ।

उतो घा ते पुरुष्या इदासन्येषां पूर्वेषामशृणोर्ऋषीणाम् ।
अधाहं त्वा मघवञ्जोहवीमि त्वं न इन्द्रासि प्रमतिः पितेव ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य-दातः ! (उतो घ) और (येषाम्) जिन (पूर्वेषां ऋषीणाम्) पूर्व के, सत्य ज्ञान-द्रष्टा जनों के ज्ञान को तू (अशृणोः) सुनता है (ते इत्) वे निश्चय से (पुरुष्याः आसन्) मनुष्यों के हितकारी हैं । हे (मघवन्) धनवन् ! (अध) और (अहं) मैं (त्वा)

तुझे (जोहवीमि) गुरु स्वीकार करता हूँ, (त्वं) तू (प्रमतिः) उत्तम ज्ञानी होकर (नः पिता इव असि) हमारे पिता के समान है।

वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्ददन्नः। यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥१२॥

भा०—व्याख्या देखो सू० २८। मं० ५। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[३०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्। २ निचृत्-। त्रिष्टुप् ॥ ३ निचृत्पंक्तिः। ४, ५ स्वराट् पंक्ति ॥

आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन्भवा वृध इन्द्र रायो अस्य। महे नृम्णाय नृपते सुवज्र महि क्षत्राय पौंस्याय शूर ॥ १ ॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन्! प्रभो! तू (शवसा) बल और ज्ञान-सहित (नः आयाहि) हमें प्राप्त हो। हे (शुष्मिन्) बलशालिन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (अस्य) इस (रायः) धनैश्वर्य का (वृधः भव) वर्धक हो। हे (सुवज्र) उत्तम वीर्यवन्! हे (शूर) वीर! हे (नृपते) मनुष्य-पालक! तू (महे नृम्णाय) बड़े धनैश्वर्य, (महि क्षत्राय) बड़े शत्रुनाशक राष्ट्र और (पौंस्याय भव) पौरुष के लिये उद्यत हो!

हवन्त उ त्वा हव्यं विवाचि तनूषु शूराः सूर्यस्य साता। त्वं विश्वेषु सेन्यो जनेषु त्वं वृत्राणि रन्धया सुहन्तु ॥ २ ॥

भा०—हे राजन्! (शूराः) वीर पुरुष (वि वाचि) विविध वाणियों के प्रयोग के समय, संग्राम और स्तुतिकाल में (हव्यं) पुकारने और स्तुति-योग्य (त्वा उ) तुझको ही (हवन्ते) पुकारते हैं। (तनूषु) शरीरों में (सूर्यस्य साता) सूर्य नाम दीक्षण नासागत प्राण के प्राप्त होने पर, आवेश में (त्वा उ हवन्ते) तेरी ही स्तुति करते हैं। (त्वं विश्वेषु जनेषु) तू सब मनुष्यों में (सेन्यः) सेना-नायक होने योग्य

है और (त्वं) तू (वृत्राणि) बढ़ते शत्रु-सैन्यों को (सु हन्तु) अच्छी प्रकार मार, (रन्धय) वश कर ।

अहा यदिन्द्र सुदिना व्युच्छान्दधो यत्केतुमुपमं समत्सु ।
न्य१ग्निः सीदुदसुरो न होता हुवानो अत्र सुभगाय देवान् ॥३॥

भा०—जैसे सूर्य (सुदिना) शुभ दिनों को (वि उच्छान्) खूब प्रकाशित कर (दधे) धारता है, (केतुम् दधे) ज्ञान-प्रकाशक को धारता है, वह (सुभगाय देवान् हुवानः होता न) कल्याण के लिये किरणों को देता हुआ अग्नि के समान प्रदीप्त होता है वैसे ही, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् सेनापते ! तू भी (सुदिना अहा) शुभ दिनों को प्राप्त कर (व्युच्छान् देवान् दधः) तेजस्वी वीर पुरुषों और शुभ गुणों को धारण कर और (समत्सु) संग्रामों में (उपमं) आदर्श रूप (केतुम्) ज्ञापक चिह्न को (दधः) धारण कर । तू (अग्निः) अग्नि-समान तेजस्वी और (असुरः न) प्राणवत् सबको जीवन दाता (होता) सबको वृत्ति देने वाला होकर (देवान्) विजयेच्छुक वीरों को (सु-भगाय) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (हुवानः) बुलाता, स्वीकार करता हुआ (नि सीदत्) विराजे ।

वयं ते त इन्द्र ये च देव स्तवन्त शूर ददतो मघानि ।
यच्छा सूरिभ्य उपमं वरूथं स्वाभुवो जरणामश्नवन्त ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (देव) दानशील ! (मघानि) नाना ऐश्वर्य (ददतः) देते हुए (ते) तेरी (ये च स्तवन्त) जो लोग स्तुति करते हैं (ते) वे और (वयम्) हम (स्वाभुवः) उत्तम रीति से समृद्ध होकर (जरणाम्) स्तुति और दीर्घायु को (अश्नवन्त) प्राप्त हों । तू (सूरिभ्यः) विद्वान् पुरुष को (उपमं वरूथं) उत्तम गृह (यच्छ) दे ।

वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥१४

भा०—व्याख्या देखो सू० २८ । मं० ५ । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[३१]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराड्गायत्री । २, ८ गायत्री । ६, ७, ९ निचृद्गायत्री । ३, ४, ५ आर्च्युष्णिक् । १०, ११ भुरिगनुष्टुप् । १२ अनुष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

प्र व॒ इन्द्रा॑य॒ माद॑नं॒ हर्य॑श्वाय गायत ।
सखा॑यः सोम॒पाव्ने॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रो ! आप लोग (सोमपाव्ने) सोम-पान करने वाले यजमान, 'सोम' अर्थात् वीर्य का रक्षण करने वाले ब्रह्मचारी, पुत्र और शिष्य के पालक गृहपति और आचार्य, ऐश्वर्य और अन्न के पालक राजन्य और वैश्य, योग द्वारा ब्रह्मज्ञान के पान करने वाले मुमुक्षु और जगत् के पालक परमेश्वर, (हर्यश्वाय) वेगवान् अश्वों, बलों के स्वामी (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान्, भूमिपालक, आत्मा, परमात्मा आदि के लिये (मादनं) अतिहर्षजनक (प्र गायत) वचन का उपदेश करो ।

शंसे॑दु॒क्थं सु॒दान॑व उ॒त द्यु॒क्षं यथा॒ नरः॑ ।
च॒कृ॒मा स॒त्यरा॑धसे ॥ २ ॥

भा०—(सु-दानवे) उत्तम दाता (सत्य राधसे) सत्य और न्याय के धनी पुरुष के लिये मैं (उक्थं) उत्तम वचन (शंसे) कहूँ । (यथा) जैसे (नरः) लोग उसके लिये (द्युक्षं) अन्न आदि से सत्कार करते हैं वैसे ही हम लोग उसका (द्युक्षं चकृम) सत्कार करें ।

त्वं न॑ इन्द्र वाज॒युस्त्वं ग॒व्युः श॑तक्रतो ।
त्वं हि॑रण्य॒युर्व॑सो ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (त्वं) तू (नः) हमारे लिये (वाज-युः) अन्न, बल आदि की कामना वाला, (गव्युः) वाणी आदि चाहने वाला हो । हे (शतक्रतो) असंख्यों बुद्धियों के स्वामिन् ! हे (वसो) सब में बसने हारे ! (त्वं) तू (हिरण्ययुः) हित-कार्य को चाहने वाला हो ।

व्ययमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन् ।
विद्धी त्वस्य नो वसो ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (वृषन्) बलवन् ! सुखदातः ! हे (वसो) बसने-बसाने वाले ! (वयम्) हम (त्वायवः) तुझे चाहते हुए, (अभि प्र नोनुमः) खूब स्तुति करते हैं (अस्य तु नः विद्धि) तू हमारी इस अभिलाषा को जान ।

मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे ।
त्वे अपि क्रतुर्मम ॥ ५ ॥

भा०—हे राजन् ! तू (अर्यः) स्वामी होकर (नः) हमें (निदे) निन्दक (वक्तवे) गर्हित, (अराव्णे) अदानशील शत्रु के हितार्थ (मा रन्धीः) मत दण्डित कर और (मम त्वे अपि क्रतुः) मेरी जो तेरे में सद् बुद्धि है उसे तू नष्ट मत होने दे ।

त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् ।
त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥ ६ ॥ १५ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) दुष्टनाशक ! (त्वं) तू (सप्रथः) ख्याति से युक्त (वर्म असि) कवच तुल्य रक्षक और (पुरः योधः च) आगे बढ़कर युद्धकर्त्ता है । (त्वया युजा) तुझ सहायक से मैं (प्रति ब्रुवे) शत्रु का उत्तर दूं । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

महाँ उतासि यस्य तेऽनु स्वधावरी सहः ।
मम्नाते इन्द्र रोदसी ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! जैसे सूर्य के अधीन (स्वधावरी रोदसी अनु मम्नाते) जल, अन्न से युक्त आकाश, पृथिवी दोनों परस्पर स्थिर हैं वैसे ही (यस्य ते सहः) जिस तेरे बल के (अनु) अनुकूल रहकर (स्वधावरी रोदसी) अन्नादि ऐश्वर्यों से युक्त स्त्री-पुरुष दोनों (मम्नाते) मिलकर रहते हैं वह तू (महान् असि) बलों में महान् हो ।

तं त्वा मरुत्वती परि भुवद्वाणी सयावरी ।
नक्षमाणा सह द्युभिः ॥ ८ ॥

भा०—हे राजन्, (मरुत्वती) बलवान् मनुष्यों वाली, (सयावरी) साथ जाने वाली (द्युभिः सह) तेजों, धनों से बढ़ती हुई (वाणी) शत्रु-हिंसक बाण आदि शस्त्र-सम्पन्न सेना (तं त्वा परि भुवत्) उस तुझको घेरे रहे, तुझको (मरुत्वती वाणी) मनुष्यों की स्तुति, गुणों सहित वाणी प्राप्त हो और विद्वान् को (द्युभिः सह नक्षमाणा) तेजों, गुणों से युक्त (स-यावरी) सदा साथ विद्यमान (मरुत्वती) उत्तम विद्वानों से प्राप्त (वाणी) वेदविद्या, (परि भुवत्) सुशोभित करे ।

ऊर्ध्वासस्त्वान्विन्दवो भुवन्दस्ममुप द्यवि ।
सं ते नमन्त कृष्टयः ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन् ! (ऊर्ध्वासः) जो उत्तम कोटि के (इन्दवः) ऐश्वर्य, एवं आनन्दित जन हैं वे (द्यवि) इस पृथिवी पर (त्वा दस्मम्) शत्रु-नाशक तुझको ही (उपभुवन्) प्राप्त हों और (त्वा अनु भुवन्) तेरे अनुकूल हों । (कृष्टयः) सब प्रजाजन (ते सं नमन्त) तेरे लिये झुकें ।

प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥ १० ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (वः) अपने में से (महि-वृधे) बड़ों के बढ़ाने वाले, (महे) गुणों में महान् के आदरार्थ (प्र भरध्वम्) उत्तम पदार्थ प्रस्तुत करो और (प्र-चेतसे) उत्तम चित्त वाले शिष्य और विद्वान् के लिये (सुमतिं) उत्तम ज्ञान (प्र कृणुध्वम्) अच्छी प्रकार सम्पादन करो । हे विद्वन् ! (त्वं) तू (चर्षणि-प्राः) मनुष्यों को विद्या, बल से पूर्ण करने वाला होकर (पूर्वीः विशः) पिता, पितामहादि से प्राप्त प्रजाओं को (प्र चर) प्राप्त कर ।

उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥ ११ ॥

भा०—(उरु व्यचसे) बड़े विश्व में व्यापक (महिने) महान् (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु के लिये (विप्राः) बुद्धिमान् पुरुष (सुवृक्तिम्) उत्तम स्तुति और (ब्रह्म जनयन्त) वेदमन्त्र प्रकट करते हैं। (धीराः) वे उसी के ध्यान में मग्न होकर (तस्य व्रतानि) उसके निमित्त करने योग्य धर्म कार्यों का (न मिनन्ति) लोप नहीं करते।

इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सुत्रा राजानं दधिरे सहध्यै।
हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥ १२ ॥ १६ ॥

भा०—(वाणीः) बाणीवत् शत्रुनाशक सेनाएं (अनुत्त-मन्युम्) शत्रु-उच्छेदन-संकल्प से युक्त (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् (राजानं) राजा को (सत्रा) अपने साथ (सहध्यै) शत्रु-पराजय के लिये (दधिरे) धारण करें। हे प्रजाजन! (हर्यश्वाय) मनुष्यों में अश्ववत् बलवान् पुरुष की वृद्धि हेतु (आपीन्) आप्त बन्धु जनों को भी (सं बर्हय) अच्छी प्रकार बढ़ा। इति षोडशो वर्गः ॥

[३२]

वसिष्ठ। २६ वसिष्ठः शक्तिर्वा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता। छन्दः—१, ४, २४ विराड् बृहती। ६, ८, १२, १६, १८, २६ निचृद्बृहती। ११, २७ बृहती। १७, २५ भुरिग्बृहती। २१ स्वराड्बृहती। २, ६ पंक्तिः। ५, १३, १५, १६, २३ निचृत्पंक्तिः। ३ साम्नी पंक्तिः। ७ विराट् पंक्तिः। १०, १४ भुरिगनुष्टुप्। २०, २२ स्वराडनुष्टुप् ॥
सप्तविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

मो षु त्वा वाघतश्चनारे अस्मन्नि रीरमन्।
आरात्ताच्चित् सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥ १ ॥

भा०—हे राजन्! (वाघतः) विद्वान् (अस्मत् आरे) हम से दूर (त्वा मो सु निरीरमन्) तुझे विनोद में न रमने दें। (आरात्तात् चित्) दूर रहता हुआ भी, तू (नः सधमादं आ गहि) हमारे साथ आनन्द के

लिये प्राप्त हो। (इह वा) और इस राष्ट्र में (सन्) रहकर (नः उप श्रुधि) हमारे वचन सुन।

इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥ २ ॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! (इमे ब्रह्म-कृतः) ये वेद द्वारा स्तुति-कर्ता लोग (मधौ मक्षः न) मधुर पदार्थ पर मधुमक्खी के समान (ते सुते) तेरे शासन में (आसते) विराजते हैं और (जरितारः) स्तुतिशील (वसूयवः) धन और नाना लोकों की कामना वाले लोग (रथे न पादम्) रथ में पैर के समान (इन्द्रे कामम् आदधुः) परमैश्वर्ययुक्त तुझ प्रभु में ही अपनी कामना को स्थिर करते हैं।

रायस्कामो वज्रहस्तं सुदक्षिणं पुत्रो न पितरं हुवे ॥३॥

भा०—मैं (रायस्कामः) ऐश्वर्य का इच्छुक, (पितरं पुत्रः न) पिता को पुत्र के समान (सु-दक्षिणं) उत्तम दानशील, उत्तम क्रिया-सामर्थ्य-वान्, (वज्रहस्तं) बल-सम्पन्न राजा को अपना (पितरं) पालक (हुवे) स्वीकारता हूँ।

इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः।
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥ ४ ॥

भा०—(इमे) ये (दध्याशिरः) राष्ट्र के धारक (सोमासः) ऐश्वर्य-युक्त शासक (सुन्विरे) प्रजा का शासन करें। हे (वज्रहस्त) बल को हाथों में धारणकर्ता राजन्! (पीतये) राष्ट्र-पालन के लिये (तान् आ याहि) उनको प्राप्त कर और (हरिभ्याम्) उत्तम अश्वों से, तू (ओकः आयाहि) अपने गृह को आ।

श्रवच्छुत्कर्णं ईयते वसूनां नू चिन्नो मर्धिषद् गिरः।
सद्यश्चिद्यः सहस्राणि शता ददन्नकिर्दित्सन्तमा मिनत् ॥५॥१७॥

भा०—(वसूनां) बसे प्रजाजनों की (गिरः) वाणियों को जो राजा

(श्रुतकर्णः) सुनने वाले सावधान कानों से (श्रवत्) सुने, वही (ईयते) प्रार्थना किया जाता है। वह (नः गिरः चित् नु) हमारी वाणियों को (मर्धिषत्) चाहे, (सद्यः चित्) अति शीघ्र (यः) जो (शता सहस्राणि) सैकड़ों और सहस्रों को (ददत्) दे। (दित्सन्तम्) दान देना चाहने वाले को (न किः आ मिनत्) कोई भी पीड़ित न करे। इति सप्तदशो वर्गः ॥

स वीरो अप्रतिष्कुत इन्द्रेण शूशुवे नृभिः।
यस्ते गभीरा सवनानि वृत्रहन्त्सुनोत्या च धावति ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष, हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाशक राजन्! (यः) जो (ते) तेरे (गभीरा) गम्भीर (सवना) आदेशों को (सुनोति) करता और (आ-धावति च) आगे बढ़ता है (सः) वह (वीरः) विविध विद्या और बल से युक्त पुरुष (इन्द्रेण) ऐश्वर्य और (नृभिः) उत्तम नायकों सहित (अप्रतिष्कुतः) सर्वाधिक (शूशुवे) हो जाता है।

भवा वरूथं मघवन्मघोनां यत्समजासि शर्धतः।
वि त्वाहतस्य वेदनं भजेमह्या दूणाशो भरा गयम् ॥ ७ ॥

भा०—(यत्) जो तू (शर्धतः) शत्रुओं को (सम् अजासि) एक साथ उखाड़ने में समर्थ हो और (शर्धतः सम् अजासि) उत्साहवान् पुरुषों को एक साथ सेनावत् सञ्चालित करता है, वह तू (मघोनां) धन वाले पुरुषों के (वरूथं) गृह के समान रक्षक (भव) हो। हम (त्वाहतस्य) तेरे से मारे गये (शर्धतः) बलवान् शत्रु के (वेदनं) धन को (वि भजेमहि) बांट लें। (दुः-नाशः) तू कठिनता से नाश होने योग्य होकर हमारे (गयम् आ भर) गृह को प्राप्त करा और उसे पूर्ण कर।

सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे।
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्नित्पृणते मयः ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (सोमपाव्ने) 'सोम' ओषधिरस को पीने वाले के लिये (सोमम् सुनोत) उत्तम ओषधिरस उत्पन्न करो। ऐसे ही (सोमपाव्ने) ऐश्वर्य-पालन में समर्थ (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् (वज्रिणे) बलवान् पुरुष के लिये (सोमं) ऐश्वर्य (सुनोत) उत्पन्न करो। (अवसे) तृप्ति के लिये (पक्तीः) नाना पकने योग्य अन्नों को (पचत इत्) पकाओ। (पृणन् इत्) सबको पालन करने वाला ही (मयः पृणते) सबको सुख देता है।

मा स्रेधत सोमिनो दक्षता मुहे कृणुध्वं राय आतुजे।
तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति न देवासः कवत्नवे॥ ९॥

भा०—हे (सोमिनः) अन्नादि के पालक जनो! आप लोग (मा स्रेधत) परस्पर नाश मत करो। (महे राये) बड़ी धनैश्वर्य प्राप्ति और (आ-तुजे) सब प्रकार के बल प्राप्त करने और ऐश्वर्य के लिये (दक्षत) सदा यत्न करो। (तरणिः इत्) संकटों को पार करने वाला पुरुष ही (जयति क्षेति) विजय करता और (पुष्यति) समृद्ध होता है। (देवासः) विद्वान् पुरुष (कवत्नवे) कुत्सित पुरुष के लिये (न) नहीं होते।

नकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत्।
इन्द्रो यस्याविता यस्य मुरुतो गमत्स गोमति व्रजे॥१०॥१८॥

भा०—(यस्य) जिसका (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, वीर, प्रभु (अविता) रक्षक है, यस्य (मरुतः) जिसके रक्षक, शिक्षक, बलवान् विद्वान् हैं (सः) वह पुरुष (गोमति व्रजे) वाणी-युक्त आश्रय ज्ञान मार्ग में नाना भूमियों और गवादि से सम्पन्न पद को (गमत्) पाता है। (सु-दासः) उत्तम दाता के (रथं) रथ को (नकिः परि आस) कोई पकट नहीं सकता और (न रीरमत्) न अन्य उसे दुःख दे सकता है।

गमुद्वाजं वाजयन्निन्द्र मर्त्यो यस्य त्वमविता भुवः ।
अस्माकं बोध्यविता रथानामस्माकं शूर नृणाम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) प्रभो ! (यस्य भुवः) जिसकी भूमि वा प्राणों की (त्वम् अविता) तू रक्षा करता, (वाजयन्) ऐश्वर्य, अन्न आदि की कामना करता है वह (मर्त्यः) मनुष्य (वाजं गमत्) ऐश्वर्य, अन्नादि (गमत्) प्राप्त करता है । हे (शूर) शत्रुनाशक ! तू (अस्माकम्) हमारा और हमारे (नृणाम्) मनुष्यों और (रथानाम्) रथों, रमण-योग्य देहों का भी (अविता) रक्षक होकर (अस्माकं बोधि) हमें ज्ञान दे ।

उदिन्न्वस्य रिच्यतेऽशो धनं न जिग्युषः ।
य इन्द्रो हरिवान्न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥१२॥

भा०—(यः) जो पुरुष (इन्द्रः) सूर्य-तुल्य तेजस्वी, (हरिवान्) अश्व-सैन्यों का स्वामी होकर (सोमिनि) ऐश्वर्यवान् पुरुष में (दक्षं दधाति) बल धारण कराता है (जिग्युषः न) विजेता के तुल्य (अस्य इत् नु) उसका (अंशः धनं न) भाग वा धन (उद्रिच्यते) सर्वाधिक होता है ।

मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा ।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (यज्ञियेषु) सत्कार-योग्य जनों और ज्ञान आदि व्यवहारों में (अखर्वं) बहुत अधिक (सु-धितम्) उत्तम रीति से रक्षित, (सुपेशसं) उत्तम रूप से युक्त, (मन्त्रं) मन्त्र को (आ दधात) धारण करो । (पूर्वीः चन) पूर्व के भी (प्र-सितयः) उत्तम प्रेम-बन्धन (तं तरन्ति) उसको प्राप्त होते हैं (यः) जो पुरुष (कर्मणा) सत्कर्म से (इन्द्रे भुवत्) परमेश्वर में दत्तचित्त रहता है ।

कस्तमिन्द्र त्वावसुमा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा इत्ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥ १४ ॥

३५ च.

भा०—हे (इन्द्र) प्रभो ! (त्वा वसुम्) तुझमें ही बसने वाले (तं) उस पुरुष को (कः) कौन (मर्त्यः) मनुष्य (आ दधर्षति) तिरस्कार कर सकता है ? हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् (ते) तेरे (पार्यें दिवि) पालन योग्य व्यवहार वाले ज्ञान में (श्रद्धा इत्) सत्य धारण ही है जिससे प्रेरित (वाजी) ज्ञानवान् पुरुष (वाजं सिषासति) ऐश्वर्य-भोग करता है।

मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥१५॥१४॥

भा०—(ये) जो लोग (प्रिया वसु) प्रिय धन (ददति) दान करते हैं उन (मघोनः) ऐश्वर्यवान् पुरुषों को (वृत्र-हत्येषु) शत्रुनाशक संग्राम आदि कार्यों में (चोदय स्म) प्रेरित कर। हे (हरि-अश्व) हे मनुष्यों के स्वामिन् ! (तव) तेरी (प्रणीती) उत्तम नीति में (सूरिभिः) विद्वानों की सहायता से (विश्वा दुरिता) सब दुःखजनक कारणों को (तरेम) पार करें।

तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥१६॥

भा०—हे (इन्द्र) प्रभो ! (अवमं वसु) निकृष्ट, प्रजा-पालक धन, भूमि, वस्त्रादि और (मध्यमं वसु) मध्यम कोटि का धन, चान्दी, सोना आदि विनिमय का माध्यम बन सके, जिससे (त्वं पुष्यसि) उस प्रजा को पुष्ट करता है वह सब (तव इत्) तेरा ही है और (परमस्य) सर्वोत्कृष्ट (विश्वस्य) समस्त ऐश्वर्य के द्वारा (सत्रा) तू अपने सत्य के बल से (राजसि) राजा के समान है। (गोषु) भूमियों पर शासन के लिये (त्वा) तुझे (नकिः वृण्वते) भला कौन स्वीकार न करे।

त्वं विश्वस्य धनदा असि श्रुतो य ईं भवन्त्याजयः ।
तवायं विश्वः पुरुहूत पार्थिवोऽवस्युर्नाम भिक्षते ॥ १७॥

भा०—(ये) जो (ईम्) सब ओर (आजयः भवन्ति) संग्राम होते हैं उनमें (त्वं) तू (विश्वस्य धनदाः श्रुतः असि) सबका धनदाता प्रसिद्ध है। हे (पुरु-हूत) प्रशंसित! (अयं) यह (विश्वः) समस्त (पार्थिवः) पृथिवीवासी राज-प्रजावर्ग (अवस्युः) रक्षा चाहता हुआ (तव नाम) दुष्टों को नमाने वाले तेरे अधीन रहना (भिक्षते) चाहता है।

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय।
स्तोतारमिद्दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय॥ १८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत्) जैसे और (यावतः) जितने भी धन का (त्वम्) तू स्वामी है (एतावत्) उतना ही (अहम्) मैं भी (ईशीय) स्वामी हो जाऊं। हे (रदावसो) शत्रु-कर्षक बसी प्रजा के स्वामिन्! मैं उस से (स्तोतारम् इत्) स्तुतिकर्ता को ही (दिधिषेय) पालूँ। मैं अपना धन (पापत्वाय) पाप-वृद्धि हेतु (न रासीय) न दूं।

शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे।
नहि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन॥ १९॥

भा०—मैं ऐश्वर्यवान् होकर (दिवे दिवे) प्रति दिन (कुह चिद्-विदे) कहीं भी विद्यमान, (महयते) पूज्य पुरुष के आदरार्थ (रायः) नाना धन (शिक्षेयम् इत्) दिया ही करूं। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (त्वत् अन्यत्) तुझसे दूसरा (नः) हमारा (वसीयः) श्रेष्ठ (आप्यं) बन्धु और (पिता चन) पालक भी (नहि अस्ति) नहीं है।

तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम्॥२०॥२७॥

भा०—(तरणिः इत्) संकट से तारने में कुशल पुरुष ही (युजा पुरन्ध्या) नगर-धारक नीति (युजा) सहायक वर्ग से (वाजं सिषासति) ऐश्वर्य को विभक्त करता है। हे प्रजाजनो! मैं (वः) आप में से (इन्द्रं) ऐश्वर्य-युक्त (पुरुहूतं) बहु प्रशंसित (सुद्रुवं) स्थिर पुरुष को (गिरा)

वाणी से (तष्टा इव सुद्र्वं नेमिम्) शिल्पी से बनाई काष्ठमय चक्र-धार के तुल्य (नमे) नमाऊं।

न दुःष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु न स्रेधन्तं र॒यिर्नशत्।
सुशक्तिरिन्मघवन्तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ॥ २१ ॥

भा०—(मर्त्यः) मनुष्य (दुःस्तुती) दुष्ट की स्तुति से (वसु न विन्दते) धन नहीं पाता। (स्रेधन्तं) हिंसक जन को (रयिः) ऐश्वर्य (न नशत्) नहीं मिलता और उसको (सुशक्तिः इत् न नशत्) उत्तम शक्ति भी नहीं मिलती। हे (मघवन्) धन-स्वामिन्! (यत्) जो (पार्ये दिवि) पालने योग्य व्यवहार में (मावते) मेरे जैसे याचक को (देष्णं) देने योग्य धन देने की (सुशक्ति इत् तुभ्यम्) उत्तम शक्ति भी तेरी ही है।

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ २२ ॥

भा०—हे (शूर) दुष्ट-नाशक! (अदुग्धाः धेनवः इव) न दुही गौओं के तुल्य हम (अस्य जगतः) इस जंगम और (तस्थुषः) स्थावर संसार के (ईशानम्) सञ्चालक (स्वर्दृशं त्वाम्) सर्वद्रष्टा तुझको, (अभि नोनुमः) झुकते हैं।

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! (मघवन्) ऐश्वर्य-स्वामिन्! (त्वावान्) तेरे जैसा, (अन्यः) दूसरा, (न दिव्यः) न ज्ञानवान्, (न पार्थिवः) न दूसरा कोई इस पृथ्वी पर है। ऐसा (न जातः) न पैदा हुआ (न जनिष्यते) न पैदा होगा। हम (वाजिनः) बल से युक्त, (अश्वायन्तः) विद्वानों व राष्ट्र के इच्छुक और (गव्यन्तः) वाणियों, भूमियों के इच्छुक होकर (त्वा हवामहे) तेरी स्तुति करते हैं।

अभी षतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।
पुरूवसुर्हि मघवन्त्सनादसि भरेभरे च हव्यः ॥ २४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्ययुक्त ! हे (मघवन्) धन-स्वामिन् ! तू (पुरू-वसुः) बहुतों को बसाने वाला और (सनात्) सनातन से (भरे भरे च हव्यः) प्रत्येक पालन-योग्य कार्य में स्तुति-योग्य (असि) है। तू (सतः) सत्स्वरूप और (कनीयसः) अति दीप्तियुक्त, परम तत्व का (ज्यायः) महान् ज्ञान (आ भर) प्राप्त करा।

परा णुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसू कृधि ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम् ॥ २५ ॥

भा०—हे (मघवन्) धन के स्वामिन् ! तू (नः अमित्रान्) हमारे शत्रुओं को (परा नुदस्व) दूर कर और (नः) हमें (वसु) नाना ऐश्वर्य (सुवेदा कृधि) सुख से प्राप्त करने योग्य कर। (महा-धने) संग्राम के समय वा भारी ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये, तू (अस्माकं) हमारा (अविता) रक्षक हो (बोधि) हमें चेताता रह और (अस्माकं सखीनाम्) हमारे मित्रों का (वृधः भव) बढ़ाने हारा हो।

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ २६ ॥

भा०—(पिता) पालक, गुरु, (पुत्रेभ्यः) पुत्रों, शिष्यों को (यथा) जैसे (क्रतुं) ज्ञान का उपदेश देता है वैसे ही, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें भी (क्रतुम् आ भर) उत्तम बुद्धि दे। (अस्मिन् यामनि) इस समय, यज्ञ और संसारमार्ग में, हे (पुरुहूत) बहु-प्रशंसित ! तू (नः शिक्ष) हमें ज्ञान दे जिससे (जीवाः) हम सब जीव (ज्योतिः अशीमहि) परम प्रकाशरूप तुझे प्राप्त करें।

मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥२७॥२१॥

आ०—(नः) हमें (अज्ञाताः) अज्ञात (वृजनाः) वर्जने योग्य, (दुराध्यः) दुख से ध्याने योग्य, (अशिवासः) दुष्ट लोग (मा अव क्रमुः) मत रौंदें। हे (शूर) दुष्ट-नाशक (वयम्) हम (त्वया) तेरी सहायता से (प्रवतः) विनीत होकर (शश्वती अपः) अनादि काल से प्राप्त कर्म बन्धनों को नदी-तुल्य (अति तरामसि) पार करें। इत्येक-विंशो वर्गः॥

[३३]

संस्तवो वसिष्ठस्य सपुत्रस्येन्द्रेण वा संवादः॥ १—९ वसिष्ठपुत्राः। १०, १४ वसिष्ठ ऋषिः। त एव देवताः॥ छन्दः—१, २, ६, १२, १३ त्रिष्टुप्। ३, ४, ५, ७, ९, १४ निचृत्त्रिष्टुप्। १० भुरिक् पंक्तिः। चतुर्दशर्चं सूक्तम्॥

श्वित्यञ्चो॑ मा दक्षिण॒तस्क॑पर्दा धियंजि॒न्वासो॑ अ॒भि हि प्र॑म॒न्दुः।
उ॒त्तिष्ठ॑न्वोचे॒ परि॑ ब॒र्हिषो॒ नॄन्न मे॑ दू॒राद॑वित॒वे वसि॑ष्ठाः॥ १॥

आ०—(श्वित्यञ्चः) वृद्धि को प्राप्त, (दक्षिणतः-कपर्दाः) दायें भाग में जटा-जूट रखने वाले (धियं-जिन्वासः) उत्तम मति को प्राप्त, (वसिष्ठाः) ब्रह्मचारी, वसुगण (मा अभि प्रमन्दुः हि) मुझे आनन्दित करें और वे (अवितवे) ज्ञान देने के लिये (दूरात्) दूर देश से भी आयें। उन (नॄन्) उत्तम पुरुषों का मैं (बर्हिषः) वृद्धियुक्त आसन से (उत् तिष्ठन्) उठ कर (परि वोचे) आदर-युक्त वचन से सत्कार करूं।

दू॒रादिन्द्र॑मनयन्ना सु॒तेन॑ ति॒रो वै॑श॒न्तमति॒ पान्त॑मु॒ग्रम्।
पाश॑द्युम्नस्य वाय॒तस्य॒ सोमा॑त्सु॒तादिन्द्रो॑ऽवृणीता॒ वसि॑ष्ठान्॥२

आ०—विद्वान् लोग (वैशन्तम्) राष्ट्र में प्रविष्ट, प्रजा-हितकारी (उग्रम्) बलवान् (पान्तम्) पालक (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (सुतेन) धर्म से उत्पन्न बल से (दूरात्) दूर देश से भी (तिरः अनयन्) पास ले आते हैं, उन (वसिष्ठान्) राष्ट्रवासी उत्तम पुरुषों को (पाश-द्युम्नस्य) धन के पास में फंसे वैश्यवर्ग और (वायतस्य) विज्ञानवान् पुरुषों

और रक्षा-युक्त क्षात्रवर्ग के (सुतात् सोमात्) उत्तम अन्न और ज्ञान से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (अवृणीत) उनका सत्कार करे।

एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु कं भेदमेभिर्जघान।
एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः ॥३॥

भा०—हे (वसिष्ठाः) राष्ट्र में बसे प्रजाजनो! (वः एभिः) आप में से ही इन जनों की सहायता से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (सिन्धुं नु कं ततार इत्) बड़े समुद्र को भी पार करे (एभिः) इन विशेष जनों सहित (भेदं नु कं ततार एव इत्) फूट डालने वाले शत्रु को भी पार करे। (वः ब्रह्मणा) आप लोगों के बल, ज्ञान से ही वह (दाशराज्ञे) सुखदाता राजा के लिये (एव नु कं) भी (सुदासं) उत्तम दानशील प्रजा की (प्रावत्) रक्षा करे।

जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः पितॄणामक्षमव्ययं न किला रिषाथ।
यच्छक्करीषु बृहता रवेणेन्द्रे शुष्ममदधाता वसिष्ठाः ॥ ४ ॥

भा०—हे (नरः) उत्तम जनो! आप (वः) अपने (पितॄणाम्) पालक जनों के (अव्ययं) अविनाशी (अक्षम्) सत्यदर्शक ज्ञान-ऐश्वर्य को (ब्रह्मणा) बल से (न किल रिषाथ) नाश न करो, प्रत्युत (जुष्टी) प्रेमपूर्वक (अदधात) धारण करो (यत्) जिस (शुष्मं) बल को, हे (वसिष्ठाः) गुरु के अधीन रहने वाले और राष्ट्रवासी जनो! आप लोग (बृहतः रवेण) भारी आघोष के साथ (शक्करीषु) शक्ति-युक्त सेनाओं और (इन्द्रे) ऐश्वर्य-युक्त राजा में, उसके अधीन रहकर (अदधात) धारते रहो।

उद् द्यामिवेत्तृष्णजो नाथितासोऽदीधयुर्दाशराज्ञे वृतासः।
वसिष्ठस्य स्तुवत इन्द्रो अश्रोदुरुं तृत्सुभ्यो अकृणोदु लोकम् ॥५।२२

भा०—(वृतासः) वरण किये गये (तृष्णजः) तृष्णा, वा धन की कामना से युक्त (नाथितासः) धनादि-याचना करने वाले लोग (दाश-

राज्ञे) दानशीलों में तेजस्वी राजा के लिये (द्याम् इव) सूर्य के तुल्य तेज, या भूमि को (उद् अदीधयुः) उत्तम रीति से धारण करें। (स्तुवतः) स्तुतिकर्ता (वसिष्ठस्य) बसे उत्तम प्रजाजन की बात (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् तेजस्वी राजा (अश्रोत्) सुने और वह (तृत्सुभ्यः) शत्रु नाशक सैनिकों के लिये (उरुम् लोकम्) बड़ा स्थान (अकृणोत्) दे।

दुण्डा इवेद्गो अजनास आसन्परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः।
अभवच्च पुरएता वसिष्ठ आदित्तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥ ६ ॥

भा०—(दण्डा इव परिच्छिन्ना गो-अजनासः) दण्ड जैसे शाखा से कट कर भी पशु आदि को हांकने के लिये उत्तम होते हैं वैसे (परिच्छिन्नाः) सब प्रकार से कटे छटे, कुशल, (भरताः) प्रजापालक (अर्भकासः) बालकों के समान निर्द्वेष, स्वच्छ-हृदय दण्डों के समान ही (दण्डाः) दुष्टों के दमनकर्ता (गो-अजनासः) भूमियों को शासन करने वाले (आसन्) हों। (वसिष्ठः) प्रजा को बसाने वाला राजा, इनका (पुरः-एता) अग्रयायी नायक (अभवत्) हो और (आत् इत्) अनन्तर (तृत्सूनां) शत्रुहिंसक वीर पुरुषों की ही यह (विशः) प्रजाएं (अप्रथन्त) प्रसिद्ध होती हैं।

त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतस्तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः।
त्रयो घर्मास उषसं सचन्ते सर्वाँ इत्ताँ अनु विदुर्वसिष्ठाः ॥७॥

भा०—(त्रयः) तीन (भुवनेषु) उत्पन्न लोकों में (रेतः) जल, तेज, वीर्य को (कृण्वन्ति) उत्पन्न करते हैं और (तिस्रः) तीन प्रकार की (आर्याः प्रजाः) श्रेष्ठ प्रजाएं (ज्योतिः अग्राः) प्रकाश को मुख्य रूप से प्राप्त होती हैं, (त्रयः) तीनों (घर्मासः) वीर्यवान् ही (उषसं) उषा को सूर्यवत्, कामना-योग्य भूमि वा शक्ति को (सचन्ते) प्राप्त करते हैं (तान् सर्वान् इत्) उन सबको ही (वसिष्ठाः अनु विदुः) विद्वान् ब्रह्मचारी अच्छी प्रकार जानते और प्राप्त करते हैं। (२) लोक में सूर्य,

विद्युत् और अग्नि तीनों (रेतः) प्रजोत्पादक तेज को उत्पन्न करते और सूर्य वायु और भूमि तीनों प्रजोत्पादक प्रकाश, प्राणाधार जल और अन्न को उत्पन्न करते हैं, तीनों प्रकार की श्रेष्ठ प्रजाएं, जेरज, अण्डज, उद्भिज (ज्योतिरग्राः) प्रकाश की ओर बढ़ने वाली हैं (त्रयः घर्मासः) तीनों तेजोयुक्त सूर्य, अग्नि, विद्युत् वा सूर्य, मेघ और बलवान् पुरुष (उषसं) दाहक तापशक्ति, कान्ति तथा कामना योग्य स्त्री को प्राप्त करते हैं। इन पदों को (वसिष्ठाः) ब्रह्मचारी ही (अनु विदुः) प्राप्त करें।

सूर्य॑स्येव व॒क्षथो॒ ज्योति॑रेषां समु॒द्रस्ये॑व महि॒मा ग॑भी॒रः ।
वात॑स्येव प्रज॒वो नान्येन॒ स्तोमो॑ वसिष्ठा॒ अन्वे॑तवे वः ॥ ८ ॥

भा०—हे (वसिष्ठाः) ब्रह्मचारी लोगो! हे राष्ट्रवासी जनों में श्रेष्ठ जनो! (एषां) इन (वः) आप लोगों का (वक्षथः) तेज और वचन (सूर्यस्य ज्योतिः इव) सूर्य-तेज के समान असह्य और यथार्थ का प्रकाशक हो। (महिमा) महान् सामर्थ्य (समुद्रस्य इव गभीरः) समुद्र-समान गंभीर हो। (प्र-जवः) उत्तम वेग (वातस्य इव) वायु के समान अदृश्य हो और (वः) आप लोगों का (स्तोमः) बलवीर्य, चरित्र ऐसा हो जो (अन्येन) दूसरे असमर्थ पुरुष से (अन्वेतवे न) अनुकरण न किया जा सके।

त इन्नि॒ण्यं हृद॑यस्य प्रके॒तैः स॒हस्र॑वल्शम॒भि सं च॑रन्ति ।
य॒मेन॑ त॒तं प॑रि॒धिं वय॑न्तोऽप्स॒रस॒ उप॑ सेदु॒र्वसि॑ष्ठाः ॥ ९ ॥

भा०—(ते इत् वसिष्ठाः) वे ही पूर्ण ब्रह्मचारी, गुरु के अधीन विद्या-प्राप्ति के लिये बसने हारे जन (यमेन) नियन्त्रक आचार्य वा परमेश्वर द्वारा (ततं) विस्तारित (परिधिं) सब प्रकार से धारण-योग्य ज्ञान, व्रत और दीक्षादि को (वयन्तः) प्राप्त होते और उसका पालन करते हुए (अप्सरसः उपसेदुः) गृहाश्रम में स्त्रियों को प्राप्त

करें। (त इत्) वे ही (हृदयस्य) हृदय के (प्रकेतैः) उत्तम ज्ञानों से सहस्रों अंकुरों, शास्त्र-ज्ञानों से युक्त (निण्यं) निश्चित ज्ञान को (अभि सञ्चरन्ति) प्राप्त कर विचरें।

विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा।
तत्ते जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आजभार ॥१०॥२३॥

भा०—जीवों के पुनर्जन्म का रहस्य। हे (वसिष्ठ) देहवासी प्राणों में सबसे श्रेष्ठ जीव! (विद्युतः ज्योतिः) विद्युत् की ज्योति के तुल्य दीप्ति को (परि संजिहानं) सब प्रकार से धारक (त्वा) तुझको (यत्) जब (मित्रावरुणौ) सूर्य-चन्द्रवत्, प्राण-अपान वा माता-पिता दोनों, (अपश्यताम्) देखते हैं (तत्) तब (ते) तेरा (जन्म) जन्म होता है (उत) और (एकं) एक जन्म होता है (यत्) जब (अगस्त्यः) सूर्य (त्वा) तुझको (विशः) प्रवेश योग्य देहों में, वा आचार्य प्रजाओं में राजा के समान (आजभार) प्राप्त कराता है।

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधि जातः।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त ॥११॥

भा०—हे (वसिष्ठ) देह में बसे श्रेष्ठ जीव! (उत) और तू (मैत्रावरुणः) मित्र और वरुण, प्राण और अपान दोनों का स्वामी (असि) है। हे (ब्रह्मन्) वृद्धिशील जीव! तू (उर्वश्याः) कान्तिमती, तैजस, सात्विक विचार से युक्त वा 'उरु' विस्तृत, व्यापक प्रकृति के ऊपर (मनसः) मननशक्ति द्वारा (अधि-जातः) भोक्ता रूप से अध्यक्ष होता है। (दैव्येन) समस्त किरणों के, समस्त शक्तियों के स्वामी सूर्यवत् तेजस्वी (ब्रह्मणा) महान् परमेश्वर से (स्कन्नं) प्रदत्त (द्रप्सं) वीर्य के समान (त्वा) तुझको (देवाः) समस्त दिव्य शक्तियां (पुष्करे) पुष्टि-कारक तत्व में (अददन्त) धारण करती हैं।

स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्त्सहस्रदान उत वा सदानः ।
यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः ॥ १२ ॥

भा०—जैसे (यमेन) नियन्ता परमेश्वर से (ततं) फैलाये (परिधिं) धारक देह सांसारिक जीवन को (वयिष्यन्) पट के समान स्वयं अपने कर्मों द्वारा बिनता, उसको प्राप्त होना चाहता हुआ (वसिष्ठः) वसु, जीव (अप्सरसः परि जज्ञे) स्त्री-शरीर से परिपुष्ट होकर प्रकट होता है, वैसे ही (वसिष्ठः) गुरु के अधीन बसने वाला वसु ब्रह्मचारी (यमेन) नियन्ता आचार्य से (ततं) विस्तारित (परिधिं) सब प्रकार से धारण-योग्य ज्ञानमय शास्त्रपट को (वयिष्यन्) प्राप्त, रक्षण और विस्तृत करना चाहता हुआ (अप्सरसः) अन्तरिक्षचारी वायु के समान ज्ञानवान् पुरुष की व्याप्त विद्या से (परि जज्ञे) उत्पन्न होता है । (सः) वह (प्र-केतः) उत्तम ज्ञानी और (उभयस्य) पाप और पुण्य दोनों को (प्र-विद्वान्) भली प्रकार जानता हुआ, (सहस्र-दानः) सहस्रों का दाता, परमैश्वर्य का स्वामी हो । (उत वा) अथवा (स-दानः) दान-शीलों के दान से अलंकृत भिक्षु, ब्राह्मण हो ।

सत्रे ह जातविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम् ।
ततो ह मान उदियाय मध्यात्ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम् ॥१३॥

भा०—(सत्रे) गुरु के गृह में (जातौ) उत्पन्न हुए कुमार और कुमारी दोनों (इषिता) एक दूसरे की इच्छा वाले होकर (नमोभिः) आदर सहित (कुम्भे रेतः) कलश में रक्खे जल से (समानं) एक समान (सिषिचतुः) अभिषेक करें, (ततः मध्यात्) उन दोनों के बीच से (मानः) उत्तम परिमाणयुक्त बालक (उत् इयाय) उत्पन्न होता है (ततः) अनन्तर उस (ऋषिम्) प्राप्त जीव को (वसिष्ठम् आहुः) 'वसिष्ठ' कहते हैं ।

उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति ग्रावाणं बिभ्रत्प्र वदात्यग्रे । उपैनमाध्वं सुमनस्यमाना आ वो गच्छाति प्रतृदो वसिष्ठः ॥१४।२४।२

भा०—जो विद्वान् (अग्रे) सबसे पूर्व, (बिभ्रत्) ज्ञान को धारण करता हुआ (प्र वदाति) उत्तम प्रवचन करता है वह (ग्रावाणं) मेघ के समान ज्ञान-जल को धारक (उक्थ-भृतं) ऋग्वेद के धारक और (साम-भृतं) सामवेद के धारक विद्वान् शिष्य को भी (बिभर्ति) धारण करता है । वही (वसिष्ठः) वसु ब्रह्मचारियों में श्रेष्ठ है । हे (प्र-तृ-दः) तीनों आश्रमों को अन्नादि देने वाले गृहस्थो ! वा हे (प्रतृदः) खण्ड २ कर वेद-अध्ययन करने वाले ब्रह्मचारियो ! जब वह (वः आगच्छति) तुम्हें प्राप्त हो तब आप (एनं) उसकी (सुमनस्यमानाः) शुभ संकल्पयुक्त होकर (उप आध्वम्) उपासना करो । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[३४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—१५, १८—२५ विश्वे देवाः ॥ १६ अहिः ॥ १७ अहिर्बुध्न्यो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, १२, १३, १४, १६, २० भुरिगार्ची गायत्री । ३, ४, १७ आर्ची गायत्री । ६, ७, ८, ९, १०, ११, १५, १८, २१ निचृत्त्रिपाद्गायत्री । २२, २४ निचृदार्षी त्रिष्टुप् । २३ आर्षी त्रिष्टुप् । २५ विराडार्षी त्रिष्टुप् च ॥ पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

प्र शुक्रैतु देवी मनीषा अस्मत्सुतष्टो रथो न वाजी ॥ १ ॥

भा०—(वाजी) वेगवान् (रथः) (सु-तष्टः) उत्तम रीति से निर्मित होकर जैसे (मनीषाः एति) मनोऽनुकूल गतियों करता है वैसे ही (सु-तष्टः) उत्तम रीति से अध्यापित, (वाजी) ज्ञानी पुरुष और (शुक्रा) शुद्ध अन्तःकरणवाली, (देवी) विदुषी स्त्री भी (अस्मत्) हमसे (मनीषाः) उत्तम बुद्धियों को (एतु) प्राप्त करे ।

विदुः पृथिव्या दिवो जनित्रं शृण्वन्त्यापो अध क्षरन्तीः ॥ २ ॥

भा०—(अधः क्षरन्तीः आपः) मेघ से नीचे गिरती जलधाराएं जैसे (दिवः) आकाश से (जनित्रं) अपनी उत्पत्ति और (पृथिव्याः जनित्रं) पृथिवी, अन्न की उत्पत्ति का कारण होती हैं वैसे ही (अधः क्षरन्तीः) नीचे के अंगों से स्रवित वा ऋतु से होने वाली नवयुवती (अपः) आप्त स्त्रियें (दिवः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष और (पृथिव्याः) पृथिवी तुल्य बीजों को अंकुरित करने वाली माता से ही (जनित्रं) सन्तान के जन्म को जानें और (शृण्वन्ति) वैसा ही उपदेश गुरुजनों से सुनें।

आपश्चिदस्मै पिन्वन्त पृथ्वीर्वृत्रेषु शूरा मंसन्त उग्राः ॥ ३ ॥

भा०—(वृत्रेषु) मेघों में (आपः चित्) जलधाराएं जैसे (अस्मै) इस सूर्य के बल से (पृथ्वीः) भूमियों को (पिन्वन्त) सींचती हैं और (वृत्रेषु) मेघों के ऊपर (उग्राः) प्रचण्ड वायुएं (मंसन्ते) प्रहार करते हैं (चित्) वैसे (अस्मै) इस राजा के लिये (आपः) नहरें (पृथ्वीः पिन्वन्त) भूमियों को सींचें और (शूराः) वीर पुरुष (वृत्रेषु) विघ्नकारी पुरुषों पर और धनों के लिए (मंसन्ते) उद्योग करें।

आ धूर्ष्वस्मै दधाताश्वानिन्द्रो न वज्री हिरण्यबाहुः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (अस्मै) इस नायक के लिये (धूर्षु) धुराओं में (अश्वान्) अश्वों को (दधात) लगाओ। (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् (वज्री) बली, शस्त्रधारक और (हिरण्य-बाहुः) सुवर्णादि को बाहुबल से रखने वाला है।

अभि प्र स्थाताहेव यज्ञं यातेव पत्मन्त्मना हिनोत ॥ ५ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! (अह इव) और आप लोग (यज्ञं अभि) पूजनीय प्रभु, सत्संग, यज्ञ आदि को लक्ष्य कर (प्र स्थात) आगे बढ़ो। (याता इव) यात्री या जाने वाले पुरुष के समान (त्मना) आत्म सामर्थ्य से (पत्मन्) सन्मार्ग पर (हिनोत) आगे बढ़ो।

त्मना॑ स॒मत्सु॑ हि॒नोत॑ य॒ज्ञं दधा॑त के॒तुं जना॑य वी॒रम् ॥ ६ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! आप लोग (समत्सु) संग्राम के समय (त्मना) अपने सामर्थ्य से (यज्ञं) पूज्य नायक को (हिनोत) बढ़ाओ। (जनाय) साधारण प्रजाजन के हितार्थ (केतुं) ध्वजा तुल्य सबके आज्ञापक (वीरम्) वीर और विद्योपदेष्टा पुरुष को (दधात) स्थापित करो।

उद॑स्य॒ शुष्मा॑द्भा॒नुर्नार्त॑ बिभ॑र्ति भा॒रं पृ॑थि॒वी न भूम॑ ॥ ७ ॥

भा०—(भानुः न) जैसे सूर्य-बल से कान्ति ऊपर उठती है वैसे (अस्य शुष्मात्) इस नायक के बल से (भानुः) तेजवत् उसके आश्रित प्रजा (उत् आर्त) उन्नत होती है। (पृथिवी न) पृथिवी-तुल्य विदुषी स्त्री भी (भूम भारं) बहुत भारी प्रजाओं का भार (बिभर्त्ति) उठाती है।

ह्वया॑मि दे॒वाँ अया॑तुरग्ने॒ साध॑न्नृ॒तेन॒ धियं॑ दधामि ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! मैं (अयातुः) अहिंसाव्रती होकर (देवान्) विद्या-कामना वाले शिष्यों को (ह्वयामि) बुलाता हूँ। मैं (ऋतेन) सत्य-व्यवहार द्वारा (साधन्) साधना करता हुआ (धियं दधामि) ज्ञान प्रदान करूं और कर्म करूं।

अ॒भि वो॑ दे॒वीं धियं॑ दधिध्वं॒ प्र वो॑ देव॒त्रा वाचं॑ कृणुध्वम् ॥ ९ ॥

भा०—हे जनो ! आप लोग (वः) अपनी (देवीं धियं) दिव्य मति को (अभि दधिध्वं) धारण करो और (वः) अपनी वाणी को भी (देवत्रा वाचम्) विद्वानों में विद्यमान उत्तम वाणी के समान बनाओ।

आ च॑ष्ट आसां॒ पाथो॑ न॒दीनां॒ वरु॑ण उ॒ग्रः स॒हस्र॑चक्षाः ॥१०।२५॥

भा०—(उग्रः) प्रचण्ड (वरुणः) सूर्य जैसे (नदीनां पाथः आ चष्टे) नदियों के जल को खींचता है, वैसे ही (सहस्रचक्षाः) सहस्रों आज्ञा-वचन कहने वाला (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष (उग्रः) बलवान् होकर (नदीनां) समृद्ध (आसां) इन प्रजाओं के (पाथः) पालनकारक राज्य व्यवहार को (आ चष्टे) स्वयं देखता है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

राजा राष्ट्रानां पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्रं विश्वायु ॥ ११ ॥

भा०—वरुण अर्थात् जल जैसे (नदीनां पेशः) नदियों के रूप को बनाता है, वैसे यह (राजा) राजा (राष्ट्रानां) राष्ट्रों और प्रजाओं का (पेशः) समृद्ध रूप बनाता और (अस्मै) उसका (विश्वायु) सर्वगामी, (अनुत्तम्) अबाधित (क्षत्रं) बल होता है ।

अविष्टो अस्मान्विश्वासु विक्ष्वद्युं कृणोत शंसं निनित्सोः ॥१२॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! आप (अस्मान्) हमें (विश्वासुविक्षु) समस्त प्रजाओं में (अविष्ट) रक्षा करो और (शंसं कृणोत) उपदेश करो। (निनित्सोः अद्युं कृणोत) निन्दा वाले को अन्धकार युक्त करो।

व्येत दिद्युद्द्विषामशेवा युयोत विष्वग्रपस्तनूनाम् ।। १३ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! (दिद्युत्) खूब चमकता प्रकाश (वि एतु) विविध दिशाओं में फैले। (द्विषाम् अशेवा) शत्रुओं को नाना दुःख प्राप्त हों। (तनूनाम्) देह धारियों के (रपः) दुःखों को आप (विश्वक्) सब प्रकार (युयोत) पृथक् करो।

अवीन्नो अग्निर्हव्यान्नमोभिः प्रेष्ठो अस्मा अधायि स्तोमः ॥१४॥

भा०—(अग्निः) अग्नि-तुल्य तेजस्वी पुरुष (नमोभिः) अन्नादि पदार्थों तथा शस्त्रों से (नः) हमारी (अवीत्) रक्षा करे। वह (हव्याद) भक्ष्य पदार्थों को खाने वाला, (प्रेष्ठः) सर्व प्रिय हो। (अस्मै) उसके लिये (स्तोमः) स्तुति-योग्य व्यवहार (अधायि) किया जावे।

सजूर्देवेभिरपां नपातं सखायं कृध्वं शिवो नो अस्तु ॥ १५ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (देवेभिः सजूः) पृथिव्यादि तत्वों सहित अग्नि वा सूर्य के समान (अपां नपातं) जलों को न गिरने देने वाले, प्रजाओं का नाश न होने देने वाले पुरुष को अपना (सखायं कृध्वम्) मित्र बनाओ। वह (नः) हमारा (शिवः) कल्याणकारक (अस्तु) हो।

अब्जामुक्थैरहिं गृणीषे बुध्ने नदीनां रजःसु षीदन् ॥ १६ ॥

भा०—जैसे (बुध्ने) अन्तरिक्ष में (अब्जाम्) जलों के उत्पादक (अहिम्) सूर्य को कहा जाता है वही (नदीनां रजःसु सीदन्) नदियों के जलों या कण २ में स्थित है। जैसे (उक्थैः) उत्तम वचनों से (अब्जाम्) आप्त जनों में प्रसिद्ध, (अहिम्) शत्रु-नाशक पुरुष के (बुध्ने) प्रजा के ऊपर आकाशवत् प्रबन्धक पद पर (गृणीषे) प्रस्तुत करूं। वह (नदीनां) प्रजाओं के बीच (रजःसु) वैभवों में (सीदन्) विराजे।

मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धान्मा यज्ञो अस्य स्रिधदृतायोः ॥ १७ ॥

भा०—(बुध्न्यः अहिः) आकाशस्थ मेघ-तुल्य (बुध्न्यः) उदार, विद्वान् पुरुषों द्वारा सञ्चालित तेजस्वी पुरुष (नः) हमें (रिषे) हिंसक के लाभ के लिये (मा धात्) न रखे। (अस्य ऋतायोः) अन्न और धनाभिलाषी राजा का (यज्ञः) दान आदि (मा स्रिधत्) नष्ट न हो।

उत न एषु नृषु श्रवो धुः प्र राये यन्तु शर्धन्तो अर्यः ॥ १८ ॥

भा०—विद्वान् लोग, (नः) हमारे (एषु नृषु) इन नेता पुरुषों में (श्रवः) बल, अन्न आदि (धुः) धारण करें और वे (शर्धन्तः) उत्साह करते हुए (राये) धन प्राप्ति हेतु (अर्यः=अरीन्) शत्रुओं को लक्ष्य कर, उन पर (प्र यन्तु) चढ़ाई करें।

तपन्ति शत्रुं स्वर्ण भूमा महासेनासो अमेभिरेषाम् ॥ १९ ॥

भा०—(एषाम्) इन नायकों के (अमैः) सहायक सैन्य बलों से युक्त होकर (महा-सेनासः) बड़ी सेनाओं के स्वामी लोग (भूमा स्वः न) भुवनों को सूर्य के समान प्रचण्ड होकर (शत्रुं तपन्ति) शत्रु को तपावें।

आ यन्नः पत्नीर्गमन्त्यच्छा त्वष्टा सुपाणिर्दधातु वीरान् ॥२०।२६

भा०—(यत्) जब (पत्नीः) स्त्रियें (नः) हमें (अच्छ आ गमन्ति) भली प्रकार प्राप्त हों तब (त्वष्टा) तेजस्वी राजा (सु-पाणिः) उत्तम व्यवहारज्ञ होकर (वीरान्) वीर पुरुषों तथा हमारे पुत्रों को भी

(दधातु) रक्षा करे। उनको राष्ट्र-रक्षा पर नियुक्त करें। इति षड्विंशो वर्गः ॥

अति॑ नः॒ स्तोम॑ त्वष्टा॑ जुषेत॒ स्याद॒स्मे अ॒रम॑तिर्वसू॒युः ॥ २१ ॥

भा०—(अरमतिः) बुद्धिमान् (वसूयुः) प्रजा और ऐश्वर्यों का स्वामी, (त्वष्टा) राजा (नः) हमारे (स्तोमं) स्तुति-वचन के (प्रति) प्रति (जुषेत) प्रेम करे और वह (अस्मे स्यात्) हमारे हितार्थ प्रीतिमान् हो।

ता नो॑ रास॒न्राति॒षाचो॒ वसू॒न्या रोद॑सी वरुणा॒नी शृ॑णोतु।
वरू॑त्रीभिः सुशर॒णो नो॑ अस्तु त्वष्टा॑ सु॒दत्रो॒ वि द॑धातु रा॒यः ॥२२

भा०—(राति-षाचः) दानयोग्य वृत्ति को लक्ष्य कर धनाढ्य लोग (नः) हमें (ता) वे नाना प्रकार के (वसूनि) ऐश्वर्य (रासन्) दें। (रोदसी) दुष्टों को रुलाने वाली न्यायसभा तथा पुलिस और (वरुणानी) स्वयं वृत राजा की शासनसभा भी (नः आ शृणोतु) हमारी बातें सुने। (त्वष्टा) तेजस्वी पुरुष (वरूत्रीभिः) दुःखवारक नीतियों से (नः) हमारा (सु-शरणः) उत्तम शरण (अस्तु) हो। वह (सु-दत्रः) उत्तम दानशील पुरुष (रायः वि दधातु) नाना ऐश्वर्य दे।

तन्नो॑ रा॒यः पर्व॑ता॒स्तन्न॒ आप॒स्तद्रा॑ति॒षाच॒ ओष॑धीरु॒त द्यौः।
वन॒स्पति॑भिः पृथि॒वी स॒जोषा॑ उ॒भे रोद॑सी॒ परि॑ पासतो नः ॥२३

भा०—(तत् रायः) वे ऐश्वर्य और (पर्वताः) पर्वत, मेघ और पालक साधनों से सम्पन्न जन (नः) हमारी रक्षा करें। (तत् आपः) वे जल, प्राण, (तत् रातिषाचः) वे दान लेने वाले, (ओषधीः उत द्यौः) ओषधियां, सूर्य, (वनस्पतिभिः सजोषाः पृथिवी) वनस्पतियों से युक्त पृथिवी, (उभे रोदसी) आकाश और भूमि, ये (नः परि पासतः उ) हमारी रक्षा करें।

३६ प.

अनु तदुर्वी रोदसी जिहातामनु द्युक्षो वरुण इन्द्रसखा ।
अनु विश्वे मरुतो ये सहासो रायः स्याम धरुणं धियध्यै ॥२४॥

भा०—(तत् उर्वी रोदसी) वे दोनों महान् सेनापति, सेनानायक, सूर्य-भूमि के समान स्त्री पुरुष भी (अनु जिहाताम्) परस्पर अनुकूल होकर प्राप्त हों। (द्यु-क्षाः) प्रकाशों का धारक सूर्यवत् तेजस्वी और (इन्द्र-सखा) ऐश्वर्यवान् का मित्र (वरुणः) श्रेष्ठ राजा (अनु) अनुकूल रहे। (ये सहासः मरुतः) जो शत्रुविजयी, तपस्वी विद्वान् पुरुष हैं वे (विश्वे) सब (अनु) अनुकूल हों। हम लोग (रायः धियध्यै) ऐश्वर्य-धारण के लिये (धरुणं) सुरक्षित पात्रवत् (स्याम) हों।

तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२५॥२७

भा०—(वनिनः) ऐश्वर्यों के स्वामी (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (वरुणः) प्रजा का वृत राजा, (मित्रः) स्नेही, (अग्निः) विद्वान् (आपः) आप्तजन (ओषधीः) ओषधियें ये (नः) हमें (तत्) वह सुख (जुषन्त) प्राप्त करावें, जिससे हम (मरुताम् उपस्थे) विद्वानों के पास (शर्मन् स्याम) सुख में रहें। हे विद्वान् पुरुषो! (यूयं) आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमारी सदा कल्याणकारी उपायों से रक्षा करो। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[३५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ३, ४, ५, ११, १२ त्रिष्टुप् । ६, ८, १०, १५ निचृत्त्रिष्टुप् । ७, ९ विराट्त्रिष्टुप् । १३, १४ भुरिक्पंक्तिः ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥१॥

भा०—(वाजसातौ) ऐश्वर्य प्राप्त होने पर (इन्द्राग्नी) विद्युत् और

अग्नि, राजा और नायक (अवोभिः) रक्षा-साधनों और ज्ञानों से (नः शं भवताम्) हमें शान्तिदायक हों। (रात-हव्या) लेने और देने योग्य अन्नादि को प्राप्त करने वाले (इन्द्रा वरुणा) विद्युत् और जल, सेना-पति और राजा (नः शं) हमें शान्तिदायक हों। (इन्द्रासोमा शम्) इन्द्र आचार्य, सोम शिष्य गण, (शम्) हमें शान्तिदायक हों। वे दोनों ही (सुविताय) सुखमय जीवन के लिये शान्तिदायक हों। (इन्द्रा-पूषणा) विद्युत् और वायु दोनों भी (नः शं) हमें शान्ति-दायक हों।

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंन्धिः शमु सन्तु रायः।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२॥

भा०—(भगः नः शम्) ऐश्वर्य हमें सुखकारी हो। (शंसः नः शम् उ) अनुशासन और उपदेष्टा हमें शान्ति दें। (पुरन्धिः) पुरधारक राजा (नः शम्) हमें शान्तिदायक हो। (रायः शम् उ सन्तु) नाना ऐश्वर्य हमें शान्ति दें। (सु-यमस्य) उत्तम नियन्ता और (सत्यस्य शंसः) सत्य का उपदेष्टा (नः शम्) हमें सुखकर हो। (पुरु-जातः) बहुतों में प्रसिद्ध (अर्यमा) न्यायकारी पुरुष (नः शं अस्तु) हमें शान्ति दे।

शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३॥

भा०—(धाता न शम्) पोषक वर्ग हमें शांति दे। (धर्त्ता नः शम् उ) धारक हमें शान्ति दे। (उरूची) बहुत पदार्थ प्राप्त कराने वाली भूमि, (नः) हमें (स्वधाभिः) अन्नों से (शं भवतु) शान्तिदायक हो। (बृहती रोदसी शं) वृद्धिशील, सूर्य और अन्तरिक्ष (शं) शान्तिदायक हों। (अद्रिः नः शम्) मेघ और पर्वत शान्ति दें। (देवानां) देव, विद्वानों के (सु हवानि) उत्तम उपदेश (नः शं सन्तु) हमें शान्ति-दायक हों।

शं नो॑ अ॒ग्निर्ज्योति॑रनीको अस्तु॒ शं नो॑ मि॒त्रावरु॑णाव॒श्विना॒ शम्।
शं नः॑ सु॒कृतां॑ सुकृ॒तानि॑ सन्तु॒ शं न॑ इषि॒रो अ॒भि वा॑तु॒ वातः॑ ॥४॥

भा०—(ज्योतिः अनीकः अग्निः) तेज का सैन्य तुल्य धारक, आग के समान तेजस्वी सैन्य, वा राजा (नः शम्) हमें सुखकारी हो। (मित्रा-वरुणौ नः शं) एक दूसरे के स्नेही और वरण करने वाले (अश्विना) रथी-सारथी वा इन्द्रियों के स्वामी, स्त्री-पुरुष (नः शं) हमें शान्ति-दायक हों। (सुकृतां) पुण्यात्माओं के (सुकृतानि) पुण्य कर्म (नः शं) हमें शान्ति दें। (इषिरः वातः) सदा गमनशील वायु (नः शं अभि वातु) हमें शान्तिदायक होकर सब ओर जाय।

शं नो॒ द्यावा॑पृथि॒वी पू॒र्वहू॑तौ॒ शम॒न्तरि॑क्षं दृ॒शये॑ नो अस्तु।
शं न॒ ओष॑धीर्व॒निनो॑ भवन्तु॒ शं नो॒ रज॑स॒स्पति॑रस्तु जि॒ष्णुः ॥५॥२८

भा०—(पूर्वहूतौ) पूर्व के विद्वानों के उत्तम कार्य में लगे (द्यावा-पृथिवी) विद्युत् और भूमिवत् स्त्री-पुरुष दोनों (नः शं) हमें शान्ति-दायक हों। (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष (नः) हमें (दृशये) देखने के लिये (शम् अस्तु) शान्तिदायक हो, (वनिनः ओषधीः) वन की ओषधियें (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों। (रजसः पतिः) लोकों का पालक (जिष्णुः) विजयशील पुरुष (नः शम्) हमें शान्तिदायक हो। इत्यष्टाविंशो वर्गः॥

शं न॒ इन्द्रो॒ वसु॑भिर्दे॒वो अ॑स्तु॒ शमा॑दि॒त्येभि॒र्वरु॑णः सु॒शंसः॑।
शं नो॑ रु॒द्रो रु॒द्रेभि॒र्जला॑षः॒ शं न॒स्त्वष्टा॒ ग्नाभि॑रि॒ह शृ॑णोतु ॥६॥

भा०—(वसुभिः) प्राणियों को बसने के स्थान पृथिवी आदि अष्टों सहित (देवः) प्रकाशक (इन्द्रः) सूर्य और राजा, ब्रह्मचारियों सहित आचार्य (नः शं) हमें सुख दे। (आदित्येभिः) वर्ष के मासों सहित (वरुणः) समुद्रादि और आदित्यसम पुरुषों सहित राजा (सु-शंसः) स्तुत्य होकर (शम्) सुखकारी हो। (रुद्रेभिः) प्राणों सहित (रुद्रः)

जीव, दुष्टों के रोदक सैन्यों सहित सेनापति (जलाषः) सन्ताप-नाशक, जलवत् सुख-दाता होकर (नः शम्) हमें शांति दे। (ग्नाभिः त्वष्टा) वाणियों सहित विद्वान् और उत्तम गृहपत्नियों सहित गृहस्थी भी (नः) हमारे (शं) शांतिदायक (शृणोतु) वचन सुनें।

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७॥

भा०—(सोमः) चन्द्र और ओषधि वर्ग (नः शं भवतु) हमें शांतिदायक हों। (ब्रह्म) वेद, बल, अन्न, (नः शं) हमें शांतिदायक हों। (ग्रावाणः) मेघगण, विद्वान् जन (नः शं) हमें शांतिदायक हों। (यज्ञाः शम् उ सन्तु) यज्ञ, देवपूजन, सत्संग हमें शांतिदायक हों। (स्वरूणां मितयः) अर्थप्रकाशक शब्दों के ज्ञान (नः शं भवन्तु) हमें शांतिदायक हों। (प्र-स्वः) उत्पन्न ओषधियां, (नः शं) हमें शांतिदायक हों (वेदिः शम् उ अस्तु) वेदि, भूमि, स्त्री आदि हमें शांतिदायक हों।

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥

भा०—(उरुचक्षाः) बहुत सम्यग्-ज्ञान दर्शनों का कर्ता तेजस्वी (सूर्यः) सूर्यवत् प्रकाशक विद्वान् (नः) हमारे लिये (शं उदेतु) शांति-दायक होकर उदय हो। (चतस्रः प्रदिशः) चारों दिशाएं (नः शं भवन्तु) हमें शांतिदायक हों। (ध्रुवयः पर्वताः) स्थिर पर्वत (नः शं भवन्तु) हमें शांतिदायक हों। (सिन्धवः नः शम्) नदियों के प्रवाह हमें सुखकारी हों और (आपः शम् उ सन्तु) जल हमें सुखकारी हों।

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९॥

भा०—(अदितिः) अखण्ड व्रती ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी और माता-पिता, (व्रतेभिः) सत्कर्मों से (नः शम्) हमें शांतिदायक हों। (स्वर्काः

मरुतः) उत्तम विद्वान् प्राणवत् प्रिय होकर (नः) हमें (शं भवन्तु) शांतिदायक हों। (विष्णुः नः शम्) परमेश्वर हमें शांति दे। (पूषाः नः शम् उ अस्तु) पुष्टिकारक ब्रह्मचर्यादि व्यवहार, पोषक प्रभु भी हमें सुखकारी हो। (भवित्रं नः शम्) भवितव्य भी हमें सुख दे। (वायुः सम् उ अस्तु) वायु हमें शान्तिदायक हो।

शं नो॑ दे॒वः स॑वि॒ता त्राय॑माणः॒ शं नो॑ भवन्तू॒षसो॑ वि॒भातीः॑ ।
शं नः॑ प॒र्जन्यो॑ भवतु प्र॒जाभ्यः॒ शं न॒ः क्षेत्र॑स्य॒ पति॑रस्तु श॒म्भुः ॥१०॥२६

भा०—(त्रायमाणः) रक्षा करता हुआ (सविता) सर्वउत्पादक, (देवः) सुखों का दाता प्रभु (नः शं) हमें शांति दे। (विभातीः) विशेष चमकती हुई (उषसः) प्रभात वेलाएं (नः शं भवन्तु) हमें शांतिदायक हों। (पर्जन्यः) शत्रु पराजय में समर्थ राजा और प्रजाओं को तृप्त करने वाला पुरुष व मेघ (नः) हमारी (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (शं भवतु) शांति-दाता हो। (क्षेत्रस्य पतिः) निवास-योग्य क्षेत्र, देश और देह-पालक राजा वा प्रभु, (शंभुः) सदा सुख का दाता, (नः शम्) हमें शांति दे। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

शं नो॑ दे॒वा वि॒श्वदे॑वा भवन्तु॒ शं सर॑स्वती स॒ह धी॒भिर॑स्तु ।
शम॑भि॒षाचः॒ शमु॑ राति॒षाचः॒ शं नो॑ दि॒व्याः पार्थि॑वाः॒ शं नो॒ अप्याः॑ ॥ ११ ॥

भा०—(विश्वदेवाः) समस्त विद्वान् (देवाः) ज्ञान के दाता होकर (नः शं भवन्तु) हमें शांतिदायक हों। (सरस्वती) सुशिक्षायुक्त वाणी (धीभिः) प्रज्ञाओं (सह) सहित (शं अस्तु) शांतिदायक हो। (अभिषाचः शम्) आभ्यन्तर से सम्बन्ध रखने वाले हमें शांति दें। (रातिषाचः सम् उ) बाह्य पदार्थों के लेने से सम्बन्ध रखने वाले हमें शांति दें। (दिव्याः) दिव्य (पार्थिवाः) और पृथिवीस्थ पदार्थ (नः शम्) हमें सुख दें। (अप्याः) जल में उत्पन्न, मोती आदि (नः शं) हमें सुख दें।

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१२॥

भा०—(सत्यस्य पतयः नः शम् भवन्तु) सत्य-व्यवहार के पालक हमें शांति दें । (अर्वन्तः) अश्व (नः शं) हमें सुख दें । (गावः शम् उ सन्तु) गौएं हमें शांतिदायक हों । (सुकृतः) धर्मात्मा (सु-हस्ताः) शिल्पादि में सिद्धहस्त (ऋभवः) शिल्पी और ज्ञानी पुरुष (नः शं) हमें सुख दें । (हवेषु) यज्ञों और संग्रामों के समय (पितरः) माता-पिता, राजादि (नः शं भवन्तु) हमें शांतिदायक हों ।

शं नो अज एकपाद्देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः ॥ १३ ॥

भा०—(एक-पाद्) सब जगत् को एक पाद में धारण करने वाला, (अजः) उत्पन्न न होने वाला, (देवः) सुखदाता प्रभु (नः शम् अस्तु) हमें शांति दे । (अहिः बुध्न्यः नः शम्) अन्तरिक्ष में उत्पन्न मेघ हमें शांति दे । (समुद्रः शम्) सागर शांति दे । (अपां) जलों में (नपात्) चरण-रहित नौका (पेरुः) पार उतारने वाला होकर (नः शं) हमें शांति दे । (देव-गोपाः) शुभ गुणों का रक्षक (पृश्निः) सुखवर्षक ज्ञानी (नः) हमें शांति दे ।

आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तेदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥१४॥

भा०—(आदित्याः) ४८ वर्ष के ब्रह्मचारी (रुद्राः) ३६ वर्ष के ब्रह्मचर्यवान् और (वसवः) २४ वर्ष के ब्रह्मचारी (इदं) इस (नवीयः) उत्तम (क्रियमाणं ब्रह्म) उपदेश किये जाते ज्ञान को (जुषन्त) स्वीकार करें । (दिव्याः) गुणों में प्रसिद्ध, (पार्थिवासः) पृथिवी में प्रसिद्ध (गो-जाताः) वाणी से सुशिक्षित, विद्वान् (उत) और ये जो (यज्ञियासः) सत्संगादि-योग्य पुरुष हैं वे (नः शृण्वन्तु) हमारे वचन सुनें ।

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः। ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१५॥३०॥३॥

भा०—(ये) जो (यज्ञियानां देवानां) यज्ञकर्ता, उत्तम विद्वानों में भी (यज्ञियाः) दान, सत्कार-योग्य और (मनोः) मननशील विद्वान् का (यजत्राः) सत्संग करने वाले (अमृताः) दीर्घायु, (ऋतज्ञाः) सत्य के जानने वाले हैं (ते) वे (नः अद्य) आज (उरु-गायम्) बहुत से उपदिष्ट ज्ञान का (रासन्ताम्) उपदेश करें। हे विद्वान् जनो! (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) तुम लोग हमारी सदा कल्याणकारी उपायों से रक्षा करो। इति त्रिंशो वर्गः। इति तृतीयोऽध्यायः॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

[३६]

वसिष्ठ ऋषिः॥ विश्वेदेवा देवता॥ छन्दः—२ त्रिष्टुप्। ३, ४, ६ निचृत्त्रिष्टुप्। ८, ९ विराट् त्रिष्टुप्। ५ पंक्तिः। १, ७ भुरिक् पंक्तिः॥

प्र ब्रह्मैतु सदनादृतस्य वि रश्मिभिः ससृजे सूर्यो गाः।
वि सानुना पृथिवी सस्र उर्वी पृथु प्रतीकमध्येधे अग्निः॥ १॥

भा०—(ऋतस्य सदनात्) ज्ञान के स्थान, गुरुगृह से हमें (ब्रह्म प्र एतु) ज्ञान प्राप्त हो। (सूर्यः) सूर्य अपनी (रश्मिभिः) रश्मियों से (गाः) भूमियों को (वि ससृजे) विशेष गुणयुक्त करे। (पृथिवी) पृथ्वी (उर्वी) विशाल होकर भी (सानुना) उन्नत प्रदेश से (वि सस्रे) विशेष जानी जाती है। जैसे (अग्निः) अग्नि (पृथु) विस्तृत (प्रतीकं) प्रतीति कराने वाला प्रकाश (अधि एधे) चमकाता है, वैसे ही विद्वान् वाणियां प्रकट करे।

इमां वां मित्रावरुणा सुवृक्तिमिषं न कृण्वे असुरा नवीयः।
इनो वामन्यः पदवीरदब्धो जनं च मित्रो यतति ब्रुवाणः॥ २॥

भा०—हे (मित्रा-वरुणा) स्नेह-युक्त और दुःखवारक, शरीर में प्राण, उदान और सभा, सेनाध्यक्ष जनो! हे (असुरा) बलवान् जनो! मैं (वां) आप दोनों की (नवीयः) नवीन, (सुवृक्तिम्) दुःख-निवारक (इषम्) इच्छा वा अन्न को प्राप्त करूं। (वाम्) आप दोनों में से (अन्यः) एक (इनः) स्वामी (पदवीः) पद को प्राप्त (अदब्धः) अविनाशी है, (मित्रः) सर्वस्नेही (ब्रुवाणः) उपदेश करता हुआ (जनं च यतति) प्रत्येक जन को उद्यम कराता है।

आ वातस्य ध्रजतो रन्त इत्या अपीपयन्त धेनवो न सूदाः।
महो दिवः सदने जायमानोऽचिक्रदद् वृषभः सस्मिन्नूधन्॥३॥

भा०—(वृषभः) बलवान् पुरुष (सस्मिन् ऊधन्) अन्तरिक्ष में मेघ-तुल्य, उषाकाल में सूर्य-तुल्य तेजस्वी होकर (जायमानः) प्रसिद्ध होकर (महः दिवः) बड़े भारी प्रकाश, ज्ञान या लोक-व्यवहार के (सदने) स्थान, राजसभा और गुरु-गृह में (अचिक्रदत्) प्राप्त हो। (वातस्य ध्रजतः इत्याः सूदाः न रन्ते) वेग से जाते हुए वायु की गतियों में जैसे वर्षाशील मेघ विहरते हैं वैसे (वातस्य) वायु-तुल्य बलवान् (ध्रजतः) वेग से जाते हुए सेनापति के (इत्याः) गमनों को प्राप्त (सूदाः) उत्तम करप्रद प्रजाएं (धेनवः) गौओं के समान (रन्ते) सुखी होती हैं, वे (अपीपयन्त) आप बढ़तीं और राजा को भी बढ़ाती हैं।

गिरा य एता युनजद्धरी त इन्द्र प्रिया सुरथा शूर धायू।
प्र यो मन्युं रिरिक्षतो मिनात्या सुक्रतुमर्यमणं ववृत्याम्॥४॥

भा०—हे (शूर) वीर! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यः) जो (ते) तेरे (एता) इन दोनों (धायू) धारक (सु-रथा) उत्तम रथ वाले (प्रिया)

प्रिय (हरी) अश्वों के समान बलवान् मुख्य नायक वा स्त्री पुरुषों को (गिरा) वेद-वाणी से (युनजत्) सन्मार्ग में प्रवृत्त करता है और (यः) जो (रिरिक्षतः) हिंसक जनों को (प्र मिनाति) दण्डित करता है उस (मन्युम्) मननशील (सु-क्रतुम्) उत्तम ज्ञानवान् (अर्यमणं) न्याय-कारी पुरुष को मैं (आ ववृत्याम्) प्राप्त करूं।

यजन्ते अस्य सख्यं वयश्च नमस्विनः स्व ऋतस्य धामन् ।
वि पृक्षो बाबधे नृभिः स्तवान इदं नमो रुद्राय प्रेष्ठम् ॥ ५ ॥१॥

भा०—(ऋतस्य धामन्) न्याय-भवन में (स्वे) उसके जन (नमस्विनः) नमस्कार-युक्त होकर (अस्य) इस रुद्र के (सख्यं) मित्रभाव और (वयः च) जीवन-वृत्ति को (यजन्ते) प्राप्त करते हैं; वह (नृभिः स्तवानः) मनुष्यों से स्तुत हुआ (पृक्षः) अन्नादि की (वि बाबधे) विशेष व्यवस्था करता है। (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने वाले उसको (इदं) इस प्रकार (प्रेष्ठं) अतिप्रिय (नमः) नमस्कार हो। इति प्रथमो वर्गः ॥

आ यत्साकं यशसो वावशानाः सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता ।
याः सुष्वयन्त सुदुघाः सुधारा अभि स्वेन पयसा पीप्यानाः ॥६॥

भा०—जैसे (स्वेन पयसा पीप्यानाः) अपने जल से पूर्ण होकर (सु-धाराः) उत्तम जलधाराएं (सु-स्वयन्त) खूब वेग से जाती हैं और उनमें (सरस्वती) वेग से चलने वाली (सप्तथी) आगे बढ़ने वाली (सिन्धु-माता) बहते जलों को अपने भीतर लेने वाली माता के समान होती है। वे सब (साकं वावशानाः) एक साथ गर्जती हुई जाती हैं। वैसे ही (सरस्वती) वाणी, (सप्तथी) छः मन-सहित ज्ञानेन्द्रियों के बीच सातवीं (सिन्धुमाता) प्राण-स्रोतों की माता के समान है और शेष सब भी (सु-दुघाः) उत्तम ज्ञान से आत्मा को पूर्ण करने वाली (सु-धाराः) उत्तम वाणी से युक्त होकर (स्वेन पयसा) अपने ज्ञान से

आत्मा को (पीप्यानाः) पुष्ट करती हुईं (सुस्वयन्त) सुखपूर्वक कार्य करती हैं वे (यशसः) बलयुक्त आत्मा के अधीन (साकं) एक साथ (वावशानाः) विषयों को चाहती हुईं (आ) प्राप्त होती हैं।

उत त्ये नो मुरुतो मन्दसाना धियं तोकं च वाजिनोऽवन्तु ।
मा नः परि ख्यदक्षरा चरन्त्यवीवृधन्युज्यं ते रयिं नः ॥ ७ ॥

भा०—(उत) और (त्ये मरुतः) वे विद्वान् (वाजिनः) ज्ञान-सम्पन्न (मन्दसानाः) प्रसन्न हुए (नः) हमारे (धियं तोकं च) बुद्धियों, कर्मों, सन्तानों की (अवन्तु) रक्षा करें। (ते) वे (नः) हमारे (युज्यं रयिं अवीवृधन्) नियुक्त ऐश्वर्य को बढ़ावें और (अक्षरा) अविनाशी वाणी (चरन्ती) प्राप्त होती हुई (मा नः) हमें न (परि ख्यत्) त्यागे।

प्र वो महीमरमतिं कृणुध्वं प्र पूषणं विदथ्यं न वीरम् ।
भगं धियोऽवितारं नो अस्याः सातौ वाजं रातिषाचं पुरन्धिम् ॥ ८ ॥

भा०—हे मनुष्यो! आप लोग (वः) अपनी (महीम्) वाणी को (अरमतिं) अति अधिक बुद्धि को (प्र कृणुध्वम्) खूब बढ़ाओ और (विदथ्यं) संग्राम में कुशल (वीरं न) वीर पुरुष-तुल्य (पूषणं) पोषक पुरुष को (प्र कृणुध्वम्) सत्कार से बढ़ाओ। (भगं) ऐश्वर्यवान् और (धियः) ज्ञान, कर्म के (अवितारं) रक्षक पुरुष की (प्र कृणुध्वम्) प्रतिष्ठा करो। (अस्याः सातौ) इस वाणी को प्राप्त करने के लिये (वाजम्) ज्ञान, (रातिषाचं) परस्पर दान-प्रतिदान से सम्बद्ध (पुरन्धिम्) ज्ञान-धारक विद्वान् का (प्र कृणुध्वम्) आदर करो।

अच्छायं वो मरुतः श्लोकं एत्वच्छा विष्णुं निषिक्तपामवोभिः ।
उत प्रजायै गृणते वयो धुर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥ २ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् और वीर पुरुषो! (अयं) यह (नः) आप लोगों की (श्लोकः) शिक्षा और वाणी (अवोभिः) रक्षा-साधनों, सैन्यादि से (निषिक्त-पाम्) अभिषिक्त माण्डलिकों तथा निषिक्त गर्भों

के पालक, दयालु (विष्णुम्) सर्वव्यापक को लक्ष्य करके (अच्छ एतु) प्राप्त हो, यह स्तुति उनको भी (अच्छ-एतु) प्राप्त हो जो (प्रजायै गृणते) प्रजा को उपदेश दें और (वयः धुः) दीर्घ जीवन धारण करते हैं। हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (स्वस्तिभिः) कल्याणकारी साधनों से (नः सदा पात) हमारी सदा रक्षा करें। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[३७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप् । २, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ८ विराट्त्रिष्टुप् । ४ निचृत्पंक्तिः ॥ ६ स्वराट् पंक्ति ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ वो वाहिष्ठो वहतु स्तवध्यै रथो वाजा ऋभुक्षणो अमृक्तः ।
अभि त्रिपृष्ठैः सवनेषु सोमैर्मदे सुशिप्रा महभिः पृणध्वम् ॥१॥

भा०—हे (वाजाः) बलशाली जनो ! हे (ऋभुक्षणः) तेज से चमकने वाले सूर्यवत् तेजस्वी पुरुषो ! (वः) तुम लोगों को (रथः) रमणीय, रसस्वरूप (अमृक्तः) अविनाशी (वाहिष्ठः) रथ-समान सबको उद्देश्य तक उठाकर पहुँचा देने में सर्वश्रेष्ठ (आ वहतु) सब प्रकार से रथ के समान धारण करे; वही (स्तवध्यै) स्तुति-योग्य है। हे (सु-शिप्राः) सौम्य-मुख जनो ! (सवनेषु) यज्ञादि कर्मों के समय आप लोग (महभिः) महत्व-युक्त (त्रिपृष्ठैः सोमैः) तीन २ रूपों वाले ऐश्वर्यों, अन्नों और ज्ञानों से (मदे) आनन्द में (अभि पृणध्वम्) सबको पूर्ण करो।

यूयं ह रत्नं मघवत्सु धत्थ स्वर्दृश ऋभुक्षणो अमृक्तम् ।
सं यज्ञेषु स्वधावन्तः पिबध्वं वि नो राधांसि मतिभिर्दयध्वम् ॥२॥

भा०—हे (स्वर्दृशः) आनन्द का साक्षात् करने वाले (ऋभुक्षणः) सत्य-प्रकाश से चमकने वाले विद्वानो ! (यूयं) आप (मघवत्सु) ऐश्वर्यवान् पुरुषों में (अमृक्तं) अविनाशी (रत्नम्) सुन्दर विद्यामय धन (ह)

अवश्य (धत्थ) धारण कराया करो। आप (स्वधावन्तः) उत्तम अन्न के स्वामी होकर (यज्ञेषु) यज्ञों में (सं पिबध्वम्) मिलकर उत्तम रस का पान करो और (मतिभिः) ज्ञानों से (नः) हमारे (राधांसि) धनों को (वि दयध्वम्) विशेष रूप से रक्षित करो।

उवोचिथ हि मघवन्देष्णं महो अर्भस्य वसुनो विभागे।
उभा ते पूर्णा वसुना गभस्ती न सूनृता नि यमते वसव्या ॥३॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (महः) बहुत और (अर्भस्य) थोड़े से भी (वसुनः) धन के (विभागे) विभाग करने में, तू (देष्णं) देने या उपदेश करने योग्य ज्ञान का (उवोचिथ हि) अवश्य उपदेश कर। (वसुना पूर्णा ते गभस्ती) धन से भरे-पूरे तेरे बाहुओं को (वसव्या) धन के उचित विभाग का उपदेश करने वाली (सूनृता) उत्तम वाणी (न नियमते) दान करने से नहीं रोकती।

त्वमिन्द्र स्वयशा ऋभुक्षा वाजो न साधुरस्तमेष्यृक्वा।
वयं नु ते दाश्वांसः स्याम ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो वसिष्ठाः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! प्रभो! (त्वम्) तू (ऋभुक्षाः) सत्य-ज्ञान से दीप्तियुक्त पुरुषों को राष्ट्र में बसाने, स्वयं न्याय से धन का भोग करने वाला (वाजः न) ऐश्वर्यवान् के समान (साधुः) सत्कर्मनिष्ठ, (ऋक्वा) वेद-मन्त्रों का ज्ञाता होकर (अस्तम् एषि) गृह को प्राप्त होता है। हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन्! (वयम्) हम (नु) शीघ्र ही (ब्रह्म दाश्वांसः) ज्ञान, अन्न, धन के दाता जन (ते) तेरे लिये (कृण्वन्तः) सत्कर्मों का अनुष्ठान करते हुए (वसिष्ठाः) ब्रह्मचारी (स्याम) हों।

सनितासि प्रवतो दाशुषे चिद्याभिर्विवेषो हर्यश्व धीभिः।
ववन्मा नु ते युज्याभिरूती कदा न इन्द्र राय आ दशस्येः ॥५॥२

भा०—हे (हर्यश्व) वेगवान् अश्वों वाले! एवं, हे उत्तम मनुष्यों के स्वामिन्! (येभिः) जिन (धीभिः) ज्ञानयुक्त बुद्धियों, कर्मों से

(विवेष:) सर्वत्र व्याप्त रहता है तू उनसे ही (दाशुषे) दानशील पुरुष को (प्रवत:) उत्तम गुण-युक्त (राय:) ऐश्वर्य (सनितासि) देने हारा है। (ते) तेरी (युज्याभि:) नियुक्त, (ऊती) सेनाओं तथा रक्षण-नीति से प्रवाहित होकर (ते नु वयन्म) तेरी याचना करते हैं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (न:) हमें (राय:) वे ऐश्वर्य (कदा दशस्ये:) कब देगा? इति तृतीयो वर्ग: ॥

वासयसीव वेधसस्त्वं नः कदा न इन्द्र वचसो बुबोधः।
अस्तं तात्या धिया रयिं सुवीरं पृक्षो नो अर्वा न्युहीत वाजी ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (न:) हम (वेधस:) विद्वानों को (वासयसि इव) राष्ट्र में बसा-सा रहा है। तू (न:) हमारे (वचस:) वचनों को (कदा) कब (बुबोध:) समझेगा? (वाजी अर्वा) वेगवान् अश्व-तुल्य बलवान् पुरुष (तात्या धिया) व्यापक बुद्धि और त्याग-युक्त कर्म से प्रेरित होकर (न: अस्तं) हमारे घर में (सुवीरं रयिं) उत्तम पुत्रों से युक्त धन और (पृक्ष:) अन्न (नि उहीत) प्राप्त करावे।

अभि यं देवी निर्ऋतिश्चिदीशे नक्षन्त इन्द्रं शरदः सुपृक्षः।
उप त्रिबन्धुर्जरदष्टिमेत्यस्ववेशं यं कृणवन्त मर्ताः ॥ ७ ॥

भा०—(देवी) उत्तम स्त्री (चित्) जैसे (निर्ऋति:) नित्य रमण करने वाली, प्रसन्न रहकर (ईशे) स्वामिनी हो जाती है वैसे (देवी) दिव्य गुण-युक्त (निर्ऋति:) भूमि (यम् अभि) जिसको प्राप्त कर (ईशे) ऐश्वर्यवती हो जाती है (यम्) जिस (इन्द्रम्) ऐश्वर्ययुक्त को (शरद: सुपृक्ष:) उत्तम अन्नादि युक्त जीवन के वर्ष (नक्षन्त:) प्राप्त होते हैं और (मर्त्ता:) मनुष्य (यं) जिसको (अस्ववेशं) अपने गृहादि से रहित, परिव्राजक (कृण्वन्त) करते हैं वह (त्रिबन्धु:) तीनों आश्रमों का बन्धु, मित्र होकर (जरद्-अष्टिम्) वृद्धावस्था को (उपेति) प्राप्त होता है।

आ नो॒ राधां॑सि सवितः स्त॒वध्या॒ आ रायो॑ यन्तु॒ पर्व॑तस्य रा॒तौ।
सदा॑ नो दि॒व्यः पा॒युः सि॑षक्तु यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒: सदा॑ नः॥८॥४॥

भा०—हे (सवितः) सबके उत्पादक ईश्वर ! (नः) हमें (स्तवध्यै) स्तुति करने के लिये (राधांसि आ यन्तु) धन प्राप्त हों और (पर्वतस्य) मेघवत् दानशील पुरुष के (रायः) ऐश्वर्य (रातौ) दान के निमित्त (नः आयन्तु) हमें प्राप्त हों। (दिव्यः) शुद्ध, (पायुः) रक्षक (नः) हमें (सिषक्तु) सुखों से युक्त करे। हे विद्वान् जनो! (यूयम्) आप लोग (नः) हमारी (सदा) सदा (स्वस्तिभिः पात) कल्याणकारी साधनों से रक्षा करो। इति चतुर्थो वर्गः॥

[३८]

वसिष्ठ ऋषिः॥ १—५, ६, १ सविता। ६, २ सविता भगो वा। ७, ८ वाजिनो देवताः॥ छन्दः—१, ३, ८ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ विराट् त्रिष्टुप्। २,४,६ स्वराट् पंक्तिः। ७ भुरिक् पंक्तिः। इत्यष्टर्चं सूक्तम्॥

उदु॒ ष्य दे॒वः स॑वि॒ता य॑याम हिर॒ण्ययी॑म॒मतिं॒ याम॑शिश्रेत्।
नू॒नं भगो॒ हव्यो॒ मानु॑षेभि॒र्वि यो रत्ना॑ पु॒रू व॑सु॒र्दधा॑ति॥१॥

भा०—(स्यः देवः सवितः) वह सुखों का दाता, जगदुत्पादक परमेश्वर (याम्) जिस (हिरण्ययीम्) हितकारी और रमणीय, (अमतिम्) रूपयुक्त लक्ष्मी को (अशिश्रेत) धारण करता है उसको हम (उत् ययाम) उद्यम करके प्राप्त करें। (यः) जो (वसुः) २४ वर्ष का ब्रह्मचारी होकर (पुरु रत्ना दधाति) बहुत से उत्तम गुणों और ज्ञानों को धारण करता है (नूनं) निश्चय से वही (हव्यः) स्तुति-योग्य और (भगः) ऐश्वर्यवान् है।

उदु॑ तिष्ठ सवितः श्रु॒ध्य१॒॑स्य हिर॑ण्यपाणे॒ प्रभृ॑तावृ॒तस्य॑।
व्यु१॒॑र्वीं पृ॒थ्वीम॒मतिं॑ सृजा॒न आ नृभ्यो॑ मर्त॒भोज॑नं सुवा॒नः॥२॥

भा०—हे (सवितः) ऐश्वर्य के स्वामिन्! तू (उद् तिष्ठ) सबसे ऊपर के पद पर स्थित हो। तू (अस्य) इस प्रजा के दुःखों को (श्रुधि) सुन। हे (हिरण्यपाणे) हित, रमणीय व्यवहार वाले! तू (ऋतस्य) सत्य ज्ञान और अन्न जीवनादि को (प्र-भृतौ) उत्तम रीति से धारण करने के लिए (उर्वीम्) विशाल, (अमतिम्) सुन्दर (पृथ्वीम्) भूमि को (वि सृजानः) रचता हुआ और (मर्त भोजनं) मरणशील प्राणियों के लिये भोजन और रक्षा-साधन को (आसुवानः) सब ओर पैदा करता हुआ स्थित है।

अपि ष्टुतः सविता देवो अस्तु यमा चिद्विश्वे वसवो गृणन्ति।
स नः स्तोमान्नमस्य१श्चनो धाद्विश्वेभिः पातु पायुभिर्नि सूरीन् ॥३

भा०—(यम्) जिसको (विश्वे वसवः) सब बसने योग्य पृथ्वी आदि लोक और प्राणी (आ गृणन्ति) आदर से स्तुति करते हैं वह (देवः) सुख-दाता और (सविता) उत्पादक (अपि-स्तुतः अस्तु) स्तुति योग्य है। (सः) वह (नमस्यः) नमस्कार करने योग्य (नः) हमें (स्तोमान्) स्तुति-योग्य वेद-मन्त्रों और (चनः) अन्न का भी (आधात्) उपदेश करता है, देता है। वह (विश्वेभिः पायुभिः) समस्त पालन साधनों से (सूरीन्) पुरुषों की (नि पातु) रक्षा करे।

अभि यं देव्यदितिर्गृणाति सवं देवस्य सवितुर्जुषाणा।
अभि सम्राजो वरुणो गृणन्त्यभि मित्रासो अर्यमा सजोषाः ॥४॥

भा०—(देवस्य) सर्व प्रकाशक, (सवितुः) जगदुत्पादक प्रभु के (सवं) ऐश्वर्य को (जुषाणा) सेवन करती हुई (देवी) अन्नादि देने वाली (अदितिः) पृथिवी और प्रकृति, पत्नी के समान (यम् अभि गृणाति) जिसका गुणानुवाद करती है और (यम् अभि सम्राजः वरुणः) जिसकी स्तुति सम्राट् राजे और (मित्रासः) मित्रगण तथा (सजोषाः अर्यमा) न्यायकारी न्यायाधीश ये प्रीतियुक्त होकर करते हैं, हे पुरुषो! (सः

नः वनः धात्) वह हमें अन्न दे और (पायुभिः नि पातु) रक्षा-साधनों से रक्षा करे ।

अभि ये मिथो वनुषः सपन्ते रातिं दिवो रातिषाचः पृथिव्याः ।
अहिर्बुध्न्य उत नः शृणोतु वरूत्र्येकधेनुभिर्नि पातु ॥ ५ ॥

भा०—(ये) जो हम लोग (मिथः) मिलकर (वनुषः) ज्ञानैश्वर्य-दाता (दिवः) प्रकाशस्वरूप (पृथिव्याः) भूमि-तुल्य विशाल (राति-षाचः) सुखदाता प्रभु के (रातिम्) दान को (सपन्ते) प्राप्त करते हैं वे (उत) और (बुध्न्यः अहिः) आकाश में उत्पन्न मेघ-तुल्य उदार प्रभु (नः शृणोतु) हमारी विनय सुने और वह (वरूत्री) श्रेष्ठ माता के समान (एक-धेनुभिः) एक वाणी से बद्ध सहायकों द्वारा (नः नि पातु) हमारी रक्षा करे ।

अनु तन्नो जास्पतिर्मंसीष्ट रत्नं देवस्य सवितुरियानः ।
भगमुग्रोऽवसे जोहवीति भगमनुग्रो अध याति रत्नम् ॥ ६ ॥

भा०—(देवस्य) सर्वैश्वर्य-दाता (सवितुः) शासक, जगदुत्पादक परमेश्वर के (रत्नम्) रमणीय, (भगम्) ऐश्वर्य को (इयानः) प्राप्त करता हुआ (उग्रः) बलवान् (जास्पतिः) प्रजा-पालक (तत्) वह (नः अनु मंसीष्ट) हमें शक्ति दे । (अध) इस प्रकार (अनुग्रः) निर्बल पुरुष भी (अवसे) अपनी रक्षार्थ जिस (रत्नं) उत्तम (भगं) ऐश्वर्य की (जोहवीति) याचना करता है वह भी उसे (याति) पा लेता है ।

शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षांसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥ ७ ॥

भा०—(देवताता) विद्वानों और विजयेच्छुक वीरों से करने योग्य (हवेषु) यज्ञों और युद्धों में (वाजिनः) ज्ञानवान् और ऐश्वर्यवान् (मितद्रवः) परिमित गति से आगे बढ़ने वाले (स्वर्काः) उत्तम अन्न

और तेज से युक्त पुरुष (नः शं भवन्तु) हमें सुखदाता हों। वे (अहिं) सर्प के समान कुटिल (वृकं) चोर और (रक्षांसि) दुष्ट पुरुषों को भी (जम्भयन्तः) मारते और दबाते हुए (सनेमि) सदा (अस्मत्) हम से (अमीवाः) रोगों और शत्रुओं को (युयवन्) दूर करें।

वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥८॥५॥

भा०—हे (वाजिनः विप्राः) बलवान्, ज्ञानवान् विद्या-पूर्ण जनो ! (अमृताः) दीर्घायु, ब्रह्मज्ञो ! हे (ऋतज्ञाः) वेद के ज्ञाता जनो ! आप (वाजे-वाजे) प्रत्येक संग्राम में (नः अवत) हमारी रक्षा करो। (नः धनेषु) हमारे धनों के आश्रय पर (अस्य मध्वः पिबत) इस मधुर सुख और अन्न का उपभोग करो। (मादयध्वं) प्रसन्न रहो और (तृप्ताः) तृप्त होकर (देव-यानैः) विद्वानों से जाने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (यात) जाया करो। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[३९]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप्। ३ स्वराट्त्रिष्टुप्। ४, ६ विराट्त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेत्प्रतीची जूर्णिर्देवतातिमेति।
भेजाते अद्री रथ्येव पन्थामृतं होता न इषितो यजाति ॥ १ ॥

भा०—(ऊर्ध्वः) उदात्त मार्ग से जाने वाला (अग्निः) अग्नि-तुल्य तेजस्वी (वस्वः) अधीन बसाने वाले आचार्य वा प्रभु की (सुमतिम्) शुभ मति का (अश्रेत्) सेवन करे। (प्रतीची) प्रत्यक्ष-प्राप्त (जूर्णिः) वृद्धावस्था (देवतातिम्) मनुष्यों के हितकारी कार्य में (एति) लगे। (अद्री) आनन्दित स्त्री-पुरुष (रथ्या इव) रथ में जुड़े अश्वों के समान (ऋतम्) सन्मार्ग का (भेजाते) सेवन करें। (इषितः) इच्छावान् पुरुष (होता न) दाता के तुल्य (यजाति) दान, सत्संग करे।

प्र वांवृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव वीरिट इयाते ।
विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥ २ ॥

भा०—(एषाम्) इन प्रजाओं के बीच (सु-प्रयाः) उत्तम अन्नादि-सम्पन्न, तृप्त करने वाला (बर्हिः) उनको बढ़ाने वाला पुरुष ही उनको (प्र वावृजे) उत्तम मार्ग से चलावे । (एषाम्) इनमें स्त्री-पुरुष दोनों (वीरिटे) अन्तरिक्ष में सूर्य, चन्द्र के समान (विश्पती इव) प्रजा-पालक राजा-रानी के तुल्य (इयाते) व्यवहार करें । (अक्तोः उषसः पूर्वहूतौ) रात्रि और दिन के पूर्वागमन-काल में (वायुः) वायु-तुल्य प्राण-प्रिय और (पूषा) पृथ्वी-तुल्य पोषक स्त्री-पुरुष (नियुत्वान्) नियुक्त भृत्यादि के स्वामी होकर (विशाम् स्वस्तये) प्रजाओं के कल्याणार्थ कार्य करें ।

ज्मया अत्र वसवो रन्त देवा उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः ।
अर्वाक् पथ उरुज्रयः कृणुध्वं श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य ॥ ३

भा०—हे (वसवः) राष्ट्रवासी जनो ! (अत्र) इस राष्ट्र में आप लोग (ज्मयाः) भूमि के मध्य (रमन्त) प्रसन्न रहो । हे (शुभ्राः) सुशो-भित (देवाः) स्त्री-पुरुषो ! आप (उरौ) विशाल (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में वायु-तुल्य (मर्जयन्त) व्यवहारों को शुद्ध करो । हे (उरु-ज्रयः) बड़े २ मार्गों पर चलने हारे ! आप (अर्वाक्) हमारी ओर (पथः) गन्तव्य (मार्ग कृणुध्वं) मार्ग बनावें । (जग्मुषः) जाने वाले आप लोगों के प्रति (नः) हमारे (अस्य दूतस्य) इस दूत के वचनों को (श्रोत) सुनो ।

ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमाः सधस्थं विश्वे अभि सन्ति देवाः ।
ताँ अध्वर उशतो यक्ष्यग्ने श्रुष्टी भगं नासत्या पुरंधिम् ॥ ४ ॥

भा०—(ते) वे (ऊमाः) रक्षक (देवाः) विद्वान् (विश्वे) समस्त (यज्ञियासः) यज्ञकर्ता (यज्ञेषु) यज्ञों में (हि) अवश्य (सधस्थं अभि

सन्ति) साथ बैठने योग्य सभा-स्थान में प्राप्त हों। हे (अग्ने) तेजस्विन्! (तान् उशतः) उन चाहने वाले पुरुषों और (भगं) ऐश्वर्यवान्, (नासत्या) कभी असत्य न करने वाले पुरुषों और (पुरन्धिम्) सुखों के धारक, वा पुर-रक्षक को (श्रुष्टी) शीघ्र ही (यक्षि) सत्कार कर।

आग्ने गिरो दिव आ पृथिव्या मित्रं वह वरुणमिन्द्रमग्निम्।
आर्यमणमदितिं विष्णुमेषां सरस्वती मरुतो मादयन्ताम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! (दिवः) विद्युत्, सूर्य आदि और (पृथिव्याः) पृथिवी के सम्बन्ध की (गिरः) ज्ञान-वाणियों को (आ वह) धारण कर। तू (मित्रं) मित्र, प्राण वायु (वरुणं) उदान वायु (इन्द्रं) आत्मा, (अग्निम्) जाठर अग्नि, (अर्यमणम्) स्वामिवत् नियन्ता मन और (अदितिं) अविनाशी (विष्णुम्) परमेश्वर को (आ वह) धारण कर। (एषां सरस्वती) इन सबके सम्बन्ध की वेदवाणी से हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो! आप (मादयन्ताम्) प्रसन्न होवो, अन्यों को प्रसन्न करो।

ररे हव्यं मतिभिर्यज्ञियानां नक्षत्कामं मर्त्यानामसिन्वन्।
धाता रयिमविदस्यं सदासां सक्षीमहि युज्येभिर्नु देवैः ॥ ६ ॥

भा०—मैं (यज्ञियानाम्) सत्कारोचित जनों के योग्य (हव्यं) अन्नादि पदार्थों को (मतिभिः) बुद्धियों और ज्ञानी पुरुषों से प्रेरित होकर (ररे) दिया करूं। (यज्ञियानां मर्त्यानाम्) आदर-योग्य मनुष्यों की भी (कामं) अभिलाषा को (नक्षत्) प्राप्त होओ। जो विद्वान् (असिन्वन्) हमें प्रेमादि से बांधते हैं उन (युज्येभिः) सहयोगी (देवैः) विद्वानों के साथ (सक्षीमहि) मिलकर रहें, हे विद्वान् जनो! आप लोग (सदासां) सदा सेवन-योग्य (अविदस्यं) अविनाशी (रयिम्) ऐश्वर्य को (धात) धारण करो।

नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७.६

भा०—(वसिष्ठैः) विद्वान् पुरुषों द्वारा (रोदसी) सूर्य, भूमि के तुल्य व्यवहारयुक्त स्त्री-पुरुषों की (अभि-स्तुते) अच्छी प्रकार प्रशंसा होती है और (ऋतावानः) ऐश्वर्य के स्वामी (वरुणः) श्रेष्ठ, (मित्रः) स्नेहवान् और (अग्निः) तेजस्वी पुरुष, सभी (चन्द्राः) आह्लादकारी होकर (नः) हमें (उपमं) ज्ञान और (अर्कं) उत्तम सत्कार (यच्छन्तु) प्रदान करें। हे विद्वान् जनो ! (यूयं) आप सब लोग (नः) हमारी (स्वस्तिभिः सदा पात) कल्याणकारी उपायों से सदा रक्षा करें। इति षष्ठो वर्गः ॥

[४०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वे देवा देवताः । छन्दः—१ पंक्तिः । ३ भुरिक्-पंक्तिः ।६ विराट्पंक्तिः । २, ४ विराट्त्रिष्टुप् । ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ।
सप्तर्चं सूक्तम् ॥

ओ श्रुष्टिर्विदथ्या३ समेतु प्रति स्तोमं दधीमहि तुराणाम् ।
यदद्य देवः सविता सुवाति स्यामास्य रत्निनो विभागे ॥ १ ॥

भा०—(ओ) हे विद्वानो ! (विदथ्या) यज्ञों और संग्रामों में होने योग्य (श्रुष्टिः) शीघ्रकारिता (तुराणां) वीर पुरुषों के (स्तोमं) समूह को (प्रति समेतु) प्रति-पुरुष प्राप्त हो, ऐसे (स्तोमं) जन-समूह या सैन्य को हम (दधीमहि) धारण करें। (यद् देवाः) जो दानशील (सविता) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (अद्य सुवाति) आज ऐश्वर्य देता है (अस्य) उसके (विभागे) व्यवहार में हम (रत्निनः स्याम) धन-सम्पन्न हों।

मित्रस्तन्नो वरुणो रोदसी च द्युभक्तमिन्द्रो अर्यमा ददातु ।
दिदेष्टु देव्यदिती रेक्णो वायुश्च यन्नियुवैते भगश्च ॥ २ ॥

भा०—(मित्रः) स्नेही, (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष, (रोदसी च) आकाश, पृथिवी के तुल्य स्त्री, पुरुष और (इन्द्रः अर्यमा) सूर्य, मेघ के तुल्य राजा और न्यायाधीश (नः) हमें (तत्) वह नाना प्रकार का (घु-भक्षम्) बहुत दिनों तक सेवन-योग्य ऐश्वर्य (ददातु) देवे। (अदितिः देवी) अन्नदात्री भूमि-तुल्य विदुषी स्त्री, (भगः च वायुः च) ऐश्वर्यवान् और बलवान् सूर्य और वायु के तुल्य तेजस्वी बली पुरुष (यत् रेक्णः) जो धन और बल (नि-युवैते) अच्छी प्रकार मिलकर उत्पन्न करते हैं उसका हमें भी (दिदेष्टु) विद्वान् पुरुष उपदेश करे।

सेदुग्रो अस्तु मरुतः स शुष्मी यं मर्त्यं पृषदश्वा अवाथ।
उतेमग्निः सरस्वती जुनन्ति न तस्य रायः पर्येतास्ति ॥ ३ ॥

भा०—हे (मरुतः) वायु-तुल्य बलवान् वीरो! हे (पृषदश्वाः) हृष्ट-पुष्ट अश्वों वाले सैन्य जनो! आप (यं मर्त्यं अवाथ) जिस मनुष्य की रक्षा करते हो (सः इत् उग्रः अस्तु) वह ही शत्रुओं को डरावे में समर्थ हो। (उत) और (ईम्) सब ओर (तस्य सरस्वती) उसकी वेग-वती सेना (अग्निः) अग्नि-तुल्य शत्रु को जलाने वाली हो। जिसको (जुनन्ति) विद्वान् लोग सन्मार्ग पर चलाते हैं (तस्य रायः) उसके ऐश्वर्यों को कोई (पर्येता न अस्ति) छीन लेने वाला नहीं होता।

अयं हि नेता वरुण ऋतस्य मित्रो राजानो अर्यमापो धुः।
सुहवा देव्यदितिरनर्वा ते नो अंहो अति पर्षन्नरिष्टान् ॥ ४ ॥

भा०—(अयं) यह (हि) ही (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ पुरुष (नेता) सबका नायक होता है। (मित्रः) सर्वस्नेही (अर्यमा) शत्रुनियन्ता और (राजानः) अन्य राजागण उसके अधीन (अपः धुः) नाना काम अपने पर लेते हैं। (सुहवा) उत्तम ज्ञान-युक्त (देवी) अन्नादि देने वाली, विदुषी (अदितिः) अखण्ड चरित्र वाली माता और (अनर्वा) अश्वादि से रहित, यन्त्रमय रथ पर जाने वाला पुरुष (ते) वे सब

(अंहः) कष्ट से (अरिष्टान्) बिना पीड़ित हुए (नः) हमें (अति पर्षन्) पार करें।

अस्य देवस्य मीळ्हुषो वया विष्णोरेषस्य प्रभृथे हविर्भिः।
विदे हि रुद्रो रुद्रियं महित्वं यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ॥५॥

भा०—(अस्य) इस (देवस्य) सुखप्रदाता (मीढुषः) वीर्यसेक्ता पिता के तुल्य, (विष्णोः) बलशाली, (एषस्य) सबके चाहने योग्य, (हविर्भिः प्रभृथे) अन्नों या आज्ञा-वचनों द्वारा उत्तम रीति से पोषित इस राष्ट्र में सब (वयाः) शाखा के समान हैं। (रुद्रः) दुष्टों का रुलाने वाला वह ही (रुद्रियं महित्वं विदे) रुद्र होने योग्य सामर्थ्य को प्राप्त करता है। हे (अश्विनौ) स्त्री-पुरुषो! तुम लोग (इरावत् वर्त्तिः) अन्नादि-समृद्ध गृह को (यासिष्टं) प्राप्त करो।

मात्र पूषन्नाघृण इरस्यो वरूत्री यद्रातिषाचंश्च रासन्।
मयोभुवो नो अर्वन्तो नि पान्तु वृष्टिं परिज्मा वातो ददातु ॥६॥

भा०—हे (आघृणे) सब ओर दीप्त! (पूषन्) सर्वपोषक! तू (अत्र) इस राष्ट्र में (मा इरस्य) विनाश मत कर। (यत्) जो (वरूत्री) वरण-योग्य विदुषी स्त्री और जो (रातिषाचः च) दानशील पुरुष (रासन्) प्रदान करते हैं वे (मयः-भुवः) सुख-दाता (नः अर्वन्तः) हमें प्राप्त होकर (नि पान्तु) रक्षा करें और (परि-ज्मा) पृथ्वी पर शासक (वातः) वायु-तुल्य बलवान् होकर (वृष्टिं ददातु) प्रजा पर सुख-वृष्टि करें।

नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥७

भा०—व्याख्या देखो सू० ३९। ७॥ इति सप्तमो वर्गः॥

[४१]

वसिष्ठ ऋषिः॥ १ लिंगोक्ताः। २—६ भगः। ७ उषा देवता॥

छन्दः—१ निचृज्जगती । २, ३, ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् । ४ पंक्तिः । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्रातर॒ग्निं प्रा॒तरिन्द्रं॑ हवामहे प्रा॒तर्मि॒त्रावरु॑णा प्रा॒तर॒श्विना॑ ।
प्रा॒तर्भगं॑ पू॒षणं॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिं॑ प्रा॒तः सोम॑मु॒त रु॒द्रं हु॑वेम ॥ १ ॥

भा०—हम लोग (प्रातः) प्रभात में (अग्निम्) अग्नि-तुल्य प्रभु की (हवामहे) स्तुति करें। हम (प्रातः इन्द्रम् हवामहे) प्रातःकाल विद्युत् वा सूर्य-तुल्य प्रकाशक परमेश्वर की उपासना करें। (मित्रा वरुणा) प्राण और उदान दोनों को (प्रातः) प्रातःकाल प्राणायाम द्वारा वश करें। (अश्विना प्रातः) देह में सूर्य और चन्द्र स्वरों को प्रातः सेवन करें। (भगं) ऐश्वर्यमय, (पूषणं) पोषक वायु का (प्रातः) सेवन करें। (ब्रह्मणः पतिम्) ब्रह्माण्ड, ऐश्वर्य के स्वामी जगदीश्वर और वेदोपदिष्टा विद्वान् की शिष्य, (सोमम्) ओषधि की रोगी और (रुद्रं) पापियों को रुलाने वाले प्रभु की भक्तजन (प्रातः हुवेम) प्रातः ही सेवा करें।

प्रा॒त॒र्जितं॒ भग॑मु॒ग्रं हु॑वेम व॒यं पु॒त्रमदि॑ते॒र्यो वि॑ध॒र्ता ।
आ॒ध्रश्चि॒द्यं मन्य॑मानस्तु॒रश्चि॒द्राजा॑ चि॒द्यं भगं॑ भ॒क्षीत्याह॑ ॥ २ ॥

भा०—(प्रातः-जितम्) प्रभात में सर्वाधिक उत्कर्ष पाने और (भगं) सेवन योग्य (उग्रं) दुष्ट-भयकारी, (पुत्रं) बहुतों के रक्षक प्रभु की (वयं) हम (हुवेम) स्तुति करें, (यः) जो (अदितेः) अखण्ड प्रकृति, सूर्य और (विधर्त्ता) लोकों को धारण करता है और (यं मन्यमानः) जिसका मनन करता हुआ (यं) जिस (भगं) ऐश्वर्यवान् प्रभु को (आध्रः चित्) अन्यों से धारण-योग्य और (तुरः चित्) शीघ्रकारी (राजा चित्) राजा भी (भक्षि) 'मैं भजन करता हूं' (इति आह) ऐसा कहता है।

भग॒ प्रणे॑त॒र्भग॒ सत्य॑राधो॒ भगे॒मां धिय॒मुद॑वा॒ दद॑न्नः ।
भग॒ प्र णो॑ जनय॒ गोभि॒रश्वै॒र्भग॒ प्र नृभि॑र्नृ॒वन्तः॑ स्याम ॥ ३ ॥

भा०—हे (भग) ऐश्वर्यवन्! हे (प्रणेतः) उत्तम मार्ग में ले जाने हारे! हे (भग) सेवन-योग्य, हे (सत्य-राधः) सत्यज्ञान वेद के धनी! हे (भग) सुखदातः! आप (नः) हमारी (इमां) इस (धियम्) बुद्धि को (उत् अव) ऊपर ले चलो। (नः ददत्) हमें दान करते हुए, हे (भग) ऐश्वर्यवन्! (गोभिः अश्वैः) गौओं, वाणियों और अश्वों से (प्र जनय) उत्तम बनाइये। जिससे हे (भग) ऐश्वर्य-स्वामिन्! हम (नृभिः) उत्तम पुरुषों से मिलकर (नृवन्तः) उत्तम मनुष्यों के सहयोगी होकर (प्र स्याम) उत्तम बनें।

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम॥ ४॥

भा०—(उत इदानीं) और इस समय, (उत प्र-पित्वे) और ऐश्वर्य प्राप्त होने पर और (अह्नाम् मध्ये) दिनों के मध्य (उत) और (सूर्यस्य उदिता) सूर्योदय-काल में या (उद्-इता) अस्तकाल में भी, हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! हम (भगवन्तः) ऐश्वर्यों के स्वामी (स्याम) हों और (देवानां) विद्वान् पुरुषों की (सु-मतौ) शुभ मति के अधीन (स्याम) रहें।

भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह॥ ५॥

भा०—(भगः एव) भजन योग्य प्रभु ही (भगवान् अस्तु) ऐश्वर्यों का स्वामी हो। हे (देवाः) विद्वानो! (तेन) उससे ही (वयं) हम सब (भगवन्तः स्याम) ऐश्वर्यवान् हों। हे (भग) सेवा-योग्य! (सर्वं इत्) सब ही (त्वां तं) उस तुझको (जोहवीति) पुकारते हैं, (सः भगः) वह ऐश्वर्यवान् तू ही (इह) इस लोक में (नः पुरः-एता भव) हमारा अग्र-गामी हो।

समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु॥ ६॥

भा०—(उषसः) प्रातःकाल के समय आप लोग (अध्वराय) हिंसारहित उपासनादि के लिये और (शुचये) पवित्र, (पदाय) प्रभु को प्राप्त करने के लिये (दधिक्रावा इव) बोझ लेकर चलने वाले अश्व के समान व्रत को धारण करके आगे पैर बढ़ाते हुए (सं नमन्त) अच्छी प्रकार झुको। (अश्वाः रथं न) अश्व जैसे रथ को ले जाते हैं वैसे ही (वाजिनः) ज्ञानवान् लोग (अर्वाचीनं) साक्षात् करणीय (वसुविदं) ऐश्वर्यों, जीवों को प्राप्त और उनसे पालने योग्य (भगं) ऐश्वर्यमय प्रभु तक (नः आवहन्तु) हमें पहुँचावें।

अश्वा॑वती॒र्गोम॑तीर्न उ॒षासो॑ वी॒रव॑तीः॒ सद॑मुच्छन्तु भ॒द्राः।
घृ॒तं दुहा॑ना वि॒श्वतः॒ प्रपी॑ता यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः॥७॥८

भा०—(उषासः अश्वावतीः गोमतीः वीरवतीः भद्राः) जैसे प्रभात वेलाएं सूर्य-किरणों और वायु से युक्त होकर सुख देती हैं वैसे ही (उषासः) कामना-युक्त स्त्रियें भी (अश्वावतीः) भोक्ता पुरुष से सनाथ, (गोमतीः) उत्तम वाणियों को धारण करने वाली, (वीर-वतीः) वीर पुत्र-युक्त होकर (नः सदम्) हमारे घर को (उच्छन्तु) प्रकाशित करें। वे (घृतं दुहानाः) गृह में दीप्तिवत्, ज्ञानप्रकाश से पूर्ण करती हुईं (विश्वतः प्रपीताः) सब प्रकार हृष्ट-पुष्ट, तृप्त रहें। हे विदुषी स्त्रियो! (यूयं) आप सब (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा कल्याण उपायों से रक्षा करो। इत्यष्टमो वर्गः॥

[४२]

वसिष्ठ ऋषिः॥ विश्वे देवा देवताः॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, ५ विराट्त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। ६ निचृत्पंक्तिः। षडृचं सूक्तम्॥

प्र ब्र॒ह्माणो॒ अङ्गि॑रसो नक्षन्त॒ प्र क्र॑न्द॒नुर्न॑भ॒न्य॑स्य वेतु।
प्र धे॒नव॑ उद॒प्रुतो॑ नवन्त यु॒ज्याता॒मद्री॑ अध्व॒रस्य॒ पेशः॑॥१॥

भा०—(अङ्गिरसः) देह में प्राणवत्, तेजस्वी (ब्रह्माणः) वेदज्ञ

पुरुष (प्र नक्षन्त) आया करें। (क्रन्दनुः नभन्यस्य) जैसे मेघ वायु के वेग को प्राप्त करता है वैसे ही (क्रन्दनुः) उपदेष्टा पुरुष (नभन्यस्य वेतु) स्तुति-योग्य प्रभु-ज्ञान का प्रकाश करे। (क्रन्दनुः) रोदनशील, कोमल-प्रकृति स्त्री (नभन्यस्य वेतु) सम्बन्ध योग्य पुरुष का आश्रय करे। (उद्प्रुतः) जल पूर्ण नदियों के तुल्य (धेनवः) वाणियां और गौएं (प्र नवन्त) प्रभु की स्तुति करें और (अद्री) पर्वतवत् स्थिर स्त्री-पुरुष (अध्वरस्य पेशः) अहिंसामय यज्ञ के स्वरूप को (प्र युञ्जाताम्) सम्पन्न करें।

सुगस्ते अग्ने सनवित्तो अध्वा युंक्ष्व सुते हरितो रोहितश्च।
ये वा सद्मन्नरुषा वीरवाहो हुवे देवानां जनिमानि सत्तः॥ २॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! विद्वन्! (ते) तेरा (सनवित्तः) सनातन से वेद द्वारा ज्ञात (अध्वा) मार्ग (सुगः) सुख से गमन-योग्य है। तू भी (सुते) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये रथ में (हरितः रोहितः च) लाल अश्वों को (युंक्ष्व) युक्त कर। (ये वा अरुषाः वीरवाहः) जो क्रोध-रहित वीरों को ले चलने वाले हों (देवानां जनिमानि) उन विद्वानों और वीरों के जन्मों की मैं (सत्तः) स्थिर होकर प्रशंसा करूं।

समु वो यज्ञं महयन्नमोभिः प्र होता मन्द्रो रिरिच उपाके।
यजस्व सु पुर्वणीक देवाना यज्ञियामरमतिं ववृत्याः॥ ३॥

भा०—हे विद्वान् जनो! (वः) आप लोगों में (मन्द्रः) स्तुत्य (होता) उपदेष्टा (नमोभिः) नमस्कार योग्य मन्त्रों से (यज्ञं) यज्ञमय परमेश्वर की (महयन्) पूजा करता हुआ (उपाके) हमारे पास रह कर (प्र रिरिचे) पापों से पृथक् रहता है। हे (पुर्वणीक) बहुत सैन्यों के स्वामिन्! तू (देवान् सु यजस्व) विद्वान् पुरुषों का सत्संग कर, उनको दान दे और (यज्ञियानाम्) यज्ञ, प्रभु की ध्यानोपासना और सत्संगोचित (अरमतिं) उत्तम बुद्धि को (आ ववृत्याः) सब प्रकार प्रयुक्त कर।

यदा वीरस्य रेवतो दुरोणे स्योनशीरतिथिराचिकेतत् ।
सुप्रीतो अग्निः सुधितो दम आ स विशे दाति वार्यमियत्यै ॥४॥

भा०—(यदा) जब (वीरस्य) वीर क्षत्रिय और (रेवतः) धनाढ्य वैश्य के (दुरोणे) गृह में (अतिथिः) अतिथि, विद्वान्, परिव्राजक, (स्योनशीः) सुख से रहे और प्राप्त हो, वह (दमे) गृह में (सु धितः) सुखपूर्वक धारित (अग्निः) अग्नि-तुल्य तेजस्वी पुरुष (सुप्रीतः) प्रसन्न होकर (इयत्यै) सुखेच्छुक (विशे) प्रजा के लिये (वार्यं आदाति) उत्तम ज्ञान देता और उसके हितार्थ ही स्वयं भी (वार्यम् आ दाति) वरणीय धनादि लेता है ।

इमं नो अग्ने अध्वरं जुषस्व मरुत्स्विन्द्रे यशसं कृधी नः ।
आ नक्ता बर्हिः सदतामुषासोशन्ता मित्रावरुणा यजेह ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि-तुल्य तेजस्विन् ! विद्वन् ! (नः इमं अध्वरं) तू हमारे इस यज्ञ को (जुषस्व) सेवन कर । (मरुत्सु) मनुष्यों और (इन्द्रे) राजा में भी (नः) हमारे (अध्वरं यशसं कृधि) यज्ञ को कीर्त्ति-युक्त कर । (नक्ता उषासः) रात और दिन, (उशन्ता) चाहने वाले (मित्रावरुणा) स्नेही, परस्पर को वरण करने वाले स्त्री-पुरुषों को (इह यज) इस स्थान पर धर्मोपदेश दे । तू (बर्हिः सदताम्) उत्तमासन पर विराज ।

एवाग्निं सहस्यं१ वसिष्ठो रायस्कामो विश्वप्स्न्यस्य स्तौत् ।
इषं रयिं पप्रथद्वाजमस्मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥९॥

भा०—(वसिष्ठः) उत्तम विद्वान् (रायः कामः) ऐश्वर्यों का इच्छुक होकर (विश्वप्स्न्यस्य) सर्वत्र विद्यमान अग्नि आदि तत्व के (सहस्यं) बलोत्पादक (अग्निं) अग्नि या विद्युत् तत्व का (स्तौत्) उपदेश करे । (अस्मे) हमारे (इषं रयिम् वाजम् पप्रथत्) अन्न, धन का विस्तार करे । हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नः स्वस्तिभिः सदा पात) हमें कल्याणकारी उपायों से सदा सुरक्षित रखिये । इति नवमो वर्गः ॥

[४३]

वसिष्ठ ऋषिः ।। विश्वेदेवा देवताः ।। छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् । २, ५ भुरिक्पंक्तिः ।। पञ्चर्चं सूक्तम् ।।

प्र वो॑ य॒ज्ञेषु॑ दे॒वय॑न्तो अर्च॒न्द्यावा॒ नमो॑भिः पृथि॒वी इ॒षध्यै॑ ।
येषां॒ ब्रह्मा॒ण्यस॑मानि॒ विप्रा॒ विष्व॑ग्वि॒यन्ति॑ व॒निनो॒ न शाखाः॑ ॥१॥

भा०—(यज्ञेषु) सत्संगों, दान आदि कार्यों में (वः) आप लोगों में (द्यावा पृथिवी) आकाश और भूमि को (इषध्यै) जानने के लिये (देवयन्तः) विद्वानों की (नमोभिः) विनयों और अन्नादि से (प्र अर्चन्) अच्छी प्रकार अर्चना करते हैं (येषां) जिनके (ब्रह्माणि) ज्ञान और धनैश्वर्य (असमानि) सबसे अधिक हैं वे (विप्राः) विद्वान् (वनिनः शाखाः न) वृक्ष की शाखाओं के समान (विष्वग् वियन्ति) सब ओर जाते हैं।

प्र य॒ज्ञ ए॑तु॒ हेत्वो॒ न सप्ति॒रुद्य॑च्छध्वं॒ सम॑नसो घृ॒ताचीः॑ ।
स्तृ॒णी॒त ब॒र्हिर॑ध्व॒राय॑ सा॒धू॒र्ध्वा शो॒चींषि॑ देव॒यून्य॑स्थुः ॥ २ ॥

भा०—हमें (हेत्वः सप्तिः न) वेगवान् अश्व तुल्य (यज्ञः प्र एतु) यज्ञ प्राप्त हो। हे विद्वानो! आप (समनसः) एकचित्त होकर (घृताचीः उद्यच्छध्वम्) घृत-युक्त स्रुवे उठाओ, वा एकचित्त होकर उद्यम करो, आप (घृताचीः) जल-युक्त मेघमालाओं को (बर्हिः) आकाश में (स्तृणीत) आच्छादित करो। (साधु) अच्छी प्रकार (अध्वराय) यज्ञ की (देवयूनि) दीप्तियुक्त (शोचींषि) ज्वालाएं (ऊर्ध्वा अस्थुः) ऊंचे उठें।

आ पु॒त्रासो॒ न मा॒तरं॒ विभृ॑त्राः॒ सानौ॑ दे॒वासो॑ ब॒र्हिषः॑ सदन्तु ।
आ वि॒श्वाची॑ वि॒दथ्या॑मन॒क्त्वग्ने॒ मा नो॑ दे॒वता॑ता॒ मृध॑स्कः ॥३॥

भा०—(विभृत्राः पुत्रासः मातरं न) भरण योग्य पुत्र जैसे माता को प्राप्त होते हैं वैसे ही (विभृत्राः) विशेष भृति द्वारा रक्षित राज-पुरुष (पुत्रासः न) राज-पुत्रों के समान प्रिय होकर, (मातरं) मातृ-

भूमि को प्राप्त होकर (देवासः) विजयेच्छु जन (बर्हिषः) राष्ट्र तथा प्रजा-जन के (सानौ) समुन्नत पदों पर (सदन्तु) विराजें। (विश्वाची) समस्त जनों की बनी सभा (विदथ्याम्) संग्राम-सम्बन्धिनी नीति को (आ अनक्तु) प्रकट करे। हे (अग्ने) तेजस्विन्! (देवताता) यज्ञ और युद्ध में (नः मृधः) हमारे हिंसकों को (मा कः) मत उत्पन्न कर।

ते सींषपन्त जोषमा यजत्रा ऋतस्य धाराः सुदुघा दुहानाः।
ज्येष्ठं वो अद्य मह आ वसूनामा गन्तन समनसो यति ष्ठ ॥४॥

भा०—(ते) वे (यजत्राः) एकत्र संगत जन (ऋतस्य) सत्य वचन और धन की (सुदुघाः धाराः दुहानाः) सुख से पूर्ण करने वाली वाणियों का प्रयोग करते हुए (जोषम्) प्रीतिपूर्वक (आ सीषपन्त) मिलकर रहें और (वः वसूनां) बसने वाले आप लोगों में से (महे) पूज्य (ज्येष्ठं) सबसे बड़े को (अद्य) आज आप (समनसः) समान चित्त होकर (आ गन्तन) प्राप्त होओ और (यति स्थ) यत्न में लगे रहो।

एवा नो अग्ने विक्ष्वा दशस्य त्वया वयं सहसावन्नास्क्राः।
राया युजा सधमादो अरिष्टा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५।१०॥

भा०—हे (सहसावन्) बलवन्! हे (अग्ने) ज्ञानवन्! तू (एव) अवश्य (विक्षु) प्रजाओं में (आ दशस्य) सब ओर दान कर। (त्वया युजा वयं) तुझ से मिलकर हम (आस्क्राः) सब प्रकार से मानो खरीदे भृत्यवत् हों, (अरिष्टाः सधमादः) अहिंसित और (राया) एक साथ (सध-मादः) प्रसन्न रहें। हे वीर पुरुषो! (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) आप हमें सदा उत्तम साधनों से रक्षित करो। इति दशमो वर्गः ॥

[४४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ लिंगोक्ता देवताः ॥ छन्दः—१ निचृज्जगती। २, ३ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, ५ पंक्तिः। पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

दुधिक्रां वः प्रथमम॒श्विनो॒षस॑म॒ग्निं समि॑द्धं भग॑मू॒तये॑ हुवे ।
इन्द्रं॒ विष्णुं॑ पू॒षणं॒ ब्रह्म॑ण॒स्पति॑मादि॒त्यान्द्यावा॑पृथि॒वी अ॒पः स्वः॑ ॥१॥

भा०—हे विद्वानो ! मैं (वः) आप में से (दधिक्राम्) शिष्यों को धारण कर उपदेश देने वाले (प्रथमम्) सर्व-प्रथम, (अश्विना) सूर्य-चन्द्रवत् प्रकाशक (उषसम्) प्रभात के समान दीप्त (समिद्धं अग्निम्) प्रज्वलित अग्नि-तुल्य तेजस्वी, (भगम्) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (ऊतये) रक्षा के लिये (हुवे) स्वीकार करूं। मैं (इन्द्रम्) विद्युत्, (विष्णुं) व्यापक, (पूषणं) पोषक, (ब्रह्मणः पतिम्) धनादि के पालक और (आदित्यान्) १२ मासों (द्यावा-पृथिवी) सूर्य, पृथिवी, (अपः) जलों, (स्वः) सूर्य-प्रकाश और सुख को भी (हुवे) प्राप्त करूं।

दु॒धि॒क्रामु॒ नम॑सा बो॒धय॑न्त उ॒दीरा॑णा य॒ज्ञमु॑पप्र॒यन्तः॑ ।
इळां॑ दे॒वीं ब॒र्हिषि॑ सा॒दय॑न्तो॒ऽश्विना॒ विप्रा॑ सु॒हवा॑ हुवेम ॥ २ ॥

भा०—हम लोग (दधिक्राम्) राज्य भार को उठाने वालों को सन्मार्ग पर चलाने वाले राजा को (नमसा बोधयन्तः) विनय से निवेदन करते (उद्-ईराणाः) उत्तम ज्ञान देते हुए, (यज्ञम् उप प्रयन्तः) यज्ञ वा पूज्य पुरुष के पास जाते हुए, (बर्हिषी) वृद्धिकारी व्यवहार वा राष्ट्र में बसे प्रजाजन में (देवीं) गुण युक्त (इळां) वाणी की (सादयन्तः) व्यवस्था करते हुए (सु-हवा) उत्तम वचन बोलने वाले (विप्रा) बुद्धिमान् (अश्विना) रथी-सारथिवत् सहयोगी स्त्री-पुरुषों को (हुवेम) प्राप्त करें।

द॒धि॒क्रा॒वाणं॑ बुबुधा॒नो अ॒ग्निमुप॑ ब्रुव उ॒षसं॒ सूर्यं॒ गाम् ।
ब्र॒ध्नं मं॑श्च॒तोर्वरु॑णस्य ब॒भ्रुं ते विश्वा॒स्मद् दु॑रि॒ता या॑वयन्तु ॥३॥

भा०—(बुबुधानः) निरन्तर ज्ञानवान् मैं (दधि-क्रावाणं) धारक रथादि को ले चलने में समर्थ, अश्व के समान अग्रगन्ता, (अग्निम्) अग्नि-तुल्य तेजस्वी, (उषसं) प्रभात तुल्य दीप्त, (गाम्) पृथिवी-समान

गतिमान् (मंक्षतः वरुणस्य) अभिमानी के नाशक राजा के (वभ्रुं) भरण-पोषण करने वाले (अध्वं) आकाश वा सूर्य-समान अन्यों को अपने में बांधने वाले पुरुषों से मैं (उप ब्रुवे) प्रार्थना करता हूँ कि (ते) वे (अस्मत्) हमसे (विश्वा दुरिता यावयन्तु) सब बुराइयां दूर करें।

दधिक्रावा प्रथमो वाज्यर्वाग्रे रथानां भवति प्रजानन्।
संविदान उषसा सूर्येणादित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः॥ ४॥

भा०—दधिक्रावा का स्वरूप। (रथानाम् अग्रे वाजी) रथों के आगे जैसे वेगवान् अश्व मुख्य होता है वह (दधिक्रावा) रथी, सारथी तथा अन्यों के धारक रथ को लेकर चलने से 'दधिक्रावा' है, वैसे (प्रजानन्) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष भी (रथानां) रमणीय, व्यवहारों के (अग्रे) मुख्य पद पर (प्रथमः) सर्वप्रथम, (भवति) होता है, वह भी (दधिक्रावा) कार्य-भार को उठाने वाले पुरुषों को उपदेश देकर ठीक राह पर ले चलने से 'दधिक्रावा' है। वह (उषसा) प्रभात-तुल्य कान्तियुक्त, (सूर्येण) सूर्यवत् तेजस्वी राजा (आदित्येभिः) १२ मासों के समान नाना प्रकृति के विद्वान् अमात्यों, (वसुभिः) वा प्रजा में बसे, ब्रह्मचारी आठ विद्वानों और (अंगिरेभिः) अंगारों के समान तेजस्वी या बलस्वरूप प्राणोंवत् देश के प्रिय पुरुषों से (संविदानः) ज्ञान की वृद्धि करे।

आ नो दधिक्राः पथ्यामनक्त्वृतस्य पन्थामन्वेतवा उं।
शृणोतु नो दैव्यं शर्धो अग्निः शृण्वन्तु विश्वे महिषा अमूराः ५।११

भा०—जैसे (दधिक्राः) रथ वा मनुष्यों को ले चलने में समर्थ अश्व मार्ग में चलते हुए अच्छी चाल प्रकट करता है वैसे ही (नः) हममें से (दधि-क्राः) सहयोगी जनों को साथ लेकर बढ़ने वाला पुरुष (ऋतस्य पन्थाम् अन्वेतव) न्याय-मार्ग को स्वयं चलने और औरों को

चलाने के लिये (नः) हमारे लिये (पथ्याम्) हितकारिणी नीति को (अनक्तु) प्रकट करे। वह सन्मार्ग प्रकट करने से (अग्निः) अग्नि-तुल्य प्रकाशक (नः) हमारे (दैव्यं) मनुष्य-हितकारी (शर्धः) बल को (शृणोतु) सुने, जाने और (विश्वे) समस्त (अमूराः) मोह-रहित, (महिषाः) बड़े लोग भी (शृण्वन्तु) हमारे कार्यों को सुनें। इत्येका-दशो वर्गः॥

[४५]

वसिष्ठ ऋषिः॥ सविता देवता॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। ३, ४ निचृत्त्रिष्टुप्॥ चतुर्ऋचं सूक्तम्॥

आ दे॒वो या॑तु सवि॒ता सु॒रत्नो॑ऽन्तरिक्ष॒प्रा वह॑मानो॒ अश्वैः॑।
हस्ते॒ दधा॑नो॒ नर्या॑ पु॒रूणि॑ निवे॒शय॑ञ्च प्रसु॒वञ्च॒ भूम॥ १॥

भा०—(सविता देवः) प्रकाशक सूर्य के तुल्य (सविता) प्रेरक पुरुष (अन्तरिक्ष प्राः) आकाश को व्यापने वाला, (सु-रत्नः) उत्तम रत्नों के तुल्य रमणीय गुणों का धारक, (अश्वैः वहमानः) अश्वों के तुल्य विद्वानों की सहायता से कार्य-भार उठाता हुआ (आ यातु) आवे। वह (हस्ते) हाथ में (पुरूणि) बहुत से (नर्या) मनुष्यों के हितार्थ पदार्थों को (दधानाः) धारण करता, (नि वेशयन् च) सबको बसाता, (प्र-सुवन् च) और ऐश्वर्यों को उत्पन्न करता हुआ प्राप्त हो।

उद॑स्य बा॒हू शि॑थि॒रा बृ॒हन्ता॑ हिर॒ण्यया॑ दि॒वो अन्ताँ॑ अनष्टाम्।
नू॒नं सो अ॑स्य महि॒मा प॑निष्ट सूर॑श्चिदस्मा॒ अनु॑ दादप॒स्याम्॥२॥

भा०—(अस्य) इसकी (शिथिरा) शिथिल (बृहन्ता) बड़ी २ (हिरण्यया) सुवर्ण-मण्डित (बाहू) बाहुएं (दिवः अन्तान्) विजय-योग्य व्यवहारों के पार तक (उत् अनष्टाम्) उत्तम रीति से पहुँचती हैं। (नूनं) निश्चय से (अस्य) इसका (सः महिमा) वह सामर्थ्य (पनिष्ट) स्तुति-योग्य है कि (सूरः चित्) विद्वान् पुरुष (अस्मै) इसकी (अपस्याम्) कर्माभिलाषा में (अनु दात्) सहयोग देता है।

स घा नो देवः सविता सहावा साविषद्वसुपतिर्वसूनि ।
विश्रयमाणो अमतिमुरूचीं मर्तभोजनमध रासते नः ॥ ३ ॥

भा०—(सः देवः सविता) वह सर्वसुखदाता ऐश्वर्यवान् राजा (सहावा) बलवान् (वसु-पतिः) धनों का स्वामी होकर (वसूनि) धनों को (साविषत्) पैदा करे । (उरूचीं) बहुत पदार्थों को प्राप्त करने वाली (अमतिम्) नीति को (वि-श्रयमाणः) विशेषतः आश्रय लेता हुआ (नः) हमें (मर्त्त-भोजनं) मनुष्यों से भोगने योग्य भोग (रासते) दे ।

इमा गिरः सवितारं सुजिह्वं पूर्णगभस्तिमीळते सुपाणिम् ।
चित्रं वयो बृहदस्मे दधातु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४।१२

भा०—(इमाः) ये (गिरः) वाणियां (सु-जिह्वं) उत्तम वाणी बोलने वाले (पूर्ण-गभस्तिम्) पूर्ण रश्मि-युक्त सूर्य के समान पूरे परिमाण की बाहुओं वाले, (सुपाणिम्) उत्तम हाथों वाले, (सवितारं) शासक, आज्ञापक पुरुष की (ईळते) प्रशंसा करती हैं । वह विद्वान् पुरुष (अस्मे) हमें (चित्रं) अद्भुत (वयः) ज्ञान और बल (दधातु) दे । हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नः) हमें (सदा) सदा (स्वस्तिभिः पात) कल्याणकारी साधनों से पालन करें । इति द्वादशो वर्गः ॥

[४६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ रुद्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराड्जगती । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ निचृज्जगती । ४ स्वराट्पंक्तिः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने ।
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः ॥१॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (इमाः) ये (गिरः) उत्तम वाणियें, (स्थिर धन्वने) स्थिर धनुष वाले, (क्षिप्रेषवे) वेग से बाण चलाने में चतुर, (देवाय) विजयेच्छुक, (स्वधाव्ने) राष्ट्र, जन और तन आदि की रक्षा में कुशल, (अषाढाय) शत्रुओं से अपराजित (सहमानाय) शत्रुओं

को पराजित करने वाले, (वेधसे) कार्यों के विधान करने वाले, (तिग्मायुधाय) तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों के स्वामी, (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने वाले राजा के प्रति (भरत) कहो और वह (नः) हमारे निवेदन (शृणोतु) सुने।

स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति ।
अवन्नवन्तीरुप नो दुरश्चरानमीवो रुद्र जासु नो भव ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह राजा (क्षम्यस्य) क्षमा-योग्य (जन्मनः) प्राणी या जनों के (क्षयेण) निवास और (दिव्यस्य) आकाश से होने वाले (क्षयेण) वृष्टि आदि ऐश्वर्य तथा (साम्राज्येन) साम्राज्य से (हि) निश्चय से (चेतति) जाना जाय। हे राजन्! तू (अवन्तीः अवन्) रक्षक सेनाओं और प्रजाओं की रक्षा करता हुआ (नः) हमारे (दुरः) बनाये द्वारों के (उपचर) पास आ। हे (रुद्र) दुष्टों को रुलाने वाले विद्वन्! (नः) हमारे (जासु) सन्तानों के बीच तू (अनमीवः) रोगरहित और अन्यों को रोगों से मुक्त करने वाला (भव) हो।

या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरति परि सा वृणक्तु नः ।
सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः ॥३॥

भा०—हे (सु-अपिवात) उत्तम रीति से शत्रुओं को प्रचण्ड वायु के सदृश प्रबल आक्रमण से दूर करने हारे! (या) जो (ते) तेरी (दिद्युत्) चमचमाती सेना (दिवः परि) विजय-कामना से सब ओर (अवसृष्टा) छोड़ी हुई (क्ष्मया) भूमि के साथ (परि चरति) जाती है (सा नः) वह हमें (परि वृणक्तु) कष्ट न दे। हे विद्वन्! (ते) तेरी (सहस्रं भेषजा) सहस्रों ओषधियां हैं। तू (नः तोकेषु) हमारे बच्चों और (तनयेषु) पुत्रों पर (मा रीरिषः) हिंसा का प्रयोग मत कर।

मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसितौ हीळितस्य ।
आ नो भज बर्हिषि जीवशंसे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४।१३

भा०—हे (रुद्र) दुष्टों को रुलाने वाले! तू (नः मा वधीः) हमें मत मार। (मा परा दाः) हमें मत त्याग। हम (हीडितस्य) क्रुद्ध हुए (ते) तेरे (प्रसितौ) बन्धनागार में (मा भूम) न हों। तू (जीव-शंसे) जीवित जनों से प्रशंसनीय (बर्हिषि) वृद्धिशील राष्ट्र में (नः) हमें (आ भज) प्राप्त हो। हे विद्वानो! (यूयं) आप (नः) हमें (स्व-स्तिभिः सदा पात) उत्तम साधनों से सदा पालन करो। इति त्रयो-दशो वर्गः॥

[४७]

वसिष्ठ ऋषिः॥ आपो देवताः॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप्। २ विराट् त्रिष्टुप्। ४ स्वराट् पंक्तिः॥ चतुर्ऋचं सूक्तम्॥

आपो यं वः प्रथमं देवयन्त इन्द्रपानमूर्मिमकृण्वतेळः।
तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य घृतप्रुषं मधुमन्तं वनेम॥१॥

भा०—जैसे (देवयन्तः) सूर्यवत् रश्मियें (इडः) अन्न या भूमि के (ऊर्मिम्) ऊपर उठने वाले जलों के अंश को (इन्द्रपानम् अकृण्वत) सूर्य द्वारा पान करने योग्य करते हैं वैसे ही हे (आपः) विद्वान् प्रजाओ! (देवयन्तः) राजा के तुल्य आचरण करते हुए राजपुरुष (वः) आप में से (यं) जिस (प्रथमं) अग्रगण्य (ऊर्मिम्) तरंग-तुल्य उन्नत पुरुष को (इडः) भूमि और वाणी के ऊपर (इन्द्र-पानं) राजावत् पालक-रूप से (अकृण्वत) नियत करते हैं (वयं) हम लोग (तं) उस (शुचिम्) शुद्ध, (अरि-प्रम्) निष्पाप (घृत-प्रुषं) जल से अभिषिक्त (मधुमन्तं) मधुरवाणी वाले पुरुष को (अद्य) आज (वनेम) प्राप्त हों।

तमूर्मिमापो मधुमत्तमं वोऽपां नपादवत्वाशुहेमा।
यस्मिन्निन्द्रो वसुभिर्मादयाते तमश्याम देवयन्तो वो अद्य॥२॥

भा०—(यस्मिन्) जिसके सहारे (इन्द्रः) राजा (वसुभिः) बसे प्रजाजनों के साथ (मादयाते) सबको प्रसन्न करता है, हे (आपः)

आप्त जनो ! (तं वः ऊर्मिम्) आप लोगों के उस उत्तम (मधुमत्तमं) अति मधुर गुणों से युक्त पुरुष वर्ग को (आशु-हेमा) सेना वा अश्वों को शीघ्र प्रेरक (अपां नपात्) जलों में नाव के तुल्य तारक, प्रजाओं को नीचे न गिरने देने हारा पुरुष (अवतु) बचावे । हे विद्वानो ! (वः) आप लोगों के ऐश्वर्यमय अंश को हम (देवयन्तः) चाहते हुए (अश्याम) प्राप्त करें ।

शतपवित्राः स्वधया मदन्तीर्देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः ।
ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि सिन्धुभ्यो हव्यं घृतवज्जुहोत ॥३॥

भा०—(शत-पवित्राः) सैकड़ों रश्मियों से पवित्र (देवीः) दिव्य गुण-युक्त जलांश (स्वधया) अन्नांश से (मदन्तीः) प्रजाओं को तृप्त करते हुए (देवानां) सूर्य-रश्मियों के (पाथः अपियन्ति) मार्ग को प्राप्त करते हैं । ऐसे ही (शत-पवित्राः) सैकड़ों उत्तम संस्कारों से पवित्राचरण वाली (देवीः) उत्तम स्त्रियां (स्वधया) अन्नादि से (मदन्तीः) आनन्द लाभ करती हुईं (देवानां) विद्वान् पुरुषों के (पाथः) पालन योग्य ऐश्वर्य को (अपियन्ति) प्राप्त करती हैं । (ताः) वे (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य-युक्त पति के (व्रतानि) कर्मों को (न मिनन्ति) नाश नहीं करतीं । (सिन्धुभ्यः) पुरुषों को सम्बन्धों से बांधने वाली उन स्त्रियों के भी (घृतवत्) घृत-युक्त (हव्यं) जलों या खाद्य अन्नों का उत्पादक अंश 'इन्द्रपान' अर्थात् जीवों के उपभोग-योग्य इस अंश को रश्मियें उत्पन्न करती हैं ।

याः सूर्यो रश्मिभिराततान याभ्य इन्द्रो अरदद् गातुमूर्मिम् ।
ते सिन्धवो वरिवो धातना नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४।१५

भा०—(सूर्यः) सूर्य (रश्मिभिः) किरणों से जैसे जलों को (आततान) आकाश में फैलाता है और (याभ्यः) जिन जलों के लिये (इन्द्रः) विद्युत् (ऊर्मिम्) गमन-योग्य (गातुम्) मार्ग को (अरदद्) बनाता है,

वैसे ही (सूर्यः) तेजस्वी पुरुष (रश्मिभिः) रश्मियों के समान अधीन शासकों से (याः आततान) जिन आप्त प्रजाओं को विस्तृत करता है और (याभ्यः) जिन प्रजाओं के हितार्थ (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (ऊर्मिम्) उन्नत भूमि को (अरदत्) कृषि द्वारा सम्पन्न करता है। (ते) वे (सिन्धवः) जलधाराएं (वः) हमें (वरिवः धातन) उत्तम धन दें। हे उत्तम प्रजाजनो (ते) वे (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप लोग हमें सदा उत्तम उपायों से पालन करो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[४८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—३ ऋभवः। ४ ऋभवो विश्वेदेवा वा देवताः ॥ छन्दः—१ भुरिक्पंक्तिः ॥ २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

ऋभुक्षणो वाजा मादयध्वमस्मे नरो मघवानः सुतस्य ।
आ वोऽर्वाचः क्रतवो न यातां विभ्वो रथं नर्यं वर्तयन्तु ॥ १ ॥

भा०—हे (ऋभुक्षणः) ऐश्वर्य-सेवनकर्ता पुरुषो! हे (वाजाः) ज्ञानी पुरुषो! हे (मघवानः) धनों के स्वामी जनो! हे (नरः) नायको! आप (सुतस्य) उत्पन्न ऐश्वर्य से (अस्मे) हमें (मादयध्वम्) सुखी करो। (वः) आप में से (अर्वाचः) नये नये (क्रतवः न विभ्वः) बुद्धिमान् एवं सामर्थ्यवान् पुरुष (यातां) यात्री जनों के लिये (नर्यं रथं) मनुष्यों को सुखदायी रथ (वर्त्तयन्तु) चलाया करें।

ऋभुर्ऋभुभिरभि वः स्याम विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि ।
वाजो अस्माँ अवतु वाजसाताविन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम् ॥२॥

भा०—(वः) आप में से (ऋभुः) सत्य, यश, धन से चमकने वाला पुरुष (ऋभुभिः) वैसे ही सत्य धनादि-समृद्ध पुरुषों के साथ मिलकर और (वाजः) बलवान् पुरुष भी (वाज-सातौ) युद्ध-काल में (अस्मान् अवतु) हमारी रक्षा करे। हम (विभ्वः) विशेष बलशाली

होकर (विभुभिः) विशेष सामर्थ्यवान् पुरुषों से मिलकर (शवसा) बल से (शर्वांसि) शत्रु सैन्यों को (अभि स्याम) हरावें और (युजा) सह-योगी (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् राजा से मिलकर (वृत्रं तरुषेम) बढ़ते शत्रु का नाश करें ।

ते चि॒द्धि पू॒र्वीर॒भि सन्ति॑ शा॒सा विश्वाँ॑ अ॒र्य उ॑प॒रता॑ति वन्वन् ।
इन्द्रो॒ विभ्वाँ॑ ऋभु॒क्षा वाजो॑ अ॒र्यः शत्रो॑र्मिथ॒त्या कृ॑णव॒न्वि नृ॒म्णम् ३

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (ऋभु-क्षाः) तेजस्वी पुरुषों को बसाने हारा (वाजः) संग्राम-कुशल (अर्यः) स्वामी, (शत्रोः मिथत्या) शत्रु को मारने के लिये (विभ्वान्) बड़े समर्थ पुरुषों को प्राप्त करे । वे (नृम्णम्) धनैश्वर्य को (वि कृण्वन्) विविध प्रकारों से उत्पन्न करें । (उपर-ताति) मेघादि के तुल्य शरवर्षी अस्त्रों से करने योग्य युद्ध में (ते चित् हि) वे ही (विश्वान् अर्यः) सब बढ़ते शत्रुओं को मारें और (शासा) शस्त्र-बल से (पूर्वीः) पहले की सेनाओं को भी (अभि सन्ति) प्राप्त करें ।

नू दे॑वासो॒ वरि॑वः कर्तना नो भू॒त नो॒ विश्वेऽव॑से स॒जोषाः॑ ।
स॒मस्मे॒ इषं॒ वस॑वो ददीरन्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥४॥१५॥

भा०—(देवासः) विद्वान् (नः) हमारी (वरिवः) ऐश्वर्य-वृद्धि (कर्तन) करें । (विश्वे देवासः) सब वीर (स-जोषाः) प्रीतियुक्त होकर (नः अवसे भूत) हमारी रक्षार्थ तैयार रहें । (वसवः) बसे प्रजाजन, बसाने वाले शासक (अस्मे) हमें (इषं ददीरन्) इच्छानुकूल ऐश्वर्य दें । हे विद्वानो ! (यूयं) आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमारी सदा कल्याणकारी उपायों से रक्षा करें । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[४९]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ आपो देवताः । छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ३ त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्पुनाना यन्त्यनिविशमानाः।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥१॥

भा०—(समुद्र-ज्येष्ठाः) एक साथ ऊपर उठने वाले, मेघों में स्थित, (देवीः आपः) उत्तम जल (अनिविशमानाः) कहीं भी स्थिर न रहते हुए, (सलिलस्य मध्यात् पुनानाः) अन्तरिक्ष के बीच में से पवित्र करते हुए (यन्ति) आते हैं। (याः) जिनको (वज्री इन्द्रः) तीव्र बल से युक्त विद्युत् वा सूर्य, (वृषभः) वर्षणशील मेघ या वायु (ररादः) छिन्न-भिन्न करता है। (ताः आपः) वे जल (इह) इस पृथिवी पर (माम्) मुझ बसे प्रजाजनों को (अवन्तु) रक्षा करते हैं।

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयञ्जाः।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥२॥

भा०—(याः) जो (आपः) जल-धाराएं (दिव्याः) आकाश में उत्पन्न या सूर्य, विद्युतादि से उत्पन्न (उत वा) और जो (स्रवन्ति) बहती हैं जो (खनित्रिमाः) खोदकर प्राप्त की जायें (उत वा) और (याः स्वयं-जाः) जो स्वयं आप से आप भूमि से उत्पन्न हुई हों, (याः) जो (समुद्रार्थाः) समुद्र, आकाश से आने वाली या समुद्र को जाने वाली (शुचयः) शुद्ध (पावकाः) पवित्र करने वाली (आपः) जलधाराएं हैं वे (देवीः) उत्तम गुणों से युक्त होकर (इह माम् अवन्तु) इस राष्ट्र में मेरी रक्षा करें।

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम्।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥३॥

भा०—(यासां मध्ये) जिन प्रजाजनों के बीच अभिषिक्त होकर (वरुणः) प्रजा द्वारा स्वयंवृत राजा (जनानाम्) सब मनुष्यों के (सत्यानृते) सत्य और झूठ का (अवपश्यन्) विवेक करता हुआ (याति) प्राप्त होता है। वे (मधुश्चुतः) मधुर गुणों से युक्त, (शुचयः)

शुद्ध और (याः) जो (पावकाः) पवित्र करने वाली हैं (ताः देवीः आपः) वे जलधाराएं और विद्वान् प्रजाएं (माम् अवन्तु) मुझ राजा का पालन करें।

यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥४॥१६॥

भा०—(यासु) जिन जलों वा प्रजाओं में (वरुणः) वरण किया गया पुरुष (राजा) राजा बनता है, (यासु सोमः) जिनके बीच ओषधि तथा सौम्य विद्वान् हैं, (यासु) जिनके बल पर (विश्वे देवाः) सब मनुष्य (ऊर्जम् मदन्ति) अन्न से तृप्ति और बल प्राप्त करते हैं (यासु) जिनके बीच (वैश्वानरः) समस्त मनुष्यों का हितकारी (अग्निः) तेजस्वी नेता (प्रविष्टः) प्रविष्ट है (ताः आपः देवीः) वे दिव्य गुण-युक्त जल और प्रजाजन (माम् इह अवन्तु) मुझे इस लोक में रक्षा करें। इति षोडशो वर्गः ॥

[५०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १ मित्रावरुणौ। २ अग्निः। ३ विश्वेदेवाः। ४ नद्यो देवताः। छन्दः—१, ३ स्वराट् त्रिष्टुप्। २ निचृज्जगती। ४ भुरिग् जगती। चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

आ मां मित्रावरुणेह रक्षतं कुलाययद्विश्वयन्मा न आ गन्।
अजकावं दुर्दृशीकं तिरो दधे मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ॥१॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) स्नेहवान् और कष्टों के निवारक जनो! (इह) इस लोक में आप दोनों माता-पिता के समान (माम् रक्षतम्) मेरी रक्षा करें। (कुलाययत्) घर या स्थान घेर कर संघ बना कर रहने वा कुत्सित रूप प्राप्त कराने वाला और (वि-श्वयत्) विविध रूपों में फैलने और शोथ प्रगट करने वाला रोग (नः मा आगन्) हमें प्राप्त न हो। (अजकावं) 'अजक' अर्थात् भेड़ बकरियों के समान छोटे जन्तुओं को खा जाने वाले, अजगरादिवत् (दुर्दृशीकं) कठिनता से

चीखने वाले जन्तुओं को मैं (तिरः दधे) दूर करूं। (त्सरुः) कुटिल-चारी सर्प आदि (पद्येन रपसा) पैर से होने वाले दोष द्वारा (मां मा विदत्) मुझे प्राप्त न हो।

यद्विजामन्परुषि वन्दनं भुवदष्ठीवन्तौ परि कुल्फौ च देहत्।
अग्निष्टच्छोचन्नप बाधतामितो मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ॥२

भा०—(यत्) जो (वन्दनं) देह को जकड़ने वाला विष (विजामन्) विविध पीड़ा के उत्पत्ति स्थान रूप पेट या (परुषि) सन्धि स्थान पर (भुवत्) उत्पन्न होता है और जो (अष्ठीवन्तौ) स्थूल अस्थि से युक्त गोडों और (कुल्फौ) पैर के टखनों को (परि देहत्) सुजा दे, (तत्) उस विषमय रोग को (अग्निः) अग्नि तत्व (शोचत्) सन्तप्त करता हुआ (इतः बाधताम्) इस देह से दूर करे। (त्सरुः) छद्म गति से छुप देह में फैलने वाला रोग (पद्येन रपसा) पैर में विद्यमान दुख-दायी रोग रूप से (मा मां विदत्) मुझे प्राप्त न हो।

यच्छल्मलौ भवति यन्नदीषु यदोषधीभ्यः परि जायते विषम्।
विश्वे देवा निरितस्तत्सुवन्तु मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ॥३

भा०—(यत् विषम्) जो विष या रस (शल्मलौ भवति) शाल्मलि वर्ग के वृक्षों में होता है (यत् विषम् नदीषु) जो विष या रस नदियों में होता है, (यत् विषम्) जो विष या रस (ओषधिभ्यः परि जायते) ओषधियों से उत्पन्न होता है, (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् (तत्) उन नाना विषों या रसों को (इतः) इन २ स्थानों से (निः सुवन्तु) ले लिया करें चिकित्सा करें। जिससे (त्सरुः) छुपी चाल का रोग (मां) मुझे (पद्येन रपसा) चरणादि के अपराध से (मा विदत्) न प्राप्त हो।

याः प्रवतो निवत उद्वत उदन्वतीरनुदकाश्च याः।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः शिवा देवीरशिपदा भवन्तु
सर्वा नद्यो अशिमिदा भवन्तु ॥ ४ ॥ १७ ॥

भा०—(याः) जो नदियां (प्रवतः) दूर देशों तक जाने वाली, (याः निवतः) जो नीचे की ओर बहने वाली, (याः उद्वतः) जो ऊंचे की ओर जाने वाली, (उदन्वतीः) जो प्रचुर जल वाली, (याः च अनुदकाः) और जो जलरहित या अल्प जल की हैं (ताः) वे (अस्मभ्यं) हमारे लिये (पयसा) जल से देश को सींचती हुईं (शिवाः भवन्तु) कल्याणकारी हों (देवीः) सुखप्रद, अन्नादि देने वाली हों और (अशिपदाः) भोजनार्थं सब प्रकार के अन्नोत्पादक हों और (सर्वाः नद्यः) सब नदियें (अशिमिदाः भवन्तु) अहिंसाकारिणी हों। इति सप्तदशो वर्गः॥

[५१]

वसिष्ठ ऋषिः। आदित्या देवताः॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप्। ३ निचृत्त्रिष्टुप्॥ तृचं सूक्तम्॥

आ॒दि॒त्याना॒मव॑सा॒ नूत॑नेन सक्षी॒महि॒ शर्म॑णा॒ शन्त॑मेन।
अ॒ना॒गा॒स्त्वे अ॑दिति॒त्वे तु॒रास॑ इ॒मं य॒ज्ञं द॑धतु॒ श्रोष॑माणाः॥ १॥

भा०—(आदित्यानाम्) 'अदिति' अखण्ड और अदीन परमेश्वर के उपासक प्रजाओं को शरण में लेने वाले पुरुषों के (नूतनेन अवसा) उत्तम ज्ञान से और (शन्तमेन शर्मणा) अति शान्तिदायक गृहवत् देह से हम (सक्षीमहि) अपने आपको सम्बद्ध करें। वे (तुरासः) शीघ्रकारी, (श्रोषमाणाः) हमारे दुःख-सुख को सुनते हुए (इमं यज्ञं) इस उत्तम सत्संग, ज्ञान, दान आदि सम्बन्ध को (अनागास्त्वे) हमें पाप रहित करने और (अदितित्वे) अखण्ड बनाये रखने के लिये (दधतु) स्थिर रक्खे।

आ॒दि॒त्यासो॒ अदि॑तिर्मादयन्तां मि॒त्रो अ॑र्य॒मा वरु॑णो॒ रजि॑ष्ठाः।
अ॒स्माकं॑ सन्तु॒ भुव॑नस्य गो॒पाः पिब॑न्तु॒ सोम॒मव॑से नो अ॒द्य॥२॥

भा०—(आदित्यासः) पूर्ण ब्रह्मचारी विद्वान्, 'अदिति' प्रभु परमेश्वर के उपासक स्वयं (अदितिः) यह भूमि या माता, पितादि,

(मित्रः) स्नेही जन, (अर्यमा) दुष्टों का नियन्ता (वरुणः) श्रेष्ठ जन, (रजिष्ठाः) अति धर्मात्मा, वे सब (अस्माकं) हमारे (भुवनस्य) लोक के (गोपाः) रक्षक (सन्तु) हों। वे (नः अवसे) हमारी रक्षा के लिये (अद्य) आज (सोमम् पिबन्तु) ओषधि रस के समान ऐश्वर्य का भोग करें।

आदित्या विश्वे मरुतश्च विश्वे देवाश्च विश्वे ऋभवश्च विश्वे।
इन्द्रो अग्निरश्विना तुष्टुवाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥३।१८॥

भा०—(विश्वे आदित्याः) समस्त बारह मासों के समान सुखप्रद विद्वान् (विश्वे मरुतः) समस्त वायुगण, (विश्वे देवाः च) समस्त पृथिवी आदि लोक, (विश्वे ऋभवः च) समस्त तेज से प्रकाशित जन (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (अग्निः) तेजस्वी, (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुष, ये सब (तुष्टुवानाः) स्तुति किये जायं। हे स्वजनो! (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) आप हमें उत्तम साधनों से सदा पालें। इत्यष्टादशो वर्गः॥

[५२]

वसिष्ठ ऋषिः॥ आदित्यो देवताः॥ छन्दः—१, ३ स्वराट्पंक्तिः। २ निचृत्त्रिष्टुप्॥ तृचं सूक्तम्॥

आदित्यासो अदितयः स्याम पूर्देवत्रा वसवो मर्त्यत्रा।
सनेम मित्रावरुणा सनन्तो भवेम द्यावापृथिवी भवन्तः॥ १॥

भा०—हे (आदित्यासः) आदित्य तुल्य तेजस्वी पुरुषो! हम लोग (अदितयः) अखण्ड बलशाली (स्याम) हों। हे (वसवः) गुरु के अधीन बसने हारे विद्वान् पुरुषो! आप, (देवत्रा) विद्वानों और (मर्त्यत्रा) मनुष्यों में (पूः) नगरी तुल्य सबके रक्षक होओ। हे (मित्रावरुणा) प्राण, उदान तुल्य प्रिय और श्रेष्ठ जनो! हम लोग (सनन्तः) ऐश्वर्य प्राप्त करते हुए (सनेम) दान किया करें। हे (द्यावा-पृथिवी) सूर्य-

पृथिवीवत् माता-पिता जनो! हम (भवन्तः) सामर्थ्यवान् होकर (भवेम) रहें।

मित्रस्तन्नो वरुणो मामहन्त शर्म तोकाय तनयाय गोपाः।
मा वो भुजेमान्यजातमेनो मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे ॥ २ ॥

भा०—(मित्रः) स्नेही और (वरुणः) पापों के वारक श्रेष्ठजन और (गोपाः) रक्षक जन (नः) हमें (तत् शर्म मामहन्त) वह सुख दें (तोकाय तनयाय) पुत्र पौत्रों को सुख दें। (वः) आप लोगों में रहते हुए हम (अन्य-जातम् एनः) औरों से उत्पन्न पाप का (मा भुजेम) भोग न करें। हे (वसवः) विद्वान् जनो! (यत् चयध्वे) जिसको आप नाश करो (मा तत् कर्म) वह काम हम न करें।

तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त रत्नं देवस्य सवितुरियानाः।
पिता च तन्नो महान्यजत्रो विश्वे देवाः समनसो जुषन्त ॥३।१९॥

भा०—(तुरण्यवः) शीघ्र कर्म करने में कुशल (अंगिरसः) देह में प्राणवत् राष्ट्र में तेजस्वी पुरुष (सवितुः देवस्य) सुखदाता प्रभु को (इयानाः) याद करते हुए उसके (रत्नं नक्षन्त) परमैश्वर्यमय राज्य-रूप रत्न को प्राप्त करें। (तत्) वह ही (नः) हमारा (यजत्रः) अति पूज्य (महान्) बड़ा (पिता च) पालक है। (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् (समनसः) समान-चित्त होकर (जुषन्त) प्रेम-वर्त्ताव करें। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[५३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ द्यावापृथिव्यौ देवते ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। २, ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः सबाध ईळे बृहती यजत्रे।
ते चिद्धि पूर्वे कवयो गृणन्तः पुरो मही दधिरे देवपुत्रे ॥ १ ॥

भा०—(द्यावा-पृथिवी) भूमि और सूर्य के तुल्य (बृहती) बड़ी,

(यजत्रे) सत्संग योग्य (देव-पुत्रे) विद्वान् पुत्रों के माता-पिताओं को मैं (यज्ञैः) दान, मान से (नमोभिः) नमस्कारों से (सबाधः) जब २ पीड़ा-युक्त होऊं (ईळे) उनकी पूजा करूं। (त्ये चित् मही) उन दोनों पूज्यों को (पूर्वे) पूर्व के (गृणन्तः) उपदेष्टा (कवयः) विद्वान् पुरुष (पुरः दधिरे) सदा अपने सन्मुख, पूज्य पद पर स्थापित करते रहे हैं।

प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिर्गीर्भिः कृणुध्वं सदने ऋतस्य।
आ नो द्यावापृथिवी दैव्येन जनेन यातं महि वां वरूथम् ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप (पूर्वजे पितरौ) पूर्व के विद्वानों से शिक्षित होकर विद्वान् हुए (ऋतस्य सदने) सत्य व्यवहार के आश्रय रूप (पितरा) माता-पिताओं को (नव्यसीभिः गीर्भिः) अतिस्तुत्य वाणियों से (प्र कृणुध्वम्) आदरयुक्त करो। हे (द्यावा-पृथिवी) सूर्य और भूमि के समान अन्न, जल, तेज और आश्रय से प्रजा-पालक माता-पिताओ! आप लोग (नः) हमें (दैव्येन जनेन) विद्वान् पुरुषों से शिक्षित जनों के साथ (वाः महि वरूथं) अपने बड़े भारी घर को (आ यातं) प्राप्त होओ।

उतो हि वां रत्नधेयानि सन्ति पुरूणि द्यावापृथिवी सुदासे।
अस्मे धत्तं यदसदस्कृधोयु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३।२०

भा०—हे (द्यावा-पृथिवी) भूमि, विद्युत् के तुल्य माता-पिताओ! (सु-दासे) आप दोनों उत्तम भृत्यों से युक्त होओ। अथवा दानशील के लिये (वां) आप दोनों के (पुरूणि रत्न-धेयानि) बहुत सुन्दर ऐश्वर्य (सन्ति) हैं। (यत्) जो भी (अस्कृधोयुः) बहुत जीवनप्रद (असत्) हो वह (अस्मे धत्त) हमें दो। (यूयं) आप लोग (स्वस्तिभिः) कल्याणकारी साधनों से (नः पात) हमारी रक्षा करें। इति विंशो वर्गः ॥

[५४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वास्तोष्पतिर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः ।
यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१॥

भा०—हे (वास्तोः पते) वास करने योग्य राष्ट्र के पालक! राजन्! तू (अस्मान् प्रति जानीहि) हमें, प्रत्येक को जान वा हमसे प्रतिज्ञा-पूर्वक व्यवहार कर। (नः) हमारे प्रति (सु आवेशः स्व-आवेशः) उत्तम भावों और बर्त्ताओं वाला और (अनमीवः) रोगादि से पीड़ा न होने देने वाला (भव) हो। (यत् त्वा ईमहे) जो हम तेरे समीप याचना करते हैं (नः तत् प्रति जुषस्व) वह तू हमें मान ले। (नः द्विपदे शम्, चतुष्पदे शम्) हमारे दोपाये पुत्रादि और चौपाये गाय आदि का भी कल्याण हो।

वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो ।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति नो जुषस्व ॥ २ ॥

भा०—हे (वास्तोः पते) निवास योग्य गृह, राष्ट्र के पालक गृहपते! राजन्! तू (नः) हमारा (प्र-तरणः) नाव के तुल्य संकट से पार उतारने वाला और (गय-स्फानः) गृह, प्राण और धन का बढ़ाने वाला (एधि) हो। हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमें (गोभिः अश्वेभिः) गौओं, अश्वों सहित प्राप्त हो। (ते सख्ये) तेरे मित्र-भाव में हम (अजरासः) वृद्धावस्था-रहित, बल-युक्त रहें। (नः) हम से तू (पिता इव पुत्रान्) पुत्रों को पिता के तुल्य (जुषस्व) प्रेम कर।

वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या ।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३।२१

भा०—हे (वास्तोः पते) गृह, देह और राष्ट्र-पालक! (ते) तेरी (रण्वा) रमणीय (शग्मया) सुखदायक (गातु-मत्या) उत्तम वाणी और भूमि से युक्त (सं सदा) सहवास और सभा से हम लोग (सक्षीमहि) सम्बन्ध बनाये रक्खें। (क्षेमे) रक्षा-कार्य और (योगे) अप्राप्त

धन को प्राप्त करने में (नः) हमारी (वरं) अच्छी प्रकार (पाहि) रक्षा करो। हे विद्वान् जनो! (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप लोग सदा हमारी उत्तम साधनों से रक्षा करें। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[५५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १ वास्तोष्पतिः। २—८ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृद् गायत्री। २, ३, ४ बृहती। ५, ७ अनुष्टुप्। ६, ८ निचृद्-नुष्टुप्। अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन्।
सखा सुशेव एधि नः ॥ १ ॥

भा०—हे (वास्तोः-पते) गृह, देह और राष्ट्र के पालक प्रभो! गृहपते! राजन्! तेरे अधीन (विश्वा रूपाणि) सब प्रकार के नाना रूप अर्थात् जीव बसते हैं। तू (अमीव-हाः) सब प्रकार के रोगों, कष्टों का नाशक और (सु-शेवः) उत्तम सुखदायक (नः) हमारा (सखा एधि) मित्र हो।

यदर्जुन सारमेय दतः पिशङ्ग यच्छसे।
वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप ॥ २ ॥

भा०—हे (अर्जुन) धनादि को उपार्जन करने वाले! हे (सार-मेय) सारवान्, बलवान् हे (पिशङ्ग) तेजस्विन्! तू (दतः) खण्डित करने वाले शस्त्रों को (यच्छसे) नियम में रख। (बप्सतः) खाते हुए मनुष्यों के दांत जैसे (स्रक्केषु उप) ओठों के पास चमकते हैं वैसे (स्रक्केषु) बने नगरों के पास (बप्सतः) राष्ट्र का भोग करते हुए तेरे (ऋष्टयः) शस्त्र-अस्त्रादि, (वि इव भ्राजन्त) विशेष रूप से चमकें। (नि सु स्वप) बलवान् राजा के, हे प्रजाजन! तू अच्छी प्रकार सुख की निद्रा ले।

स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनः सर।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥ ३ ॥

भा०—हे (सारमेय) उत्तम बल-धारक सेना के जन! तू (स्तेनं) चोर और (तस्करं) निन्द्य कार्य करने वाले डाकू के पास (राय) पहुँच, उसे पकड़। (पुनः सर) तू उस पर आक्रमण कर। तू (इन्द्रस्य स्तोतॄन्) राजा के प्रति उत्तम उपदेश करने वाले विद्वानों को (किं रायसि) क्यों पकड़ता है? (अस्मान् किं दुच्छुनायसे) हमें दुष्ट कुत्ते के समान क्यों कष्ट देता है? तू (नि सु स्वप) नियमपूर्वक सुख से निद्रा ले।

त्वं सूकरस्य दर्दृहि तव दर्दर्तु सूकरः।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥ ४ ॥

भा०—हे राजन्! (त्वं) तू (सु-करस्य) उत्तम कार्य करने वाले को (दर्दृहि) बढ़ा। (सूकरस्य=सु-करस्य) उत्तम रीति से वध करने योग्य शत्रु को (दर्दृहि) विदीर्ण कर और (सूकरः) उत्तम युद्धकर्त्ता शत्रुजन (तव दर्दृहि) तेरे राष्ट्र में भी भेदन करने में समर्थ है। तू (स्तोतॄन्) उत्तम विद्वानों के प्रति (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य का (रायसि) दान कर। (अस्मान् किम् दुच्छुनायसे) हमारे प्रति क्यों दुष्ट कुत्ते के समान करता है, (नि सु स्वप) तू सावधान रहकर सुख की निद्रा ले।

सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः।
ससन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जनः ॥ ५ ॥

भा०—राष्ट्र और गृह का उत्तम प्रबन्ध होने पर (माता सस्तु) माता सुख से सोवे, (पिता सस्तु) पिता सुख से सोवे। (श्वा सस्तु) कुत्ता आदि सुख से सोवें। (विश्पतिः सस्तु) प्रजाओं का स्वामी सुख से सोवे। (सर्वे ज्ञातयः ससन्तु) सब सम्बन्धी सुख से सोवें। (अयम्) यह (अभितः जनः) चारों ओर बसा प्रजाजन (सस्तु) सुख से सोवे।

य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः ।
तेषां सं हन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥६॥

भा०—(यः आस्ते) जो बैठा हो (यः च चरति) जो चलता है, (यः जनः) जो मनुष्य (नः) हमें (पश्यति) देखता है (तेषां) उनके (अक्षाणि) आंखों को हम (संहन्मः) अच्छी प्रकार निमीलित करें जिससे बाहर के भीतर, भीतर के बाहर वालों को न देखें। (यथा) जैसा (इदं हर्म्यं) यह उत्तम भवन है (तथा) उसी प्रकार इस घर बनावें।

सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।
तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि ॥ ७ ॥

भा०—(समुद्रात् सहस्रः-शृङ्गः) समुद्र से सहस्रों किरणों वाले सूर्य-तुल्य (यः) जो तेजस्वी पुरुष (वृषभः) बलवान्, (उत् आचरत्) उत्तम पद पर विराज कर न्याय से वर्त्तता है, (तेन सहस्येन) उस बलवान् के सहयोग से (वयं) हम (जनान्) सब प्रजा को (नि स्वापयामसि) सुख की निद्रा सोने दें।

प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः ।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥८॥२२॥३॥

भा०—(याः नारीः) जो स्त्रियां (प्रोष्ठे-शयाः) आंगन में सोती हैं, (या वह्ये-शयाः) जो रथ आदि में सोती हैं, (याः तल्पशीवरीः) जो उत्तम सेजों में सोती हैं और (याः पुण्यगन्धाः स्त्रियः) जो उत्तम गन्ध वाली, शुभ-लक्षणा स्त्रियां हैं (ताः सर्वाः) उन सबको (स्वापयामसि) सुख की नींद सोने दें। ऐसा उत्तम राज्य और गृह का प्रबन्ध करें।

इति द्वाविंशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[५६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१ आर्ची गायत्री । २, ६, ७,

६ भुरिगार्ची गायत्री। ३, ४, ५ प्राजापत्या बृहती। ८, १० आर्च्युष्णिक्। ११ निचृदार्च्युष्णिक् १२, १३, १५, १८, १९, २१ निचृत् त्रिष्टुप्। १७, २० त्रिष्टुप्। २२, २३, २५ विराट् त्रिष्टुप्। २४ पंक्तिः। १४, १६ स्वराट्पंक्तिः। पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम्॥

क ईं व्य॑क्ता नरः॒ सनी॑ळा रु॒द्रस्य॒ मर्या॒ अधा॒ स्वश्वाः॑॥ १॥

भा०—(ईम्) सब प्रकार से (वि-अक्ताः) विशेष तेजस्वी, (सनीडाः) समान-स्थान वासी, (रुद्रस्य) दुष्टों के रोदक, प्रभु, विद्योपदेष्टा आचार्य के (के मर्याः) कौन विशेष मनुष्य (नरः) उत्तम नायक और (सु-अश्वाः) उत्तम अश्वों वाले वा जितेन्द्रिय हैं?

नकि॒र्ह्ये॑षां ज॒नूंषि॒ वेद॒ ते अ॒ङ्ग वि॑द्रे मि॒थो ज॒नित्र॑म्॥ २॥

भा०—(एषां) इन जीवों के (जनूंषि) जन्मों को (नकिः वेद हि) निश्चय से कोई नहीं जानता। (अङ्ग) हे विद्वन्! (ते) वे सब (मिथः) स्त्री पुरुष परस्पर मिलकर (जनित्रम्) जन्म (विद्रे) प्राप्त कर लेते हैं।

अ॒भि स्व॒पूभि॑र्मि॒थो व॑पन्त॒ वात॑स्वनसः श्ये॒ना अ॑स्पृध्रन्॥ ३॥

भा०—वे जीव (स्वपूभिः) अपने साथ सोने वाली अथवा (=स्वपूभिः) अपनी उत्पन्न होने योग्य भूमियों से (मिथः) परस्पर मिलकर (अभि वपन्त) सम्मुख हो बीज बोते हैं। वे (वातस्वनसः) वायुवत् प्राण के बल पर ध्वनि करने वाले (श्येनाः) बाजपक्षी के समान एक देह से दूसरे देह में जाने वाले होकर भी (अस्पृध्रन्) स्पर्धा करते हैं।

ए॒तानि॒ धीरो॑ नि॒ण्या चि॑केत॒ पृश्नि॒र्यदूधो॑ म॒ही ज॒भार॑॥ ४॥

भा०—(पृश्निः) सेवन करने वाला सूर्य और (मही) भूमि (यत्) जैसे (ऊधः) जलधारक मेघ को (जभार) धारण करता है वैसे (पृश्निः) वीर्यसेक्ता पुरुष और (मही) पूज्य माता (यत्) जो मिलकर बालक और उसके पान के लिये (ऊधः) स्तनादि धरती है (एतानि निण्या) इन सत्य सिद्धान्तों को (धीरः) बुद्धिमान् पुरुष (चिकेत) जाने।

सा विट् सुवीरा मरुद्भिरस्तु सनात्सहन्ती पुष्यन्ती नृम्णम् ॥५॥

भा०—(सा) वह (विट्) प्रजावर्ग (मरुद्भिः) वायुवत् बलवान् पुरुषों से ही (सु-वीरा) उत्तम वीरों वाली (अस्तु) हो। वह (सनात्) सदा (सहन्ती) शत्रु को पराजित करती हुई और (नृम्णं पुष्यन्ती) धनैश्वर्य को समृद्ध करती रहे।

यामं येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः श्रिया सम्मिश्ला ओजोभिरुग्राः ॥६॥

भा०—प्रजाएं, स्त्रियें और सेनाएं भी (येष्ठाः) लक्ष्य की ओर जाने में उत्तम (शुभ्राः) कान्तियुक्त, (शोभिष्ठाः) शोभायुक्त (श्रिया) लक्ष्मी से (सं-मिश्लाः) संयुक्त (ओजोभिः) पराक्रमों से (उग्राः) बलवान् हों। वे (यामं येष्ठाः) उत्तम नियम, प्रबन्धों को प्राप्त हों।

उग्रं व ओजः स्थिरा शवांस्यधा मरुद्भिर्गणस्तुविष्मान् ॥७॥

भा०—हे प्रजाजनो! (वः) आप लोगों का (ओजः) तेज (उग्रं) उन्नत कोटि का और (शवांसि स्थिरा) बल स्थिर और (मरुद्भिः सह गणः) बलवान् वीरों, विद्वानों सहित गण (तुविष्मान्) बलवान् हो।

शुभ्रो वः शुष्मः क्रुध्मी मनांसि धुनिर्मुनिरिव शर्धस्य धृष्णोः ॥८॥

भा०—हे प्रजाजनो! (वः) आप लोगों का (शुष्मः) बल (शुभ्रः) प्रशंसनीय हो। आप लोगों के (मनांसि) मन (क्रुध्मी) दुष्टों के प्रति क्रोधयुक्त हों और (शर्धस्य) आप के बलवान् और (धृष्णोः) शत्रुपराजयकारी सैन्य का (धुनिः) नायक शत्रुओं को कंपाने हारा (मुनिः इव) मननशील के समान विचारशील हो।

सनेम्यस्मद्युयोत दिद्युं मा वो दुर्मतिरिह प्रणङ् नः ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वान् वीर जनो! (अस्मत्) हमसे अपने (सनेमि) चक्रधारा से युक्त (दिद्युम्) चमचमाते शस्त्र-बल को (युयोत) सदा पृथक् रक्खो और (वः) आप लोगों की (दुर्मतिः) दुष्ट बुद्धि (नः) हमें और (नः दुर्मतिः वः) हमारी दुष्टमति आपको (मा प्रणक्) प्राप्त न हो।

प्रिया वो नाम हुवे तुराणामा यत्तृपन्मरुतो वावशानाः ॥१०॥२३॥

भा०—(यत् नाम) जो उत्तम नाम, अन्न (वः मरुतः) प्राणवत् प्रिय आप लोगों को (तृपत्) प्रसन्न करे, हे (वावशानाः) कीर्ति-कामी सज्जनो! मैं (तुराणां) शीघ्रकारी (वः) आप लोगों के लिये (प्रिया नाम) प्रिय नाम वा अन्नादि पदार्थ (आ हुवे) आदर पूर्वक कहूँ और दूँ। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

स्वायुधास इष्मिणः सुनिष्का उत स्वयं तन्वः शुम्भमानाः ॥११

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग (स्वायुधासः) उत्तम शस्त्रास्त्र-सम्पन्न, (इष्मिणः) अन्न के स्वामी, (सु-निष्काः) उत्तम सुवर्णादि के मोहरों से व्यवहार करने वाले (उत) और उनसे (स्वयं) स्वयं (तन्वः शुम्भमानाः) अपने शरीरों को सुशोभित करने वाले होओ।

शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः।
ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ॥१२॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो! (वः) आप के (हव्या) खाने, लेने-देने के पदार्थ (शुची) पवित्र हों। मैं (शुचिभ्यः) पवित्र पदार्थों की वृद्धि के लिये (शुचिं अध्वरं) पवित्र यज्ञ की (हिनोमि) वृद्धि करता हूँ। (ऋत-सापः) सत्य के आधार पर प्रतिज्ञाबद्ध होने वाले (शुचिजन्मानः) शुद्ध जन्म धारण करने वाले (शुचयः) कर्म, वाणी में शुद्ध, (पावकाः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष (ऋतेन) सत्य-ज्ञान से ही (सत्यम् आयन्) सत्य व्यवहार को प्राप्त होते हैं।

अंसेष्वा मरुतः खादयो वो वक्षःसु रुक्मा उपशिश्रियाणाः।
वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः ॥१३॥

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो! विद्वान् पुरुषो! (वः) आपके (अंसेषु) कन्धों पर (खादयः) शस्त्र और (वक्षःसु) छातियों पर

(रुक्माः) कान्तियुक्त आभूषण (उप शिश्रियाणाः) शोभा दें। आप लोग (वृष्टिभिः विद्युतः न) वर्षाओं से बिजुलियों के समान (आयुधैः) हथियारों से (रुचानाः) चमकते हुए (स्वधाम्) जलवत् अन्न और राष्ट्र-भूमि के (अनु यच्छमानाः) अनुसार उसको वश करते हुए विजय करो।

प्र बुध्न्या व ईरते महांसि प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरध्वम्।
सहस्रियं दम्यं भागमेतं गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम्॥ १४॥

भा०—(बुध्न्याः) आकाश में मेघ जैसे (महांसि नामानि प्र ईरते) तेज और जलों को प्रदान करते हैं वैसे ही हे (बुध्न्याः) उच्च पद के योग्य (प्रयज्यवः) उत्तम दानशील पुरुषो! आप भी (महांसि) देने योग्य (नामानि) अन्नों को (प्र तिरध्वम्) बढ़ाओ और दान करो। हे (मरुतः) वीरो! आप (एतम्) इस (गृहमेधीयं) गृहस्थों से प्राप्त वा गृह के निर्वाह योग्य (सहस्रियं दम्यं भागम्) सहस्रों ग्रामों वा गृहों से प्राप्त करादि अंश को (जुषध्वम्) स्वीकार करो।

यदि स्तुतस्य मरुतो अधीथेत्था विप्रस्य वाजिनो हवीमन्।
मक्षू रायः सुवीर्यस्य दात नू चिद्यमन्य आदभदरावा॥१५॥२४॥

भा०—हे (मरुतः) वायु-समान बलवान् वीरो! आप (यदि) यदि (वाजिनः) ऐश्वर्यवान् और (विप्रस्य) बुद्धिमान् पुरुष के (हवीमन्) देने योग्य उत्तम ज्ञान और धन के व्यवहार में (इत्था) सत्य २ (स्तुतस्य) उपदिष्ट शास्त्र का (अधीथ) स्मरण रक्खो। (यम्) जिस धनादि को (अन्यः) दूसरा (अरावा) शत्रु वा वचनादि से रहित मूक-जन (नू चित् आदभत्) अवश्य विनाश कर देवे ऐसे (रायः) धन, ज्ञानादि को आप (सु-वीर्यस्य) उत्तम वीर्यवान्, ब्रह्मचारी के हाथ (दात) प्रदान करो। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

अत्यासो न ये मरुतः स्वञ्चो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः।
ते हर्म्येष्ठाः शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीळिनः पयोधाः॥१६

भा०—(ये) जो (मरुतः) मनुष्य, वायु-तुल्य बलवान्, (अत्यासः न) निरन्तर गति वाले अश्वों के तुल्य (सुभ्वः) उत्तम आचरण वाले हों वे (मर्याः) मनुष्य (यक्षदृशः न) पूज्य जनों को दर्शन करने वालों के तुल्य (शुभयन्त) सदा उत्तम वस्त्रालंकार धारण करें और (ते) वे (हर्म्येष्ठाः) बड़े २ महलों में रहकर (शिशवः न शुभ्राः) बालकों के समान स्वच्छ (वत्सासः न) गाय के बछड़ों के समान, (प्र-क्रीडिनः) विनोदी स्वभाव के और (पयः-धाः) दूध, अन्नादि के पीने-खाने वाले हों।

दृशस्यन्तो नो मरुतो मृळन्तु वरिवस्यन्तो रोदसी सुमेके।
आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु सुम्नेभिरस्मे वसवो नमध्वम् ॥१७

भा०—(मरुतः) वीर पुरुष (दशस्यन्तः) दान देते और (सुमेके) पूज्य (रोदसी) माता-पिताओं की (वरिवस्यन्तः) सेवा करते हुए (नः मृडन्तु) हमें सुखी करें। (गोहा) गौ आदि का मारने वाला और (नृहा) मनुष्यों को मारने वाला (वः) आप से (आरे) दूर हो और वह (वधः अस्तु) वध-योग्य हो। (सुम्नेभिः अस्मे वसवो नमध्वम्) श्रेष्ठ पुरुष शुभ वचनों से प्रभु की स्तुति करें।

आ वो होता जोहवीति सत्तः सत्राचीं रातिं मरुतो गृणानः।
य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः सो अद्वयावी हवते व उक्थैः ॥१८

भा०—हे (मरुतः) वीरो! विद्वान् पुरुषो! (होता) उत्तम दाता, (गृणानः) उपदेश करने हारा (सत्तः) उत्तमासन पर बैठ कर (सत्राचीं) सत्य से युक्त (रातिं) दान, ज्ञान वा ऐश्वर्य को (जोहवीति) देता है और जो (ईवतः) जल-युक्त (वृषणः गोपाः) मेघ के तुल्य रक्षक (ईवतः) धनशाली, (वृषणः) बलवान् (गोपाः) रक्षक है (सः) वह (अद्वयावी) भीतर-बाहर दो-भाव न करता हुआ, निष्कपट होकर (उक्थैः) उत्तम वचनों से (वः) आप को (हवते) ज्ञान दे, वा आदर से बुलावे।

इमे तुरं मरुतो रामयन्तीमे सहः सहस आ नमन्ति ।
इमे शंसं वनुष्यतो नि पान्ति गुरु द्वेषो अररुषे दधन्ति ॥१९॥

भा०—(इमे) ये (मरुतः) वायुवत् बलवान् और प्राणवत् प्रिय विद्वान्, (तुरं) कार्य-कुशल, राजा को (रमयन्ति) प्रसन्न रखते हैं और (इमे) ये (सहः) बल से (सहसः) बलवान् शत्रुओं को भी (आ नमन्ति) झुका लेते हैं। (इमे) ये (वनुष्यतः) हिंसक वा क्रोधी से (शंसं नि पान्ति) प्रशंसनीय जन को बचा लेते हैं। (अररुषे) अदानी और क्रोधी जन के दमन के लिये वे (गुरु द्वेषः) बड़ा भारी द्वेष, अप्रीतिकर व्यवहार (दधन्ति) करते हैं।

इमे र॒ध्रं चिन्मरुतो जुनन्ति भृमिं चिद्यथा वसवो जुषन्त ।
अप बाधध्वं वृषणस्तमांसि धत्त विश्वं तनयं तोकमस्मे ॥२०॥२५॥

भा०—(इमे) ये (मरुतः) वायुगण जैसे (रध्रं चित् जुनन्ति) दृढ वृक्ष को भी हिला देते हैं। वैसे ही आप लोग भी (रध्रं) वश करने योग्य, प्रबल पुरुषों को भी सन्मार्ग पर चलाओ और (वसवः) पृथिवी आदि लोक जैसे (भृमिं) धारक सूर्य के प्रकाश का सेवन करते हैं वैसे ही आप लोग (भृमिं) भरण-पोषण करने वाले स्वामी तथा (भृमिं) भ्रमणशील, विद्वान् परिव्राजक का भी (जुषन्त) प्रेम से सेवन करें। आप लोग (तमांसि) सूर्य-किरणों के समान अन्धकारों को, (अप बाधध्वं) और खेदजनक मोह आदि को भी दूर करो। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

मा वो दात्रान्मरुतो निररा॑म मा प॒श्चाद्द॑घ्म रथ्यो विभागे ।
आ नः स्पार्हे भजतना वसव्ये॒३॑ यदीं सुजातं वृषणो वो अस्ति ॥२१॥

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! हम (वः) आपको (दात्रात्) दान करने से (मा निर् अराम) न रोकें और (वः दात्रात् मा निर् अराम) आप लोगों के प्रति देने से हम न रुकें। हे (रथ्यः) रथारोही जनो ! (विभागे) धन के विभाग से (नः पश्चात् मा दध्म) आप को

हम पीछे न रक्खें। हे (वृषणः) सुखवर्षक जनो! (वः यत् ईम् सुजातम् अस्ति) आप लोगों का जो उत्तम द्रव्य है उसे (वसव्ये) धनसम्बन्धी (स्पार्हे) अभिलाषा-योग्य पदार्थ के लिये (नः आ भजतन) हमें प्राप्त करो।

सं यद्धनन्त मन्युभिर्जनासः शूरा यह्वीष्वोषधीषु विक्षु।
अध स्मा नो मरुतो रुद्रियासस्त्रातारो भूत पृतनास्वर्यः ॥२२॥

भा०—(यत्) जो (जनासः) मनुष्य (विक्षु) प्रजाओं के बीच (शूराः) वीर होकर (यह्वीषु ओषधीषु) बड़ी और बहुत-सी ओषधियों में से (मन्युभिः) नाना ज्ञानों द्वारा (संहनन्त) नाना ओषधियों को मिलाते हैं, हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो! वे आप (रुद्रियासः) रोगों को दूर करने वाले वैद्यजन (पृतनासु अर्यः) सेनाओं में स्वामी के तुल्य (नः त्रातारः भूत) हमारे रक्षक होओ।

भूरि चक्र मरुतः पित्र्याण्युक्थानि या वः शस्यन्ते पुरा चित्।
मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साळ्हा मरुद्भिरित्सनिता वाजमर्वा ॥२३॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो! (या) जिन कर्मों का (वः) आप लोगों के हितार्थ (पुरा चित्) पहले ही (शस्यन्ते) उपदेश किया जाता है उन (पित्र्याणि) माता-पिता की सेवा और पालक जनोचित (उक्थानि) कर्मों को आप (भूरि) खूब (चक्र) करो। (उग्रः) बलवान् पुरुष (मरुद्भिः) बलवान् पुरुषों से ही (साळ्हा) शत्रु को पराजय करने वाला और (अर्वा मरुद्भिः यथा वाजं सनिता) जैसे अश्व प्राण के बल से वेग को प्राप्त करता है वैसे ही (अर्वा) शत्रुहिंसक पुरुष (मरुद्भिः) विद्वान् पुरुषों की सहायता से (वाजं सनिता) संग्राम करने में समर्थ होता है।

अस्मे वीरो मरुतः शुष्म्यस्तु जनानां यो असुरो विधर्ता।
अपो येन सुक्षितये तरेमाध स्वमोको अभि वः स्याम ॥२४॥

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् पुरुषो ! (वीरः) वीर और विविध विद्याओं का प्रवक्ता पुरुष और हमारा पुत्र (अस्मे) हमारे उपकारार्थ (शुष्मी अस्तु) बलवान् हो । (यः) जो (असुरः) शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ होकर (जनानां) मनुष्यों का (विधर्त्ता) विशेष रूप से धारक पालक हो, (येन) जिसके द्वारा हम (सु-क्षितये) उत्तम भूमि की प्राप्ति के लिये (अपः) जलों के समान शत्रु और कसंबन्धनों को (तरेम) तरें । (अध) और (स्वम् ओकः) अपने गृह को प्राप्त कर (वः अभि स्याम) आप लोगों के कृतज्ञ होकर रहें ।

तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२५॥२६॥

भा०—(तत्) वह (इन्द्रः) सूर्य, विद्युत् आदि (वरुणः) जल का स्वामी, (मित्रः) मित्र, (अग्निः) अग्नि, (आपः) जल और (ओषधीः, वनिनः) औषधियें और वन के वृक्ष (नः जुषन्त) हमें सुख दें । हम (मरुताम् उपस्थे) विद्वान् पुरुषों के समीप (शर्मन् स्याम) सुख से रहें । हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) तुम हमें सदा उत्तम साधनों से पालन करो । इति षड्विंशो वर्गः ॥

[५७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—२, ४ त्रिष्टुप् । १ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ५, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

मध्वो वो नाम मारुतं यजत्राः प्र यज्ञेषु शवसा मदन्ति ।
ये रेजयन्ति रोदसी चिदुर्वी पिन्वन्त्युत्सं यदयासुरुग्राः ॥१॥

भा०—जैसे (उग्राः) प्रबल वायुगण (उर्वी रोदसी रेजयन्ति) विशाल भूमि और अन्तरिक्ष को कंपाते हैं और (यत् अयासुः) जब चलते हैं तब (उत्सं पिन्वन्ति) मेघ को बरसाते हैं वैसे ही (उग्राः) बलवान् पुरुष (यत् अयासुः) जब चलते वा प्राप्त होते हैं (उर्वी) बड़ी

(रोदसी) सेनापतियों के अधीन स्थित उभयपक्ष की सेनाओं को (रेजयन्ति) कंपाते हैं और (उत्सं) ऊपर उठने वाले विजेता को (पिन्वन्ति) जलों से अभिषिक्त करते हैं । हे (यजत्राः) दानशील जनो! हे (मध्वः) मनन शील जनो! (वः) आप लोगों का (मारुतं नाम) मनुष्यों का सा नाम, सामर्थ्य है, आप (यज्ञेषु) यज्ञों और युद्धों में (शवसा) बल और ज्ञान से (प्र मदन्ति) हर्षित होते और उपदेश करते हो ।

निचेतारो हि मरुतो गृणन्तं प्रणेतारो यजमानस्य मन्म ।
अस्माकमद्य विदथेषु बर्हिरा वीतये सदत पिप्रियाणाः ॥ २ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् जनो! आप (निचेतारः हि) धनों, ज्ञानों के संग्रही और (यजमानस्य) दानशील के (मन्म) अभिमत वस्तु (गृणन्त) उपदेष्टा को (पिप्रियाणाः) प्रसन्न करते हुए (प्रणेतारः) कर्म-कुशल होकर (अस्माकं विदथेषु) हमारे यज्ञों में (वीतये) रक्षा और ज्ञानप्रकाश के लिये (बर्हिः) उत्तमासन पर (आसदत) विराजो ।

नैतावदन्ये मरुतो यथेमे भ्राजन्ते रुक्मैरायुधैस्तनूभिः ।
आ रोदसी विश्वपिशः पिशानाः समानमञ्ज्यञ्जते शुभे कम् ॥३॥

भा०—(यथा इमे) जैसे ये (मरुतः) शत्रु घातक वीर मनुष्य (रुक्मैः) कान्तियुक्त (आयुधैः) हथियारों और (तनूभिः) शरीरों से (भ्राजन्ते) चमकते हैं (एतावत्) उतने (अन्ये मरुतः न भ्राजन्ते) दूसरे मनुष्य नहीं चमकते । ये (विश्व-पिशः) सर्वाङ्ग-सुन्दर जन (रोदसी पिशानाः) आकाश और भूमि को सुशोभित करते हुए सूर्य-किरणों के तुल्य (समानम् अञ्जि) समान दीप्तियुक्त चिह्न को (शुभे कम्) शोभा के लिये (अञ्जते) प्रकट करते हैं ।

ऋधक्सा वो मरुतो दिद्युदस्तु यद्व आगः पुरुषता कराम ।
मा वस्तस्यामपि भूमा यजत्रा अस्मे वो अस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥४

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप की (सा विद्युत्) वह उज्ज्वल नीति (ऋधक् अस्तु) सच्ची हो (यत्) यदि चाहे हम (वः) आप लोगों के प्रति (पुरुषता) पुरुष होने से (आगः कराम) अपराध भी करें। हे (यजत्राः) पूज्य जनो ! (तस्याम्) उस नीति में रहकर (वः मा अपि भूम) आप लोगों के प्रति हम अपराधी न हों। (वः चनिष्ठा) आप की ऐश्वर्यादि-युक्त (सुमतिः अस्मे अस्तु) शुभ मति हमारे लिये हो।

कृते चिदत्र मरुतो रणन्तानवद्यासः शुचयः पावकाः ।
प्र णोऽवत सुमतिभिर्यजत्राः प्र वाजेभिस्तिरत पुष्यसे नः ॥५॥

भा०—हे (मरुतः) वीर जनो ! (कृते चित् अत्र) इस संसार में अपने किये कर्म और करने योग्य कर्त्तव्य में ही (रणन्त) सुख लाभ करो। आप (अनवद्यासः) अनिन्दित कर्म करने वाले, (शुचयः) शुद्ध आचारवान्, (पावकाः) पवित्र करने वाले होओ। हे (यजत्राः) संगति-योग्य ज्ञान, मान देने वाले सज्जनो ! आप (सुमतिभिः) उत्तम ज्ञानों से (नः अवत) हमारी रक्षा करो। आप लोग (वाजेभिः) अन्नों से (पुष्यसे) हमें पुष्ट करने के लिये (प्र तिरत) बढ़ाओ।

उत स्तुतासो मरुतो व्यन्तु विश्वेभिर्नामभिर्नरो हवींषि ।
ददात नो अमृतस्य प्रजायै जिगृत रायः सूनृता मघानि ॥ ६ ॥

भा०—हे (मरुतः नरः) नायक जनो ! आप (विश्वेभिः नामभिः) सब प्रकार के उत्तम नामों से (स्तुतासः) प्रशंसित होकर (हवींषि) ज्ञान और नाना ऐश्वर्य (उप व्यन्तु) प्राप्त करें। (नः) हमारी प्रजाओं को (अमृतस्य ददात) अन्न, दीर्घ जीवन दो। (उत) और (रायः) उत्तम ऐश्वर्य (सूनृता) शुभ वचन, (मघानि) धन (जिगृत) प्रदान करो।

आ स्तुतासो मरुतो विश्व ऊती अच्छा सूरीन्त्सर्वताता जिगात ।
ये नस्त्मना शतिनो वर्धयन्ति यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७।२७

भा०—हे (मरुतः) विद्वानो ! आप (विश्वे) सब (सर्वताता) सबके सुखकारक कार्य में (स्तुतासः) प्रशंसित होकर (ऊती) रक्षा सहित (सूरीन्) विद्वानों की (आ जिगात) प्रशंसा करो। (ये) जो (शतिनः) सैकड़ों बलों या ग्रामों के स्वामी होकर (त्मना) स्वयं (नः) हमें (वर्धयन्ति) बढ़ाते हैं वे (यूयं) आप लोग (स्वस्तिभिः) कल्याण-कारी साधनों से (नः पात) हमारी रक्षा करो। इति सप्तविंशो वर्गः॥

[५८]

वसिष्ठ ऋषिः॥ मरुतो देवताः॥ छन्दः—३; ४ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप्। १ विराट् त्रिष्टुप्। २, ६ भुरिक्पंक्तिः॥ षडृचं सूक्तम्॥

प्र साकमुक्षे अर्चता गणाय यो दैव्यस्य धाम्नस्तुविष्मान्।
उत क्षोदन्ति रोदसी महित्वा नक्षन्ते नाकं निर्ऋतेरवंशात्॥१॥

भा०—हे विद्वान् जनो! (यः) जो (दैव्यस्य) विद्वान्, तेजस्वी, दानशील, पद के योग्य (धाम्नः) नाम, स्थान और जन्म के कारण (तुविष्मान्) सर्वाधिक बलशाली है, (साकमुक्षे) उन एक साथ अभिषिक्त होने वाले (गणाय) वीर-प्रमुख जन का (प्र अर्चत) अच्छी प्रकार आदर करो। जैसे वायुगण (महित्वा) अपने भारी सामर्थ्य से (रोदसी) आकाश और पृथिवी में (क्षोदन्ति) जल ही जल करके शान्ति, सुख बरसाते हैं वैसे ही (महित्वा) अपने बड़े सामर्थ्य से (रोदसी) राजा और प्रजा वर्ग में (क्षोदन्ति) जल के समान आचरण करते, सबको सुख से तृप्त करते हैं और (निः-ऋते) दुःखमय संसार-कष्ट और (अवंसात्) सन्तानरहित होने आदि दुःखों से दूर होकर खूब सुखी, सुसन्तान होकर (नाकं नक्षन्ते) सुखमय लोक को प्राप्त होते हैं, उनका भी आप लोग (अर्चत) आदर करो।

जनूश्चिद्वो मरुतस्त्वेष्येण भीमासस्तुविमन्यवोऽयासः।
प्र ये महोभिरोजसोत सन्ति विश्वो वो यामन्भयते स्वर्दृक्॥२॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान्, वीर जनो ! (ये) जो आप लोग (त्वेष्येण) अति तीक्ष्ण तेज, (महोभिः) बड़े गुणों और (ओजसा) पराक्रम से युक्त होकर (भीमासः) भयंकर और (तुवि-मन्यवः) अति क्रोधयुक्त (अयासः) आगे बढ़ने वाले हो । (वः जनूः चित्) आप की उत्पादक माताएं भी (प्र सन्ति) उत्तम कोटि की हैं । (यामन्) अपने अपने मार्ग में चलते हुए भी (विश्वः) सभी (स्वर्दृक्) सुख से देखने वाले लोग (वः भयते) आप से अधर्म करने से भय करते हैं ।

बृहद्वयो मघवद्भ्यो दधात् जुजोषन्निन्मरुतः सुष्टुतिं नः ।
गतो नाध्वा वि तिराति जन्तुं प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेत ॥३॥

भा०—जो (मरुतः) वीर, विद्वान् जन (मघवद्भ्यः) ऐश्वर्यवान् लोगों के हितार्थ (बृहत् वयः) बहुत बड़ा जीवन, अन्न और बल (दधात) धारण करते हैं और जो (नः) हमारी (सु-स्तुतिं) उत्तम स्तुति को (जुजोषन् इत्) सेवन करते हैं और जो (गतः) प्राप्त होकर (अध्वा) मार्ग-तुल्य (जन्तुं न वितराति) प्राणी को नाश नहीं करते, प्रत्युत बढ़ाते हैं, वह (स्पार्हाभिः ऊतिभिः) उत्तम उपायों से (नः प्र तिरेत) हमें भी बढ़ावें ।

युष्मोतो विप्रो मरुतः शतस्वी युष्मोतो अर्वा सहुरिः सहस्री ।
युष्मोतः सम्राळुत हन्ति वृत्रं प्र तद्वो अस्तु धूतयो देष्णम् ॥४॥

भा०—हे (धूतयः) भोग-वासनाओं को कंपा कर शिथिल करने वाले विद्वान् जनो ! शत्रुओं को कंपा देने वाले वीर पुरुषो ! (युष्मा-ऊतः विप्रः) तुम लोगों से सुरक्षित विद्वान् पुरुष जिससे (शतस्वी) सैकड़ों धनों का स्वामी और सैकड़ों को अपना बना लेने हारा हो और जिससे (युष्मा-ऊतः अर्वा) आप से सुरक्षित अश्वारोही वीर पुरुष (सहुरिः) शत्रु-पराजयकारी और (सहस्री) सहस्रों ऐश्वर्यों और पुरुषों का स्वामी, सहस्रपति होता है और जिससे (युष्मा-ऊतः सम्राड्) आप

लोगों से सुरक्षित महाराजा होकर (वृत्रम् उत हन्ति) बढ़ते शत्रु का भी नाश करता और (वृत्रं हन्ति) धन को प्राप्त करता है, हे विद्वानों और वीरो ! (वः) आप लोगों का (तत्) ऐसा ही (देष्णम्) दान हो।

ताँ आ रुद्रस्य मीळ्हुषो विवासे कुविन्नंसन्ते मरुतः पुनर्नः।
यत्सस्वर्ता जिहीळिरे यदाविरव तदेन ईमहे तुराणाम् ॥ ५ ॥

भा०—मैं (मीढुषः) सुख-वर्षक, (रुद्रस्य) दुष्टों को रुलाने वाले वीर के अधीन (तान्) उन वीर जनों को (आ विवासे) आदर से राष्ट्र में बसाऊं। वे (मरुतः) शत्रुहन्ता (नः) हमें (पुनः) बार २ (नंसन्ते) प्राप्त हों। (यत्) जिस कारण (सस्वर्ता) उपतापजनक शब्द से, या अप्रकट रूप से (यद् आविः) वा जिस कारण प्रकट रूप से, वे (जिहीडिरे) क्रोधित हों, (तुराणाम्) शीघ्रकारी वा अपराधियों के दण्डकर्त्ता जनों के (तद् एनं) उस क्रोध को हम (अव ईमहे) दूर करें।

प्र सा वाचि सुष्टुतिर्मघोनामिदं सूक्तं मरुतो जुषन्त।
आराच्चिद् द्वेषो वृषणो युयोत यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥६।२८

भा०—(मघोनां) आदर-योग्य धन, ऐश्वर्य के स्वामी जनों की (सा सु-स्तुतिः) वह उत्तम स्तुति (प्र-वाचि) अच्छी प्रकार कही जाती है। हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! आप (इदं) इस प्रकार के (सूक्तम्) उत्तम वचन (जुषन्त) सेवन करें। हे (मरुतः) बलवान् पुरुषो ! आप लोग (द्वेषः) द्वेषी शत्रुओं और द्वेष भावों को भी (आरात् चित् युयोत) दूर ही करो और (स्वस्तिभिः) सुखकारी साधनों से (सदा नः यूयं पात) सदा हमारी रक्षा करो। इति अष्टाविंशो वर्गः॥

[५९]

वसिष्ठ ऋषिः॥ १—११ मरुतः। १२ मृत्युञ्जयो रुद्रो देवता। छन्दः—१ निचृद् बृहती। ३ बृहती। ६ स्वराड् बृहती। २ पंक्तिः।

४ निचृत्पंक्तिः । ५, १२ अनुष्टुप् । ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् ।
९, १० गायत्री । ११ निचृद्गायत्री । द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

यं त्रायध्व इदमिदं देवासो यं च नयथ ।
तस्मा अग्ने वरुण मित्रार्यमन्मरुतः शर्म यच्छत ॥ १ ॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् जनो ! आप (यं त्रायध्वे) जिसकी रक्षा करते हो और (यं च) जिसको (इदम् इदम्) यह सन्मार्ग है, यह सत् कृत्य है, ऐसा बतला कर (नयथ च) सन्मार्ग और सत्कर्म में ले जाते हो, हे (अग्ने) विद्वन् ! हे (वरुण) श्रेष्ठ पुरुष ! हे (मित्र) स्नेहवन् ! हे (अर्यमन्) दुष्टों के नियन्तः ! हे (मरुतः) विद्वान् प्रजाजनो ! आप उसको अवश्य (शर्म यच्छत) शान्ति प्रदान करो ।

युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिय ईजानस्तरति द्विषः ।
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ॥ २ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् जनो ! (प्रिये अहनि) किसी उत्तम दिन (ईजानः) आप का सत्संग करता हुआ पुरुष (वः) आप को (वराय) स्वीकार करने के लिये (महीः इषः दाशति) उत्तम २ इच्छाएं प्रकट करता और अन्नादि समृद्धियों को देता है, वह (युष्माकं अवसा) आपके ज्ञान और बल से (द्विषः) शत्रुओं को (तरति) पार कर जाता है । (सः) वह (क्षयं) ऐश्वर्य को (प्र तिरते) खूब बढ़ा लेता है ।

नहि वश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते ।
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबत कामिनः ॥ ३ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! आप (कामिनः) उत्तम संकल्प और इच्छा से युक्त होकर (विश्वे) सब (सचा) साथ मिलकर (अस्माकं सुते) हमारे ऐश्वर्य के बल पर (पिबत) ऐश्वर्य का उपभोग करो । (वः चरमं चन) आप में से अन्तिम को भी (वसिष्ठः) श्रेष्ठ वसु राजा (न परिमंसते) त्याज्य नहीं समझता ।

नहि वं ऊतिः पृतनासु मर्धति यस्मा अराध्वं नरः।
अभि व आवर्त्सुमतिर्नवीयसी तूयं यात पिपीषवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (नरः) मनुष्यो ! आप (यस्मै अराध्वम्) जिसको सुखादि देते हो (वः ऊतिः) आपकी रक्षाकारिणी सेना (पृतनासु) संग्रामों में (नहि मर्धति) उसका नाश नहीं करती। उसे (वः नवीयसी सुमतिः) आप की सुमति (अभि आवत्) प्राप्त हो। आप (पिपीषवः) प्रजा-पालन की इच्छा से (तूयं) शीघ्र (यात) प्रयाण करो और (आयात) आओ।

ओ षु घृष्विराधसो यातनान्धांसि पीतये।
इमा वो हव्या मरुतो र॒रे हि कं मो ष्व१॒॑न्यत्र गन्तन ॥ ५ ॥

भा०—(ओ) हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! हे (घृष्विराधसः) एक दूसरे से बढ़ने वाले आप (पीतये) उपभोग के लिये (अन्धांसि) अन्नों को (सु यातन) सुख से प्राप्त करो। मैं (इमा) ये (हव्या) खाने और लेने-देने योग्य द्रव्यादि (ररे) देता हूँ। (हि कं) आप लोग (अन्यत्र) अन्य स्थान में (मो सु गन्तन) मत जाइये। मेरे राष्ट्र में रहिये।

आ च नो बर्हिः सदताविता च नः स्पार्हाणि दातवे वसु।
अस्रेधन्तो मरुतः सोम्ये मधौ स्वाहेह मादयाध्वै ॥ ६ ॥ २१ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान्, प्रजाजनो ! (नः बर्हिः आसदत च) आप हमारे वृद्धियुक्त गृह आदि को प्राप्त होओ (नः) हमें (स्पार्हाणि) चाहने योग्य, (वसु) धनों को (दातवे) देने के लिये (अविता च) प्राप्त हों। आप (अस्रेधन्तः) प्रजा का नाश न करते हुए, (सोम्ये मधौ) सोम आदि ओषधिरस से युक्त मधु समान विद्वानों के योग्य आनन्द-दायक इस राष्ट्र में और अन्नादि के ऊपर (इह) इस गृहादि में (स्वाहा) उत्तम सत्कार, सुखपूर्वक अभ्यवहार द्वारा (मादयाध्वै) आनन्द लाभ करिये।

सस्वश्चिद्धि तन्व१ः शुम्भमाना आ हंसासो नीलपृष्ठा अपप्तन् ।
विश्वं शर्धो अभितो मा नि षेद नरो न रण्वाः सवने मदन्तः ॥७

भा०—(सस्वः) गुप्त आदि से विद्यमान, इन्द्रिय और अन्तःकरण को सुरक्षित और आकारचेष्टादि गुप्त रखने वाले, (तन्वः शुम्भमानाः) देहों, आत्माओं को गुणों और आभरणों से अलंकृत करने वाले (नील-पृष्ठाः) श्यामवर्ण की पीठ वाले (हंसासः चित्) हंसों के समान (नील-पृष्ठाः) नील, श्याम वर्ण की या सुन्दर पोशाकों वाले (हंसासः) हंस-वत् विवेकी, ध्येय तक पहुँचने हारे, (अपप्तन्) आवें। वे (रण्वाः नरः न) रणकुशल नायकों के समान (सवने) ऐश्वर्यमय राष्ट्र में (मदन्तः) आनन्दपूर्वक रहते हुए (अभितः) सब ओर (विश्वशर्धः) समस्त बल को (मा अभितः) मेरे चारों ओर (नि षद) बनाये रक्खो।

यो नो मरुतो अभि दुर्हृणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति ।
द्रुहः पाशान्प्रति स मुचीष्ट तपिष्ठेन हन्मना हन्तना तम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वानो और वीर जनो! (यः) जो (नः) हमारे बीच (दुर्हृणायुः) दुःखदायी, दुष्ट-हृदय का पुरुष, हमारे (चित्तानि) अन्तःकरणों को (तिरः) तिरस्कारपूर्वक (अभि जिघांसति) चोट पहुँचाना चाहता है (सः) वह (द्रुहः पाशान्) द्रोही के योग्य फांसों या बन्धनों को (प्रति मुचीष्ट) त्याग दे और (तम्) उसको (तपिष्ठेन हन्मना) अति तापदायक हथियार से (हन्तन) दण्डित करो।

सान्तपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन । युष्माकोती रिशादसः ॥९॥

भा०—हे (मरुतः) उत्तम मनुष्यो! हे (सान्तपनाः) तपस्वी जनो! आप (इदं हविः) यह उत्तम अन्न (जुजुष्टन) सेवन करो। हे (रिशादसः=रिशाद्-असः, रिश—अदसः) हिंसकों के नाशक जनो! (युष्माक-ऊती) तुम लोगों की रक्षा से ही हम लोग अन्नादि खाया करें।

गृहमेधास आ गत मरुतो माप भूतन। युष्माकोती सुदानवः ॥१०

भा०—हे (गृहमेधासः) गृह में यज्ञ करने हारे गृहस्थ जनो ! हे (मरुतः) मनुष्यो ! आप लोग (आ गत) आइये। (मा अपभूतन) हमसे दूर मत होइये। हे (सुदानवः) उत्तम दानशील पुरुषो ! (युष्माक-ऊती) आप लोगों की रक्षा और सत्कार से ही हम प्रसन्न हों।

इहेह वः स्वतवसः कवयः सूर्यत्वचः। यज्ञं मरुत आ वृणे ॥११॥

भा०—हे (स्वतवसः) स्वयं शरीर, आत्मा से बलशाली पुरुषो ! हे (कवयः) क्रान्तदर्शी जनो ! हे (सूर्य-त्वचः) सूर्य-तुल्य देह-कान्ति वाले पुरुषो ! हे (मरुतः) विद्वानो ! मैं (वः) आप को (इह-इह) इस २ पद के निमित्त (आवृणे) वरण करता हूँ। आप लोग (यज्ञं) यज्ञ को (आ गत) प्राप्त हों और (मा अप भूतन) हमसे दूर न होवें।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥१२॥२०॥४॥

भा०—(त्र्यम्बकं) तीनों शब्दमय वेदों के उपदेष्टा वा तीनों लोकों, तीनों वेदों, तीनों वर्णों के उपदेष्टा, रक्षक, द्विपात, चतुष्पात् और सरीसृप तीनों के माता के समान पालक, (सु-गन्धि) उत्तम गन्ध से युक्त, उत्तम कुलोत्पन्न, सत्कर्मा, (पुष्टिवर्धनम्) समृद्धि बढ़ाने वाले पूज्य पुरुष वा प्रभु की हम (यजामहे) उपासना पूजा करते हैं। मैं (मृत्योः) मृत्यु के (बन्धनात्) बन्धन से (उर्वारुकम् इव) खरबूजे के फल के समान (मुक्षीय) मुक्त होऊं और (अमृतात्) अमृतमय मोक्ष से (मा मुक्षीय) पृथक् न होऊं। इति विंशो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

—

अथ पञ्चमोऽध्यायः

[६०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १ सूर्यः । २—१२ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१ पंक्तिः । ९ विराट् पंक्तिः । १० स्वराट् पंक्तिः । २, ३, ४, ६, ७, १२ निचृत् त्रिष्टुप् । ५, ८, ११ त्रिष्टुप् ॥

यद॒द्य सूर्य॒ ब्रवो॑ऽनागा उ॒द्यन्मि॒त्राय॒ वरु॑णाय स॒त्यम् ।
व॒यं दे॑व॒त्राऽदि॑ते स्याम॒ तव॑ प्रि॒यासो॑ अर्यमन् गृ॒णन्तः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे सूर्य-समान तेजस्विन् ! हे (अदिते) अविनाशिन् ! हे (अर्यमन्) न्यायकारिन् ! तू (अनागाः) अपराधों से रहित होकर (मित्राय) स्नेहवान् और (वरुणाय) श्रेष्ठ जन के प्रति (अद्य) आज के समान सदा ही (उत् यन्) उत्तम पद को प्राप्त होता हुआ (सत्यं ब्रवः) सत्योपदेश करता है, (देवत्रा) विद्वान् मनुष्यों में (वयं) हम लोग (तव) तेरे ही दिये (सत्यं) सत्य ज्ञान का (गृणन्तः) उपदेश करते हुए (तव प्रियासः स्याम) तेरे प्रिय होकर रहें ।

ए॒ष स्य मि॑त्रावरुणा नृ॒चक्षा॑ उ॒भे उदे॑ति॒ सूर्यो॑ अ॒भि ज्मन् ।
विश्व॑स्य स्था॒तुर्जग॑तश्च गो॒पा ऋ॒जु मर्ते॑षु वृजि॒ना च॒ पश्य॑न् ॥ २ ॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) स्नेही और एक दूसरे को वरण करने वाले स्त्री-पुरुषो ! (ज्मन् सूर्यः) अन्तरिक्ष में सूर्य के समान (एषः स्यः) वह यह, तेजस्वी (नृ-चक्षाः) सब मनुष्यों का द्रष्टा, (विश्वस्य) समस्त (स्थातुः जगतः च) स्थावर और जंगम का (गोपाः) रक्षक (मर्तेषु) मनुष्यों में (ऋजु) सरल धार्मिक कार्यों और (वृजिना) पापों को (पश्यन्) न्यायपूर्वक देखता हुआ (उभे अभि) स्त्री और पुरुष, वादी और प्रतिवादी दोनों के प्रति (उद् एति) उदय को प्राप्त होता है ।

अयु॑क्त स॒प्त ह॒रितः॑ स॒धस्था॒द्या ईं॒ वह॑न्ति॒ सूर्यं॑ घृ॒ताचीः॑ ।
धामा॑नि मित्रावरुणा यु॒वाकुः॒ सं यो यू॒थेव॒ जनि॑मानि॒ चष्टे॑ ॥ ३ ॥

भा०—(सधस्थात्) अन्तरिक्ष में जैसे सूर्य (सप्त हरितः) सातों जलाहरण करने वाली किरणों को (अयुक्त) नियुक्त करता है और जैसे (घृताचीः हरितः) जल से युक्त किरणें वा रात्रियां वा दिशाएं (ईं वहन्ति) उस सूर्य को धारण करती हैं वैसे वह राजा (सप्त हरितः) राष्ट्र के सात प्रकार के राज-काज चलाने वाले अमात्यों का (सधस्थात्) साथ बैठने के सभास्थान में आसन करता हुआ, (अयुक्त) उचित कार्यों में नियुक्त करे (याः) जो (घृताचीः) तेज और स्नेह युक्त होकर (सूर्य वहन्ति) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को धारण करते हैं। (यः) जो राजा (युवाकुः) तुम दोनों की शुभ-कामना करता हुआ, हे (मित्रावरुणौ) प्राण, उदान के समान राष्ट्र के आधार-रूप स्त्री-पुरुषो! (यूथा इव) गौओं के यूथों को ग्वाले के तुल्य समस्त (धामानि) स्थानों और पदों तथा (जनिमानि) सब प्राणियों और कार्यों को भी (सं चष्टे) अच्छी प्रकार देखता है।

उद्वां पृक्षासो मधुमन्तो अस्थुरा सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः।
यस्मा आदित्या अध्वनो रदन्ति मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ॥४

भा०—हे स्त्री-पुरुषो! (वाम्) आप लोगों के लाभार्थ ही (मधुमन्तः पृक्षासः उद् अस्थुः) जल-युक्त मेघ ऊपर उठते हैं, वैसे ही (मधुमन्तः पृक्षासः उद् अस्थुः) मधुर गुणयुक्त अन्न भूमि पर उत्पन्न होते हैं। सूर्य जैसे (शुक्रम् अर्णः अरुहत्) शुद्ध जल को ऊपर उठाता है वैसे ही सूर्यवत् तेजस्वी राजा शुद्ध धन वा प्राप्तव्य पद को प्राप्त करे। (यस्मै) जिसके हितार्थ (आदित्याः) १२ मासों तक के सदृश नाना रूप से सर्वोपकारक तेजस्वी १२ सचिव (अध्वनः) राज-कार्यों के मार्ग (रदन्ति) बनाते हैं, वही (स-जोषाः) समान रूप से सबको प्रिय, (मित्रः) सर्वस्नेही, (अर्यमा) न्यायकारी, (वरुणः) सबके वरने योग्य हो।

इमे चेतारो अनृतस्य भूरेर्मित्रो अर्यमा वरुणो हि सन्ति ।
इम ऋतस्य वावृधुर्दुरोणे शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः ॥५॥

भा०—(इमे) ये विद्वान्, (मित्रः) सर्वस्नेही, (अर्यमा) न्यायकारी और (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ राजा ये सब (भूरेः) बहुत बड़े (अनृतस्य) असत्य को भी (चेतारः) विवेक द्वारा छानबीन करने वाले (हि सन्ति) अवश्य हों । (दुरोणे) गृह में पुत्र जैसे धन की वृद्धि करते हैं वैसे (दुरोणे) दुष्प्राप्य पद पर स्थित होकर, वा (इह) इस राष्ट्र में भी (अदितेः) सूर्यवत् तेजस्वी राजा के अधीन उसके (पुत्राः) पुत्रों के समान आज्ञाकारी (शग्मासः) सुखकारक और (अदब्धाः) शत्रुओं से पीड़ित न होने वाले होकर (ऋतस्य वावृधुः) न्याय और धन की वृद्धि करें ।

इमे मित्रो वरुणो दूळभासोऽचेतसं चिच्चितयन्ति दक्षैः ।
अपि क्रतुं सुचेतसं वतन्तस्तिरश्चिदंहः सुपथा नयन्ति ॥६॥१॥

भा०—(इमे) ये (मित्रः) सर्वस्नेही, (वरुणः) राजा और (दूडभासः) दूर २ तक चमकने वाले पुरुष (दक्षैः) अपने कर्मों और ज्ञानों से (अचेतसं चित्) ज्ञान-रहित को भी (चितयन्ति) ज्ञानवान् करते हैं । (अपि) और (सु-चेतसं) उत्तम ज्ञान वाली (क्रतुं) बुद्धि वा कर्म का (वतन्तः) सेवन करते हुए (सु-पथा) उत्तम मार्ग से (अंहः तिरः चित्) पाप को दूर करते और अन्यों को सन्मार्ग से (नयन्ति) ले जाते हैं । इति प्रथमो वर्गः ॥

इमे दिवो अनिमिषा पृथिव्याश्चिकित्वांसो अचेतसं नयन्ति ।
प्रव्राजे चिन्नद्यो गाधमस्ति पारं नो अस्य विष्पितस्य पर्षन् ॥७॥

भा०—(इमे) ये (दिवः पृथिव्याः) आकाश और भूमि के समस्त पदार्थों के (चिकित्वांसः) ज्ञाता, विद्वान् (अनिमिषाः) कभी आँखें न झपकते हुए, सदा सचेत होकर (अचेतसम्) अज्ञानी पुरुष को भी (प्रव्राजे चित्) उत्तम गन्तव्य मार्ग में (नयन्ति) ले जाते हैं । (प्र-व्राजे)

मार्गों में भी जैसे (अयः गा ... दी का ... रा जल (अस्ति) होता है, वे विद्वान् (अय) इस (... अपतस्य) दूर २ तक विस्तृत विघ्न-रूप अथाह जल से भी (नः पारं पर्षन्) हमें पार करें।

यद् गोपावददितिः शर्म भद्रं मित्रो यच्छन्ति वरुणः सुदासे।
तस्मिन्ना तोकं तनयं दधाना मा कर्म देवहेळनं तुरासः॥ ८॥

भा०—(यत्) जो (अदितिः) विद्वान्, माता पिता के तुल्य शासक राजा, (मित्रः) स्नेही, (वरुणः) सर्वोपरि उत्तम पुरुष, ये सब (सुदासे) उत्तम करादि के दाता के हितार्थ वा वृत्ति आदि देने वाले राजा के लिये (भद्रं) सुख (यच्छन्ति) देते हैं। (तस्मिन्) उसके अधीन हम अपने (तोकं तनयं आ दधानाः) पुत्र पौत्रादि का पालन करते हुए (तुरासः) शीघ्रकारी होकर (देवहेडनं) विद्वानों का अनादर (मा कर्म) न करें।

अव वेदिं होत्राभिर्यजेत रिपः काश्चिद्वरुणध्रुतः सः।
परि द्वेषोभिरर्यमा वृणक्तूरुं सुदासे वृषणा उ लोकम्॥ ९॥

भा०—जो व्यक्ति (होत्राभिः) उत्तम वाणियों से (वेदिम्) सब सुखों को प्राप्त कराने वाली यज्ञ वेदी और भूमि को (अवयजेत) प्राप्त नहीं करता, (सः) वह (वरुण-ध्रुतः) श्रेष्ठ जनों से दण्डित होकर (काः चित् रिपः अव यजेत) कई प्रकार के कष्ट प्राप्त करता है। (अर्यमा) न्यायकारी, हे (वृषणाः) बलवान् स्त्री-पुरुषो! (द्वेषोभिः परि वृणक्तु) द्वेषकारी से हमें दूर रक्खे और (सु-दासे) उत्तम दानशील पुरुष को (उरुं लोकं) विशाल स्थान प्रदान करे।

सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषामपीच्येन सहसा सहन्ते।
युष्मद्भिया वृषणो रेजमाना दक्षस्य चिन्महिना मृळता नः॥ १०॥

भा०—(एषां) इन उक्त बलवान् प्रधान पुरुषों की (सम् ऋतिः) एक साथ संगति (सस्वः चित्) गुप्त और (त्वेषी) तेजस्विनी हो। वे लोग (अपीच्येन) सुगुप्त, दृढ़ (सहसा) बल से (सहन्ते) शत्रु पराजय

में समर्थ होते हैं। हे (वृ...ः) बल ... ! (युष्मद्भिया) आप के भय से (रेजमानाः) शत्रु कांपते हों (दक्षस्य महिना चित्) बल के सामर्थ्य से आप लोग (नः मृडत) हमें सुखी करें।

यो ब्रह्मणे सुमतिमायजाते वाजस्य सातौ परमस्य रायः।
सीक्षन्त मन्युं मघवानो अर्य उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु ॥११॥

भा०—(यः) जो मनुष्य (ब्रह्मणे) ब्रह्मवेत्ता पुरुष के हितार्थ, वा ज्ञान, धन के प्राप्त्यर्थ (सुमतिम्) कल्याणकारी ज्ञान और बुद्धि (आ यजाते) प्राप्त करता है और जो (वाजस्य) बल, ज्ञान और (परमस्य रायः सातौ) सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य लाभ के लिये (सुमतिम् आ यजाते) ज्ञानवान् पुरुष का सत्संग करता है (मघवानः अर्यः) पूज्य ज्ञान, धनादि-सम्पन्न पुरुष उसको (मन्युं सीक्षन्त) ज्ञान प्रदान करते और (क्षयाय) रहने और उसकी ऐश्वर्य के लिये (उरु) बहुत (सु-धातु) उत्तम भरण-पोषण, उत्तम गृह, आभूषण आदि (चक्रिरे) देते हैं।

इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।१२।२

भा०—हे (मित्रा वरुणौ) स्नेहयुक्त, श्रेष्ठ स्त्री-पुरुषो! हे (देव) विद्वानो! (यज्ञेषु) सत्संगों, यज्ञों में, (इयं) यह (युवभ्यां) आप दोनों के लिये (पुरः-हितः अकारि) आदर पूर्वक उत्तम भेंट की जाती है। आप (विश्वानि) समस्त (दुर्गा) कष्टों को (तिरः) दूर करके हमें (पिपृतं) पालन करो और (यूयं) आप लोग (नः स्वस्तिभिः सदा पात) हमारी उत्तम साधनों से सदा रक्षा करो। इति द्वितीयो वर्गः॥

महर्षि दयानन्द सरस्वती

1824 - 1883